GL H 891.47
DHO
124596
LBSNAA

श्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी
Academy of Administration
मसूरी
MUSSOORIE
पुस्तकालय
LIBRARY 124596

अवाप्ति संख्या
Accession No. 14820
वर्ग संख्या
Class No. GL H 891.47
पुस्तक संख्या
Book No. ढोला DHO

ढोला-मारूरा दूहा

राजस्थानी का एक सुप्रसिद्ध, प्राचीन लोक-गीत

पाठांतर, हिंदी अनुवाद, टिप्पणी, शब्द-कोष,
परिशिष्ट और प्रस्तावना के साथ संपादित

संपादक

रामसिंह, एम० ए०, विशारद,

सूर्यकरण पारीक, एम० ए०, विशारद

और

नरोत्तमदास स्वामी, एम०, ए०, विशारद

प्रकाशक

नागरीप्रचारिणी सभा, काशी

प्रकाशक—नागरीप्रचारिणी सभा, काशी
मुद्रक—महताबराय नागरी मुद्रण, काशी
द्वितीय संस्करण, संवत् २०११, १००० प्रतियाँ
मूल्य ६॥)

समर्पण

प्राचीन राजस्थानी संस्कृति की ज्वलंत प्रभा के
प्रतिभाशाली निरूपक,

राजपूत इतिहास के अमर लेखक,
वीरभूमि राजस्थान के समुज्ज्वल रत्न

विश्वविश्रुत विद्वान्

महामहोपाध्याय रायबहादुर

श्री गौरीशंकर हीराचंद ओझा

के कर-कमलों में

राजस्थानी जातीय काव्य का प्रतिनिधिस्वरूप

यह परंपरानुगत लोकप्रिय प्राचीन काव्य

उनके स्नेहमय निरंतर प्रोत्साहन के लिये

संपादकों द्वारा

श्रद्धा के साथ सविनय समर्पित है।

निवेदन

जयपुर राज्य के अन्तर्गत हणोतिया ग्राम के रहनेवाले बारहट नृसिंहदासजी के पुत्र बारहट बालाबख्शजी की बहुत दिनों से इच्छा थी कि राजपूतों और चारणों की रची हुई ऐतिहासिक और (डिंगल तथा पिंगल) कविता की पुस्तकें प्रकाशित की जायँ जिसमें हिंदीसाहित्य के भांडार की पूर्ति हो और ये ग्रंथ सदा के लिए रक्षित हो जायँ। इस इच्छा से प्रेरित होकर उन्होंने नवम्बर सन् १६२२ में ५०००) काशी-नागरीप्रचारिणी सभा को दिए और सन् १९२३ में २०००) और दिए। इन ७०००) से ३।।) वार्षिक सूद के १२०००) के अंकित मूल्य के गवर्मेंट प्रामिसरी नोट खरीद लिए गए हैं। इनकी वार्षिक आय ४२०) होगी। बारहट बालाबख्शजी ने यह निश्चय किया है कि इस आय से तथा साधारण व्यय के अनंतर पुस्तकों की बिक्री से जो आय हो अथवा जो कुछ सहायतार्थ और कहीं से मिले उसमें "बालाबख्श राजपूत-चारण पुस्तकमाला" नाम की एक ग्रंथावली प्रकाशित की जाय जिसमें पहले राजपूतों और चारणों के रचित प्राचीन ऐतिहासिक तथा काव्य-ग्रन्थ प्रकाशित किए जायँ और उनके छप जाने अथवा अभाव में किसी जातीय संप्रदाय के किसी व्यक्ति के लिखे ऐसे प्राचीन ऐतिहासिक ग्रंथ, ख्याति आदि छापे जायँ जिनका संबंध राजपूतों अथवा चारणों से हो। बारहट बालाबख्शजी का दानपत्र काशी-नागरीप्रचारिणी सभा के तीसवें वार्षिक विवरण में अविकल प्रकाशित कर दिया गया है। उसकी धाराओं के अनुकूल काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा इस पुस्तकमाला को प्रकाशित करती है।

विषय-सूची

विषय		पृष्ठांक
(१)	भूमिका	१—४
(२)	प्रवचन	५—११
(३)	प्रस्तावना—(क) पूर्वार्ध—ऐतिहासिक विवेचन और साहित्यिक आलोचना ...	१–१०५
	(ख) उत्तरार्ध—भाषा और व्याकरण का विवेचन	१०७–१६९
(४)	सहायक पुस्तकों की सूची	१७१–१७३
(५)	ढोला-मारूरा दूहा—मूल, हिंदी अनुवाद और पाठांतर	१-१६३
(६)	परिशिष्ट	१६७–४१६
(७)	शब्द-कोष	४१९–४८४
(८)	प्रतीकानुक्रमणिका	४८७–४९९

भूमिका

महाकवि महाराज पृथ्वीराज राठोड़ की क्रिसन-रुकमणीरी वेलि नामक ग्रंथ का संपादन करते समय, हस्त-लिखित पुस्तकों की खोज के सिलसिले में हमें राजस्थान के इस सुप्रसिद्ध, प्राचीन 'ढोला-मारूरा दूहा' नामक काव्य की अनेक प्रतियाँ देखने को मिलीं। तभी हमारा विचार हुआ कि इस सुंदर काव्य को सुंदर रूप से संपादित करके हिंदी-जनता के सामने रखा जाय। यह आज से कोई पाँच-छः बरस पहले की बात है।

वेलि का कार्य समाप्त होते ही हमने तुरंत इस कार्य को हाथ में लिया और आज लगभग पाँच बरसों के परिश्रम के बाद हम इसे पाठकों की सेवा में उपस्थित कर सके हैं।

ढोला-मारूरा दूहा काव्य की हस्त-लिखित प्रतियाँ राजस्थान के पुस्तक-भंडारों में बहुतायत से मिलती हैं। परंतु उनमें से अधिकांश दूहा-चौपाइयों में हैं। असली काव्य आरंभ में सब का सब दूहों में ही लिखा गया था पर आगे चलकर बहुत से दूहे लोग भूल गए, केवल बीच-बीच के कुछ दूहे बच रहे जिनका कथा-सूत्र बिलकुल छिन्नभिन्न था। इस कथा-सूत्र को मिलाने के लिये जैन कवि कुशललाभ ने संवत् १६१८ के लगभग चौपाइयाँ बनाईं और उनको दूहों के बीच में रखकर कथा-सूत्र ठीक कर दिया। आजकल अधिकांश प्रतियाँ इसी कुशललाभ की रचना की ही प्राप्त होती हैं। केवल दूहों के मूल-रूप की प्रतियाँ कहीं भूले-भटके ही मिलती हैं। इस प्राचीन मूल-रूप की पाँच प्रतियाँ हमें बीकानेर राज्य में प्राप्त हुईं। दोनों रूपों की कोई १७ प्रतियाँ एकत्र करके हमने अपना संपादन-कार्य आरंभ किया। इन प्रतियों की खोज में हमें जोधपुर, जयपुर, नागोर और बीकानेर राज्य के चूरू, सरदार शहर आदि भिन्न-भिन्न स्थानों की यात्राएँ करनी पड़ीं।

ढोला-मारूरा दूहा एक प्राचीन जनप्रिय लोक-गीत था। राजस्थान में इसका बहुत प्रचार था। यहाँ तक कि इसके नायक-नायिका ढोला और मारवणी के नाम साहित्य और बोलचाल में नायक नायिका के अर्थ में रूढ़ हो गए हैं। सिंध, गुजरात, मध्यभारत और मध्यप्रदेश के कतिपय भागों में इसकी कथा अभी अनेक भिन्न-भिन्न रूपों में प्रचलित मिलती है। राजस्थान

में यह इस समय भी ढोली-ढाढी आदि गाने का पेशा करनेवाली जातियों के मुँह से नाना विकृत रूपों में सुना जाता है। ये रूप यहाँ तक विकृत हो गए हैं कि लोग इसका नाम सुनकर नाक-भौं सिकोड़ने लगते हैं। जब हमने श्री गौरीशंकर हीराचंदजी ओझा से इसका सर्व-प्रथम जिक्र किया तो वे चौंके और कहने लगे कि क्यों इसके पीछे समय नष्ट करते हैं। ग्रंथ की कथा ज्ञात होने और वास्तविक बात मालूम होने पर उनका परितोष हुआ।

संपादन का कार्य हमने जितना समझा था उतना सहज न निकला। किसी प्रति में चार सौ, सवा चार सौ, से अधिक दूहे नहीं थे पर सबमें भिन्नता बहुत अधिक थी। समस्त प्रतियों के दूहों की कुल संख्या डेढ़-दो हजार से कम न निकली। हमने प्राचीन प्रतियों के आधार पर ६७४ दूहे चुन लिए और उन्हीं को मूलपाठ में सम्मिलित किया। इनमें भी कुछ दूहे ऐसे हैं जो प्राचीन नहीं ज्ञात होते पर काव्य-सौंदर्य की दृष्टि से स्वीकृत किए गए हैं। ऐसे दूहों को [ ] इस प्रकार के कोष्ठकों के भीतर रखा गया है। अन्यान्य दूहों को, तथा इस संबंध में प्राप्त समस्त सामग्री को, हमने परिशिष्ट में दे दिया है जिससे पाठकों को सब कुछ एकत्र ही प्राप्त हो जाय।

पाठांतर तैयार करने के कार्य में बहुत अधिक समय लगा। प्रत्येक दूहे में अनेक पाठांतर मिले। इस विषय में पर्याप्त सावधानी रखी गई है पर फिर भी कुछ प्रतियों के पाठांतर दृष्टि-दोष से, या प्रतिलिपि उतारते समय, बच गये हों तो कोई आश्चर्य नहीं। इस काम ने इतना समय लिया कि अंत में हमने कई-एक प्रतियों के, जो विशेष महत्त्व की नहीं थीं, केवल महत्त्वपूर्ण पाठांतर ही लिए। (थ) प्रति हमें बहुत बाद में मिली अतएव उसके भी पूरे पाठांतर हम नहीं दे सके।

इस ग्रंथ को तैयार करने में हमें अनेक दिशाओं से अनेक प्रकार की सहायता मिली और यहाँ पर हम अपने समस्त सहायकों के प्रति स-धन्यवाद हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं। राजपूत इतिहास के विश्वविश्रुत विद्वान् परम श्रद्धेय महामहोपाध्याय रायबहादुर गौरीशंकर हीराचंदजी ओझा, हिंदी के सुप्रसिद्ध विद्वान् और काशी के हिंदू-विश्वविद्यालय के हिंदी-विभाग के प्रधान रायबहादुर श्यामसुंदरदासजी बी० ए०, राजस्थानी साहित्य के विद्वान् जयपुर-निवासी पुरोहित हरिनारायणजी बी० ए०, विद्याभूषण, और राजस्थान के स्वनामधन्य उदारमना सेठ घनश्यामदासजी बिड़ला ने हमें प्रत्येक प्रकार से

उत्साहित किया। श्रीओझाजी ने बहुत कष्ट उठाकर संपूर्ण ग्रंथ को सुना और हमें कई उपयोगी और आवश्यक सूचनाएँ देकर अनुगृहीत किया। अपना अमूल्य समय देकर उन्होंने इतिहास-संबंधी बातों का विस्तृत स्पष्टीकरण लिखवा भेजा और मूल की अनेक कठिनाइयों को सुलझाने में हमारी सहायता की। पूर्व परिचय न होने पर भी इस प्रकार अत्यंत प्रेम-पूर्वक उन्होंने जो सहायता दी उसके लिये हम नहीं जानते कि किन शब्दों में उनका धन्यवाद करें। बाबू श्यामसुंदरदासजी ने अन्यान्य सहायताओं के साथ इस ग्रंथ के कुछ अंश के प्रूफ देखने का भी कष्ट उठाया। सेठ घनश्यामदासजी ने हमें सब प्रकार से प्रोत्साहित करने के साथ-साथ इस ग्रंथ में दिए गए तीन चित्रों का प्रकाशन-व्यय अपने ऊपर उठा लिया। इसके अतिरिक्त बिड़ला-परिवार ने ग्रंथ की दो सौ प्रतियाँ लेने का पहले ही वचन देकर इसके मुद्रण और प्रकाशन में बड़ी भारी सहायता की। हिंदी के प्रसिद्ध कवि श्रीयुत मैथिलीशरणजी गुप्त और राय कृष्णदासजी से भी हमें इस विषय में बहुत कुछ प्रोत्साहन मिला।

जोधपुर के सरदार-म्यूज़ियम के सुपरिंटेंडेंट, इतिहास के प्रसिद्ध विद्वान् श्री विश्वेश्वरनाथ रेउ तथा पं० रामकर्ण आसोपा ने इस ग्रंथ की अनेक प्राचीन प्रतियाँ प्राप्त करने में हमारी अमूल्य सहायता की। उनकी सहायता के बिना हमारा कार्य इतना सफलतापूर्वक सिद्ध न होता। बीकानेर के राँगड़ी-स्थित जैनों के बड़े उपासरे के श्रीपूजजी तथा अन्य प्रबंधकों ने वहाँ के पुस्तक-भंडार से कई प्रतियाँ उदारतापूर्वक हमें प्रदान कीं। श्रीयुत रामनरेशजी त्रिपाठी ने भी गुजराती की इस संबंध की एकाध छपी पुस्तक हमें भेजने की कृपा की।

ग्रंथ में जो तीन प्राचीन चित्र दिये गये हैं वे जोधपुर के सरदार-म्यूज़ियम में सुरक्षित चित्रमाला से लिये गये हैं। उन्हे ग्रंथ में देने की अनुमति प्रदान करने के लिये हम जोधपुर राज्य और उक्त म्यूज़ियम के प्रधान पदाधिकारी श्री विश्वेश्वरनाथजी रेउ के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा इस बृहत् ग्रंथ के प्रकाशन का भार यदि अपने ऊपर न ले लेती तो इस रूप में इसका प्रकाशित होना असंभव-सा था। अतः इसके लिये सभा के प्राण बाबू श्यामसुंदरदासजी, तथा (अब,

भूतपूर्व) प्रधान-मंत्री राय कृष्णदासजी एवं सभा का प्रबंध-मंडल, विशेष रूप से धन्यवाद के पात्र हैं।

अंत में हम अपने सुहृद्वर अजमेर-निवासी श्रीयुत लेफ्टिनेंट महेशचंद्र शर्मा एम० ए०, एल०-एल० बी० और जोधपुर के जसवंत कालेज के भूतपूर्व प्रोफेसर श्रीयुत् केदारनाथ तिवारी एम० ए०, एल-एल० बी० को धन्यवाद देना सबसे आवश्यक समझते हैं जिन्होंने बड़े प्रेम और निःस्वार्थ भाव से एक नहीं अनेक प्रकार से, हमारी सहायता की।

रामसिंह
सूर्यकरण
नरोत्तम दास

प्रवचन

(१)

'ढोला-मारूरा दूहा' राजस्थानी भाषा का एक प्रसिद्ध काव्य है। इस काव्य के दो रूप पाए जाते हैं—पहला केवल दोहों में है, जो प्राचीन है और दूसरा दोहे और चौपाइयों में है। संवत् १६०० के लगभग जेसलमेर में कुशललाभ नाम के एक जैन कवि थे। उनके समय में ढोला-मारू काव्य प्रसिद्ध था परंतु संभवतः वह अपने संपूर्ण रूप में नहीं मिलता था। जितना कुछ मिल सका उतना उन्होंने एकत्र किया और कथा-सूत्र मिलाने के लिये उसमें अपनी ओर से चौपाइयाँ बनाकर जोड़ दीं। इन चौपाइयों के अंत में उन्होंने लिखा है कि 'दूहा घणा पुराणा अछै'—अर्थात् दोहे बहुत पुराने हैं, अनुमानतः "घणा पुराणा" का अर्थ सौ वर्ष पुराना तो होगा ही। इस अनुमान पर असली काव्य का समय सं० १५०० विक्रमी के लगभग होगा। इसकी भाषा को देखने से भी प्रायः इसी अनुमान की पुष्टि होती है। अतः यह काव्य लगभग ५०० वर्ष पुराना तो अवश्य है। इसके संपादकों ने परिश्रम-पूर्वक इस काव्य के प्राचीन रूप—अर्थात् केवल दोहोंवाले रूप—का पता लगाकर उसका सुचारु रूप से संपादन किया है। दोहे-चौपाइयोंवाला रूप तो हस्त-लिखित प्रतियों में भी बहुत मिलता है परंतु केवल दोहोंवाला प्राचीन रूप अभी तक अप्राप्य-सा ही था।

यह काव्य भाषा एवं भाव दोनों की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण प्रतीत होता है। इसकी भाषा कृत्रिम डिंगळ (राजस्थानी) नहीं है जो साहित्य में प्रसिद्ध है। यह तत्कालीन बोलचाल की राजस्थानी भाषा में लिखा गया है। भाषा के इतिहास के अध्ययन के लिये काव्य उपयोगी सिद्ध होगा। कविता की दृष्टि से भी यह काव्य महत्त्वपूर्ण है। यह एक विचित्र (रोमैंटिक) प्रेम गाथा है और इसमें मानव-हृदय के कोमल मनोभावों एवं बाह्य प्रकृति के मनोहर चित्र अंकित किए गए हैं।

काव्य का नायक ऐतिहासिक व्यक्ति है परंतु घटनाओं एवं वर्णनों में कल्पना का बहुत बड़ा पुट है जो ऐसी रचनाओं में प्रायः स्वाभाविक है। काव्य का मूल-रूप तो प्राचीन है परन्तु बाद में समय-समय पर इसमें नए

दोहे भी मिलाए जाते रहे हैं। संपादकों ने प्रायः १६-१७ हस्तलिखित प्रतियाँ एकत्र कर इसका संपादन किया है और सं० १६६७ की लिखी एक प्रति तथा सं० १७२० के लगभग की लिखी दूसरी प्रति संपादन के आधारस्वरूप ग्रहण की है। नई मिलावट विशेषकर इस समय के बाद ही हुई है। इससे पूर्व जो मिलावट हुई है वह नगण्य है, फिर भी संपादकों ने सावधानी से काम लिया है।

इन्हीं संपादकों ने राजस्थानी भाषा के एक अन्य सुप्रसिद्ध काव्य पृथ्वीराज कृत 'क्रिसन-रुकमिणीरी वेलि' का उत्तम संपादन किया है जो प्रयाग की हिन्दुस्तानी-एकेडेमी से प्रकाशित हो रहा है। यह इनका दूसरा प्रयत्न है। इस ग्रंथ के साथ भी 'वेलि' की भांति विस्तृत भूमिका, अर्थ पाठांतर, शब्द-कोष एवं विस्तृत टिप्पणियाँ रहेंगी। ग्रंथ प्रकाशित होने पर राजस्थानी एवं हिंदी-साहित्य के लिये उपयोगी होगा, इसमें संदेह नहीं। इसका प्रकाशन किसी भी प्रकाशन संस्था के लिये गौरव की बात होगी। मैं इस काव्य को शीघ्र ही प्रकाशित रूप में देखना चाहता हूँ।

गौरीशंकर हीराचंद ओझा
ता० १३—७—३१

———

(२)

ढोला-मारूरा दूहा नामक राजस्थानी भाषा के इस काव्य का प्रवचन लिखते हुए मुझे बड़ा हर्ष होता है। राजस्थानी भाषा का प्राचीन साहित्य भंडार बहुत विस्तृत है जिसमें अनेक अमूल्य रत्न भरे पड़े हैं। परंतु अभी तक वे अज्ञान के अंधकारपूर्ण गहरे गर्त्त में ही छिपे हैं, उनको प्रकाश में लाने के लिये कोई प्रयत्न नहीं हुआ। राजस्थान के विद्वानों और धन-कुबेरों के लिये यह कोई गौरव की बात नहीं है।

यह ढोला-मारू-काव्य भी राजस्थानी साहित्य का एक श्रेष्ठ रत्न है। इसकी मनोमुग्धकारिणी कहानी का संबंध आँबेर के आख्यानों तथा वीर कछवाहा राजवंश से लोक में प्रकट है। ढूँढाहड़ देश की कहानियों तथा

बातों के साहित्य में राजकुमार ढोला और रूपराशि राजकुमारी मारुवणी की सुंदर कहानी का स्थान बहुत ऊँचा है। उसका प्रचार यहाँ तक है कि बाजार में पोथी-बेचनेवालों के पास भी ढोला-मारू की बात अथवा ढोला-मारू का ख्याल नाम की छोटी-छोटी पुस्तकें हम देखते हैं। वह मोहिनी कथा कितने ही लालों को पलने में हुलराने और उनके कमल-नयनों में सर्वेंद्रिय दुःख-हारिणी सुखनिँदिया को बुलाने में जादू का सा कार्य करती रही है। मैं अपनी ही कहूँ कि न जाने कितनी रातों में अपनी पूज्य मातुश्री तथा अपने प्रिय कहानी कहनेवाले ब्राह्मण गंगाबख्श से राज-रानी की इस सुमधुर कहानी को चाव के साथ सुनकर मैंने इसका पीयूष-पान किया है और इसके कई अंश तो अभी तक मेरे स्मृति-पटल पर खचित हैं। चारणों और भाटों ने इस कहानी को नाना रूप देने में अपनी बुद्धि और चतुराई का खूब उपयोग किया है और इसके कथानकों एवं वृत्तांतों को चित्रांकित करने में अगणित चित्रकारों ने अपने कौशल का प्रदर्शन किया है। इसको यदि राजस्थान के सर्वोत्तम जातीय काव्यों में से एक कहा जाय तो कोई असंगति नहीं।

इतिहास की कसौटी पर कसे जाने से इसकी कांति में कुछ भी न्यूनता नहीं आने की। वास्तविक वृत्त एवं तिथि आदि के भेद से इसके अमरत्व और गौरव को कोई बाधा नहीं पहुँच सकती। अवश्य ही ढूँढाहड़ राज्य के मूल संस्थापक के साथ इस कहानी का उतना संबंध नहीं। सोढ़देवजी के पुत्र दूलहरायजी अपने पिता की गद्दी पर मि० माघ सुदि ६ संवत् १०६३ को* विराजे थे और उनका स्वर्गवास खोह स्थान में मि० मार्गशीर्ष सुदी ३ सं० १०९३ को हुआ था जब वे ग्वालियर पर आक्रमण करनेवाले दक्षिण के राजाओं को पराजित कर लौट रहे थे। महामति टाड साहब ने भाटों से जिस रूप में इस कहानी को सुना उसी रूप में लिख दिया। इतने पर भी यह कहानी अपनी उत्तमता के कारण राजस्थानी साहित्य-भंडार में एक निराला महत्त्व रखती है और कृतविद्य अथच कार्यकुशल और परिश्रमी संपादक-त्रय के हाथों में पड़कर इसे वह सुंदर रूप मिला है कि जिससे इसकी शोभा में द्विगुणित श्रीवृद्धि हुई है।

---

* संपादकों की सम्मति में भी ढोला और दूलहराय एक ही व्यक्ति नहीं जैसा कि टाड ने लिखा है। परंतु, जैसी कि श्री ओझाजी की सम्मति है, दूलहराय का समय ग्यारहवीं शताब्दी न होकर तेरहवीं शताब्दी है तथा ढोला दूलहराय का पूर्वज था और दसवीं शताब्दी के लगभग हुआ है।—संपादक।

राजस्थान के पुस्तक-भंडारों में अभी बहुसंख्यक अमूल्य ग्रंथरत्न पड़े हैं जो कीड़ों के आहार बने जा रहे हैं। उनका अविलंब प्रकाशित होना नितांत आवश्यक है जिससे उनका योगक्षेम हो सके। इस ग्रंथरत्न को इस सुसंपादित रूप में प्रकाशित करने के लिए विद्वान् संपादक तथा नागरीप्रचारिणी सभा के प्रबंधक हार्दिक अभिनंदन के पात्र हैं।

जयपुर
ता० २०-३-३१

पुरोहित हरिनारायण शर्मा
(बी० ए०, विद्याभूषण)

---

(३)

राजपूताना अपने पराक्रमी वीरों और साहसिक एवं कुशल व्यापारियों के लिये वैसे तो काफी प्रसिद्ध है, किंतु यह कम लोग जानते हैं कि राजपूताने ने कविता और कला की भी काफी सेवा की है। राजपूत सभ्यता भी एक निराली चीज है; यहाँ तक कि आज भी अन्य प्रांतीय नरेश राजपूत सभ्यता का अनुकरण करने में अपना गौरव समझते हैं। चित्रकला में राजपूताने का स्थान किसी समय बहुत ऊँचा था और राजपूत नरेशों के दरबारी कवियों ने कविता में भी काफी नाम कमाया था। इस समय राजपूत-चित्रकला तो अजायबघरों या कद्रदान शौकीनों के संग्रहों तक ही परिसीमित है, किंतु राजस्थानी कविता का तो इससे भी बुरा हाल है। संतोष इतना ही है कि पुरानी पूँजी नष्ट नहीं हुई है। राजपूताने के पुस्तकालयों एवं भाट चारणों के कंठों में, यह कला आज भी मौजूद है। बात यह है कि कला मर नहीं गई है, जिन्दा है सही; मगर नींद में है। इसे जगा देना राजस्थानी सपूतों का काम है; ठाकुर रामसिंहजी, पंडित सूर्यकरणजी पारीक और पंडित नरोत्तमदासजी स्वामी ने इस सोती हुई कला को जगाने का बीड़ा उठाया है। **किसन-रुकमिणीरी वेलि** का उद्धार तो हो चुका; राजस्थान का एक अमूल्य रत्न तो संसार के सामने आ गया। 'ढोला-मारूरा दूहा' के उद्धार का यह प्रयत्न इनका द्वितीय प्रयास है। पाठकों को इसमें पर्याप्त रस मिलेगा। मारवाड़ी चित्त को चाहे इसमें विशेष नवीनता भले ही प्रतीत न हो, किन्तु मीठी चीज

बराबर खाने पर भी मीठी ही लगती है। इस न्याय से मरुजन इसके रसपान से अघा जायँगे, ऐसा भय नहीं है। यदि यह कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी कि यह पहली पुस्तक होगी जिसमें राजस्थान की आत्मा का हूबहू चित्र पाया जाता है।

इसका जो प्रसंग मुझे सबसे अधिक पसंद आया और जिसकी ओर मैं पाठकों का ध्यान आकर्षित करूँगा, वह है इसमें किया हुआ मरुभूमि का वर्णन। वह कितना स्वाभाविक एवं कितना सच्चा है! पाँच सौ साल पहले का किया हुआ वर्णन ऐसा मालूम होता है मानो आज का ही हो।

माळवणी (मालवे की) और मारवणी (मारवाड़ की) दोनों ढोला की स्त्रियाँ थीं। दोनों एक दूसरे के प्रति की, विनोद में, निंदा करती हैं। माळवणी कहती है—

> बाबा, म देइस मारुवाँ सूधा एवाळाँह।
> कंधि कुहाड़उ, सिरि घड़उ, वासउ मंझि थळाँह॥६५८॥
> बाबा, म देसइ मारुवाँ, वर कूँआरि रहेसि।
> हाथि कचोळउ, सिरि घड़उ, सींचंती य मरेसि॥६५९॥
> मारू, थांकइ देसड़इ एक न भाजइ रिड्डु।
> ऊचाळउ क अवरसणउ, कइ फाकउ, कइ तिड्डु॥६६०॥
> जिण भुइ पन्नग पीयणा, कयर-कँटाळा रूंख।
> आके-फोगे छाँहड़ी, हूँछाँ भाजइ भूख॥६६१॥

अनुवाद—हे बाबा, मुझे मारवाड़ियों के यहाँ मत ब्याहना, जो सीधे-सादे पशु चरानेवाले होते हैं। वहाँ कंधे पर कुल्हाड़ा और सिर पर घड़ा रखना होगा और जंगल में वास करना होगा।

हे बाबा, मुझे मारवाड़ियों के यहाँ मत देना, चाहे मैं कुँवारी ही रह जाऊँ। वहाँ दिन भर हाथ में कटोरा और सिर पर घड़ा—इस प्रकार पानी भरती-भरती ही मर जाऊँगी।

हे मारवणी; तुम्हारे मारवाड़ देश में एक भी कष्ट दूर नहीं होता; या तो ऊचाळा (अकाल में परदेस-गमन) या वर्षा या फाका या टिड्डियाँ, कोई-न-कोई उपद्रव अवश्य रहता है।

मारवाड़ की भूमि में पीनेवाले (पैंणे) साँप रहते हैं, कैर (करील) और ऊँटकटारा (एक झाड़ी-विशेष) ही पेड़ों की गिनती में आते हैं, आक

और फोग की ही छाया मिलती है और भुरट घास के दानों से पेट भरना पड़ता है।

मारवणी चुपचाप सुन लेती है, किंतु माळवणी फिर ताना मारती है—

पहिरण-ओढण कंबळा, साठे पुरिसे नीर।
आपण लोक उभाँखरा, गाडर-छाळा खीर ॥६६२॥
बाळउँ, बाबा, देसड़उ पाँणी जिहाँ कुवाँह।
आधीरात कुहक्कड़ा, ज्यउँ माणसाँ मुवाँह ॥६५५॥

अनुवाद—जहाँ पहनने और ओढ़ने को मोटे ऊनी कंबल ही मिलते हैं, जहाँ पानी साठ पुरुष गहरा होता है, लोग भी जहाँ एक जगह नहीं टिकते और जहाँ बकरी और भेड़ का ही दूध मिलता है, ऐसा तुम्हारा मारवाड़ देश है।

हे बाबा, ऐसे देश को जला दूँ जहाँ पानी केवल गहरे कुओं में ही मिलता है, जहाँ कुँओं पर पानी निकालनेवाले आधीरात को ही पुकारने लगते हैं, जैसे मनुष्यों के मरने पर पुकारा करते हैं।

अबकी बार मारवणी तुर्की-ब-तुर्की फटकार बताती है और कहती है—

बाळूँ, बाबा, देसड़उ, जहाँ पाँणी सेवार।
ना पणिहारी झूलरउ, ना कूवइ लैकार ॥६६४॥
दुख-वीसारण, मनहरण, जउ ई नाद न हुंति।
हियड़उ रतन-तळाव ज्यउँ फूटी दह दिसि जंति ॥१६३॥

अनुवाद—बाबा, उस देश को जला दूँ जहाँ पानी पर सेवार छाई रहती है, जहाँ न तो पनिहारिनों का झुंड आता-जाता रहता है और न कुँओं पर पानी निकालनेवालों का लयपूर्ण शब्द ही सुनाई देता है।

दुःख को विस्मरण करानेवाला और मन को हरनेवाला यदि यह संगीत न होता तो हृदय रत्न-सरोवर की तरह फूटकर दशों दिशाओं में बह जाता।

सच है, कुएँ पर मालियों के 'बारे' की ध्वनि की अन्य प्रांत के लोग चाहे कद्र न करें और "आधीरात कुहकड़ा" को "ज्यउँ माणसाँ मुवाँह" की उपमा देते रहें परंतु मारवाड़ी चित्त का तो यह आज भी "दुख-वीसारण मनहरण" नाद है।

कौन ऐसा मारवाड़ी है जो मस्त होकर नीचे लिखे दोहे न गाता हो—

बाजरियाँ हरियाळियाँ, बिचि बिचि बेलाँ फूल।
जउ भरि बूठउ भाद्रवउ, मारू देस अमूल ॥२५०॥

देस सुहावउ, जळ सजळ, मीठा-बोला लोइ ।
मारू-कौमण भुइँ दखिण, जइ हरि दियइ त होइ ॥४८५॥

थळ भूरा, वन झंखरा, नहीं सु चंपउ जाइ ।
गुणे सुगंधी मारवी, महकी सहु वणराइ ॥४६८॥

अनुवाद—वाजरियाँ हरी हो गई हैं और बीच-बीच में बेलें फूल रही हैं। यदि भादों भर बरसता रहा तो मारू देश अमूल्य (निराली शोभावाला) होगा।

मरुस्थल बड़ा सुहावना देश है, जहाँ का जल स्वास्थ्यप्रद है और लोग मधुरभाषी हैं। ऐसे मारू देश की कामिनी दक्षिण देश में यदि भगवान् ही दें तो मिल सकती है।

भूमि (बालुकामयी होने से) भूरी है, वन झंखाड़ हैं। वहाँ चंपा उत्पन्न नहीं होता। मारवणी के गुणों की सुगंधि से ही सारा वनखंड महक उठा है।

ऐसे मरुदेश को मेरा शतशः प्रणाम।

घनश्यामदास बिड़ला

प्रस्तावना

पूर्वार्ध—ऐतिहासिक विवेचन और साहित्यिक आलोचना

(१) प्राक्कथन

प्रत्येक जाति के प्रारंभिक इतिहास में गीत-काव्य, प्रेम-गाथाएँ, दंतकथाएँ और कल्पित आख्यायिकाएँ विशेष रूप से प्रतिष्ठित, प्रख्यात और लोकप्रिय पाई जाती हैं। उनमें एक प्रकार की अनिर्वचनीय सरलता, चमत्कार, रस-सौष्ठव और रुचिग्राहक-शक्ति रहती है, जो अर्वाचीन काल के कला-परिपुष्ट साहित्य में मिलनी दुर्लभ है। प्राचीन काल के गीतों और गाथाओं में यद्यपि शब्दों और भावों की वह बुद्धिसंगत जोड़-तोड़, वर्णन-शैली का वह प्रगल्भ पांडित्य और अलंकार-शास्त्र की वह विचित्र और सूक्ष्म छानबीन आदि नहीं पाये जाते, जो उत्तर काल के महाकाव्यों, नाटकों और कहानियों में पाये जाते हैं, फिर भी इनके बदले उनमें एक अद्वितीय सरलता, सादगी, निश्छलता और मानव-जीवन के आदिम भावों और मनोवृत्तियों का दिग्दर्शन मिलता है।

गीत-काव्यों की प्राचीन लोकप्रियता की ओर जब ध्यान जाता है तब यह धारणा होने लगती है कि जातीय संस्कृति-निर्माण में इनका बहुत हाथ रहा है। इन प्राचीन गाथाओं ने हमारे उत्तरकालीन जातीय चरित्र का निर्माण करने में बहुत सहायता दी है। गीतों के प्रसिद्ध वीरों को हम श्रद्धा और भक्ति की दृष्टि से देखते हैं और उनके कार्यों को स्मरण कर करके हमारे हृदय में जातीय भावना की ज्योति स्फुरित होती है। अतएव जातीयता की दृष्टि से इनका बड़ा महत्व है।

मानव-समाज ने कृत्रिम सभ्यता की चमक से चकाचौंध होकर अंतस्तल की बहुत सी सरल और निष्कपट ईश्वरीय विभूतियों का विस्मरण सा कर दिया है। यही नहीं, उसने हृदय की सरल उद्भावना को 'ग्रामीणता' के दूषण से लांछित करके परित्याज्य समझ लिया है। हृदय के सच्चे भावों को सहज स्वाभाविकता के साथ प्रकट करना बहुधा काव्य-सम्मत नहीं समझा जाता; अच्छी कविता तब तक नहीं बनी समझी जाती जब तक अलंकार

और रीतिशास्त्र के जटिल बंधनों में जकड़कर अंतःकरण के स्वच्छंद और सरल भावों को बुद्धिसंगत, ऊहा-समन्वित, कृत्रिम और अलंकृत वेश में प्रकट नहीं किया जाता। प्रकृति के सरल सौंदर्य को रत्नों और सुवर्ण से निर्मित निर्जीव आभूषणों से लदे हुए रूप में जब तक हम देख नहीं पाते तब तक हमारी कृत्रिम भावनाएँ रीझतीं नहीं। मनुष्य ने दुर्भाग्यवश अपने जीवन को इतना बनावटी बना लिया है कि क्या वस्तु, क्या पदार्थ, क्या भावनाएँ और क्या विचार, सभी में कृत्रिमता की प्रतिभा देखकर ही उसे तृप्ति होती है।

मानव-जीवन की सहचारिणी कविता के उद्‌गम-स्थल की ओर जब हम दृष्टिपात करते हैं, और पीछे से उसके विकास और समृद्धि के इतिहास सूत्र को लेकर आधुनिक काल में उसके परिवर्त्तित स्वरूप की तुलना करते हैं, तो हमको आकाश-पाताल का अंतर प्रतीत होने लगता है। इस महान् परिवर्त्तन को देखकर मन खिन्न हो जाता है। कविता की उत्पत्ति अनादि काल से है और उसने ईश्वरीय प्रतिभा की झलक के रूप में मनुष्य के हृदय में जन्म लिया था। उसने मानव-जीवन में एक विचित्र आलोक, सुखद संवेदना, व्यापक सहानुभूति, एकता और प्रेम के ऐक्य-सूत्र के रूप में विकास पाया था। जब तक उसका वह सरल मधुर निष्कपट रूप बना रहा तब तक उसने मानव जीवन का बड़ा उपकार किया। विषय वेदनाओं और जटिल आध्यात्मिक आपत्तियों के निवारण करने में उसने मनुष्य को अमृत संजीविनी का काम दिया। परंतु ज्यों ज्यों मनुष्य जटिल जगत् की दुर्भेद्य माया के जाल में फँसता गया, ज्यों-ज्यों वह सरलता को छोड़कर कृत्रिमता की आराधना करने लगा और अंतःकरण के सरल संस्कारों को तिलांजलि देने लगा, त्यों-त्यों उसे कविता देवी के प्राकृतिक, सुंदर, सरल और सौम्य रूप के प्रति उदासीनता होने लगी। समयांतर में उसी कृत्रिम और जटिलता-प्रिय बुद्धि ने व्याकरण, रीति, अलंकार और छंद शास्त्र के बंधनों में जकड़कर कविता का एक ऐसा रूप प्रकट किया जिसने काव्य को बहुरूपिए का एक स्वाँग सा बना डाला। इसी स्वाँग को सच्ची कविता और उत्तम काव्य समझकर मनुष्य संतुष्ट और प्रसन्न रहने लगा।

निष्पाप क्रौंच-मिथुन को शरद् ऋतु के निर्मल आकाश में आनंद-पूर्वक विहार करते हुए देखकर क्रूर-हृदय निषाद ने बाण मार ही तो दिया। आहत प्रेमी के वियोग में विरही पक्षी ने जो करुण-क्रंदन किया उसके प्रबल आघात ने

कवि की मूक हृत्तन्त्री को झंकृत कर दिया। रुका हुआ काव्य-प्रवाह प्रबल वेग के साथ सारे प्रतिबंधों को तोड़कर अविच्छिन्न रूप से चल पड़ा। वेदना और अभिशाप की तरल तरंगें दशों दिशाओं में गूँज उठीं और क्षितिज के अदृश्य किनारों पर टकराकर प्रतिध्वनित होने लगीं। आदि-कवि वाल्मीकि की संवेदनात्मक अंतःकरण की पुकार ने जिस दिन जन्म लिया उसी दिन कविता का प्रथम प्रभातोदय हुआ—

मा, निषाद, प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौंच-मिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥

कविता का वह प्रथम उद्रेक सरल था, स्वाभाविक था, निष्कपट था, कृत्रिम अलंकरणों के निर्जीव भार से निर्मुक्त था; रीति के जटिल बंधनों से रहित था; छंद था, परंतु स्वच्छंद। हृदय के रंग में वह रँगा हुआ था। वह कविता थी और आज भी कविता होती है। अंतर क्या है? दुःख की वह मर्मभेदी कहानी कौन कहेगा?

उपर्युक्त विवेचन से हमारा आशय काव्य के कल्पनात्मक और प्राकृतिक भेदों के भिन्न भिन्न स्वरूपों को बतलाने का है। कल्पनात्मक साहित्य ने भारत में बड़ी उन्नति की है, यह तो सभी जानते हैं। संस्कृत-साहित्य में महाकवि भास, शूद्रक, कालिदास, भारवि, बाण, भवभूति, श्रीहर्ष आदि ने काव्य, नाटक गद्य, आख्यायिका आदि साहित्य को कलात्मक उन्नति की पराकाष्ठा तक पहुँचा दिया। यही हाल प्राकृत और अपभ्रंश साहित्यों का भी रहा। इधर वर्तमानकाल में भारतीय भाषाओं ने भी कलात्मक दृष्टि से खूब साहित्य-सृष्टि की है। बँगला, गुजराती, मराठी और हिंदी भाषाओं में काव्यकला की दृष्टि से उत्तम साहित्य भरा पड़ा है। बिहारी, भूषण, मतिराम, केशव प्रभृति कवि कलात्मक कविता के बड़े आचार्य हो गए हैं। परन्तु इन बहुमूल्य जगमगाते हुए रत्नों के होते हुए सभी भाषाओं ने अपने प्राचीन सरल लोक-साहित्य को उपेक्षा की दृष्टि से ही देखा है। यह स्वाभाविक भी था। मानव-कौशल द्वारा निर्मित सुंदर से सुंदर चित्र-विचित्र पुष्पों, वृक्षों और फलों से लदी हुई वाटिकाओं के होते हुए भला शिष्ट-समाज जंगल के सरल और कंटकित परन्तु सरस और सुगंधित वन्य कुसुमों की सुवास लेने को क्यों जाने लगा? यही कारण हुआ कि एक समय में सारे देश की जनरुचि और काव्य-भावनाओं को आकर्षित करनेवाला गीत-गाथा और दोहामय लोक-साहित्य

आधुनिक काल की कलात्मक चमचमाहट के आगे लुप्तप्राय हो गया। इससे देश, जाति और साहित्य की बड़ी हानि हुई।

हमारे सौभाग्य से साहित्य में अब क्रांति का युग उपस्थित हो रहा है। नवीन दृष्टिगोचर भावनाएँ, नवीन जागृति और नवीन स्फूर्ति चारों ओर हो रही हैं। संसार भर में क्रांति का एक चक्र चल पड़ा है जिसका मूल-मंत्र Back to nature प्रकृति की ओर लौटने, प्रकृति का पुनः परिशीलन करने के लिये प्रबल प्रेरणा कर रहा है। पाश्चात्य देशों ने इस क्रांति का सबसे पहले लाभ उठाया है। वे अपने प्राचीन साहित्य के पुनरुद्धार में कटिबद्ध होकर लग गए हैं और अब तक इस ओर प्रशंसनीय कार्य कर चुके हैं। भारतीय भाषाओं के द्वार पर भी यह लहर टकरा चुकी है। बँगला, गुजराती और मराठी ने अपने प्राचीन साहित्य की बहुत कुछ खोज कर ली है। परन्तु हिंदी की नींद अभी तक पूर्ण रूप से खुली नहीं। उसे खुमारी में अब भी नखशिख, नायिकाभेद, षट्ऋतु-वर्णन, अलंकार, रस, छंद की स्मृति बनी हुई है। परंतु शुभ लक्षण दिखाई दे रहे हैं। इधर कुछ वर्षों से हिंदी ने भी अपने प्राचीन साहित्य की ओर दृष्टिपात करना आरंभ कर दिया है।

प्रस्तुत ग्रंथ कोई लब्धप्रतिष्ठ काव्य अथवा महाकाव्य नहीं है। इसमें साहित्यिक कला की जाज्वल्यमान चमत्कृति नहीं है और न प्रबंध का शास्त्र-विहित निर्वाह है। इसके विपरीत यह एक सीधी-सादी दोहामय कहानी है, जिसमें मानव-हृदय की सरल और स्वाभाविक भावनाओं को प्राकृतिक रंगों में रँगकर प्रकट किया गया है। यह एक ऐसा वन्यकुसुम है जो अब तक विशाल कानन की शांतिपूर्ण शून्यता में स्वतंत्रतापूर्वक आत्मानंद में लीन था। इसे यह कभी आशंका न रही होगी कि इस प्रकार उसके स्वतंत्र जीवन को बंदी बनाकर कुछ पढ़े-लिखे लोग सदा के लिये उसकी स्वच्छंदता को छीन लेंगे।

भारतवर्षमें राजस्थानी भाषा का साहित्य इस प्रकार के प्राचीन लोक-गीतों और गाथा-काव्यों से परिपूर्ण है। कुछ लोगों का कथन है कि राजस्थान देश की प्राकृतिक परिस्थिति और राजस्थानी जनता की स्वाभाविक उग्रता और रूखेपन के अनुरूप ही राजस्थानी भाषा का साहित्य भी रूखा, उग्र, उद्दंड एवं वीररस-प्रधान है और उसमें हृदय के कोमल, कांत एवं स्निग्ध भावों को व्यक्त करनेके लिये न तो उपयुक्त शब्दावली है और न भाव-प्रदर्शन की योग्यता ही। यह एक बड़ा भारी अभियोग है। पर इसके लिये हम आलोचकों को

सर्वथा दोषी नहीं ठहरा सकते। कारण, अब तक जो कुछ थोड़ा सा राजस्थानी का साहित्य प्रकाशित हुआ है, उसमें पाठकों को अधिकांश में तलवारों की चमचमाहट, वीर हृदयों का सामरिक उत्साह, राजपूत-प्रण-प्रतिज्ञा की दृढ़ता अथवा किसी विकट युद्ध को दिल को दहलानेवाली भयंकरता का ही वर्णन मिलता है। परंतु हमारा कथन यह है कि राजस्थानी का साहित्य यहीं समाप्त नहीं हो जाता।

राजस्थान की पुण्यभूमि प्राचीन काल में भारत के अतीत गौरव, पुण्यशील कीर्ति और शिखरारूढ़ सभ्यता का महत्त्वपूर्ण केंद्र और स्तंभ रही है। कोई भी विचारशील पुरुष निष्पक्ष सत्यता के साथ यह नहीं कह सकता कि भारत के इतिहास में अग्रणी रहनेवाली इस भूमि का साहित्य भी उतना ही महत्त्वपूर्ण सर्वांग-संपूर्ण, उतना ही उज्ज्वज, आदर्शमय एवं उतना ही पथप्रदर्शक नहीं रहा होगा। परंतु यह सब होते हुए भी सत्य को प्रकाशित करने के लिये प्रमाणों की आवश्यकता होती है। दुःख तो इस बात का है कि विद्वानों ने राजस्थान के साहित्य को अब तक उपेक्षा की दृष्टि से देखा है। यही कारण है कि राजस्थानी साहित्य-भांडार के उत्तमोत्तम रत्नों से परिपूर्ण होते हुए भी उनकी झलक सूर्य के प्रकाश में बाह्य जगत् को अब तक नहीं मिली। कुछ एक संस्थाओं, यथा काशी की नागरीप्रचारिणी सभा और कलकत्ता की बंगाल एशियाटिक सासाइटी, तथा कुछ विद्वानों, यथा महामहोपाध्याय श्री गौरीशंकर हीराचंद ओझा, डाक्टर टैसीटरी, पंडित रामकर्ण, मुंशी देवीप्रसाद आदि, का हमको बड़ा उपकार मानना चाहिए, जिन्होंने अनवरत परिश्रमपूर्वक खोज करके सर्व-प्रथम साहित्यिक जगत् को यह महत्त्वपूर्ण सूचना दी कि इस भाषा में भी बहुमूल्य साहित्य-भांडार भरा पड़ा है। अब यदि आवश्यकता है तो उन परिश्रमशील अन्वेषकों की, जिनके हृदय में राजस्थान के पूर्व-गौरव के प्रति अक्षुण्ण श्रद्धा हो और जो दृढ़प्रतिज्ञ महाराणा प्रताप और बाप्पा रावल चक्रवर्ती दिल्लीपति महाराजा पृथ्वीराज., महाकवि राठोड़ महाराज पृथ्वीराज, वीरश्रेष्ठ दुर्गादास, साहित्यरथी महाराजा जसवंतसिंह एवं सवाई जयसिंह और भक्तशिरोमणि मीराँबाई एवं कविश्रेष्ठ चंदबरदाई के उज्जवल यश और कृतियों को सुरक्षित रखनेका उद्योग करें।

इस बात को हिंदी के सभी ज्ञाता एवं विद्वान् जानते हैं कि राजस्थानी और हिंदी का चोली-दामन का साथ है। वास्तव में देखा जाय तो हिंदी का अधिकांश प्राचीन साहित्य अपने राजस्थानी रूप में प्रकट हुआ है। हिंदी

साहित्य के इतिहास-निर्माण में राजस्थानी का बड़ा महत्त्वपूर्ण हाथ रहा है। चंद-बरदाई हिंदी का आदि कवि रहा है और वही राजस्थानी का एक श्रेष्ठ कवि भी। मीराँबाई स्त्री-कवियों में हिंदी की श्रेष्ठ कवयित्री समझी जाती हैं और वही राजस्थानी काव्य की भी आत्मा हैं। इस नाते से राजस्थानी हिंदी की बड़ी बहिन हुई। अतएव राजस्थानी साहित्य का जितना उद्धार होगा, हिंदी साहित्य की समृद्धि भी उतनी ही बढ़ेगी। हमारी तो यह धारणा है कि हिंदी-साहित्य यदि त्रिवेणी का सुखद और महत्वपूर्ण संगम है, तो राजस्थानी उसकी एक शाखा यमुना है और अवधी उसकी दूसरी शाखा सरस्वती। इन दोनों के बीच व्रजभाषा-रूपी गंगा की पावन तरंगिणी अपने सरस काव्य-प्रवाह को लिए हुए उत्तर भारत के रसिक-समुदाय को आह्लादित करती हुई अनर्गल बह रही है। जब तक हिंदी हिंदी है, तब तक इनका साथ छूट नहीं सकता।

हिंदी भाषा के आदिकाल की ओर दृष्टि डालने पर पता लगता है कि हिंदी के वर्त्तमान स्वरूप-निर्माण के पूर्व गाथा और दोहा साहित्य का उत्तर भारत की प्रायः सभी देशभाषाओं में प्रचार था। उस समय की राजस्थानी और हिंदी में इतना रूप-भेद नहीं हो गया था जितना आजकल है। यदि यह कहा जाय कि वे एक ही थीं, तो अत्युक्ति न होगी। उदाहरणों द्वारा यह कथन प्रमाणित किया जा सकता है।

(२) ढोला-मारूरा दूहा काव्य का परिचय

ढोला-मारूरा दूहा राजस्थान का एक बहुत प्रसिद्ध प्राचीन काव्य है। यह एक दूहा-बद्ध प्रेमगाथा है जो राजस्थान में बहुत लोकप्रिय रही है। मानव-हृदय के कोमल मनोभावों तथा बाह्य प्रकृति के बड़े ही मनोहर चित्र इसमें अंकित किए गए हैं। प्रेम-गाथा होने पर भी इसका श्रृंगार-वर्णन बहुत ही मर्यादा-पूर्ण है। इसके विषय में, राजस्थान में, यह दोहा बहुत प्रसिद्ध है—

सोरठियो दूहो भलो, भलि मरवणरी बात।
जोबन-छाई धण भली ताराँ - छाई रात॥

[दोहों में सोरठिया दोहा (सोरठा) अच्छा है, वार्ताओं में ढोला-मारवणी की वार्ता अच्छी है, यौवन से छाई हुई स्त्री अच्छी होती है और तारों से छाई हुई रात अच्छी होती है।]

यह काव्य राजस्थान का जातीय काव्य कहा जा सकता है। राजस्थानी भाव-भावनाएँ इसकी आत्मा में ओत-प्रोत हैं। जनता में इसका खूब प्रचार रहा है। राजस्थान में शायद ही कोई दूसरा लोक-गीत इतना लोक-प्रिय रहा हो। शायद ही राजस्थान का कोई पुस्तक-भंडार ऐसा होगा जिसमें इसकी एकाध प्रति न पाई जाय। इसके दूहे शताब्दियों पर्यंत राजस्थानी जनता की जिह्वा पर रहे हैं और आज भी अनेकों मनुष्यों को वे याद हैं। इस काव्य की घटनाओं को लेकर अनेकों चित्र और चित्र-मालाएँ बनाई गई हैं*। राजस्थानी घरों पर आज भी ऊँट पर जाते हुए ढोला-मारवणी के चित्र अंकित मिलेंगे। महामहोपाध्याय गौरीशंकर हीराचंद ओझा सूचित करते हैं कि उन्होंने अपनी ऐतिहासिक यात्रा में अलवर राज्य के किसी ग्राम में ढोला-मारू की मूर्त्तियाँ भी देखी थीं जो कम से कम दो सौ वर्ष की पुरानी होंगी।

इस काव्य में ढोला और मारवणी की प्रेम-कथा का वर्णन है। यह ढोला कछवाहा वंश के राजा नळ का पुत्र था। इसका समय विक्रमी संवत् १००० के लगभग है। मारवणी पूगळ के राजा पिंगळ की कन्या थी। दोनों का विवाह ऐतिहासिक घटना है। राजस्थान के प्रसिद्ध इतिहास-लेखक मुँहणोत नैणसी की ख्यात में ढोला के मारवणी और माळवणी नामक दो स्त्रियों के होने का उल्लेख है।

ढोला-मारवणी की कथा आज भी राजस्थान और मध्यभारत के विभिन्न भागों में विभिन्न रूपों में प्रचलित है। लोगों की जिह्वा पर रहते-रहते इस कथा में बहुत-कुछ परिवर्त्तन हो चुका है और इसके अनेक विकृत रूप बन गए है। यहाँ तक कि, जैसा श्रद्धेय ओझाजी हमें सूचित करते हैं, अजमेर में होली के दिनों में ढोला-मारू की एक सवारी निकलती है जिसमें औरत पुरुष को जूतों से मारती है।

ढोला-मारू काव्य एक लोक-गीत (Ballad) है। यह आरंभ से लोक-प्रिय और लोगों की जिह्वा पर रहा है। ऐसे जन-प्रिय लोक-गीतों की जो हालत होती है वही इसकी भी हुई। समय समय पर इसमें अनेक परिवर्त्तन और परिवर्धन हुए। नए दूहे और नई घटनाएँ समय समय पर जुड़ती गईं।

---

* ऐसी एक चित्रमाला, जिसमें इस कथा की विविध घटनाओं पर कोई १२१ चित्र हैं, जोधपुर के सरदार-म्यूजियम में विद्यमान है। उसके तीन चित्र इस ग्रंथ के साथ दिए गए हैं।

और पुराने दूहे और पुरानी घटनाएँ कभी-कभी लुप्त भी होती गईं। आरंभ में यह किसी एक लेखक की—संभवतः ढोली-ढाढी जाति के किसी व्यक्ति की—रचना रही हो यह संभव है परंतु इसके वर्त्तमान रूप का निर्माता तो कोई एक कवि न होकर समस्त जनता ही है।

आरंभ में यह कृति दूहा छंद में लिखी गई थी, जो अपभ्रंश के जमाने से जनता का सबसे प्यारा छंद रहा है। इसका लेखक कौन था और यह कब लिखी गई इसके विषय में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता। ढोला का समय संवत् १००० के आसपास है और यही इसके रचना-काल की ऊपरी सीमा है*।

धीरे धीरे दूहे छिन्न-भिन्न होने लगे और उनका कथा-सूत्र टूट गया पर कथा लोगों को अब भी ज्ञात थी, यद्यपि उसमें भी बहुत कुछ परिवर्त्तन हो चुका था। जेसळमेर के रावळ हरिराज ने अपने समय में प्राप्य दूहों को एकत्र करवाकर अपने आश्रित जैन कवि कुशललाभ को उनका कथा-सूत्र मिलाने की आज्ञा दी। उक्त कवि ने चौपाइयाँ बनाकर और उनको दूहों के बीच-बीच में जोड़कर यह कार्य संपन्न किया†। जैनों में कुशललाभ

* रचना-काल की निचली सीमा जैन कवि कुशललाभ का समय (१६१८ के आस-पास) है जिसके समय में इस काव्य के अधूरे दूहे ही मिलते थे और जिसने कथा-सूत्र मिलाने के लिये बीच-बीच में चौपाइयाँ जोड़ी थीं। उसने लिखा है कि—

दूहा घणा पुराणा अछइ।

सो कम से कम १५०-२०० वर्ष पुराने तो होंगे ही। इस प्रकार इन दूहों की रचना संवत १४५० के बाद की नहीं हो सकती।

† इसके विषय में प्रसिद्ध बारहठ कवि गोविंद गिल्लाभाई ने एक मनोरंजक कथा लिखी है जो इस प्रकार है। सम्राट् अकबर का विद्या-प्रेम प्रसिद्ध है। उसके दरबार में बीकानेर-नरेश राजा रायसिंहजी के छोटे भाई पृथ्वीराज राठोड़ रहते थे जो डिंगळ के बड़े भारी कवि थे। ये वही पृथ्वीराज हैं जिन्होंने महाराणा प्रताप को उत्तेजित करने के लिये वीररस के दूहों में पत्र लिखा था। पृथ्वीराज ने **किसन-रुकमणीरी वेलि** नामक एक बड़ा सुंदर शृंगार-रसात्मक काव्य बनाकर अकबर को सुनाया। अकबर उस काव्य को प्रतिदिन काव्य-चर्चा के समय सुनता और उसकी प्रशंसा करता। उस समय जेसळमेर के राजकुमार हरराज ने भी यह प्रशंसा सुनी। बीकानेरवालों और जेसळमेरवालों में प्रतिद्वंद्विता का भाव था। हरराज को यह प्रशंसा सहन न हुई। जब वह राजा हुआ तो उसने अपने दरबार के कवियों को आज्ञा दी कि **ढोला-मारू** की कथा के प्रचलित दूहे जितने मिल सके उन्हें एकत्र करके यथाक्रम लगाकर ग्रंथ-रचना करो और जो ग्रंथ सर्वोत्तम होगा उस पर पुरस्कार

की ढोला-मारू-चउपई का बहुत प्रचार हुआ और शायद ही कोई जैन-पुस्तक-भांडार मिले जहाँ इसकी प्रतियाँ न पाई जायँ।

पर दूहोंवाला रूप सर्वथा लुप्त नहीं हुआ। उसकी कई प्रतियाँ अनुसंधान करने पर हमें प्राप्त हुईं। सबमें दूहों की संख्या लगभग समान है और कथा-सूत्र बराबर मिलता है, कहीं खंडित नहीं होता।

कई अन्य लोगों ने, जिन्हें पूरे दूहे नहीं मिले, कथा-सूत्र मिलने के लिये बीच बीच में गद्य-वार्त्ता जोड़ी। इस गद्य-पद्यात्मक रूप की प्रतियाँ बहुत कम मिलती हैं। कुछ प्रतियाँ ऐसी भी मिलती हैं जिनमें दूहे, कुशललाभ की चौपाइयाँ और गद्य-वार्त्ता तीनों हैं। इनमें कुशललाभ की चौपाइयाँ पूरी नहीं हैं और दूहे भी बहुत कम हैं। दोनों प्रकार के रूप विशेष प्राचीन नहीं हैं, अतः कोई महत्त्व नहीं रखते॥

दिया जायगा। कुशललाभ की रचना सर्वोत्तम निकली। हरराज ने उसे अकबर को भेंट किया। अकबर ने उसे पसंद किया और काव्य-चर्चा के समय उसके दूहे भी पढ़े जाने लगे। एक दिन सम्राट् ने हँसी में पृथ्वीराज से कहा तुम्हारी **वेलि** को तो **ढोला का करहला** (ऊँट) चर गया है। इस श्लेषयुक्त वाक्य को सुनकर पृथ्वीराज ने कहा कि इस संसार-रूपी उद्यान में से अन्य मकरंद-परिपूर्ण पुष्पोंवाले वृक्ष सेवा में भेंट करते कोई देर नहीं लगेगी। और इसके बाद सदेवंत-सावलिंगाकी शृंगार-परिपूर्ण वार्त्ता बनाकर पृथ्वीराज ने भेंट की जो अकबर को बहुत पसंद आई।

यह कथा केवल कथा मात्र ही है। इसमें सत्य का कुछ भी अंश नहीं जान पड़ता। रावळ हरराज युवराजत्व में तो अकबर के दरबार में गया ही नहीं। उसने संवत् १६२७ में, अपने राजा होने के नौ वर्ष बाद, अकबर की अधीनता स्वीकार की थी। फिर पृथ्वीराज की वेलि तो सं० १६३७ या १६३८ में बनी थी, जैसा उसके अंतिम छंद से ज्ञात होता है। ढोला-मारू-चउपई की रचना कुशललाभ संवत् १६१८ के पूर्व ही कर चुका था, जैसा कि इस ग्रंथ की पुष्पिका से सिद्ध होता है। सुदवुद-सालंगा की वार्त्ता भी पृथ्वीराज की बनाई नहीं है। पृथ्वीराज की रचनाओं में उसका कहीं नाम नहीं और न बीकानेर-राज्य के पुस्तकालय में उसकी जो एक-दो प्रतियाँ हैं उनमें इस बात का कहीं उल्लेख है। ये प्रतियाँ भी उस समय के बहुत बाद की हैं।

ऐसी ही एक कहानी पृथ्वीराज की वेलि और चारण झूला साइयाँ के रुक्मिणी-हरण के विषय में कही जाती है कि दोनों बादशाह की नजर से गुजरे और हरण की रचना वेलि से अच्छी देखकर उसने यह श्लेष-मय वाक्य कहा कि पृथ्वीराज, तुम्हारी वेल को चारण बाबा की हरणियाँ (=हरण) चर गईं (राजरसनामृत, मुं० देवीप्रसाद-कृत, पृष्ठ ४३-४४)।

इस प्रकार इस समय ढोला-मारू काव्य के चार रूपांतर मिलते हैं—(१) पहला—जिसमें केवल दूहे हैं और जो प्राचीन है। (२) दूसरा—जिसमें दूहे और कुशललाभ की चौपाइयाँ हैं, यह प्राचीनता में दूसरे नंबर पर आता है। (३) तीसरा—जिसमें दूहे और गद्य-वार्त्ता हैं (४) और चौथा—जिसमें दूहे, कुशललाभ की कुछ चौपाइयाँ और गद्यवार्त्ता है।

इनमें केवल पहले दो रूपांतर ही महत्त्वपूर्ण हैं। पिछले दो रूपांतरों में असली दूहों का भाग बहुत ही कम रह गया है और जो कुछ रह गया है वह भी बहुत-कुछ विकृत हो गया है। दूसरे रूपांतर में भी बाद में जाकर परिवर्त्तन हुआ और बहुत से नए दूहे जोड़ दिए गए पर उसका असली रूप लिखित रूप में रह जाने के कारण निश्चित किया जा सकता है*।

पहले और दूसरे रूपांतरों में भी काफी अंतर पाया जाता है, विशेषतः आरंभ के भाग में। हम यहाँ पर दोनों में जो-जो अंतर है उसका संक्षिप्त विवेचन करेंगे। विशेष मालूम करने के लिये परिशिष्ट में दिए हुए भिन्न भिन्न रूपांतरों का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है।

(१)

रूपांतर नं० १ की कथा का आरंभ एक गाहा से होता है। उसके बाद ढोला-मारवणी के विवाह का प्रसंग है। पूगळ देश में एक समय अकाल पड़ा तो राजा पिंगळ अपने परिवार के साथ नळवर देश को गया जहाँ के राजा नळ ने उसका बड़ा आदर-सत्कार किया। नळ के पुत्र **ढोला को देखकर पिंगळ की रानी रीझ गई और उसने अपनी पुत्री मारवणी का विवाह उसके साथ कर दिया।** उस समय मारवणी की अवस्था बहुत छोटी होने के कारण उसे ससुराल में न रखकर पिंगळ अपने साथ पूगळ लेता आया। उधर बड़ा होने पर ढोला का विवाह माळवे की राजकुमारी माळवणी के साथ हो गया। ढोला को मारवणी की और उसके साथ विवाह होने की बात ज्ञात नहीं हुई। **युवावस्था में प्रवेश करने पर मारवणी ने अपने पति ढोला को स्वप्न में देखा और उसी समय से विरह-व्याकुल रहने लगी।** विरह से अभिभूत होकर कभी पपीहे को फटकारती है तो कभी कुरजों से संदेशा ले जाने के लिये कहती है। राजा पिंगळ ने ढोला को बुलाने के लिये कई आदमी भेजे पर माळवणी के षड्यंत्र के कारण उसे सफलता न हुई। इतने में एक सौदागर आता है और मारवणी के ढोला के साथ विवाह होने की बात जानकर माळवणी का सब भेद बतलाता है। पिंगळ

फिर अपने ब्राह्मण को ढोला के पास भेजना चाहता है पर अंत में रानी की सलाह के अनुसार ढाढी भेजे जाते हैं । ये ढाढी किसी प्रकार माळवणी के रक्षकों से बचकर ढोला के महल के पास ठहरते हैं और रात में करुण शब्द में मारवणी के संदेश को गाते हैं जिसको सुनकर ढोला व्याकुल हो उठता है। प्रातःकाल उठकर वह ढाढियों को अपने पास बुलाकर पूछता है और ढाढी उसे मारवणी का सब हाल सुनाते हैं जिसे सुनकर ढोला मारवणी से मिलने के लिये व्याकुल हो उठता है।

रूपांतर नं० २ के आरंभ में मंगलाचरण, उसके बाद वस्तु-सूचना और उसके बाद पूगळ के राजा पिंगळ का वर्णन करके कथा का आरंभ होता है। राजा पिंगळ एक बार शिकार खेलने गया। वहाँ उसे भाऊ नामक एक भाट मिला जिसने जाळोर के देवड़ा राजा सामंतसी की कन्या उमा के रूप की बहुत प्रशंसा की जिससे पिंगळ का मन उमा की ओर आकर्षित हुआ। महल में लौटने पर राजा ने अपने प्रधान और सेवक जेसळ को, उमा को माँगने के लिये, जाळोर भेजा। उमा की सगाई गुजरात के राजकुमार रण-धवळ के साथ हो चुकी थी पर उमा की माता अपनी कन्या को उतनी दूर नहीं देना चाहती थी। उसने राजा से सलाह की कि विवाह का दिन निश्चित करके हम ठीक मौके पर गुजरात को समाचार भेजेंगे जिससे वहाँ की बरात समय पर नहीं पहुँच सकेगी। लग्न के समय यदि राजा पिंगळ यहाँ आबू-यात्रा के बहाने आ जाय तो हम लग्न टलता देखकर उमा का विवाह उसके साथ कर देंगे। फिर गुजरात की बरात आवेगी तो हम कह देंगे कि आप समय पर नहीं आये, हल्दी चढ़ी हुई कन्या नहीं रह सकती थी अतः हमने उसका विवाह पूगळ के राजा के साथ, जो यात्रा करने के लिये आबू जा रहा था, कर दिया। सामंतसी ने अपनी सम्मति दे दी और रानी ने सब बातें जेसळ की मारफत पिंगळ को कहला भेजीं। इसी के अनुसार कार्यवाही हुई और पिंगळ के साथ उमा का विवाह हो गया। उधर दूत गुजरात-नरेश उदयचंद के पास पहुँचा और उसने जाकर कहा कि मैं मार्ग में बीमार पड़ गया अतः ठीक समय पर नहीं पहुँच सका। उदयचंद की धाक बड़ी भारी थी एवं वह बड़ा प्रबल राजा था। उसने सोचा कि मेरे लड़के की माँग (वाग्दत्ता) को विवाहने का साहस और किसी राजा को नहीं हो सकता। उसने रणधवळ को बरात के साथ रवाना कर दिया। रणधवळ जाळोर पहुँचा तो उसे मालूम हुआ कि उमा का विवाह पिंगळ के साथ हो गया। उसने

सब हाल पिता को कहला भेजा और एक भारी सेना ने जाळोर को घेर लिया। सामंतसी ने पिंगळ को पहले ही पूगळ भेज दिया था और उमा को बाद में भेजने के लिये कहा था। गुजरात की सेना चारों ओर उत्पात मचाने लगी। उधर पिंगळ के सेवक जेसळ ने बैलों की एक जोड़ी को ऐसा साधा कि वह एक दिन में जाळोर जाकर लौट आवे और एक रोज रात उमा को लेकर पूगळ लौट आया। उमा को हाथ से गई देख गुजरात की सेना चली गई। पिंगळ से उमा के मारवणी नाम की कन्या हुई। **एक बार अकाल पड़ने पर पिंगळ सपरिवार पुष्कर जा पहुँचा।**

इसके बाद ढोला के जन्म की कथा इस प्रकार कही गई है। राजा नळ के कोई संतान न थी। उसने पुष्कर-यात्रा की मनौती की जिससे उसके एक पुत्र हुआ जिसका नाम ढोला रखा। **ढोला के तीन वर्ष का हो जाने पर राजा नळ सपरिवार पुष्कर यात्रा को गया। वहां नळ ने मारवणी को देखा। वह पिंगळ से मिला और ढोला के लिये मारवणी को माँगा।** फिर दोनों का विवाह हो गया।

मारवणी की अवस्था छोटी होने के कारण पिंगळ ने उसे नळ के साथ नहीं भेजा और पूगळ ले आया। पीछे से पूगळ को दूर जानकर और रास्ता खतरनाक समझकर नळ ने ढोळा का दूसरा विवाह माळवे के राजा की कन्या माळवणी से कर दिया। मारवणी के साथ विवाह होने की बात ढोला से छिपी रही। पर माळवणी को यह बात मालूम हो गई और उसने ऐसा प्रबंध कर लिया कि पूगळ का कोई आदमी नगर में न आने पावे।

उधर मारवणी ने यौवन में पैर रखा। एक बार एक घोड़ों का सौदागर पूगळ आया और पिंगळ के यहाँ ठहरा। मारवणी को देखकर और उसका परिचय पाकर उसने ढोला और माळवणी का सब हाल कह सुनाया। माळ-वणी के षड्यंत्र का भी हाल कहा। **प्रियतम के समाचार सुनकर मारवणी विरह संतप्त हो उठी।** इसके बाद पपीहों को कोसना और कुरजों से सँदेशा ले जाने की प्रार्थना है। राजा अपने पुरोहित भीमसेन को ढोला के पास भेजना चाहता है परंतु **मारवणी माता के द्वारा ढाढियों को भेजने के लिये कहती है।** मारवणी का सिखाया संदेशा लेकर ढाढी नळवर जाते हैं। पहरेदार उनको साधारण याचक जानकर छोड़ देते हैं। **वहाँ जाकर वे भाऊ भाट से, जो अब नळवर में था, मिलते हैं। भाऊ भाट मौका पाकर माळवणी की अनुपस्थिति में ढोला से उनकी भेंट करवा देता**

है। उनसे मारवणी का संदेशा सुनकर ढोला मारवणी के लिये आतुर हो उठता है। फिर ढाढियों को पुरस्कार के साथ विदा करता है।

यहाँ तक के कथा-भाग में मुख्य अंतर निम्न-लिखित बातों में है—

(१) रूपांतर नंबर २ में आरंभ में एक लंबी प्रस्तावना है जिसमें पिंगळ और उमा के विवाह, मारवणी के जन्म और ढोला के जन्म की कथा है।

रूपांतर नंबर १ में यह नहीं है।

(२) रूपांतर नंबर १ में पिंगळ नळ के देश में आता है और वहाँ पिंगळ की रानी ढोला को देखकर रीझती है और मारवणी का विवाह ढोला के साथ हटपूर्वक करवा देती है।

रूपांतर नंबर २ में नळ और पिंगळ दोनों ही पुष्कर में एकत्र होते हैं। एक अपने पुत्र ढोला की जात देने के लिये आता है और दूसरा अकाल के कारण। इस रूपांतर में नळ पहले मारवणी को देखता है और ढोला के लिये उसे माँगता है। पिंगळ रानी से पूछकर संबंध करता है और रानी यद्यपि कन्या को इतनी दूर देने में संकोच करती है फिर भी स्वीकार कर लेती है।

(३) रूपांतर नंबर २ में ढोला और माळवणी के विवाह की कथा दी गई है।

रूपांतर नं० १ में वह नहीं है, केवल आगे जाकर सौदागर के कथन द्वारा उसकी सूचना दी गई है।

(४) नंबर १ में मारवणी का विरह ढोला को स्वप्न में देखकर जागृत होता है और वह कुरजों से संदेशा ले जाने के लिये कहती है। फिर सौदागर आकर ढोला और माळवणी का हाल सुनाता है।

रूपांतर नंबर २ में सौदागर आकर ढोला का हाल कहता है। तब मारवणी का विरह जागृत होता है और वह कुरजों से सँदेशा भेजना चाहती है।

(५) रूपांतर नंबर १ में ढाढियों को भेजने की सलाह रानी देती है।

रूपांतर नंबर २ में मारवणी ढाढियों को भेजने के लिये पिता से कहलाती है।

(६) रूपांतर नंबर १ में ढाढी ढोले के महल के नीचे डेरा लेकर ठहरते हैं और रात में मारवणी का सँदेशा गाते हैं। प्रातःकाल ढोला उन्हें बुला कर सब हाल पूछता है।

रूपांतर नंबर २ में ढाढी पहले भाऊ भाट से मिलते हैं। वह उपयुक्त समय पर उन्हें ढोला के पास ले जाता है और वे मारवणी का संदेश ढोला को सुनाते हैं।

(२)

रूपांतर नंबर १—ढोला मारवणी से मिलने के लिये आतुर हो उठता है। माळवणी का भी उसे भय है। इस चिंतित अवस्था में माळवणी उसे देखती है और चिंता का कारण पूछती है। पहले ढोला बहाने करके टालता है पर अंत में बतला देता है। कारण सुनकर माळवणी विरह की संभावना से बेसुध हो जाती है। होश में आने पर वह ढोला को पूगळ जाने से रोकती है। उसके प्रेम से ढोला ग्रीष्म भर के लिये रुक जाता है। वर्षा आने पर वह फिर जाने की अनुमति माँगता है। वह रोकती है और ढोला दो मास के लिये और रुक जाता है। दशहरा आ पहुँचता है। माळवणी फिर भी अनुमति नहीं देती। पर अब ढोला नहीं रुक सकता। अंत में माळवणी ने ढोला से वचन ले लिया कि जब मैं सो जाऊँ तब जाना। अब ढोला एक तेज चलनेवाले ऊँट को तैयार करता है। माळवणी ऊँट के पास जाकर उसे न जाने के लिये और लँगड़ा हो जाने के लिये प्रार्थना करती है जिसे ऊँट अंत में स्वीकार कर लेता है। पर ढोला को मालूम हो जाता है कि ऊँट वास्तव में लँगड़ा नहीं किंतु जान-बूझकर लँगड़ाता है। अब माळवणी के पास ढोला को रोकने का केवल यही उपाय रह जाता है कि वह सोवे नहीं। पंद्रह दिन तक वह बराबर जगती रहती है पर अंत में रात को थोड़ी देर के लिये झपकी आ जाती है। मौका पाकर ढोला चल देता है। ऊँट की बलबलाहट को सुनकर माळवणी तुरंत जग पड़ती है और ढोला को गया देख खूब विलाप करती है। वह एक सुग्गे को ढोला के पीछे भेजती है कि वह उसके मरने का समाचार सुनाकर ढोला को लौटा लावे। सुग्गा प्रातःकाल ढोला के पास पहुँचता है और झूठा बहाना बनाकर कहता है कि माळवणी मर गई सो आप तुरंत लौटिए। पर ढोला उसके झूठ को ताड़ लेता है और नहीं लौटता। सुग्गा यों ही लौट आता है।

नंबर २ में यह कथा इसी प्रकार है। केवल आरंभ में इतना विशेष है कि ढाढियों के पूगळ लौटकर पिंगळ को सब समाचार सुनाने का वर्णन दिया गया है। नंबर १ में माळवणी ढोला को लौटाने का उपाय भी बतलाती है कि ढोला को मेरे मरने की बात कहना। नंबर २ में वह केवल इतना ही कहती है कि किसी प्रकार ढोला को लौटा ला।

(३)

रूपांतर नंबर १—ढोला आगे चलता है। तीसरे पहर वह आडावळा की घाटी को लाँघ जाता है। वहाँ ऊँट को पानी पिलाता है। फिर दिन थोड़ा रहा देखकर ऊँट को तेजी से चलाता है*। मार्ग में ऊमर-सूमरे का एक चारण मिलता है जो कहता है कि मारवणी तो बूढ़ी हो गई अब तू जाकर क्या करेगा ? ढोला दुःखी होकर सोच में पड़ जाता है कि इतने में वीसू नाम का एक चारण आ जाता है जो उसे सच्ची बात कहकर उसका संदेह दूर करता है। फिर ढोला के पूछने पर वह मारू के रूप की प्रशंसा करता है। ढोला प्रसन्न होकर उसे पुरस्कार देता है और अपने आने के समाचार देकर पूगल भेज देता है। थोड़ा आराम करके फिर स्वयं चलता है। उधर उस दिन के पूर्व की रात को मारवणी स्वप्न में ढोला से मिलती है और प्रातःकाल उसका हाल सखियों को सुनाती है। ढोला के आने के पूर्व उसके बाएँ अंग फड़कने लगते हैं और इतने में वीसू आ जाता है। सब लोगों को बड़ा हर्ष होता है और इस समय ढोला पूगळ पहुँचता है। ढोला-मारवणी का मिलाप होता है। इसके बाद दोनों के मिलन और पारस्परिक विनोद का वर्णन है।

रूपांतर नंबर २ में भी यही कथा है पर कुछ फेरफार के साथ। सुग्गे के चले जाने पर ढोला आगे चलता है। चंदेरी के पास उसे एक बनिया मिलता है जो ढोला से अपना एक पत्र बीस योजन दूर एक गाँव तक पहुँचा देने को कहता है। ढोला कहता है कि तू पत्र लिखेगा तब तक मैं ठहर नहीं सकता, इसलिये तू पीछे ऊँट पर बैठ जा और पत्र लिख दे, फिर मैं पहुँचा दूँगा। बनिया बैठकर पत्र लिखने लगा। पत्र समाप्त हुआ तब तक तो ऊँट उसी गाँव में पहुँच गया जहाँ वह बनिया पत्र भेजना चाहता था।

अब ढोला पुष्कर पहुँचा। वहाँ ऊँट को पानी पिलाया। सूखे मारवाड़ देश को देखकर ऊँट उसकी शिकायत करता है। ढोला उसे समझाता है कि यह मेरी ससुराल है; यहाँ तो करील और आक ही खाने को मिल सकते हैं। नरवर की नागरबेल और दाख-बिजोरे यहाँ कहाँ ? अब ढोला आडावळा की घाटी पार करता है। इसके बाद उसे एक चारण मिलता है जो राजा

* कुछ प्रतियों (जैसे—क, झ, न) में इसके पूर्व एक गड़रिए के मिलने की कथा भी है जो मूलपाठ में ली गई है।

पिंगळ से नाराज था। वह कहता है कि मारवणी बूढी हो गई, अब जाकर क्या करेगा? ढोला दुःखी होता है। इतने में एक दूसरा चारण आता है जिसे मारवणी ने सामने भेजा था। वह कहता है कि यह चारण तो ऊमर का है जो मारवणी को अपनी स्त्री बनाने के लिये प्रयत्न करता है।

ढोला आगे चलता है। यहाँ पिंगळ का एक बारहट उसे मिलता है जो ढोला के सामने मारवणी के रूप की प्रशंसा करता है। चारण के प्रत्येक दूहे पर एक-एक मोहर ढोला पुरस्कार-स्वरूप देकर आगे बढ़ता है। ऊँट थक जाता है। इस पर ढोला उसे तेज चलने को कहता है।

उधर मारवणी रात को स्वप्न में ढोले से मिलती है। और माता से सब हाल कहती है। संध्या समय वह सहेलियों के साथ कुएँ पर जाती है। ढोला भी ऊँट को पानी पिलाने के लिये वहाँ पहुँचता है। वहाँ दोनों का मिलन होता है। मारवणी लौट जाती है और ढोला को लेने के लिए आदमी आते हैं। सत्कार के पश्चात् रात्रि में ढोला-मारू का मिलन होता है।

अंतर

(१) रूपांतर नंबर २ में बनिये की कथा है जो रूपांतर नंबर १ में नहीं है।

(२) रूपांतर नंबर १ में आडावळा की घाटी पार करके ढोला ऊँट को पानी पिलाता और तेज चलने को कहता है फिर ऊमर का चारण और वीसू चारण मिलते हैं। रूपांतर नंबर २ में ऊँट को पानी पिलाकर उसके बाद ढोला आडावळा की घाटी को पार करता है। फिर ऊमर का चारण, मारवणी का चारण और पूगळ का बारहट क्रमशः मिलते हैं। फिर ढोला ऊँट को तेज चलने के लिए कहता है।

(३) रूपांतर नं० १ में मारवणी स्वप्न का हाल सखियों से कहती है। नंबर २ में वह हाल माता से कहा गया है।

(४) रूपांतर नं० २ में कुएँ पर ढोला और मारवणी के मिलने का वृत्तांत है जो रूपांतर नं० १ में बिलकुल नहीं है।

(५) रूपांतर नंबर १ में दंपति-विनोद में पहेलियाँ दी गई हैं। नंबर २ में ये नहीं हैं।

(६) रूपांतर नंबर २ की (ज) प्रति में एक अष्टयाम भी है। जो कुछ हेरफेर के साथ सौराष्ट्र की लोक-कथाओं में अब भी प्रसिद्ध है। लोक

में प्रसिद्ध होने के कारण वह बाद में ढोला-मारू में भी जोड़ दिया गया होगा।

(४)

रूपांतर नंबर १—ढोला पंद्रह दिन तक ससुराल में रहता है। फिर मारवणी को बिदा कराकर नरवर चलता है। दूसरे दिन रात्रि को एक खुले स्थान में सब ठहरते हैं। रात को एक पीवणा साँप मारवणी को पी जाता है। ढोला मारवणी के साथ जल मरने को तैयार होता है पर एक योगी की मंत्र-शक्ति से मारवणी जी उठती है। उधर ऊमरसूमरा मौका देख ही रहा था। जब उसने देखा कि ढोला-मारवणी अकेले जा रहे हैं तो पीछा किया। मार्ग में उनको जा पकड़ा और बोला—ठाकुर, हम भी नरवर जा रहे हैं, साथ ही चलेंगे; जरा ठहरकर अमल-पाणी (जलपान) कर लो। ढोला को विश्वासघात की कोई आशंका नहीं थी। वह भी उतर पड़ा। ऊँट को पैर बाँधकर बिठा दिया गया और मारवणी उसके पास मुहरी (नकेल) पकड़कर बैठ गई। ढोला और ऊमर आदि मिलकर शराब पीने लगे। मारवणी के पीहर की एक डूमणी ऊमर के साथ थी। उसे सब षड्यंत्र मालूम था। उसने गाने के बहाने मारवणी को सब बात कह दी और ऊँट को छड़ी से मारने के लिये कहा। ऊँट छड़ी से मारे जाते ही भागा। ढोला पकड़ने को दौड़ा तो मारवणी भी साथ पहुँच गई और उसने ढोला को ऊमर के षड्यंत्र का हाल कह सुनाया। दोनों तुरंत ऊँट पर सवार हुए और भाग निकले। ऊँट का पैर खोल देने का ध्यान न रहा। उनको भागते देखकर ऊमर ने भी पीछे घोड़े दौड़ाए पर वह ऊँट को न पा सका। ढोला को मार्ग में एक चारण मिला जिसने ऊँट के पैर के बंधन की ओर ध्यान दिलाया। ढोला ने चारण के द्वारा छुरी से बंधन कटवाया और आगे चला। दूसरे दिन प्रातःकाल ऊमर को वही चारण मिला और उससे सब हाल जानने पर ऊमर निराश होकर अपने देश को लौट गया। ढोला सकुशल घर लौट आया।

कई प्रतियों की कथा यहीं समाप्त हो जाती है। पर कुछ में माळवणी की मारवाड़ की निंदा, तथा मारवणी की माळवा की निंदा और मारवाड़ की प्रशंसा, के दूहे भी मिलते हैं।

रूपांतर नं० २ में भी कथा इसी प्रकार है।

(१) उसमें ढोला के नरवर पहुँचने के पश्चात् पिंगळ के दहेज भेजने का भी वर्णन है।

(२) कुछ प्रतियों में योगी-योगिनी की जगह शिव-पार्वती का उल्लेख है।

(३) मारवाड़ की निंदा और प्रशंसा के दूहे इस रूपांतर में हैं।

धुर-संबंध या प्रस्तावना

रूपांतर नंबर २ में सौदागर के आने के ऊपर तक की जो कथा है वह रूपांतर नंबर १ में नहीं पाई जाती। पर रूपांतर नंबर १ की दो प्रतियों में उसके कुछ दूहे—केवल दूहे, चौपाइयाँ नहीं—पाए जाते हैं। इनमें से पहली (क) प्रति है और दूसरी (झ) प्रति।

(क) प्रति में मारवणी की उत्पत्ति और पूगळ में अकाल पड़ने तक की कथा के ३३ दूहे हैं। इसके बाद गाहा से असली कथा आरंभ होती है। ये दूहे उस प्रति में सर्वथा अस्थान-स्थित (out-of-place) हैं। फिर रूपांतर नंबर २ की भाँति उनके बीच-बीच में चौपाइयाँ न होने से उनका कथा-सूत्र बराबर नहीं मिलता।

(झ) प्रति में भी असली कथा की गाहा के पहले ये प्रस्तावना के दूहे हैं। परंतु इस प्रति के दूहे अधूरे नहीं, पूरे हैं जिससे कथा-सूत्र बराबर मिलता जाता है। रूपांतर नंबर २ में बीच-बीच में चौपाइयों से कथा-सूत्र मिलाया गया है पर इसमें चौपाइयों की आवश्यकता नहीं होती। इन दूहों के अंत में लिखा है—इति धुर-संबंध। और इसके बाद असली कथा गाहा से आरंभ की गई है। इसमें भी यह प्रस्तावना या धुर-संबंध अस्थान-स्थित जान पड़ता है। मूल-कथा के लिये उसकी कोई आवश्यकता नहीं प्रतीत होती।

इस धुर-संबंध में कथा के पिंगळ आदि पात्रों का पूर्व-परिचय दिया गया है। अवश्य ही यह प्रस्तावना-भाग आरंभिक मूल कथा का अंग न था। यह बाद में जोड़ा गया है और जोड़नेवाले का उद्देश्य नायक-नायिका के माता-पिता का परिचय देने के साथ-साथ उनकी उत्पत्ति का हाल दे देने का था। यह प्रस्तावना कुशललाभ के समय से अवश्य पुरानी है। कुशललाभ को इसके कुछ ही बहुत थोड़े—दूहे मिले। (क) प्रति में भी वही दूहे हैं जो कुशललाभ में हैं। (झ) ही एक ऐसी प्रति है जिसमें यह पूरी प्रस्तावना दूहों में है। परंतु एक पृष्ठ नष्ट हो जाने से प्रस्तावना के बीच के कुछ दूहे अप्राप्य हो गए हैं।

(न) प्रति में भी पूरी प्रस्तावना दूहों में है पर यह प्रति बहुत भ्रष्ट है और विश्वसनीय नहीं है। इसकी विचित्रता यह है कि कथा इसकी रूपांतर नंबर

२ के अनुसार है पर है यह रूपांतर नंबर १ की भाँति केवल दूहों में। रूपांतर नंबर १ की भाँति यह गाहा से आरंभ नहीं होती। आरंभ में न केवल दूहों में प्रस्तावना है और उसके आगे की कथा रूपांतर नंबर २ की भाँति चलती है। इसकी प्रस्तावना आशय में (झ) की प्रस्तावना से मिलती है पर इसमें दूहों का रूप बहुत कुछ विकृत हो गया है। नए दूहे भी बहुत-से हैं।

इस प्रस्तावना के पात्र जाळोर-पति देवड़ा चाचिगदेव और देवड़ा सामंतसी, गुजरात-नरेश उदयचंद या उदयादित्य, उसका पुत्र रणधवळ, पूगळ का राजा पिंगळ, उसकी स्त्री और सामंतसी की कन्या उमा आदि हैं। इनमें पिंगळ और उमा मूल-कथा में भी आते हैं। देवड़ा सामंतसी जाळोर का राजा था और उसके शिलालेख संवत् १३३९ से १३५४ तक के मिलते हैं। चाचिगदेव उसका पिता था। उसने संवत् १३१६ से लेकर १३३४ तक तो निश्चित रूप से जाळोर में राज्य किया। गुजरात के राजा चावड़ा उदयचंद और रणधवळ का उल्लेख अन्यत्र कहीं नहीं मिलता। गुजरात में चावड़ों का राज्य संवत् ८२१ से १०१७ तक रहा था। इस पिछले संवत् के आस-पास सोलंकियों ने उनका उच्छेद कर डाला। उधर कछवाहा ढोला का समय संवत् १००० के पूर्व आता है। पूगळ में पँवारों का राज्य १३०० के पहले ही नष्ट हो चुका था अतः पूगळ का परमार राजा पिंगळ सामंतसिंह का समकालीन नहीं हो सकता। इस प्रकार इस प्रस्तावना की इतिहास-संबंधी बातें इतिहास से मेल नहीं खातीं। इस प्रस्तावना का निर्माण सोलहवीं शताब्दी में कहीं हुआ है ऐसी संभावना जान पड़ती है।

(३) ऐतिहासिक विवेचन

काव्य की कथा का मूल आधार ऐतिहासिक है। राजस्थान के प्राचीन इतिहास की पूरी-पूरी खोज अभी तक नहीं हुई अतः यह कहना असंभव-सा है कि कथा में ऐतिहासिकता कितनी है। नळ और ढोला ऐतिहासिक व्यक्ति हैं और कछवाहा राजपूतों की ख्यातों में उनके उल्लेख मिलते हैं। ढोला का विवाह मारवणी के साथ हुआ था इसका उल्लेख भी ऐतिहासिक ग्रंथों एवं लोक-कथाओं में यत्र-तत्र मिलता है।

इस काव्य में ढोला को नरवर के राजा नळ का पुत्र बताया गया है। उसका दूसरा नाम साल्हकुमार कहा गया है। वह किस वंश का था इस

विषय में कहीं कुछ नहीं कहा गया है। कुछ उत्तरकालीन प्रतियों के अंत में एक दूहा मिलता है—

धण भटीयाणी मारवी, प्रिय ढोलउ चहुआण।
जदकी जनमी मारवी तदकउ पढवु कुराण।

इसका निम्नलिखित पाठांतर भी मिलता है—

मारू ढोलो जनमिया; त्याका ए सहनाण।
धन भटियाणी मारुई, प्रिय ढोलो चहुआण॥

इससे ढोला का चौहान और मारवणी का भाटी होना सिद्ध होता है पर समस्त प्राचीन प्रतियों के अनुसार मारवणी परमार वंश की थी। इस प्रकार ढोला का चौहान होना भी संभव नहीं क्योंकि नरवर में चौहानों का राज्य कभी नहीं हुआ और न चौहान वंश में नळ और ढोला नाम के राजाओं के होने का ही कहीं उल्लेख मिलता है। उक्त दोहे का एक दूसरा पाठांतर भी एकाध प्रति में मिलता है जो इस प्रकार है—

अेथे ज चोक पुराविया परणी पढे पुराण।
धण भटियाणी मारवणि, ढोलो कूरम राण॥

इसके अनुसार ढोला कूर्म या कछवाहा सिद्ध होता है जो ठीक है। पर इसमें मारवणी भटियाणी अर्थात् भाटी वंश की ही कही गई है जो ठीक नहीं। बात यह है कि यह दोहा बहुत पीछे का बना हुआ है। उस समय लोगों को ढोला और मारवणी के वंशों का ठीक-ठीक ज्ञान न था। उस समय पूगळ में भाटियों का राज्य हो गया था अतः सबने मारवणी को भी भाटी वंश की मान लिया।

कछवाहा वंश की ख्यातों में नळ और ढोला का स्पष्ट वृतांत मिलता है* और इस ढोला को मारवणी का पति कहा गया है अतः इसमें तो कोई संदेह नहीं रह जाता कि वह कछवाहा राजपूत था। मारवाणी के विषय में हम आगे चलकर लिखेंगे।

ढोला कब हुआ इसका निश्चित पता इतिहास से नहीं चलता। कछवाहों का राज्य पहले नरवर में था जो राजा नळ का बसाया हुआ माना जाता है। पीछे सं० १०३४ से कुछ पूर्व उन्होंने ग्वालियर को अपने अधिकार में करके उसे अपनी राजधानी बनाया†। सं० ११६० तक उनका राज्य

* टाड राजस्थान, ओझाजी द्वारा संपादित, ओझाजी का टिप्पण नं० ५६, पृष्ठ ३७१।

† वही, पृष्ठ ३७१।

ग्वालियर में रहा। नरवर में भी उनकी शाखा राज्य करती रही जिसने सं० ११७७ तक वहाँ निश्चित रूप से राज्य किया* । हुमायूँ के शासन-काल में नरवर फिर कछवाहों को मिल गया था† ।

कछवाहों के जो शिलालेख मिले हैं उनमें नळ और ढोला के नाम नहीं मिलते। कछवाहों की ख्यातों में लिखा है कि कछवाहा वंश के राजा नळ ने नरवर का किला बनवाया, जिसका पुत्र ढोला और ढोला का पुत्र लक्ष्मण हुआ तथा लक्ष्मण के पुत्र वज्रदामा ने ग्वालियर का किला बनवाया। परंतु यह पिछला कथन विश्वास के योग्य नहीं है क्योंकि ग्वालियर का किला वज्र-दामा से पूर्व ही बना हुआ था और पड़िहारों के अधिकार में था। वज्रदामा ने इस किले को पड़िहारों से जीत लिया और उसे अपनी राजधानी बनाया‡ ।

मुँहणोत नैणसी की ख्यात राजस्थान के इतिहास का एक सुप्रसिद्ध ग्रंथ है। उसमें ढोला को नळवर के संस्थापक नळ का बेटा और मारवणी का पति बताया है। साथ ही यह भी लिखा है कि ग्वालियर को ढोला ने बसाया था। उसमें भी लक्ष्मण को ढोला का बेटा और वज्रदामा को ढोला का पौत्र बताया गया है§ ।

शिलालेखों में कछवाहों की जो वंशावलियाँ मिलती हैं वे लक्ष्मण से आरंभ होती हैं। वज्रदामा का समय संवत् १०३४ के लगभग है क्योंकि इस संवत् का उसका एक लेख मिला है। अतः नळ और ढोला को उसका परदादा और दादा मानकर उनका समय विक्रम की दसवीं शताब्दी का उत्तरार्ध निश्चित कर सकते हैं। इस समय के लगभग पूगळ और माळवा में भी परमारों के राज्य स्थापित हो चुके थे।

कई लोग जयपुर राज्य के संस्थापक दूलहराय को ढोला मानते हैं। टाड ने अपने सुप्रसिद्ध राजस्थान के इतिहास में ऐसा ही लिखा है+ । उसने तो दूलहराय का नाम ही ढोलाराय लिखा है। उसके अनुसार संवत् ३५१ के

* टाड राजस्थान, ओझाजी द्वारा संपादित, पृष्ठ ३७५।

† वही, पृष्ठ ३७६।

‡ वही, पृष्ठ ३७१।

§ डा० टेसीटरी का डिस्क्रिप्टिव केटेलग ऑफ बार्डिक एंड हिस्टोरिकल मैनुस्क्रिप्ट्स्, सेक्शन १, पार्ट १, पृष्ठ २३।

+ टाड-कृत एनाल्स एंड एंटिकिटीज् ऑफ राजस्थान, विलियम क्रुक द्वारा संपादित, भाग ३, पृष्ठ १३२८-१३३१।

लगभग कछवाहा वंश में नळ नाम का राजा हुआ जिसने नैषध या नरवर का राज्य कायम किया। उसकी तेतीसवीं पीढ़ी में सोढ़देव हुआ जिसका पुत्र ढोलाराय था। सोढ़देव की मृत्यु के समय ढोलाराय बालक था अतः उसका राज्य उसके चाचा ने छीन लिया। ढोला की माता बालक को लेकर पश्चिम की ओर चली गई और वहाँ उसने वर्त्तमान जयपुर से कुछ दूर खो-गाँव के मीणों के यहाँ आश्रय लिया। बड़े होने पर ढोला ने अपने आश्रयदाता को सहायकों सहित धोखे से मार डाला और स्वयं राजा बन गया। इस प्रकार संवत् १०२३ में उसने वर्त्तमान जयपुर राज्य की नींव डाली। कुछ समय बाद ढोला ने अजमेर की राजकुमारी मारवणी से विवाह किया। एक समय जब ढोला देवी के दर्शन करके लौट रहा था तब मीणों ने उस पर हमला किया और सहायकों समेत मार डाला। मारवणी गर्भवती थी। वह किसी प्रकार बच निकली। उसके काकिल नामक पुत्र हुआ जिसने अपना राज्य फिर से जीत लिया।

इस वृत्तांत में ऐतिहासिक तथ्य बहुत कम है। जयपुर राज्य का संस्थापक दूलहराय संवत् १०२३ के बहुत बाद हुआ है। वज्रदामा के पुत्र मंगळराज का छोटा बेटा सुमित्र था। उसकी चौथी पीढ़ी में ईशासिंह या ईश्वरसिंह हुआ जो पहले-पहल राजपूताने की ओर आया था। उसका पुत्र सोढ़सिंह का पुत्र दूलहराय था। कछवाहों की राजधानी राजपूताने में पहले द्यौसा में हुई, फिर आँबेर में। महाराज सवाई जयसिंह (१७४५–१८००) के समय में जयपुर उनकी राजधानी हुई। वज्रदामा का समय संवत् १०३४ के आस-पास और उसके बड़े पौत्र कीर्त्तिवर्मा का समय संवत् १०७८ के आसपास शिलालेखों और मुसलमानी तवारीखों से सिद्ध होता है। अतः कीर्त्तिवर्मा के अनुज सुमित्र का समय भी संवत् १०७८ के लगभग होना चाहिए। दूलहराय उसका छठा वंशधर था अतः उसका समय संवत् १२०० के लगभग माना जा सकता है (न कि १०२३ जैसा कि टाड ने लिखा है)। मारवणी को अजमेर की राजकुमारी बताना भी ठीक नहीं क्योंकि अन्यान्य ख्यातों तथा लोक-कथाओं से इसकी पुष्टि नहीं होती।

हमारी सम्मति में जयपुर के दूलहराय के साथ इस कथा के नायक का कोई संबंध नहीं है क्योंकि यह दूलहराय न तो नरवर का था और न उसके पिता का नाम नळ था। अंत में हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कथा

का नायक ढोला, वज्रदामा के पिता लक्ष्मण का पिता था और उसका समय विक्रम की दसवीं शताब्दी का उत्तरार्ध भाग था।

नळ—यह कछवाहा वंश का राजा था और नरवर या नळवर, जो नळ-पुर का अपभ्रष्ट रूप है, इसी का बसाया माना जाता है। जैसा कि ऊपर कह आए हैं शिलालेखों में इसका नाम नहीं मिलता पर कछवाहों की ख्यातों में इसे लक्ष्मण के पिता ढोला का पिता और नरवर का संस्थापक कहा गया है। इसका समय संवत् ९५० और १००० के बीच में हो सकता है।

टॉड ने लिखा है कि इसके पहले कछवाहों का राज्य पूर्व में था और रोह-तासगढ़ उनकी राजधानी था। नळ रोहतासगढ़ को छोड़कर पश्चिम में चला आया और नरवर को बसाकर वहाँ उसने नया राज्य कायम किया। नरवर की संस्थापना का समय टॉड ने संवत् ३५१ दिया है जो सर्वथा अशुद्ध है। इस संवत् के लगभग तो नरवर के आसपास के भू-खंड में गुप्तों का राज्य था।

कई लोग इस नळ का संबंध सुप्रसिद्ध पौराणिक राजा और दमयंती के पति नळ से मिलाते हैं और नरवर को उसी का बसाया हुआ मानते हैं। किसी-किसी लोक-कथा में तो ढोला को भी इसी नळ और दमयंती का पुत्र माना गया है। नरवर या नळपुर इस राजा का बसाया हुआ हो सकता है पर हमारी कथा के नळ का और इस नळ का कोई संबंध नहीं।

मारवणी—इस काव्य में यह पूगळ के राजा पिंगळ की कन्या कही गई है पर उसके वंश का उल्लेख नहीं हुआ है। कुशळलाभ ने इसे परमार वंश की बताया है। (ग) प्रति में एक दूहा आया है जो इस प्रकार है—

मा ऊमादे देवड़ी, नानो सामँतसीह।
पिंगळराय पमाररी, कुमरी मारवणीह॥

धुरसंबंध का अधिकांश भाग कुशळलाभ से पुराना है। उसमें भी पिंगळ को परमार ही बताया है। लोक-कथाओं से भी वह परमार वंश का ही सिद्ध होता है। ढोला का समय हमने ऊपर संवत् १००० के लगभग सिद्ध किया है। उस समय पूगळ में परमारों का ही राज्य था। परंतु ऊपर ढोला के विषय में लिखते हुए हमने जो दोहे उद्धृत किए हैं उनमें मारवणी को भटियाणी या भाटी-वंश की बताया गया है। भाटियों का राज्य पूगळ में बहुत बाद में हुआ है; अतः मारवणी को किसी भी हालत में भाटी नहीं माना जा सकता।

पंजाब में भी मारवणी का एक गीत प्रचलित है जिसमें उसे सिंहळद्वीप में स्थित पिंगळगढ़ के राजा की कन्या बताया गया है। सिंहलद्वीप लोक-कथाओं का एक अत्यंत प्रिय स्थान है। प्रत्येक प्रेम-कथा का संबंध सिंहल द्वीप के साथ जोड़ दिया जाता है। (मिलाइए—जायसी का पद्मावत जहाँ पद्मावती सिंहल द्वीप की राजकुमारी मानी गई है)।

पिंगळ—यह मारवणी का पिता और पूगळ का राजा था। कथा में इसके वंश का निर्देश नहीं है पर मारवणी के प्रसंग में उल्लिखित कारणों से यह परमार ही सिद्ध होता है। पहले समस्त पश्चिमी राजस्थान में परमारों का एक विस्तृत साम्राज्य था जिसका मुख्य स्थान आबू के पास चंद्रावती नामक प्राचीन नगर था। आगे चलकर इस राज्य की अनेक शाखाएँ हो गईं जिनमें पूगळ भी एक था। पूगळ के इतिहास की खोज अभी बिलकुल नहीं हुई है। अतः निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि वहाँ पिंगळ नाम का कोई राजा हुआ या नहीं, और यदि हुआ तो कब हुआ। नैणसी ने परमार वंशों की जो वंशावलियाँ दी हैं उनमें पूगळ की वंशावली नहीं है और न पिंगळ का नाम कहीं आया है।

ऊमा देवड़ी—काव्य के ७६ और ८० नंबर के दूहों में मारवणी की माता का नाम ऊमा देवड़ी बताया गया है पर ये दोनों दूहे हमें बहुत पुराने नहीं जान पड़ते। रूपांतर नंबर १ (जो पुराना है) की किसी प्रति में ये दूहे उपलब्ध नहीं होते। रूपांतर नंबर २ उतना पुराना नहीं है। इस रूपांतर के साथ एक धुर-संबंध पाया जाता है जो आरंभ में मूलकथा का भाग नहीं था। इस धुर-संबंध में ऊमादे और पिंगळ के विवाह की कथा वर्णित की गई है। उसमें ऊमादे को आबू के देवड़ा शाखा के चौहान-वंशीय राजा सामंतसिंह की कन्या बताया गया है। (ग) प्रति के एक दूहे में भी, जो ऊपर उद्धृत किया गया है, यही बात कही गई है। सामंतसिंह का समय विक्रम की चौदहवीं शताब्दी का मध्यभाग है। ऊपर के ७६ और ८० नंबर के दूहों में ऊमा नाम इसी धुर-संबंध से लिया गया जान पड़ता है।

धुर-संबंध की कथा अवश्य ही बाद में जोड़ी हुई है अतः हमारी सम्मति में मारवणी की माता का नाम ऊमादे नहीं हो सकता। यदि हो तो वह देवड़ा सामंतसी की कन्या नहीं हो सकती। सामंतसिंह के समय में पूगळ में परमारों का राज्य होना भी संभव नहीं जान पड़ता (और धुर-

संबंध में पिंगळ को परमार बताया है जिससे उसकी अनैतिहासिकता स्वयं सिद्ध होती है)।

माळवणी—इस नाम का अर्थ माळवा की राजकुमारी है। माळवणी माळवा के राजा की कन्या बताई गई है। (देखिए दूहा नं० ९४)। पर उसका नाम नहीं दिया गया है। कुशळलाभ ने उस राजा का नाम भीम लिखा है। उसके वंश का उल्लेख उसने भी नहीं किया है। माळवा में उस समय परमारों का राज्य था पर भीम नाम का कोई राजा वहाँ नहीं हुआ। वाक्पतिराज, वैरिसिंह द्वितीय और श्रीहर्ष ने उस समय के आसपास राज्य किया था। यह भी संभव है कि माळवणी राजा की ही कन्या न होकर राजा के किसी संबंधी या किसी सामंत की कन्या हो।

ऊमर-सूमरा—सूमरों को अरबी तवारीखों में अरबी जाति के मुसलमान लिखा है पर हिंदू कहते हैं कि वे पहले भाटी थे और जब सिंध में मुसलमानों का राज्य हुआ तो अन्य जातियों के साथ वे भी मुसलमान बन गए। संवत् १११० के लगभग उन्होंने ठट्ठे से मुसलमान हाकिम को निकाल कर वहाँ अपना राज्य कायम किया। ऊमर नाम के दो राजा इस वंश में हुए। एक का समय सं० १२०० के लगभग और दूसरे का सं० १३०० के लगभग आता है। दोनों का ही समय ढोला के समय से मेल नहीं खाता। इसलिये या तो ऊमरवाला प्रसंग बाद में जोड़ा गया है या यह ऊमर कोई साधारण सरदार था, राजा नहीं।

परमारों में भी ऊमर-सूमरा नाम की दो शाखाएँ पाई जाती हैं। कुछ विद्वानों का कथन है कि परमारों की ऊमर शाखा से ये शाखाएँ निकली हैं। ऊमर का परमार होना ठीक नहीं जान पड़ता, क्योंकि राजपूतों के अनुसार परमार का विवाह परमार के साथ नहीं हो सकता। अतः ऊमर की मारवणी को अपनी स्त्री बनाने की चेष्टा उस हालत में संभव नहीं हो सकती।

ओझाजी अपने पत्र में लिखते हैं कि सूमरा सिंध में थे परंतु किस वंश के थे यह ठीक-ठीक निश्चित नहीं हो सका।

धुर-संबंध या उपोद्घात के ऐतिहासिक व्यक्ति

सामंतसी देवड़ा—देवड़ा चौहानों की एक शाखा है। ये देवड़ा क्यों और कब कहलाए इस विषय में कुछ निश्चित् पता नहीं चलता। ख्यातों में लिखा है कि जाळोर के एक सोनगरे राजा के यहाँ देवी स्त्री होकर रही थी

जिससे उसकी संतान देवड़ा कहलाई। कोई यह कहते हैं कि वंश के किसी राजा का नाम, या दूसरा नाम, देवराज था जिससे यह नाम पड़ा।

सामंतसी जाळोर का राजा था। जाळोर पहले परमारों के हाथ में था। संवत् १२१८ के कुछ पूर्व नाडोळ के चौहान राजा आल्हण के तीसरे बेटे कीतू ने उसे परमारों से छीन लिया। जाळोर का दूसरा नाम सुवर्णगिरि था जिससे वहाँ के शासक चौहान सोनगरा चौहान कहलाने लगे। कीतू के वंश में चाचिगदेव हुआ जिसका समय सं० १३१६ से १३३४ के लगभग है। चाचिगदेव का पुत्र सामंतसी हुआ जिसके शिलालेख १३३६ से १३५४ तक के मिले हैं। उसके पुत्र कान्हड़देव से अलाउद्दीन खिलजी ने जाळोर छीन लिया।

आबू पर भी पहले परमारों का अधिकार था। संवत् १३६० के लगभग कीतू के पुत्र समरसिंह के दूसरे पुत्र के वंशज बीजड़ के बेटे राव लुंबा ने उसे परमारों से छीन लिया। सामंतसी का आबू पर अधिकार होने की जो बात धुर-संबंध में कही गई है वह ठीक नहीं जान पड़ती।

उदैचंद (या उदयादित्य) और रणधवळ—धुर-संबंध में इन्हें चावड़ा वंशीय बताया गया है और उदैचंद को गुजरात का अर्धाश्वर कहा गया है। चावड़ों का राज्य गुजरात में ८१० से १०१७ तक रहा। उनमें उदयादित्य या उदैचंद और रिणधवळ नाम के कोई राजा नहीं हुए। अन्यत्र भी उनका कहीं उल्लेख नहीं मिलता। लोक-कथाओं में माळवा के परमारों में उदैचंद या उदयादीत का और उसके कुमार रिणधवळ का नाम आता है। उदयादीत का समय इतिहास के अनुसार सं० ११४० के आसपास है। यह समय न तो सामंतसी के समय से मेल खाता है और न ढोला के समय से।

इस धुर-संबंध की सभी बातें इतिहास के विरुद्ध पड़ती हैं, जिससे स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि यह आरंभ में मूलकथा का भाग न था पर बहुत बाद में जोड़ा गया था जब कि लोग मूलकथा की इतिहास - संबंधी बातें सर्वथा भूल गए थे।

(४) कवि या लेखक

किसी ग्रंथ को हाथ में लेते समय सबसे पहले यह प्रश्न पाठक के मन में उपस्थित होता है कि इसका निर्माता कौन है। लेखक की जीवनी तथा उसकी परिस्थिति के संबंध में जानकारी प्राप्त करना और उसके व्यक्तित्व को

उसकी कृति में प्रतिफलित देखकर आनंदलाभ करने की हममें स्वाभाविक रुचि होती है। काव्य जीवन की आलोचना है और इस काव्यमयी आलोचना के व्यापक क्षेत्र में कवि न केवल बाह्य जीवन को ही सीमाबद्ध करता है वरन् कवि का आंतरिक जीवन भी इसी आलोचना के अंतर्गत आ जाता है। परंतु लोक-गीत और इतर साहित्यिक रचनाओं में बड़ा अंतर होता है। इतर रचनाओं के लिये साहित्य-निर्माता के लिये साहित्यकला-कुशल होना आवश्यक होता है परंतु लोक-गीत एक ऐसा प्राचीन काव्य है कि जिसका निर्माता यदि कोई हो सकता है तो देश-विशेष की प्राचीनकालीन परिस्थिति और साधारण जनता की सामूहिक रागात्मक अभिरुचि ही हो सकती है। यद्यपि रीति और साहित्य-शास्त्र के बहाव में सदियों तक बह चुकने के बाद आज हमारी कल्पना काव्योत्पत्ति के इस प्रकार को संभाव्य और युक्तिसंगत समझने में असमर्थ है, परंतु यदि हम प्राचीन समय के मौखिक परंपरागत साहित्य के प्रवाह और परिस्थिति का ध्यानपूर्वक देखें तो यह बात सहज ही समझ में आ सकेगी। इन सिद्धांतों के अनुसार ढोला-मारू की प्रेमगाथा को किसी व्यक्ति-विशेष कवि की कृति न मानकर भी हमको यह कल्पना करने में कठिनाई नहीं होती कि यह काव्य मौखिक परंपरा के प्राचीन काव्ययुग की एक विशेष कृति है और संभव है कि तत्कालीन जनता की साधारण अभिरुचि को ध्यान में रखकर उससे प्रेरित होकर किसी प्रतिभासंपन्न कवि ने जनता के प्रीत्यर्थ उसी के मनोभावों को वर्त्तमान काव्यरूप में बद्ध कर उसके समक्ष उपस्थित कर दिया हो और जनता ने बड़ी प्रसन्नता से इसे अपनी ही सामूहिक कृति मानकर कंठस्थ किया हो। ऐसी दशा में व्यक्ति-विशेष कवि होने पर भी उसके व्यक्तित्व का सामूहिक अभिरुचि के प्रबल प्रवाह में लुप्तप्राय हो जाना संभव है। अतएव हमारा अनुमान है कि व्यक्ति-विशेष का इसके बनाने में कुशल हाथ स्पष्टतः दृष्टिगोचर होते हुए भी सामूहिक भावनाओं की एकता और सहानुभूति एकत्रित होने के कारण कवि का व्यक्तित्व समूह में लुप्त हो गया है और अंत में मौखिक परंपरा से चला आता हुआ यह काव्य हमको किसी व्यक्ति-विशेष कवि की कृति के रूप में नहीं मिला बल्कि जनता के काव्य के रूप में उपलब्ध हुआ है।

रूपांतर नंबर २ में जो धुर-संबंध या प्रस्तावना मिलती है उसके चतुर्थ छंद में लिखा है—

गाहा गूढा गीत गुण कवित कथा कल्लोळ* ।
चतुर-तणा चित-रंजवण कहियइ कवि कल्लोळ† ॥

इस दूहे के आधार पर कल्पना की जा सकती है, जैसा एकाध महानुभाव ने किया भी है, कि इस काव्य का निर्माता कोई कल्लोल नाम का कवि होगा। ऐसा होना असंभव नहीं है पर फिर भी हम वर्त्तमान स्थिति में कल्लोल को इसका निर्माता नहीं मान सकते। पहले तो, धुर-संबंधवाला भाग आरंभ में मूलकथा का भाग नहीं था और बाद में जोड़ा हुआ है। दूहोंवाले रूपांतरों की प्रतियों में वह प्रायः मिलता भी नहीं। अतः उसकी प्रामाणिकता स्वीकार नहीं की जा सकती। दूसरे, अब तक की की हुई खोज से कल्लोल नाम के किसी कवि का पता नहीं चलता। यह नाम किसी व्यक्ति का होना अधिक संभव भी नहीं जान पड़ता। अतः जब तक इस विषय में और अधिक बातें न मालूम हो जायँ तब तक ढोला-मारूरा दूहा इस लोक-गीत के रचयिता के नाम को हम अंधकार में रहने देना ही उचित समझते हैं। उक्त दूहे में कल्लोल का सीधा-सादा अर्थ आमोद-प्रमोद-पूर्ण, अर्थात् उमंग के साथ कही हुई, मनोरंजक रचना लेना ही ठीक जान पड़ता है।

(५) काव्य की संक्षिप्त कथा

किसी समय पूगळ में पिंगळ और नरवर में नळ नामक राजा राज्य करते थे। पिंगळ के मारवणी नाम की एक कन्या थी और नळ के ढोला या साल्हकुमार नाम का एक पुत्र था। एक बार पूगळ देश में अकाल पड़ा तो पिंगळ सपरिवार नळ के देश में चला गया, जहाँ नळ ने उसे बड़े आदर के साथ ठहराया। ढोला को देखकर पिंगळ की रानी रीझ गई और उसने राजा पर जोर डालकर अपनी कन्या मारवणी का विवाह ढोला के साथ करवा दिया। उस समय ढोला की अवस्था तीन वर्ष की और मारवणी की डेढ़ वर्ष की थी। छोटी अवस्था होने के कारण पिंगळ ने मारवणी को ससुराल में नहीं रखा और पूगळ लौटते समय अपने ही साथ पूगळ ले आया। कई वर्ष बीत गए। उधर राजा नळ ने पूगळ को दूर जानकर और रास्ता भय-पूर्ण समझकर ढोला का दूसरा विवाह माळवा की राजकुमारी माळवणी के साथ

*पाठांतर—उकति कथा, कउतिग-कथा; कलोळ, किल्लोळ, उल्लोळ।
† किल्लोळ।

कर दिया और उसके पूर्व-विवाह की बात उससे छिपा रखी। ढोला और माळवणी प्रेमपूर्वक बड़े आनंद से रहने लगे।

इधर मारवणी बड़ी हुई तो उसके पिता पिंगळ ने ढोला को बुलाने के लिये कई दूत भेजे, परंतु माळवणी ने सौतियाडाह-वश पूगळ से आनेवाले रास्ते पर ऐसा प्रबंध कर रखा था कि जिससे दूत ढोला के पास संदेश लेकर पहुँचने से पहले ही मार डाले जाते थे। मारवणी अब युवती हो गई। एक दिन सोती हुई उसने स्वप्न में ढोला को देखा। उसकी विरह पीड़ा जागरित हो उठी। उसी समय नरवर की ओर से घोड़ों का एक सौदागर पूगळ में आया। उसने ढोला के दूसरे विवाह की बात पिंगल से कही। राजा पिंगळ ने ढोला को बुलवाने के लिये अपने पुरोहित को भेजना चाहा पर रानी के कहने से ढाढियों को इस कार्य के लिये चुना। मारवणी ने भी अपना संदेश ढाढ़ियों को कह दिया।

ढाढ़ियों ने अपने गान द्वारा माळवणी के आदमियों (पहरेदारों) को प्रसन्न कर लिया और उन्होंने उन्हें निष्पाप याचक समझकर जाने दिया। ढोला के महल के नीचे डेरा डालकर ढाढ़ियों ने रात भर माँड राग के करुण स्वर में मारवणी का प्रेम-संदेश गाया जिसको ढोला ने सुना। गान को सुनकर ढोला व्याकुल हो उठा और प्रातःकाल होते ही उसने उन्हें बुला भेजा और सब हाल मालूम करके यथायोग्य उत्तर और इनाम देकर विदा किया। ढोला के चित्त में उत्कंठा और व्यग्रता बढ़ गई। माळवणी ने चतुरतापूर्वक पति के दिल की बात जान ली। ढोला ने मारवणी को लिवा लाने की इच्छा प्रकट की, परंतु माळवणी ने अनुनय-विनय करके ग्रीष्म और वर्षा भर ढोला को रोक रखा। अंत में शरद् ऋतु की एक आधी रात्रि को माळवणी को सोती हुई छोड़कर ढोला चुपके से एक तेज चालवाले ऊँट पर सवार होकर पूगळ की ओर चल पड़ा। प्रस्थान करते समय ऊँट की बलबलाहट को सुनकर माळवणी जागी और ढोला को न पाकर दुखी हुई। पीछे से उसने अपने तोते को समझाकर पति को लौटाने के लिये भेजा। तोते ने चंदेरी और बूँदी के बीच में एक तालाब पर ढोला को दँतुवन करते हुए पाया और कहा कि उसके विरह में माळवणी मर गई है। ढोला समझ गया और उसने उत्तर में तोते से कहा कि तू जाकर यथाविधि उसकी अंत्येष्टि कर दे। तोता लौटा। माळवणी निराश हो गई। ढोला आगे चला। तीसरे पहर उसने आडावळा पहाड़ को पार कर लिया। मार्ग में ढोला को ऊमर-सूमरा

का एक चारण मिला, जो ऊमर की ओर से मारवणी के साथ उसके विवाह का प्रस्ताव लेकर पिंगळ के पास गया था, परंतु हताश होकर लौटा आ रहा था। उसने ईर्ष्यावश ढोला से कहा कि मारवणी तो अब बुढ़िया हो गई है, तू जाकर क्या करेगा? यह सुनकर ढोला को चिंता और विरक्ति होने लगी। परंतु थोड़ी ही दूर आगे जाने पर वीसू नाम का दूसरा चारण मिला जिसने मारवणी का सच्चा-सच्चा हाल बताकर ढोला की चिंता मिटाई।

अब ढोला पूगळ पहुँच गया। ससुराल में बड़ा स्वागत हुआ। बधाइयाँ हुईं। पिंगळ ने खूब आनंदोत्सव मनाए। मारवणी के हर्ष का पार न रहा। जिस प्रकार सूखी हुई वल्लरी समय पर वर्षाजल पा जाने से पुनः लहलहा उठती है, उसी तरह मारवणी भी पुनर्जीवित हो उठी। पंद्रह दिन आनंद भोगकर—बहुत-सा दहेज, धन, दास-दासी लेकर—मारवणी सहित ढोला नरवर को विदा हुआ। मार्ग में एक विश्राम-स्थल पर सोती हुई मारवणी को पीवणे साँप (राजस्थान के एक जहरीले साँप) ने पी लिया। सवेरे जागने पर ढोला ने मारवणी को मरी पाया। वह विलाप करने लगा और चिता बनाकर साथ जलने को उद्यत हुआ। जिस समय चिता-प्रवेश की तैयारी हो रही थी, उस समय एक योगी और योगिन इस मार्ग पर आ निकले। योगिनी के अनुरोध से योगी ने मारवणी को अभिमंत्रित जल द्वारा जीवित कर दिया। ढोला प्रसन्न हुआ और आगे चला।

इस समय तक ढोला की यात्रा की खबर दुष्ट ऊमर-सूमरा को हो गई थी। मारवणी को छीन लेने की इच्छा से वह फौज सहित बीच में आ डटा। ढोला से मिलने पर उसने कपटपूर्वक उसका खूब सत्कार किया। ढोला उसकी धोखे की बातों में आकर उसके साथ ठहर गया। ऊमर की सेना के साथ मारवणी के पीहर की एक डूमणी (गायिका) थी। उसने गाते हुए, इशारे से, मारवणी को इस धोखे और षड्यंत्र की बात समझा दी। समझकर मारवणी ने अपने ऊँट को जोर से छड़ी से मारा। ऊँट भाग खड़ा हुआ। ढोला जब ऊँट को सम्हालने के लिये आया तब मारवणी ने उसको चुपके से षड्यंत्र की बात कह सुनाई। झटपट दोनों ऊँट पर सवार हो गए। ऊँट पूरे वेग से दौड़ पड़ा और देखते-देखते कोसों दूर निकल गया। ऊमर ने सेना सहित पीछा किया परंतु उसे हताश होकर वापिस लौटना पड़ा।

ढोला मारवणी सहित सकुशल नरवर पहुँच गया। उसके पिता ने धूम-धाम से दोनों का स्वागत करके महलों में प्रवेश कराया। अब ढोला,

मारवणी और माळवणी तीनों आनंदपूर्वक सुख से रहने लगे। एक दिन माळवणी ने मारवाड़ देश की निंदा की। उत्तर में मारवणी ने मालवा की बुराई और मारवाड़ की प्रशंसा की। ढोला ने दोनों को समझाकर झगड़ा मिटा दिया।

(६) लोक-गीत (Ballad)

ऊपर कहा जा चुका है कि ढोला-मारूरा दूहा एक जनप्रिय लोक-गीत है। उसके विषय में कुछ कहने के पूर्व इस बात पर विचार कर लेना उचित होगा कि लोक-गीत या गीतकाव्य (Ballad) किसे कहते हैं और उसकी क्या-क्या विशेषताएँ हैं। हिंदी के लिये यह एक रोचक और नया विषय है। इसकी विवेचना करने के लिये हमें पाश्चात्य विद्वानों की खोज से लाभ उठाना पड़ेगा और उनके सिद्धांतों का अनुशीलन करने से हमें इस विषय में कई नई बातें मालूम होंगी।

डाक्टर रवींद्रनाथ ठाकुर के कुछ आधुनिक गीतों की समीक्षा करते हुए एक स्थान पर भारतीय इतिहास के विद्वान् सर जदुनाथ सरकार ने लोक-गीत (Ballad) की व्याख्या यों की है—

"Rapidity of movement, simplicity of diction, primary emotions of universal appeal, action rather than subtle analysis, broad striking characterisation, 'thumb-nail sketches' of background and the sparest use (or rather complete avoidance) of literary artifices—these are the essential requisites of the true ballad."

(अर्थात्—प्रबंध की द्रुत गति, शब्द-विन्यास की सादगी, विश्वव्यापक मर्मस्पर्शी प्राकृतिक और आदिम मनोराग, सूक्ष्म भावविश्लेषण के बजाय व्यापार की प्रधानता, स्थूल किंतु प्रभावोत्पादक चरित्र-चित्रण, क्रीड़ास्थली अथवा देश-काल का स्थूल अंकन, साहित्यिक कृत्रिमताओं का न्यूनातिन्यून प्रयोग या सर्वथा बहिष्कार—सच्चे लोक-गीत की ये नितांत आवश्यक विशेषताएँ हैं।)

ये तो साधारण बातें हैं जो प्रत्येक लोक-गीत (Ballad) में पाई जाती हैं। यदि सूक्ष्म रीति से विश्लेषण करके देखा जाय तो कई विशेषताएँ

लोक-गीत में दृष्टिगोचर होती हैं, जो इतर साहित्य-विभागों में नहीं पाई जातीं। उनमें से कुछ का संकलन नीचे किया जाता है—

(१) सबसे पहली जानने योग्य बात यह है कि लोक गीत को कलात्मक साहित्य (Literature) का अंग न कहकर अनुश्रुति (Lore) की परंपरा में समझना चाहिए। हम पहले कह आए हैं कि कलात्मक कविता (साहित्य) और लोक-गीत की प्राकृतिक कविता में रात-दिन का अंतर है। अँगरेजी गीत-काव्यों के अनुसंधान करनेवाले एक विद्वान्, प्रोफेसर किटरिज, लिखते हैं—

"In studying ballads, then, we are studying the poetry of the folk and the poetry of the folk is different from the poetry of art."

(अर्थात्—इस प्रकार, लोक-गीतों के अध्ययन करने का अर्थ जनता के काव्य का अध्ययन करना है और जनता का काव्य कलापूर्ण काव्य से भिन्न है।)

इसी विषय के दूसरे विद्वान् मिस्टर सिजविक लिखते हैं—

"It is older than literature, older than alphabet It is lore and belongs to the illiterate."

(अर्थात्—लोक-गीत की सृष्टि साहित्य की सृष्टि से, यहाँ तक कि वर्ण-माला की सृष्टि से भी पहले की है; वह अनुश्रुति का अंग है और निरक्षर जनता की संपत्ति है।)

इन उद्धरणों का आशय यह है कि साहित्य की उत्पत्ति से बहुत पहले, जब मनुष्यों ने पढ़ना-लिखना नहीं सीखा था तभी से, मौखिक आवृत्ति के रूप में लोक-गीत हमारी पैतृक संपत्ति के रूप में अब तक चले आ रहे हैं। अतएव धारणा यह होती है कि लिखित साहित्य से पूर्वकालीन होने के कारण हम लोक-गीतों को साहित्य-संज्ञा में नहीं गिन सकते। परंतु पाश्चात्यों का यह विचार सर्वथा युक्ति-संगत नहीं जँचता। उनकी साहित्य की परिभाषा जितनी संकुचित है उतना ही उनका यह विचार भी संकुचित है। भारतीयों ने साहित्य और काव्य की सीमा को मानव-जीवन की सीमा से मिलाकर उतना ही व्यापक और विस्तृत रखा है। कोई भी रस-परिपुष्ट मानव-विचार, चाहे वह जीवन के किसी अंग से संबंध क्यों न रखता हो, साहित्य और काव्य का विषय बन सकता है, फिर चाहे वह लिखित रूप में हो अथवा मौखिक रूप में।

(२) गीत-काव्यों के संबंध में दूसरी स्मरण रखने योग्य बात है उनकी मौखिक परंपरा (Oral Tradition)। प्रत्येक गीत-काव्य अपना वर्त्तमान लिखित स्थूल रूप धारण करने से पहले मौखिक परंपरा के तरल रूप में अवश्य रहा है और समयांतर में भूतकाल से वर्त्तमान में आने का उसका मार्ग मौखिक आवर्त्तन अवश्य रहा है। आज भी हम देहातों में जाकर देखें तो हजारों गीत, आख्यायिकाएँ एवं दंतकथाएँ गाँव के अपठित लोगों के मुख से, अथवा चारण-भाट-बंदीजनों के मुख से सुनने को मिलेंगी। इनमें से कुछ, अधिक हृदयस्पर्शी होने के कारण, विशेष प्रचलित हो जाते हैं और अंत में किसी अक्षरज्ञाता उत्साही पुरुष के हाथ में पड़कर पुस्तक के लिखित रूप को धारण कर लेते हैं। देश, काल और वक्ता के भेद के अनुसार इन मौखिक परंपरागत गीतों के अनेक रूप उपलब्ध होते हैं, जिनमें से कई लेखबद्ध हो जाते हैं। इस विषय में प्रो० किटरिज लिखते हैं—

To this oral literature education is no friend, culture destroys it with amazing rapidity. When a nation learns to read, it begins to disregard its traditional tales, it feels a little ashamed of them and finally it loses both the will and the power to remember and transmit them. What was once the folk as a whole becomes the heritage of the illiterate only and soon, unless it is gathered up by the antipuary, vanishes altogether.

(अर्थात्—शिक्षा इस मौखिक साहित्य की मित्र नहीं होती। सभ्यता की वृद्धि उसे आश्चर्य-जनक शीघ्रता के साथ नष्ट कर देती है। जब कोई जाति लिखना-पढ़ना सीख जाती है तो वह अपनी परंपरागत कथाओं की अवहेलना करने लग जाती है—उनसे वह थोड़ी-बहुत लज्जा भी अनुभव करने लगती है—और अंत में वह उनको याद रखने तथा पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित करने की इच्छा एवं शक्ति से हाथ धो बैठती है। जो चीज कभी समस्त जनता की थी वह केवल निरक्षरों की संपत्ति रह जाती है और यदि पुरातत्त्व-प्रेमियों द्वारा संगृहीत न कर ली जाय, तो सदा के लिये विलुप्त हो जाती है।)

संक्षेप में, लोक-गीतों के वर्त्तमानकालीन ह्रास का यही मुख्य कारण है।

(३) तीसरी विशेषता यह है कि लोक-गीतों में कवि अथवा काव्य-निर्माता के व्यक्तित्व का सर्वथा अभाव रहता है। उत्तरकालीन कलात्मक कविता में कवि का व्यक्तित्व उसकी कृति में प्रतिफलित होता रहता है। गीत-काव्यों में अव्यक्तित्व की विशेषता रहती है। लोक-गीतों के सबसे बड़े पश्चात्य पंडित और अन्वेषण-कर्त्ता प्रोफेसर चाइल्ड (prof. F. J. Child) ने दोनों प्रकार के काव्यों का भेद स्पष्ट करते हुए यों लिखा है—

"The historical and natural place of the ballad is anterior to the appearance of poetry of art to which it has formed a step and by which it has been regularly displaced and in some places all but extinguished."

और भी—"The condition of society in which a truly national and popular poetry appears explains the character of such poetry. This is a condition in which the people are not divided by political organisation and book-culture into marked distinct classes ; in which, consequently, there is such community of ideas and feelings that whole people from one individual. Such poetry, accordingly, while it is in its essence an expression of our common human nature and so of universal and indestructible interest, will, in each case, be differentiated by circumstances and idiosyncracy. On the other hand, it will always be an expression of the mind and heart of the people as an individual and never of the personality of individual men. The fundamental characteristic of popular ballads is, therefore, the absence of subjectivity and of self-consciousness ··· ··· ... ··· . The author counts for nothing and it is not by mere accident but with the best reasons that they have come down to us anonymous."

प्रोफेसर चाइल्ड की सम्मति को हमने सविस्तर उद्धृत किया है क्योंकि उपर्युक्त सारी बातें **ढोला-मारूरा दूहा** के संबंध में लागू होती हैं और आगे चलकर हम इनके सिद्धांतों के आधार पर ग्रंथसंबंधी बहुत-सी उलझनों को सुलझाने की चेष्टा करेंगे।

(४) चौथी विशेषता लोक-गीतों की यह है कि उनका यदि कोई रचयिता हो सकता है तो वह जन-समुदाय ही हो सकता है न कि व्यक्ति-विशेष। इस विषय में पाश्चात्य विद्वानों के भिन्न-भिन्न मत हैं।

प्रसिद्ध कहानी-लेखक जेम्स ग्रिम का मत है कि लोक-गीत का रचयिता व्यक्ति नहीं, बल्कि जन-समुदाय (Das Volksdichter) है; क्योंकि लोक-गीतों में जन-समुदाय की आत्मा संपूर्ण रूप में प्रकाशित होती है। इन्हीं से कुछ मिलती-जुलती प्रो० किटरिज की राय है। मानव-जाति-विज्ञान (Anthropology) का आधार लेकर और मानव-समुदाय के आदिम संस्कार को संबंधी अन्वेषणों दृष्टांत में रखकर वे अनुमान करते हैं कि जन-समुदाय का काव्य-निर्माता होना असंभाव्य बात नहीं है। समाज की आदिम अवस्था में जब कोई स्मरणीय घटना होती—यथा, कोई व्यक्ति वीरता का कोई काम करते या समाज में कोई आनंदोत्सव का अवसर उपस्थित होता—तो समुदाय एकत्रित होकर उसमें भाग लेता होगा। उस समय उस समुदाय की मनोवृत्तियाँ और भावनाएँ करीब-करीब एक ही लक्ष्य की ओर उद्दिष्ट रहती होंगी। ऐसी दशा में संवेदना, सहानुभूति और एकता के भावों से प्रेरित होकर यदि उस समुदाय के सारे व्यक्तियों के भावए क ही प्रकार से प्रकाशित हों, तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। अतएव ऐसी परिस्थिति में निर्मित काव्य का निर्माता व्यक्ति न होकर समुदाय ही कहा जायगा—The folk is the author.

इस कल्पनात्मक अनुमान में तथ्यांश बहुत थोड़ा प्रतीत होता है। कल्पना में सब कुछ संभव हो सकता है, परंतु वास्तव में क्या होता रहा होगा, यह कौन कह सकता है। समय में चाहे कितना ही भारी अंतर क्यों न हो गया हो, मानव-समाज की व्यापक और संस्कारारूढ़ साधारण प्रवृत्तियाँ हर्ष, क्रोध, ईर्ष्या, दुःख, भय, क्षोभ—जो हजारों वर्ष पहले रही होंगी, वे ही करीब-करीब आज भी हैं। फिर यह कैसे मान लिया जाय कि जो बात आज होनी असंभव-सी प्रतीत होती है वह हजार वर्ष पहले संभव होती थी। यह मानने में किसी प्रकार की आपत्ति नहीं होती कि विशेष प्रकार की रागात्मक

मनोभावनाओं के तीव्र रूप में उद्भासित होने के अवसरों पर लोक-गीत बनते हैं और उनको बनाने की प्रेरणा करनेवाला-जन समुदाय ही होता है, परंतु जन-समुदाय की उत्तेजित मनोवेदनाओं को ऐक्य-सूत्र में बद्ध कर गीत रूप में संघटित करनेवाला जरूर कोई न कोई उसी समाज का प्रतिभा-संपन्न व्यक्ति रहता होगा। यही युक्ति-संगत भी जँचता है।

इसी विषय के एक और पाश्चात्य विद्वान् प्रो० गम्मीयर (Prof Gummere) हैं, जिन्होंने लोक-गीत की उत्पत्ति मानव सभ्यता के प्रारंभ काल में मानी है। संगीत और नाट्य-तत्वों को आधार-स्तंभ मानकर उन्होंने लोक-गीत की व्याख्या यों की है—

"The popular ballad is a narrative lyric made and sung at the dance and handed down in popular tradition. ... ... The making of the original ballad is a choral dramatic process and treats a situation, the traditional course of the ballad is really an epic process which tends more to treat a series of events as a story."

पाश्चात्य देशों में लोक-गीतों के संबंध में साधारणतः यही मत प्रचलित है। लोक-गीत (Ballad) शब्द का सर्वसम्मत पारिभाषिक अर्थ लिया जाय, तो यही आशय होता है। अँग्रेजी का Ballad शब्द पुराने फ्रेंच शब्द Ballare से निकला हुआ है, जिसका अर्थ होता है नाचना। इससे यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन काल में जातीय या धार्मिक उत्सवों, अथवा किसी विशेष घटना, को मनाने के लिये जन-समुदाय एकत्र होकर गान और नाच द्वारा घटना-संबंधी संस्मृतियों को तत्क्षण काव्यबद्ध करता था और बड़ी रुचि के साथ उसे स्मृति में रक्षित कर, यदा-कदा, यत्र-तत्र, गाया करता था। समयांतर में इस ढंग पर गीत बनाने का एक ढर्रा पड़ गया और सारे गीत एक छंद विशेष में बनने लगे, जिसका नाम भी Ballade छंद पड़ गया।

संगीत और कविता का आदिम काल से ही इतना घनिष्ठ संबंध रहा है कि लोक-गीत की उत्पत्ति के संबंध में ये कल्पनाएँ युक्तिसंगत और स्वाभाविक प्रतीत होती हैं। संस्कृत शब्द **लोक-गीत** या **गीत-काव्य** से भी संगीत की प्रधानता द्योतित होती है। इसमें किसी प्रकार का संदेह नहीं है

कि मानव-हृदय की आदिम मनोवृत्तियों को प्रकाशित करने में संगीत ने बड़ा भारी सहयोग किया है। भारतीय सभ्यता और धर्म के आधार-स्तंभ वेदों की अनंत ज्ञानराशि संगीतमय ऋचाओं के अनर्गल प्रवाह में प्रवाहित हुई और चारों वेदों में से एक प्रमुख वेद—सामवेद—गान के विशिष्ट रूप में प्रकट हुआ। किसी समय में सामगान भारतीयों को बड़ा प्रिय था।

दूसरी प्रधानता जो लोक-गीतों में पाई जाती है वह है उनका नाट्य और अभिनेय गुणों से युक्त होना। नाट्य में हाव-भाव-हेला-प्रदर्शन तथा नृत्य सभी प्रदर्शनीय अभिनय-गुण रहते हैं। अभिनय और नृत्य द्वारा मानव-अभिरुचि का आकर्षण सहज ही में किया जा सकता है। यदि भारतीय नाटकों की उत्पत्ति की ओर दृष्टिपात किया जाय तो यह बात तथ्ययुक्त प्रमाणित होगी कि धार्मिक प्रेरणाओं से उत्साहित होकर जनता प्राचीन काल में देवमंदिर अथवा किसी अन्य पवित्र स्थान में एकत्र होकर किसी समकालीन अथवा पूर्व-घटित घटना की स्मृति में कीर्तन, गुण-गान, नृत्य आदि किया करती थी और ऐसे ही अवसरों पर हाव-भाव अभिनय द्वारा किसी वीर अथवा धार्मिक पुरुष के कार्यों का रूपक रचकर प्रदर्शन किया करती थी। पुराणों में उल्लेख मिलता है कि श्रीकृष्ण के पुत्र-पौत्रों ने नागरिकों को एकत्र कर समारोह सहित द्वारका में इस प्रकार के रूपक का अभिनय किया था। 'नाटक' शब्द की प्रकृति नट् धातु यही प्रमाणित करती है। भारतीय नाटकाचार्यों—भरत और धनंजय—का भी यही मत है कि मानव-हृदय की भावनाओं को प्रकाशित करने में नृत्य ने आदिकाल से सहयोग किया है। अतएव पाश्चात्यों का यह कहना कि संगीत और नृत्य के रूप में लोक-गीतों का साहित्य के इतिहास में सर्वप्रथम विकास हुआ, भारतीय आचार्यों के सिद्धांतों से बहुत कुछ मेल खाता है और यह ग्राह्य भी होना चाहिए।

प्रो० गम्मीयर ने लोक-गीतों की उत्पत्ति के विषय में इस बात पर विशेष जोर दिया है कि लोक-गीत के निर्माण का कार्य अचिंतित पूर्व (Improvised) कृत्य है अर्थात् किसी घटना को मानने के लिये उपस्थित जन-समूह का उत्तेजित हृदय नाचते-गाते हुए तत्क्षण ही सामूहिक प्रयास के रूप में गीत काव्य की रचना कर देता है। इस मत (Improvisation theory) को बहुत कम विद्वान् मानते हैं। प्रो० चाइल्ड यद्यपि अभिनय और संगीत के गुणों को प्रधानता देते हैं परंतु उन्होंने नृत्य और संगीत ही से लोक-गीत की निश्चित रूप से उत्पत्ति नहीं बताई है। उनके मतके झुकाव से ऐसा

प्रतीत होता है कि प्राचीन काल में चारणों अथवा भाटों की जाति-विशेष में वंश-परंपरा से यह काम रहा होगा कि वह जन-अभिरुचि के अनुरूप समय-समय पर गीत-काव्य बनाकर समुदाय में उनका प्रचार करे। लोक गीत-साहित्य का सूक्ष्म अध्ययन करने के बाद उनकी धारणा है कि—There is the genuine ring of the best days of minstrelsy.

लोक-गीत की उत्पत्ति और परिभाषा के विषय पर मत-मतांतर के इस झगड़े को यहीं छोड़कर लोक-गीतों के विकास के रोचक विषय पर कुछ कहना उचित होगा।

गीत-काव्य जनता का, जनता के लिये निर्मित, और जनता द्वारा निर्मित, लोकप्रिय काव्य है। कलात्मक कविता के विपरीत इसकी विशेषता यह होती है कि इसमें मानव-समाज की आदिम मनोवृत्तियाँ और भावनाएँ, उनके हर्ष-उल्लास, शोक-विषाद, प्रेम-ईर्ष्या, भय-आशंका, घृणा-ग्लानि, आश्चर्य्य-विस्मय, भक्ति-निवृत्ति आदि भाव अपने सरल से सरल और विशुद्ध रागात्मक रूप में प्रकाशित होते हैं। इसमें सभ्य जीवन का कृत्रिम आडंबर अलंकार की अस्वाभाविक चमत्कृति और प्रपंचमय जीवन की कपटपूर्ण प्रवंचना का बहुत कम आभास मिलता है। वास्तव में सच्चा काव्य वही है जिसमें मानव-जीवन का निष्कपट अभिव्यंजन होता है। सच तो यह है कि जब से मनुष्य ने अपना आपा सँभाला है, जब से वह बुद्धिमत्ता का ढोंग रचने लगा है, बुद्धिमत्ता की बहक में जब से उसने मस्तिष्क के सामने हृदय की सत्ता का तिरस्कार करना श्रेयस्कर समझ लिया है तभी से सच्ची, हृदय-स्पर्शी, नैसर्गिक कविता का ह्रास होने लगा है और उसका स्थान कृत्रिम तथा भावशून्य, आडंबरपूर्ण कविता ने ग्रहण कर लिया है। विशाल गगन में स्वच्छंद परों को फटफटाती हुई और गाती हुई, यथेच्छ कड़ुवे-कसैले अथवा मधुर फलों के स्वाद को चखती हुई और वन्य सरिताओं का निर्मल जलपान करती हुई वन-वन में विचरण करनेवाली मनमौजी चिड़िया के संगीत में और सोने के पिंजड़े में जकड़ी हुई, अपनी इच्छा के विरुद्ध उत्तमोत्तम पदार्थों का भोग करती हुई, अपने मानव स्वामी के रटाए हुए कुछ शब्दों को रटती हुई चिड़िया में जो अंतर है, वही अंतर इस स्वच्छंद प्राकृतिक कविता और अर्वाचीन काल की प्रथाबद्ध कविता में है।

संसार की जातियाँ और देश भिन्न-भिन्न हैं परंतु मानव-समाज की

व्यापक एकता लगभग सभी देशों और जातियों में एक-सी है। यही कारण है कि लोक-गीतों के अन्वेषकों ने संसार के भिन्न-भिन्न भूभागों की भिन्न-भिन्न जातियों के लोक-गीतों में विषय और वर्णन-शैली तथा अन्यान्य विशेषताओं की आश्चर्यजनक समानता पाई है। कहीं-कहीं तो कथाएँ तक मिलती-जुलती हैं। क्या यूरोप, क्या मिस्र, क्या भारत और क्या अन्यान्य देश, प्रायः सभी देशों के प्राचीन गीत-काव्यों का मिलान करके हम देखें तो वही प्राकृतिक सरलता, वही आडंबर शून्यता, वही अंधविश्वासों की बहुलता, वही प्रेम, ईर्ष्या, वीरता आदि भावों की द्योतक रोचक कथाएँ प्राप्त होती हैं। यहाँ तक कि विचारशील मस्तिष्क में यह भाव जागरित हुए बिना नहीं रह सकता कि उत्तर काल के मत-मतांतरों, सभ्यता और धर्म-संबंधी भेदों से विश्रृंखलित संसार की जनता यदि भाई-भाई की तरह प्रेमपूर्वक किसी स्थान पर मिल सकती है तो इन्हीं गीत-काव्यों और परंपरागत गाथाओं के विशिष्ट रंगमंच पर।

विद्वानों ने अन्वेषण करके मालूम किया है कि संसार के सभी देशों के गीत-काव्यों में विषय और शैली की समानता है। उनमें से कुछ समानताओं का यहाँ उल्लेख किया जाता है—

(१) अपने सच्चे प्रेमी को पाने के लिये प्रेमी अथवा प्रेमिका का प्राण-पण से प्रयत्न करना और अनेक बाधाओं को हटाकर उसे प्राप्त कर लेना तथा आसुरी रीति से ब्याह कर लेना।

(२) सौतिया डाह अथवा सौतेली माता की ईर्ष्या के कारण प्रेममार्ग पर भयंकर दुर्घटनाओं का घटित होना।

(३) प्रेम में विश्वासघात के फल-स्वरूप अनेक विषम दुर्घटनाएँ होना।

(४) आदर्श वीरता के आख्यान।

(५) पहेलियों द्वारा मानव-भाग्य का निपटारा किया जाना। विशेषतः पहेलियों के शुद्ध उत्तर के परिणाम में प्रेमी दंपति का मिलन होना। इसकी सभी देशों के लोक-गीतों में चर्चा मिलती है।

(६) पुनर्जीवन के सिद्धांत में संसार-व्यापी विश्वास।

(७) अलौकिक सत्ता में आस्था और विश्वास (Supernatural belief), और साथ ही भूत-प्रेत, डाइन और परियों में विश्वास।

(८) कहानी का उपदेशदायक (Didectic) न होकर सीधे और रोचक ढंग से कहा जाना ।

(९) धार्मिक सिद्धांतों की दृढ़ता की प्रशस्ति-स्वरूप बातें ।

(१०) पशु-पक्षियों द्वारा मानव-हित-संपादन ।

ये बातें साधारणतः संसार के सभी देशों के लोक-गीतों (Ballads) में पाई जाती हैं । **ढोला मारूरा दूहा** में इनमें से प्रायः सभी का प्रयोग हुआ है । न केवल विषय और प्रतिपादन-शैली की एकता, बरन् उस काल की भी एकता पाई जाती है, जब संसार भर में इन लोक-गीतों की एक बाढ़ सी आ गई थी । ईसा की तेरहवीं शताब्दी से सत्रहवीं शताब्दी (सं० १२००–१६०० तक) के बीच के युग को पाश्चात्य अन्वेषणों के आधार पर लोक-गीत का संसारव्यापी युग कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी ।

लोक-गीतों की बनावट और बाह्य रूप के संबंध में भी कुछ स्मरण रखने योग्य साधारण बातें हैं, जिनसे उनकी उत्पत्ति और विशेषता के कारणों पर प्रकाश पड़ता है । उनमें से कुछ ये हैं—

(१) प्रायः देखा जाता है कि प्राचीन ढंग के लोक-गीत में ध्रुवक (Refrain) का बहुधा प्रयोग मिलता है ।

ध्रुवक-प्रयोग के आधार पर लोक-गीत-साहित्य के शास्त्रीय अन्वेषकों ने यह अनुमान किया है कि यह प्रयोग उस प्राचीन प्रथा और सरल मानव-प्रवृत्ति का परिचायक है जब एक जन-समुदाय एकत्र होकर किसी घटना के संबंध में गान और नृत्य करता रहा होगा और सारा समुदाय नियत समय पर ध्रुवक को उठाकर गाने में पूर्ण सहयोग देता रहा होगा । अधिकांश गीत-काव्यों में ध्रुवक मिलता है, परंतु कुछ ऐसे भी हैं जिनमें इसका प्रयोग नहीं मिलता । ये रचनाएँ या तो पीछे की हैं जब ध्रुवक का प्रयोग न रहा होगा, अथवा ये किसी एक व्यक्ति (चारण अथवा भाट) की बनाई हुई हैं । पीछे से ध्रुवक-प्रयोग स्थगित कर दिया गया, ऐसा प्रतीत होता है ।

(२) आवृत्ति (Repetition) भी साधारणतः प्राचीन गीत-काव्यों का एक प्रमुख लक्षण है । ध्रुवक भी एक प्रकार की आवृत्ति ही है, परंतु वह आवृत्ति छंद के किसी विशेष स्थल पर नियमतः होती है—खासकर अंत में । **ढोला-मारूरा दूहा** में आवृत्ति का प्रयोग स्थान-स्थान पर मिलता है ।

कहीं तो पंक्ति-की-पंक्ति का आवर्त्तन मिलता है और कहीं पंक्ति के एक या दो शब्दों में परिवर्त्तन करके बार-बार दुहराया गया है, यथा—

बीजुळियाँ चहलावहलि आभय आभय कोडि।
कद रे मिलउँली सज्जना कस कंचूकी छोडि ॥४६॥
बीजुळियाँ चहलावहलि आभइ आभई च्यारि।
कद रे मिलउँली सज्जना लाँबो बाँह पसारि ४५॥

इसी प्रकार दूहा नं० ५४, ५५, ५६, ५८, ५९ के "कूँझड़ियाँ" वाले दूहों में आवृत्ति मिलती है।

इसी प्रकार "ऊनमियउ उत्तर दिसै" वाले दूहों में (देखो नं० १८, ४२, ४३ में) आवृत्ति है। यही प्रयोग ग्रंथ के और स्थलों में भी मिलता है। किसी एक बात अथवा भाव को बार-बार दुहराकर थोड़े से हेरफेर के साथ उसी भाषा में कहना प्राचीन ढंग की कविता में बहुत पाया जाता है। सामुदायिक रचना के सिवा इसका कारण यह भी हो सकता है कि विषय की ओर विशेष ध्यान आकर्षित करने के लिये दुहराना आवश्यक होता था।

(३) तीसरी बात जो साधारणतः इन प्राचीन काव्यों में पाई जाती है वह है संख्या के अंक सात (७) और तीन (३) का प्रचुर प्रयोग। इसका कोई निश्चित कारण तो मालूम नहीं होता कि प्राचीन जनसमाज को ये संख्याएँ क्यों विशेष प्रिय थीं, परंतु यह निःसंदिग्ध तथ्य है कि संसार के प्राचीन साहित्य में ये संख्याएँ विशेष प्रतिष्ठित हुई हैं। हिंदू-संस्कृति के अनुसार नौ की संख्या के साथ-साथ ये दानों संख्याएँ पवित्र और शुभ मानी गई हैं। त्रिदेव, त्रिलोक, त्रिगुण तथा सप्तद्वीप, सप्तर्षि, सप्तसमुद्र और नवनिधि, नवरत्न आदि गणनाओं के संसर्ग से ये संख्याएँ हिंदू-समाज में संस्कारारूढ़ परंपरा से प्रतिष्ठित हुई हैं।

लोक-गीत की उपर्युक्त विशेषताएँ काव्य के प्राचीन रूप की परिचायक हैं और इनसे उस समय के भोले-भाले, सरल, निष्कपट और अंधविश्वासी समाज का पता लगता है।

पाश्चात्य विद्वानों की खोज के परिणाम में लोक-गीतों के कई विभाग किए जा सकते हैं। उनमें से मुख्य विभागों का वर्णन नीचे किया जाता है—

(१) परंपरागत लोक-गीत (Traditional Ballad)—प्राचीनतम सच्चे गीत-काव्य यही गिने जाते हैं। वंश-परंपरा के क्रम से मौखिक

आवर्त्तन के रूप में ये हमें उपलब्ध हुए हैं। इनमें से कुछ तो लिपिबद्ध हो गए हैं और कुछ अब भी मौखिक गान के रूप में प्रचलित हैं। इनका निर्माता कोई व्यक्ति-कवि नहीं होता। तात्कालिक समाज को ही इनका रचयिता समझना चाहिए, क्योंकि कवि के व्यक्तित्व की छाप का इनकी बनावट में सर्वथा अभाव रहता है। वर्त्तमान काल में इस विशुद्ध कोटि का गीत-काव्य मिलना कठिन है।

(२) चारणी लोक-गीत (Minstrel Ballad)—इनकी रचना चारण, भाट, ढाढ़ी आदि ऐसी जातियों के व्यक्तियों द्वारा होती है जिनका काम जनता को गाकर सुनाना होता है। इनमें और प्रथम कोटि के गीतों में स्पष्ट भेद है कि ये एक कवि की व्यक्तिगत कृति होने के कारण गीत-काव्यों के और गुण रखते हुए साथ ही व्यक्तित्व की पूरी छाप भी रखते हैं और ये उतने सरल, प्राकृतिक और आडंबर-शून्य नहीं होते। ये अपेक्षाकृत पीछे के काल की कृतियाँ हैं।

(३) विकृत लोक-गीत (Broadside Ballad)—ये गीत आरंभ में तो परंपरा गीत ही होते हैं पर समय के बड़े अंतर से और निम्न कोटि की जनता के मुख में पड़कर वे असली गीत न केवल अपने मौलिक रूप को ही विकृत कर बैठते हैं वरन् कहीं कहीं तो मौलिक कहानी की घटनाएँ तक इतनी विकृत हो जाती हैं कि उसके असली रूप और वर्त्तमान रूप में आकाश-पाताल का अंतर पड़ जाता है। उत्तर भारत और मध्यप्रदेश में प्रचलित आल्हा का गीत इसी कोटि का है। **ढोला-मारू** गीत के भी कई विकृत रूप प्रचलित हैं जो देहात के ढाढियों के मुख से गान के रूप में सुने जाते हैं और जिसमें स्थान-स्थान पर कथा का अंग-भंग करके उसे विकृत बनाया गया है।

(४) साहित्यिक लोक-गीत (Literary Ballad)—पहले तीन प्रकार के लोक-गीत साहित्यिक विद्वानों से भिन्न व्यक्तियों की रचनाएँ होते हैं। उनमें साहित्यिक विधानों का अभाव रहता है। वे कलापूर्ण काव्य से सर्वथा भिन्न लोक-काव्य (Folk-Poetry) कहे जा सकते हैं। पर साहित्यिक लोक-गीतों की रचना प्राचीन लोक-गीतों के ढंग पर साहित्यिक कवियों द्वारा होती है। उनमें साहित्यिक विधानों का अभाव नहीं रहता यद्यपि बाहुल्य भी नहीं होता। ये गीत अपेक्षाकृत बहुत बाद की रचनाएँ हैं। सुभद्राकुमारी चौहान का **झाँसी की रानी** गीत इसी कोटि का है।

प्रस्तुत ढोला-मारू गीत को उपर्युक्त विभागों में से किसी भी एक के अंतर्गत नहीं किया जा सकता। प्रथम दोनों विभागों की विशेषताएँ इसमें पाई जाती हैं और किसी अंश तक तीसरे की भी। बहुत संभव है कि आरंभ में यह गीत किसी एक व्यक्ति की रचना हो क्योंकि हम यह कल्पना नहीं कर सकते कि किसी जन-समाज ने किसी एक स्थान पर एकत्र होकर इसके मूल रूप को निर्मित किया हो। पर आगे चलकर यह जनता की वस्तु बन गया और जनता द्वारा परिवर्त्तन एवं परिवर्धन उसमें बराबर होते रहे। इसके अतिरिक्त चारणी लोक-गीतों में कवि के व्यक्तित्व की पूरी छाप पाई जाती है पर ढोला-मारू में वह अविद्यमान है। अतः इस गीत की निर्मात्री वास्तव में जनता को ही समझना चाहिए। ढोला-मारू के आगे चलकर अनेक विकृत रूप भी बन गए जिनमें मूल गीत की कथा सर्वथा विकृत हो गई परंतु हमने जो प्राचीन रूप लिया है उससे इन विकारों का कोई संबंध नहीं।

ऊपर लोक-गीत की जो विशेषताएँ बताई गई हैं उनमें से प्रायः सभी ढोला-मारू में पाई जाती हैं। कहानी अथ से इति पर्यंत बड़ी द्रुत गति के साथ दौड़ती है। कथा की गति में विघ्न डालनेवाला अंश कथा भर में नहीं मिलता। बीच-बीच में संदेश, ऋतु वर्णन माळवणी-विरह-वर्णन, मारवणी-रूप-वर्णन आदि के जो लंबे व्यापारहीन वर्णन आए हैं, वे आरंभ में मूल-कथा के भाग न थे परंतु समय-समय पर बढ़ते रहे हैं। उनमें भी लोक-गीत की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता आवृत्ति का प्राधान्य है। इसी प्रकार न तो कहीं क्रीड़ास्थली अथवा देश-काल का वर्णन, और न कहीं मानसिक भावों का विश्लेषण हो कथा के व्यापार को शिथिल करता है। कहानी की क्रीड़ास्थली का अंकन अस्पष्ट रेखाओं के रूप में ही यत्र-तत्र हुआ है। चरित्र-चित्रण भी बहुत स्थूल है।

कहानी में भाव-संकुलता भी नहीं मिलती। प्रेम और प्रेमजन्य विकलता, ईर्ष्या, उत्साह, हर्ष आदि मोटे-मोटे भावों का ही वर्णन किया गया है। रचना-शैली अत्यंत सरल और सीधी है। कृत्रिम साहित्यिक विधानों का सर्वत्र अभाव सा है। एकाध मोटे-मोटे अलंकार कई-एक स्थानों पर आए हैं पर वे अपने-आप आए हुए और सर्वथा स्वाभाविक जान पड़ते हैं। कला के लिये जान-बूझकर किए हुए प्रयास का कहीं आभास नहीं मिलता।

लोक-गीतों में मुख्यतया श्रृंगार या वीर या दोनों की प्रधानता होती है। अन्य रसों की व्यंजना बीच-बीच में आवश्यकतानुसार होती है। ढोला-मारू में श्रृंगार-रस का प्राधान्य है अन्य रसों की व्यंजना बहुत ही कम नाम मात्र को, कहीं-कहीं हुई है। बहुतों की व्यंजना तो बिलकुल ही नहीं हुई। वस्तु-वर्णन के लिये भी कहीं विराम नहीं किया गया है।

लोक-गीत की कतिपय अन्यान्य विशेषताएँ ढोला-मारू में कहाँ-कहाँ पाई जाती हैं, इसका उल्लेख ऊपर उन विशेषताओं के वर्णन के प्रसंग में हो चुका है।

(७) प्रबंध-कल्पना और वर्णन

किसी भी संबद्ध कविता में, चाहे वह प्रबंध के रूप में हो अथवा गति के रूप में, घटनाओं का संक्रमण साधारणतः दो रीतियों से किया जाता है। कवि या तो घटनाक्रम को आदर्श परिणाम पर पहुँचाकर कोई लोकोपकारी आदर्श उपस्थित करता है, अथवा केवल कथानक की स्वाभाविक गति को ध्यान में रखते हुए मनुष्य-जीवन का सच्चा निष्कपट चित्र उपस्थित करता है, जिसमें घटनाओं का क्रम आदर्शोन्मुख न रखकर केवल उनके लोक-समन्वित व्यवहारशील स्वाभाविक रूप के सौंदर्य को प्रदर्शित करता है। पहले में उपदेश और नीतिपूर्ण परिणाम की प्रधानता होने के कारण वह कृत्रिम सा प्रतीत होता है, दूसरा लोक-समन्वित और स्वाभाविक होने से हमारे मन का अधिक अनुरंजन कर सकता है। पिछले प्रकार में यद्यपि कवि को यह स्वतंत्रता नहीं रहती कि वह जान-बूझकर नीति और सत्य के आदर्श मार्ग की अवहेलना करे परंतु उसका लक्ष्य रहता है प्रबन्ध-कल्पना द्वारा केवल उस नीति धर्म और सत्यता को सामने लाना जो लोक व्यवहृत और जनानुरंजनकारी हो। **ढोला मारू** का प्रबंध पिछली कोटि का है। यदि उसमें घटनाओं द्वारा किसी आदर्श परिणाम को दिखाने का लक्ष्य होता तो ऊमर-सूमरा और उसके दुष्ट चारण का परिणाम अवश्य दिखाया जाता, परंतु ऐसा नहीं किया गया। साथ ही नीति-धर्म और सत्य की अवहेलना भी नहीं की गई है, प्रेमियों को अपनी प्रेम-साधना के मार्ग में अनेक बाधाएँ उपस्थित होते हुए भी अभीष्ट का लाभ होता है।

प्रबंध की उत्तमता उसके दो अंगों के सम्यक निर्वाह से की जाती है। वे दो अंग हैं—इतिवृत्त के घटनाक्रम का स्वाभाविक विकास और

रसात्मक स्थलों का मर्मस्पर्शी ढंग से वर्णन। इतिवृत्त घटना के उल्लेख मात्र को कहते हैं, जैसे राम का वनवास के लिये प्रस्थान करना शुद्ध इतिवृत्त है परंतु वनवास को प्रस्थान करते हुए राम के हृदय की दशा को वर्णन कर कवि ग्रामवासी पुरुष और स्त्रियों की रागात्मक सहानुभूतियों को आकर्षित कर लेता है, तब वही रूखा-सूखा इतिवृत्त रस-परिपुष्ट होकर काव्य का सर्वोत्कृष्ट हृदयग्राही रूप धारण कर लेता है। इस प्रकार उपयुक्त इतिवृत्तात्मक स्थलों को रसात्मक स्थलों में परिवर्तित करके श्रेष्ठ कवि हमारी रागात्मक प्रवृत्तियों को जागरित करता रहता है जिससे काव्य-शरीर में रसात्मकता की विस्मृति नहीं होने पाती। तुलसीदासजी का काव्य सर्वोत्तम कोटि का सरस प्रबंध-काव्य है। दूसरी ओर कथासरित्सागर की, घटना-वैचित्र्य और कुतूहल से पूर्ण, कहानियाँ केवल इतिवृत्त का कथन करके हमारी जिज्ञासा-वृत्ति को सन्तुष्ट करती हैं। रसात्मक स्थलों द्वारा हृदय की रागात्मक वृत्तियों—रति, शोक, करुणा आदि—का संतोष होता है। मुक्तक और प्रबंध काव्य में बड़ा भारी भेद यही है कि जहाँ मुक्तक में केवल रस-पद्धति का उत्तम निर्वाह ही पर्याप्त होता है, वहाँ प्रबंध-काव्य में इतिवृत्त और रस दोनों का सोने और सुगंध का सा संयोग अभिप्रेत होता है। कोई भी कथा तब तक सुंदर काव्य का रूप धारण नहीं कर सकती जब तक इन दोनों अंगों का उचित और अन्योन्योपकारी रूप में संपोषण नहीं होता। यद्यपि यह कहना अनुचित न होगा कि प्रबंध को काव्यगुणों से विभूषित करने का अधिक श्रेय रसात्मक स्थलों के सम्यक निर्वाह पर ही निर्भर रहता है परंतु यदि कोई रस अथवा भाव परिस्थिति और घटना के विरुद्ध पड़ता हो तो वहाँ रस की स्थिति भौंड़ी सी अखरती है और प्रबंध के विकास में बाधक होती है।

अब यह देखना है कि ढोला-मारू के प्रेम-प्रबंध में मानव-जीवन के मर्मस्पर्शी घटनास्थलों को रसात्मक रूप में प्रकट करने में कहाँ तक सफलता हुई है।

ढोला-मारवणी की प्रेम-गाथा एक लोक-गीत है। अन्य प्रकार के प्रबंधों से इस काव्य में यह विशेषता है कि इसका लक्ष्य गीत द्वारा मानव रागात्मक वृत्तियों को आकर्षित करना होने के कारण इसमें इतिवृत्त की अपेक्षा रसात्मक स्थलों को प्रधानता दी गई है। सारे प्रबंध में रसात्मक स्थल हार के बहुमूल्य मुक्ताफलों की तरह पिरोए हुए हैं और इतिवृत्त का पतला

सा सूत्र सुवर्ण सूत्र की तरह इन मोतियों को एक लड़ी के रूप में पिरो देने के लिये व्यवहृत हुआ है। अतएव इस काव्य में घटनाओं की संकुलता, मनोरंजकता और विभिन्नता के सौंदर्य को दिखाने का इतना अवसर नहीं मिला जितना तुलसी को अपने रामचरित-मानस में अथवा जायसी को पद्मावत में, और न यह अभिप्रेत ही था।

कथा-विकास के क्रम से देखा जाय तो ढोला-मारू की कहानी में निम्नांकित रसात्मक स्थल बड़ी स्वाभाविकता और हृदयस्पर्शी मार्मिकता के साथ चित्रित हुए हैं—

(१) मारवणी से प्रेम की प्रारंभिक अवस्था में उसका स्वप्न में पति दर्शन, विरह-वर्णन, तथा उसकी चातक, सारस और क्रौंच (कुरझ) संबंधी उक्तियाँ।

(२) ढोला के प्रति मारवणी का संदेश।

(३) मारवणी का संदेश सुनकर ढोला की प्रेमजन्य व्याकुलता।

(४) प्रस्थान करते हुए ढोला को रोकने के लिये माळवणी का प्रयत्न और दंपति का प्रेमपूर्ण संवाद।

(५) माळवणी का विरह।

(६) ढोला और मारवणी का मिलन।

(७) माळवणी और मारवणी का संवाद।

इन रसात्मक स्थलों का कवि ने बड़े सुंदर और हृदयहारी रूप में वर्णन किया है, जिसका विस्तृत विवेचन संयोग और विप्रलंभ शृंगार के प्रसंग में आगे चलकर किया गया है।

रस-प्रधान होते हुए भी हम इस प्रेम-कहानी की घटनाओं के उचित आयोजन को भुला नहीं सकते। देखना यह है कि घटना का एक प्रसंग दूसरे प्रसंग से ठीक-ठीक शृंखलाबद्ध हुआ है या नहीं। यदि नहीं, तो हमें इस त्रुटि को अक्षम्य काव्य-दूषण समझना पड़ेगा।

भारतीय आचार्यों ने कथावस्तु (Plot) के दो अंग माने हैं—आधिकारिक या मुख्य और प्रासंगिक या गौण अथवा सहायक। ढोला-मारू की कहानी में इन दोनों का उचित निर्वाह हुआ है या नहीं, यह देखना है। प्रासंगिक वस्तु में साधारणतः कथा के नायक और नायिका के अतिरिक्त अन्य पात्र-संबंधी वृत्तांतों का विवरण होता है और वह हमेशा आधिकारिक या मुख्य वस्तु का सहायक बनकर उसकी गति को आगे बढ़ाता है अथवा

परिणाम की ओर मोड़ता है। इस कहानी में, ढोला और मारवणी का, प्रेम वृत्तांत आधिकारिक वस्तु है। यह काव्य पात्र-प्रधान है, घटना-प्रधान नहीं। ढोला इसका नायक और मारवणी इसकी नायिका है। कथा का कार्यरूप परिणाम है ढोला का मारवणी का विरह-दुःख से उद्धार कर उसको अपने घर लाना। इस परिणाम अथवा लक्ष्य की ओर सभी प्रासंगिक वृत्तांतों का सहायक के रूप में प्रवाह होना चाहिए। ठीक ऐसा ही हुआ भा है। इस प्रेम-कहानी की प्रासंगिक कथाएँ मुख्यतः ये हैं—

(१) घोड़ों के सौदागर का पूगळ में आकर समाचार देना।

(२) माळवणी की प्रार्थना पर ऊँट का लँगड़ा होना।

(३) माळवणी द्वारा प्रेरित सुए का ढोला को लौटा लाने के लिये जाना।

(४) ऊमर के दुष्ट चारण का षड्यत्र और मारवणी-संबंधी झूठी-सूचना देकर ढोला को प्रयत्न से विमुख करने की चेष्टा करना।

(५) ऊमर-सूमरा का ढोला को धोखा देकर मारवणी का हरण करने का दुष्ट प्रयत्न।

अब यदि देखा जाय तो ये सभी प्रासंगिक घटनाएँ किसी न किसी रूप में सहयोग देकर अथवा संघर्ष उत्पन्न कर कार्य को अंतिम लक्ष्य की ओर प्रेरित करने में सहायक होती हैं। पाश्चात्य काव्याचार्य अरिस्टॉटल ने प्रबंध के सुगठन की कसौटी कार्यसमन्वय (Unity of Action) को बताया है। उस सिद्धांत का निर्वाह इन प्रासंगिक वृत्तांतों द्वारा बड़ी अच्छी तरह से हुआ है।

अरिस्टॉटल ने सिद्धांततः काव्य की कथावस्तु को तीन प्राकृतिक विभागों में विभाजित किया है—(१) आदि, (२) मध्य और (३) अंत। यह भी लिखा है कि इन तीनों का संबंध अन्योन्याश्रित, एक दूसरे से संश्लिष्ट और स्वाभाविक रीति से जुड़ा हुआ होना चाहिए और साथ ही कथावस्तु का कार्य महत्त्वपूर्ण होना चाहिए। इस दृष्टि से देखने पर ढोला-मारू की कथा का कार्य महत्त्वपूर्ण अवश्य है। अपनी विवाहिता स्त्री के अनेक कष्टों और अवरोधों को दूर कर उसे ले आना—इससे बढ़कर पवित्र, महत्त्वशील और लोक-शास्त्र-मर्यादा-विहित दूसरा कौन सा कार्य होगा। कार्य के अनुरूप नायक और नायिका का प्रेम-प्रयास भी उतना ही महत्वशील है।

ढोला की कहानी के तीन प्राकृतिक विभाग किए जा सकते हैं—

(१) आदि भाग—मारवणी के स्वप्नदर्शन-जन्य पूर्वराग से लेकर मारवणी के ढोला को संदेश भेजने तक।

(२) मध्य भाग—ढोला की मारवणी-विषयक आतुरता से लेकर उसके पूगळ के पास पहुँचने तक।

(३) अंतिम भाग—ढोला के पूगळ पहुँचने से लेकर अंत तक।

कहने की आवश्यकता नहीं कि तीनों विभागों का संबंध सूत्र खूब घनिष्ठता के साथ संश्लिष्ट, अन्योन्याश्रित और जुड़ा हुआ है। कथा का परिणाम सुखांत है। यद्यपि ढोला की कहानी में रसात्मक स्थलों की ही प्रधानता है, परंतु ऐसा होते हुए भी कथा में किसी स्थल पर भी इतना अनावश्यक विराम नहीं होने पाया है कि घटना का सूत्र विस्मृत अथवा विलुप्त हो जाय।

काव्य में वर्णनात्मक स्थलों का निरूपण दो प्रकार से किया जाता है—

(१) वस्तु-वर्णन के रूप में।

(२) भाव-व्यंजना के रूप में।

ढोला की कहानी में प्रथम कोटि के वस्तु-वर्णन पहले तो हैं ही बहुत कम और जो कुछ हैं वे भी भाव-संश्लिष्ट रूप में हुए हैं। मानव-स्वभाव और भावों का वर्णन करना ही इस काव्य का प्रधान विषय है।

ढोला की कथा में निम्नलिखित वस्तु-वर्णन बहुत संक्षेप में हुए हैं—

(१) राजस्थान-देश-वर्णन।

(२) राजस्थान का रमणी रूप-सौंदर्य्य-वर्णन।

(३) ऋतु-वर्णन।

(४) करहा-वर्णन।

(५) ढोला की यात्रा का वर्णन।

इन सबके संबंध में एक बार फिर कह देना होगा कि ये वर्णन कथावस्तु के साथ इतनी घनिष्ठता से संश्लिष्ट हैं कि जहाँ-जहाँ ये आए हैं वहाँ-वहाँ काव्यकर्त्ता ने विराम देकर स्वतंत्र रूप में वर्णन के वास्ते वर्णन नहीं किए, वरन् कथा-प्रवाह के बीच में प्रसंग आ पड़ने पर संक्षेप में कुछ वर्णन करके वह आगे चल पड़ा है। अतएव जिस अर्थ में हम जायसी के सिंहल-द्वीप-वर्णन, समुद्र-वर्णन, विवाह वर्णन, युद्ध-वर्णन इत्यादि लेंगे, उस अर्थ में लेने पर तो ढोला में कोई ऐसा विस्तृत वर्णन न मिल सकेगा जो ठीक वर्णन कहा जा सके।

राजस्थान-देश-वर्णन

पहले राजस्थान देश का प्राकृतिक वर्णन ही लीजिए। यह वर्णन किसी एक स्थान पर परंपराबद्ध वर्णन के रूप में नहीं है परंतु काव्य के भिन्न-भिन्न स्थलों पर प्रसंगानुसार बिखरा हुआ मिलता है। उसी को यहाँ संकलित कर दिया गया है।

मारवणी और ढोला के संवाद में पहले पहल ग्रीष्मकाल के राजस्थान का बड़ा स्वाभाविक वर्णन हुआ है—

> थळ तत्ता, लू साँमुहीं, दाझोला पहियाह।
> म्हाँकउ कहियउ जउ करउ घरि बइठा रहियाह ॥२४१॥

जलती हुई बालू, रेत की झाड़ और तीव्र लू की लपटें—बस, राजस्थानी ग्रीष्म का चित्र इन दो संकेतों से ही खिंच जाता है।

वर्षाऋतु राजस्थान का प्राण है। वह इस प्रदेश की श्रेष्ठ ऋतु है और इस ऋतु में इस देश की शोभा भी निराली रहती है। माळवणी और ढोला के संवाद में वर्षाकालीन राजस्थान का वर्णन इस प्रकार हुआ है—

> प्रीतम, कामणगारियाँ थळ-थळ बादळियाँह।
> घण बरसंतइ सूकियाँ, लूसूँ पाँगुरियाँह ॥२४८॥
> बाजरियाँ हरियाळियाँ, बिचि बिचि वेलाँ फूल।
> जउ भरि बूठउ भाद्रवउ, मारू देस अमूल ॥२५०॥
> धर नीली, धण पुंडरी, घरि गहगहइ गमार।
> मारू-देस सुहामणउ साँवणि साँझी वार ॥२५१॥
> डूँगरिया हरिया हुआ, वड़े झिंगोरया मोर ॥२५३॥
> नदिनाँ, नाळा, नीझरण पावस चढ़िया पूर ॥२५६॥
> अति घण ऊनिमि आवियउ, झाझी रिठिझड़ वाइ।
> बग हीं भला त बप्पड़ा धरणि न मुकइ पाइ ॥२५७॥
> च्यारइ पासइ घण घणउ, वीजळि खिवइ अगास।
> हरियाळी रुति तउ भली, घर संपति, पिउ पास ॥२६०॥
> काळी कंठळि बादळी वरसि ज मेल्हइ वाउ।
> प्रो विण लागइ बूँदड़ी जाँणि कटारी-घाउ ॥२६७॥

राजस्थान का यह वर्णन कितना हृदयग्राही और स्वाभाविक है, इसे वही जान सकता है जिसने वर्षाऋतु में रहकर राजस्थान के सौंदर्य्य का अनुभव

किया है। किस प्रकार सावन और भादों की बदलियाँ, जिन्हें देशी भाषा में 'लोर' कहते हैं, बरसकर सूख जाती हैं और पुनः लू की गरमी से जलसंपन्न हो जाती हैं; कोसों तक विस्तृत हरे-भरे बाजरे के खेत और उनमें फैली हुई ककड़ी और मतीरे की बेलें कैसा सुहावना दृश्य उपस्थित करती हैं, ग्रामीण जन वर्षाऋतु में कितने मस्त रहते हैं; हरे चोले को पहने हुए पर्वतों पर मोर कैसा मनोहर बोलकर नाचता रहता है; सावन के महीने में राजस्थान की संध्या कैसा स्वर्गीय सौंदर्य्य धारण कर लेती है और बरसाती नाले (वाहळे) और नदियाँ कैसी ललित गति से कलकल करती हुई प्रवाहित होती हैं—इन दृश्यों को आँखों से देखकर जिन्होंने अनुभव नहीं किया वे राजस्थान देश को क्या जानें।

वीसू चारण मारवणी का रूप-वर्णन करते हुए सगर्व राजस्थान देश और राजस्थान के लोगों का वर्णन करता है—

देस सुहावउ, जळ सजळ, मीठा-बोला लोइ।
मारू कॉमण भुइँ दखिण, जइ हरि दियइ त होइ॥४८५॥

यह केवल अतिशयोक्ति नहीं है। तथ्य का अनुसंधान करनेवालों के लिये वास्तविक सत्य है। इसमें संदेह नहीं कि मरुस्थल में जल का अन्य देशों की अपेक्षा अभाव है, परंतु वहाँ जल गहरे कुँओं से निकलने के कारण अधिक आरोग्यकारी (सजळ) होता है। मरुस्थल की बोली के संबंध में भी लोगों को भ्रम है कि वह कर्णकटु होती है, परंतु मरुस्थल की बोली के मिठास का जिन्हें अनुभव करना हो वे खास मारवाड़ी (जोधपुरी) भाषा का अनुशीलन कर देखें। इन्हीं कारणों से यदि स्वदेश-गौरव से उत्साहित होकर कवि कह बैठे कि राजस्थान की रमणी बड़े भाग्य से अथवा ईश्वर की कृपा से ही दक्षिण देश में मिल सकती है तो इसमें अनुचित ही क्या है।

वीसू चारण फिर कहता है—

थळ भूरा, वन झंखरा, नहीं सु चंपउ जाइ।
गुणे सुगंधी मारवी, महकी सहु वणराइ॥४९८॥

मारवाड़ रेतीली भूमि अनुपजाऊ होने के कारण वर्ष के अधिक भाग में भूरे रंग की दिखाई देती है, वहाँ के वन विशीर्ण और झंखाड़ होते हैं, चंपा पैदा नहीं होता, लेकिन चंपा से भी बढ़कर अपने गुणों से सुगंधित करनेवाली आदर्श रमणियाँ वहाँ उत्पन्न होती हैं।

राजस्थान के गहरे कुओं को देखकर ढोला अपने अनुभव यों प्रकट करता है—

ऊँडा पाणी कोहरइ, थळे चढीजइ निट्ठ।
मारवणी-कइ कारणइ देस अदीठा दिट्ठ ॥५२३॥
ऊँडा पाणी कोहरे दीसइ तारा जेम।
ऊसारंता थाकिस्यइ, कहउ, काढिस्यइ केम ॥५२४॥

राजस्थानी कूपों का कैसा हूबहू चित्र है ! कुँओं में पानी बहुत गहराई पर मिलता है और ऊपर से देखने पर नीचे पृथ्वी के गर्भ में पानी चमकते हुए तारे की तरह दिखाई देता है। उसे निकालना तो बड़ा कठिन होता है। प्रेम से प्रेरित ढोला को ऐसा देश भी देखना पड़ा जहाँ पानी इतनी कठिनाई से प्राप्त होता है।

ढोला दुष्ट ऊमर-सूमरे के कुचक्र में पड़कर उसके कपटपूर्ण आतिथ्य को स्वीकार करता है। उस स्थान पर राजस्थान की यात्रा के बीच पड़ाव (Camp) की महफिल का बड़ा मनोज्ञ चित्र अंकित हुआ है—

तंत तणकइ, पिउ पियइ, करहउ ऊगाळेह ॥६३१॥

एक ओर तंत्री (सारंगी) झंकार कर रही है, दूसरी ओर ढोला ऊमर-सूमरे का आतिथ्य स्वीकार कर उसके साथ मदिरा-पान कर रहा है (जैसा कि राजपूतों का पारस्परिक शिष्टाचार होता है), दूर पर बैठा हुआ ढोला का ऊँट लंबी यात्रा के बीच में विश्राम पाकर जुगाली कर रहा है। कैसा सुंदर और स्पष्ट चित्र है ! यही नहीं, ऊँट को बैठाने के ढंग तक का सूक्ष्म निदर्शन किया गया है—

ऊँमर साल्ह उतारियउ, मन खोटइ मनुहारि।
पगसूँ ही पग कूँटियउ, मुहरी झाली नारि ॥६२९॥

जंगल के विश्राम-स्थलों पर पास में कोई वृक्ष अथवा कोई बाँधने का खंभा न होने के कारण (क्योंकि राजस्थान में और विशेषतः पूगळ के पास की ऊजड़ वनभूमि में दरख्त कहाँ मिलते), ऊँट के पैर को उसी के मुड़े हुए स्थान पर दोहराकर रस्सी से बाँध दिया जाता है—राजस्थान में यह दृश्य रोज देखने को मिलता है। चित्र की पूर्णता प्रसंग में स्वभावोक्ति का रस-सिंचन करती है।

अंत में मारू देश का विस्तृत और संपूर्ण वर्णन उस स्थल पर होता है जहाँ सौतियाडाह से प्रेरित होकर माळवणी मारू देश की निंदा करने पर उतरती है। उस निन्दा-वर्णन में इतना स्वाभाविक तथ्य है कि व्याज-स्तुति की तरह

पढ़ने पर वही राजस्थान की आत्मा का चित्र उपस्थित करता है। माळवणी व्यंग्य के साथ कहती है—

बाळउँ, बाबा, देसड़उ, पाँणी जिहाँ कुवाँह।
आधीरात कुहक्कड़ा, ज्यउँ माणसाँ मुवाँह ॥६५५॥
बाळउँ, बाबा, देसड़उ, पाँणी-संदी ताति।
पाणी-केरइ कारणइ प्री छंडइ अधराति ॥६५५॥
बाबा, म देइस कारुवाँ, सूधा एवाळाँह।
कंधि कुहाड़उ, सिरि घड़उ, वासउ मंझि थळाँह ॥६५८॥
बाबा, म देइस मारुवाँ, वर कूँआरि रहेसि।
हाथि कचोळउ, सिरि घड़उ, सींचंती य मरेसि ॥६५६॥
मांरू, थाँकइ देसड़इ एक न भाजइ रिड्डु।
ऊचाळउक अवरसणउ, कइ फाकउ, कइ तिड्डु ॥६६॥
जिण भुइ पन्नग पीयणा, कयर-कँटाळा रूँख।
आके-फोगे छाँहड़ी, हूँछाँ भाँजइ भूख ॥६६१॥
पहिरण-ओढण कंबळा, साठे पुरिसे नीर।
आपण लोक उभाँखरा, गाडर-छाळी खीर ॥ ६६२ ॥

इस वर्णन में असत्य का अंश बहुत थोड़ा है। यद्यपि जिस मानसिक परिस्थिति में माळवणी के हृदय के उद्‌गार प्रकट हुए हैं वह निंदामूलक है, परंतु इसमें किंचिन्मात्र भी संदेह नहीं है कि वस्तु-वर्णन की दृष्टि से यही वर्णन राजस्थान का सच्चा परिचायक है, यही उसकी विशेषताएँ हैं। मानव अभिरुचियाँ भिन्न होती हैं—भिन्नरुचिर्हि लोकः—किन्हीं के लिये यह अरुचिकर होगा, परंतु बहुतों के लिये यही भूमि 'स्वर्गादपि गरीयसी' है।

कुँओं की गहराई, आधी रात ही से मालियों का संगीतमय मधुर लय के साथ जल खींचना प्रारंभ करना, भोर में ही पनिहारिनों का मिल जुलकर राग अलापते हुए कुँओं से पानी भरने जाना, ऐसे सूक्ष्म निदर्शन हैं कि राजस्थान देश की आत्मा का चित्र स्मृति में जागरित हो जाता है—यही है संगीतमय राजस्थान की विशेषता। रंग, सुगंधि और गीत की विचित्रताओं से साधारण से साधारण कोटि का राजस्थानी जीवन अनुप्राणित रहता है। राजस्थान में गड़रिये भेड़, बकरी, गाय, भैंस चराने को सवेरे से ही जंगल की ओर निकल जाते हैं और किसान लोग प्रातःकाल होते ही अपने खेतों की ओर निकल पड़ते हैं। उनकी स्त्रियाँ उनके लिये भोजन

सामग्री, पानी का घड़ा, कुल्हाड़ा इत्यादि खेती के औजार लेकर पीछे से जाती हैं। अवर्षा के कारण कभी-कभी अकाल पड़ जाता है। उस समय निम्न कोटि के लोग पास ही के उपजाऊ देशों में निर्वास (ऊचाळउ) कर जाते हैं। कई बार टिड्डीदल खेती को नष्ट कर देता है। जंगल में विषैले साँप बहुतायत से मिलते हैं। वृक्ष बहुधा काँटेदार ही होते हैं और उनमें भी अधिकांश छोटे कद के होने के कारण पथिक को दिन की धूप में पर्याप्त छाया का भी सुख नहीं मिलता। काँटेदार घास के गोखरू (भुरट) में से जो धान निकलता है, उसे भी लोग रुचि से खाते हैं और भेड़ बकरी इत्यादि का दूध मजे में पीते हैं। ऊन बहुतायत से पैदा होने के कारण लोग कंबल ओढ़ते हैं और उन्हीं के वस्त्र भी बनाकर पहनते हैं*। ऐसे कष्टमय देश में कठोरता से जीवन-निर्वाह करनेवाली जाति स्वभाव से ही साहसी, सहिष्णु, वीर और दृढ़ होती हैं। इसी कठोरता और सहिष्णुता के बल राजस्थान की वीर जातियों ने सदियों तक भारतवर्ष की स्वातंत्र्य-ध्वजा को गर्व से उठाए रखा।

वर्णन की दृष्टि से उपर्युक्त विवरण अक्षुण्ण सत्य है। अब यदि महलों के ऐश-आराम में पली हुई किसी स्त्री (माळवणी) को यह देश रूखा-सूखा और अरुचिकर प्रतीत हो तो उससे देश की निंदा नहीं होती। यों तो दोषों से कोई स्थल खाली नहीं है। मारवणी उलटकर जब माळव देश की निंदा करती है तो हमें उस देश के प्रति भी अरुचि हुए बिना नहीं रहती। सच तो यह है कि निंदा और स्तुति आपेक्षिक गुण हैं और वैयक्तिक रुचि पर निर्भर रहते हैं। पहाड़ी मुल्क, रेतीले उपजाऊ मैदान, नदी-तट के सुरम्य कूल, समुद्र के बीच के टापू इन सब भिन्न-भिन्न प्रदेशों में प्रकृति का भिन्न भिन्न प्रकार का सौंदर्य निहित रहता है। साहित्य-रसिक को तो केवल वास्तविकता की निष्पक्ष दृष्टि से सच्चा परिचय प्राप्त करना अभीष्ट होता है, न कि भले और बुरे का निर्णय करना।

रमणी-रूप-वर्णन

राजस्थान की रमणी का रूप-सौंदर्य्य-वर्णन हमें उस स्थल पर उपलब्ध होता है जहाँ बीसू चारण ढोला से मारवणी का रूप-वर्णन करता है। इस

* यह चित्र राजस्थान के ठेठ देहाती जीवन का है। नागरिक जीवन, विशेषतः आधुनिक नागरिक जीवन, पर ये बातें घटित नहीं होतीं।

वर्णन में दो विशेषताएँ हैं। एक तो यह कि रूप-वर्णन साधारणतः राजस्थानी स्त्री-सौंदर्य का चित्ररूप में परिचायक है, दूसरा यह कि अर्वाचीन काल की अलंकार-शास्त्र और नखशिख संबंधी रूढ़ियों से बहुत कुछ मुक्त होने के कारण स्वच्छंद और अस्वाभाविक है।

मारवणी के सौंदर्य्य और शील के वर्णन में उपमानों की पवित्रता और उनका ऐश्वर्य्य सौंदर्य्य के आदर्श को परंपरा-भुक्त विषयवासना की कोटि से उठाकर अकलुषित और पवित्र सात्त्विक सौंदर्य के पद पर स्थापित कर देते हैं। कुछ उदाहरण नीचे दिए जाते हैं—

गति गंगा, मति सरसती, सीता सीळ सुभाइ।
महिलाँ सरहर-मारुई अवर न दूजी काइ ॥ ४५१ ॥
नमणी, खमणी, बहुगुणी, सुकोमळी सु सुकच्छ।
गोरी गंगा-नीर ज्यूँ, मन गरवी, तन अच्छ ॥ ४५२ ॥
रूप अनूपम मारुवी, सुगुणी नयण सुचंग।
साधण इण परि राखिजइ, जिम सिव मसतक गंग ॥ ४५३ ॥

जिसकी पतितपावनी गंगा के समान गति है, सरस्वती के समान निर्मल मति और सीता के समान शील-स्वभाव है; जो विनयशीला, क्षमाशीला, स्वभाव-कोमला और आत्मगौरवशालिनी है—ऐसी श्रेष्ठ रमणी को पुरुष यदि, गंगा को शिव की तरह, आदर सहित मस्तक पर स्थान दे तो उसे अपना सौभाग्य ही समझना चाहिए। मारवणी के इस शील-संपन्न सौंदर्य्य के विवरण के साथ उस कलुषित और वासना-परिपुष्ट सौंदर्य्य की तुलना करना चाहिए, जिसने रीति काल के कवियों के हाथ में पकड़कर स्त्री-सौंदर्य को पुरुष के विलास और वासना-तृप्ति का साधनमात्र बना दिया था।

शील को छोड़कर अब अवयव-सौंदर्य्य के वर्णन पर आइए। यद्यपि यह नहीं कहा जा सकता कि इस काव्य का रूप-सौंदर्य्य-वर्णन सर्वथा अलंकार-परंपरा से निर्मुक्त है, परंतु यह निस्संकोच होकर कहा जा सकता है कि अधिकांश नवीन और स्वतंत्र हैं।

नीचे उद्धृत दूहों में परंपरारूढ उपमानों की शृंखला हिंदी के पिछले खेवे के शृंगारी कवियों से किसी प्रकार कम नहीं है—

गति गयंद, जँघ कॆळिग्रभ, केहरि जिम कटि लंक।
हीर डसण, विद्रम अधर, मारू-भ्रकुटि मयंक ॥ ४५४ ॥

मारू-घूँघटि दिट्ठ मईं, एता सहित पुणिंद ।
कीर, भमर, कोकिल, कमळ, चंद, मयंद, गयंद ॥ ४५५ ॥
मृगनयणी, मृगपति-मुखी, मृगमद-तिलक निलाट ।
मृगरिपु-कटि सुंदर बणी, मारू अहड्ड घाट ॥ ४६६ ॥

परंतु प्रथाबद्ध उपमानों का थोड़ा समावेश होते हुए भी परंपरा-भुक्त उपमानों से निर्मुक्त अवयव-सौंदर्य्य का वर्णन मारू-रूप-वर्णन में बहुतायत से मिलता है। इस प्रकार के वर्णन की स्वच्छंदता में स्वभावोक्ति और राजस्थान-रमणी-सौंदर्य्य की विशेषता की गहरी छाप लगी होने से हम इसी को राजस्थान के स्त्री-सौंदर्य्य का सच्चा रूप समझते हैं—

मारू-देस उपन्नियाँ, ताँह का दंत सुसेत ।
कूँझ-बचाँ गोरंगियाँ, खंजर जेहा नेत ॥ ४५७ ॥
तीखा लोयण, कटि करल, उर रत्तड़ा बिंबीह ।
ढोला, थाँकी मारुई जाँणि विलूधउ सीह ॥ ४५६ ॥
डींभू लंक, मराळि गय, पिक सर एही वाँणि ।
ढोला, एही मारुई, जेहा हंझ निवाँणि ॥ ४६० ॥
चंपा-वरनी, नाक सळ, उर सुचंग, विचि हीण ।
मंदिर बोली मारुवी, जाणि भणकी वीण ॥ ४६२ ॥
मारू-देस उपन्नियाँ, नइ जिम नीसरियाँह ।
साइ धण, ढोला, एहवी, सरि जिम पध्धरियाँह ॥४८३॥
जंघ सुपत्तळ, करि कुँअळ, झीणी लंब प्रलंब ।
ढोला, एही मारुई जाँगि क कणयर-कंब ॥४७३॥
मारू देस उपन्नियाँ, सर ज्यउँ पध्धरियाँह ।
कडुवा बोल न जाणहीं, मीठा बोलणियाँह ॥४८४॥
अंगि अभोखण अच्छियउ, तन सोवन सगळाइ ।
मारू अंबा-मउर जिम, कर लग्गइ कुँमळाइ ॥४७१॥

मारवाड़ देश की स्त्रियों की दंत-पंक्ति शुभ्र और स्वच्छ होती है (इसे जल-वायु की स्वास्थ्य-प्रद विशेषता समझी जाय चाहे तांबूल के न्यूनतम प्रचार का फल, परंतु है यह बिलकुल सत्य। आजकल दाँतों की यह स्वच्छता विलीन होती जा रही है)। कुरझ पक्षी के समान लंबी सुढार उनकी गर्दन होती है, नेत्र तीखे होते हैं। लंबी सुकुमार गर्दन को कुंज पक्षी की

गर्दन की, पयोधरों को पपीहे की, कटि को डीभू (बर्रं) की, अंग-यष्टि को सीधे तीर की और जंघा को कमल के कोमल गर्भ की उपमा दी गई हैं। इन सबमें उपमानों की नवीनता देखने योग्य है। कड़ुवा बोलना तो वे जानती ही नहीं; जब बोलती हैं तब वीणा की झंकार का भ्रम होता है।

आलंकारिक सूझ की नवीनता उस स्थान पर विशेषता से देखी जाती है जहाँ मारुवणी के मुख को आलंकारिक प्रथा के अनुसार चंद्रमा से समता न देकर सूर्य्य से उपमा दी गई है—

मारू सी देखी नहीं, अण मुख दोय नयणाँह।
थोड़ो सो भोळ पड़इ, दणयर उगहंताँह ॥४७८॥

सूर्य से समानता स्थापित करने का कारण यह हो सकता है कि कवि का अभीष्ट मारवणी के सौंदर्य्य में वह विशुद्ध शालीनता और पवित्रता प्रकट करने का है जो सूर्य की ओजस्विनी प्रभा द्वारा लक्षित होता है।

ऋतु-वर्णन

यद्यपि राजस्थान देश के विवरण में ऋतुओं का बहुत कुछ वर्णन आ गया है परंतु उस प्रसंग में केवल वर्षा और ग्रीष्म के ही उदाहरण दिए गए हैं क्योंकि ये ही दो ऋतुएँ राजस्थान में अधिक विशेषता रखती हैं। एक अपनी सुखदता, सौंदर्य्य और उपकारिता के लिये राजस्थान का जीवनप्राण है, दूसरी अपनी विशेष उग्रता और भयंकर आतंक से राजस्थान के विशेष भयंकर रूप को सामने लाती है। इनके अतिरिक्त राजस्थानी वर्षाऋतु की कुछ और विशेषताओं का अन्य स्थलों पर वर्णन हुआ है, जो संक्षेप में नीचे उद्धृत की जाती हैं। परंतु, जैसा कि आगे कहा जा चुका है, इस बात को भूलना नहीं चाहिए कि ऋतुओं का प्रसंग नायक-नायिका के विरह-विलापों में नीर-क्षीर न्याय से मिला हुआ है। स्वतंत्र रूप में ऋतु के लिये ऋतु का वर्णन कहीं भी नहीं हुआ है।

वर्षा-वर्णन मारवणी सखियों से अपनी विरह-दशा व्यक्त करती हुई कहती है—

राजा परजा, गुणिय जण कवि-जण, पंडित, पात।
सगळां मन ऊछव हुअउ वूठैतौ बरसात ॥ ४० ॥
बीजुळियाँ चहलावहलि आभय आभय कोडि।
कद रे मिलउँली सज्जना कस कंचूकी छोडि ॥ ४६ ॥

ऊनमियउ उत्तर दिसइँ काळी कंठळि मेह ।
हूँ भीजूँ घर-अंगणइ, पिउ भीजइ परदेह ॥ ४३ ॥
जळ थळ, थळ जळ हुइ रह्यउ, बोलइ मोर किँगार ।
स्रावण दूभर हे सखी, किहाँ मुझ प्राण-अधार ॥ ४९ ॥

उत्तर दिशा से काली-काली घटाएँ उमड़ आई हैं और मूसलाधार बरसने लगी हैं। चारों ओर जल ही जल हो रहा है, आकाश के चारों कोनों में करोड़ों बिजलियाँ चमक रही हैं। ऐसे सुसमय में क्या राजा, क्या प्रजा, क्या गुणिजन, पंडित और क्या वनस्पति सभी को आँतरिक आनंद प्राप्त होता है।

माळवणी ढोला के संवाद में वर्षा का चित्र इस प्रकार खींचा गया है—

पगि पगि पाँणी पंथसिर, ऊपरि अंबर-छाँह ।
पावस प्रगट्यउ पदमिणी, कहउ त पूगळ जाँह ॥ २४४ ॥
लागे साद मुहाँमणउ, नस भर कुंझड़ियाँह ।
जळ पोइणिए छाइयउ, कहउ त पूगळ जाँह ॥ २४ ॥
मेहाँ बूठाँ अन बहळ, थळ ताढा जळ रेस ।
करसण पाका, कण खिरा, तद कउ वळण करेस ॥ २६४ ॥
ऊँचउ मंदिर अति घणउ आवि सुहावा कंत ।
वीजळि लियइ झबूकड़ा, सिहराँ गळि लागंत ॥ २६८ ॥

रास्तों में जगह-जगह पर स्वच्छ वर्षाजल की तलैयाएँ भरी लहराती हैं जिनके चारों ओर रात भर कुरझें कलरव करती हुई बड़ी सुहावनी प्रतीत होती हैं, रह-रहकर पपीहा बोल उठता है। ढोला कहता है, इससे सुंदर समय प्रस्थान के लिये दूसरा कौन-सा हो सकता है। परंतु माळवणी की राय में ऐसे समय में घर ही पर रहना अधिक उचित है जब खेती पक रही हो और भूमि वर्षा से तृप्त होकर जल जैसी शीतल हो रही हो। जब बिजलियाँ चमक-चमककर पर्वत-शिखरों से लिपट रही हों तब ऊँचे महलों में सुखपूर्वक प्रेम में मग्न रहना ही चाहिए।

हरे-भरे लहराते हुए बाजरे के विस्तृत खेतों के बीच-बीच में नाना प्रकार की बेलें फैल रही हैं, श्रावण के महीने में मारू देश की सांध्यकालीन छटा बड़ी ही अनुपम हो रही है, हरे-भरे पर्वत-प्रदेशों में स्थान-स्थान पर मयूर नाच गा रहे हैं, कहीं पर चिकनी भूमि पर ऊँट के फिसलने का भी

डर रहता है, रह-रह कर वायु के शीतल झोंके हृदय में उल्लास पैदा करते हैं। सचमुच, राजस्थानी लोग इस ऋतु में स्वर्गोपम आनंद का उपभोग करते हैं। बादलों से समय-समय पर बौछार होती रहती है जो बनस्पति और मानव-जीवन के लिये अमृत-संजीवनी का कार्य करती है। बरसाती क्षुद्र नदियों और नालों में जल कलकल करता हुआ प्रवाहित होता है। आकाश में जिधर दृष्टि उठाकर देखो बिजलियों की चहल-पहल बड़ी ही सुहावनी लगती है। वर्षा से प्रक्षालित होकर पर्वत-शिखर हरित परिधान और रंग-बिरंगे पुष्पों के आभूषण धारण कर लेते हैं; सरोवर भर जाते हैं और नदी-नाले तरंगों से आंदोलित होते रहते हैं: मेंढ़क अपनी सुमधुर रट अलग ही लगाए रहते हैं और बिजलियाँ चमक-चमक कर पर्वत-शिखरों का आलिंगन करती हैं। क्या जड़ और क्या चेतन, प्रकृति की समस्त सृष्टि में संयोग और विश्वमैत्री का दृश्य चारों ओर दृष्टिगोचर होता है। ऐसी है राजस्थान की वर्षा ऋतु।

शीत वर्णन—शीत ऋतु के वर्णन में राजस्थान की अधिक विशेषता नहीं झलकती। यह वर्णन सार्वदेशिक और साधारण सा है। कुछ उदाहरण उद्‌धृत किए जाते हैं—

जिणि रिति मोती नीपजइ सीप समंदाँ माँहि ॥ २८१ ॥
जिणि दीहे तिल्ली त्रिड़इ, हिरणी झालइ गाभ ॥ २८२ ॥
जिण रित नाग न नीसरइ, दाझइ वनखँड दाह ॥ २८४ ॥
दिन छोटा, मोटी रयण, थाढा नीर पवन्न ॥ २८५ ॥
उत्तर आज न जाइयइ, जिहाँ स सीत अगाध।
ता भइ सूरिज डरपतउ, ताकि चलइ दखिणाध ॥ ३०१ ॥

राजस्थान का शीतकाल यद्यपि अल्पस्थायी होता है परंतु कष्टसह्य होता है। जब पाला पड़ने लगता है तो घोड़ों की रक्षा के लिये उनकी पीठ पर पाखर डाल दी जाती है। शीतकाल संयोगी प्रेमियों को सुखदायी और विरहियों को दुःखदायी होता है। समुद्रों में सीप के गर्भ में मोती पैदा होते हैं, तिल के पेड़ों में बीज पड़कर फलियाँ चटखने लगती हैं और हरिणियों को गर्भाधान इसी ऋतु में होता है। सर्प इस ऋतु में बिलों से बाहर नहीं निकलते, वन कठोर शीत के कारण झुलसकर झंखाड़ हो जाते हैं। रातें बड़ी और दिन छोटे हो जाते हैं और पवन और जल का शीतलत्व

काटने लगता है। उत्तर दिशा की शीतल पवन के झोंके मरुस्थली पर उगी हुई वनस्पति को जला देते हैं; साल भर हरा-भरा रहनेवाला आक (मदार) भी जल जाता है। पाला इतने जोर का पड़ता है कि लोग अग्नि, प्रेयसी और मद्य का सेवन कर शीत से बचाव करते हैं। और तो और, इस कठोर सर्दी के भय से विचारे सूर्य को भी दक्षिण दिशा के उष्ण कक्ष में छिपकर शरण लेनी पड़ती है।

करहा-वर्णन

ऊँट राजस्थान का मुख्य पशु है और वहाँ का सर्वोपयोगी वाहन भी। राजस्थान का वर्णन ऊँट के वर्णन के बिना अधूरा रह जाता, परंतु 'ढोला-मारूरा दूहा' में करहा-वर्णन स्वभावोक्ति की दृष्टि से अपना विशेष चमत्कार रखता है। उसी वर्णन का कुछ अंश नीचे देते हैं—

पलाणियउ पवने मिलइ, घड़िए जोइण जाय।
रइबारी, ढोलउ कहइ, सो मो आवइ दाय ॥ ३०८ ॥
दूजा दोवड़-चोवड़ा, ऊँटकटाळउ-खाँण।
जिण मुखि नागर बेलियाँ सो करहउ केकाँण ॥ ३०९ ॥
किणि गळि घालूँ घूघरा, किणि मुखि वाहूँ लज्ज।
कवण भलेरउ करहलउ मूँध मिलावइ अज्ज ॥ ३१२ ॥
ढोलउ करहउ सज कियउ कसवी घाति पलाँण।
सोवन-वानी घूघरा चालण-रइ परियाँण ॥ ३४३ ॥
करहा, पाणी खंच पिउ, त्रासा घणा सहेसि।
छीलरियउ ढूकिसि नहीं, भरिया केथि लहेसि ॥ ४२६ ॥
करहा, नीरूँ जउ चरइ, कंटाळउ नइ फोग।
नागरवेलि किहाँ लहइ, थारा थोबड़ जोग ॥ ४२८ ॥
करि कइराँ ही पारणउ, अइ दिन यूँ ही ठेलि ॥ ४३० ॥
करहा लंब-कराड़िआ, बे-बे अंगुल कन्न ॥ ४३३ ॥
सड़ सड़ बाहि म कंबड़ी, रोंगाँ देह म चूरि।
बिहुँ दीपा बिचि मारुई, मो-थी केती दूरि ॥ ४९२ ॥
करहा, वामन रूप करि, चिहुँ चलणे पग पूरि ॥ ४९७ ॥
करहा काछी काळिया, चाली गइ किरणाँह ॥ ४९९ ॥

सकती बाँधे वीटुळी, ढीली मेल्हे लज्ज।
सरढी पेट न लेटियउ, मूँध न मेलउँ भज्ज ॥ ५०० ॥
पगसूँ ही पग कूँटियउ, मुहरी झाली नारि ॥ ६२६ ॥
तंत तणक्कइ, पिउ पियइ, करहउ ऊगाळेह ॥ ६३१ ॥

ढोला को अपनी लंबी यात्रा के लिये ऐसे ऊँट की जरूरत है जो थोड़ा-सा त्वरित करने पर घड़ी भर में एक योजन चला जाय। वैसे दोहरे-चौहरे शरीरधारी, काँटेदार घास को चरनेवाले ऊँट साधारणतः बहुत मिलते हैं, परंतु जो नागरवेलि के पत्तों को चरनेवाला उत्तम जाति का ऊँट होता है, वही ऊँटों में शिरोमणि गिना जाता है और वही इस यात्रा में सफल हो सकता है। यदि ऐसा ऊँट मिल जाय तो ढोला उसे आभूषणों से खूब सजावेगा, गले में सुवर्ण-निर्मित घुँघुरू की माला और मुख में कीमती नकेल डालेगा। अंत में ऐसा ऊँट मिल गया। ढोला ने उस पर जड़ाऊ और चित्रित पलाँण सजाया और चलने को तैयार हुआ।

ढाला ने ऊँट पर पलाँण कस लिया, नकेल डाल दी और चढ़ने के लिये राजद्वार के आगे आधीरात के समय उसे बैठा लिया। उठती बार जब ऊँट स्वभावतः बलबलाया तो माळवणी की नींद खुल गई। अब क्या थी, वर्षा की हवा के झोंकों से जैसे मेघ-खंड उड़ते जाते हैं वैसे ही ऊँट दौड़ पड़ा, नहीं, हवा हो गया। बहुत-सा रास्ता पार कर लेने पर एक स्थान पर ऊँट को स्वच्छ जलाशय का जल पिलाने के लिये ठहराया। समझदार ऊँट से ढोला ने कहा, "यह अच्छा मौका है, तृप्त होकर जल पी ले, आगे निर्जल मरुस्थल पड़ता है, कोसों तक पानी नहीं मिलेगा, फिर तू तो उत्तम जाति का ऊँट है, गँदले पोखरों का जल तो पिएगा नहीं, और भरे हुए स्वच्छ जलाशय मिलेंगे कहाँ?" इसके बाद ऊँटकटारा (घास विशेष) और फोग (पौधा-विशेष) ऊँट के सामने चरने को लाकर रखा, नागरवेलि वहाँ कहाँ मिलती? फिर करील की झाड़ी काटकर उसके सामने चरने के लिये डाली, जाल (वृक्ष-विशेष) के पत्ते भी डाले। ढोला का ऊँट लंबी गरदनवाला था, जिसके दो-दो अंगुल के छोटे-छोटे कान थे। इतने में संध्या होने लगी, पूगळ अब भी दूर था। ढोला ने हताश होकर ऊँट को साँटी से सड़ा-सड़ पीटना शुरू किया। स्वामि-भक्त पशु ने धीरज देते हुए कहा, "साँटी की सड़ासड़ बौछार मेरे शरीर पर न करो। रानों के दबाव से और ठोकरों से मेरी पसलियों को चकनाचूर न करो। मुझे तो योंही अपने कर्त्तव्य और

स्वामिकाज का पूरा ध्यान है। त्रैलोक्य के उस पार भी यदि जाना पड़े तो मैं नियत समय पर तुम्हें अपनी प्रेयसी से मिला दूँगा।" ढोला ने ऊँट से कहा, "अरे कच्छ देश के काले ऊँट (जो ऊँटों की सर्वोत्तम जाति है) ! तू किस होश में है ? सूर्य की किरणें अस्त हो रही हैं। अब तो तुझे (त्रिविक्रम) का रूप धारण कर दीर्घकाय होना पड़ेगा, चारों कदम उठाकर, लंबी चौकड़ी भरकर पवन में उड़ जाना पड़ेगा, तभी तो रात्रि से पहले-पहले पूगळ पहुँच सकता है।

ऊँट को यह शासन असह्य हुआ। उसने स्वामी को चेतावनी देते हुआ कहा—पगड़ी को कसकर बाँध लो, नकेल को ढीली छोड़ दो। यदि पवन-वेग से चलकर तुम्हें अपनी प्रेयसी से संध्या होते-होते न मिला दूँ तो उत्तम सरढ़ी (ऊँटनी) के पेट से जनमा हुआ न समझना।

आगे चलकर एक स्थल पर ऊँट का और वर्णन हुआ है।—ऊमर के कपट-पूर्ण स्वागत को स्वीकार करने को ढोला तैयार हुआ। उधर आसपास में कोई खूँटा अथवा ऊँट बाँधने का स्थान न होने पर उसने ऊँट के पैर को घुटनों के पास दोहराकर रस्सी से बाँध दिया जिससे वह भाग न जाय और नकेल मारवणी को पकड़ा दी। ऊँट के पैर को कूँटनेकी यह प्रथा अब तक राजस्थान में देखी जाती है। यहाँ पर ऊँट के विश्रब्ध होकर जुगाली करने का अच्छा स्वभाव-चित्र उपस्थित हुआ है। अंत में ऊमर के षड्यंत्र से बच भागने की जल्दी में ढोला-मारवणी पैर बँधे हुए ऊँट पर ही चढ़कर भाग निकले।

उपर्युक्त करहा-वर्णन में ऊँट के स्वभाव, उसकी वेश-भूषा, आकृति, सहनशीलता आदि अनेक बातों का बड़ा ही मनोरम और स्वाभाविक निदर्शन हुआ है जो राजस्थान से थोड़ा-बहुत भी परिचय रखनेवाले पाठकों को रुचि-कर हुए बिना न रहेगा।

(८) ढोला-मारू—एक प्रेम-कहानी

ढोला-मारू की प्रेम-कहानी हिंदी के प्रारंभिक भक्ति-काल के प्रेम-मार्गी कवियों की प्रेम-कहानियों की परंपरा से बहुत-कुछ मिलती-जुलती है। कबीर के समय के कुछ ही बाद कुछ भक्त एवं दार्शनिक कवियों की काव्य-रुचि का झुकाव प्रेम-कहानियों द्वारा जनता को ईश्वरीय प्रेम का दिग्दर्शन कराने की ओर

हुआ और अनेक भावुक कवि इस क्षेत्र में उतर पड़े। उनकी प्रेम की पीर की कहानियों ने बहुत शीघ्र जनता के हृदय में घर कर लिया। यद्यपि इन कहानियों के लेखक अधिकतर सूफी सिद्धांत के मुसलमान थे परंतु ये कहानियाँ हिंदुओं के गार्हस्थ्य जीवन की छाया को लेकर लिखी गई थीं। इनकी मधुरता, कोमलता और मार्मिकता ने यह प्रत्यक्ष कर दिखाया कि 'एक ही गुप्त तार मनुष्य मात्र के हृदयों से होता हुआ गया है जिसे छूते ही मनुष्य सारे बाहरी रूप-रंगों के भेदों की ओर से ध्यान हटाकर एकत्व का अनुभव करने लगता है।'' इन जनता के कवियों ने अपनी प्रेम कहानियों द्वारा प्रेम का शुद्ध मार्ग प्रकट करते हुए उन सामान्य जीवन दशाओं को सामने रखा जिनका प्रभाव मनुष्य मात्र पर एक सा दिखाई पड़ता है। कबीर ने तो इस जीवन से भिन्न प्रतीत होती हुई परोक्ष सत्ता की एकता (Mysticism) का अपनी अटपटी बानी में उपदेश किया था। प्रत्यक्ष जीवन के सौंदर्य्य और प्रेम, दुःख-सुख, भय-आशंका, ईर्ष्या और सहानुभूति को हृदयस्पर्शी स्वाभाविकता के साथ प्रकट करनेवाले ये प्रेममार्गी लेखक ही थे। विक्रम की १६ वीं शताब्दि के मध्य में मुसलमान कवि कुतुबन ने 'मृगावती' नामक प्रेम कहानी दोहे-चौपाइयों में लिखी। कहानी में प्रेम-मार्ग के अपूर्व आत्मत्याग, कष्ट-सहिष्णुता और प्रेम-साधना का मर्मस्पर्शी वर्णन हुआ है। इसी समय के लगभग मंझन कवि ने 'मधुमालती' नाम की प्रेमकहानी लिखी जिसमें प्रेम-निर्वाह की कथा बड़ी सहृदयता के साथ विशद कल्पनाओं से परिपूर्ण हृदयग्राही वर्णनों द्वारा दोहा-चौपाइयों में कही गई है।

तीसरी साहित्य में प्रसिद्ध पद्मावत की प्रेम-कहानी है जिसे प्रख्यात कवि मलिक मुहम्मद जायसी ने सं० १५६७ के लगभग लिखा। जायसी ने अपने महाकाव्य में अपने से पूर्व-रचित प्रेम-कहानियों की तालिका दी है, जिससे यह प्रतीत होता है कि इस साहित्यिक परंपरा में कई उत्कृष्ट प्रेम-कहानियाँ लिखी गई थीं।

विक्रम धँसा प्रेम के बारा। सपनावति कहँ गएउ पतारा॥
मधू पाछ मुगधावति लागी। गगन पूर होइगा बैरागी॥
राजकुँवर कंचनपुर गयऊ। मिरगावति कहँ जोगी भयऊ॥
साध कुँवर खंडावत जोगू। मधुमालती कर कीन्ह वियोगू॥
प्रेमावति कहँ सुरपुर साधा। उषा लागि अनिरुध बर बाँधा॥

इससे विदित होता है कि मृगावती, मधुमालती, पद्मावती और पुराण विश्रुत उषा-अनिरुद्ध की कहानियों के अतिरिक्त सपनावती, मुग्धावती और प्रेमावती की कहानियाँ भी जायसी के समय में प्रसिद्ध रही होंगी। इनमें से अधिकांश कहानियाँ पूर्वी हिंदी और अवधी में मुसलमान कवियों द्वारा दोहा-चौपाइयों के रूप में लिखी गई थीं और उनमें प्रेम-कथा के मिस से सूफी मत के रहस्यमय आध्यात्मिक विचारों का खासा आभास मिलता था।

जायसी के पीछे कई शताब्दियों तक इन प्रेम-कहानियों की परंपरा जारी रही। जहाँगीर के शासन-काल में उसमान कवि ने जायसी का अनुकरण कर 'चित्रावली' नामक कहानी लिखी है। इस परंपरा की अंतिम सूचना दिल्ली के बादशाह मुहम्मदशाह के समय तक मिलती है जब नूरमुहम्मद कवि ने सं० १७९६ में 'इंद्रावती' नामक सुंदर कहानी लिखी।

ढोला-मारवणी की प्रेम-कहानी भी उपर्युक्त प्रेम-मार्गी कवियों की कहानी से बहुत-कुछ मिलती-जुलती है। अब हम हिंदी प्रेम-कहानियों में सर्वोत्तम जायसी की पद्मावती की कहानी से ढोला-मारू की प्रेम-गाथा की तुलना करके उसके काव्य-गुणों का सविस्तर विश्लेषण करेंगे, जिससे इस गीत-काव्य के प्रमुख गुणों का पाठक के हृदय में यथोचित संस्थान हो सकेगा।

साधारणतः देखा जाय तो ऊपर उल्लेख की हुई सभी प्रेम-कहानियों में कथित विषय का बहुत कुछ सादृश्य है। प्रायः सभी कहानियों में नायक अथवा नायिका को अपने सच्चे प्रेमी को पाने के लिये अनेक प्रकार के भौतिक कष्ट उठाने पड़े हैं और अंत में उसकी साधना सफल हुई है। भारतीय कहानियाँ प्रायः सुखांत ही होती हैं और उनके द्वारा इस आध्यात्मिक तथ्य की पुष्टि हो जाती है कि मायालिप्त सांसारिक जीवन-यात्रा में भटकते हुए जीवात्मा को प्रेम की साधना द्वारा अंत में परमात्मा की उपलब्धि और जीवन के लक्ष्यरूप मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है। इसके विरुद्ध इसी प्रकार की पाश्चात्य कहानियों और गीतों (Ballads) का प्रवाह दुःखांत की ओर होता है और उनका आध्यात्मिक तथ्य इतना सुस्पष्ट और प्रकाश्य नहीं होता है।

पद्मावत की कहानी और ढोला - मारू की कहानी में बहुत कुछ सादृश्य है—

(१) पद्मावत में हीरामन सूआ और ढोला की कहानी में माळवणी का सूआ मानव-प्रेम के मार्ग-प्रकर्शक अथवा सहायक साधन की तरह प्रयुक्त हुए हैं। भेद इतना ही है कि पहली कथा में सूआ नायिका द्वारा प्रेरित होकर नायक को प्रेम-पथ पर सफलता-पूर्वक मार्ग-प्रदर्शन करता है। दूसरी में, विप्रयुक्त प्रेमी (नायक) के प्रेम को नायिका के लिये प्राप्त करने के लिये सूआ चेष्टा करता है परंतु असफल रहता है।

(२) जिस प्रकार पद्मावत में चित्तौड़ का पंडित पद्मावती के सूए को खरीदकर राजा रत्नसेन को देता है जिससे वह प्रिया के प्रेम का संवाद पहले-पहल सुनता है, उसी प्रकार 'ढोला' में नरवर का सौदागर पहले-पहल ढोला की खबर मारवणी और उसके पिता को देता है।

(३) राजा रत्नसेन ने योगी बनकर अनेक कष्ट सहन करते हुए अपनी प्रियतमा पद्मावती को पाया। इसी प्रकार ढोला ने अपनी प्रेयसी मारवणी को बड़ी कष्टपूर्ण साधना के बाद प्राप्त किया।

(४) दोनों कहानियों में अलौकिक तत्त्व Supernatural element) का सहायक के रूप में हस्तक्षेप है। सिंहलद्वीप में महादेव के मंदिर में पूजार्थ आई हुई पद्मावती का प्रथम दर्शन कर रत्नसेन मूर्च्छित हो गया और जब पद्मावती लौट गई तब पछताकर चिता में भस्म होने को उद्यत हुआ। तब योगी और योगिन के रूप में महादेव-पार्वती ने इस सच्चे प्रेमी को मरने से रोका। इसी प्रकार ढोला के साथ नरवर को लौटती हुई मारवणी को जब जंगल में पीणा साँप काट गया और वह मर गई तब ढोला ने उसके वियोग में चिता लगाकर जल मरने की ठानी, परंतु योगी और योगिन ने आकर उसकी जान बचाई।

(५) नागमती ने अपने विरह-विलाप में उपवन के पक्षियों को अपने दुखड़े का संदेश रत्नसेन तक पहुँचाने की प्रार्थना की थी। इस संदेश को पक्षियों ने समुद्र-तट पर शिकार खेलते हुए रत्नसेन को पहुँचाया और नागमती और चित्तौड़ की शोचनीय दशा का हाल सुनकर रत्नसेन लौट पड़ा। परंतु उस समय तक रत्नसेन अपने प्रेम-मार्ग पर सिद्धि प्राप्त कर चुका था। मारवणी ने भी कुंज पक्षियों से इसी प्रकार प्रार्थना की थी और माळवणी ने तो शुक द्वारा संदेश भेज भी दिया था, परंतु तब तक अपना कार्य सिद्ध न होने से ढोला लौटा नहीं।

(६) पद्मावती को सिंहल से लेकर लौटते समय समुद्र के बीच में विभीषण नामक राक्षस ने रत्नसेन को बहकाकर विकट समुद्र में डाल दिया जहाँ से उसके जीवित बच निकलने की कोई आशा न रही थी। इस समुद्र के राजरक्षी ने उस प्रेमी की जान बचाई। ढोला का भी दुष्ट ऊमर-सूमरा के धोखे में आकर जीवन-संकट में पड़ गया था परंतु उस समय "पीहर-संदी डूमणी" गायिका की चेतावनी से उसके प्राण बचे।

(७) दुष्ट ब्राह्मण राघव चेतन ने प्रतिशोध लेने की इच्छा से रत्नसेन को धोखा देकर बादशाह अलाउद्दीन को उसके विरुद्ध भड़काया और पद्मावती को पाने की इच्छा से बादशाह को लालायित किया। राघव की तरह ऊमर के दुष्ट चारण ने भी ढोला को धोखा देकर उसको अपने प्रेम-मार्ग से विचलित करने की चेष्टा की।

(८) प्रेम-कहानी को काव्योपयुक्त स्वरूप देने के लिये ऐतिहासिक घटनाओं को कल्पना के रंग में रँगने की आवश्यकता कवि को बहुधा पड़ती है। इससे रूखा-सूखा ऐतिहासिक तथ्य भी सरस, मधुर और हृदयग्राही हो जाता है। इस प्रकार के अधिकार का दोनों काव्यों में उपयोग मिलता है। इतिहास और कल्पना का मनोज्ञ सम्मिश्रण दोनों में हुआ है।

इन समताओं के होते हुए भी दोनों कथाओं के परिणाम में भेद है। अलाउद्दीन और देवपाल के प्रयत्न अंत में सफल होते हैं और परिणामतः रत्नसेन देवपाल के साथ युद्ध में मारा जाता है। अलाउद्दीन चित्तौड़ ले लेता है और नागमती और पद्मावती चितारोहण कर भस्म हो जाती हैं। परंतु ढोला के विरुद्ध ऊमर-सूमरा का षड्यंत्र निष्फल सिद्ध होता है और उस प्रेम-कहानी का सुख में अंत होता है। दोनों कहानियों का सुखांत और दुःखांत परिणाम-भेद भारतीय और वैदेशिक प्रणालियों का संस्कृति-जन्य भेद है।

(६) ढोला-मारू का प्रेम-वर्णन

साहित्य में भारतीय पद्धति के अनुसार दांपत्य-प्रेम का विकास चार प्रकार से माना गया है*—

(१) पहले भेद के अंतर्गत प्रथाबद्ध विवाह-संबंध द्वारा मर्यादाबद्ध प्रेम का क्रमशः विकसित और घनीभूत होना और जीवन की जटिल समस्याओं

* पं० रामचंद्र शुक्ल—'जायसी-ग्रंथावली' की भूमिका।

को कर्त्तव्यबुद्धि और धार्मिक आस्था के बल से सुलझाकर जीवन को सफल बनाना है। यह प्रेम अत्यंत स्वाभाविक, निर्मल, तथा शील और शक्ति-संपन्न होता है और इसमें विलासिता और कामुकता का पूर्णतः अभाव रहता है। उदाहरणतः राम और सीता का आदर्श प्रेम।

(२) दूसरे प्रकार का प्रेम प्रथम दर्शन द्वारा प्रेरित होकर विवाह के पूर्व ही अंकुरित हो जाता है। संसार-क्षेत्र में घूमते-फिरते नायक और नायिका अकस्मात् किसी उपवन, तड़ाग, वाटिका के पास मिलते हैं और उनका जीवन-सूत्र प्रेम की दृढ़ गाँठ में बँध जाता है। अंत में विवाह भी हो जाता है। इस प्रेम में स्वच्छंदता की मात्रा पहले प्रकार से अधिक रहती है। साहित्य में शकुंतला-दुष्यंत, विक्रम-उर्वशी का प्रेम इसी कोटि का समझना चाहिए।

(३) तीसरे प्रकार का प्रेम विलासिता और कामवासना का फल-स्वरूप होता है। पुराने समय के विलासी राजा अपने अंतःपुर में बैठे-बैठे ही अपने विलास की सामग्री-स्वरूप किसी सुंदर दासी अथवा परिचारिका को अपने प्रेम का आधार बना लेते थे। परिणाम में अंतःपुर में सपत्नी-डाह, कलह, ईर्ष्या इत्यादि दुर्भावनाओं का अभिनय होता था। इस प्रकार के कलुषित आदर्शभ्रष्ट और विलासी प्रेम का विकास उत्तर काल के संस्कृत काव्यों और नाटकों में, यथा श्रीहर्ष के नाटकों में हुआ है।

(४) चौथे प्रकार का प्रेम स्वच्छंद रीति का प्रेम है जो नायक-नायिका के बीच एक-दूसरे के गुण-श्रवण, स्वप्न-दर्शन, चित्र-दर्शन द्वारा अंकुरित होकर एक दूसरे को पाने के प्रयत्नरूप में विकास को प्राप्त होता है। ऊषा ने अनिरुद्ध को स्वप्न में देखा और बाणासुर के अनेक रुकावटें डालने पर भी उसे प्राप्त करने का प्रयत्न किया और अंत में पा लिया। नल-दमयंती का प्रेम भी इसी कोटि का था। इस पद्धति में विवाह-प्रयत्न के परिणाम में होता देखा गया है। ढोला-मारवणी का प्रेम भी इसी कोटि का है। भेद इतना ही है कि ढोला और मारवणी का विवाह-संस्कार नाम मात्र के किये बचपन में ही हो जाता है, जो न होने के बराबर है, कारण उसकी स्मृति दोनों प्रेमियों में से किसी को भी नहीं रहती—

दउढ वरसरी मारुवी, त्रिहुँ वरसाँरउ कंत।
बाळपणइ परण्याँ पछइ, अंतर पड़्यउ अनंत ॥ ९१ ॥

वास्तव में मारवणी का प्रेम उसकी युवावस्था के प्रथम स्वप्न-दर्शन द्वारा, उषा के प्रेम की तरह, अंकुरित होता है और अंत तक इसी पद्धति में ढलकर प्रवाहित होता है—

इसइ आरखइ मारुवी सूती सेज विछाइ ।
साल्हकुँवर सुपनइँ मिल्यउ, जागि निसासउ खाइ ।। १४ ।।

इस प्रकार के प्रेम-वर्णन में एक विशेषता यह होती है कि नायक-नायिका के विरह-विलाप द्वारा प्रेमी हृदय की कोमल भावनाओं का सूक्ष्म निदर्शन करने का कवि को अच्छा मौका मिल जाता है। ऐसे काव्यों में विप्रलंभ शृंगार और मानसिक भावनाओं का पक्ष प्रधान रहता है, संयोग शृंगार और शारीरिक पक्ष को गौण स्थान मिलता है। यह बात ढोला और पद्मावत दोनों की कहानियों में समान रूप से सिद्ध है।

परंतु ढोला और पद्मावत की प्रेम-कहानी के प्राथमिक विकास में भेद है। यद्यपि दोनों कहानियों में प्रेम का प्रथम आभास नायिकाओं के हृदय में ही होता है परंतु पद्मावत में प्रेमी को पाने का प्रयत्न नायक रत्नसेन की ओर से प्रारंभ होता है। 'ढोला' में यह प्रयत्न नायिका मारवणी की ओर से आरंभ होता है। इस भेद का भी वही कारण है जो दोनों कहानियों के परिणाम-भेद के संबंध में हम ऊपर कह आए हैं। जायसी ने अरबी-फारसी की वैदेशिक कहानियों के आदर्श को दृष्टि में रखकर लैला-मजनूँ, शीरीं फरहाद की तरह नायक को प्रेम-मार्ग पर पहले प्रयत्नशील करके कठिन साधना द्वारा उसके प्रेम की परीक्षा की है। फारस के प्रेम में नायक के प्रेम का वेग अधिक तीव्र दिखाई पड़ता है और भारतीय प्रेम में नायिका के प्रेम का। परंतु आगे चलकर दोनों कहानियों में नायक-नायिका का प्रेम सम तीव्र हो जाता है। नायक भी उतने ही उत्सुक और प्रयत्नशील दिखाई पड़ते हैं जितनी कि नायिकाएँ।

फारस की कहानियों में एक विशेषता यह भी पाई जाती है कि उनमें प्रदर्शित प्रेम ऐकांतिक, आदर्शस्थित (Idealistic) और लोकबाह्य होता है। वास्तविक जीवन की परिस्थितियों के बीच होकर उसका प्रवाह नहीं बहता बल्कि जीवन से परे ऐकांतिक आदर्शोन्मुख होता है। इसके विपरीत भारतीय प्रेम-पद्धति लोकसमन्वित और व्यवहारात्मक होती है। उसका विकास-सूत्र वास्तविक जीवन के व्यवहार में बद्धमूल होता है। इस

प्रकार का प्रेम-व्यवहार कर्त्तव्य मार्ग का विरोधी नहीं, बल्कि उसका संपोषक बनकर जीवन के बीच से होकर बहता है। आदिकाल में उसका यही स्वरूप रहा, यथा वाल्मीकि-रामायण में। परंतु पीछे से कादंबरी, नल दमयंती, मालती-माधव, माधवानल-कामकंदला आदि आख्यानों में उसका दूसरा ऐकांतिक और लोकबाह्य रूप भी प्रकट हुआ। यद्यपि पद्मावत की प्रेम-पद्धति को सर्वथा लोकपक्ष शून्य नहीं कह सकते, क्योंकि उसमें प्रेम की भावात्मक और व्यवहारात्मक दोनों शैलियों का सम्मिश्रण है, परंतु इसमें कोई संदेह नहीं है कि ढोला का मारवणी के प्रेम को प्राप्त करने का प्रयत्न कर्त्तव्य-बुद्धि द्वारा प्रेरित और सपोषित है, अतएव सर्वथा लोकसमन्वित और व्यवहार सिद्ध है। वह जीवन का और जीवन से है। रामायण की तरह ढोला के आख्यान में जीवन के बहुत से इतर व्यापारों का विशेष उल्लेख नहीं मिलता और रति के सिवा जो थोड़े से इतर व्यापारों और भावों का उल्लेख मिलता है वह भी प्रेम-भाव के उपकारी भावों की तरह। इसका कारण यह है कि इस कहानी का केंद्र सीमित होने से सारे व्यापार प्रेम-तत्त्व में केंद्रीभूत हैं।

अब यह देखना है कि मारवणी का स्वप्न-दर्शन से उत्पन्न राग वास्तव में प्रेम कहलाने के योग्य है अथवा नहीं और इसी प्रकार ढाढियों से मारवणी की दशा को सुनकर ढोला का उसके लिये व्याकुल होना प्रेम की युक्ति-संगत अभिव्यंजना है अथवा नहीं।

पूर्वराग रति का अंग अवश्य है परंतु पूर्ण रति नहीं। साहित्य-दर्पण में विप्रलंभ शृंगार के चार भेद किए गए हैं और पूर्वराग की परिभाषा इस प्रकार की गयी है—

(१) स च पूर्वरागः मानप्रवासकरुणात्मकश्चतुर्द्धा स्यात् ॥

सा० द० ३।२१३

(२) श्रवणाद्दर्शनाद्वापि मिथः संरूढरागयोः।

दशाविशेषो योऽप्राप्तौ पूर्वरागः स उच्यते ॥ सा०द०३।२१४ ॥

तोते के मुँह से पहले-पहल पद्मावती का रूप-वर्णन सुनकर 'रत्नसेन का असह्य वियोग-व्यथा से व्यथित होकर मूर्छित हो जाना अस्वाभाविक सा जान पड़ता है। ऐसी दशा में पद्मावती के लिये उसका अभिलाषा मात्र करना स्वाभाविक हो सकता है। पद्मावती के पूर्वराग का विवेचन करते हुए पं० रामचंद्र शुक्ल ने 'जायसी ग्रंथावली की भूमिका में लिखा है—

"दूसरे के द्वारा—चाहे वह चिड़िया हो या आदमी—किसी स्त्री या पुरुष के रूप-गुण आदि को सुनकर झट उसकी प्राप्ति की इच्छा उत्पन्न करनेवाला भाव लोभ मात्र कहला सकता है, परिपुष्ट प्रेम नहीं। लोभ और प्रेम के लक्ष्य में सामान्य और विशेष का ही अंतर समझा जाता है। पूर्वराग रूपगुण प्रधान होने के कारण सामान्योन्मुख होता है, परंतु प्रेम व्यक्ति-प्रधान होने के कारण विशेषोन्मुख होता है।'

इस दृष्टि से पद्मावती और रत्नसेन का प्रेम पहले-पहल प्रिय पुरुष को पाने की अभिलाषा के रूप में लोभ का भाव सिद्ध होता है। यह बात मारवणी के प्रेम के संबंध में सर्वथा सिद्ध नहीं होती। दोनों में अंतर—बड़ा अंतर है। रत्नसेन के आकस्मिक प्रेम की तीव्र अभिव्यक्ति वास्तविकता की सीमा का उल्लंघन कर गई। इसी प्रकार पद्मावती भी शुक के सामने अपनी कामव्यथा को व्यक्त करती हुई स्त्रियोचित शील और मर्यादा से बाहर निकल जाती है और उसके खुलेपन को देखकर पाठक के मन में संकोच उत्पन्न होता है। यह सब अस्वाभाविक सा जँचता है। मारवणी का प्रेम मर्यादा और शील की सीमा में सर्वथा सुरक्षित रहकर प्रकट होता है और उसका क्रमागत विकास भी मनोवैज्ञानिक और लोक-व्यवहार की दृष्टि से युक्तियुक्त प्रतीत होता है।

यौवन के आरंभ में मारवणी को स्वप्न में पतिदेव के दर्शन होते हैं और उसके हृदय में एक वेदना उद्भूत होती है—"साल्ह कुँवर सुपनै मिल्यौ जागि निसासौ खाइ।" वियोग का दुःख उसके लिये अज्ञात वेदना है। उसे वेदना अवश्य होती है, परंतु वह स्त्री-सुलभ शील और मर्यादा को रखती हुई उसे गंभीरता-पूर्वक सहन करने की क्षमता भी रखती है; न तो मूर्च्छित होती है, न हाय-तोबा मचाकर आकाश-पाताल को एक करती है। इस दशा का सूक्ष्म परिचय कवि बड़े उत्तम ढंग से यों कराता है—

थाह निहाळइ, दिन गिणइ, मारू आसा-लुध्ध।
परदेसे घाँघल घणा, विखउ न जाणइ मुध्ध ॥१७॥

'थाह निहाळइ' में प्रतीक्षाजन्य धैर्य, आसालुद्ध' में आशा और अभिलाषा, 'विखउ न जाणइ मुध्ध' में अकस्मात् आए हुए प्रथम वियोग-दुःख से अपरिचय—इन भावों को स्पष्टतया दिखलाकर कवि ने मारवणी के प्रेम को मर्यादा, शील, शक्ति और लोक-व्यवहार की दृढ़ सीमा से निकलने नहीं दिया

है। शील-शक्ति-संपन्न मर्यादित भारतीय प्रेम-पद्धति का कैसा आदर्श चित्र है !

दूसरी ओर इसके विपरीत ऐसे ही मौके पर पद्मावती की पूर्वरागावस्था में वियोग-प्रलाप की अस्वाभाविक तीव्रता को आक्षेप से बचाने के लिये जायसी ने यह कारण दिया है—"पदमावति तेहि जोग सँजोगा। परी प्रेम-बस गहे विजोगा ॥" परंतु इस परोक्षवाद अथवा योग के चमत्कार से वर्णन का अनौचित्य कम नहीं हो जाता।

लौकिक दृष्टि से देखनेवाली सखियों को मारवणी के आकस्मिक प्रेमोद्रेक पर आश्चर्य्य हुआ; इसलिये नहीं कि वह कोई असंभाव्य बात थी, वरन् इसलिये कि उसके अकस्मात् और अलक्षित कारणों द्वारा व्यक्त होने से सखियों को मर्यादा-भंग होने की आशंका हुई और उन्होंने यह टेढ़ा प्रश्न पूछा,—यदि वे न पूछतीं तो कहानी पढ़कर मनोवैज्ञानिक आलोचक तो अवश्य पूछते—

अम्हाँ मन अचरिज भयउ, सखियाँ आखइ एम।
तइँ अणदिट्ठा सज्जणाँ, किउँ करि लग्गा पेम ॥२०॥

और इसके उत्तर में मारवणी क्या ही लाजवाब उत्तर देकर प्रेम के सर्वोत्कृष्ट आदर्श को व्यक्त करती है—

जे जीवण जिन्हाँ-तणाँ तन ही माँहि वसंत।
धारइ दूध पयोहरे बाळक किम काढंत ॥२१॥

प्रेम के इस पवित्र आदर्श को जानकर—जिसका निर्वाह कहानी में सर्वत्र हुआ है—अब कुछ कहना नहीं रह जाता। सखियाँ भी निरुत्तर होकर कह उठती हैं—

मारूनूँ आखइ सखी, एह हमारी बुज्झ।
साल्हकुँवर सुहिणइ मिल्यउ, सुंदरि, सउ वर तुज्झ ॥२४॥

जब तक सखियों ने निश्चयरूप से मारवणी की इस भावना का—कि स्वप्न में देखा हुआ प्रिय पुरुष तुम्हारा धर्मानुसार वरण किया हुआ पति है—समर्थन नहीं कर दिया तब तक मारवणी का प्रेम एक कुलीन आर्य-ललना के मर्यादोचित प्रेम के रूप में मनसा वाचा कर्मणा अकलुषित होकर प्रवाहित होता है। सखियों द्वारा प्रमाणित हो जाने पर उसे काम-जनित व्याकुलता होने लगती है और यह अनुचित भी नहीं है—

सखी-वयण सुंदरि सुण्या; उठी मदन की झाळ ।
सुंदरिनँ सज्जण-विरह ऊपन्नउ ततकाळ ॥२५॥

तदनंतर उत्तरोत्तर बढ़ती हुई यह व्याकुलता विरह-विलाप के रूप में प्रकट होती है । मारवणी पहले चातक पक्षियों से अपना दुखड़ा सुनाती है, फिर सारस और क्रौंचों के सामने विनय के रूप में अपना हृदय खोलकर अपनी वेदना सुनाती है और प्रार्थना करती है कि उसका संदेश कोई प्रिय को ले जाकर सुनावे । मारवणी के विरह की उक्तियाँ अत्यंत सरस, मर्मस्पर्शी, स्वाभाविक और प्रेम की कोमल भावनाओं से भरी हुई हैं ।

प्रेम विशेषोन्मुख होता है और पूर्णता प्राप्त करने के लिए उस प्रिय के साक्षात्कार की आवश्यकता होती है । मारवणी का ढोला के प्रति राग चाहे कितना ही तीव्र और वैवाहिक संस्कार द्वारा परिष्कृत क्यों न हो, जब तक उसका ढोला से मिलाप नहीं होता तब तक हम उसे पूर्वराग ही कहेंगे । विवाह-संबंध पूर्वघटित हो जाने से उसके विरह-विलाप इतने आक्षेप-योग्य और अस्वाभाविक नहीं कहे जा सकते जितने कि पद्मावती की पूर्वरागावस्था के तीव्र प्रलाप । ढोला से मिलने पर मारवणी का पूर्वराग पूर्ण प्रेम की दृढ़ता प्राप्त कर लेता है जिसका परिचय मारवणी की उस क्षिप्र बुद्धिजन्य समयोचित चेतावनी में मिलता है, जो उसने ऊमर सूमरा के षड्यंत्र में पड़े हुए अपने पति को देकर उसके प्राण बचाए थे ।

अब यह देखना चाहिए कि ढोला का प्रेम पहले-पहल किस रूप में प्रकट हुआ ? ढाढियों के आशय-गर्भित संवाद को गान के रूप में रात भर ढोला ने सुना । सुनकर मन में बेचैनी तो रही, परंतु उसका कारण सबेरे उनको बुलाकर सारा हाल पूछने से मालूम हुआ—

ढाढी गाया निसह भरि, सुणियउ साल्ह सुजाँण ।
ओछइ पाँणी मच्छ ज्यउँ वेळत थयउ विहाँण ॥१२२॥

मारवणी का वृत्तांत सुनकर ढोला को रत्नसेन की तरह मूर्च्छा नहीं आ गई और न उसने पागल की तरह प्रलाप ही किया । एक प्रकार का क्षोभ अवश्य हुआ, यह जानकर कि इतने दिन तक अपनी परिणीता प्रेयसी की सुध न लेकर जीवन के दिन व्यर्थ ही गँवाए—

ढोलइ मनि आरति हुई, सांभळि ए विरतंत ।
जे दिन मारू विण गया, दई न ग्याँन गिणंत ॥२०८॥

ढाढियों द्वारा संदेश सुनकर ढोला के मन में आनंदोत्साह हुआ, जैसे किसी को अपनी खोई अथवा भुलाई हुई बहुमूल्य निधि को पाकर आनंद होता है।

परंतु अब ज्यों-ज्यों वह मारवणी की शोचनीय दशा का स्मरण करता है त्यों-त्यों प्रेयसी से मिलने की उत्कंठा, और उसको अपनी दुखी दशा से विमुक्त करने की चिंता और चेष्टा का उत्साह उसके भावों को त्वरित करने लगा। कवि ने संक्षेप में ढोला के मन की दशा को यों व्यक्त किया है—

आडा डूँगर वन घड़ा, ताँह मिळीजइ केम।
ऊलाळीजई मूँठ भरि मन सीँचाणउ जेम ॥२१२॥

इहाँ सु पंजर मन उहाँ, जइ जाणइला लोइ।
नयणा आढा वींझ वन, मनह न आडउ कोइ ॥२१३॥

जिउँ मन पसरइ चिहुँ दिसइ, जिम जउ कर पसरंति।
दूरि थकाँ ही सज्जणाँ, कंठा ग्रहण करंति ॥२१४॥

माळवणी अपने सुपुष्ट व्यवस्थित प्रेम के प्रभाव से येन-केन-प्रकारेण एक वर्ष तक ढोला की यात्रा स्थगित कर रखती है। माळवणी को, ढोला को उसकी यात्रा से विरत करने का अधिकार था और वह अधिकार उसके प्रेम की दृढ़ता का द्योतक है। सपत्नी-द्वेष स्त्री-हृदय की एक स्वाभाविक कमजोरी है। कमजोरी ही नहीं, वह प्रेम में एकनिष्ठता और अनन्यता की पोषक शक्ति भी है। माळवणी स्त्री थी, अतएव सपत्नी-डाह के लिये हम उसे बुरा नहीं कह सकते। इसके अतिरिक्त माळवणी के प्रेमपूर्ण उद्गारों में एक प्रकार की शक्ति, पवित्रता, गंभीरता, करुणा और अनुभवशीलता भरी है। वह मर्यादा से कहीं भी च्युत नहीं हुई है।

परंतु ढोला के प्रसंग में देखना यह है कि मारवणी का संदेश ढाढियों द्वारा सुनकर जो ढोला तत्काल ही अत्यंत प्रेमातुर और उत्कंठित प्रतीत होता है, उसका एक वर्ष तक यात्रा को स्थगित रखना या तो मारवणी के प्रति प्रेम की शिथिलता को प्रकट करता है अथवा कर्त्तव्य को कार्यरूप में परिणत करने का अनुत्साह अथवा असामर्थ्य। परंतु विचार कर देखने पर ढोला पर प्रेम-शैथिल्य अथवा अनुत्साह दोनों में से एक भी आक्षेप का आरोप नहीं हो सकता। इसका कारण यह है कि उस समय ढोला के लिये प्रेम-मार्ग में बड़ी कठिन समस्या उपस्थित हो गई थी। उसके प्रेम की समान रूप से

अधिकारिणियाँ माळवणी और मारवणी दोनों थीं। वह किस संयोगिता को छोड़कर वियोग-दुःख से दुखी करे और किस वियुक्ता को ग्रहण कर संयोग सुख से सुखी करे। दोनों ओर से प्रेम और कर्त्तव्य-बुद्धि की खींचातान उपस्थित हो गई। माळवणी के प्रेम का तिरस्कार भी वह आसानी से नहीं कर सकता था। माळवणी को जिस किसी तरह प्रसन्न करके उसकी आज्ञा लेकर ही वह चलता है। ढोला के मारवणी के प्रति पूर्वराग को हम रत्नसेन की तरह केवल रूप-लोभ नहीं कह सकते। उसमें कर्त्तव्य-बुद्धि द्वारा प्रेरित प्रिय-मिलनोत्साह सम्मिलित है। अतएव हम उसे ढोला के मन की वह उदात्त भावना कहेंगे जिसमें मर्यादापालन, धर्म-रक्षा और समाज के विशिष्ट संस्कार जन्य वैवाहिक प्रतिज्ञा का पालन मिश्रित है। यद्यपि मारवणी की विरह-दशा अधिक शोचनीय होने के कारण हमारी सहानुभूति का खिंचाव उसकी ओर ही अधिक होता है और हम ढोला की ढील को मारवणी के प्रति क्रूरता और अन्याय कहेंगे, परंतु यदि ढोला की परिस्थिति में अपने को रखकर विचार करें तो उसका व्यवहार युक्ति-संगत ही प्रतीत होगा। ढोला के राग को हम पूर्ण प्रेम की अवस्था भी नहीं कह सकते क्योंकि प्रेम में प्रेमी व्यक्तियों के साक्षात्कार की आवश्यकता होती है और अभी ढोला और मारवणी का साक्षात्कार नहीं हुआ है। पूर्वराग की यह अपूर्णता न होती तो जब रास्ते में ऊमर के चारण से मिलने पर उसे मारवणी की गलित-यौवनावस्था का हाल मालूम होता है, तब ढोला के मन में संशयजन्य विरक्ति का भावोदय न होता। पूर्ण प्रेम की कोटि को पहुँचे हुए प्रेमियों में प्रेमी की पतितावस्था को जानकर उसके प्रति प्रेम और घनीभूत हो जाता है और समवेदना और सहायता के रूप में प्रगतिशील होता है, न कि विरक्त हो जाता है। मारवणी से मिलने पर यही पूर्वराग दृढ़ और एकनिष्ठ होकर सात्त्विक प्रेम की कोटि पर स्थापित हो जाता है। अब संशय, स्वार्थ और लोभ-जनित किसी प्रकार की क्षुद्र कमजोरी उसे प्रेम के कर्त्तव्य-मार्ग से विचलित अथवा विरक्त नहीं कर सकती। मारवणी के साँप से डसे जाने पर ढोला मरने को तैयार हो जाता है और पूगळवासियों के इस प्रस्ताव पर कि—

मारू त्रिहुँ बरसे बड़ी, चंगारइ उणिहार।
सा कुँमरी परणाविस्याँ, चालउ, राजकुँमार ॥ ६१३ ॥

वह ध्यान तक नहीं देता। इसी प्रकार महादेव के मंडप में पद्मावती का

साक्षात्कार प्राप्त कर रत्नसेन का रूपलोभ जनित पूर्वराग सात्विक प्रेम की दृढ़ता को प्राप्त कर लेता है।

ऊमर-सूमरा भी मारवणी के रूप-वर्णन को सुनकर उसके प्रेम को पाने के लिये प्रयत्नशील हुआ था। देखना यह चाहिए कि एक ही प्रेयसी की प्रेम प्राप्ति के लिये प्रगतिशील हुए ऊमर-सूमरा और ढोला के पूर्वराग में ऐसा कौन सा अंतर है कि एक को तो हम लंपट समझ कर घृणा की दृष्टि से देखते हैं और दूसरे को सच्चा प्रेमी समझ कर उसके साथ सहानुभूति रखते हैं। ऊमर-सूमरा के विपक्ष में पहली बात तो यह है कि उसने दूसरे की विवाहिता स्त्री को कलुषित दृष्टि से देखा और दूसरे उसका धोखे से भरा प्रयत्न दुष्ट प्रयत्न था। यही कारण है कि वह अपने प्रयास में असफल रहा। इसी प्रकार विवाह हो जाने पर दो अवसरों पर पद्मावती के प्रेम की दृढ़ता की परीक्षा होती है और दोनों में वह उत्तीर्ण निकलती है। राजा रत्नसेन के बंदी हो जाने पर वह बड़ी दुखी और विह्वल हो जाती है, परंतु बड़ी भारी विपत्ति का दृढ़ता से सामना करती हुई गोरा-बादल के साहाय्य से पति को जीवन-संकट से बचाकर मारवणी की तरह अपनी छिप्र बुद्धि और साहस का परिचय देती है। राजा रत्नसेन के मारे जाने के बाद रोने और विलाप करने में वृथा समय नष्ट न करके वह नागमती सहित आनंदपूर्वक पति से परलोक में जा मिलती है। उसके सतीत्व की दृढ़ता का प्रमाण इससे बढ़कर क्या हो सकता है कि कुम्भलगढ़ के दुष्ट सरदार देवपाल के कलुषित प्रस्ताव को वह उस आपत्तिकाल में भी घृणापूर्वक ठुकरा देती है।

इसी प्रसंग में माळवणी और मारवणी के प्रेम की तुलना कर लेना भी अनुचित न होगा। पद्मावत की नागमती और पद्मावती के प्रतिरूप ढोला की कथा में माळवणी और मारवणी हैं।

पद्मावती के नव-प्रस्फुटित प्रेम को हम क्रमशः विकसित होते हुए देखते हैं। वह विपत्ति की कसौटी पर कई बार कसा गया और उन परीक्षाओं में उत्तीर्ण होकर उसका सोना और भी ज्यादा चमक उठा। नागमती का प्रेम गार्हस्थ्य-परिपुष्ट गंभीर प्रेम है। उसमें एक प्रकार का गर्व और अधिकार है जो दांपत्य सुख के परिणाम स्वरूप होता है। इसी प्रकार मारवणी के प्रेम के आद्योपांत विकास सूत्र पर जब हम मनन करते हैं तो वह हमें बड़ा स्वाभाविक, मनोहर और प्रिय मालूम होता है। पद्मावती के प्रेम की

अपेक्षा वह अधिक संयत और मर्यादाबद्ध, अतएव अधिक परिष्कृत और परिपुष्ट कोटि का प्रेम प्रतीत होता है। माळवणी का प्रेम गार्हस्थ्य-परिपुष्ट होने के कारण गंभीर और अधिकार-संपन्न है। उसी अधिकार और गर्व की बदौलत वह मारवणी के प्रेम में आतुर प्रेमी को एक वर्ष तक रख लेती है। नागमती की तरह माळवणी भी रूप-गर्विता सी प्रतीत होती है। जिस प्रकार पद्मावत में पद्मावती और नागमती के विलापों से हम उनके प्रेम-प्रवाह की तीव्रता का अंदाजा लगा सकते हैं, उसी प्रकार माळवणी और मारवणी के विरह विलापों से हम उन दोनों के प्रेम के घनत्व का अनुमान कर सकते हैं।

मारवणी की पूर्वरागावस्था में प्रकट की हुई प्रेम-भावनाएँ यद्यपि कोमल, हृदयस्पर्शी और दर्दभरी हैं परंतु माळवणी के विलाप की तीव्रता के सामने उनकी तीव्रता कम है। इसका कारण यही हो सकता है कि माळवणी के गार्हस्थ्य-प्रेम को एक प्रकार का स्थायित्व और अधिकार प्राप्त था और उसके स्थायी प्रेम ने नायक के जीवन के अनेक अंगों और विषयों को समवेदना के सूत्र में बाँध रखा था। संक्षेप में यह कह सकते हैं कि माळवणी का प्रेम ढोला के जीवन के अंगों को अधिक व्यापक रूप में प्रभावित कर सका है। मारवणी का प्रेम नवस्फुटित और अपेक्षाकृत एकांत स्थायी होने के कारण उसका क्षेत्र अधिक संकुचित और मर्यादा संयत रहा है। जिस प्रकार पद्मावत में नागमती का विरह-वर्णन काव्य का सर्वोत्कृष्ट भावुक स्थल है उसी प्रकार प्रकृत काव्य में माळवणी का वियोग-वर्णन भी काव्य का उत्कृष्ट मर्मस्पर्शी स्थल है। पहला हिंदी-साहित्य में विप्रलंभ शृंगार का उत्कृष्ट नमूना है तो दूसरा राजस्थानी विप्रलंभ शृंगार का।

बहु-विवाह की प्रथा सामाजिक दृष्टि से कलह-मूलक होने के कारण जितनी अनिष्टकारी रही है, उतनी ही काव्य में प्रेम-मार्ग की व्यावहारिक जटिलताओं के परिणाम-स्वरूप सपत्नी-डाह और प्रेम-संघर्ष की सूक्ष्म भावनाओं को सामने लाने के कारण वह कवियों के लेखनी का ग्राह्य और अनुरंजनकारी विषय रही है। माळवणी और मारवणी में पारस्परिक ईर्ष्या-जनित विवाद होता है; दोनों एक दूसरे के देश और समाज को बुरा बताती हैं। यह प्रेमपूर्ण मीठी कलह ज्यादा नहीं बढ़ने पाती; चतुर

और व्यसहारद क्षप्रेमी नायक दोनों को प्रेमपूर्वक समझाकर शांत कर देता है। प्रेम-मार्ग का इससे मिलता-जुलता व्यावहारिक अभिनय पद्मावत में भी आया है और वहाँ भी चतुर नायक अपनी प्रेमपूर्ण व्यवहार-दक्षता से झगड़े को शांत करता है। ये घटनाएँ दोनों काव्यों को लोक-समन्वित और व्यवहार-संबद्ध वास्तविकता का सौंदर्य्य देने में बहुत सफल हुई हैं।

साहित्य में शृंगार के दो भेद माने गए हैं—विप्रलंभ शृंगार और संभोग शृंगार। 'ढोला' और जायसी की पद्मावत में विप्रलंभ शृंगार प्रधान है। यह देखा गया है कि विप्रलंभ-प्रधान कहानियों में नायक और नायिका का प्रेम-प्रवाह विषमता से समता की ओर बहता है; संभोग-प्रधान वृत्तों में समता से विषमता की ओर। जायसी की पद्मावत में प्रेम-प्रवाह पहली कोटि का है और इसी प्रकार 'ढोला' में भी। इस प्रकार के काव्यों में एक विशेषता यह भी रहती है कि प्रेमियों का कथा के प्रारंभ में ही साक्षात् मिलन नहीं हो पाता, जिससे कवि को उनके प्रेम-जन्य औत्सुक्य, प्रेमी को प्राप्त करने की व्याकुलता, चिंता इत्यादि भावों के सविस्तर वर्णन करने का अच्छा मौका मिल जाता है और इससे काव्य में भावुकता की स्फूर्त्ति आ जाती है। जहाँ प्रेम समता से विषमता की ओर ढलकर बहता है उन काव्यों में विप्रलंभ का अंश बीच में आता है अथवा अंत में, परंतु वहाँ प्रेमी का प्रेमी को प्राप्त करने के लिये प्रेम-प्रयास, आकांक्षा, उत्कंठा, भावुकता इत्यादि भावों की वह सहज तीव्रता नहीं रहती।

भक्तों का ईश्वरोन्मुख प्रेम भी विषमता से समता की ओर प्रवाहित होता है। अतएव यह स्वाभाविक है कि इस पद्धति की विप्रलंभ-प्रधान कहानी से ईश्वरोन्मुख प्रेम की व्यंजना भी की जाय। जायसी ने पद्मावत की सारी प्रेम कहानी को एक अन्योक्ति का रूपक बनाकर ग्रंथ के उत्तर भाग में चर्चा की है—

तन चितउर मन राजा कीना। हिय सिंघल बुधि पदमिनि चीन्हा ॥

यद्यपि ढोला-मारू की प्रेम-पद्धति भी उसी कोटि की है, परंतु इस कहानी में न तो कवि ने अन्योक्ति द्वारा ईश्वरोन्मुख प्रेम की व्यंजना करने का अपना अभिप्राय और संकल्प कहीं व्यक्त किया है और न उसका ऐसा प्रयास ही कहीं दृष्टिगोचर होता है। यह तो एक सीधी-सादी प्रेम-कथा है और इसी में रस का सौंदर्य मँजा है। परंतु जिन लोगों को इस प्रकार की परोक्ष व्यंजना के बिना पूरा स्वाद नहीं मिलता, वे चाहें तो इसमें ईश्वर-भक्ति का

गंभीर आभास भी आसानी से देख सकते हैं और कहानी को जीवात्मा के ईश्वरोन्मुख प्रेम में घटा सकते हैं। ढोला अथवा मारवणी को, मारवणी अथवा ढोला के प्रेम तक, पहुँचानेवाला प्रेम-पंथ जीवात्मा को परमात्मा से मिलानेवाला भक्ति-मार्ग है। इस मार्ग में अग्रसर होने से रोकनेवाली माळवणी संसार की मोह-माया का जाल है। ऊमर-सूमरा और उसका दुष्ट चारण शैतान है अथवा प्रेम के सच्चे पथ से विचलित करनेवाले काम, क्रोध, मद, मात्सर्य्य, ईर्ष्या आदि सांसारिक दुर्गुण हैं। इन सब अवरोधों को प्रेम-साधना के योगबल से पार कर सच्चा प्रेमी अपने प्रेमपात्र को पा लेता है। जिस प्रकार जीवात्मा को परमात्मा में लीन होने पर मोक्ष-प्राप्ति-जन्य ब्रह्मानंद प्राप्त होता है उसी प्रकार प्रियतम को प्राप्त कर लेने पर मारवणी के हर्षोल्लास और ब्रह्मानंद-सहोदर संयोग-सुख का कवि ने इस प्रकार वर्णन किया है—

आजे रळी - वधामणाँ, आजे नवला नेह।
सखी अम्हीणी गोठमइँ दूधे बूठा मेह ॥५५६॥
साहिब आया, हे सखी, कज्जा सहु सरियाह।
पूनिम-केरे चंद ज्यूँ दिसि च्यारे फळियाँह ॥५२८॥

(१०) ढोला-मारू का वियोग-शृंगार

काव्य की भावुकता को दरसाने के लिये मारवणी और माळवणी के विरह-विलापों से लेकर कुछ उदाहरण नीचे देते हैं—

वर्षाऋतु में विरह-व्यथित स्त्रियों को प्रिय की याद दिलानेवाला पपीहे का निरंतर "पी कहाँ, पी कहाँ" पुकारना असह्य वेदना-जनक होता है—

बाबहियउ नइ विरहणी, दुहुवाँ एक सहाव।
जब ही बरसइ घण घणउ, तबही कहइ प्रियाव ॥२७॥

'पद्मावत' की नागमती को भी प्रिय-विरह में पपीहे का पुकारना इसी तरह सालता था—

पिउ बियोग अस बाउर जीऊ। पपिहा नित बोलै पिउ पीऊ॥

बिजलियों को अपने प्रेमी घन से ललक-ललककर आलिंगन करते देखकर मारवणी का अपने प्रेमी की स्मृति करना कितना स्वाभाविक है।

बीजुळियाँ चहलावहळि आभय आभय कोडि।
कद रे मिलउँली सज्जना कस कंचूकी छोडि ॥४६॥
बीजुलियाँ चहलावहलि आभइ आभइ च्यारि।
कद रे मिलउँली सज्जना लाँबी बाँह पसारि ॥४५॥

परंतु संयोगानंद में लीन बिजलियाँ इस वियोगिनी दुखिया के दुखड़े को क्यों सुनने बैठी थीं। इनसे निराश होकर, झुँझलाकर मारवणी बादल की शरण जाती है—

बिज्जुळियाँ नीळज्जियाँ, जळहर, तूँ ही लज्जि।
सूनों सेज, विदेस प्रिय, मधुरइ मधुरइ गज्जि ॥५०॥

समान भावना और परिस्थितिवाले जीवों में सहानुभूति उत्पन्न होना स्वाभाविक होता है। मारवणी निशीथ की शांति में तालाब के समीप सारसों के क्रंदन को सुनकर कहती है—

राति सखी, इणि ताळ मइँ काइ ज कुरळी पंखि।
उवै सरि, हूँ घरि आपणइ, बिहूँ न मेळी अंखि ॥५१॥

इतने में, ताल में विहार करती हुई, क्रौंचों की पंक्तियाँ दिखाई पड़ीं। क्रौंचों ने कलरव करना शुरू कर दिया। तब तक मारवणी की विरह-वेदना का प्रवाह द्रवित होकर अनर्गल रीति से बह निकला—

कूँझड़ियाँ करळव कियउ घरि पाछिले वणेहि।
सूती साजण संभर्या, द्रह भरिया नयणेहि ॥५४॥
कूँझड़ियाँ कळिअळ कियउ, सरवर पइलइ तीर।
निसिभरि सज्जण सल्लियाँ नयणे वूहा नीर ॥५६॥

मारवणी के करुण-विलाप से द्रवीभूत होकर कुरझें (क्रौंच) उसके संदेश को सुनती हैं और समवेदना प्रकट करती हैं। नागमती पर भी एक पक्षी को इतनी दया आ जाती है कि वह उसके प्रेम-संदेश को ले जाने को तैयार हो जाता है। कुरझों के प्रति मारवणी की कैसी जोरदार करुण प्रार्थना है—

कुंझाँ, द्यउ नइ पंखड़ी, थाँकउ विनउ वहेसि।
सायर लंघी प्री मिलउँ प्री मिलि पाछी देसि ॥६२॥
उत्तर दिसि उपराठियाँ, दक्षिण साँमहियाँह।
कुरझाँ, एक सँदेसड़उ ढोला नइ कहियाँह ॥६४॥

उत्तर में कुरझें अपनी असामर्थ्य प्रकट करती हैं। फिर भी जहाँ तक बन सकता है वे मारवणी की सहायता करने को तैयार हैं—

म्हें कुरझाँ सरवर-तणी, पाँखाँ किणहिँ न देस।
भरिया सर देखी रहाँ, उड आघेरि वहेस॥ ६३॥
माणस हवाँ त मुख चवाँ, म्हे छाँ कूँझड़ियाँह।
प्रिउ संदेसउ पाठविसु, लिखि दे पंखड़ियाँह॥ ६५॥

विरही हृदय की अभिलाषाएँ भी बड़ी विचित्र होती हैं। मारवणी जब अत्यंत उत्कंठित हो जाती है तो सामने के पहाड़ों को देखकर अभिलाषा करती है—

ज्यूँ ए डूँगर संमुहा, त्यूँ जइ सज्जण हुंति।
चंपावाड़ी भमर ज्यउँ, नयण लगाइ रहंति॥ ७३॥

प्रेमी हृदय की उच्च कोटि की आत्म-समर्पण और आत्म-निसर्ग की भावनाएँ मारवणी की इन अभिलाषाओं में प्रकट होती है—

जिणि देसे सज्जण वसइ तिणि दिसि वज्जउ वाउ।
उआँ लगे मो लग्गसी, ऊ ही लाख पसाउ॥ ७४॥

शृंगार रस की परिपुष्टि के लिये कवि लोग उद्दीपन विभाव के अंतर्गत षड्ऋतु-वर्णन अथवा बारहमासे का वर्णन करते हैं। नागमती के विरह वर्णन के अंतर्गत जायसी ने बारहमासे का वर्णन किया है जो हिंदी-साहित्य में अपनी कोमल मर्मस्पर्शी भावनाओं के लिये अद्वितीय समझा जाता है। प्रेम में सुख और दुःख दोनों की अनुभूतियाँ विस्मृत और घनीभूत हो जाती हैं। संयोग-सुख में वही ऋतुएँ आनंद सर्वस्व प्रदान करती हैं और वियोग में वही नित नूतन दुःख के साधन उपस्थित करती हैं। इस प्रकार के ऋतु-वर्णनों द्वारा कवियों के प्रायः दो प्रयोजन सिद्ध होते हैं—

(१) प्राकृतिक वस्तुओं और व्यापारों का दिग्दर्शन।

(२) सुख और दुःख के नाना रूपों और कारणों की उद्भावना और उद्दीपन।

जायसी का बारहमासा नागमती के विरह-दुःख से संश्लिष्ट होकर उद्दीपन विभाव की तरह विप्रलंभ शृंगार की परिपुष्टि करता है। अतएव उसका काव्य में प्रयोग दूसरे प्रकार का है। 'ढोला' का ऋतु-वर्णन भिन्न

प्रकार का है। उसका उपयोग पहले ढंग के अनुसार वस्तु और व्यापार-निदर्शन के लिये हुआ है। मारवणी के समीप जाने की तैयारी करने से ढोला को रोकने के लिये प्रत्येक ऋतु की वस्तु और व्यापार को आक्षेप-रूप में आलंबन बनाकर वर्णन किया गया है। परंतु यह कहना भी सर्वथा युक्ति-संगत न होगा कि यह केवल वस्तु-वर्णन ही है। माळवणी की कोमल प्रेम-भावनाएँ भी परोक्ष अथवा प्रत्यय रूप में इसमें जहाँ-तहाँ मिली हुई हैं। ग्रीष्म, वर्षा और शीत इन्ही तीनों का व्यापक परिधि में छहों ऋतुओं का वर्णन कर दिया गया है। इन तीनों में भी वर्षा सबसे अधिक हृदयग्राही बना है। इसका कारण यह हो सकता है कि मरुस्थल में वर्षा ही सबसे अधिक आह्लादकारिणी ऋतु होती है। वस्तु-वर्णन की पूर्णता की दृष्टि से इस ऋतु-वर्णन का विवेचन दूसरे प्रसंग में किया जा चुका है।

मारवणी का संदेश

मारवणी का प्रेम-संदेश राजस्थान के शृङ्गार-साहित्य में सर्वोत्तम वस्तु है। यद्यपि हम उसका मारवणी के विरह-विलाप का एक अंग ही मानते हैं तथापि संदेश होने के कारण उसमें एक विशेष तीव्रता, कोमलता और मधुरता आ गई है। इस तीव्रता और कोमलता का कारण यह है कि जहाँ और-और विरह-विलाप प्रेमी के बिछुड़कर चले जाने पर विरही हृदय की नैराश्यमयी और निरुद्देश्य भावनाओं के रूप में विक्षिप्त-प्रलाप प्रतीत होते हैं और करुणा और शोक, हतोत्साह और निराशा के भार से दबे रहते हैं, वहाँ मारवणी के संदेश आशागर्भित, सोद्देश्य और स्फूर्तिमय हैं। इनमें एक प्रेमी का अपने प्रेमपात्र के साथ सान्निध्य का भाव भरा हुआ है। इन संदेशों में आत्मसमर्पण का भाव कूट-कूटकर भरा है—

ढाढी, जे साहिब मिलइ, यूँ दाखविया जाइ।
आँख्याँ सीप विकासियाँ, स्वाति ज बरसउ आइ॥ ११६॥
ढाढी, एक सँदेसड़उ कहि ढोला समझाइ।
जोबण आँबउ फळि रह्यउ, साख न खाअउ आइ॥ ११७॥
ढाढी, जइ साहिब मिलइ, यूँ दाखविया जाइ।
जोबण-कमळ विकासियउ, भमर न बइसइ आइ॥ ११६॥

इसी प्रकार—

जोबन-चाँपउ मउरियउ, कळी न चुट्टइ आइ ॥ १२० ॥
कण पाकउ, करसण हुअउ, भोग लियउ घरि आइ ॥ १२१ ॥
जोबन खीर समुंद्र हुइ, रतन ज काढइ आइ ॥ १३१ ॥

आत्म-समर्पण में त्याग की मात्रा तब और भी ज्यादा बढ़ जाती है जब उसमें "यद् यद् श्रीमदूर्जितं सत्वं तत्तदेव..." का भाव रहता है। प्रियतम के चरणों में अपने जीवन की सर्वोत्तम विभूति—यौवन—को भेंट करने की यह उत्सुकता, वह सर्वोत्तम सात्त्विक मानव-भावना है जो मनुष्य को ईश्वरत्व की कोटि में पहुँचाती है। श्री रवींद्रनाथ ठाकुर की गीतांजलि के भाव इसी आत्मोत्सर्ग की महान् भावना से ओत-प्रोत हैं।

पत्नी के लिये पति के बिना यौवन व्याधिस्वरूप हो जाता है। उच्छृंखल स्वभाववाले यौवन पर शासन करनेवाला प्रेमी जब नहीं होता तो वह उत्पाती अबला को विवश कर उसके सर्वस्व का हरण कर लेता है। यह सूक्ष्म भावना कैसे सुंदर ढंग से व्यक्त की गई है—

ढाढी जे राज्यँद मिलइ, यूँ दाखविया जाइ।
जोबण-हस्ती मद चढ्यउ, अंकुस लइ घरि आइ ॥ ११५ ॥
ढाढी, जइ प्रीतम मिलइ, यूँ दाखविया जाइ।
जोबण छत्र उपाड़ियउ, राज न बइसउ काइ ॥ ११८ ॥
पंथी, एक सँदेसड़उ लग ढोलउ पैहचाइ।
विरह-महादव जागियउ, अगिन बुझावउ आइ ॥ १२३ ॥
पही, भमंताँ जइ मिलइ, तउ प्री आखे भाय।
जोबण बंधन तोड़सइ, बंधण घातउ आय ॥ १२४ ॥

मारवणी के संदेशों में उसकी जागरित मानसिक दशाओं की उथल-पुथल और भाव-विकारों का मनोवैज्ञानिक चढ़ाव-उतार बड़ी मार्मिक सूक्ष्मता के साथ दिखलाया गया है। अपनी हृद्गत पीड़ा को मारवणी अनुनय, विनय, क्षोभ, पश्चात्ताप, आशंका, भय, प्रार्थना इत्यादि के रूप में नाना प्रकार से व्यक्त करती है। मारवणी के विलाप और संदेशों में शृंगार के निर्वेद आदि तेंतीस व्यभिचारी भावों में से बहुतों का समावेश हुआ है।

अनुनय-विनय करते-करते मारवणी व्यथा उत्तेजित हो जाती है। इस दशा में क्षोभ और लाचारी का भाव कैसी मनोज्ञता के साथ व्यक्त हुआ है—

ढाढी, एक सँदेसड़उ प्रीतम कहिया जाइ।
सा धण बळि कुइला भई, भसम ढंढोळिसि आइ ॥ ११२ ॥
ढाढी, एक सँदेसड़उ ढोलइ लगि लइ जाइ।
जोबण फट्टि तळावड़ी, पाळि न बंधउ काँइ ॥ १२१ ॥

इसी प्रकार—

तन मन उत्तर वाळियउ, दक्खिण वाजइ आइ ॥ १२६ ॥
धँण कँगळाँणी कमदणी, सिसहर ऊगइ आइ ॥ १२६ ॥
धँण कँमळाँणी कँमळणी, सूरिज ऊगइ आइ ॥ १३० ॥

क्षुब्ध हृदय के आंतरिक विक्षोभ को शाब्दिक यथार्तता में व्यक्त करना इससे अधिक स्पष्ट नहीं हो सकता। विरह-विकारों से हिलोरें लेता हुआ तरंगित और क्षुब्ध यौवन-सागर विरहिणी के शरीर के सीमा-बंधनों को तोड़-कर निकल पड़ा, इससे बढ़कर विरह की बाढ़ का व्यजन क्या हो सकता है। इस समय यदि रक्षा हो सकती है तो पाल बाँधने से और यह कार्य प्रियतम (ढोला) के बिना हो नहीं सकता।

इसी प्रकार की एक उत्तम व्यंग्य-प्रधान भावना जायसी ने भी नागमती के विरहाकुल हृदय के उद्गार के रूप में व्यक्त की है—

सरवर हिया घटत नित जाई। टूक टूक होइ कै बिहराई।
बिहरत हिया करहु पिय टेका। दीठि दवँगरा मेरवहु एका ॥

दोनों विरहिणियों की दर्दभरी भावनाएँ लगभग एक सी तीव्र हैं।

मारवणी ढाढी को संदेश कहती जा रही है; हृदय व्याकुल है, कंठ अवरुद्ध हुआ जा रहा है। नतमुख हुई भावावेश में वह पैर की उँगलियों से धरती को कुरेदती जा रही है। साथ ही आँखों से आँसुओं की धारा बह रही है। इस स्वभाव-चित्र की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। ऐसी-ऐसी स्वभावोक्तियाँ और व्यंग्य-भावनाओं पर उत्तम का प्रसाद खड़ा होता है।

पंथी-हाथ सँदेसड़इ, धण विललंती देह।
पनसूँ काढइ लीहटी, उर आँसुआँ भरेह ॥१३७॥

मारवणी की इस करुण दशा और दर्दभरे हृदयोद्गारों को जब हम पढ़ते हैं तो यह विचार आए बिना नहीं रहता कि ढोला का हृदय बड़ा कठोर है कि उसने ऐसी एकनिष्ठ पतिप्राणा प्रेयसी की अब तक सुधि नहीं ली। मार-वणी व्यथित अवश्य है परंतु विरह ने उसे किंकर्त्तव्यविमूढ़ नहीं कर दिया

है। ढोला ने उसकी अब तक सुधि न ली तो न सही, वह स्वयं तो एक पतिप्राणा आर्य रमणी की तरह अपना कर्त्तव्य पहचानती है। यह झूठी धमकी नहीं है। जो मारवणी अपने पति के पास संदेश पहुँचाने की कठिन समस्या को अपनी बुद्धि से हल कर सकी वह ऐसा भी कर सकती है—

जइ तूँ ढोला, नावियउ, कइ फागुण कइ चेत्रि।
तउ म्हे घोड़ा बाँधिस्याँ, काती कुड़ियाँ खेत्रि ॥१४६॥
जउ तूँ साहिब, नावियउ सावण पहिली तीज।
बीजळ-तणइ झबूकड़इ मूँध मरेसी खीज ॥१४६॥
फागुण मासि वसंत रुत आयउ जइ न सुणेसि।
चाचरिकइ मिस खेलती, होळी झंपावेसि ॥१४५॥
पावस मास, विदेस प्रिय, घरि तरुणी कुळसुध्ध।
सारंग सिखर, निसद्द करि, मरइ स कोमळमुध्ध ॥१७४॥

पतिव्रता अबला का पति-वियोग में अंतिम बलपूर्ण अस्त्र यही है। जौहर और सती की पवित्र प्रथा ने न जाने कितनी हिंदू सतियों के सतीत्व और शील की रक्षा कर संसार में स्त्री हृदय की पवित्रता और दृढ़ता का आदर्श स्थापित किया है।

परंतु मारवणी के दिल की सच्ची लगन प्रिय-मिलन की आशा है। वह प्रिय से मिले बिना मरने को उद्यत नहीं है। प्रेम में आशा का निरंतर प्रकाश रहता है। प्रेमी का प्रेमपात्र के प्रति अखंड विश्वास होता है, यद्यपि विरह की तीव्र वेदना अंधकार के रूप में इस आशाजन्य प्रकाश को छाया की तरह धूमिल करती रहती है। इस आशा और नैराश्य के छाया-प्रकाश की क्रिया-प्रतिक्रिया का बड़ा अच्छा निदर्शन मारवणी के संदेशों में उपलब्ध होता है। यह काव्यस्थल कलात्मक दृष्टि से एक अनूठा प्राकृतिक चित्र है।

एक बार अपने अनंत विश्वास को पुनः प्रकट कर मारवणी आशागर्भित भावों में संदेश का अंत करती है—

हियड़इ भीतर पइसि करि ऊगउ सज्जण रूँख।
नित सूकइ नित पल्हवइ, नित नित नवला दूख ॥१५८॥

रोम-रोम में व्याप्त प्रेम की क्षण में निराशा से मुरझाती और दूसरे क्षण में आशा की दीप्ति से प्रदीप्त होती दशा का इससे बढ़कर क्या स्वभाव-चित्र होगा?

मारवणी के एकनिष्ठ सात्त्विक प्रेम के आदर्श की व्यंजना इन दूहों में बड़े मार्मिक ढंग से हुई है—

जिम सालूराँ सरवराँ, जिम धरणी अर मेह।
चंपावरणी वालहा, इम पाळीजइ नेह ॥१६८॥
तुँ ही ज सज्जण, मित्त तूँ प्रीतम तूँ परिवाँण।
हियड़इ भीतरि तूँ वसइ, भावइँ जाँण म जाँण ॥१७५॥
हूँ बळिहारी सज्जणाँ, सज्जण मो बळिहार।
हूँ सज्जण पग पानही, सज्जण मो गळहार ॥१७६॥

संदेश देकर ढाढियों को बिदा करती हुई मारवणी की दशा को कवि ने कुशल मनोवैज्ञानिक चित्रकार की तरह बड़ी ही सूक्ष्मता से चित्रित कर भावुकता में कमाल कर दिया है--

संभारियाँ सँताप, वीसारिया न वीसरइ।
काळेजा बीचि काप, परहर तूँ फाटइ नहीं ॥१८०॥
भरइ- पळट्टइ, भी भरइ, भी भरि, भी पळटेहि।
ढाढी-हाथ संदेसड़ा धण विललंती देहि ॥१८२॥

मारवणी के संदेशों में दो-एक स्थान पर कवि-कल्पना का अपव्यय भी हुआ है। दूर का सूझ में कल्पना का ऊहावृत्ति यद्यपि चमत्कार अवश्य उत्पन्न करती है परंतु अंतस्तल के सच्चे उद्गारों के बीच ये चमत्कार नकली मोती की तरह प्रतीत होते हैं। इन ऊहात्मक और अत्युक्तिपूर्ण वर्णनों के गर्भ में हमको मारवणी की वेदना का भाव स्पष्टतः दिखाई देता है। इस बात से संतोष होता है कि मारवणी के निष्कपट भावना-रूपी सुवर्ण-सूत्र ने इन बनावटी मोतियों को भी संवेदना के सूत्र में ग्रथित कर उनको काव्योपयुक्त रूप दे दिया है। वे स्थल ये हैं —

प्रीतम, तोरइ कारणइ ताता भात न खाहि।
हियड़ा भीतर प्रिय वसइ, दाझणती डरपाहि ॥१६०॥
राति ज रुँनी निसह भरि, सुणी महाजनि लोइ।
हाथाळी छाला पड़्या, चीर निचोइ निचोइ ॥१५६॥

यह कल्पना-चमत्कार रीतिकाल के शृंगारी कवियों की, बाल की खाल निकालनेवाली, दूर की सूझों से कम नहीं है।

माळवणी का विरह

इसी विप्रलंभ शृंगार के विषय में माळवणी के विरह का दिग्दर्शन संक्षेप में करा देना उचित होगा, जिससे पाठक मारवणी और माळवणी के प्रेम का तुलनात्मक अध्ययन कर सकें। सिद्धांत रूप में दोनों के भेद का उल्लेख तो हम ऊपर कर चुके हैं। यहाँ केवल उदाहरण दे देते हैं।

माळवणी को छोड़कर मारवणी के लिये प्रस्थान करना ढोला के लिये एक विकट समस्या है। दोनों में ढोला का सच्चा प्रेम है। एक को संयोग-सुख देने में दूसरी को वियोग-दुःख देना पड़ता है; एक के प्रेम का आदर करने से दूसरी के प्रेम का निरादर होता है। प्रेम की इस संकटावस्था में ढोला मध्यम-मार्ग निकालकर अपना कार्य सिद्ध करना चाहता है। इस समय ढोला का प्रेम कसौटी पर कसा जाता है। ढोला चतुरतापूर्वक नीति की एक चाल चलता है। माळवणी को बहाने से ललचाकर यात्रा करने की अनुमति प्राप्त किया चाहता है। इससे ढोला का माळवणी के प्रति सुदृढ़ प्रेम प्रकट होता है—

ईडर की धर अउळगउँ, जइ तूँ कहइ तु जाँह।
अउथि घड़ाऊँ आभरन, माल्हवणी, मेलाँह ॥ २२४ ॥

परंतु यह तुच्छ प्रलोभन माळवणी पर असर नहीं करता। उसे प्रियतम आभरणों से कहीं ज्यादा प्यारा है। उत्तर में तुरंत कहती है—

ईडर की धर अउळगण, हूँ तउ जाण ण देसि।
घरि बइठाही आभरण, मोल मुहंगा लेसि ॥ २२५ ॥

ढोला उत्तम जाति के तेज कच्छ देश के नामी ऊँट खरीदने का मिस लेता है परंतु यह दलील भी काम नहीं देती। माळवणी उत्तर देती है—

साहिब, कछ्छ न जाइयइ, तिहाँ परेरउ द्रंग।
भींभळ नयण सुवंक धण, भूलउ जाइसि संग ॥ २२६ ॥

बारबार यात्रा के लिये प्रस्ताव करने पर और ढोला की आंतरिक चिंता को पहचान कर चतुर माळवणी रोग का स्पष्ट निदान करती हुई पूछती है—

वळि माळवणी बीनवइ हुँ प्री, दासी तुज्झ।
का चिंता चित अंतरे सा प्री, दाखउ मुज्झ ॥ २३६ ॥
साहिब, रहउ न राखिया कोड़ि प्रकार कियाह।
का थाँ काँमिण मन वसी, का म्हाँ दूहवियाह ॥ २३५ ॥

अब तो ढोला की पोल खुल गई। कहाँ तक छिपाता। जब नीति से काम न चला तो सारा हाल सच सच कह दिया और प्रियतमा से विनय करने लगा—

सुणि सुंदरि सच्चउ चवाँ, भाँजइ मनची भ्रंति।
मो मारू मिळिवातणी, खरी विलग्गी खंति ॥ २३८ ॥

बस, अब क्या था। माळवणी को अब तक केवल आशंका थी। अब सच्ची बात प्रकट होने पर विरह की भावी चिंता और दुःख के कारण मन को भारी धक्का लगा। उस हार्दिक चोट की प्रतिध्वनि इस दोहे में गूँजती है—

माळवणीकउ तन तप्यउ, विरह पसरियउ अंगि।
ऊभी थी खड़हड़ पड़ी, जाणे डसी भुयंगि ॥ २३९ ॥

माळवणी के सामने अब एक ही प्रश्न था—जिस किसी तरह प्रियतम को अपनी धारणा से विरक्त करके यात्रा को स्थगित करवाना। यद्यपि यह विरह की पूर्वावस्था थी, पूर्ण-विरह नहीं परंतु भावी विछोह की दारुण चिंता ने उसे साहसी बना दिया था। उस समय ग्रीष्म ऋतु का आधार लेकर उसने विदेशयात्रा संबंधी आक्षेपोक्तियाँ प्रारंभ कीं और जाने की अनुमति न दी—

थळ तत्ता लू सँमुही, दाझोला पहियाह।
म्हाँकउ कहियउ जउ करउ घरि बइठा रहियाह ॥ २४१ ॥

प्रिया को खुश करके उसकी प्रसन्नता से अनुमति लेकर ही प्रस्थान करना ढोला ने उचित समझा। वह रुक गया। ग्रीष्म के तीन मास समाप्त हुए। वर्षागम हुआ। ढोला ने फिर अनुमति माँगी। माळवणी ने इस ऋतु को भी यात्रानुकूल न बताया—

जिण रुति बग पावस लियइ धरणि न मेल्हइ पाइ।
तिण रुति साहिब वल्लहा, कोइ दिसावर जाइ ॥ २४६ ॥
प्रीतम कामणगारियाँ थळ-थळ बादळियाँह।
घण बरसंतइ सूकियाँ, लूसूँ पाँगुरियाँह ॥ २४८ ॥
कप्पड़, जीण, कमाण-गुण भीजइ सब हथियार।
इण रुति साहिब ना चलइ, चालइ तिके गिमार ॥ २४९ ॥

अब तो ढोला ने भी देखा कि चुपचाप आक्षेपों को सुनते रहने से काम न चलेगा। उसने भी प्रत्याक्षेप करने शुरू किए—

बाजरियाँ हरियाळियाँ, बिचि बिचि बेलाँ फूल।
जउ भरि बूठउ भाद्रवउ, मारू देस अमूल ॥ २५० ॥
धर नीली, धण पुंडरी, घरि गहगहइ गमार।
मारू देस सुहामणउ साँवणि साँझी वार ॥ २५१ ॥

माळवणी फिर विरहिणियों के लिये वर्षा ऋतु का दुस्सह चित्र उपस्थित करती है—

फौज घटा, खग दाँमणी, बूँद लगइ सर जेम।
पावस पिउ विण वल्लहा, कहि जीवीजइ केम ॥ २५५ ॥
काळी कंठळि बादळी वरसि ज मेल्हइ वाउ।
प्री विण लागइ बूँदड़ी जाँणि कटारी घाउ ॥ २६७ ॥

इसी प्रकार जायसी ने भी विरह में वर्षा के दुस्सह दुःख को नागमती के संबंध में चित्रित किया है—

खडग बीज चमकै चहुँ ओरा। बुंद बान बरसहिं घनघोरा ॥
ओनई घटा आइ चहुँ फेरी। कंत उबारु मदन हौं घेरी ॥

वर्षा काल है। रास्तों में कीचड़ भरा होगा। ऊँट का पैर फिसल जायगा। यात्रा के लिए वर्षा ऋतु से बढ़कर तो दूसरी बुरी ऋतु नहीं होती। कैसी चतुर उक्ति है—

नदियाँ, नाळाँ, नीझरण पावस चढिया पूर।
करहउ कादिम तिलकस्यइ, पंथी, पूगळ दूर ॥ २५६ ॥

विरह की कल्पना में वर्षाकाल के सारे सुखद दृश्य माळवणी के लिये दुःखद हो जाते हैं—

जिण रुति बहु बादळ झरइ, नदियाँ नीर प्रवाह।
तिण रुत साहिब वल्लहा, मो किम रयण विहाय ॥ २५९ ॥
महि मोराँ मंडब करइ, मनमथ अंगि न माइ।
हूँ एकलड़ी किम रहउँ, मेह पधारउ माइ ॥ २६३ ॥

आकाश में बिजलियों को बादलों के साथ और पृथ्वी पर बेलों को वृक्षों के साथ और संयोगिनी नायिकाओं को नायकों के साथ आलिंगन करते देखकर विरहिणी माळवणी का धैर्य नहीं रहता—

ऊँचउ मंदिर अति घणउ आवि सुहावा कंत ।
वीजळि लियइ झबूकड़ा सिहराँ गळि लागंत ॥ २६८ ॥
सावण आयउ साहिबा, पगइ विलंबी गार ।
ब्रच्छ विलंबी वेलड्याँ, नराँ विलंबी नार ॥ २६६ ॥

माळवणी के सुदृढ़ प्रेम में बँधे हुए ढोला ने वर्षाऋतु के अंत तक यात्रा को स्थगित रखा । दशहरा भी बीत गया । शरद् ऋतु का प्रवेश हुआ । लगभग एक वर्ष बीतने को आया । अब तो ढोला उकता गया । माळवणी ने शरद् ऋतु को भी यात्रा के अनुपयुक्त सिद्ध किया, यही नहीं वर्ष की सभी ऋतुओं को यात्रा के लिये अनुपयुक्त प्रमाणित कर दिया । माळवणी की आक्षेपोक्तियों में उत्तम कोटि का व्यंग्य भरा है । उन पर मनन करने से सच्चे काव्यानंद की प्राप्ति होती है । शरद् ऋतु की आक्षेपोक्ति लीजिए--

जिण रित नाग न नीसरइ, दाझइ, वनखँड दाह ।
जिण रित माळवणी कहइ, कुँण परदेसाँ जाह ॥ २८४ ॥
सीयाळइ तउ सी पड़इ, ऊन्हाळइ लू वाइ ।
वरसाळइ भुइँ चीकणी, चालण रुत्ति न काइ ॥ २७७ ॥

अब तो ढोला को साहस करना ही पड़ा । माळवणी की प्रेम-परीक्षा में वह उत्तीर्ण हुआ परंतु अब यदि मारवणी की सुधि न ले तो उसके प्रेम में शैथिल्य प्रमाणित होता है । अतएव स्पष्ट शब्दों में कह ही तो दिया—

माळवणी, म्हे चालिस्याँ म करि हमारी तात ।
का हसि करि म्हाँ सीख दे, खड़िस्याँ माँझिम रात ॥ २७८ ॥

कैसा मीठा, कैसा सूक्ष्म, परंतु दृढ़ उत्तर है । ढोला के प्रेममय चरित्र की यही कसौटी है । मेरे अनिष्टों की चिंता न करो, प्रसन्नतापूर्वक यात्रा करने की आज्ञा दो (अब भी माळवणी को प्रसन्न रखना चाहता है !) अन्यथा अर्द्ध रात्रिको सोती छोड़कर चल देना पड़ेगा । माळवणी के प्रति अपने प्रेम में ढोला पूरा उतरता है । जागती को छोड़कर जाने से माळवणी को मर्मांतक वेदना होगी । प्रेमिका की उस असह्य वेदना को बचाकर रात्रि में चलने का प्रस्ताव किया । दूसरा कोई उपाय न था । ऐसी ही अवस्था में राजकुमार सिद्धार्थ अपने परमार्थ-प्रेम से उत्साहित होकर यशोधरा को रात में सोती छोड़कर निकले थे ।

ढोला की इस दृढ़ता को देखकर माळवणी को कोई सहारा न रहा। एक बार फिर अंतिम प्रयत्न किया। सोचा, ढोला के प्रेम-शैथिल्य की कुछ चुभती हुई व्यंग्योक्तियाँ कहूँ। शायद उनसे क्षुब्ध होकर ही रुक जाय—

डूँगर-केरा वाहळा, ओछाँ-केरा नेह।
वहता वहइ उतामळा, झटक दिखावइ छेह ॥३३८॥
पिय खोटाँरा एहवा, जेहा काती मेह।
आडंबर अति दाखवइ आस न पूरइ तेह ॥३३६॥

कैसी पैनी, काटती हुई उक्ति है। ढोला का हृदय इससे चुभकर व्यथित अवश्य हुआ होगा, परंतु करता क्या? इस संवाद को ज्यादा बढ़ाने से फायदा होता नहीं दिखाई दिया। ढोला व्यंग्योक्ति को चुपचाप मन ही मन पी गया। आखिर ढोला को दृढ़ देखकर मालवणी को अनिच्छा होते हुए भी झल्लाकर अनुमति देनी पड़ी—

हल्लउँ हल्लउँ मत करउ, हियड़इ साल म देह।
जे साचे ई हल्लस्यउ, सूताँ पल्लाँणेह ॥३०५॥

अंत में विदाई का दृश्य बड़ी मार्मिक स्वाभाविकता के साथ चित्रित किया गया है। शब्द-सौष्ठव की स्वाभाविक योजना, भाव की बारीकी और दृश्य की सरलता और स्पष्टता के लिये काव्य-कला और भावुकता की दृष्टि से यह दोहा सर्वोत्तम काव्य का लक्षण है। भावना और शब्द-चमत्कार सोना और सुगंध की तरह मिल गए हैं—

ढोलउ हल्लाणउ करइ, धण हल्लिवा न देह।
झबझब झूँबइ पागड़इ, डबडब नयण भरेह ॥३०४॥

यह कहने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती कि माळवणी की प्रेम-पूर्ण आक्षेपोक्तियों और युक्तियों में स्वाभाविकता का बड़ा अच्छा निर्वाह हुआ है। माळवणी के ढोला की यात्रा स्थगित करने को युक्तियों के पीछे उसके प्रेम की गंभीर प्रेरणा है। प्रेम की दृढ़ता के कारण उसको इन प्रयत्नों में कुछ सफलता भी मिली। एक वर्ष तक ढोला को उसने रोक रखा।

मालवणी ने ढोला को रोकने का एक अंतिम प्रयत्न और भी किया था। जिस ऊँट पर चढ़कर ढोला यात्रा करने को था उससे लँगड़ा होने का बहाना करवाने की उसकी आयोजना यद्यपि सफल न हुई परंतु उस प्रयत्न में उसके मन की आतुरावस्था स्पष्टतः व्यक्त होती है। उस प्रयत्न में 'मरते को तिनके का सहारा' वाली लोकोक्ति सिद्ध होती है।

ऊँट के पास जाकर माळवणी विनय करती है। यह करुणोक्ति वैसी ही है जैसी प्रेमातुर अवस्था में राम का सीता की खोज में वन के मृग और वृक्षों से सीता का पता पूछना अथवा विरह-विधुरा गोपिकाओं का व्रज की लताओं से कृष्ण के विषय में पूछना।

माळवणी ने प्रियतम को यात्रा से रोकने के हजार प्रयत्न किए। अब भी हृदय से यही चाहती है कि ढोला रुक जाय तो अच्छा। परंतु जब प्रेमी प्रस्थान करने को है, तो पति-परायणा साध्वी की तरह उसकी मंगल-कामना करती है। यदि सच्चा प्रेम न होता तो यह सोचती कि यात्रा असफल हो—अनिष्टकर हो। परंतु नहीं, वह प्रस्थान के समय हित-कामना करती हुई कहती है—

थे सिध्धावउ, सिध करउ, बहु गुणवंता नाह।
सा जीहा सतखंड हुइ जेण कहीजइ जाह ॥३४०॥

दूसरी पंक्ति में सर्वोत्तम कोटि का वेदनापूर्ण आक्षेप व्यंग्य है।

ढोला चला गया। अब प्रवत्स्यत्पतिका विरहिणी माळवणी का विप्रलंभ प्रारंभ होता है। अब तक तो उसे भावी विरह की चिंता और क्षोभ था। माळवणी की वास्तविक विरह-दशा का कवि इस प्रकार वर्णन करता है। माळवणी सखियों से कहती है—

ढोलउ चाल्यउ हे सखी, वाज्या विरह-निसाँण।
हाथे चूड़ी खिस पड़ी, ढीला हुया सँधाण ॥३४६॥

विरह-जन्य दशा-परिवर्तन का क्या ही मर्मस्पर्शी दिग्दर्शन है। माळवणी के अंग-प्रत्यंग शिथिल हो गए—जड़ हो गए; हाथ की चूड़ी खसककर नीचे आ गई। यद्यपि शिथिलता की अत्युक्ति है परंतु संवेदनापूर्ण होने से वह माळवणी की तीव्र वेदना की परिचायक है। माळवणी सखियों के प्रति अपना विरह दुःख यों कहती है—

सज्जण चाल्या हे सखी, वाज्या विरह-निसाँण।
पाळंखी विसहर भई, मंदिर भयउ मसाँण ॥३५२॥
सज्जणियाँ वउळाइ कइ मंदिर बइठी आइ।
मंदिर काळउ नाग जिउँ हेलउ दे दे खाइ ॥३७१॥
चंपा-केरी पाँखड़ी, गूँथूँ नवसर हार।
जउ गळ पहरूँ पीव विन, तउ लागे अंगार ॥३६६॥

प्रिय के विरह में सब सुख के साधन दुःख के उत्तेजक कारण बन जाते हैं। सुख-शय्या साँप की तरह विषाक्त प्रतीत होती है, सौख्यपूर्ण महल श्मशान-भूमि की तरह शून्य और भयावह प्रतीत होते हैं और उनकी डरावनी निर्जनता काटने को दौड़ती है।

> सज्जण चाल्या हे सखी, दिस पूगळ दोड़ेह।
> सायधण लाल कवाँण ज्यउँ ऊभी कड़ मोड़ेह ॥३५५॥

विरहिणी की बेचैनी और आलस्य का कैसा भावुक शब्द-चित्र है। माळवणी को प्रिय के बिना जीवन भार-स्वरूप हो गया है। कोई चीज अच्छी नहीं लगती। पानी पीती है परंतु गले से नीचे नहीं उतरता, साँस हृदय में समाती नहीं।

> सज्जण चाल्या हे सखी, सूना करे अवास।
> गळेय न पाणी ऊतरइ, हिये न मावइ सास ॥३५८॥

विरहावस्था के ऐसे स्वाभाविक वर्णन बहुत कम काव्यों में मिलेंगे। जायसी ने इसी से मिलता-जुलता भाव नागमती के विरह-वर्णन में प्रकट किया है—

> खन एक आव पेट मँह साँसा। खनहि जाइ जिउ होइ निरासा ॥

प्रिय-विरह-जन्य शून्यता और निराशा का सुंदर व्यंग्य चित्र देखिए—

> ढोलइ चढ़ि पड़ताळिया डूँगर दीन्हा पूठि।
> खोजे वावू हथ्थड़ा धूड़ि भरेसी मूठि ॥३६१॥
> सयणाँ, पाँखाँ प्रेम की तइँ अब पहिरी तात।
> नयण कुरंगउ ज्यूँ वहइ लगइ दीह नइँ रात ॥३६४॥
> साल्ह चलंतइ परठिया आँगण वीखड़ियाँह।
> सो मइँ हियइ लगाडियाँ भरि भरि मूठड़ियाँह ॥३६६॥

प्रेम की एकनिष्ठता, तल्लीनता, तादात्म्य का इससे बढ़कर क्या परिचय हो सकता है कि वातावरण में सब ओर प्रेमी ही प्रेमी की प्रतिमा दिखाई दे, जिससे विरहविधुरा प्रेमिका वायु को भी प्रेमी की प्रतिमा के भ्रम से आलिंगन करने लगे; रात-दिन नेत्र प्रेमी की खोज में दशों दिशाओं में घूमते रहें और प्रेमी के पीछे छोड़े हुए पद-चिह्न की धूलि को मुट्ठियाँ भर-भरकर छाती से लगाकर प्रेयसी अपने उद्वेग को शांत करने की चेष्टा करे। विरह के ये व्यापार उन्माद और विक्षिप्तता के द्योतक हैं। चैतन्य महाप्रभु और मीरा का कृष्ण के प्रेम में नाचना, मजनूँ का लैला के लिये हवा से बातें

करना, यक्ष का बादलों द्वारा संदेश भेजना, उन्माद नहीं तो क्या था ? परंतु यही उन्माद सच्चे प्रेम का शृंगार होता है।

प्रियतम के विरह में पत्नी को अपनी तुच्छता और हीनता का ज्ञान होना स्वभाविक ही है—जिसकी पहले लाखों की कीमत होती अब उसे कौड़ी को भी कोई नहीं पूछता। सच है जब माली ने वल्लरी को सींचना ही छोड़ दिया तो वह सूखेगी ही—

प्रीतम-हूती बाहिरी कवड़ी ही न लहाँइ।
जब देखूँ घर-आँगणइ लाखे मोल लहाँइ॥ ३७० ॥
सज्जण वल्ले, गुण रहे, गुण भी वल्लणहार।
सूकण लागी बेलड़ी, गया ज सींचणहार॥ ३७४ ॥

जायसी के नागमती-विरह वर्णन में भी इसी प्रकार का वर्णन है—

कँवल जो बिगसा मानसर, बिन जल गएउ सुखाइ।
अबहुँ वेलि फिरि पलुहै, जो पिउ सींचै आइ॥

प्रियतम के विरह में उसके स्मारक चिह्न ही प्रेयसी के लिये जीवनाधार हो जाते हैं। उनको देख-देख कर प्रियतम की याद करके वह दुःख के रूप में अपने प्रियतम की स्मृतियों को हरी रखती है—

खूँटइ जीण न मोजड़ी, कड्याँ नहीं केकाँण।
साजनियाँ सालइ नहीं, सालइ आही ठाँण॥ ३७५ ॥

भारतेंदु की चंद्रावली नाटिका में कृष्ण के विरह में चंद्रावली कहती है—"प्यारे देखो, जो जो तुम्हारे मिलने में सुहावने जान पड़ते थे वही अब भयावने हो गए हैं। हा, जो बन आँखों से देखने में कैसा भला दिखाता था, वही अब कैसा भयंकर दिखाई पड़ता है। देखो, सब कुछ है, एक तुम्हीं नहीं हो प्यारे।" (दूसरा अंक)

प्रियप्रवास में विरह-विधुरा गोपिकाओं की इसी प्रकार की उक्ति है—

कुंजें वही, थल वही, यमुना वही है।
बेलें वही, वन वही, विटपी वही हैं॥
हैं पुष्प-पल्लव वही, व्रज भी वही है।
ए किंतु श्याम बिन हैं न वही जनाते॥ १४-१४२ ॥

विरहिणी की काम-दशा को शास्त्र में दस प्रकार से वर्णन किया जाता है—

अभिलाषश्चिन्तास्मृतिगुणकथनोद्वेगसम्प्रलापाश्च ।
उन्मादोऽथ व्याधिर्जड़तामृतिरिति दशात्र कामदशा ॥
सा० द० ३-२१४ ॥

इन दशाओं में प्रायः सभी का विकास माळवणी के विप्रलंभ में मिलता है। उन्माद, स्मृति, व्याधि और प्रलाप के उदाहरण ऊपर दिए जा चुके हैं। विरह-जन्य जड़ता की कैसी मार्मिक व्यंजना की गई है--

बीछड़ताँ ही सज्जणा, क्याँ ही कहण न लध्ध ।
तिण वेला, कँठ रोकियउ, जाणक सिंधा खध्ध ॥ ३८१ ॥

अंतर्दग्ध करनेवाली चिंता का चित्र इस दोहे में चित्रित किया गया है—

सज्जण ज्यूँ ज्यूँ संभरइ, देखयाँ आही ठाँण ।
झुरि झुरि नइ पंजर हुई, समर समर सहिनाँण ॥ ३८२ ॥

विरहिणी की कामजन्य अभिलाषाएँ भी विचित्र होती हैं। विरह-दुःख जब हृदय में नहीं समाता तो माळवणी अभिलाषा करती है कि पर्वत-शिखर पर जाकर धाड़ मार-मारकर रो ले जिससे हृदय हलका हो जाय—

बाबा, बाळूँ, देसड़उ, जिहाँ डूँगर नहिँ कोइ ।
तिणि चढ़ि मूकउँ धाहड़ी, हीयउ उरळउ होइ ॥ ३८६ ॥

माळवणी को अपने प्रलाप में चेतन और अचेतन का ज्ञान नहीं रहता। वह वन में खड़े हुए एक हरे भरे 'जाळ' के दरख्त को देखकर कहती है--

थळ-मथ्थइ जळ बाहिरी, तूँ काँइ नीळी जाळि ।
कँइ तूँ सींची सज्जणे, कँइ बूठउ अग्गाळि ॥ ३९१ ॥

इस पर अपनी कल्पना के बल से कवि माळवणी को जाल की ओर से यह संतोषदायक उत्तर दिला देता है—

ना हूँ सींची सज्जणे, ना बूठउ अग्गाळि ।
मो तळि ढोलउ बहि गयउ, करहउ बाँध्यउ डाळि ॥ ३९२ ॥

ढोला के जाळ के नीचे से निकल जाने पर और ऊँट को बाँध कर जाळ के नीचे क्षणिक विश्राम लेने पर जाळ की यह दशा हुई कि वह बिना वर्षा अथवा जलदान के हरी भरी हो गई। जब ढोला के क्षणिक संयोग-सुख से जड़ जीवों की दशा समुन्नत हो जाती है, तब तो ऐसे प्रियतम के लिये माळवणी का विलाप करना यथार्थ है। संसार के सभी साहित्यों के गीत-

काव्यो में जड़ और चेतन का इस प्रकार प्रश्नोत्तर द्वारा समवेदना के एक सूत्र में बँधा होना सिद्ध होता है।

माळवणी का विरह बड़ी तीव्र और करुण वेदना से भरा है; परंतु जैसा कि हम ऊपर कह आए हैं, इस उन्माद और उद्वेग की विरह-दशा में वह अपने कर्त्तव्य को भूल नहीं जाती। अपने प्रेमी को प्रवास से विरत करने में वह सदा सयत्न रही और जब उसे रोक न सकी तब भी उसने यत्न को न छोड़ा। माळवणी का यह सयत्नोत्साह उसके प्रेम की दृढ़ता का परिचायक है। ढोला के चले जाने पर माळवणी ने उसे लौटाने का एक प्रबल प्रयत्न किया। इसी आशय से उसने अपने शुक को भेजा था।

यद्यपि इस काव्य में विप्रलंभ शृंगार ही प्रधान है, परंतु संभोग का भी वर्णन हुआ है। वैसे तो कहानी के इतिवृत्त की रचना ही इस ढंग से हुई है कि माळवणी और मारवणी के संबंध के संभोग शृंगार का निदर्शन बहुत कम होने पाया है। नायक ढोला और नायिका मारवणी की प्रेमवार्त्ता को प्रधानता देने के लिये उन्हीं के प्रेमसूत्र के विकास का आद्योपांत और क्रमागत वर्णन किया गया है। माळवणी का पहले-पहल वर्णन दूहा २१५ में उस अवस्था में हुआ है जब ढाढियों द्वारा मारवणी का संदेश ढोला को मिल जाने पर वह पति को चिंताकुल देखती है। परंतु माळवणी के उत्तरकालीन प्रौढ़ प्रेम-प्रवाह की गति से हम उसके पूर्वकालीन दांपत्य-प्रेम के सौख्य और घनत्व का अनुमान कर सकते हैं। जो माळवणी पति के प्रेम पर इतना अधिकार रखती है कि प्रेमातुर पति को एक वर्ष तक अपनी यात्रा से विरत कर सकती है उसके प्रेम का संभोग पक्ष भी खूब सौख्यपूर्ण और परिपुष्ट रहा होगा।

(११) ढोला-मारू का संयोग-शृंगार

संभोग-शृंगार का स्पष्ट निदर्शन हमको मारवणी-ढोला-मिलन के दृश्य में मिलता है। यद्यपि वह अत्यंत संक्षिप्त है, परंतु उसी का हम यहाँ उल्लेख करेंगे। यह वर्णन पद्मावती-रत्नसेन-विषयक संभोग-शृंगार से बहुत कुछ मिलता-जुलता है अतएव इनकी तुलना भी की जा सकती है।

ढोला के पूगल पहुँच जाने पर मारवणी के हर्ष का पारावार न रहा। मारवणी अपने आंतरिक सुख और हर्षोल्लास को सखियों पर प्रकट करती है—

साहिब आया, हे सखी, कज्जा सहु सरियाँह ।
पूनिम-केरे चंद ज्यूँ दिसि च्यारे फळियाँह ॥ ५२८ ॥
सखिए, साहिब आविया, जाँहकी हूँती चाइ ।
हियडउ हेमाँगिर भयउ, तन-पंजरे न माइ ॥ ५२६ ॥
आजूणउ धन दीहडउ साहिब कउ मुख दिट्ठ ।
माथा भार उलाथियउ, आँख्याँ अमी पयट्ठ ॥५३१॥
सखी, सु सज्जण आविया, हुंता मुज्झ हियाह ।
सूका था सू पाल्हव्या, पाल्हविया फळियाह ॥५३३॥

मारवणी के पवित्र और मर्यादाविहित प्रेम का विकास उसके हृदय की सीमा को व्याप्त कर चारों ओर पूर्णिमा की चंद्रिका के समान छिटक गया है। उसका विरह-व्याकुल हृदय अब हिमालय की तरह शीतल हो गया है। मानसिक प्रफुल्लता इतनी बढ़ गई है कि शरीर-पंजर में नहीं समाती। आज मानों उसके सिर पर से विरह-रूपी भारी बोझ उतर गया और उत्सुक नेत्रों में प्रिय-दर्शन के कारण अमृत छलकने लगा। सूखी हुई वल्लरी आज पुनः पल्लवित और पुष्पित हो गई; संयोग-जनित मद आँखों की मस्ती में झलक रहा है। मारवणी का संयोग-सुख अपनी स्वाभाविक सूक्ष्मताओं के साथ उसके अंग-प्रत्यंग की प्रफुल्लित और आह्लादपूर्ण दशा से प्रकाशित हो रहा है।

इसी प्रकार पद्मावती का संयोग-सुख भी उसके अंग-प्रत्यंग में विकसित हुआ है—

अंग अंग सब हुलसै, कोइ कतहूँ न समाइ ।
ठाँवहिं ठाँव विमोही, गइ मुरछा तनु आइ ॥

परंतु दोनों में भेद इतना है कि जहाँ मारवणी का संयोगजन्य हर्षोल्लास अधिक संयत और शील की सीमा में बद्ध है, वहाँ हर्षोल्लास की बाढ़ में पद्मावती के पैर उखड़ जाते हैं, वह मूर्च्छित हो जाती है। साहित्यिक दृष्टि से यद्यपि ऐसे अवसर पर मूर्च्छित हो जाना ठीक समझा गया है और वह भावातिशय को प्रकाशित करता है, परंतु उसमें संयम और मर्यादा का अभाव अवश्य द्योतित होता है।

मारवणी के प्रथम समागम का वर्णन जहाँ हुआ है, वहाँ भी इसी प्रकार की संयमशीलता और शीलसंपन्नता प्रकट होती है। यथा—

कंठ विलग्गी मारुवी करि कंचूवा दूर।
चकवी मनि आणँद हुवउ, किरण पसारया सूर ॥५५१॥

इसी प्रकार दूहा ५५२, ५५३, ५५४, ५६१, ५६२ में देखना चाहिए। दूहा ५६३ में मंजिष्ठा राग की उपमा प्रेम की विशुद्ध पूर्णता की सूचक है—

धरती जेहा भरखमा, नमणा जेहा केळि।
मज्जीठाँ जिम रचणाँ, दई, सु सज्जण मेळि ॥५६३॥

वर्णन की गंभीरता, संयतता और शीलसंपन्नताने श्रृंगार को अश्लीलता की व्यंजना से बचा लिया है। जहाँ तक हो सका है, मारवणी के संभोग-श्रृंगार की पराकाष्ठा शुद्धता, शील और संस्कृति की सीमा से बाहर नहीं होने पाई है।

ऐसे ही स्थल पर पद्मावती के प्रिय-मिलन-जन्य प्रेम को जायसी ने काम-जन्य दशाओं में प्रकट किया है जिससे उसमें सात्त्विक पवित्रता का वह भाव प्रकट नहीं होता जो मारवणी के प्रेम में हुआ है—

छूटा चाँद सूर जस साजा। अस्टौ भाव मदन जनु गाजा॥
हुलसे नैन दरस मदमाते। हुलसे अधर रंग रस राते॥
हुलसा बदन ओप रवि पाई। हुलसि हिया कंचुकि न समाई॥
हुलसे कुच कसनी-बँध टूटे। हुलसी भुजा वलय कर फूटे॥
हुलसी लंक कि रावन राजू। राम-लखन दर साजहिं आजू॥
आजु कटक जोरा है कामू। आज विरह सौं होइ संग्रामू॥
भएउ जूझ जस रावन रामा। सेज विधाँसि विरह-संग्रामा॥

इस विवरण में 'अस्टौ भाव मदन जनु गाजा', 'राम-लखन दर साजहि आजू', 'कटक जोरा है कामू', 'होइ संग्रामू' इत्यादि भावों की उग्र व्यंजना प्रेम की सात्त्विक-शीलता, स्वाभाविक सरलता और कोमलता में एक प्रकार का तूफान पैदा कर देती है जो फारसी ढंग की कविता में भले ही मान्य हो, भारतीय साहित्य और संस्कृति के सर्वथा विरुद्ध प्रतीत होती है। जायसी के प्रेम-वर्णन की उग्रता अवसर और पात्र के अनुपयुक्त जँचती है।

प्रिय-मिलन के अवसर पर मारवणी ने श्रृंगार किया। यह श्रृंगार-वर्णन भी बहुत कुछ संयत, विशुद्ध और मर्यादाबद्ध है—

सखिए ऊगट माँजिणउ खिजमति करइ अनंत।
मारू-तन मंडप रच्यउ, मिलण सुहावा कंत ॥५३५॥
घम्मघमंतइ घाघरइ, उळस्यउ जाँण गयंद।
मारू चाली मंदिरे, झीणे बादल चंद ॥५३७॥

बोली वीणा, हंस गत, पग वाजंती पाळ।
रायजादी घर-अंगणइ छुटे पटे छंछाळ ॥५४०॥
सोई सज्जण आविया, जाँह्की जाती बाट।
थाँभा नाचइ, घर हँसइ, खेलण लागी खाट ॥५४१॥

इसके विपरीत पद्मावती के शृंगार का विशद वर्णन करते हुए कवि ने बारह आभरणों का वर्णन कर अपनी बहुज्ञता का परिचय दिया है—

(१) बारह अभरन करैं सो साजू।

(२) जो न सुना तो अब सुनइ बारह अभरन नाँव।

जायसी का यह वस्तु-वर्णन शृंगार रस के विकास और परिपाक में बाह्य वस्तु सा प्रतीत होता है। इससे रस की परिपुष्टि और सम्यक् आस्वादन नहीं होता। भावुकता और संवेदना का स्पर्श इनमें नहीं के बराबर है, अतएव प्रस्तुत विषय के साथ इनका बहुत थोड़ा और निर्जीव संपर्क रह जाता है।

इसी प्रकार 'सोलह शृंगार', पारा, गंधक, हरताल, सिद्धगुटिका और रासायनिक क्रियाओं और पदार्थों का अनवसर पर वर्णन करके कवि ने बहुज्ञता और वस्तुज्ञान का पूरा परिचय तो दिया है, परंतु इनसे काव्य का बहुत थोड़ा उपकार सिद्ध होता है।

शृंगार के उद्दीपक साधनों में जिस प्रकार प्रथाबद्ध षट्ऋतु-वर्णन किया जाता है, उसी प्रकार प्रेमियों का पारस्परिक विनोद, हास्य, कुतूहल-क्रीड़ा आदि साहित्य में बताए गए हैं। मारवणी के संयोग-शृंगार के अंतर्गत ऋतु-वर्णन के स्थान पर 'अष्टयाम' का वर्णन हुआ है। इससे पहले प्रथम समागम के उपयुक्त प्रेमियों में कुछ विनोद और क्रीड़ा भी होती है। 'मान' का भी संक्षेप में दिग्दर्शन होता है।

ढोला हँसी-ही-हँसी में एक मीठी चुटकी लेता हुआ मारवणी से कहता है—

काया झबकइ कनक जिम, सुंदर, केहे सुक्ख।
तेह सुरंगा किम हुवइँ, जिण वेहा बहु दुक्ख ॥५४६॥

इस विनोदभरी परंतु तीखी व्यंग्योक्ति को सुनकर मारवणी को संकोच होता है कि "खुणसउ राखइ कंत"—पति के मन में खुनस बैठ गई है। वह उसी क्षण कैसा सच्चा और लाजवाब उत्तर देती है—

पहुर हुवउ ज पधारियाँ मो चाहंती चित्त।
डेडरिया खिण-मइ हुवइ घँण बूठइ सरजित्त ॥५४८॥

ढोला का संदेह "खुणसउ" बनावटी था। उसे मजाक करना था। क्या उत्तर देता? यदि देता तो इस उत्तर के सामने वह ठहर न सकता। जब निम्न सृष्टि के जीवों—मेंढकों—तक में प्रेम की संजीवनी शक्ति इस विलक्षणता के साथ प्रकट होती है तो मानव का तो कहना ही क्या है।

पद्मावती भी प्रिय-समागम के अवसर पर व्यंग-विनोद और परिहास करती है, परंतु उनसे वह विनम्रता और शील व्यंजित नहीं होते जो ढोला-मारू के वचनों में होते हैं। पद्मावती झिड़ककर रत्नसेन से कहती है—

ओहट होसि जोगि तोरि चेरी। आवै बास कुरकुटा केरी॥
देखि भभूति छूति मोहि लागै। काँपै चाँद सूर सों भागै॥
जोगि तोरि तपसी कै काया। लागि चहै मोरे अंग छाया॥
बार भिखारि न माँगसि भीखा। माँगै आइ सरग पर सीखा॥

यद्यपि ये प्रेम की झिड़कियाँ हैं और कहने को इनमें 'तोरि चेरी' शाब्दिक विनम्रता भी है, परंतु भाव का उतना संयत-गठन नहीं है कि शील-साधन की सीमा में रह सके।

संयोग श्रृंगार की प्रेम-पद्धति में वाक्चातुर्य्य, वचन-विलास और परिहास का मनोहर आयोजन रहता है। 'ढोला' के प्रेम में ऐसा आयोजन है और जायसी में भी। पाश्चात्य गीत-काव्यों (Ballads) में भी पहेलियों और अनेक ढंग की वचन-चातुरी का विशद साहित्य उपलब्ध होता है। कभी-कभी एक पहेली के ठीक-ठीक उत्तर दे देने पर ही प्रेमी नायक अथवा नायिका को अपने प्रेमी के प्रेम का पूर्ण लाभ होता है। प्रेम में साधारणतः वाग्विलास और परिहास की वृत्ति का स्फुट होना स्वाभाविक ही होता है।

अँगरेजी के प्रमुख लोक-गीतों में (1) The Elfin Knight, (2) Captain Wedderburn's Courtship, (3) King John and the Bishop ऐसे गीत हैं जिनमें विनोद और परिहास द्वारा प्रेमी अपने भावों को परस्पर व्यक्त करते हैं। प्रथम और द्वितीय में प्रेमी कठिन पहेली का उत्तर देने के परिणाम में अपने प्रेमपात्र का प्रणय-लाभ करते हैं। तीसरे में पहेलियों द्वारा दो दलों का भाग्य-निर्णय किया गया है। किंवदंती के अनुसार महाकवि कालिदास को भी अपनी प्रियतमा का प्रेम इसी प्रकार वाक्चातुर्य्य द्वारा प्राप्त हुआ था।

प्राचीन प्रेम-कहानियों में पहेलियों के विश्वव्यापी प्रचार और महत्त्व के विषय में गीत-काव्यों के सर्वश्रेष्ठ आचार्य प्रो० चायल्ड लिखते हैं—

"Riddles play an important part in popular story and that from remote times. No one needs to be reminded of Samson, Oedipus, Appolonius of Tyre. Riddle tales, which if not so old as the oldest of these, may be carried in all likelihood some centuries beyond our era, still live in Asiatic and European tradition and have their representatives in popular Ballads."

प्राचीन भारतीय कहानियों में और विशेषतः प्रेम-कहानियों में वाक्चातुर्य और विनोद-वृत्ति का बहुत-सा साहित्य भरा पड़ा है। प्राकृत और अपभ्रंश काल के गाथा और दूहा-साहित्य में इस प्रकार के विनोदपूर्ण साहित्य का कुछ अंग अब भी सुरक्षित मिलता है। 'ढोला' का यह विनोदपूर्ण साहित्यांश अपभ्रंश साहित्य पर बहुत कुछ आश्रित है। नंबर ५७५ और ५७७ की दोनों गाथाएँ प्रसिद्ध प्राचीन प्रहेलिकाएँ हैं जो सीधी अपभ्रंश साहित्य से लेकर कथा में ऊपर से मिला दी गई हैं। माधवानल-कामकंदला की प्रेम-गाथा में भी ये मिलती हैं।

मारवणी प्रेम की उद्भावना में पति से साहित्यिक मनोविनोद करने का प्रस्ताव करती है क्योंकि ऐसा करना समयोपयुक्त ही होगा—

मारवणी इम वीनवइ, धनि आजूणी राति।
गाहा-गूढ़ा-गीत-गुण ळहि का नवली वाति ॥५६७॥

क्योंकि—गाहा-गीत-विनोद-रस सगुणाँ दीह लियंति।
कइ निद्रा, कइ कळह करि, मूरखि दीह गमंति ॥५६८॥

हितोपदेश के निम्न-लिखित श्लोक का भाव इस अंतिम दूहे में बड़ी सुंदरता के साथ प्रकट किया गया है—

काव्यशास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमताम्।
व्यसनेन च मूर्खाणां निद्रया कलहेन वा ॥

इस प्रसंग में साहित्यिक विनोद की यही उपयोगिता है कि इससे रति-भाव का उद्दीपन होता है। अधिकांश पहेलियाँ साहित्यविश्रुत हैं। इनमें

नायिका की मौलिक कल्पना को ढूँढ़ना व्यर्थ है क्योंकि ऐसे अवसरों पर साहित्य-प्रसिद्ध पूर्वागत पहेलियों का प्रयोग ही पर्याप्त समझा जाता है। आजकल के हिंदू विवाहों में भी मनोविनोद की यह प्रथाबद्ध पद्धति कहीं-कहीं देखी जाती है।

वाग्विनोद के सिवा प्रेमियों की पारस्परिक क्रीड़ा और विलास आदि भी शृंगार के उद्दीपक की तरह कवियों द्वारा प्रयुक्त होते हैं। 'ढोला' में इस प्रेम-क्रीड़ा का बहुत संक्षेप में वर्णन हुआ है—

म्हें ने ढोलो झूँबिया लूँगे-लक्कड़ियेह।
म्हाँने प्रिउजी मारिया चंपारै कळियेह ॥५६१॥
म्हें ने ढोलो झूँबिया म्हाँनूँ आवो रीस।
चोवा-केरै कूँपळै ढोळी साहिब-सीस ॥५६२॥

जायसी ने प्रथम समागम के पूर्व पद्मावती और रत्नसेन में वाक्चातुर्य्य और परिहास की जो नोक-झोंक दिखाई है, उसका ऊपर वर्णन कर आए हैं। दोनों में जो अंतर है उसका भी उल्लेख कर दिया गया है। रतिभाव की पुष्टि के लिये यह आवश्यक होता है कि प्रेम में आत्मीयता के भाव की रक्षा करने के लिये दोनों प्रेमियों को भाव की समतल भूमि पर रहकर पारस्परिक विनोद में लीन होना चाहिए, क्योंकि यह मार्ग प्रेमोत्कर्ष के लिये अधिक लाभदायी होता है। ढोला-मारवणी के विनोद-परिहास में भाव की यह समता मिलती है। परंतु पद्मावती-रत्नसेन के विनोद-व्यवहार में एक प्रकार की विषमता आ गई है। नीचे कुछ उदाहरण देते हैं—

पद्मावती और उसकी सखियाँ रत्नसेन का परिहास करती हुई नाना प्रकार से उसका मजाक उड़ाती हैं परंतु इन सबके उत्तर में रत्नसेन को अपनी गंभीर प्रेमनिष्ठा की दुहाई देते हुए देखकर हमको उसकी निस्सहायता पर दया आती है।

जिस प्रकार माळवणी के भावी विरह के संबंध में कवि ने आक्षेपोक्तियों में ऋतुओं का वर्णन विप्रलंभ शृंगार के उद्दीपन की तरह किया है, उसी प्रकार संभोग शृंगार में मारवणी के संबंध में अष्टयाम-वर्णन की कल्पना की है। जायसी में इनके स्थान पर क्रमशः बारहमासा और षट्‌ऋतुओं का वर्णन उद्दीपन की तरह किया गया है।

'अष्टयाम' में साहित्यिक प्रथानुसार एक रूढ़ि-विशेष का अनुसरण किया गया है। दिन के आठ पहरों में प्रेमियों की प्रेमपूर्ण दिनचर्या को विभक्त

करके संभोग शृंगार की पुष्टि की गई है। यह अंश प्राचीन कथा का भाग नहीं क्योंकि प्राचीन प्रतियों में यह नहीं मिलता। यह प्रकरण पढ़ने पर कुछ फीका-सा भी जान पड़ता है। वह सरसता, वह स्वभाविकता, वह सरलता और स्वच्छंदता नहीं प्रतीत होती जो इस काव्य में प्रायः सब स्थलों में मिलती है। यह वर्णन इतना साधारण रीति से हुआ है कि किसी भी पद्यमय प्रेम-कहानी में ऊपर से बैठाया जा सकता है। इसमें नायक नायिका का न तो कहीं प्रत्यक्ष नाम-निदर्शन ही किया गया है और न परोक्ष रीति से ही इसका किसी प्रकार का घनिष्ठ संबंध उनके व्यक्तित्व के साथ दिखाया गया है। यही नहीं, ढोला-मारवणी के प्रेम में जिस पवित्रता, शील-संपन्नता और सात्त्विकता के आदर्श का सर्वत्र निर्वाह हुआ है, वह आदर्श उच्चता से भ्रष्ट होकर अष्टयाम के निःसत्त्व विवरण में कुछ अश्लीलता, नीरसता, गँवारूपन और साधारण तुच्छता धारण कर लेता है। किसी सर्वसुंदर आभरण के भद्दे मोरचे की तरह यह प्रसंग कथा में खटकता है, काव्य के आदर्श से मिलान नहीं खाता। कहाँ तो मारवणी को शील, शांति, सात्त्विक प्रेम की प्रतिमा बनाकर खड़ा किया, यथा—

"गति गंगा, मति सरसती, सीता सील सुभाइ" ॥ ४५१ ॥

और कहाँ—

दूजै पोहरे रयणकै भिळियत गुफ्फा गुध्ध।
धण पाळी; पिउ पाखर्यौ, विहूँ भलाँ भड़ाजुध्ध ॥५८३॥

वही जायसी के 'काम-संग्रामू' वाली बात कही है। एक ही काव्य के दो स्थलों में आदर्श का इतना भारी अंतर शोभा नहीं देता। दोहा ५८७-५८८ राजस्थान की इतर कथा-कहानियों में बहुतायत से उद्धृत किए हुए मिलते हैं अतएव साधारण कहावत की तरह प्रचलित हैं। इनमें किसी प्रकार की काव्यगत विशेषता भी नहीं है।

इस काव्य के वस्तु-वर्णनों का संक्षेप में निदर्शन कर अब निष्कर्ष रूप में यही कहना बाकी रह जाता है कि इन वर्णनों में राजस्थान देश की आत्मा का स्वाभाविक स्थूल चित्र चित्रित हुआ है। इस धारणा के आधार पर यह कहने में संकोच नहीं होता कि 'ढोलामारूरा दूहा' में राजस्थान की जातीय कविता (National Poetry) केंद्रीभूत है। क्या देश-वर्णन, क्या रमणी-सौंदर्य-वर्णन, क्या ऋतु-वर्णन, क्या करहा-वर्णन—सभी में राजस्थान की जातीयता की गहरी छाप लगी हुई है।

(१२) यात्रा-वर्णन और भौगोलिक स्थिति

ढोला-मारवणी की प्रेम-कहानी का नायक ढोला नरवर देश के राजा नळ का पुत्र था और मारवणी पूगळ के पिंगळराव की पुत्री थी। नरवर का प्राचीन राज्य राजस्थान प्रांत के पूर्व कोण में पुष्कर से लगाकर वर्त्तमान ग्वालियर राज्य की पूर्वीय सीमा तक विस्तृत था। इसे 'नळवाड़ा' भी कहते थे। इधर राजस्थान के पश्चिम में पूगळ परमार क्षत्रियों की प्राचीन राजधानी थी। वर्त्तमान पूगळ नगर बीकानेर के अंतर्गत राजधानी बीकानेर के पश्चिमोत्तर में लगभग २५ कोस की दूरी पर स्थित है। पूगळ और नरवर के बीच में लगभग २०० कोस का अंतर है।

ढोला के बचपन में अकाल पड़ने पर पिंगळराव नरवर राज्य में, संभवतः पुष्कर तीर्थ पर, जाकर रहा था जहाँ नळ राजा भी सपरिवार आया था। वहीं दोनों राजाओं का प्रथम मिलन हुआ—

पिंगळ ऊचाळउ कियउ, नळ नरवरचइ देसि ॥ २ ॥

मारवणी के प्रेम से आकर्षित होकर ढोला ने नरवर से पूगळ की यात्रा की थी। इस यात्रा का स्पष्ट निर्देश दूहों में मिलता है। यात्रा किस मार्ग से की गई थी, इस विषय के कुछ अवतरण नीचे उद्धृत किए जाते हैं—

(१) चंदेरी बूँदी बिचीं, सरवर-केरइ तीर।
ढोलइ दाँतण फाड़ताँ, आइ पुहुचउ कीर ॥४००॥

(२) अति आणँद ऊमाहियउ, वहइ ज पूगळ वट्ट।
त्रीजइ पुहरि उलंघियउ, आडवळारउ घट्ट ॥४२४॥

(३) करहउ पाँणि तिसाइयउ, आयउ पुहकर तीर।
ढोलइ ऊतर पाइयउ, निरमळ सरवर नीर ॥४२५॥

(४) सांझी वेळा सामहलि कंठळि थई अगासि।
ढोलइ करह कँमाइयउ, आयउ पूगळ पासि ॥५२२॥

इन अवतरणों से अनुमान होता है कि ढोला माळवणी को आधी रात के लगभग सोती (सूताँ पल्लांणेह—२०५) छोड़कर ऊँट पर नरवर से विदा हुआ था। नरवर से वह चंदेरी के मार्ग होकर बूँदी की ओर मुड़ा था, दोहा नं० ४०० से यह स्पष्ट विदित होता है। ढोला नरवर से पुष्कर के सीधे पश्चिमी मार्ग को छोड़कर चंदेरी की ओर दक्षिण को क्यों गया और वहाँ से बूँदी की ओर की पश्चिमोत्तर राह को पकड़कर पुष्कर पहुँचने में उसका क्या आशय था,

यह बात दूहों से प्रकट नहीं होती। परंतु अनुमान किया जा सकता है कि विरह-विधुरा माळवणी के प्रपंच से बच निकलने के लिये उसने ऐसा किया होगा, अथवा सीधे पश्चिम के मार्ग में घना जंगल अथवा दुर्गम पहाड़ पड़ते होंगे जिनके बीच में से कोई सुगम और सुरक्षित राह उन दिनों न रही होगी। इस उलटे मार्ग से यात्रा करने से उसे लगभग २५-३० कोस का चक्कर पड़ गया। यदि वह नरवर से पश्चिम के मार्ग होता हुआ सीधा पुष्कर को जाता तो केवल १०० कोस के लगभग मार्ग तय करना पड़ता। इसके विपरीत नरवर से चंदेरी अनुमानतः ३० कोस दक्षिण में, चंदेरी से बूँदी अनुमानतः ८० कोस पश्चिमोत्तर में, और बूँदी से पुष्कर लगभग ४५ कोस उत्तर-पश्चिम में—इस प्रकार लगभग १५० कोस का फासला हो गया।

यहाँ पर एक बात का ध्यान रखना चाहिए। दोहा ४०० में निर्दिष्ट 'चंदेरी' और 'बूँदी' से केवल इन नामोंवाले नगरों का ही आशय नहीं है वरन् चंदेरी और बूँदी राज्यों का आशय हो सकता है, जो उस समय में पर्याप्त विस्तृत राज्य रहे होंगे। इस दृष्टि से विचार करने पर, ढोला नरवर से प्रस्थान कर चंदेरी और बूँदी राज्यों की भूमि में से होता हुआ गया था और जिस स्थान पर वह प्रातःकाल के समय माळवणी के शुक को दँतुवन करते मिला था वह बूँदी और चंदेरी राज्यों का मध्यवर्ती सीमा प्रदेश रहा होगा। इस विस्तृत दृष्टि से विचार करने पर १५० कोस का चक्करदार फासला घटकर १२५ कोस के ही लगभग रह जाता है।

पुष्कर से पश्चिमोत्तर मरुस्थल के रेतीले और शुष्क निर्जन मार्ग को पार करता हुआ वह पूगळ पहुँचा। पुष्कर और पूगळ के बीच में लगभग ८० कोस का अंतर है। इस प्रकार ढोला की समस्त यात्रा का फासला लगभग २२५ कोस हुआ। इसमें उसे अनुमानतः २५-३० कोस का चक्कर खाना पड़ा। यदि वह नरवर से पुष्कर होता हुआ सीधा पूगळ को जाता तो अनुमानतः २०० कोस की यात्रा करनी पड़ती।

अब यह देखना है कि समय और दूरी की आपेक्षिक दृष्टि से ढोला के लिये यह २२५ कोस की यात्रा, एक दिन और आधी रात अर्थात् २०-२१ घंटों के समय में संपूर्ण करना संभव था या असंभव ?

ढोला का वाहन उत्तम जाति का तेज ऊँट था, जिसकी चाल के विषय में "घड़िए जोइण जाय' अर्थात् एक घड़ी में योजन भर चला जाता था,

कहा गया है। एक घड़ी २४ मिनट के बराबर होती है और योजन वर्त्तमानकालिक गणना के अनुसार कम से कम ४ कोस के बराबर। इस रफ्तार से ढोला का ऊँट घंटे में १० कोस की चाल से चलता रहा होगा। एक उत्तम जाति के ऊँट के लिये यह चाल असंभव नहीं है, असाधारण अवश्य कही जा सकती है। राजस्थान में इस गये-गुजरे जमाने में अब भी ऐसे ऊँट मिलते हैं जो घंटे में ७-८ कोस चल सकते हैं। ऊँट की चाल के संबंध में साधारण किंवदंती प्रसिद्ध है कि दिन भर में (अर्थात् सूर्योदय से सूर्यास्त तक) जो बिना थकावट के १०० कोस की यात्रा कर सके उसे ही ऊँट समझना चाहिए।

ढोला की यात्रा आधी रात के समय से अथवा उससे कुछ पहले प्रारंभ होकर दूसरे दिन की संध्या के लगभग ९ बजे समाप्त हुई होगी जैसा कि दूहा ५२२ से ज्ञात होता है। संक्षेप में ढोला ने लगभग २२५ कोस की यात्रा २०-२१ घंटों में समाप्त की थी। यह असंभाव्य नहीं, कठिन अवश्य है।

यात्रा के वर्णन को बीच-बीच में से उठाकर क्रमशः जाँच करने पर भी यही प्रतीत होता है कि उसमें वास्तविक सत्यता बहुत कुछ है। आधी रात को रवाना होकर ढोला प्रातःकाल के समय चंदेरी और बूँदी के सीमा-प्रदेश पर सरोवर के तीर दँतुवन करने को ठहरा, जहाँ माळवणी का भेजा हुआ शुक उससे मिला था। यह फासला लगभग ६० ६५ कोस का था और सूर्योदय के समय तक ढोला लगभग ७ घंटे की यात्रा कर चुका था। इससे एक घंटे में १० कोस की रफ्तार का अनुमान पुष्ट होता है। यात्रा के क्रम-विकास में दूसरा प्रमाण "त्रीजइ पुहरि उलाँघियउ आडवळारउ घट्ट" (४२४) में मिलता है। चंदेरी और बूँदी राज्यों के सीमा-प्रदेश से अरावली पर्वतमाला की घाटी अर्थात् पुष्कर के आस-पास के मार्ग तक ढोला ने प्रातःकाल से लगाकर दिन के तीसरे पहर अर्थात् ३-४ बजे तक यात्रा की थी। सारांश, लगभग १०० कोस की यात्रा ढोला ने ९-१० घंटों में संपन्न की। इससे भी घंटे में १० कोसवाले औसत की पुष्टि होती है।

पुष्कर से पूगळ का फासला लगभग ८० कोस का है। उसे ढोला ने दिन के तीसरे प्रहर से रात के पहले प्रहर के बीच में पार किया होगा। यद्यपि इस बात का स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता कि ढोला पूगळ में ठीक किस समय पहुँचा, परंतु उसने वीसू चारण के द्वारा मारवणी को निम्नांकित संदेश पहले ही भेज दिया था—

वीसू, सुणि, ढोलउ कहइ, हिव खड़ि पूगळ जात।
देह वधाई दिन थकइ, म्हे आएस्याँ रात ॥४९०॥

इससे तो ढोला का कुछ रात बीते पूगळ पहुँचना निश्चित होता है। साथ ही इसमें भी कोई संदेह नहीं है कि अपनी यात्रा के अंतिम भाग में—अर्थात् पुष्कर से पूगळ की राह में—उसने बहुत तेजी की थी; ऊँट को जगह-जगह फटकारा भी था और सड़सड़ बेंतों से मारा भी था। इससे उसके मन की यह व्यग्रता, कि संध्या होते-होते पूगळ पहुँच जाय, अवश्य विदित होती है। परंतु ऐसा अनुमान होता है कि वह कुछ रात्रि बीतने पर पूगळ पहुँचा होगा, पहले नहीं।

उत्तरार्ध

भाषा और व्याकरण का विवेचन

(१) प्राक्कथन

ढोला-मारूरा दूहा काव्य की भाषा राजस्थानी हिंदी है। यहाँ पर राजस्थानी भाषा के विकास का संक्षिप्त इतिहास दे देना अनुचित न होगा।

राजस्थानी राजस्थान प्रांत की भाषा है। राजस्थान केवल आधुनिक राजपूताना प्रांत तक ही परिमित नहीं है किंतु माळवा और हिसार का भी बहुत-सा भाग राजस्थान के ही अंतर्गत समझा जाना चाहिए। राजस्थानी इस समस्त भू-खंड की भाषा है। भाषा-विज्ञान के विद्वानों ने राजस्थानी को हिंदी से स्वतंत्र एवं सर्वथा भिन्न भाषा गिना है पर जब व्रज और अवधी एवं खड़ीबोली तथा बिहारी जैसी विभाषाएँ हिंदी के अंतर्गत गिनी जा सकती हैं तो राजस्थानी को भी हिंदी की विभाषा माना जा सकता है। हम आधुनिक हिंदी भाषा के दो मोटे विभाग करके उसकी विभिन्न विभाषाओं को इस प्रकार विभक्त करेंगे—

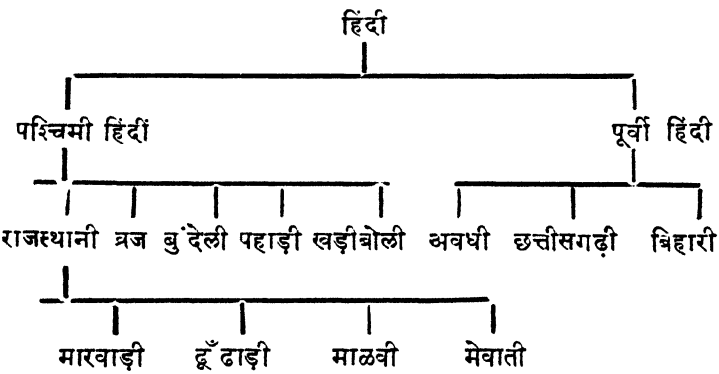

राजस्थानी का विकास अपभ्रंश से हुआ है। अपभ्रंश से विकसित प्राचीन राजस्थानी से ही आधुनिक राजस्थानी, ब्रजभाषा और गुजराती का जन्म हुआ है। अपभ्रंश-काल के पश्चात् एक जमाने तक उस समस्त भू-खंड में, जो आजकल पश्चिमी हिंदी, राजस्थानी और गुजराती का अधिकार-क्षेत्र है, बोलचाल एवं साहित्य की भाषा राजस्थानी रही है।

राजस्थानी हिंदी की समस्त शाखाओं में प्राचीनतम है। वह अपभ्रंश की जेठी बेटी है। जिस समय भारतीय जनता की साधारण भाषा प्राकृत थी उस समय कतिपय आभीर आदि निम्न कोटि की जातियाँ उसे बिलकुल उस रूप में न बोलती थीं जिसमें कि अन्य लोग उसे बोलते थे। जो रूप उनमें प्रचलित था वह अशुद्ध या अपभ्रष्ट था। प्रारंभ में उन्हीं की बोलचाल की भाषा अपभ्रंश कहलाती रही होगी। भाषा सदा बदलती रहती है, इस नियम के अनुसार प्राकृत भाषा विकृत होने लगी। प्राकृत का यह विकृत रूप आगे चलकर अपभ्रंश नाम से प्रसिद्ध हुआ। अनुमानतः विक्रम की पाँचवीं-छठी शताब्दी के लगभग प्राकृत, संस्कृत की भाँति, केवल साहित्यिक भाषा रह गई और उस समय तक अपभ्रंश जन-साधारण की बोलचाल की भाषा बन चुकी थी। जब अपभ्रंश जनता की भाषा हुई तो साहित्य-सेवी भी उस ओर झुके और अपभ्रंश ने साहित्य में भी पैर रखा। साहित्य में आकर अपभ्रंश का रूप स्थिर हो गया पर जन-साधारण की भाषा कभी स्थिर रूप में नहीं रह सकती। उसमें परिवर्त्तन होना शुरू हुआ। विकृत होकर वह नवीन रूप धारण करने लगी। धीरे-धीरे बाद की अपभ्रंश पहले की अपभ्रंश से दूर जा पड़ी और अंत में वर्तमान काल की देश-भाषाओं में परिवर्तित हो गई। इस प्रकार आधुनिक हिंदी, गुजराती, राजस्थानी, बँगला, मराठी आदि देशभाषाओं का अपभ्रंश से विकास हुआ।

अपभ्रंश का युग कब समाप्त होता है और देशभाषाएँ कब से आरंभ होती हैं यह बतलाना बहुत कठिन है। अपभ्रंश धीरे-धीरे विकृत होती हुई इन भाषाओं में परिवर्तित हुई है और इस कार्य में कई शताब्दियाँ लगी हैं। इस बीच के विकास के समय को हम परिवर्तन-काल (Transition Period) कहेंगे। इस काल की भाषा शुद्ध अपभ्रंश न होते हुए भी अपभ्रंश से विशेष विभिन्न नहीं है। यह परिवर्तन-युग विक्रम की दसवीं शताब्दी से बारहवीं

शताब्दी के अंत तक माना जा सकता है*। तेरहवीं शताब्दी में राजस्थानी आदि देशभाषाएँ अपभ्रंश से स्पष्टतया भिन्न हो चुकी थीं।

इस परिवर्तन-काल की भाषा को सुप्रसिद्ध विद्वान् चंद्रधर शर्मा गुलेरी पुरानी हिंदी का नाम देते हैं। गुजराती भाषा के विद्वान् मोहनलाल दलीचंद देसाई ने उसे जूनीहिंदी-जूनीगुजराती कहा है। अन्य विद्वान् इसे प्राचीन-राजस्थानी कहते हैं। हमारी समझ में ये नाम उपयुक्त नहीं हैं। उक्त भाषा कुछ थोड़े-बहुत फेरफार के साथ समस्त उत्तरी भारत में प्रचलित थी और उसी से वर्त्तमान देशभाषाओं का विकास हुआ है। वह केवल हिंदी और गुजराती की ही जन्मदात्री नहीं है किंतु उससे अन्य भाषाओं का भी जन्म हुआ है। वास्तव में उसे उत्तरकालीन अपभ्रंश कहना चाहिए। अतः हम इन प्रांतीयता-सूचक नामों को ग्रहण न करके इस भाषा को लोक-भाषा कहेंगे।

(२) अपभ्रंश का विकास

अपभ्रंश शब्द आरंभ में किसी भाषा के लिये प्रयुक्त नहीं होता था। निरक्षर या साधारण जनता शिष्ट भाषा के शब्दों का उच्चारण कुछ विकृत रूप में करती थी। शब्दों के इन्हीं विकृत रूपों को आरंभ में अपभ्रंश कहा जाता था। पतंजलि ने अपने महाभाष्य में इस शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में किया है। जैसे—

एकैकस्य हि शब्दस्य बहवोऽपभ्रंशाः। तद् यथा—

गौरित्यस्य शब्दस्य गावी, गोणी, गोता, गोपोतलिकेत्येवमादयोऽपभ्रंशाः।

शिष्ट और साक्षर लोग भाषा की शुद्धता का ध्यान रखते हुए गौ शब्द का

* यह बात साहित्य की भाषा के लिये ही कही जा सकती है। बोलचाल की भाषा का परिवर्तन-काल तो विक्रम की आठवीं-नवीं शताब्दी से ही आरंभ हो जाता है।

साहित्यिक लोग बोलचाल की भाषा के पर्याप्त प्रचार हो जाने के बाद ही उसका प्रयोग साहित्य-रचना में करते हैं। कोई भी भाषा साहित्यिक भाषा होने के पूर्व बहुत काल तक बोलचाल की भाषा रहती है। परंतु कभी-कभी महात्मा बुद्ध, रामानंद, कबीर जैसे संत महात्मा जन्म लेते हैं जो साहित्यिक भाषा की पर्वाह न करके लोक-भाषा को ही अपनाते हैं और उसी में अपने अमूल्य उपदेशों को ग्रथित करते हैं। ऐसे कई सिद्ध महापुरुष नवीं एवं उसके बाद की शताब्दियों में हुए और उन्होंने देश भाषा में ही रचना की जो कुछ अंशों में प्राप्त हुई हैं। श्रीयुत हरप्रसाद शास्त्री ने ऐसी कतिपय रचनाओं को संगृहीत करके 'बौद्धगान ओ दोहा' नाम से प्रकाशित करवाया है। (इनके उदाहरण आगे चलकर दिए जायँगे)

प्रयोग करते थे पर निरक्षर और साधारण लोग गावी, गोणी आदि शब्दों का प्रयोग करते रहे होंगे जिस प्रकार आजकल भी पढ़े-लिखे लोग सूर्य या सूरज शब्द का प्रयोग करते हैं और निरक्षर लोग सुरुज, सूरुज, सुरिज, सूरिज आदि अपभ्रष्ट रूपों को काम में लाते हैं।

अपभ्रंश भाषा का सबसे पहले पता भरत मुनि के नाट्यशास्त्र में चलता है जिसका समय विक्रम की दूसरी एवं तीसरी शताब्दी के अनंतर नहीं हो सकता। उसमें अपभ्रंश नाम तो नहीं आया है पर संस्कृत और प्राकृत के अतिरिक्त देश-भाषा का उल्लेख किया गया है—

एवमेतत्तु विज्ञेयं संस्कृतं प्राकृतं तथा।
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि देशभाषा-प्रकल्पनम्॥

आगे चलकर सात भाषाओं और सात विभाषाओं का उल्लेख किया गया है। इनमें सातों भाषाएँ तो सात प्राकृत भाषाएँ हैं। विभाषाओं में शबर, आभीर चांडाल, चेर (आधुनिक केरळ), द्रविड़, ओड्र इन छः जातियों की तथा जंगली जातियों की बोलियों को गिनाया गया है।

नाट्यशास्त्र के जमाने के आसपास प्राकृतें शिष्ट-समुदाय की ही भाषाएँ रह गई होंगी और निरक्षर लोग उसी का अपभ्रष्ट रूप काम में लाते होंगे जिस पर धीरे धीरे उक्त आभीर आदि जातियों की बोलियों का प्रभाव अवश्य पड़ा होगा।

नाट्यशास्त्र में यह भी कहा गया है कि सिंधु (आधुनिक सिंध), सौवीर (आधुनिक पश्चिम-दक्षिणी पंजाब) और उनके आसपास के पहाड़ी प्रदेश में उकार-बहुल भाषा प्रयुक्त होती है जो अपभ्रंश का एक मुख्य लक्षण है। आगे चलकर बत्तीसवें अध्याय में जो उदाहरण दिए गए हैं वे अपभ्रंश से मिलते-जुलते या बिलकुल अपभ्रंश ही हैं। इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि नाट्यशास्त्र के जमाने में प्राकृत के अतिरिक्त देशभाषा का प्रचार था पर उसका कोई अलग नाम अभी तक नहीं पड़ा था। यह देशभाषा केवल निम्न कोटि की जनता की बोली-मात्र थी एवं साहित्य रचना इसमें नहीं होती थी।

इसके बाद सातवीं शताब्दी में अपभ्रंश के उल्लेख मिलते हैं और इस समय वह केवल बोलचाल की भाषा ही नहीं थी किंतु उसमें साहित्य रचना भी होने लगी थी। वलभी के राजा दूसरे धरसेन का एक शिलालेख मिला है जिसमें उसने अपने पिता गुहसेन के लिये लिखा है—

संस्कृत-प्राकृताऽपभ्रंश-भाषात्रय-प्रतिबद्ध-
प्रबंधरचना-निपुणतरांतःकरणः ।

(संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश इन तीन भाषाओं में काव्य-रचना करने में अति चतुर अंतःकरणवाला ।)

इस राजा गुहसेन के शिलालेख सं० ६१६ से ६२६ तक के मिलते हैं जिससे उसका समय सातवीं शताब्दी के आरंभ में सिद्ध होता है ।

इसी समय के आसपास प्रसिद्ध विद्वान् भामह हुआ जो काव्य के तीन विभाग करता है—

संस्कृतं, प्राकृतं, चान्यदपभ्रंश इति त्रिधा ।

महाकवि दंडी का समय भी इससे बहुत दूर नहीं है । उसने अपने काव्यादर्श में भारतीय साहित्य को चार भागों में बाँटा है—

तदेतद् वाङ्मयं भूयः संस्कृतं प्राकृतं तथा ।
अपभ्रंशं च मिश्रं चेत्याहुरार्याश्चतुर्विधम् ॥

इन प्रमाणों से सिद्ध होता है कि विक्रम की छठी-सातवीं शताब्दी में अपभ्रंश साहित्य में पैर रख चुकी थी और उसका इतना आदर हो गया था कि एक राजा उसमें काव्य-रचना कर सकने को अपने लिये गौरव की बात समझे । भामह और दंडी के जमाने तक उसका साहित्य इस योग्य हो गया था कि काव्य का विभाजन करते समय उसका नाम लिया जाय ।

इस समय वह साधारण निम्न जातियों की ही बोलचाल की भाषा नहीं थी किंतु समस्त जनता की बोलचाल की एवं जीवित साहित्य की भाषा हो चुकी थी और प्राकृत केवल मृत भाषा ही रह गई होगी या अधिक-से-अधिक उसका प्रयोग बहुत थोड़े विद्वानों में ही होता रहा रोगा ।

राजशेखर के जमाने तक अपभ्रंश खूब साहित्य-संपन्न भाषा हो गई थी । साहित्य में अपभ्रंश का एकच्छत्र राज्य कोई ग्यारहवीं शताब्दी तक रहा । ग्यारहवीं शताब्दी से देशभाषा प्रधानता प्राप्त करने लगी और बारहवीं शताब्दी के बाद तो अपभ्रंश का साहित्यिक महत्त्व भी बहुत कुछ जाता रहा ।

इस प्रकार अपभ्रंश का काल विक्रम की दूसरी शताब्दी से ग्यारहवीं शताब्दी तक माना जा सकता है ।

अपभ्रंश का मुख्य स्थान राजस्थान, मालवा, गुजरात, सिंध और पश्चिमी पंजाब था । आरंभ में इसका विकास संभवतया यहीं हुआ और धीरे-धीरे

समस्त भारत में उसका प्रसार हो गया। प्रांतीय भेद उसमें अवश्य रहे होगे पर परस्पर का अंतर इतना नहीं रहा होगा कि एक प्रांत के निवासियों को दूसरे प्रांतवालों की बोली को समझने में कठिनता हो।

ऊपर हम भरत-नाट्यशास्त्र के इस कथन का उल्लेख कर चुके हैं कि उकार-बहुला भाषा सिंध और पश्चिमी पंजाब में बोली जाती थी। दंडी अपभ्रंश को आभीर आदि जातियों की भाषा कहता है। आभीर जाति का प्रारंभिक निवास सिंध, पंजाब और बाद में राजस्थान, गुजरात आदि का भू-भाग ही था। आभीर आदि निम्न जातियाँ शिष्ट भाषा का शुद्ध उच्चारण नहीं कर सकती थीं जिससे उनकी भाषा को अपभ्रंश नाम दिया गया होगा और बाद में जब प्राकृत अपभ्रष्ट होने लगी तो यह नाम व्यापक होकर समस्त जनता की बोलचाल की भाषा के लिये प्रयुक्त हो गया। राजशेखर ने काव्य-मीमांसा में लिखा है कि अपभ्रंश का प्रयोग समस्त मरु (आधुनिक मारवाड़ या पश्चिमी राजस्थान), टक्क (आधुनिक पूर्वी पंजाब का कुछ भाग) और भादानक प्रदेशों में होता है। एक अन्य स्थान पर वह लिखता है कि सौराष्ट्र (आधुनिक काठियावाड़) और त्रवण आदि देशों के लोग संस्कृत को सौष्ठव के साथ पढ़ते हैं पर अपभ्रंश के मिश्रण के साथ। भोजराज अपने सरस्वती कंठाभरण में लिखते हैं—

अपभ्रंशेन तुष्यंति स्वेन नान्येन गुर्जराः।

इन सब कथनों से स्पष्ट होता है कि अपभ्रंश मुख्यतया राजस्थान, मालवा, गुजरात और सिंध तथा पंजाब की भाषा थी और वहीं से धीरे-धीरे उसका सर्वत्र प्रचार हुआ। कम-से-कम साहित्य रचना तो विशेषतया इन्हीं प्रदेशों में हुई है। अपभ्रंश के मुख्य भेद नागर, उपनागर और व्राचड़ इन्हीं प्रांतों में प्रचलित थे एवं आधुनिक देशभाषाओं में राजस्थानी, माळवी एवं गुजराती ही अपभ्रंश के सबसे अधिक सन्निकट भाषाएँ हैं।

इन प्रांतों की अपभ्रंश ने साहित्य में इतनी श्रेष्ठता प्राप्त कर ली थी कि अन्यान्य प्रांतीय भेद उसके सामने दब गए। उनमें या तो साहित्य-रचना हुई ही नहीं या बहुत कम हुई और उसका भी अधिकांश भाग नष्ट हो गया।

इसके अतिरिक्त यह संभावना भी हो सकती है कि जिस प्रकर आधुनिक हिंदी की बोलियों में खड़ी बोली को ही साहित्यिक भाषा होने का गौरव

प्राप्त है एवं अन्यान्य बोलियाँ केवल बोलचाल के ही काम में आती हैं, उसी प्रकार उस जमाने में भी पश्चिमी अपभ्रंश ही साहित्य रचना के लिये प्रयुक्त होती थी और अन्य प्रान्तों की अपभ्रंशें केवल बोलचाल की भाषाएँ रही होंगी। इसके अलावा उस जमाने में पढ़े-लिखे हिंदू विद्वान् अपनी संस्कृत में ही मस्त थे और साहित्य-रचना उसी में करते थे। जैन विद्वान् ही प्राकृत और अपभ्रंश की ओर ध्यान देते एवं उसमें साहित्य-रचना करते थे। ये जैन विद्वान् विशेष करके पश्चिम भारत के ही रहनेवाले थे अतः अपभ्रंश-साहित्य की रचना उधर की ही अपभ्रंश में हुई होगी एवं बाकी अपभ्रंशें बोलचाल में ही काम आती होंगी* ।

(३) उत्तरकालीन अपभ्रंश अथवा लोक-भाषा (पुरानी हिंदी या जूनी गुजराती) का विकास

आधुनिक देशभाषाओं का विकास अपभ्रंश से हुआ है। अपभ्रंश भाषा प्रायः समस्त उत्तरी भारत की भाषा थी। उसमें प्रांतीय भेद अवश्य थे, जिसके कारण लोगों ने कई अपभ्रंशें मानी हैं, पर प्राकृतों की भाँति उन भेदों में बहुत ही कम अंतर था। पर अपभ्रंश के बाद जिस भाषा का विकास हुआ वह भिन्न-भिन्न प्रांतों में भिन्न-भिन्न प्रकार की हो गई। अवश्य ही आरंभ में इतना भेद नहीं था पर यह भेद धीरे-धीरे बढ़ता गया जिससे देश में एक भाषा के स्थान पर कई भाषाओं का जन्म हो गया। सम्राट् हर्षवर्धन (सं० ६६३—७०४) के जमाने तक उत्तरी भारत एक ही शासन के नीचे रहा पर उनके बाद देश की राजनीतिक एकता छिन्न-भिन्न हो गई। विभिन्न प्रांतों का पारस्परिक आवागमन और मिलना-जुलना धीरे-धीरे कम होता गया। इस प्रकार पारस्परिक व्यवहार नष्ट हो जाने से भाषा की एकता भी धीरे-धीरे नष्ट हो गई।

अपभ्रंश से वर्त्तमान देशभाषाओं का जन्म हुआ। पर यह विकास आकस्मिक नहीं किंतु शताब्दियों का काम था। ये भाषाएँ आरंभ में अपभ्रंश से बहुत कुछ प्रभावित रहीं और अंत में देश-भेद से भिन्न भिन्न रूपों में विकसित हुईं। इनके स्पष्ट विकास के पूर्व का जो परिवर्त्तन-काल

* दक्षिण-निवासी पुष्पदंत कवि के जो मान्यखेट के राष्ट्रकूट राजा कृष्ण तीसरे के समय में हुआ है, अपभ्रंश में लिखे हुए कई ग्रंथ मिले हैं। उनकी भाषा इस मुख्य अपभ्रंश से प्रायः सर्वांश में मिलती-जुलती है और हमारे कथन को सिद्ध करती है।

है उसकी भाषा को हमने लोकभाषा का नाम दिया है। आधुनिक देश-भाषाओं के पूर्व यह लोक-भाषा थोड़े-बहुत अंतर के साथ समस्त उत्तरी भारत की भाषा थी। बाद में पारस्परिक व्यवहार टूट जाने के कारण यह अंतर विभिन्न भागों में बढ़ता गया और इस प्रकार बंगाली, हिंदी, राज-स्थानी, गुजराती आदि देशभाषाओं का जन्म हुआ।

इस लोक-भाषा का बीजारोपण विक्रम की आठवीं शताब्दी के लगभग हुआ होगा। उस समय शिष्ट जनों एवं साहित्य की भाषा अपभ्रंश थी पर साधारण जनता संभावतया अपभ्रंश के विकृत रूप का ही प्रयोग करती होगी। इसके अतिरिक्त ग्रामीण कविता की रचना भी इस लोकभाषा में होने लगी होगी। पूर्व-भारत में नालंदा और विक्रमशिला से संबद्ध वज्रयानी बौद्ध सिद्धों की कतिपय रचनाएँ प्राप्त हुई हैं जो इसी लोक-भाषा में हैं। उनका समय लगभग नवीं शताब्दी के आरंभ से लेकर तेरहवीं शताब्दी के पूर्व भाग तक है।

जब अपभ्रंश के साहित्य का ही पता अभी बहुत कम लगा है तो फिर लोक-भाषा के साहित्य की बात तो जाने ही दीजिए। इस काल में भी साहित्यिक लोग अपनी रचनाएँ अपभ्रंश में ही लिखते होंगे क्योंकि वह शिष्ट भाषा समझी जाती थी। फिर वैदिक-मतानुयायी विद्वानों ने तो जनता की भाषा की कभी पर्वाह नहीं की उन्होंने जो कुछ लिखा प्रायः सब-का-सब संस्कृत में लिखा। प्राकृत और अपभ्रंश भी जब उनकी कृपादृष्टि के बाहर रहीं तो बेचारी लोक-भाषा की क्या कथा? दूसरे लेखक प्रधानतया जैन आचार्य आदि थे। वे भी बहुत दिनों तक प्राकृत और बाद में अपभ्रंश के—तत्कालीन शिष्ट-भाषाओं के—फेर में पड़े रहे। एकाध रचना हुई भी होगी तो कहीं किसी पुस्तक-भंडार में अंधकार के गर्त्त में छिपी पड़ी होगी।

अब रहीं अ-साहित्यिकों की रचनाएँ। बौद्ध सिद्धों की कृतियों का उल्लेख ऊपर हो चुका है। साधारण जनता में जो गीत-दोहे आदि निर्मित होकर प्रचलित हुए वे लेखबद्ध न होने के कारण बहुत-कुछ तो नष्ट हो गए होंगे और जो थोड़े-बहुत बचे वे परिवर्तित होते हुए आगे की पीढ़ियों तक पहुँच गए*।

* सरह-पा आदि वज्रयानी बौद्ध सिद्धों की रचनाओं को डाक्टर हरप्रसाद शास्त्री और उनके सुपुत्र डाक्टर विनयतोष भट्टाचार्य प्राचीन बँगला बतलाते हैं। डाक्टर विनयतोष एक स्थान पर लिखते हैं—

हेमचंद्र, सोमप्रभ सूरि और मेरुतुंगाचार्य ने अपनी कृतियों में इन प्रचलित गीतांशों व दोहों को उद्धृत किया है। इन उदाहरणों में शृंगार वीरता, नीति सभी प्रकार के नमूने मिलते हैं। हेमचंद्र ने जो उदाहरण दिए हैं उनसे ज्ञात होता है कि उसके समय में लोक-भाषा में राम-कथा, कृष्ण-कथा, महाभारत आदि ग्रंथ बन चुके थे। मुंज और ब्रह्म इन दो कवियों के नाम भी उसमें पाए जाते हैं। मुंज के संबंध के और भी कई दोहे मेरुतुंग ने उद्धृत किए हैं। संभव है ये सब मुंज ही की रचनाएँ हों। मुंज धारा का सुप्रसिद्ध विद्वान् राजा है जिसका एक विरुद वाक्पतिराज भी है। यह भोज के पिता सिंधुराज का बड़ा भाई था। इसका समय ग्यारहवीं शताब्दी का पूर्वार्ध है। आगे इस लोक-भाषा की रचनाओं के कतिपय उदाहरण दिए जाते हैं—

(१) सिद्धों की रचनाएँ

१—सरह-पा

जहि मन पवन न संचरइ, रवि ससि नाह पवेस।
तहि वट चित्त विसाम करु, सरहे कहिअ उवेस ॥१॥
घोरंधारे चंद - मणि जिमि उज्जोअ करेइ।
परम महासुह एकु खणे दुरिआ अशेष हरेइ ॥२॥
जइ नग्गा विअ होइ मुत्ति, ता सुनह-सियालह।
लोमोप्पाटने अच्छ सिद्धि, जा जुवइ-नितंबह ॥
पिच्छीगहणे दिट्ठ मोक्ख, ता करिह तुरंगह।
उभेँ भोअणे होइ जाण ता............॥

Thus the time of the earliest Doha in Bengali goes back to the middle of the seventh century, when Saraha flourished, and Bengal may be justly proud of antipuity of her literature.

पता नहीं, डाक्टर साहब ने इन दूहों की भाषा को बंगला क्यों मान लिया। जिस भाषा में ये दूहे लिखे गए हैं वह उस समय प्रायः समस्त उत्तरी भारत में कुछ हेर-फेर के साथ प्रचलित थी। फिर सरह न तो बंगाली था, न बंगाल के साथ उसका कोई संबंध था। चौरासी सिद्धों का संबंध नालंदा और विक्रमशिला के प्राचीन विश्वविद्यालयों से रहा है अतः वे बिहारी तो कहे जा सकते हैं। अब विद्वानों का यह मत होता जा रहा है कि इन दोहों की भाषा कोई पश्चिमी उत्तरकालीन अपभ्रंश है।

एव सरह भणइ खवनान मोक्ख महु कांपि न भावइ ।
तत्तरहिअकाया ण ताव पर केवल साहइ ॥३॥
पंडिअ सअळ सत्थ वक्खाणइ ।
देहहि बुद्ध वसंत न जाणइ ॥
अमणागमण ण तेन विखंडिअ ।
तो वि णिलज्ज भणइ हउँ पंडिअ ॥४॥

२—कण्हपा

आगम वेअ पुराणे पंडित मान वहंति ।
पक्क सिरीफल अलिअ जिम वाहेरि त भमयंति ॥१॥
वर गिरि-सिहर उतुंग मुणि सवरेँ जहिँ किअ वास ।
नउ सो लँघिअ पंचाननेहिँ, करिवर दूरिअ आस ॥२॥
जिम लोण विलिज्जइ पाणिएहि तिम धरणी लइ चित्त ।
समरस जाई तक्खणेँ जइ पुणु ते सम नित्त ॥३॥

३—महीपा

खर रवि किरण सँतापे रे गअणांगण गइ पइठा ।
भणंति महिता मइ एत्थु बुडंते किंपि न दिठा ॥

४—जयानंतपा

पेक्खु सुअणे अदस जइसा । अंतराले मोह तइसा ॥
मोह विमुक्का जइ माणा । तवे टूटइ अवणागमणा ॥

(२) संजममंजरी—इसका कर्त्ता महेश्वर सूरि नामक श्वेतांबर जैन है । इसका समय ग्यारहवीं शताब्दी का अंतिम अथवा बारहवीं शताब्दी का पूर्व भाग माना जाता है । इस पुस्तक में ३५ दोहे हैं । उदाहरण—

संजमु सुरसत्थिहिँ पुवउ संजमु मोक्ख-दुआरु ।
जेहि न संजमु मणि धरिउ तह दुत्तर संसारु ॥
संजम-भार धुरंधरह सद्दुच्छळिउ न जाह ।
निअ जणणी जुव्वणहरणु जम्मु निरत्थउ ताह ॥
इक्किणि इंदिय मुक्कळिणु, लब्भइ दुक्ख सहस्स ।
जसु पुण पंचइ मुक्कळा, कह कुसळत्तणु तस्स ॥

वरिस सहस्सिहिँ जं कियउ तवु संजमु उवयारु ।
कोहमहानळ संगमिण सो दहि किज्जइ च्छारु ॥

(३) उक्त संजम-मंजरी की टीका—इसका कर्त्ता कोई हेमहंस सूरि का शिष्य है । समय ज्ञात नहीं पर १५०५ से पूर्व का है ।

दिट्ठइँ जो नवि आळवइ, कुसळ न पुच्छइ वत्त ।
तासु तणइ नवि जाईय, रे हयडा नीसत्त ॥
रासहु कंध चडावियइ, लब्भइ लक्ख सहस्स ।
आपहणे करि कम्मडाँ, हिया, विसूरहि कस्स ? ॥

(४) सत्यपुरमंडन महावीरोत्साह—यह १५ गाथा का एक स्तोत्र है । इसका कर्त्ता धनपाल है । मालवाधिपति मुंज एवं भोज के दरबार में धनपाळ नामक कवि था । यदि यह वही है तो इसका समय ग्यारहवीं शताब्दी है ।

रक्खि सामि पसरंतु मोहु नेहडु य तोडहि ।
मुम्म दंसणि नाणु चरणु भडु कोहु विहोडहि ॥
करि पसाउ सच्चउरि वीर जइ तुहुँ मणि भावइ ।
तइ तुट्ठइ धणपाळ जाउ जहि गयउ न आवइ ॥

*(५) तिसट्ठि महापुरुष गुणालंकार महापुराण—इसका कर्त्ता पुष्पदंत नामक जैन कवि है जो मान्यखेट के राष्ट्रकूट-नरेश कृष्णराज तीसरे का समकालीन था (समय ग्यारहवीं शताब्दी का प्रथमार्ध) । उदाहरण—

महु समयागमे जायहें ललियहें । बोल्लइ कोयल अंबयकळियहें ।
काणणे चंचरीउ रुणुरुंटइ । कीरु किएण हरिसेण विसट्टइ ॥

कमळगंधु विप्पइँ सारंगेँ । णउ साळूरें णीसारंगेँ ।
गमणलील जा कय सारंगेँ । सा किं णासिज्जइ सारंगेँ ॥

* (६) जसहरचरिउ—

विणु धवळेण सयडु किं हल्लइ । विणु जीवेण देहु किं चल्लइ ॥१॥
विणु जीवेण मोक्खु को पावइ । तुम्हारिसु किं अप्पउ आवइ ॥२॥
माणुस-सरीर दुहु - पोट्टळउ । धोयउ-धोयउ अइ विट्टळउ ॥

* ये तीनों ग्रंथ अपभ्रंश में हैं परंतु इनमें भी कहीं-कहीं उत्तरकालीन लोक-भाषा के उदाहरण मिल जाते हैं ।

वारिउ-वारिउ वि पाउ करइ । पेरिउ-पेरिउ वि न धम्म चरइ ॥
चम्मेँ बद्धु वि कालिं सडइ । रक्खिउ-रक्खिउ जम-मुह पडइ ॥३॥

* (७) नायकुमारचरिउ—

सो णंदउ जो पढइ -पढावइ । सो णंदउ जो लिहइ लिहावइ ॥
सो णांदउ जो विवदि विवदइ । सो णंदउ जो भावें भावइ ॥

(८) हेमचंद्र—यह प्रसिद्ध जैन विद्वान् विक्रम की बारहवीं एवं तेरहवीं शताब्दी में विद्यमान था । गुजरात-नरेश सिद्धराज जयसिंह और कुमारपाल इसके आश्रयदाता थे । इसने संस्कृत और प्राकृत का एक बड़ा व्याकरण सिद्ध-हैम-शब्दानुशासन नाम से लिखा । उसके अंतिम अध्याय के ३२९ से ४४८ नंबर के कुल (१२०) सूत्रों में अपभ्रंश का व्याकरण दिया है एवं उदाहरणार्थ उस समय से प्रचलित अनेक दोहों को उद्धृत किया है । देशी-नाममाला नामक देशभाषा के शब्दों का एक कोष भी उसने बनाया है ।

व्याकरण में उद्धृत दोहों के उदाहरण

जे महु दिण्णा दिअहड़ा दइएँ पवसंतेण ।
ताण गणंतिए अंगुलिउ जज्जरिआउ नहेण ॥ १ ॥
सायरु उप्परि तण धरइ, तलि घल्लइ रयणाइँ ।
सामि सुभिच्चु वि परिहरइ, सम्माणेइ खळाइँ ॥ २ ॥
अग्गिएँ उण्हउ होइ जगु वाएँ सीअळु तेवँ ।
जो पुणि अग्गि सीअळा तसु उण्हत्तणु केवँ ॥ ३ ॥
भल्ला हुआ जु मारिआ बहिणि महारा कंतु ।
लज्जेज्जंति वयंसिअहु जइ भग्गा घर एंतु ॥ ४ ॥
वायसु उड्डावंतिअए पिउ दिट्ठउ सहसत्ति ।
अद्धा वळया महिहि गय अद्धा फुट्ट तडत्ति ॥ ५ ॥
जहिं कप्पिजइ सरिण सरु छिज्जइ खग्गिण खग्गु ।
तहिं तेहइ भड-घड-निवहि कंतु पयासइ मग्गु ॥ ६ ॥
जइ भग्गा पारक्कडा तो सहि मज्झु पिएण ।
अह भग्गा अम्हहं तणा तो तें मारिअडेण ॥ ७ ॥

* ये तीनों ग्रंथ अपभ्रंश में हैं परंतु इनमें भी कहीं-कहीं उत्तरकालीन लोक-भाषा के उदाहरण मिल जाते हैं ।

बप्पीहा, पिउ-पिउ भणिवि कित्तिउ रुअहि हयास।
तुह जलि, मुह पुणि वल्लहइ, बिहुँ वि न पूरिअ आस॥ ८॥
बप्पीहा, कइं बोल्लिएण निग्घिण बारइ बार।
सायरि भरियइ विमळ जलि लहहि न एकइ धार॥ ९॥
हिअइ खुडुकइ गोरडी गयणि घुडुकइ मेहु।
वासा-रत्ति पवासुअहँ विसमो संकडु एहु॥१०॥
पुत्तें जाएँ कवणु गुणु, अवगुणु कवणु मुएण।
जा बप्पीकी भूंहड़ी चंपिज्जइ अवरेण॥११॥
गयउ सो केसरि पियउ जळ निच्चितइ हरिणाइँ।
जसु केरएँ हुंकारडएँ मुहहुँ पडंति तिणाइँ॥१२॥
ढोल्ला एह परिहासड़ो अइ भण कवणहिं देसि।
हउँ झिज्जउँ तउ केहिं पिअ, तुहुँ पुणु अन्नहि रेसि॥१३॥
पाइ विलग्गी अंत्रडी सिरु ल्हसिउँ खंधस्सु।
तोवि कटारइ हत्थडउ वलि किज्जउँ कंतस्सु॥१४॥
जेवडु अंतरु रावण रामहँ।
तेवडु अंतरु पट्टण गामहँ॥ १५॥

(९) कुमारपालप्रतिबोध से—इसे संवत् १२४१ में सोमप्रभसूरि ने बनाया था। इसमें उस समय के प्रचलित अनेक देशी भाषा के छंद अवतरण-रूप में दिए गए हैं—

पिय, हउं थक्किय सयलु दिणु तुह विरहग्गि किळंत।
थोडइ जळ जिम मच्छलिय तल्लोविल्लि करंत॥१॥
अज्जु विहाणउ, अज्जु दिणु, अज्जु सुवाउ पवत्तु।
अज्जु गळत्थिउ सयलु दुहु, जं तुहु मह घरि पत्तु॥२॥
एक्के दुन्नय जे कया तेहिँ नीहरिय घरस्स।
बीजा दुन्नय जइ करउँ तो न मिलउँ पियरस्स॥३॥
अम्हे थोडा, रिउ बहुय, इउ कायर चिंतंति।
मुद्धि, निहाळइ गयण अळु, कइ उज्जोउ करंति॥४॥
रिद्धि-विहूणह माणुसह न कुणइ कुवि सम्माणु।
सउणि हि मुचहि फलरहिउ तरुवरु, इत्थु पमाणु॥५॥

(१०) उक्त सोमप्रभ सूरि की अपनी रचना—

कोसा भणइ महापुरिस तुहुँ कंबळु सोएसि।
जं दुल्लहु संजम्म खणु हारिस तं न मुणोसि॥१॥

गयण-मग्ग-संलग्ग लोल-कल्लोल परंपरु।
निकरु णुक्कउ नक्क चंक्क-चंकमण-दुहंकरु ॥
उच्छलंत-गुरु-पुच्छ-मच्छ रिंछोलि-निरंतरु।
विळसमाण जालाजडाल वडवानळ दुत्तरु ॥
आवत्त-टयायळु जळहि लहु गोपउ जिंव ते नित्थरहि।
नीसेस-वसण-गल-निद्दवणु पासनाहु जे संभरहि* ॥२॥

(११) प्रबंधचिंतामणि में उद्धृत मुंज की रचनाएँ—

मुंज भणइ, मुणालवइ, जुव्वण गयउ न झूरि।
जइ सक्कर सय खंड थिय, तोइ स मीठी चूरि ॥१॥
झाली तुट्टी किं न मुउ, किं न हुयउ छरपुंज।
हिंडइ दोरी-बंधियउ, जिम मक्कड़, तिम मुंज ॥२॥
भोळी मुंध, म गव्वु करि पिक्खिवि पंडुगुपाँइ।
चउदसइ सइँ छहुत्तरइँ मुंजह गयह हयाइँ ॥३॥
जा मति पच्छइ संपजइ, सा मति पहिली होइ।
मुंज भणइ, मुणालवइ, विघन न वेढइ कोइ ॥४॥
सायर खाई, लंक गढ, गढवइ दससिरि राउ।
भग्गक्खय सो भज्जि गय, मुंज, म करे विसाउ ॥५॥
बाह विछोडवि जाहि तुहुँ, हउँ तेवइँ को दोसु।
हिययट्ठिय जइ नीसरइ जाणउँ, मुंज, सरोसु ॥६॥
मुंज, खडल्ला दोरडी पेक्खेसि न, गंमारि।
आसाढिइ घण गज्जीइँ, चिक्खिलि होसे वारि ॥

(१२) प्रबंधचिंतामणि में उद्धृत अन्य दूहे—

नव नळ भरीया मग्गडा, गयणि धडक्कइ मेह।
इत्थंतरि जइ आविसिइ, तउ जाणिस्सिइ नेह ॥
राणा सव्वे वाणिआ, जेसळ वड्डुउ सेठि।
काहूँ वणिजडु माँडियउ अम्मीणा गढ हेठि ॥
तइँ, गडुआ गिरनार, काहूँ मणि मत्सरु धरिउ।
मारीताँ खेंगार एक्कउ सिहरु न ढाळिउँ ॥

* इस रचना में उत्तरकालीन डिंगळ भाषा का पूर्वाभास मिलता है।

जइ यहु रावण जाइयउ, दहमुह इक्कु सरीरु ।
जणणि वियंभी चिंतवइ, कवणु पियावउ खीरु ॥

(१३) महाकवि विद्यापति-रचित कीर्त्तिलता (समय १४३७ के आसपास)—

सक्कय-वाणी बहुअ न भावइ । पाउँअ-रस को मम्म न पावइ ॥
देसिल वअना सब जन मिट्ठा । तं तैसन जंपओ अवहट्ठा ॥ १ ॥

ठाकुर ठक भए गेल, चोरें चप्परि घर लिज्झिअ ।
दास गोसाञिन गहिअ, धम्म गए धंध निमज्जिय ॥
खले सज्जन परिभविअ, कोइ नहिं होइ विचारक ।
जाति अजाति विवाह अधम उत्तमकाँ पारक ॥
अक्खर-रस-बुज्झनिहार नहि, कइकुल भमि भिक्खारि भउँ ।
तिरहुत्ति तिरोहित सब्ब गुण रा गणेस जवे सग्ग गउँ ॥२॥

जो अपमाने दुक्ख न मानइ । दान-खग्गको मम्म न जानइ ।
पर-उअँआरे धम्म न जोवइ । सो धण्णो निच्चिते सोवइ ॥३॥
पुव्वे सेना सज्जिअइ, पच्छिम हुअउँ पयान ।
आण करइते आण भउँ, विहिचरित्त को जान ॥४॥
गिरि टरइ, महि पडइ, नाग मन कंपिया ।
तरणि-रथ गगनपथ धूलि भरे झंपिया ॥
तबल सत वाज, कत भेरि भरे फुक्किआ ।
* प्रलय घण सद्द हुअ णर-रव लुक्किआ ॥५॥

(४) राजस्थानी का विकास

राजस्थानी के विकास-काल को चार भागों में बाँटा जा सकता है—(१) प्राचीन राजस्थानी—संवत् १००० से १२०० तक, (२) माध्यमिक राजस्थानी—संवत् १२०० से १६०० तक, (३) उत्तरकालीन राजस्थानी—संवत् १६०० से १९५० तक, (४) आधुनिक राजस्थानी—संवत् १९५० से आगे ।

---

* कीर्त्तिलता की भाषा कहीं-कहीं तो परिवर्त्तन-काल की पुरानी हिंदी से आगे बढ़कर बिलकुल माध्यमिक हिंदी हो गई है ।

क—प्राचीन राजस्थानी

प्राचीन राजस्थानी का नाम हमने ऊपर लोक-भाषा लिखा है। उस समय लोक-भाषा थोड़े-बहुत रूपांतर के साथ समस्त उत्तर भारत में प्रचलित थी। राजस्थान, गुजरात एवं व्रज प्रांतों में लोक-भाषा का जो रूप प्रचलित था वही प्राचीन राजस्थानी है। इस काल में राजस्थानी अपभ्रंश से अलग हुई पर अपभ्रंश का प्रभाव उस पर पर्याप्त था। इस प्राचीन राजस्थानी के कुछ उदाहरण हम ऊपर दे चुके हैं।

ख—माध्यमिक राजस्थानी

माध्यमिक राजस्थानी का काल संवत् १२०० से १६०० तक माना जा सकता है। इसमें राजस्थानी अपभ्रंश से स्वतंत्र भाषा हो गई। इस काल में भी (अंतिम डेढ़-दो शताब्दियाँ छोड़कर) राजस्थानी का क्षेत्र समस्त राजस्थान गुजरात एवं व्रज तथा उसके आसपास का प्रांत था। संभव है, बोलचाल की भाषा में कुछ अंतर रहा हो पर साहित्यिक भाषा इन प्रांतों में एक ही थी। यह बात इन प्रांतों की तत्कालीन रचनाओं पर ध्यान देने से स्वतः सिद्ध हो जाती है।

इस समय में लोक-भाषा का पूर्वी रूप पश्चिमी रूप से बहुत कुछ भिन्न हो गया था, जैसा मैथिल कवि विद्यापति की रचनाओं से प्रकट होता है*। पर फिर भी माध्यमिक राजस्थानी के रूप में पश्चिमी रूप साहित्य में प्रधानता प्राप्त किए रहा। अपभ्रंशकाल में भी साहित्य का प्रधान क्षेत्र पश्चिम ही था एवं इस उत्तरकाल में भी यही बात रही। पश्चिमी हिंदी के अधिकार-क्षेत्र से बाहर रहनेवाला कबीर जैसा कवि इस भाषा में रचना करता है, इससे बढ़कर इसकी जन-प्रियता का प्रमाण क्या हो सकता है। आगे चलकर इसी काल के अंत में जब व्रज राजस्थानी से पृथक् हुई तो उसने भी साहित्य में अपनी पैतृक प्रधानता को कायम रखा। उसकी रचनाओं का प्रचार ऐसे प्रदेशों में भी हुआ जहाँ सर्वथा भिन्न भाषाएँ बोली जाती हैं।

इस काल में लगभग कबीर के जमाने तक तो राजस्थानी प्रधानता प्राप्त किए रही पर उसके अंत में व्रज ने एकाएक उन्नत होकर उसको दबा दिया।

---

* पर उनकी कीर्त्तिलता की भाषा राजस्थानी या पश्चिमी हिंदी से किसी प्रकार भिन्न नहीं है केवल उस पर अपभ्रंश का कुछ विशेष प्रभाव लक्षित होता है पर वह विद्यापति के काल में बोलचाल की भाषा नहीं रह गई थी।

आरंभ में दोनों भाषाएँ एक ही थीं पर सूरदास एवं अन्यान्य वैष्णव कवियों ने जब अपना संगीत छेड़ा तो उन्होंने साहित्यिक भाषा को आदर न देकर ब्रज प्रांत की ठेठ बोलचाल की भाषा को अपनाया। अब तक साहित्यिक राजस्थानी में जो कविता हुई उसके रचयिता या तो चारण-भाट थे या जैन कवि या जनता में गाने-बजानेवाली ढोली-ढाढी आदि जातियाँ। संस्कृत से इन लोगों का संबंध नहीं के बराबर था पर वैष्णव कविजन संस्कृत के धुरंधर विद्वान् थे। उन पर संस्कृत का प्रभाव पड़ना अनिवार्य था। अतः उनकी रचनाओं में संस्कृत शब्द प्रचुरता से पाए जाते हैं। प्रचलित तद्भव शब्द भी बहुत कुछ तत्सम हो गए हैं। इसी तत्समता के कारण ब्रज तत्कालीन राजस्थानी से, जो अब तक साहित्यिक भाषा थी, भिन्न हो गई।

यही नहीं, राज्यस्थानी के महत्त्व को भी ब्रजभाषा ने बहुत कुछ नष्ट कर दिया और अब राजस्थानी केवल प्रांतीय भाषा-मात्र रह गई। वैष्णव कवियों की भक्ति-धारा ने ब्रज को एकाएक बहुत ऊँचा उठा दिया और न केवल ब्रज प्रांत में किंतु अन्यत्र भी उसका सम्मान होने लगा। इन कवियों की रचनाओं ने जनता के जीवन को बहुत प्रभावित किया और धीरे-धीरे साहित्य की प्रभुता राजस्थानी से छूटकर ब्रज को प्राप्त हुई। ब्रज हिंदी की समस्त शाखाओं में प्रधान हो बैठी और उसकी वह प्रधानता अब भी सर्वथा नष्ट नहीं हो पाई है।

इन वैष्णव कवियों की भक्ति-धारा ने राजस्थानी जनता को भी आकृष्ट किया। उसका प्रचार राजस्थान में भी खूब हुआ। सूर और तुलसी के भजन घर-घर गाए जाने लगे और आज भी गाए जाते हैं। हाँ, इतना अवश्य हुआ कि बहुत से भजनों की भाषा गाते-गाते राजस्थानी बन गई।

राजस्थानी में इस समय मुख्यतया तीन प्रकार की रचनाएँ होती थीं—

१—चारण-भाटों की वीर-रसपूर्ण कविता—आरंभ में ये लोकप्रिय हुईं परंतु अंत में जब वीरता के लिये अवकाश न रह गया तो ऐसी रचनाएँ धीरे-धीरे कम लोक-प्रिय होने लगीं। फिर इनके लेखक इनको एक बँधी हुई भाषा में, जो आगे चलकर डिंगळ कहलाई, लिखने लगे जिससे वे जनता के लिये धीरे-धीरे कम बोधगम्य होती गईं। अतएव ऐसी रचनाओं का समादर राजदरबारों तक ही सीमित रह गया।

२—जैन लेखकों की रचनाएँ—ये विशेषकर जैन-धर्म से संबंध रखती थीं अतएव साधारण जनता में इनका विशेष प्रचार नहीं हुआ।

३—लौकिक कविता—इसकी रचना करनेवाली या तो जनता स्वयं ही होती थी या ढोली-ढाढी-दमामी आदि लोग होते थे जिनका काम गाना-बजाना तथा लोक-प्रिय कविताओं और गीतों को जनता में गाकर सुनाना था। ऐसी कविताएँ बहुत लोक-प्रिय होती थीं तथा साक्षर एवं निरक्षर जनता में उनका खूब प्रचार होता था।

जब ब्रज की भक्ति-धारा प्रवाहित हुई तो जनता उधर आकर्षित हुई और अन्यान्य रचनाएँ उसके सामने दब गईं। साहित्यिकों पर भी उसका प्रभाव पड़ा। राजस्थान एवं गुजरात के लेखक भी ब्रज की ओर झुके और शुद्ध ब्रज में या ब्रजमिश्रित राजस्थानी में रचना करने लगे। इस नवीन भाषा का नाम पिंगळ पड़ा और आगे चलकर इसके साम्य पर चारणी कविता डिंगळ कहलाने लगी। बोलचाल की राजस्थानी की लौकिक रचनाएँ तथा जैनों की रचनाएँ न तो डिंगळ हैं और न पिंगळ। जिस समय ये नाम पड़े उस समय राजस्थान के साहित्यज्ञ विद्वानों के ध्यान में ये दो ही प्रकार की रचनाएँ थीं। जैन-रचनाएँ तो जैनों तक ही परिमित रहीं, बाहर उनकी पहुँच नहीं हुई। रहीं साधारण जनता की देहाती रचनाएँ, सो साहित्यिक विद्वान् उसे साहित्य ही क्यों मानने लगे? आज भी ग्रामीण कविता साहित्यज्ञों द्वारा साहित्य में परिगणित नहीं की जाती। तेजेरो गीत, डूँगजीजवारजीरो गीत आदि लोक-गीतों की ओर आज भी किस साहित्यिक की दृष्टि जाती है? यह तो गँवारों की कविता है! इस ढोला-मारू काव्य को ही न लीजिए। कितनी सुंदर रचना है पर किसी साक्षर राजस्थानी के आगे उसका नाम तो लीजिए। फिर देखिए, वह किस बुरी तरह नाक-भौं सिकोड़ता है। आपको गँवार समझे यह तो निश्चित ही है।

इस प्रकार ये दोनों प्रकार की रचनाएँ विद्वानोंसे दूर रहीं। बाकी रह गईं ब्रजभाषा की रचनाएँ या चारणों की कृतियाँ। इनके पिंगळ और डिंगळ नाम रखकर साहित्य के दो विभाग कर दिए गए। जो पिंगळ नहीं सो डिंगळ, जो डिंगळ नहीं सो पिंगळ।

परंतु हमें यहाँ बाकी दो प्रकार की राजस्थानी रचनाओंको भी नहीं भूलना चाहिए। हम समस्त राजस्थानी साहित्य को दो विभागों में बाँटेंगे—(१) डिंगळ, (२) साधारण राजस्थानी।

(१) डिंगळ का विकास उस राजस्थानी से हुआ जिसका प्रयोग चारण-भाट अधिकतया करते थे एवं जो विशेषतः वीर-रसात्मक होती थी।

शब्दोंके साधारण रूपों की अपेक्षा द्वित्त वर्णवाले रूपों का विशेष प्रयोग होता था। प्राचीन राजस्थानी में डिंगळ के बीज पाए जाते हैं।

आरंभ में साधारण राजस्थानी और डिंगळ में कोई अंतर न था पर बाद में जाकर डिंगळ स्थिर या Stereotyped हो गई। कवि लोग जान-बूझकर द्वित्त वर्णवाले शब्दों का प्रयोग करते थे और साधारण शब्दों की भी इस प्रकार कपाल-क्रिया होने लगी; साथ ही उनके कई शब्द भी बँध गए जिनका वे बारबार प्रयोग करते थे। बोल-चाल की राजस्थानी में ऐसे शब्दों का प्रयोग नहीं होता था या उठ गया था जिससे डिंगळ जनता के लिये धीरे धीरे कम बोधगम्य होती गई और अंत में उसका समझ लेना जरा टेढ़ी खीर हो गया। आरंभ में डिंगळ बोलचाल की राजस्थानी से नाम-मात्र की ही भिन्नता रखती थी पर अब तो यह सर्वथा भिन्न भाषा सी हो गई है। फिर राजस्थान में राजस्थानी साहित्य के अध्ययन का प्रबंध न होने से लोग इस कविता से सर्वथा पराङ्मुख हो गए हैं, यहाँ तक कि इनका अर्थ निकालनेवाले अब विरले ही मिलते हैं।

डिंगळ नाम बहुत पुराना नहीं है। जब ब्रजभाषा साहित्य-संपन्न होने लगी एवं सूरदास आदि ने उसको ऊँचा उठाकर हिंदी क्षेत्रमें सर्वोच्च आसन पर बिठा दिया तो उसकी मोहिनी राजस्थान पर भी पड़ी। राजस्थान की कविता पर ब्रज का प्रभाव पड़ने लगा, यहाँ तक कि बहुत से लोग ब्रज में रचना करने लगे। इस प्रकार ब्रज या ब्रज-मिश्रित भाषा में जो रचना हुई वह पिंगळ कहलाई। आगे चलकर उसके नाम-साम्य पर पिंगळ से भिन्न अर्थात् चारण-भाटों की वीररसात्मक) रचना डिंगळ कहलाने लगी।

(२) साधारण राजस्थानी में हम बोलचाल की राजस्थानी की रचनाओं, जैन-लेखकों की रचनाओं तथा ब्रज-मिश्रित पिंगळ की रचनाओं को स्थान देंगे।

प्राचीन और माध्यमिक राजस्थानी की अधिकांश रचनाएँ जैन-लेखकों की कृतियाँ हैं। राजस्थानी साहित्य-निर्माण का श्रेय अधिकांश में इन्हीं लेखकों को देना चाहिए। अवश्य ही इनकी भाषा पर प्राकृत और अपभ्रंश का पूर्ण प्रभाव है, फिर भी तत्कालीन भाषा के अध्ययन के लिये इन्ही की कृतियाँ सबसे अधिक उपकारक हो सकती हैं। पिंगळ-रचनाओं और लौकिक कविता की भाषा, उनके जनता में प्रचलित होने के कारण, धीरे-धीरे आधु-

निक होती गई है; डिंगळ कविता की भाषा आगे चलकर स्थिर हो गई परंतु जैन रचनाएँ इन दोषों से बहुत कुछ मुक्त हैं। इनमें भाषा का तत्कालीन रूप बहुत कुछ सुरक्षित है। यह साहित्य बहुत विस्तृत है पर अप्रकाशित है।

माध्यमिक राजस्थानी की वर्त्तनी अपभ्रंश से मिलती हुई थी। उसमें ह्रस्व ए और ओ वर्त्तमान थे जो आधुनिक राजस्थानीमें भी पाए जाते हैं। ए और औ अइ और अउ के रूप में लिखे जाते थे*। जैसे—

भरइ पळट्टइ भी भरइ भी भरि भी पळटेहि।
ढाढी हाथ सँदेसड़उ धण विल्लंती देहि॥

—ढोला-मारूरा दूहा

तउ पाछइ सु बालकु जातमात्रु हूँतउ प्रसिद्धउ हुयउ।

—तरुणप्रभ सूरि (सं० १४११)

पछइ राजा आपणपइँ रात्रिइँ नीलउ पटउळउ पहिरी...फिरतउ चोर जोतउ एकइ स्थानकि जइ सूतउ॥

—सोमसुंदर सूरि (सं० १४५७—६६)

एकि घोडे चडइँ, एकि ऊतावळा पड़इँ।
कायर रडइँ, सुभट भिडइँ, योध जुडइँ॥

— पृथ्वीचंद्र चरित्र (सं० १४७८)

अलीक वचन म बोलिसि, बाली, तात अम्हारउ लाजइ।
सूरापणइ सूर ते माँटी जे रणि साहमु गाजइ॥

सीताहरण (१५२६)

ढमढमइ ढमढमाकर ढ्ंकर ढोल ढोली जंगिया।
सुर करहि रणसरणाइ समुहरि सरस रसि समरंगिया॥
कलकलहि काहल कोडि कलरवि कुमळ कायर थरथरइ।
संचरइ शकसुरताण साहण साहसी सवि संगरइ॥

—रणमल्ल-छंद (सं० १४५५ के लगभग)

सखी, दीह दुख अनीठउँ, दीठउँ गमइ न चीर।
भोजन आज उछीठउँ, मीठउँ सदइ न नीर॥

—वसंतविलास (सं० १५०८ के पूर्व)

* अपभ्रंश के अइ और अउ उत्तरकालीन राजस्थानी में ऐ और औ बन गए।

बहुरउ बयरी वल्लहउ हियइ खटक्कइ तिण्णि।
वीसारताँ न वीसरइ वसताँ ऊवसि रन्नि॥

प्रबोध-चिंतामणि (सं० १४६२ के लगभग)

माधव दिन-प्रति जोवइ बाट, अपछर नावइ मन्न उचाट।
एक दिवस आवीनइँ मिळी, बिहुँ जननी मन पूगी रळी॥

—माधवा नळ कामकुंदळा चौपाई (सं० १६१५ के लगभग)

राठउड़ वीक कुण करइ रीस, छेहड़ा छड़ मांडइ छत्रीस।
मइगळाँ नीर पायउ मसट्टि, खेड़ेचउ आयउ जइत खट्टि॥

—छंद राउ जइतसीरउ (सं० १५६० के लगभग)

माध्यमिक राजस्थानी में कर्त्ता, कर्म, करण, अधिकरण आदि कारकों को सूचित करने के लिये शब्दों में तथा पूर्वकालिक क्रिया में, अंत में, इ या ए अक्षर रहता था। आधुनिक राजस्थानी में यह इ सर्वत्र लुप्त हो चुकी है (केवल घरे शब्द में प्राचीन ए वर्त्तमान है)। सब कारकों का एक सा रूप होने से भ्रम होता था जिसको बचाने के लिये नवीन शब्दों द्वारा कारक सूचित करने का प्रयत्न अपभ्रंशकाल में ही आरंभ हो चुका था। आधुनिक राजस्थानी में तो ये नए शब्द भी घिसकर केवल मात्र रह गए हैं।

ग—उत्तरकालीन राजस्थानी

उत्तरकालीन राजस्थानी भी साहित्य की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। डिंगळ, पिंगळ और बोलचाल की राजस्थानी में इस काल में खूब साहित्य-रचना हुई और इन रचनाओं का खूब प्रचार हुआ।

इस काल की मुख्य विशेषता गद्य-रचना है। माध्यमिक काल में भी बहुत कुछ गद्य लिखा गया होगा पर जैन-रचनाओं को छोड़कर अन्य गद्य-रचनाएँ बहुत ही कम बचने पाई हैं परंतु इस काल की रचनाएँ प्रचुरता से प्राप्त होती हैं। इनमें सबसे महत्त्वपूर्ण ख्यातें हैं। प्रत्येक राजपूत राज्य अपने यहाँ की ख्यात बराबर लिखाता था जिसमें उस समय की ऐतिहासिक घटनाओं का पूरा वर्णन किया जाता था। राजस्थान के इतिहास-निर्माण में इनसे बड़ी सहायता मिल सकती है पर खेद है कि इनकी ओर विद्वानों एवं प्रकाशकों का ध्यान अभी तक नहीं गया।

ख्यातों के अतिरिक्त वात-साहित्य भी महत्त्व-पूर्ण है। वात राजस्थानी में कहानी को कहते हैं। यह साहित्य बहुत विस्तृत है और इन वात का संग्रह किया जाय तो कई कथा-सरित्सागर और सहस्ररजनी-चरित्र बन सकते हैं।

डिंगळ-रचनाओं में गीत महत्त्वपूर्ण हैं। इन गीतों में राजाओं एवं अन्य वीरों के वीर-कार्यों तथा गुणों का उल्लेख होता था एवं उनकी प्रशंसा होती थी। इनसे साधारण छोटी-मोटी और महत्त्वपूर्ण सभी प्रकार की ऐतिहासिक बातों एवं घटनाओं पर बड़ा प्रकाश पड़ सकता है। ये गीत हजारों की संख्या में उपलब्ध होते हैं। आवश्यकता है इनको उचित रूप से संगृहीत, संपादित और प्रकाशित करने की। राजाओं के दरबारों में रहने-वाले चारण-भाटों ने अपने आश्रयदाताओं की प्रशंसा में या उनके नाम पर बहुत से ग्रंथों की इस काल में रचना की। राजा लोग भी कभी-कभी काव्य-रचना करते रहे हैं। इस काल की डिंगळ रचनाओं में सबसे अधिक प्रसिद्ध एवं महत्त्व-पूर्ण बीकानेर के सुप्रसिद्ध राठोड़ महाराज पृथ्वीराज की 'क्रिसन-रुकमणीरी वेलि' और मिश्रण चारण सूर्यमल्ल-रचित 'वंश-भास्कर' हैं। वेलि साहित्यिक डिंगळ का सर्वोत्तम उदाहरण है। इस काव्य की, राजस्थानी में, कई टीकाएँ हुईं। यही नहीं, राजस्थानी में यही एक ऐसा ग्रंथ है जिसे संस्कृत में टीका होने का भी सौभाग्य प्राप्त हुआ है। वंशभास्कर पृथ्वीराज-रासो का बड़ा भाई है। कृत्रिम डिंगळ का वह चरम उदाहरण है। अन्य डिंगळ रचनाओं में वचनिका राठोड़ रतन-सिंहजीरी विशेष प्रसिद्ध है।

पिंगळ-साहित्य में भी अच्छी रचनाएँ हुईं एवं वे लोक-प्रिय भी खूब रहीं। पिंगळ-साहित्य के लेखक मुख्यतया संत कवि हैं। इनमें बाबा हरिदास दयालजी, दादू दयाल, चंद्रसखी, बखतावर आदि कवि महत्त्वपूर्ण हैं। चंद्रसखी और बखतावर बड़े ही भावुक कवि थे एवं इनकी रचना का माधुर्य अपूर्व है। सूर और तुलसी के पद भी राजस्थानी रूप धारण करके जनता में खूब फैल गए।

शुद्ध व्रज के भी कई कवि इस काल में हुए। बिहारीलाल ने जयपुरनरेश के आश्रय में बिहारी-सतसई लिखी। मतिराम और पद्माकर हिंदी के प्रथम श्रेणी के कवि समझे जाते हैं।

बोलचाल की राजस्थानी में जो लोक-प्रिय रचनाएँ इस काल में हुईं उनमें दो बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। एक का नाम रुकमणीमंगळ है जिसे पद्म

भक्त नामक कवि ने सत्रहवीं शताब्दी में बनाया था। इसकी शैली बड़ी सुंदर, सरस, सरल और घरेलू है। वर्णन बड़े ही सजीव हैं। दूसरे का नाम मेहता नरसीजीरो मायेरो है। इसका रचयिता एक लकड़हारा था। इसमें गुजरात के प्रसिद्ध भक्त नरसी मेहता की पुत्री नानीबाई की और नरसी मेहता के भात भरने की कथा का बड़ा ही रोचक वर्णन है। जनता में इनका बहुत प्रचार है और लोग रात्रि को एकत्र होकर इनकी सुंदर कथाओं को गायकों के मुँह से सुनते और आनंद-लाभ करते हैं। गाते-गाते इनकी भाषा अवश्य ही बहुत कुछ आधुनिक हो गई है।

बोलचाल की भाषा में भी अनेक लोक-गीत ·ballads बने जिनमें तेजेरो गीत और डूँगजी-जवारजीरो गीत आज भी लोगों के कंठहार हो रहे हैं। इन गीतों को गाकर सुनानेवाली एक अलग जाति ही हो गई है।

बोलचाल की राजस्थानी के साहित्य का एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण अंग दूहा-साहित्य है। कबीर आदि भक्त कवियों की साखियों का तो खूब प्रचार हुआ ही किंतु इस काल में राजिया, भैरिया, किसनिया, बीँजरा, नाथिया, नोपला, जेठवा, नागजी* आदि के दूहे बने जिनका राजस्थानी जनता में खूब प्रचार है†।

खेद है कि राजस्थानी का यह विस्तृत साहित्य अभी तक अंधकारमें पड़ा है और राजस्थानी विद्वानों का ध्यान इसके संपादन एवं प्रकाशन की ओर अभी तक नहीं गया।

घ—आधुनिक राजस्थानी

अब हम आधुनिक राजस्थानी काल की ओर आते हैं। इस समय राजस्थानी का गौरव-सूर्य अस्त हो चुका है। अब राजस्थानी केवल बोलचाल की भाषा रह गई है। राजदरबारों में अब तक फारसी की तूती बोलती थी,

*इनमें से कुछ स्वयं कवि थे और कुछ के नाम के दूहे उनको संबोधन करके दूसरों द्वारा लिखे गए।

†इन दूहों का एक सुंदर बृहत् संग्रह 'राजस्थानरा दूहा' नाम से इस ग्रंथ के अन्यतम संपादक नरोत्तमदास स्वामी, एम० ए० द्वारा संपादित होकर पिलाणी-राजस्थानी-ग्रंथमाला में प्रकाशित हुआ है। प्रस्तावना में राजस्थानी भाषा और साहित्य का परिचय भी दिया गया है।

अब उर्दू का राज्य है। एकाध राज्य में हिंदी को स्थान मिला है पर नाममात्र को। स्कूलों में हिंदी-उर्दू पढ़ाई जाती है। राजस्थानी और उसका साहित्य दिनों दिन विस्मृति के गर्त्त में जा रहा है। सौ-पौन सौ वर्ष पहले हिंदी जिस प्रकार गँवारू बोली समझी जाती थी वही हालत आज राजस्थानी की होने लगी है। 'हम-तुम' में जो शान समझी जाती है वह 'म्हे-थे' में नहीं।

आधुनिक राजस्थानी के सबसे बड़े लेखक शिवचंद्र भरतिया हैं। आपने अनेक उपयोगी गद्य-पद्यात्मक पुस्तकें लिखीं। आपकी शैली बड़ी ही सरल एवं स्वाभाविक है। आपने राजस्थानी में नवीन ढंग के नाटक तथा उपन्यासों का सूत्रपात किया और साहित्य में वर्त्तमान जगत् के भावों को भरने का प्रयत्न किया। एक दूसरे लेखक श्रीयुत् कचरदास कलंत्री हैं जिन्होंने दक्षिण भारत से पंचराज नामक एक बड़ा ही सुंदर मासिक पत्र राजस्थानी में निकाला था। राजस्थानी में ऐसा उपयोगी, महत्त्वपूर्ण और साहित्यिक पत्र दूसरा नहीं निकला*।

खेद की बात है कि राजस्थानी लोग अपनी मातृभाषा और उसके साहित्य की ओर से सर्वथा विमुख हो गए हैं। अपने साहित्य का उन्हें ज्ञान ही नहीं, उसके महत्त्व को समझें तो क्यों कर समझें? मातृभाषा का अनादर ही हमारी निर्जीवता का कारण है। जाति की जीवनी-शक्ति उसकी भाषा है। यदि राजस्थानी भाषा नष्ट हो गई तो राजस्थानी जाति और राजस्थानी गौरव नष्ट हो गया—इसमें तनिक भी संदेह नहीं। कब तक हम अपने साहित्यिकों और लेखकों की उपेक्षा करते रहेंगे?

(५) ढोला-मारू की भाषा

'ढोला-मारूरा दूहा' काव्य की भाषा माध्यमिक राजस्थानी है जो तेरहवीं शताब्दी से पंद्रहवीं-सोलहवीं शताब्दी तक पश्चिम भारत की प्रधान भाषा थी। यह अनुमान होता है कि उस काल में इस भाषा का समादर साहित्य-रचना में खूब था और यह पश्चिम भारत की सर्व-प्रमुख साहित्यिक भाषा थी। कबीर जैसे कवि की, जो इस प्रदेश के बाहर पूर्वी हिंदी के क्षेत्र का निवासी

---

*डिंगल भाषा और साहित्य तथा व्याकरण के विस्तृत परिचय के लिये इसी लेखक द्वारा लिखित राव जइतसीरउ छंद नामक ग्रंथ की प्रस्तावना देखिए।

था, भाषा का राजस्थानी होना यही सिद्ध करता है कि उस काल में उत्तर भारत की भाषाओं में इसका स्थान बहुत महत्त्वपूर्ण था और इसका प्रचार भी सबसे अधिक था जिसके कारण कबीर जैसे कवि की कविता, जो सर्व-साधारण के लिये लिखी गई थी, इसी में लिखी गई। परंतु यहाँ पर यह न भूलना चाहिए कि उस समय राजस्थान एवं ब्रजभूमि की भाषा एक थी और इस भाषा को ब्रजभाषा भी वैसे ही कहा जा सकता है जैसे कि राजस्थानी। अवश्य ही जो साहित्यिक ब्रजभाषा बाद में विकसित हुई वह संस्कृत के प्रभाव के कारण इस राजस्थानी ब्रज से काफी दूर थी। इसके कारण कबीर की भाषा आज जितनी राजस्थानी जान पड़ती है उतनी ब्रजभाषा नहीं जान पड़ती। आधुनिक राजस्थानी कबीर की इस भाषा से इतनी मिलती है कि राजस्थानियों को कबीर की भाषा समझने में ब्रजभाषा-भाषियों और पूर्वी हिंदी बोलनेवालों की अपेक्षा बहुत कम कठिनाई पड़ती है। जो कुछ कठिनाई पड़ती है वह इसी कारण कि कबीर की कविता आज से कोई चार-साढ़े चार सौ वर्ष पूर्व लिखी गई थी।

इसके अतिरिक्त उस काल में इस माध्यमिक राजस्थानी के उत्तर भारत की साहित्यिक भाषा होने का दूसरा प्रमाण यह है कि जायसी की रचनाओं में अनेक ऐसे शब्द और वाक्यांश पाए जाते हैं जो उस काल की राजस्थानी में मिलते हैं एवं आज भी राजस्थान में समझे जाते हैं लेकिन जो बाद की ब्रजभाषा के लिये, जो अवधी एवं राजस्थानी की मध्यवर्त्ती भाषा है, सर्वथा नवीन हैं।

विषयांतर होने पर भी हम यहाँ पर यह कहने का साहस करते हैं कि कबीर की भाषा राजस्थानी है एवं कबीर को वैसा ही राजस्थानी का कवि कहा जा सकता है जैसा कि ढोला-मारू काव्य के कर्त्ता को।

यह कहा जा सकता है कि कबीर की भाषा वास्तव में ऐसी नहीं थी जैसी कि बाद की हस्तलिखित प्रतियों में मिलती है तथा तुलसी एवं सूर के पदों की भाँति वह भी बाद में राजस्थानी बना ली गई है। परंतु कबीर की हस्तलिखित प्रति, जो नागरी-प्रचारिणी सभा को मिली है एवं जिसके आधार पर कबीर-ग्रंथावली का संपादन आचार्य श्यामसुंदरदास ने किया है, कबीर के समय के बहुत बाद की नहीं है। कबीर-ग्रंथावली के संपादक तो उसे कबीर के जीवन-काल की ही मानते हैं।

अतः उसमें और कबीर की भाषा में विशेष अंतर होने की संभावना नहीं। फिर यह भी ध्यान मे रहना चाहिए कि यह प्रति काशी में लिखी गई थी। यदि लेखक द्वारा परिवर्तन होता भी तो उलटा होता यानी राजस्थानी पूर्वी हिंदी में परिवर्तित होती, न कि पूर्वी हिंदी राजस्थानी में। पद गाने की चीज होते हैं। उनमें परिवर्तन संभव है, जैसा संभवतः हुआ भी है; परंतु साखियाँ तो (बहुत थोड़े अपवाद के साथ) पुस्तकों की चीज हैं जो पुस्तकों में ही लिखी रहती हैं। अतः उनमें इतना शीघ्र ऐसा परिवर्तन हो जाना कि भाषा ठेठ राजस्थानी हो जाय संभव नहीं।

ढोला-मारू काव्य की भाषा कबीर की भाषा से बहुत अधिक मिलती है। अनेक शब्द, वाक्यांश और वाक्य तो ज्यों-के-त्यों मिलते हैं। भाव-साम्य तथा भाषा-साम्य कहीं-कहीं इतना अधिक है कि यह प्रतीत होने लगता है कि अवश्य ही एक का दूसरे पर प्रभाव पड़ा है।

अब नीचे हम कतिपय समानतावाले पद्यों को उद्धृत करके अपने कथन को स्पष्ट करेंगे*--

(१) कबीर--अंबर कुंजाँ कुरलियाँ गरजि भरे सब ताल।
जिनिपै गोब्यँद बीछुटे तिनके कौण हवाल॥ ३॥ १॥

ढोला--राति जु सारस कुरळिया गुंजि रहे सब ताल।
जिणकी जोड़ी बीछड़ी तिणका कवण हवाल॥५३॥

(२) कबीर--यहु तन जालौं मसि करौं ज्यूँ धूँवा जाइ सरग्गि।
मति वै राम दया करै बरसि बुझावै अग्गि॥ ३। ११॥

कबीर--यहु तन जालौं मसि करौं लिखौं राम का नाउँ॥३।१२॥

ढोला--यहु तन जारी मसि करूँ, धूँआ जाहि सरग्गि।
मुझ प्रिय बद्दळ होइ करि बरसि बुझावइ अग्गि॥१८१॥

(३) कबीर--कबीर सुपनैं रैनिकै पारस जीयमैं छेक।
जे सोऊँ तो दोइ जणा जे जागूँ तौ एक॥ १२। २३॥

ढोला--सुहिणा, तोहि मराविसूँ, हियइ दिराऊँ छेक।
जद सोऊँ तद दोइ जण, जद जागूँ तद हेक॥५१४॥

* कबीर के उदाहरण आचार्य श्यामसुंदरदास द्वारा संपादित और काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित 'कबीर-ग्रंथावली' के प्रथम संस्करण से लिए गए हैं।

साखियों में पहला अंक अंग को और दूसरा साखी को सूचित करता है। पदों में अंक पद-संख्या का सूचक है। प० = परिशिष्ट।

(४) कबीर—संसै खाया सकल जुग संसा किनहूँ न खद्ध ॥१।२२॥
जे बेधे गुरु अष्पिराँ तिनि संसा चुणि-चुणि खद्ध ॥१।२२॥

ढोला—चिंता बंध्यउ सयळ जग, चिंता किणहि न बध्ध ।
जे नर चिंता वस करइ, ते माणस नहिं सिद्ध ॥ २२० ॥

(५) कबीर—काटीकूटी मछली छींकै धरी चहोड़ि ।
कोइ एक अषिरमनवस्या दहमैं पड़ी बहोड़ि ॥१३।२४॥

ढोला—तालि चरंती कुंझड़ी सर संधियउ गँमारि ।
कोइक आखर मनि वस्यउ, ऊडी पंख सँमारि ॥ ६७ ॥

(६) कबीर—जांणौं जे हरि कौं भजौं मों मनि मोटी आस ॥ १६।५॥
ढोला—सुणि ढोला, करहउ कहइ मो मनि मोटी आस ॥४३१॥

(७) कबीर—कबीर गुग का बादली तीतरबानीं छाँहि ।
बाहरि रहे ते ऊबरे, भीगे मंदिर माँहि ॥ १६ । २३

कबीर—मंदिर पैसि चहूँ दिसि भीगे, बाहरि रहे ते सूका । (पद१७१)
ढोला—आज धरा-दस ऊनम्यउ महलाँ ऊपर मेह ।
बाहर थाजइ ऊगरइ; भीगा मांझ घरेह ॥ २७२ ॥

(८) कबीर—कमोदनी जलहरि बसै, चंदा बसै अकास ।
जो जाही का भावता, सो ताही के पास ॥ ४४ । १ ॥

ढोला—जळमँहि वसइ कमोदणी, चंदउ वसइ अगासि ।
ज्यउ ज्याँहीकइ मनि वसइ, सउ त्याँहीकइ पासि ॥२०१

(९) कबीर—कबीर, सुपिनैं हरि मिल्या, सूताँ लिया जगाइ ।
आँषि न मींचौं डरपता, मति सुपिनाँ ह्वै जाइ ॥५०।६॥

ढोला—सुपनइ प्रीतम मुझ मिळया, हूँ गळि लग्गी धाइ ।
डरपत पलक न छोडहीं, मति सुपिनउ हुइ जाइ ॥५०३॥

ढोला—सुपनइ प्रीतम मुझ मिळया, हूँ लागी गळि रोइ ।
डरपत पलक न खोलहीं, मतिहि विछोहउ होइ ॥५०२॥

(१०) कबीर—कबीर हरि का डरपताँ ऊन्हाँ धान न खाँउँ ।
हिरदा भीतरि हरि बसै ताथै खरा डराउँ ॥ (ख ५०।७)

कबीर—गोब्यँद के गुण बहुत हैं लिखे जु हिरदै माँहिं ।
डरता पाँणी नां पीऊँ मति वै धोये जाँहिं ॥५०।७॥

ढोला—प्रीतम, तोरइ कारणइ ताता भात न खाइ।
हियड़ा भीतर प्री बसइ दाझणती डरपाहि ॥ १६० ॥

(११) कबीर—ऊँनमि आई बादली, बरसण लगे अंगार ॥ ५।१।२ ॥
ढोला—ऊँनमि आई बद्दळी, ढोलउ आयउ चित्त ॥ ४१ ॥

(१२) कबीर—चुगै चितारै भी चुगै चुगि-चुगि चितारै।
जैसे बच रहि कुंज मन माया ममतारे ॥ (प) ५० ॥
ढोला—चुगइ, चितारइ, भी चुगइ, चुगि चुगि चित्तारेह।
कुरझी बच्चा मेल्हिकइ, दूरि थकां पाळेह ॥२०२॥

(१३) कबीर—जे दिन गये भगति बिन ते दिन सालै मोहि।
ढोला—जे दिन मारू विग गया, दई न ग्यँन गिणंत ॥२०८॥

(१४) कबीर—अकथ कहाणी प्रेम की कह्याँ न को पत्याय ॥४१।११॥
कबीर—अकथ कहाँणीं प्रेम की कछू कही ना जाई।
गूँगा केरी सरकरा बैठे मुसकाई ॥ १५६ ॥
ढोला—अकथ कहाणी प्रेम की किणसूँ कही न जाइ।
गूँगा का सुपना भया, सुमर सुमर पिछताइ ॥१५६॥

अब कतिपय राजस्थानी शब्दों को देखिए जिनका प्रयोग कबीर और ढोला-मारू काव्य में हुआ है—

कबीर	ढोला-मारू
१ जतन करत पतन है जैहे भावैं जाण म जाणी। ३५७	१ हियड़इ भीतरि तूँ वसइ, भावइँ जाँण म जाँण। १७५
२ काया मंजन क्या करै कप्पड़ धोइ म धोइ।१२।५३	२ जण-जण साथ म बोलही मारू बहुत गुणेह। ४८२
३ साधैं सिधि ऐसी पाइये किंवा होइ म होइ। ५	३ भरम म दाखिस कोइ। ४६७
४ एक ज्योति एका मिली किंवा होइ म होइ। ३१ परि०	४ रागाँ देह म चूरि। ४६२ म करि पराई बात। ६१६
५ रहु, रे संख, म झूरि। ३।४४	५ चरि, चरि, म चरि, म झूरि। ४३४
६ रहि रहि, हिया, म खीजि। ५५।७ टि०	६ हइ, हइ, दइव, म मारि। ४८ रहि,-रहि, सुंदरि, माठ करि ३२१

७ उलट **अपूठा** आँणि । १३।१	७ राज, **अपूठा** वाहुड़उ । ४०४
८ यहु संसार धार मैं डूबै **अधफर** थाकि रहै है । ३१० भौ-जल **अधफर** थाकि रहे हैं । ३१८	८ आडावळ **आधोफरै** मारग माहि असन्न । ४१६
९ दीपक पावक **आँणिया** तेल भी **आँण्या** संग ।४।१ गाडर **आँणी** ऊनकूँ । १७।३	९ मोती **आँण्या** जेण । ५७३ कर ग्रह **आँणी** अंक मइँ । ५४४
१० कूड़े **आखै** बैन । ४३।१० सब दुख **आखौं** रोइ ५४।९	१० मारूनूँ **आखइ** सखी । २४
११ **आइ पहुंता कीर** ।४६। १६ टि०	११ **आइ पुहत्तउ कीर** । ४००
१२ यहु मन **आमन-धूमनाँ** । ३०२	१२ अंतरि **आमण-दूमणा** । २१८
१३ यहु संसार **इसौ** रे प्राँणी । ३१३	१३ **इसइ** आरखइ मारुवी । १४
१४ **उहाँ ही तैं** गिरि पड़या । १३।२५	१४ हियड़उ **उवाँही सूँ** गयउ । ३६२
१५ माटी खोदइ भींत **उसारै** । ६२ ६२	१५ दीहे-दीह **उस्सारियाँ** । ५२५
१६ ग्वाड़ा माँहे आनँद **उपनौ** । १५२ सचु पाया सुख **ऊपना** ५।२६	१६ मारू-देस **उपन्नियाँ** । ४८३-८४
१७ कहत कबीर मोहि भगति **उमाहा** । २७१	१७ आज **उमाहउ** मो घणउ । ५१८
१८ विरहिनि ऊभी **पंथसिरि** । ३।५	१८ ढोलउ पूगळ **पंथ-सिरि** । ४२३
१९ पंथी **ऊभा पंथ-सिरि** । ४६।२२	१९ **ऊभउ** साहइ लाज । ४४६
२० **ऊँडा** बहै असोस । ५७।३	२० **ऊँडा** पाणी कोहरइ । ५२१

२१ तिणकै **औल्है** राँम है । ५३।७

२२ **अँखड़ियाँ** झाँई पड़ी । ३।२२

२३ लेखणि करूँ **करंक** की । ३।१२

२४ जिहि सरि मारी **काल्हि** । ३।१७

२५ करँम भए **कुहाड़ि** । १२ ४४

२६ तनसूँ **किसा** सनेह । २६।५

२७ द्वै थर चढि गयो रांडको **करहा** । ७६
आँब कै बौरे चरहल **करहल** । १७७

२८ निर्मळ नाँव **चवै**, जस बोलै । ३४४

२९ **जम राँणौ** गड़ मेळिसी । १२।७

३० जगत **ढँढोळथा** वादि । ५।३३
सायर माँहि **ढँढोळता** । ५।३४

३१ दिवस **थकाँ** साईं मिलै । ७३।१३

३२ कबीर तुरी **पलाँणिया** । १३।१३

३३ **दोवड़** कोट अरु **तेवड़** खाई । ३५६

३४ **रात्यूँ रूँनी** विरहिनी । ३।१

२१ उर **ओलइ** प्री राखियइ । २८७

२२ **आँखड़ियाँ** डंबर हुई । १६५

२३ मारू-तणइ **करंकड़इ** । १५७

२४ जेहा सज्जण **काल्ह** था । २१६

२५ कंधि **कुहाड़उ** सिरि घड़उ । ६५८

२६ लाभ **किसाकउ** लेसि । १७७

२७ **करहा**, कहि कासूँ करॉं । ४४५
काळी जाया **करहला** । ४९१

२८ सुणि सुंदरि सच्चउ **चवाँ** । २३८

२९ आय **जमराणाँ** साद करि । ६१० थ

३० ढोलइ धण **ढंढोळियउ** । ६०२
भसम **ढँढोलिसि** काइ । ११२

३१ दूरि **थकाँ** ही सज्जणा । २१४

३२ ढोलइ करह **पलाणियाँ** । ३६२

३३ दूजा **दोवड़-चोवड़ा** । ३०६

३४ **रात्यूँ रूँनी** निसह भरिहि । १५६

३५ रळि गया आटै लूँण १।१४	३५ थे बिहुँ सज्जण **रळि** मिलउ । ३१८
३६ फाड़ि **पुटोला** धज करूँ । ३।४१	३६ **पट्टोळा** पहिरेसि । **२३३**
३७ देवलि देवलि **धाहड़ी** । ३।४४	३७ तिणि चढ़ि मूकूँ **धाहड़ी** । ३८६
३८ दाधी देह न **पालवै** । ४।६	३८ सूका था सू **पाल्हव्या** । ५३३।५६०
३९ **मुखि कसतूरी महमही** । ५।१४	३९ मारवणी **मुखि ससि-तणइ कसतूरी महकाइ** । ६००
४० चंद **बिहूँणाँ** चाँनिणा । ५।१५	४० जलह **विहूणी** वेल । १६३
४१ डूँगरि **वूटा** मेह ज्यूँ । १३।२२ सूका काठ न जाणहीं कबहूँ **वूटा** मेह । ५५।१	४१ दूधे **वूटा मेह** । ५५६ नयणे वूटउ नीर । १६
४२ ज्यूँ जळ टूटै मंछळी यूँ **वेलंत** विहाइ । २९।५	४२ **वेळत** थयउ विहाँण १९२
४३ जग **सगळा** हो जाँण । २६।१५	४३ **सगळाँ** मन ऊछव हुवउ । ४०
४४ सुख दुख **मेल्है** दूर । ३१	४४ तिण रिति **मेल्हे** मा।ळविण । २६६
४५ जिहि **वैसंदर** जग जळ्या । ३६।४	४५ का **वासंदर** सेवियइ । २६४
४६ ज्यूँ-ज्यूँ हरिगुण **साँभळूँ** । ४०।६७	४६ रही **संभाळ-सँभाळ** ३८२
४७ साईं-**हंदा** सँग । ४३।१०	४७ सयणाँ **हंदा** हत्त । ५०६
४८ **विसाऱ्या नहिं बीसरै** । ४४।२	४८ **वीसारियाँ न वीसरइ** ६१२
४९ सिर **साटै** हरि सेविए ४५।३१	४९ एकण **साटइ** मारुवी । ४५८
५० काल **सिँचाणा** नर चिड़ा । ४६।२	५० मन **सीचाणउ** जइ हुवइ २११

५१ नीर **निँवाणाँ** ठाहरै । ५५।४	५१ देस **निवाणूँ** सजळ जळ। ६६८
५२ नख-सिख **पाखर** ज्याँह । ५५।५	५२ प्यारा **पाखर** प्रेम की ४१२
५३ सदा सदाफल **दाख बिजौरा** । २१४	५३ **द्राख-बिजउरा** नीरती । ४२९
५४ सुति **मुकलाई** अपनी माऊ । ९६ प०	५४ मारवणी **मुकळाइ** । ५६५
५५ **बहुगणियाळे** कंत । ११।७	५५ **बहु-गुणवंता** नाह १४०
५६ परिखणहारे **बाहिरा** । ४८।२	५६ प्रीतम हूती **बाहिरी** । २७०
५७ परब्रह्म बूठा मोतियाँ **घड़** बाँधी **सिषराँह** । ५५।३ इत्यादि	५७ आज धरा-दस ऊनम्यउ काळी **घड़ सखराँह** । २७१ इत्यादि

इसके अतिरिक्त निम्नलिखित राजस्थानी शब्द भी कबीर की कविता में आए हैं जिनका प्रयोग हिंदी में प्रायः नहीं होता—

आधापरधा, आँथवै, आपण, उडाणी, उपायाँ, ऊखण्या, कुंज (क्रौंच), कद, कदे, जद, तद, क्रम (कर्म), काण, कालर, काँठै, कहर्सी, काँइ, कराइँ, कुँभिलाणी, करसी, खड़हड़ताँ, खोडि, ग्यूणै, गाँगौ, खिँवै, खूँटी ताणि (मुहावरा), खेड, खिरि, गहेलड़ी, गुज्झ, घणा, घाल्या, घुरड़ि, घावरै, चाँनिणो, चंच, चहोड़, चोल, चौड़ै, चात्रिग, चवै, छड़, छाँगि, छानें, छोति, जोइया, जाँणीजे, जासी ज (पाद-पूरक अव्यय), झळ, झाळि, झींण, झबूकती, झंखि, झकोळनहार, ठाहरै, डागळा, डूँगरि, तर (= तो), त (= तो), ततसार, तेणि, त्याँह, तिरसी, थयाहँ, थै (= से), थकाँ, थई, थाँहि, थूणी, थारै, दाँवा, दाझणा, दाधी, दाधा, दीठा, दह, दिसावराँ, दुहेला, दोहरा, द्रिढ, दह दिसि, ध्रंम, धीजियै, नीपजै, नीझर, नचीत, नेड़ा, निवांण, नफर, नाठी, पालवै, पाँणी, पूरवला, पट्टन, पेखड़ाँ, पगड़ा, पछेवड़ा, परि (= भाँति) पंन (= पर्ण), पसाव, पयंपै, पाखैं (= बिना) पलांनि, पणि, पूगी, पाळि, पूळा, भोळ, भी (= फिर), भेळा, भेळिसी, भुसै, भाजिसी, (= भागेगा, चुभेगा, टूटेगा), भावैं, मिनकी, मेल्ह्या, मांडी, महमही, मैंगळ, मैमंत, मारिसी, मेल्है इ०, महराँण, मंझ, मुकलाऊँ, माँहिलौ, मोकला, रूड़ो, रुति, रलिया, रूधहि, लार, लेसी,

लाधा, लहुरी, लाहौ, बाहणो (=चलाना), बाह्या, वागै, वैसणो, बहोड़ि, बेसास, बिडाणा, वाव, वधावणा, बावै (बोता है), वदेस, बींद, बागड़, वींझ, विरोलै, वनराइ, वावलिया, वळसी, वानी, संसौ, सूँ, साव, हाथाळी, सालै, सीठ, सहनाँण, सख्या, सोहरा, सैंण, साटै, सैंजळ, स्यावज, सुवटा, सेती, सलिता, सँगाती, हुता, हूँणा, होसी, हंदा, हूँ, हेला इत्यादि इत्यादि।

इनके अतिरिक्त कारकों तथा क्रियाओं के राजस्थानी रूप तो जगह-जगह पर भरे पड़े हैं।

अब हम अपने प्रकृत विषय पर आते हैं। ढोला-मारू काव्य की भाषा के संबंध में यह ध्यान रखना चाहिए कि वह एक काल की अथवा एक कवि की कृति नहीं है। इसलिये इस काव्य की भाषा भी सर्वत्र एक सी नहीं है। कहीं प्राचीनता है तो कहीं नवीनता। कहीं पुरानी वर्त्तनी है तो कहीं नवीन। इसी प्रकार गुजराती, सिंधी, पंजाबी आदि के प्रयोग भी यत्र-तत्र पाए जाते हैं। राजस्थानी में भी कहीं मारवाड़ी रूप हैं तो कहीं ढूँढाड़ी, कहीं जैसळमेरी हैं तो कहीं माळवी। खड़ीबोली और व्रज के रूप भी एक-आध जगह पाए जाते हैं।

इस समस्त भाषा-भेद का कारण उसकी सर्वप्रियता और निरंतर सुनने-सुनानेवालों की जबान पर रहना ही है। इन लोगों के हाथों में पड़कर बहुत से प्राचीन रूप नवीनता के साँचे में ढल गए। बहुत से प्राचीन दूहे लुप्त हो गए तथा नए दूहे जुड़ गए। पुरानी प्रतियों में इतने दूहे नहीं मिलते जितनी बाद की प्रतियों में; यहाँ तक कि कुछ प्रतियों में तो काव्य एवं उसकी कथा का रूप ही सर्वथा पलट गया है। सैकड़ों नए दूहे दृष्टिगोचर होते हैं और पुराने दूहे बहुत कम। कई दूहों का रूपांतर इतना अधिक हो गया है कि उनको पहचानना कठिन हो जाता है।

कबीर के कुछ दूहे ढोला-मारू काव्य में प्रायः ज्यों-के-त्यों मिलते हैं। शंका हो सकती है कि क्या वे दूहे ढोला-मारू में कबीर की रचना से लेकर सम्मिलित कर लिए गए हैं। ऐसा होना असंभव नहीं। हमारी जो सबसे प्राचीन प्रति है वह १६५१ की है जो कबीर के समय के सौ सवा सौ वर्ष बाद की है। उतने समय में कबीर की कविता का इतना प्रसिद्ध हो जाना कि वह जन-साधारण की जिह्वा पर रहने लगे, असंभव नहीं (आज तो कबीर के सैकड़ों दूहे लोगों की जबान पर हैं)। उधर हमारे कतिपय मित्रों का कहना है कि ये दूहे ढोला-मारू के ही हैं और जन-साधारण में प्रचलित थे।

या तो कबीर उनके द्वारा इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने प्रायः वैसी ही साखियाँ कह डालीं या उनके शिष्यों ने इन दूहों को कबीर की साखियों में मिला दिया। हमें दोनों मत ठीक नहीं जान पड़ते। ये दूहे जिन विषयों पर लिखे गए हैं उन पर केवल कबीर ने ही नहीं किंतु अन्य संत कवियों ने भी रचना की है। उनके भाव और शब्द प्रायः परस्पर मिलते हुए हैं। जिस भाव ने ढोला-मारू के इन दूहों के निर्माता को प्रभावित किया उसी भाव ने इन संत-महात्माओं को भी। यही साम्य का कारण है।

आगे हम ढोला-मारू की भाषा का व्याकरण देते हैं।

(६) ढोला-मारूरा दूहा काव्य का व्याकरण

(१) राजस्थानी की वर्णमाला

(क) स्वर

ह्रस्व—अ इ उ ऋ ऍ[1] ऑ

दीर्घ—आ ई ऊ ए ओ ऐ[2] अ″ औ आ″[3]

(ख) अतिरिक्त स्वर (जो प्रायः कविता में आते हैं) ह्रस्व—ऑ[4] ऍ औ

(ग) व्यंजन

क	ख	ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ	ञ
ट	ठ	ड	ढ	ण	त	थ	द	ध	न
प	फ	ब	भ	म	य	र	ल	व	व़[5]
श	ष	स	ह	ळ[6]	ऱ	द़	ड़	÷	:

---

(१) ऍ = ह्रस्व ए (या ए)। ऑ = ह्रस्व ओ।

(२) ऐ = हिंदी ऐ (जैसे 'ऐसा' में)। अ″ = संस्कृत ऐ (जैसे 'दैव' में)। ऍ = ह्रस्व ऐ।

(३) औ = हिंदी औ (जैसे 'और' में)। आ″ = संस्कृत औ (जैसे 'कौआ' में)। औ = ह्रस्व औ।

(४) ऑ = ह्रस्व ओ।

(५) व = संस्कृत व और राजस्थानी व़ = राजस्थानी व।

(६) ळ = मूर्धन्य ल। द = अरबी ज़्वाद। ऱ = मूर्धन्य द़।

नोट—ढोला-मारू के इस संस्करण में ह्रस्व ओ, ऍ, ओ, ऍ, औ और व़ को क्रमशः आ, ऐ, ओ, ऐ, औ और व (या, ब) से ही लिखा गया है।

(२) उच्चारण

१—छंद की सुविधा के लिये दीर्घ अक्षरों का भी ह्रस्व उच्चारण कई स्थानों पर हुआ है। उदाहरण—

उवै बोल्या सर ऊपरइ थाँ कीधी अणुराव ॥ ५२ ॥
आसालुध्धी हूँ न मुइय सज्जन जंजाळेह ॥ २०६ ॥
सायधण लाल कबाण ज्यउँ ऊभी कइ मोड़ेह ॥ ३५५ ॥

२—इसी प्रकार एकाध स्थान पर ह्रस्व का दीर्घ उच्चारण भी हुआ है। उदाहरण—

जे जीवन जिन्हाँ-तणाँ तन ही माँहि वसंत ॥ २१ ॥
ऊपर थे बिन्हे चळ्या करह कूट किण काज ॥ ६४४ ॥

(३) वर्त्तनी

१—पुरानी हस्तलिखित प्रतियों में ख सदैव 'ष' से लिखा जाता था। आजकल भी पुराने साक्षर जन ख को बहुधा ष से ही लिखते हैं। उच्चारण को ध्यान में रखकर हमने मूल में सर्वत्र ख कर दिया है।

२—पुरानी प्रतियों में ड और ड़ एक ही प्रकार से लिखे मिलते हैं। हमने जहाँ जो अक्षर होना चाहिए वह कर दिया है।

३—पुरानी प्रतियों में चंद्रबिंदु का प्रयोग कभी कभी ही मिलता है। हमने उचित स्थान पर चंद्रबिंदु कर दिया है।

४—ढोला-मारू की जो प्रतियाँ हमें मिली हैं उनमें काफी समयांतर है, अतः एक ही शब्द कई प्रकार से लिखा मिलता है। हमने अधिकांश में जिस प्रति का पाठ लिया है उसी की वर्त्तनी को ग्रहण किया है। कई स्थानों पर परिवर्त्तन भी किया है। वह इस प्रकार—

(१) समानता रखने के लिये ऐ औ की मात्राओं को अइ अउ में परिवर्त्तित कर दिया है।

(२) कहीं-कहीं छंद के सुविधानुसार ह्रस्व को दीर्घ या दीर्घ को ह्रस्व कर दिया है।

(४) लिंग

१—ढोला-मारू की भाषा में दो लिंग पाए जाते हैं। नपुंसक लिंग के रूप भी एकाध स्थान पर मिलते हैं पर वह पुराना प्रभाव है। वास्तव में नपुंसक लिंग और पुँल्लिंग में कोई अंतर नहीं है। नपुंसक लिंग के रूपों के कुछ उदाहरण—

पूगळ देस दुकाळ थियुँ। २। (थियुँ = थियउ)
ऊ ही लाख-पसाउ। ७४। (ऊ = ओ)
पावस मास प्रगट्टिउँ। २५८। (प्रगट्टिउँ = प्रगट्टियउ)
निकस्यू जात न तोहि। ३७३। (निकस्यू = निकस्यो)
प्रहरै-प्रहर ज ऊतर्‌यु ं। ५९०। (ऊतर्‌यु ं = ऊतरियउ)

२—स्त्रीलिंग बनाने का मुख्य प्रत्यय ई है—

पुत्र—पुत्री	सुंदर—सुंदरी
तणउ—तणी	हेकलउ—हेकली

३—कहीं-कहीं स्त्रीलिंग शब्दों का अंत्य स्वर लुप्त, और दीर्घ हो तो ह्रस्व, हो गया है—

सुंदरी—सुंदर, सुंदरि   मुंधा—मुंध।
चातृंगी—चातृंगि

(५) बहुवचन प्रत्यय

१—आ—ओकारांत शब्दों के लिये—

रावळ, रावळउ } रावळा ३

परणियउ, परणियो } परिणिया १०

२—आँ (अकारांत स्त्री० शब्दों के लिये) कोइल—कोइलाँ ८

३—इयाँ (ईकारांत स्त्री० शब्दों के लिये) सखी—सखियाँ, २०
सखिए (संबोधन) २६

(६) विभक्ति और कारक

राजस्थानी में छः विभक्तियाँ और आठ कारक होते हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—

१—विभक्तियाँ—

सं०	विभक्ति	चिह्न	किस कारक में आती है	हिंदी चिह्न
१	पहली	×	अप्रत्यय कर्त्ता और अप्रत्यय कर्म	×
२	दूसरी	*	सप्रत्यय कर्त्ता और संबोधन	ने
३	तीसरी	सूँ आदि†	करण और अपादान	से
४	चौथी	नै आदि	सप्रत्यय कर्म और संप्रदान	को
५	पाँचवीं	में, पर आदि	अधिकरण	में, पर
६	छठी	रो (री, रा, रे) आदि‡	संबंध	का (की, के)

२—कारक—

सं०	नाम	विभक्ति
१	कर्त्ता	पहली, दूसरी, तीसरी
२	कर्म	पहली, चौथी
३	करण	तीसरी
४	संप्रदान	चौथी
५	अपादान	तीसरी
६	अधिकरण	पाँचवीं
७	संबंध	छठी
८	संबोधन	दूसरी§

* इसके प्रत्यय आगे विकारी रूप शीर्षक के नीचे देखिए।

† तीसरी से छठी विभक्तियों के चिह्न विकारी रूप के आगे जोड़े जाते हैं। पर कविता में (कभी-कभी गद्य में भी) ऐसा नहीं भी होता है और शब्द के सामान्य रूप के आगे ही ये चिह्न जोड़ दिए जाते हैं।

‡ छठी विभक्ति के चिह्नों में, हिंदी की भाँति, विशेष्य या भेद्य के अनुसार परिवर्तन होता है। पुँल्लिंग एकवचन—रो। पु० बहु०—रा। पु० विकारी रूप—रे। स्त्रीलिंग—री।

§ ओकारांत शब्द के संबोधन के एकवचन में ओ का आ हो जाता है।

नोट—उल्लिखित विभक्तियों के अतिरिक्त अन्य विभक्तियाँ भी कभी-कभी आ जाती हैं।

३—विकारी रूप—

शब्द	लिंग	वचन	प्रत्यय	उदाहरण
ओकारांत	पुँ	एक०	अइ, अै, अे	ढोलइ, खोटइ
,,	,,	बहु०	आँ	खोटाँ
अन्य शब्द	पुँ	एक०	×	
अकारांत	पुँ	बहु०	आँ	भड़ाँ, समदाँ
आकारांत	पुँ, स्त्री०	बहु०	अाँ, आवाँ	
ईकारांत	पुँ, स्त्री०	बहु०	इयाँ, याँ	राजवियाँ
ऊकारांत	पुँ, स्त्री०	बहु०	उवाँ	मारुवाँ

नोट (१) ढोलामारू में स्त्रीलिंग के विकारी रूप और साधारण रूप में कोई भेद नहीं किया गया है।

(२) राजा-वर्ग के शब्दों को छोड़कर बाकी सब आकारांत हिंदी शब्द राजस्थानी में ओकारांत हो जाते हैं।

४—ढोला-मारू के विभक्ति-चिह्न—

विभक्ति	चिह्न	उदाहरण
पहली	×	
दूसरी	(देखो विकारी रूप	
	ए, इए	सज्जणे, सखिए
	इ	भुयंगि
तीसरी	सूँ, सुं, सुँ, स्यउँ	मारवणीसूँ, ताहसुँ, डॉभस्यउँ
	ती, थी	नख-ती, हम-थी
	हुंती, हूँती	
	आँ	वयणॉ, हूछाँ

विभक्ति	चिह्न	उदाहरण
	इ, अइ, ए, एह	मनइ, प्रेमइ, पागड़इ, काँबे, स्रवणे, नयणेह
	ह	तनह
चौथी	ने, नेँ, नइ, नइँ, नूँ	म्हेनेँ, ढोलइनूँ, राजानूँ,
	ए	घरे
	अइ	नरवरइ
	रेस	जळ-रेस
पाँचवीं	मेँ, मै, मैँ, मइँ, मइ, महिँ, मँही, माँहि, माँही, मंझ, मंझि, मँझारि	
	सिर, सिरि	पंथ-सिर
	इ,	भवि, घरि, देसि,
	अइ	हीयइ, साथइ, करहइ, सासरइ
	अइँ	सुपनइँ, सेजइँ
	ह	मनह
छठी	रो रउ, री, रा, रै, रइ	
	को-कउ, की, का, के-कइ-कै	दई-कइ
	दा	मारूदा
	जी	म्हाँजी
	चो-चउ, ची, चा, चइ-चै	नरवर-चउ
	तणउ, तणी, तणा, तणइ	
	संदउ, संदी, संदा, संदइ	
	हंदउ, हुंदउ, इ०	

नोट—कविता में (और कभी-कभी गद्य में भी) शब्द के साधारण या विकारी रूपों सेही विभक्तियों और कारकों का काम निकाल लिया जाता है और विभक्ति-चिह्न लुप्त कर दिए जाते हैं ।

(७) सर्वनाम

(१) हूँ = मैं

विभक्ति	एकवचन	बहुवचन
पहली	हूँ = मैं, मुझे	म्हे, हम, सैं = हम
दूसरी	मइँ = मैं, मैंने, मुझसे	म्हाँ = हमने
तीसरी	मोथी = मुझसे	...
चौथी	मोहि, म्हांने, म्हाँने, म्हांनूँ, म्हेँने, मुज्झ = मुझे	...
छठी	म्हारउ (म्हारी) = मेरा-री मेरो (मेरी) = मेरा-री मो, मूँ = मम, मेरा-री मुज्झ = मेरा-री-रे	म्हाँरउ (म्हाँरी)=हमारा-री म्हाँकउ (म्हाँकी)=हमारा-री हमारउ (हमारी)=हमारी-री म्हाँजी = हमारी अम्हीणइ=हमारे (विकारी) अम्हीणी = हमारी अम्हाँ = हमारा-री-रे

(२) तूँ=तू

विभक्ति	एकवचन	बहुवचन
पहली	तूँ = तू, तुझे	थे, तुम = तुम थे, राज, राजि = आप
दूसरी	तइँ=तूने, तुझसे, तेरा	थाँ=आपने, तुमने
तीसरी	तुझ्झ = तुझसे	...
चौथी	तोनइ, तोनूँ, तोई } = तुझे तोहि = तुझे, तुझमें तुझ्झ = तुझे	...
छठी	थारउ (थारी, थारा) = तेरा (तेरी, तेरे) थाहरइ, तोरइ } = तेरे तुझ, तुझ्झ = तेरा, री, रे	थाँरउ (थाँरी; थाँरा) = आपका इ० तुम्हारौ (री, रा) तुम्हारा इ० थाँकउ (की-का) = आपका इ० थाँके = आपके (विकारी)
विकारी रूप	तो = तुझे, तुझसे, तेरा इ०, तुझमें	थाँ = आपने, आपको, आपसे, आपमें, आपका इ०

(३) वो सो = वह

विभक्ति	एकवचन	बहुवचन
पहली	सो, सउ, स, सोइ, उ, ऊ = वह (पुँ०) सा, से, ते, वा, उवा = वह (स्त्री०)	सो, से, सू, सोइ, ते, तेह, तिके, वै, उवै=वे

विभक्ति	एकवचन	बहुवचन
दूसरी	उण, उणि, उआँ तिण, तिणि, तिणाँ तेण, तेणि त्याँ, तियाँ, तीयाँ ता, तइ = उसने उसको, उससे, उसमें, उसका	उवाँ, ताँह त्याँ, याँह } = उनने, उनको, उनसे, उनमें, उनका
तीसरी	ताहसुँ = उससे	
चौथी		
पाँचवीं	तिणपइ = उसपै	
छठी	उणरउ = उसका तास तासु तसु } = उसका	तिणका ताँहका, तिहाँका } = उनका त्याँहीकइ = उन्हींके (विकारी)

(४) ओ = यह

विभक्ति	एकवचन	बहुवचन
पहली	अउ, ओ, यो, ई, ए, आ } = यह (पुँ०) आ, ए, एह = यह (स्त्री०)	अइ, ए, एह = ये
दूसरी	इण, इणि, एण, अण एह = इसने, इसको, इससे, इसमें, इसका इ०	(एकवचन की भाँति)
चौथी	यहु = इसको	...

(५) जो, जको=जो, जौन

विभक्ति	एकवचन	बहुवचन
पहली	जो, जउ, ज्यउ जे, जिको } = जो (पुँ०) जो, जउ, जे, जिका = जो (स्त्री०)	जे, जिका, ये = जो
दूसरी	जिण, जिणि, जेण, जाँ, ज्याँ, ज्याँह, जाँह, जे } = जिसने, जिसको, जिससे, जिसमें, जिसका,	(एकवचन की भाँति)
चौथी		जिणनूँ = जिनको
छठो	जास = जिसका जिणरो इ० जिणको इ० } = जिसका ज्याँरो इ० ज्याँहीकइ = जिसके (वि० रूप) जिए = जिसके	जिन्हाँ-तणाँ = जिनके जिणको इ० जाँहको इ० } = जिनका इ० ज्याँको इ०

(६) कुण = कौन

विभक्ति	उदाहरण	
पहली	कुँण, कूण, कवण, कौण, को, का (स्त्री०)	} = कौन
दूसरी	किण, किणि, केण, कवण, किस	} किसने, किससे, किसको = किसमें, किसका इ०

(७) कोई

विभक्ति	उदाहरण
पहली	कोई, कोइ, को, कउ, कोइक, काइक (स्त्री०), काइ (स्त्री०)
दूसरी	काइ, किहीं, कहीं = किसी ने, किसी से इ०

(८) आप = आप (स्वयं)
आपण = अपन, हम लोग
आपणउ = अपना
मोहिं = स्वयं (मैं)

(९) सार्वनामिक विशेषण

एतउ, केतउ, जेतउ, तेतउ = इतना, कितना, जितना, तितना। इवड़उ· एवड़उ = ऐसा, इतना। अइसउ, ऐसउ = ऐसा। एहउ, एहवउ = ऐसा। अइहउ = ऐसा। इसउ = ऐसा। अपणउ = अपना। सो = समान। सगळउ, सहु, सवि, सउ, सौ, सब्ब, सव = सब। का, कहा = क्या। कछु = कुछ। किउँ = कुछ। काँइ = क्या, कुल। के = कई

(८) क्रिया-रूप

(१) इस काव्य की भाषा में निम्नलिखित आठ काल पाए जाते हैं—(१) सामान्य वर्त्तमान, (२) तात्कालिक वर्त्तमान, (३) संभाव्य भविष्यत्, (४) सामान्य भविष्यत्, (५) प्रत्यक्ष विधि, (६) परोक्ष विधि, (७) सामान्यभूत, (८) हेतु-हेतुमद्भूत।

(२) सामान्य वर्त्तमान के रूप प्रायः संभाव्य भविष्यत् जैसे ही हैं; केवल जहाँ वर्त्तमान-कृदंत से बने सामान्य वर्त्तमान रूप आए हैं वहीं फर्क पड़ता है।

(३) तात्कालिक वर्त्तमान केवल दो-तीन जगह आया है—

(१) झळ रहियाइ = झळ रहे हैं।
(२) फळि रहउ = फल रहा है।

(४) संभाव्य भविष्यत् और सामान्य वर्त्तमान के रूप इस प्रकार हैं--

पुरुष	वचन	प्रत्यय	हुवणो	हुवणी	अकर्मक	सकर्मक	आवणो	जावणो	देवणो
अन्य	एक०	अइ	हइ, छइ	हुवइ	जागइ	जाँणइ	आवइ, आइ	जावइ	देवइ, देइ
	और		अछइ	होइ	...	...	...	जाइ	दियइ, दीयइ
	बहु०		...	थाइ	...	...	...	जाअइ	...
			...	हुइ	...	...	...	जायइ	...
		अय	...	...	...	आखय	...	...	...
		अहीं	...	...	...	बोलही	...	...	...
		एह	...	...	...	भरेह	...	...	देह
		एहि	...	...	...	पळटेहि	...	...	देहि
		आहि	...	...	डरपाहि	खाहि	...	जाहि	...
		आह	...	...	...	...	...	जाह	...
		आइ	...	...	बिकाइ	लहाइ	...	...	...
		×	...	...	झूल	...	...	...	...

पुरुष	वचन	प्रत्यय	हुवणो	हुवणा	अकर्मक	सकर्मक	आवणो	जावणो	देवणो.
मध्यम	एक०	अन्यपुरुष की भाँति)	हुई	...	गाजइ	चुट्टइ	...	...	...
	बहु०	अउ		हुवउ	जागउ	जाणउ	आवउ	जावउ	
उत्तम	एक०	ऊँ अऊँ		हुँ (?) हउँ	जागूँ जागउँ	जाणूँ जाणउँ	आऊँ आवउँ	जाऊँ जावउँ	दिउँ, दिऊँ दूँ
	बहु०	आँ	छाँ	हवाँ	जागाँ	जाणाँ	आवाँ	जावाँ	देवाँ, द्याँ

(५) सामान्य वर्त्तमान के वर्त्तमान कृदंत से बने रूप—

प्रत्यय	उदाहरण
अत	वसत, करत, बाढत
अंत	काढंत, आवंत, लहंत, चढंत
अंति	लियंति, गमंति, मल्हपंति
ती (स्त्री०)	मूकती

(६) सामान्य भविष्य

पुरुष	वचन	प्रत्यय	हुवणो	अकर्मक	सकर्मक	आवणो		
अन्य		सी		जागसी	जाँणसी	आवसी	आसी	
		से		जागसे	जाँणसे	आवसे	आसे	
	एक०	इसी		जागिसी	जाँणिसी	आविसी	आइसी	
		एस		जागेस	ज.णेस	आवेस	आएस	
	और	एसि		जागेसि	जांणेसि	आवेसि	आएसि	
		एसी		जागेसी	जाँणेसी	आवेसी	आएसी	
		सइ		जागसइ	जाँणसइ	आवसइ	आइसइ	
	बहु०	स्यइ		जागस्यइ	जाँणस्यइ	आवस्यइ	आइस्यइ	
		इस्यइ		जागिस्यइ	जाँणिस्यइ	आविस्यइ	अइस्यइ	
		इसइ		जागिसइ				जइसइ
		एह		जागेह	जाँणेह	आवेह	आएह	
		एस्यइ		जागेस्यइ	जाँणेस्यइ	आवेस्यइ	आएस्यइ	

मध्यम	एक०	इस इसु, (बाकी प्रत्यय अन्य पुरुष की भाँति)	हुइस	पाठविसु	...	...	...	देइस
	बहु०	स्यउ इस्यउ		जागस्यउ जागिस्यउ	जाँणस्यउ जाणिस्यउ	आवस्यउ आविस्यउ	आइस्यउ	
उत्तम		इसूँ इस्यउँ इसि एस एसि ऐस्यउँ		जागिसूँ जागिस्यउँ जागिसि जागेस जागेसि जागेस्यउँ	जाँणिसूँ जाँणिस्यउँ जाँणिसि जाँणेस जाँणेसि जाँणेस्यउँ	आविसूँ आविस्यउँ आविसि आवेस आवेसि ...	आइसूँ आइस्यउँ आइसि आएस आएसि आएस्यउँ	
		स्याँ इस्याँ एस्याँ एस		जागस्याँ जागिस्याँ जागेस्याँ जागेस	जाँणस्याँ जाँणिस्याँ जाँणेस्याँ जाँणेस	आवस्याँ आविस्याँ आवेस्याँ आवेस	आइस्याँ आस्याँ आएस्याँ आएस	

(७) सामान्य भविष्य का एक दूसरा रूप लो प्रत्ययवाला भी प्रयुक्त हुआ है। संभाव्य भविष्यत् के आगे नीचे लिखे प्रत्यय लगाने से यह बनता है। इसमें लिंग-भेद होता है।

लिंग	वचन		उदाहरण
पुल्लिंग	एक०	लो	जाणइलो = वह जानेगा
	बहु०	ला	जाणइला (जाणयला) = वे जानेंगे
स्त्रीलिंग	एक०	ली	मिलूँली, मिलउँली = मिलूँगी
			दिउँला = दूँगी
	बहु०	ल्याँ	मिलाँल्याँ = हम मिलेंगी

(८) प्रत्यक्ष विधि—

मध्यम पुरुष	प्रत्यय	उदाहरण
एक०	अ	ल्याव, जाण, दे, आव
	इ	छाँडि, लज्जि, गज्जि, आवि, आ (आय)
	ई	
	ए	कहे (कहइ), आखे
	एह	करेह
बहु०	अउ	विचारउ, जावउ, करउ, द्यउ (= दो), हुअउ
	इयउ	लियउ

(९) परोक्ष विधि—

प्रत्यय	उदाहरण
ए	कहे, आखे, आए
इया	कहिया
इयाह	कहियाह, रहियाह
इयाँह	दाखवियाँह
इज्यउ	कहिज्यउ

(१०) 'चाहिए' बोधक विधि

प्रत्यय	उदाहरण
इयइ	मेल्हियइ, छंडियइ, जाइयइ
इजइ	राखिजइ
ईयइ	...
ईजइ	होहीजइ, कीजइ, पाळीजइ,
इज्जइ	...

(११) सामान्य भूत

लिंग	वचन	प्रत्यय	हुवणो	हुवणो	अकर्मक	सकर्मक	आवणो		जावणो	देवणो
पु०	एक०	इयउ यउ अउ		थियउ, थियुँ हुयउ, थयउ हुवउ	जागियउ जाग्यउ लागउ	जाणियउ जाण्यउ	आवियउ आव्यउ	आइयउ आयउ	गयउ	दियउ, दीयउ
	बहु०	इया या आ	हुंता हूँता	थिया, थया, हुया, हूया, भया हुवा, हूवा	जागिया जाग्या लागा	जाणिया जाण्या	आविया आव्या	आइया आया	गया	दिया, दीया
स्त्री०	एक०	ई	थी	हुई थई भई	जागी लागी	जाणी	आवी	आई	गई	दी, दई, दिवी
	बहु०	इयाँ याँ			जागियाँ जाग्याँ	जाणियाँ जाण्याँ	आवियाँ आव्याँ	आइयाँ आयाँ	गयाँ	...

(१२) सामान्य भूत के अनियमित रूप

(१) सीधे संस्कृत या प्राकृत के भूत कृदंत से बने हुए—

उपजणो—ऊपन्नउ (उत्पन्न)। पहुँचणो—पहुत्त, पहूँतउ (प्रभूत)। देवणो—दीध, दीधउ, दीन्ह, दीन्हउ (दिण्ण)। लेवणो—लिद्ध, लीध, लध्ध, लीधउ, लीन्ह, लीन्हउ। पीवणो—पीध, पीधउ। खावणो—खध्ध, खाधउ। करणो—किध्ध, कीध, किध्धउ, कीधउ, कीन्ह, कीन्हउ, किय, कियउ, कीयउ। देखणो—दिट्ठ, दीठ, दिट्ठउ, दीठउ। बँधणो—बध्ध। सिद्ध हुवणो—सीधा। मरणो—मुयउ, मुई.। दाधणो—दध्ध। सूवणो—सूती। रोवणो—रूँनी।

(२) आणो प्रत्यय लगाकर—

सँकणो—सँकाणी। विकणो—विकाणी। भरणो—भराणी। लाजणो—लजाणी। उडणो—उडाणी। सम(व)णो—समाणो। कुँमलाँ(व)णो—कुँमलाँणी।

(३) अन्य—

वूढ़ी (वहणो)। गाज (गाजणो)। फट्टि (फटणो)। विगट्ठा (सं० विनष्ट)। पयट्ठ (सं० प्रविष्ट)।

(१३) हेतुहेतुमद्भूत

लिंग	वचन	प्रत्यय	उदाहरण
पुँ०	एक०	तउ	रहतउ
	बहु०	ता	हुंता

लिंग	वचन	प्रत्यय	उदाहरण
स्त्री०	एक०	ती	जोती, देखती
	बहु०	अंती	
		अत	
पुँ०	एक०	अंत	करंत, रहंत
स्त्री०	बहु०	अंति	रहंति, हुंति, जंति, पसरंति

(१४) कर्मवाच्य-भाववाच्य

प्रत्यय	उदाहरण
(१) ईज	चढीजइ = चढ़ा जाता है।
	लीजइ = ली जाती है।
(२) इज	कहिजइ = कहा जाता है।

अन्य प्रत्यय—इज्ज, ईय, इय (छंडियइ, मेल्हियइ)।

नोट—कर्मवाच्य और चाहिए अर्थ की विधि के रूप एक से होते हैं। पाळीजइ = पाला जाता है, पाला जाय और पालना चाहिए (हिं० पालिए)।

(१५) सकर्मक और प्रेरणार्थक बनाना

(क) अकर्मक से सकर्मक

(१) आव प्रत्यय से—जागणो—जगावणो
मिळनो—मिळावणी
(२) आड़ प्रत्यय से—जीवणो—जीवाड़नो

(३) धातु के उपांत्य स्वर में परिवर्तन—वळनो—वाळनो,
ऊतरणो—ऊतारणो
उतरणो—उतारणो
चढणो—चाढणो
मिळनो = मेळनो

(४) धातु बदलकर— टूटणो—तोड़नो

(५) बिना परिवर्तन के— भरणो—भरणो

(६) अन्य रूप— जागणो—जागवणो
दहणो—दाहवणो

(ख) प्रेरणार्थक

(१) आव प्रत्यय से—काटणो—कटावणो ।
मारणो—मरावणो
आणनो—अ-आणावणो

(२) आड़ प्रत्यय से—बाँधणो—बँधाड़नो
काटणो—कटाड़नो

(३) धातु के स्वर में परिवर्त्तन—पीवणो—पावणो ।

(४) अन्य रूप—देवणो—दिरावणो ।

(६) प्रत्यय

(१) वर्त्तमान कृदंत*—

पुं० एक०	अतउ	पड़तउ
	अंतउ, अंदउ	लवंतउ, चलंतउ, उडंद
	अत	वेळत
	अंत	
	ऐत	वूटैतौ
पुं० बहु०	अता	मनगमता, जावता
	अताँ	नीगमताँह
	अंता	ऊसारंता, भमंता
	अत	
	अंत	

* वर्त्तमान कृदंत और हेतुहेतुमद्भूत के प्रत्यय एक से होते हैं ।

स्त्री०	अंती	विलखंती
	अंदी	चाहंदी
	अती	वळती, देखती
	अत	
	अंत	

(२) भूत कृदंत*—

पुँ० एक०	अउ	लागउ, वूठउ, विलखउ
	यउ	आयउ,
	इयउ	कूटियउ, ऊमाहियउ
पुँ० बहु०	आ	विलक्खा, अदिठा, सूका
	या	पिया
	इया	भरिया
स्त्री० एक०	ई	वियापी, माँगीताँगी
बहु०	इयाँ	सामुहियाँ, उपराठियाँ

(३) कृदंत क्रियाविशेषण—

प्रत्यय—याँ, इयाँ— कह्याँ = कहने पर,
परण्याँ, कियाँ, कुड़ियाँ

ए कहे = कहने से

अंतइ वरसंतइ = बरसते हुए,
आवंतइ, ऊगंतइ ।

(४) तुमर्थ प्रत्यय—

अण—बोलण (= बोलने को), मिलण

इवा }
इबा } —कहिबा (=कहने को)

(५) पूर्वकालिक क्रिया—

इ—जागि, चढि, आवि, आइ, देइ, लइ, हइ, होय, हुइ

ई—लंघी, उक्कंची, पूछी करी

* भूत कृदंत और सामान्य भूत के प्रत्यय एक से होते हैं। अनियमित रूपों के लिये ऊपर सामान्य भूत के रूप देखो।

ए—लगे

अ—कर

इन प्रत्ययों के आगे कै, कइ, करि, नइ, नइँ (=कर, करके) प्रत्यय भी प्रायः जोड़ दिए जाते हैं।

(६) वाला अर्थ के प्रत्यय—

अण—भरण, पखालण, रंजण, उल्हवण

अणउ—रचणा (बहु०)

इस प्रत्यय के आगे कहीं-कहीं हार प्रत्यय जोड़ दिया गया है। जैसे—झकोळणहार।

(७) कुछ अन्य कृदंत प्रत्यय—

१—अण = ना

हल्ल—हल्लण (चलना),

वल—वळण (चलना, जाना)

२—आमणउ=आवना

सोह—सुहामणउ

वध—वधामणउ

३—आवउ = आवा

सोह—सुहावउ

४—आळू=आलू

धंधो – धंधाळू

५—हार = हार, वाला

झूँ वणो—झूँ वणहार

वळनो—वल्लणहार

(८) कुछ तद्धित-प्रत्यय

१—ड़उ (ड़ी)—स्वार्थ में और अनादर तथा ऊनता-सूचक

संदेसउ—संदेड़उ,

गोरी—गोरड़ी

गाम—गामड़उ

कंब—कंबड़ी

२—लउ—ड़उ की भाँति

दीवउ—दीवलउ

करहउ—करहलउ

३—टी—ड़ी की भाँति

लीह—लीहटी

४—एरउ—स्वार्थ में

वेगउ—वेगेरउ

आघउ—आघेरउ

भलउ—भलेरउ

५—एरउ—वाला, का।

पर—परेरउ (पर का)

६—पण=पन

बाळा—बाळापण

७—आपउ = आपा

तरण—तरणापउ (तरुणपन)

८—आइत = वाला

रळी—रळियाइत

९—वंत = वाला

जोबन—जोबनवंत

१०—लउ = वाला, का

आगे—आगलउ

पाछे—पाछलउ

(१०) अव्यय

(१) क्रिया-विशेषण

किह, किहाँ = कहाँ। केथि = कहाँ। काँही = कहीं। इहाँ, एथि = यहाँ। अउथि, तिहाँ = वहाँ। उवाँही=वहीं। जहँ, जिह, जिहाँ = जहाँ। ऊपरि = ऊपर। परइ=परे। दूर, दूरि = दूर।

कद, कदि, कदी, कदे = कब। अब, हिव, हिवइ, अवराँह = अब। जब, जाँण = जब।

आज, अज्ज = आज। अजइ, अजे = अभी। काल्ह = कल। राति=

रात। राति-दिवसि = रात-दिन । नित, नितु, निच = नित्य । पाछइ, पाछे = पीछे, बाद में । वलि, वळे, भी, फिरि = फिर । पुणोवि = पुनरपि, फिर भी ।

इम, इमि, एम, यूँ = ऐसे, यों । जिम, जिमि, जेम=जैसे । जिउँ, ज्यउँ ज्युं, ज्यूँ, जूँ = ज्यों । किम, किमि, केम = कैसे । किउँ, क्यउँ, क्यूँ = क्यों । किउँकरि = क्योंकर, कैसे । जं = ताकि । जेण, जेणि = जिससे, जिस कारण से । केण, केणि = किसलिये । तेण, तेणि, तिणि = इसलिये । तिम = त्यों, त्योंही । किमही = किसी तरह ।

जे, जै, जइ, जो, जउ, जऊ, जय = यदि, जो । तो, तउ, तु, तुँ, त = तो । तोइ=तो भी । पिण = भी । ही, हीँ, हि, हूँ, ह, इ, ई, य=ही । न, नहि, नहिँ, नही, नहीँ, नाही, नवि, नव, ना, नि, ण, म = न, नहीं । म, मा, मत, मति, जिन = मत । मतही, मतिहि, मति = कहीँ न ।

अधिक, बहु = बहुत । जाँण, जाँणि, जाँणे, जाँणक = मानो । नहिँ = मानो । किर = किल, निश्चय ही, मानो । नीठ=कठिनता से । झटक = तुरंत । झाबकि = सहसा । साचेई = सचमुच । अपूठा = वापिस । काठी = मजबूती से । ओळग = अलग, दूर, प्रवास में । रूड़ा = भले ही, चाहे । अउझकइ = अचानक । खोडी-खोडी = धीरे-धीरे (?) ।

ज, स, क, ह = जोर देने के लिये, या पाद-पूर्त्यर्थ, प्रयुक्त होनेवाले अर्थहीन अव्यय ।

(२) संबंध-बोधक

मँहि, मँइ, माँहि, माँही, महीं, मंझ मंझि, मँझार, मँझारि = भीतर, मेँ । भणी = पास, प्रति; लिये, को, से, मेँ, का । सनमुख=सामने । सथ्थ, साथि, साथइ = साथ । विन, विना विण=बिना । असन्न = पास । ऊपर, ऊपरइ = ऊपर । आगळि = आगे । अंतरे = भीतर, मेँ । आले = आड़ मेँ । कज, काजि = लिए । कन्हे, कन्हइ, कन्हाँ = पास, प्रति, से । कारणइ = कारण, लिये । ढूकड़ा = पास । दिस = ओर । नेड़ि=पास । परइ = परे । पछइ=पीछे । पासइ = पास । परि = भाँति । भंति = भाँति । भच = भाँति । भर, भरि = भर । लग, लगि, लगइ = तक । विच, विचि = बीच । बाँसइ = पीछे । साम्हा= सामने । साटइ=बदले । सिरि = पर । लियइ = लिये, कारण से ।

(३) समुच्चय-बोधक

अर = और । ने; नइ, नइँ, अनइ=और । च = और भावइँ = चाहे रूड़ा = चाहे । नवि=नहीं तो । किनॉ = या । का=या तो, या । कइ=या तो, या । क = कि, या । कि=कि, या ।

(४) विस्मयादि-बोधक

रे = रे, अरे । हे=हे । हइ-हइ=हे-हे, अरे-अरे, हाय-हाय । हउ-हउ = हो, हो, अरे-अरे, हाय-हाय । हय-हय = हे-हे, हाय-हाय ! रह-रह=चुप-चुप । परिहाँ=पर हाँ, एक अर्थहीन अव्यय जो चांद्रायणा छंद के चौथे चरण के पूर्व जोड़ दिया जाता है ।

———

वर्तमान संस्करण

इस काव्य का वर्त्तमान संस्करण निम्नलिखित १७ प्रतियों के आधार पर तैयार किया गया है।

जैसा कि हम ऊपर कह आए हैं, इस काव्य के चार रूपांतर मिलते हैं जिनमें नंबर १ और नंबर २ महत्वपूर्ण हैं। रूपांतर नंबर १ केवल दूहों में है और उसकी प्रतियाँ हमें बीकानेर राज्य में मिलीं। नंबर २ में कुशल लाभ की चौपाइयाँ भी हैं। इसकी प्रतियाँ हमें विशेषतः जोधपुर से प्राप्त हुईं।

एकाध स्थान को छोड़कर हमने कथानक का क्रम बीकानेरीय क्रम के अनुसार रखा है। वही हमें युक्तियुक्त तथा प्राचीन ज्ञात हुआ।

प्रतियों का विवरण नीचे दिया जाता है—

(१) रूपांतर नंबर १

१—(क) प्रति—यह प्रति सबसे अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि रूपांतर नंबर १ की यह सबसे प्राचीन प्रति है। हमारे संस्करण का मुख्य आधार यही प्रति है। इसका लिपि-काल ठीक निश्चित नहीं पर जिस हस्तलिखित ग्रंथ में यह पाई गई है उसमें इसके पहले और बाद में लिखे हुए ग्रंथों का समय संवत् १७२० के आस-पास का है। अतः इसका समय भी संवत् १७२० से १७३० के बीच का है। प्रति विशेष प्राचीन न होने पर भी इसमें पुराना, केवल दूहों का, रूप पूरा सुरक्षित है, यही इसका महत्व है। इसकी वर्तनी पुराने ढंग की नहीं किंतु उत्तरकालीन राजस्थानी की है। इसका पाठ बहुत शुद्ध है। इसमें कुल दूहों की संख्या ३९५ है।

इसके विषय में यह ध्यान देने योग्य है कि इसमें धुरसंबंध या प्रस्तावना के वे दूहे जो रूपांतर नं० २ में मिलते हैं आरंभ में दिए हुए हैं। बीच में चौपाइयाँ न होने से उनका कथा-सूत्र बराबर नहीं मिलता।

असली कथा रूपांतर नं० १ की भाँति गाहा से ही आरंभ होती है। इसलिये ये धुरसंबंधवाले दूहे असंगत और अस्थानस्थित out of place जान पड़ते हैं।

धुरसंबंध के बाकी दूहे (झ) प्रति में पाए जाते हैं पर वे सब लोगों को याद नहीं थे। कुशललाभ को भी केवल वे ही दूहे मिले जो इस (क) प्रति में हैं।

२—(ख) प्रति—यह प्रति (क) प्रति से बहुत कुछ मिलती है पर कहीं-कहीं अंतर है—कुछ दूहे न्यूनाधिक हैं। इसका लिपिकाल सं० १७५० के लगभग है। अक्षर बहुत सुंदर और पाठ शुद्ध है।

३—(ग) प्रति—इसका लिपि-काल सं० १७५२ है। इसका पाठ साधारणतया शुद्ध है। कथानक में यह अधिकांश में जोधपुरीय कथानक का अनुसरण करती है। पाठ भी जोधपुर की प्रतियों से मिलता है। पर जोधपुरीय प्रतियों की भाँति यह दूहा-चौपाइयों में नहीं, किन्तु केवल दूहों में है।

४—(घ) प्रति—इसका लिपि-काल सं० १८१८ है। इसका पाठ बहुत भ्रष्ट है। यह साधारणतः (ख) प्रति का अनुसरण करती है।

५—(त) प्रति—इसकी वर्त्तनी आधुनिक है। इसका लिपि-काल डाक्टर टैसीटरी ने संवत् १७१० से १७२० के बीच में निश्चित किया है।

उक्त सब प्रतियाँ बीकानेर-राज्य के राजकीय पुस्तकालय में वर्त्तमान हैं।

६—(झ) प्रति—यह विशेषतः (क) से मिलती है, यद्यपि दूहे न्यूनाधिक हैं। इसका लिपि-काल लिखा नहीं है। पाठ शुद्ध है। इसकी विशेषता यह है कि इसके आरंभ में रूपांतर नं० २ की भाँति धुरसंबंध या प्रस्तावना भी है जो असली कथाभाग से बिलकुल अलग जान पड़ती है। यह धुरसंबंध रूपांतर नं० २ की प्रतियों की भाँति दूहा-चौपाइयों में नहीं किंतु केवल दूहों में है। जान पड़ता है कि कुशललाभ को ये दूहे पूरे नहीं मिल सके तभी उसने कथासूत्र मिलाने के लिये चौपाइयाँ जोड़ीं। इस धुरसंबंध में कुल १०८ दूहे हैं परंतु बीच का एक पृष्ठ नष्ट हो जाने से नं० ५२ से नं० ७६ तक के दूहे नष्ट हो गए हैं। पूरे दूहों का यह धुरसंबंध और किसी प्रति में नहीं मिलता।

यह प्रति हमें बीकानेर-निवासी बाबू जयपालसिंह से प्राप्त हुई।

७—(न) प्रति—यह केवल दूहों में है परंतु इसका कथानक मुख्यतया रूपांतर नंबर २ से मिलता है। इसका प्रारंभ भी गाहा से नहीं होता। आरंभ में धुरसंबंध है जो केवल दूहों में है परंतु जो (झ) के धुरसंबंध से बहुत कम समानता रखता है। इसमें नए और बाद के जोड़े हुए दूहे बहुत से हैं। इसका लिपिकाल संवत् १७७१ है।

यह प्रति नागौर (मारवाड़) के एक श्वेतांबर जैन उपाश्रय की निजी ग्रंथशाला में वर्त्तमान है ।

(२) रूपांतर नंबर २

८—(च) प्रति प्राप्त प्रतियों में यह सबसे प्राचीन है । इसका लिपि-काल संवत् १६६६ है । इसका पाठ बहुत शुद्ध और वर्त्तनी प्राचीन तथा उत्तर-कालीन दोनों प्रकार की है, फिर भी प्राचीन वर्त्तनी की ओर अधिक झुकाव है । इसमें दूहे सब नहीं हैं । बीच-बीच में कथासूत्र अनवच्छिन्न रखने के लिये कुशललाभ की चौपाइयाँ हैं । जो दूहे हमने अन्य प्रतियों से लिए उनकी वर्त्तनी हमने इसी के अनुरूप कर दी है । इसके बीच के २५ से ३० तक के ६ पृष्ठ नष्ट हो गए हैं ।

यह प्रति जोधपुर की सुमेर-पब्लिक-लाइब्रेरी में वर्त्तमान है ।

९—(ज) प्रति—यह (च) से मिलती हुई है पर नए दूहे भी बहुत से हैं । इसका पाठ शुद्ध है । इसका लिपिकाल सं० १७८१ है ।

यह प्रति जोधपुर के पुस्तकप्रकाश नामक राजकीय पुस्तकालय में वर्त्तमान है ।

१०—(थ) प्रति—यह (च) से मिलती-जुलती है । इसका पाठ शुद्ध है । लिपिकाल नहीं दिया गया है पर वर्त्तनी आदि को देखते हुए सं० १७०० के आसपास की होगी ।

यह प्रति बीकानेर के राँगड़ी नामक मुहल्ले के बड़े जैन उपाश्रय के महिमा-भक्ति-भंडार में वर्त्तमान है ।

इस रूपांतर की अन्य प्रतियाँ निम्नलिखित हैं—

११—(छ) प्रति—यह (च) से नकल की गई जान पड़ती है पर इसका पाठ महाभ्रष्ट है । संपादन के लिये यह किसी काम की नहीं ।

१२—(ठ) प्रति—यह बहुत आधुनिक है ।

१३—(द) प्रति }
१४—(ध) प्रति } —ये दोनों भी बहुत आधुनिक हैं । इनमें सैकड़ों दूहे नए हैं ।

(३) रूपांतर नंबर ३

१५—(ङ) प्रति—यह प्रति अधूरी है । इसका आरंभ का बहुत सा भाग नष्ट हो गया है ।

१६—(ट) प्रति—यह भी विशेष प्राचीन नहीं ।

(४) रूपांतर नंबर ४

१७--(म) प्रति--यह प्रति गुजराती में आनंद-काव्य-महोदधि, भाग ७, नामक पुस्तक में छप चुकी है। इसका लिपि-काल सं० १८०१ है। पाठ बहुत अशुद्ध है।

विशेष--इस संस्करण में केवल (क, ख, ग, च, ज, झ) प्रतियों के ही पूरे पाठांतर लिए गए हैं। अन्य प्रतियों के विशेष महत्त्वपूर्ण न होने से उनके केवल महत्त्वपूर्ण पाठांतर ही लिए गए हैं। (थ) प्रति के--महत्त्वपूर्ण होने पर भी, देर से मिलने के कारण--सब पाठ नहीं लिए जा सके।

इस संस्करण को वर्त्तनी हमने (च) प्रति के अनुसार सर्वत्र प्राचीन रखी है। जो दूहे प्राचीन वर्त्तनी में नहीं मिले उनकी वर्त्तनी भी प्राचीन कर दी गई है। छंद की मात्राएँ पूरी रखने के लिये आवश्यकतानुसार दीर्घ स्वर को ह्रस्व कर दिया गया है (उस समय भी वह बोला ह्रस्व ही जाता था पर लेखक लोग प्रमाद एवं प्राचीनता-प्रेम के कारण दीर्घ ही लिखते रहे)। ष अक्षर को उच्चारण के अनुसार सर्वत्र ख कर दिया गया है। पाठांतरों में ये परिवर्त्तन नहीं किए गए हैं।

नोट—यह संस्करण सब छप जाने पर और प्रस्तावना लिख जाने के बाद रूपांतर नं० २ की एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण प्रति प्राप्त हुई। अब तक प्राप्त प्रतियों में यह सबसे प्राचीन है। इसका लिपि-काल सं० १६५१ है। खेद है कि हम इस प्रति का उपयोग नहीं कर सके। आगामी संस्करण में इससे लाभ उठाया जायगा और परिशिष्ट में इसे उद्धृत कर दिया जायगा [यह प्रति (च) और (थ) प्रतियों से बहुत अधिक समानता रखती है और पाठ में बहुत ही कम स्थानों पर यत्किंचित् भेद पाया जाता है।]

सहायक पुस्तकों की सूची

कोष

(१) हिंदी-शब्दसागर (नागरीप्रचारिणी सभा, काशी) ।

(२) हरगोविंदास सेठ—पाइअ-सद्द-महण्णओ, प्राकृत का बृहत् कोष ।

(३) आपटे—संस्कृत-अँगरेजी कोष ।

(४) कविराज मुरारिदान—डिंगळकोष (रंगनाथ प्रेस, बूँदी) ।

(५) पाइअलच्छी नाममाला नामक प्राकृत कोष ।

अन्य पुस्तकें

(१) रामचंद्र शुक्ल—जायसी-ग्रंथावली ।

(२) श्यामसुंदरदास—कबीर-ग्रंथावली ।

(३) बाबूराम मिश्र—विद्यापति की कीर्त्तिलता ।

(४) मुनि संतत विजय—आनंद-काव्य-महोदधि, मौक्तिक ७ (गुजराती) ।

(५) मोहनलाल दलीचंद देसाई—जैन गुर्जर कविओ, भाग १ ।

(६) डाक्टर पी० गुणे—भविस्सयत्त कहा ।

(७) हरप्रसाद शास्त्री—बौद्ध गान ओ दोहा ।

(८) मुनि जिनविजय—प्राचीन गुजराती गद्य-संदर्भ ।

(९) केशव हर्षद ध्रुव—पंदरमा शतकना प्राचीन गुर्जर काव्य ।

(१०) पी० एल० वैद्य—जसहर चरिउ (कारंजा जैन सीरीज) ।

(११) ,, ,, —हेमचंद्र का प्राकृत व्याकरण ।

(१२) प्रो० हीरालाल जैन—नायकुमारचरिउ ।

(१३) ,, ,, —सावय-धम्म-दोहा ।

(१४) मुनि जिनविजय—कुमारपाल-प्रतिबोध ।

(१५) ,, ,, —प्रबंध-चिंतामणि ।

(१६) गौरीशंकर ओझा—राजपूताने का इतिहास ।

(१७) ,, ,, —टाड राजस्थान ।

(१८) रामनारायण दूगड़ और ओझा—मुँहणोत नैणसी की ख्यात, भाग १—२ ।

(१९) महाराज जगमालसिंहजी, ठाकुर रामसिंह और सूर्यकरण पारीक—वेलि क्रिसन रुकमणीरी राठोड़राज प्रिथीराजरी कही (हिंदुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग) ।

(२०) नरोत्तमदास स्वामी—राजस्थान रा दूहा (पिलाणी राजस्थानी सीरीज) ।

21. F. J. Child—English & Scottish Ballads.
22. Sargent & Kittredge—F. J. Child's English & Scottish Ballads, Students' Cambridge Edition (Harrap).
23. T. F. Henderson—The Ballad in Literature (Cambridge Manual Series).
24. L. Abercrombie—Essay on Epic (Art & Craft Series).
25. F. Sidgwick—Essay on Ballad (Art & Craft Series).
26. Article on Epic in Encyclopaedia Britannica.
27. Article on Balled in Encyclopaedia Britannica.
28. Dr. L. P. Tessitori—Progress Reports on the Work done in connection with the Bardic & Historical Survey of Rajputana for the years 1914 to 1918 (Published by the Asiatic Society of Bengal).

पत्रिकाएँ

(१) सुधा ।

(२) वीणा, भाग १, अंक ४ (पौष १९८४) ।

(३) नागरीप्रचारिणी पत्रिका, भाग २, में श्री चंद्रधर गुलेरी का पुरानी हिंदी नामक निबंध ।

(४) जैन-साहित्य-संशोधक, भाग २ ।

(५) वाक्-सौंदर्य (गुजराती)--संवत् १९७३ ।

(६) साहित्य (गुजराती)--सन् १९१४-१९१५ ।

(७) लीडर (अँगरेजी)--५ एप्रिल सन् १९३१ का अंक ।

(८) मॉडर्न रिव्यू (अँगरेजी)--एप्रिल सन् १९३१ का अंक ।

(९) हिन्दुस्तानी, भाग ४ अंक ४ (अक्टूबर १९३४), में नरोत्तमदास स्वामी द्वारा लिखित डिंगळ और काव्यदोष नामक निबंध ।

पुस्तिकाएँ, विवरण इत्यादि

(१) विश्वेश्वरनाथ रेउ--ढोला मारवण की कथा का और उसके आधार पर बने चित्रों का खुलासा (जोधपुर) ।

(२) रामकर्ण आसोपा--एकादश हिंदी-साहित्य-सम्मेलन का कार्य-विवरण, भाग २, में डिंगळ कविता नामक निबंध ।

(३) मुंसिफ देवीप्रसाद--गोविंद गिल्लाभाई के साथ ढोला-मारवणी की कथा के संबंध में पत्र-व्यवहार (हस्तलिखित) ।

मूल-पाठ

(हिंदी अनुवाद और पाठांतर सहित)

ढोला-मारूरा दूहा

(कथारंभ)

गाहा

पूगळि पिंगळ राऊ, नळ राजा नरवरे नयरे।
अदिठा दूरिट्ठा ये, सगाई दईय संजोगे ॥ १ ॥

दूहा

पूगळ देस दुकाळथियुँ, किणहीँ काळ विसेसि।
पिंगळ ऊचाळउ कियउ, नळ नरवरचइ देसि ॥ २ ॥
नळराजा आदर दियउ, जउ राजवियाँ जोग।
देस वास सवि रावळा, अइ घोड़ा अइ लोग ॥ ३ ॥

१—पूगल नगर में पिंगल और नरवर नगर में नल राजा (राज्य करते) थे। (यद्यपि) एक ने दूसरे को नहीं देखा था और दूर दूर रहते थे (फिर भी) दैवयोग से (उनमें) संबंध हुआ।

२—पूगल देश में किसी समय-विशेष में अकाल पड़ा। (इसलिये बाध्य होकर) राजा पिंगल ने नरवर के राजा नल के देश को प्रयाण किया।

३—राजा नल ने (उनका) ऐसा आदर किया जो राजाओं के योग्य हो और उनको देश में निवास (के लिये) महल, घोड़े और नौकर-चाकर आदि) सब दिए।

१—पूगळ (क. ख. ग)। नर (ख)। नयवरे (ख) नलवरे (ठ)। दिठदूरे (ग) दुरिटा (घ. ठ) दूरठाय (झ)। सग्गाई। दइय। देव (ग) देइ (ठ)। संयोगे (घ)।

२—पुंगळ (ठ)। थयौ। किनहीं (ग)। विसेपि (ख)। ऊचाव्ळा (क. ठ)। कीया (क. ठ.)। नर (ग)। चें (ठ)। देस।

३—जियुं राजा = जउ राजवियाँ (ठ)। सहि (क. घ. ठ)। सहु (ख)। अे। अै (घ)। वै = अइ (घ)। लोक (ग. घ)।

(ढोला-मारू-विवाह)

नरवर नळराजा-तणउ, ढोलउ कुँवर अनूप।
राँणि राउ पिंगळ-तणी, रीझी देखे रूप॥ ४॥
पिंगळ-पुत्री पदमिणी, मारवणी तिणि नाँम।
जोड़ी जोइ विचारियउ, धन्न विधाता-काँम॥ ५॥
सारीखी जोड़ी जुड़ी, आ नारी अउ नाह।
राँणी राजासूँ कहइ, कीजइ अउ वीमाँह॥ ६॥
राजा राँणीनूँ कहइ, वात विचारउ जोइ।
आज विखइ द्याँ दीकरी, हाँसउ हसिसी लोइ॥ ७॥

४—नरवर के राजा नल के ढोला नामक अनुपम कुमार था। राजा पिंगल की रानी उसके रूप को देखकर रीझ गई।

५—पिंगल के एक पद्मिनी कन्या थी। मारवणी उसका नाम था। (उसकी और ढोला की अनुरूप) जोड़ी देखकर (रानी ने) विचारा कि विधाता की यह रचना धन्य है।

६—रानी राजा से कहती है—यह अनुरूप जोड़ी बनी है—यह वधू और वह वर। यह विवाह कीजिए।

७—(उत्तर में) राजा रानी से कहता है—देख भालकर यह बात विचारो। आज विपत्ति के समय में (यदि) कन्या को दें तो लोग हँसी करेंगे।

४—नळवर (ग. घ)। तणै (क)। ढोलौ (ग) ढोलो (घ)। कुवर (क. ग.) कुमर (झ)। राँणी (क. ख. ग. घ)। राव (ख. ग) राय (ठ) राणी पिंगल-रावरी (ट)। देषे रीझी (क) सुदेषे रीझी (घ) रीझै देखी (झ) देषै रीझी।

५—पूत्रि (क. घ)। पदमणी (ग) मारवणि (ठ)। इण (ग. घ)। तिण (झ) तिणै (ठ)। तय मारवणी (ट)। देख=जोइ (ट)। विचारिज्यौ (क) निमारियो (घ) विसार कर (ट)। धन्य (ख) धन (ग. घ)।

६—ऊ=अउ (क. ख. झ. ठ) एह (ग)। वीवाह (क. घ) वैमाँहि (ग)।

७—राणी राजा (ग)। सु (क. ख. ग. घ. ठ) सूँ (ग)। विचारी (क. घ. ठ) बिचारे (ख)। जोय (ठ)। हसौ (घ)। हससी (ग)। लोक (घ)।

अंब तजइ नहि कोइलाँ, सरवर सालूराह।
राज हिवइ मा पाँतरउ, आ धण द्यउ अवराँह॥ ८॥
ज्यूँ थे जाणउ त्यूँ करउ, राजा आइस दीध।
राँणी राजानूँ कहइ, ओ म्हाँ नातरउ कीध॥ ९॥
ढोलउ-मारू परणिया, वरदळ हुवउ उछाह।
आ पूगळची पदमिणी, अउ नरवरचउ नाह॥ १०॥
पिंगळ पूगळ आवियउ, देसे थयउ सुगाळ।
तेणि न राखी सासरइ अजे स मारू बाळ॥ ११॥

८—(रानी कहती है—) कोयलें आम्र वृक्ष को नहीं छोड़तीं और मेंढ़क सरोवर को नहीं छोड़ते। हे राजन्, अब पागलपन मत करो, यह कन्या दूसरों को दो।

९—राजा ने आज्ञा दे दी कि जैसा तुम (उचित) समझो वैसा करो। (इस पर) रानी राजा से कहती है कि हमने यह संबंध किया।

१०—ढोला और मारू का परिणय हुआ। विवाह उत्सव धूमधाम से हुआ (या, दो श्रेष्ठ कुलों में संबंध हुआ)—यह पूगल की पद्मिनी है तो वह नरवर का अधिपति।

११—राजा पिंगल पूगल को लौट आया। देश में सुकाल हुआ। अभी तक मारवणी बालिका ही है (यह समझ कर) उसे ससुराल में नहीं रखा।

८—कोइली (क. ठ) काइली (घ)। सारूराह (ख)। मत राजा थे पातरौ (ख) मत राजा ये पंतरौ (ग) मत राजा ये पंतरैं (घ) थे राजा मत पांतरौ (झ) धन (ग) दै (घ) दयँ (ठ)।

९—ज्ये (घ)। आदेश (क) आहिस (ग) आदैस (घ)। दिध (ग)। सूँ=नूँ (क. ख. ग. घ)। राजासूँ राणी (घ) नातौ (ख)। किध (ग)।

१०—हूवौ (ख) हूऔ (ग)। पिंगळ (क)। पदमणी (ग. घ)। यो=अउ (घ)।

११—पुंगळ=पूगळ (ठ)। आवियो (क. घ)। आवियै (ख. ग)। हुओ (क) हूऔ (ग) हूवौ (घ)। सुकाळ (क. ख. घ)। तेण (क) तेणै (ग) तिण (घ)। देखे (क. ख) दिखै (घ)=अजे स।

(मारू का स्वप्न में पतिदर्शन और विरहाकुलता)

जिम जिम मन अमले किअइ, तार चढंती जाइ।
तिम तिम मारवणी-तणइ, तन तरणापउ थाइ ॥ १२ ॥
हंस चलण, कदळीह जँघ, कटि केहर जिम खीण।
मुख सिसहर खंजर नयण, कुच श्रीफळ, कँठ वीण ॥ १३ ॥
असइ आरखइ मारुवी सूती सेज विछाइ।
साल्हकुँवर सुपनइँ मिल्यउ, जागि निसासउ खाइ ॥ १४ ॥
ऊलंबे सिर हथ्थड़ा, चाहंदी रस-लुध्ध।
विरह-महाघण ऊमटयउ, थाह निहाळइ मुध्ध ॥ १५ ॥

१२—ज्यों ज्यों मन अधिकार जमाता हुआ ऊँचा चढ़ता जाता है त्यों त्यों मारवणी के तन में यौवन प्रकट होता जाता है।

१३—मारवणी की चाल हंस की जैसी, जंघाएँ कदली (के खंभ) जैसी, कटि सिंह की जैसी क्षीण, मुख चंद्रमा जैसा, नयन खंजन जैसे, कुच श्रीफलों के सदृश और कंठ वीणा के समान (मनोहर) हो गए।

१४—ऐसी (योवनागम की) अवस्था में मारवणी सेज बिछाकर सोई हुई थी। स्वप्न में साल्हकुमार (ढोला) मिला (और वह) जागकर (प्रिय-वियोग के कारण) निःश्वास भरने लगी।

१५—सिर को हथेली पर रखे हुए, प्रेमरस में निमग्न हुई मुग्धा मारवणी, जो विरह-रूपी प्रलयकालीन मेघ उमड़ आया है उसकी, थाह खोजती है।

१२—अमलाँ (ग) अमलै (घ) कीयाँ (ग. घ) कीऐ (ठ) ए (घ)। नार = तार (घ)। जाय (घ)। तरुणापौ (ख)।

१३—कदळीय (ख. ग)। केहर अति कटि (ख) केहर जिम कटि (ग) ज्युँ (क)। ससि (ख. ग)। खंजन (झ)। नयन (ख. ग)।

१४—ऐसै आरिष (क. घ. ठ)। मारवी (ख. ग) मारूवी (ठ)। बिछाय (क. घ.)। साल (ग)। कुवर (क. ग. घ)। सुपनै (ग. घ)। जाग (क. ग. घ)। खाय (घ)।

१५—ऊब्बंबी (क) ऊबंबी (ख. घ) ओबंबी (ग) उंबुंवी (झ) जंबंबी (ठ) ऊबंबी (त)। हथड़ा (ख. ग. घ)। चहंदी (ग) चाहदी (ठ)। लुध (ख. ग. ठ)। ऊमड़यौ (ख)। मूध (क) मूंध (ख)।

उक्कंबी सिर हथ्थड़ा, चाहंती रस-लुब्ध।
ऊँची चढि चातृंगि जिउँ मागि निहाळइ मुग्ध॥ १६॥
थाह निहालइ, दिन गिणइ, मारू आसा-लुब्ध।
परदेसे घाँघल घणा, विखउ न जाणइ मुग्ध॥ १७॥
ऊनमियऊ उत्तर दिसइँ, गाज्यउ गुहिर गँभीर।
मारवणी प्रिउ संभरयउ, नयणे वूठउ नीर॥ १८॥
मारूनूँ आखइ सखी; आज स काँइ उदास।
काँम-चित्राँम जु दिठ्ठ मइँ, रूप न भूलइ तास॥ १९॥

१६—ग्रीवा को हाथों पर उठाए हुए प्रेम में लुब्ध हुई मुग्धा मारवणी चिंतन करती हुई ऊँची चढ़कर चातक की भाँति मार्ग को देखती है।

१७—(प्रिय-मिलन को) आशा से लुब्ध मारवणी (विरह की) थाह खोजती है और दिन गिनती है। परदेश में बखेड़े बहुत हैं पर यह मुग्धा (विदेश-यात्रा के) कष्ट को नहीं जानती।

१८—उत्तर दिशा में मेघ उमड़ आए और वे गहन-गंभीर स्वर से गरजे। (ऐसे समय) मारवणी ने प्रियतम को स्मरण किया (और उसके) नयनों से जल बरसने लगा।

१९—मारवणी से सखी कहती है—आज कैसी उदास हो? (मारवणी उत्तर देती है—) काम (के समान सुन्दर) चित्र मेरी दृष्टि में है, मुझे उसका रूप नहीं भूलता।

१६—ऊबंबी (ज)। ऊंची वेसर हत्थड़ी (ध)। सइ=सिर (थ)। ऊँची चढवा नाक ज्युं (ग) उची चढिवा ता कहइ (च) ऊँचीं चढ बाताँ कहै (छ) उची चढि चातक ज्युँ (ज)। माग (ग)। निहाळै (क. ख. ग)। मुंद्ध (च)।

१७—चाह (घ)। नहाळै (घ) गणै (ग)। लूध (क) लुध (ख. घ)। परदेसाँ (ख. ग)। घाघल (घ)। परदेसाँ गढ लंघणी (ध)। मूध (क) मुंध (ख) मुध (घ)

१८—ऊनमीयौ (क. घ)। उनमियो (ग) ऊनवीयौ (ख)। दिसा (ख. ग. च. ज. थ)। उत्तर दिसा ऊंनमियो (ज)। गाज्यौ (क. ख) गाड्यौ (ग) गाजौ (घ) गाजै (ज) गाजे (थ)। गभीर (च)। प्रिय (क. घ) प्री (ख. च) प्रीय (ज) प्रिय (थ)। संभरयौ (क. ख. ग. घ) सांभरयौ (थ)। नयणाँ (ग)। वुठे (घ)। मूक्यउ (च. ज) मूक्यो (थ)=वूठइ।

१९—नैं (ग)। ज=जु (ख)। हिव मै=दिठ्ठ मइँ (ग)। भुली (ग)।

अम्हाँ मन अचरिज भयउ, सखियाँ आखइ एम।
तइँ अणदिट्ठा सज्जणाँ किउँ करि लग्गा पेम ॥ २० ॥
जे जीवण तिन्हाँ-तणाँ तन ही माँहि वसंत।
धारइ दूध पयोहरे बाळक किम काढंत ॥ २१ ॥
ससनेही समदाँ परइ, वसत हिया मंझार।
कुसनेही घर आँगणई, जाँण समंदाँ पार ॥ २२ ॥
सखिए सज्जण वल्लहा, जइ अणदिट्ठा तोइ।
खिण खिण अंतर संभरइ, नहीं विसारइ सोइ ॥ २३ ॥
मारूनूँ आखइ सखी, एह हमारी बुज्झ।
साल्हकुँवर सुहिणइ मिल्यउ, सुंदरि, सउ वर तुज्झ ॥ २४ ॥

२०—सखियाँ इस प्रकार कहती हैं—हमारे मन में आश्चर्य हुआ कि तूने प्रियतम को नहीं देखा (फिर) तेरा प्रेम उनसे क्योंकर हुआ।

२१—मारवणी उत्तर देती है—जो जिनका जीवन है वह उनके तन में ही वसता है। पयोधरों में से दूध की धाराओं को (जो उसका जीवन है) बालक किस प्रकार निकाल लेता है ?

२२—सच्चा प्रेमी समुद्र-पार होने पर भी हृदय में बसता है और कपट-स्नेही घर के आँगन में होते हुए भी मानो समुद्र के पार है।

२३—हे सखियो, प्यारा साजन यद्यपि नहीं देखा हुआ है तो भी उसे मेरा हृदय क्षण क्षण में स्मरण करता है और उसे नहीं भूलता है।

२४—मारवणी से सखियाँ कहती हैं कि हमारी समझ में तो यह आता है कि साल्हकुमार तुझे स्वप्न में मिला है। हे सुन्दरी, वह तुम्हारा पति है।

२०—अमाँ (ख. ग) अम्माँ (ग)। अचिरज (घ)। हुवौ (ख)। तैं (क. घ) ते (ग)। सजणाँ (ग) सजणा (घ)। क्युँ (ख. ग. घ)। कर (घ)। लगा (ग) लगो (घ)। प्रेम (ग)।

२१—जीवन (क. ख. ग)। जेन्हाँ (घ)। ते तन=तन ही (ख. ग)। माह (घ)। वसंति (ख)। पयोधरे (ख) पयोहराँ (ग)। केम (क. ख)। काढंति (ख)।

२३—सखी (ख) सखी हैं (ग)=सखिए। सजण (ख. ग. घ)। वलहा (ख. घ) जो (घ)। अदिठा (ख) अणदीठी (घ)। जोइ=तोइ (ख)। खणखणि (घ)। संभरूँ (ग)। नह (घ)। विसारूँ (क. ग. घ) विसारे (ख) तोइ (क. ख. घ)।

२४—ए (घ)। अम्हीरी (घ)। बुझ (ख. घ)। साल (घ)। कुमर (ख)। सुपनै (ख. घ)। सुंदर (ख. थ)। तुझ (क. ख. घ.)।

सखी-वयण सुंदरि सुण्या, उठी मदन की झाळ।
सुंदरिनूँ सज्जण-विरह ऊपन्नउ ततकाळ ॥ २५ ॥
हे सखिए, परदेस प्री, तनह न जावइ ताप।
बाबहियउ आसाढ जिम विरहणि करइ विलाप ॥ २६ ॥
बाबहियउ नइ विरहणी, दुहुवाँ एक सहाव।
जब ही बरसइ घण घणउ, तबही कहइ प्रियाव ॥ २७ ॥
बाबहिया, चढि गउखसिरि, चढि ऊँचइरी भीत।
मत ही साहिब बाहुड़इ, कउ गुण आवइ चीत ॥ २८ ॥
बाबहिया, चढि डूगरे, चढि ऊँचइरी पाज।
मत ही साहिब बाहुड़इ, सुणि मेहाँरी गाज ॥ २९ ॥

२५—सुंदरी (मारवणी) ने सखियों के वचन सुने तो (हृदय में) काम की ज्वाला उठ खड़ी हुई और उस सुंदरी को तत्काल प्रियतम का विरह उत्पन्न हुआ।

२६—हे सखियो, प्यारा परदेश में है, शरीर का ताप नहीं जाता। जैसे पपीहा आषाढ़ में विलाप करता है वैसे ही विरहिणी विलाप करती है।

२७—पपीहा और विरहिणी दोनों ही का एक स्वभाव है। जब जब मेघ बरसता है तभी ये दोनों "पी आव", "पी आव" पुकारते हैं।

२८—हे पपीहे, गोखे पर चढ़ या ऊँची भीत पर चढ़ (और टेर लगा) प्रियतम को स्यात् कोई गुण (बात) याद आवे और आते हुए वे कहीं लौट न जायँ।

२९—हे पपीहे, पहाड़ी पर चढ़ या सरोवर की ऊँची पाज पर चढ़ (और बोल), जिससे मेघों की गर्जना सुनकर प्रियतम कहीं लौट न जायँ।

२५—मंदर (घ)। कूँ (क. घ)=नूँ।

२६—हे सखी (क) सखी हे (ख)=हे सखिए। प्रीय (क) बाबीहौ (ख)। ज्यूँ (घ)।

२७—बाबहियै (क) बाबीहै (ख) बाबीहो (ज)। नें (ज) विरहिणी (क. ग)। दोनूँ (क) इयाँ दुइ (ग) दोन्युँ (ज) सभाव (क. ज) सुभाव (ग)। घन (क. ग)। तब=तबही (क. ख)। पुकारै (क. ठ)। प्रीय (क. ठ) प्री आव (ख) प्रीव आव (ज)।

२८—बाबीहा (क. ख)। चढ (ग)। डूँगराँ (ग)=गउख सिरि। गौख (ख)। सिर (क. ख. ग)। चढ (ग)। रखैज=मत ही (ज)। मति ही (ख. ग)।

२९—बाबीहा (क. ख)। डूँगराँ चढि (क)। डूँगराँ (ख)। चढ (ग)। ऊचेरी (ग)। सुणा (ग)। की (क. ख) कोइ (ज)=री।

सोरठा

बाबहिया, तूँ चोर, थारी चाँच कटाविसूँ।
राति ज दीन्ही लोर, मइँ जाण्यउ प्री आवियउ ॥ ३० ॥

दूहा

बाबहिया निल-पंखिया, मगरि ज काळी रेह।
मति पावस सुणि विरहणी तळफि तळफि जिउ देह ॥ ३१ ॥
बाबहिया तर-पंखिया, तइँ किउँ दीन्ही लोर।
मइँ जाण्यउ प्रिउ आवियउ ससहर चंद चकोर ॥ ३२ ॥
बाबहिया निल-पंखिया, वाढत दइ दइ लूण।
प्रिउ मेरा मइँ प्रीउकी, तूँ प्रिउ कहइ स कूण ॥ ३३ ॥

३०—हे पपीहे, तू ठग है, मैं तेरी चोंच कटवाऊँगी। रात को तूने टेर लगाई तो मैंने जाना कि प्रियतम आ गए।

३१—हे नीले पंखोंवाले पपीहे, तेरी पीठ पर काली रेखाएँ हैं। (तू मत बोल), वर्षा ऋतु में तेरा शब्द सुनकर विरहिणी कहीं तड़प तड़पकर प्राण न दे दे।

३२—हे गहरे रंग के पंखोंवाले पपीहे, तूने क्यों टेर लगाई? (तेरी टेर सुनकर) मैंने समझा कि (मुझ जैसे) चकोरों का शशांकधर चंद्र (अर्थात् मेरा प्रियतम) आ गया।

३३—हे नीले पंखवाले पपीहे, तू नमक लगा लगाकर मुझे काट रहा है। 'पिउ' मेरा है और मैं 'पिउ' की हूँ, भला पू 'पिउ पिउ' कहनेवाला कौन है?

३०—बाबीहा (ख)। तोरि=थारी (क)। चूँच (ख. ग) चंच (घ) चुंच (ज)। कटाइस्युँ (ख) कटाइसुं (ग)। रात (ग)। जु (ख)। लोइ (ग) हलोर (घ) रोल (ज)=लोर। प्रीय (ग)। (ज) में यह सोरठा नहीं किंतु दोहा है।

३१—बाबीहा (ख) मगर (क. ग)। जु (ख)। मत (क. ग)। पदमणी (ज) तरफि तरफि (क) तरफ तरफ (ग)। जीव (ख) जीव (ज)।

३२—केवल (ग) में।

३३—चांच कटायुँ पपिहरा ऊपर लाऊँ लूण (घ)।

बाबहिया रत-पंखिया, बोलइ मधुरी बाँणि ।
काइ लवंतउ माठि करि, परदेसी प्रिउ आँणि ॥ ३४ ॥
बाबहिया. प्रिउ प्रिउ न कहि, प्रिउ को नाम न लेह ।
काइक जागइ विरहणी, प्रीउ कह्याँ जिउ देह ॥ ३५ ॥
बाबहिया डूँगर-दहण. छाँडि हमारउ गाँम ।
सारी रात पुकारियउ लइ लइ प्रिउकउ नाँम ॥ ३६ ॥
[चहुँ दिस दामिनि सघन घन, पीउ तजी तिण वार ।
मारू मर चातग भए, पिउ पिउ करत पुकार ॥ ३७ ॥
पावस आयउ साहिबा, बोलण लागा मोर ।
कंता, तूँ घरि आव नवि, जोबन कीधउ जोर ॥ ३८ ॥

३४—हे लाल पंखोंवाले पपीहे, तू मीठी वाणी बोलता है। तू या तो बोलना बंद कर दे या मेरे परदेशी प्रियतम को यहाँ ला दे।

३५—हे पपीहे, तू 'पिउ पिउ' न कह, पिउ का नाम मत ले। कोई विरहिणी जाग रही होगी। वह तेरे 'पिउ' कहने से प्राण दे देगी।

३६—पर्वत (जैसे कठोरहृदय) में भी जलन उत्पन्न करनेवाले पपीहे, हमारा गाँव छोड़ दे। तू रातभर प्रियतम का नाम ले लेकर पुकारता रहा है (क्या तो भी नहीं अघाया ?)।

३७—चारों दिशाओं में बादलों में घनी बिजली (चमक रही) है। ऐसे समय में प्रियतम ने (मारवणी को) छोड़ दिया। वही मारवणी मानो मरकर चातक हो गई और अब 'पिउ पिउ' की पुकार कर रही है।

३८—हे प्रियतम, वर्षा ऋतु आ गई, मोर बोलने लगे। हे कंत, तू अब घर आ, यौवन ने जोर किया है।

३४—बाबीहा (ख) बाबीहउ (च) बाबीहा (थ)। निल=रत (क. ख)। बग चचड़ी (च) बग चंचड़ी (ज) चंगी चंचड़ी (थ)=रत पंखिया । बाण (ग) बाणि (च)। का (ख. ग.) काँइ (च) कँ (ज)। बोलंतौ (क. ख) लवइँ तूँ (थ)। मिठि (च) महठि (ज) मुठि (थ)। कइ (ग. च) घरि राज्यँद (क) राजिंद घर (ख) घरि राजिँद (ग)। प्री परदेसाँ (च) =परदेसी प्रिउ। परदेस प्रियाण (थ) आँण (ख. ग)।

३५—केवल (ग) में है।

३६—बाबीहा (ख)। डुंगर (ज) पंजर (द)। हमारा (ज)। प्रीय (क) प्रीयु (घ)।

३८—केवल (म) में।

गिरिवर मोर गहक्किया, तरवर मँक्या पात।
धणियाँ धण सालण लगा, वूठैतौ बरसात ॥ ३९ ॥
राजा, परजा, गुणिय-जण, कवि-जण, पंडित, पात।
सगळाँ मन ऊछव हुअउ, वूठैतौ बरसात ॥ ४० ॥
ऊनमि आई बद्दळी, ढोलउ आयउ चित्त।
यो बरसइ रितु आपणी, नइण हमारे नित्त ॥ ४१ ॥
ऊनमियउ उत्तर दिसइँ मेड़ी ऊपर मेह।
ते बिरहिणि किम जीवसे, ज्याँरा दूर सनेह ॥ ४२ ॥
ऊनमियउ उत्तर दिसइँ काळी कंठळि मेह।
हूँ भीजूँ घर-अंगणइ, पिउ भीजइ परदेह ॥ ४३ ॥
बीजुळियाँ चहलावहलि आभइ आभइ एक।
कदी मिलूँ उण साहिबा कर काजळ की रेख ॥ ४४ ॥]

३९—पावस के बरसते ही पर्वतों पर मोर उल्लास में भर उठे। (वर्षा-ऋतु ने) तरुवरों को पत्ते दिए। (और) विरहिणी स्त्रियों को पतियों की याद सालने लगी।

४०—वर्षा के बरसते ही राजा, प्रजा, गुणी, कविजन, पंडित और वृक्षों के पत्ते—इन सबके मन में उल्लास हुआ।

४१—बादल उमड़ आया (और) ढोला हमारे चित्त में (उमड़) आया। बादल तो अपनी ऋतु में ही बरसता है (परंतु) हमारे नेत्र नित्य बरसते रहते हैं।

४२—उत्तर दिशा की ओर अटारी पर मेह उमड़ आया। अब वह विरहिणी जिसका प्रेमी दूर है किस प्रकार जिएगी?

४३—काली कुंठुली (जैसी कोर) वाला मेघ उत्तर दिशा की ओर उमड़ आया है। मैं घर के आँगन में भीग रही हूँ (और मेरा) प्रियतम परदेश में भीग रहा है।

४४—बादल बादल में एक एक करके बिजलियों की चहल-पहल हो रही है। मैं भी नेत्रों में काजल की रेखा लगा करके प्रियतम से कब मिलूँगी?

३९—केवल (म) में।
४०—केवल (म) में।

बीजुळियाँ चहलावहलि आभइ आभइ च्यारि।
कद रे मिलउँली सज्जना लाँबी बाँह पसारि ॥ ४५ ॥
बीजुळियाँ चहलावहलि आभय आभय कोडि।
कद रे मिलउँली सज्जना कस कंचूकी छोडि ॥ ४६ ॥
गिरह पखालण, सर भरण, नदी हिंडोलणहारि।
सूती सेजइँ एकली, हइ हइ दइव म मारि ॥ ४७ ॥
दादुर-मोर टबक्क घण, बीजलड़ी तरवारि।
सूती सेजइँ एकली, हइ हइ दइव म मारि ॥ ४८ ॥
जळ थळ, थळ जळ हुइ रह्यउ, बोलइ मोर किँगार।
स्रावण दूभर हे सखी, किहाँ मुझ प्राण-अधार ॥ ४९ ॥

४५—बादल बादल में चारों ओर बिजलियों की चहल-पहल हो रही है। अरे मैं भी (इनकी तरह) लंबी भुजा पसारकर अपने प्रियतम से कब मिलूँगी?

४६—बादल बादल की कोर पर बिजलियों की चहल-पहल हो रही है। अरे, मैं भी कंचुकी के बंधन खोलकर अपने प्रियतम से कब मिलूँगी?

४७—पर्वतों को प्रक्षालन करनेवाली, सरोवरों को भर देनेवाली और नदियों को झकझोरनेवाली इस ऋतु में मैं अकेली सोई हुई हूँ। अरे दैव! अरे दैव! मैं हाहा खाती हूँ, मुझे मत मार।

४८—दादुर और मोर का घना शब्द हो रहा है। बिजली तरवार है। मैं अकेली सेज पर सोई हुई हूँ। अरे दैव, अरे दैव, मैं हाहा खाती हूँ, मुझे मत मार।

४९—(इतना जल बरस रहा है कि) जलाशय स्थल (जैसे) और स्थल जल (जैसे) हो रहे हैं (अर्थात् दोनों एकाकार हो गए हैं) और (तालाब के) करारों पर मोर बोल रहे हैं। हे सखी, यह श्रावण का मास (मेरे लिये) दुस्सह हो रहा है, मेरा प्राणाधार कहाँ है?

४५—सज्जनो (च)। भबूकियाँ (न)। जाइ मिलीजै (न)।
४६—सज्जनों (च)।
४७—भीलोलण (द) = हिंडोलण।
४८—सेजइ सूती प्री परदेसडइ तर्फ तर्फ दइव म मारि (च)।

बिज्जुळियाँ नीळज्जियाँ, जळहर तूँ ही लज्जि ।
सूनी सेज, विदेस प्रिय, मधुरइ मधुरइ गज्जि ॥ ५० ॥
राति सखी इणि ताल मइँ काइ ज कुरळी पंखि ।
उवै सरि, हूँ घरि आपणइ, बिहूँ न मेळी अंखि ॥ ३१ ॥
ए सारस कहिजइ, पसू पंखी केरा राव ।
उवै बोल्या सर ऊपरइ थाँ कीधी अणुराव ॥ ५२ ॥
राति जु सारस कुरळिया, गुंजि रहे सब ताल ।
जिणकी जोड़ी बीछड़ी, तिणका कवण हवाल ॥ ५३ ॥

५०—बिजलियाँ तो निर्लज्ज हैं । हे जलधर, तू ही लज्जित हो । मेरी शय्या सूनी है, मेरा प्यारा विदेश में है (इसलिये) मधुर मधुर शब्द से गरज ।

५१—हे सखी, रात को इस सरोवर में किसी पक्षी ने कलरव किया । वह सरोवर में और मैं अपने घर में—हम दोनों ही की आँख नहीँ लगी ।

५२—सखी कहती है—हे पक्षियों के राजा सारस आखिर पशु ही कहलाते हैं । वे सरोवर पर बोले और तुमने उनके शब्द का अनु-करण किया ।

५३—रात को जो सारस कुरलाए (करुण स्वर में बोले) तो सब सरोवर गूँज उठे । भला जिनकी जोड़ी बिछुड़ गई है उनकी क्या दशा होती होगी ?

५०—मेहा खरो निळज्ज = जळहर इ० (ध) । सुंदर = सूनी (ध) ।

५१—इण (ख) । काँइ जु (ख) । कुरझड़ियाँ कुरळाइयाँ पंचह वरनी पंषि (च) कुंझड़ियाँ (थ, घ) पंचइ (थ, घ) वरणी (थ, घ) । अवा (ख) उ (च, थ) आ (ठ) । सर (क) सिर (च) । आ हूँ (क) । घर (क) । बेहुं (ठ) मिळिया (ख) निमिली (च) मिलियै (थ) । अंख (क) । बेह न दीधी पंख (ध) ।

५२—उवै (क) औ (ग) । कहीयै (ग) । खंखि (घ) । के = केरा (घ) । उवे (क) उयै (ख) । सिर (ग) सिरि (घ) । ऊपरै (क) । कीवी अणराव (ख) थांही की उणराव (क) ।

५३—ज (क) । कुरळियाँ (क) । गूँझि (क) गूँज (ग) गाजि (थ) रही (ग) रह्यउ (थ) । सिर = सब (ख) । कूँझडियाँ कुरळायीयां (ग) कुँझड़ियाँ कुरळाइयाँ (थ) कुरझड़ीयाँ कळियलं कियो (न) = राति जु सारस कुरळिया । ऊँची बैसे तह्न = गुंजि रहे सब ताल (न) । जिनकी (ख) जाकी (घ) । बीछड़ै (ग) बिछुड़इ (थ) । ताकौ (क) । कुंवण (ख) । हवल्ल (न) ।

कूँझड़ियाँ करळव कियउ घरि पाछिले वर्णेहि।
सूती साजण संभरया, द्रह भरिया नयर्णेहि ॥ ५४ ॥
कूँझड़ियाँ कळरव कियउ घरि पाछिले ड्रंगि।
सूती साजण संभरया, करवत बूही अंगि ॥ ५५ ॥
कूँझड़ियाँ कुरळाइयाँ ओलइ बइसि करीर।
सारहली जिउँ सल्हियाँ सज्जण मंझ सरीर ॥ ५६ ॥
मंझि समंदाँ वीँट घर, जळसूँ जामोपत्त।
किणहीँ अवगुण कूँझड़ी, कुरली माँझिम रत्त ॥ ५७ ॥

५४—कुररी पक्षियों ने घर के पीछेवाले वन में करुण-रव किया। सोती हुई मारवणी को प्रियतम का स्मरण हुआ और उसके नयनों में आँसुओं का सरोवर भर आया।

५५—घर के पीछेवाले टीले पर कुररी पक्षियों ने करुण-रव किया (जिससे) सोती हुई मारवाणी को प्रियतम का स्मरण हो आया और उसके अङ्गो पर मानों आरी चल गई।

५६—करील की ओट में बैठकर कुररी पक्षी कुरलाए (जिसको सुनकर) प्रियतम (की स्मृति) शरीर में सार की तरह सालने लगी।

५७—समुद्र के बीच में वीँटों का तेरा घर है, जल से तेरी सन्तान की उत्पत्ति होती है। हे कुरझ, कौन से बड़े अवगुण के कारण तू आधी रात को कूक उठी।

५४—कुरझड़ियाँ (च) कळियर (क) कलरव (ख. ग) कुरळाइयाँ (च. थ)। घर (ख. ग. थ.)। पाछले (ख)। पछलै (ग)। वणेह (क. ख)। बनेंहि (च)। सुतां (च) सजन (ग) सज्जण (च)। समरीयाँ (थ)। नयणेह (क. ख)।

५५—कुरझड़ियाँ (च)। कळीयर (क) कळियळ (घ) कुरळाइयाँ (च. थ)। थळां (न)। थळी पइलइ (च) थळी ज पैलै (थ)=घरि पाछिले। पछवाड़े=पाछिले (क)। ड्रंग (क. ख. ग. च. न)। सांभरया (च) समरीया (थ)। बूहा (क. ख. ग. थ)। अंग (क. ख. ग)।

५६—कुरझड़ियाँ (च) क्रूझरिया (त)। कळियळ कियौ (क)। कळिकह (ख)। ऊची (क) उची (च) उंचइ (थ)। वैसि (क) बइस (ख)। करीरि (च)। सारहली (च)। जिम (ख) ज्यउं (थ)। सलीया (क) सलीयाँ (च)। साजण (ख)। म्हाह (ख) समझ (क) माँहि (थ)।

५७—मझ (क) मंझ (ग)। समुद्रां (क)। वैठि (ख) वीट (ग)। पति (क. ख)। किसौ (ख) किण (ग) किहाँ (घ)। अणूरौ। (ख)=अवगुण। रति (ख)।

कुंझड़ियाँ कळिअळ कियउ, सुणी उ पंखइ वाइ।
ज्याँकी जोड़ी बीछड़ी, त्याँ निसि नींद न आइ॥ ५८॥

कूँझड़ियाँ कळिअळ कियउ, सरवर पइलइ तीर।
निसिभरि सज्जण सल्लियाँ, नयणे वूहा नीर॥ ५९॥

सोरठा

मारवणी मनि रंगि, वाटइ तिणि आवी वहइ।
कुँझी एकणि संगि, तालि चरंती दिट्ठियाँ॥ ६०॥

दूहा

आडा डूँगर, दूरि घर, वणइ न जाणइ भत्त।
सज्जण-सन्दइ कारणइ हियउ हिलूसइ नित्त॥ ६१॥

५८—कुररी पक्षियों ने करुण-रव किया और मैंने उनके पङ्खों की वायु (पङ्ख फटफटाने की ध्वनि) सुनी। जिसकी जोड़ी बिछुड़ गई उसको रात्रि में नींद नहीं आती।

५९—सरोवर के उस पार, तीर पर, कुररी पक्षियों ने करुणरव किया। रात भर (विरहिणी के हृदय में) सजन सालते रहे और उसके नेत्रों से जल बहता रहा।

६०—प्रेम से रँगे हुए मनवाली मारवणी चलती चलती उस मार्ग पर आ निकली और वहाँ उसने बहुत सी कुरझों को (सरोवर के किनारे की) समतल भूमि पर एक साथ विचरण करते हुए देखा।

६१—बीच में पर्वत हैं और घर दूर है। जाना किसी भाँति नहीं बनता। प्रियतम के लिये हृदय नित्य ही लालायित रहता है।

५८—केवल (ज. छ) में।

५९—केवल (ज. छ) में।

६०—आघी (थ)=आवी। कुंझां (थ)। ए तिणि रंगि (थ)=एकणि संगि।

६१—रांम रती धण पूंवरी (क) राम रती धर पूवण न (घ)=आडा डूंगर दूरि घर। ण (ख. च)=न। जाना (ख. ग)। भांति (ख)। सजन (ख)। हीया (क)। उलसै (क)। रत्त (क) निति (ख)=नित्त।

कुंझाँ, द्यउ नइ पंखड़ी, थाकउ विनउ वहेसि।
सायर लंघी प्री मिलउँ, प्री मिलि पाछी देसि॥ ६२॥

म्हे कुरझाँ सरवर-तणा पाँखाँ किणहिँ न देस।
भरिया सर देखी रहाँ, उड़ आघेरि वहेस॥ ६३॥

उत्तर दिसि उपराठियाँ, दक्षिण साँमहियाँह।
कुरझाँ, एक सँदेसड़उ ढोलानइ कहियाँह॥ ६४॥

माणस हवाँ त मुख चवाँ, म्हे छाँ कूँझड़ियाँह।
प्रिउ संदेसउ पाठविसु, लिखि दे पंखड़ियाँह॥ ६५॥

६२—मारवणी कुररी पक्षियों को संबोधन करके कहती है—हे कुंझो, मुझे अपनी पाँखें दो, मैं तुम्हारा बाना बनाऊँगी और सागर को लाँघ करके प्रियतम से मिलूँगी और मिलकर तुम्हारी पाँखें लौटा दूँगी।

६३—(कुंझों का उत्तर—) हम सरोवर की कुंझें हैं। हम अपनी पाँखें किसी को नहीं देंगी। भरे हुए सरोवर देखकर हम ठहर जाती हैं, नहीं तो उड़कर दूर चली जाती हैं।

६४—(मारवणी कहती है—) हे कुंझो, उत्तर दिशा की ओर पीठ किये हुए, दक्षिण दिशा के सन्मुख चलकर, ढोला को एक सँदेशा कहना।

६५—(कुंझों का उत्तर—) मनुष्य हों तो मुख से कहें, हम तो बिचारी कुंझें हैं। यदि प्रियतम को सँदेशा भेजना हो, तो हमारी पाँखों पर लिख दो।

६२—कूंझड़ियाँ (क) कूंझी (ग) कुरझा (च)। दिइ न (च) दयो (थ)। पाँखड़ी (थ)। पांखां दियउ (क) वहंत (क. ख. ग)। कुरझड़ीयाँ म्हारी बीनडीयाँ पंख उधारी देह (थ)। लंघूं (क. ख) प्रीय (क. च) प्रिय (ग. थ)। मिलुं (क. ख) मिलू (ग) मिलौ (थ)। देस (क)।

६३—केवल (ज) में।

६४—दक्षिण दिशि (थ)। सांमुहियाँह (थ)। कुंझी (थ)।

६५—हुवां (क) हाँ (ग)। तौ (ख. ग)। मुह (क)। चवौ (ग)। मारू म्हे माणस नहीं (क)। तों (ग) तउ (च. थ)=छाँ। कुरझड़ियाँह (च)। प्रिय (ग. थ) प्रीउ (च)। पाठविसि (क) पाठवीस तउ (ग) परठवो (न)। ढोलै तणा संदेसड़ा (क. ख. ग)=प्रिउ संदेसउ पाठविसु। सुलिख (क)। पांखड़ियाँह (थ)।

पाँखे पाँणी थाहरइ, जळि काजळ गहिलाइ।
सयणाँ-तणाँ सँदेसड़ा, मुख वचने कहवाइ॥ ६६॥

तालि चरंती कुंझड़ी, सर संधियउ गँमार।
कोइक आखर मनि बस्यउ, ऊडी पंख सँमार॥ ६७॥

जिम जिम सज्जण-संभरइ, तिम तिम लग्गइ तीर।
पंख हुवइ तो जाइ मिलि, मनाँ बँधाँड़ाँ धीर॥ ६८॥

आडा डूँगर, बन घणा, खरा पियारा मित्त।
देह विधाता, पंखड़ी, मिलि मिलि आवउँ नित्त॥ ६९॥

आडा डूँगर, भुइ घणी, सज्जण रहइ विदेस।
माँगी-ताँगी पंखुड़ी केती वार लहेस॥ ७०॥

६६—(मारवणी फिर कहती है —) तुम्हारी पाँखों पर पानी पड़ेगा, (जिससे) स्याही जल में बह जायगी। प्रियतम का सँदेशा तो मुख द्वारा ही कहलाया जा सकता है।

६७—सरोवर में विचरती हुई कुंझों पर किसी गँवार ने बाण संधाना। (उनके) मन में कोई आंतरिक प्रेरणा उत्पन्न हुई और वे पंख सँवारकर उड़ गईं।

६८—ज्यों ज्यों प्रियतम का स्मरण होता है त्यों त्यों मानो (हृदय में) तीर लगता है। यदि मेरे पंख हों तो उनसे जा मिलूँ और मन को धीरज बँधाऊँ।

६९—बीच में बहुत से पहाड़ और जंगल हैं, मेरा मित्र अत्यंत प्यारा है। हे विधाता, मुझे पंख दे जिससे मैं नित्यप्रति मिल आया करूँ।

७०—बीच में बहुत से पहाड़ हैं, फासला बहुत है और प्रियतम विदेश रहते हैं। उनसे मिलने के लिये माँगी हुई पाँख भला कितनी बार पाऊँगी।

६७—ताल (क. ख. ग. च)। कूँजड़ी (ग) कुंजड़ी (थ)। संधीयो (ग) संधीयउ (च)। गवार (ग) गमारि (थ)। अंतर (छ)। मन (ग)। वस्यौ (ग)। सवार (ग)।

६९—डुंगर (च)। आवउ (च)।

७०—लहेसि (च)। सायर ऊंडो जळ घणो परभौ घणो सहेस (थ)।

पाँखड़ियाँ ई किउँ नहीँ, दैव अवाहू ज्याँह ।
चकवीकइ हइ पंखड़ी, रयणि न मेळउ त्याँह ॥ ७१ ॥

आडा डूँगर, भुइँ घणी, तियाँ मिळोजइ एम ।
मनिहूँ खिणहि न मेल्हियइ, चकवी दिणियर जेम ॥ ७२ ॥

ज्यूँ ए डूँगर संमुहा, त्यूँ जइ सज्जण हुंति ।
चंपावाड़ी भमर ज्यउँ, नवण लगाइ रहंति ॥ ७३ ॥

जिणि देसे सज्जण वसइ, तिणि दिसि वज्जउ वाउ ।
उआँ लगे मो लग्गसी, ऊ ही लाख पसाउ ॥ ७४ ॥

कउआ, दिऊँ बधाइयाँ, प्रीतम मेळइ मुज्झ ।
काढि कळेजउ आपणउ भोजन दिउँली तुज्झ ॥ ७५ ॥

७१—जिनका भाग्य उलटा है उनके पंख (होने से) भी कुछ नहीं। चकवी के पंख हैं, परंतु उसका भी रात्रि में (प्रिय से) मिलन नहीं होता।

७२—(उनके) बीच में पहाड़ और बहुत सी भूमि (दूरी) है, उनसे इसी प्रकार मिलन हो सकता है कि उनको एक क्षण के लिये भी मन से नहीं हटाना चाहिए जिस प्रकार चकवी सूर्य को (नहीं हटाती)।

७३—जैसे ये पर्वत सामने हैं वैसे ही यदि प्रियतम भी होते तो जिस प्रकार भ्रमर चंपा के बाग की ओर दृष्टि लगाए रहते हैं उसी प्रकार मैं भी उन पर नयन लगाए रहती।

७४—हे वायु, जिस दिशा में प्रियतम बसते हैं उसी दिशा की ओर से चलो। उनका स्पर्श करके मुझे छुओ। वही मेरे लिये लाख पसाव होगा।

७५—हे कौवे, यदि तू मुझे प्रियतम से मिला दे तो मैं तुझे बधाइयाँ दूँ और अपना कलेजा निकालकर तुझे भोजन को दूँगी।

७१—क्युं (च)। पुंखड़ी (च)।
७२—डुंगर (च)।
७३—डुंगर (च)।
७५—जु प्री = प्रीतम (च)। तीजन (छ) = भोजन।

जब सोऊँ तब जागवइ, जब जागूँ तब जाइ।
मारू ढोलउ संभरइ, इणि परि रयण विहाइ ॥ ७६ ॥

(राणी का मारवणी की दशा जानना)

सखियाँ राँणीसूँ कहइ, मारू-मन,भाँणी।
साल्हकुँमर पासइ विना, पद्मिणि कुँमलाँणी ॥ ७७ ॥
सखियाँ राँणीसूँ कहइ, तनह न जावइ ताप।
साल्ह-विरह तिल तिल मइँ, मारू करइ विलाप ॥ ७८ ॥
इणि परि ऊमा देवड़ी जाणी मारू-वत्त।
सु प्रभाति कहिवाभणी, पिंगळ पासि पहुत्त ॥ ७९ ॥
आखय ऊना देवड़ी, संभळि पिंगळ राइ।
विरह-वियापी मारुई, नहिँ राखणकउ दाइ ॥ ८० ॥

७६—जब सोती हूँ तब (स्वप्न में आकर) जगा देता है। जब जाग उठती हूँ तब चला जाता है। (यों कहती हुई) मारवणी ढोला की याद करती है और इस प्रकार रात्रि बिताती है।

७७—(मारवणी की यह दशा देखकर) मारवणी की मनभावती सखियाँ राणी से कहती हैं—साल्हकुमार (रूपी सूर्य) के पास न होने से यह पद्मिनी कुम्हला गई है।

७८—सखियाँ राणी से कहती हैं—तन का ताप नहीं जाता। रोम रोम में साल्हकुमार का विरह छा गया है और मारवणी विलाप करती है।

७९—इस प्रकार ऊमा देवड़ी ने मारवणी की बात जान ली और प्रातः काल हो सब हाल कहने के लिये राजा पिंगळ के पास पहुँची।

८०—ऊमा देवड़ी कहती है—हे पिंगळ राजा, सुनो। मारवणी विरह से व्याप्त हो गई है। उसे बचाने का कोई उपाय नहीं (सूझ पड़ता) है।

७७—राणी राजा सूँ (क)। राजा कहै राणी (न)। साल्हविरह हेमंत ज्युं= साल्ह...विना (न)। मारू (न) पदमण (ग)।

७८—साल्हकुँवर तन मन में (झ)।

७९—पहूत (च) पहत्त (छ)।

८०—आखइ (थ)। उमा (च)। मा ऊमादे बीनवै (ग)। राउ (ग)। मारवी (ग)। दाउ (ग)।

नितु नितु नवला साँढ़िया, नितु नितु नवला साजि।
पिंगळ राजा पाठवइ, ढोला तेड़न काजि ॥ ८१ ॥
न को आवइ पूगळइ, सहु को नरवर जाइ।
मारू-तणा संदेसड़ा बगड़ बिचाहू खाइ ॥ ८२ ॥

(सौदागर द्वारा ढोला के समाचार मिलना)

एक दिवस पूगळ सहर, सउदागर आवंत।
तिणपइ घोड़ा अति घणा, बेच्या लाख लखंत ॥ ८३ ॥
पिंगळ राजानूँ मिल्यउ, सउदागर तिणि बार।
राज-दुवारइ तेड़ियउ, आदर करे अपार ॥ ८४ ॥
सउदागर पिंगळ मिल्यउ, बहुत दियउ सनमाँन।
रात-दिवस प्रेमइ मिल्यउ, इम पिंगल राजाँन ॥ ८५ ॥

८१—प्रतिदिन नए नए साँढनी-सावरों को, नए नए साज-सामान के साथ, पिंगळ राजा ढोला को बुलाने के लिये भेजता है।

८२—सब कोई नरवर को जाते हैं परंतु पूगळ को लौटकर कोई नहीं आता। मारवणी के संदेशों को कोई दुष्ट बीच ही में हड़प जाता है।

८३—एक दिन पूगळ नगर में एक सौदागर आता है, उसके पास बहुत से घोड़े हैं जिनको बेचने से एक एक के लाख लाख रुपए मिलते हैं।

८४—उस समय सौदागर पिंगळ राजा से मिला। राजा ने बहुत आदर करके उसको राजदरबार में बुलाया।

८५—पिंगल सौदागर से मिला और उसका बहुत सम्मान किया। इस प्रकार वह सौदागर पिंगल राजा से दिन-रात प्रेम सहित मिलता रहा।

८१—संढिया (ग) संढीया (थ)। साज (थ)।

८२—राजा वाक्य (क. भ) राणी वाक्य (ख. ग)।

नरवरां (क) पूगळां (ग)। न को=सहु को (ख. ग) इहांसु (क)=नरवर। ढोलै=मारू (क. थ) ढोला (ग)। को बगड़ (ख) बगण (ग) कोई (न)। बिचाहूँ (ख) बिचाऊ (क. ग) बिचाल्इ (थ) बिचाई (न)। उहाँरा को आवइ नहीं इहाँ। सहू को जाइ, मारू तणा संदेसड़ा को पिसुण बिचाहू खाइ (च. थ)। उहाँ को कोई आवइ नहीं इहाँ कोइ सब जाय, मारू तणा संदेसड़ा को पिसुण बिचाउ खाय (ज)।

८३—इक (ख)। सहिर (ग)।

८४—केवल (क. ख. थ) में।

८५—केवल (ग) में।

सउदागर राजा तिहाँ बइठा मंदिर मंझ।
मारू दीठी अउझकइ, जाँणि खिवी घण संझ॥ ८६॥
सुंदरि, सोवन वर्ण तसु, अहर अलत्ता रंगि।
केसरि लंकी, खीण कटि, कोमल नेत्र कुरंगि॥ ८७॥
सउदागर खवासनूँ पूछइ, लइ तिण मन्न।
दीसइ रायंगणमहीँ कुँवरी कंचन-व्रन्न॥ ८८॥
ते देखी, तिणि पूछियउ, कुण ए राजकुमारि।
किह पीहर, किह सासरउ, विगतइ कहइ विचारि॥ ८९॥
कुँवरी पिंगळ रायनी, मारुवणी तसु नाँम।
नरवरगढ़ ढोलइ भणी परणी पुहकर ठाँम॥ ९०॥

८६—एक दिन सौदागर और राजा वहाँ महल में बैठे हुए थे। तब (सौदागर ने) मारवणी को अचानक झरोखे में देखा मानो संध्या समय बादल में बिजली चमकी हो।

८७—वह सुंदरी थी, उसका रंग सुवर्ण जैसा था, अधर अलक्तक के से रंग के थे, उसकी कमर सिंह की कमर के समान क्षीण थी और वह हरिण के समान कोमल नेत्रोंवाली थी।

८८—सौदागर खवास से, उसका मन लेकर, पूछता है—राज-महल में कंचन वर्णवाली कुमारी दीख पड़ती है।

८९—उस (मारवणी) को देखकर उसने पूछा—यह राजकुमारी कौन है? कहाँ इसका पीहर है और कहाँ ससुराल है? विचारकर (सब हाल) ब्यौरेवार कहो।

९०—(उत्तर—) वह पिंगल राजा की कुमारी है, मारवणी उसका

८६—बिन्हें बैठा = वइठा मंदिर (क)। मंझि (क)। बैठी = दीठी (घ)। जाँण (ख)। सजि = संझ (क)।

८७—सोहग सुंदरि = सोवन बर्ण तसु (ज)। सोवन्न वन्न (थ)। अहिर (ज)। रंग (ज)। नेत्र (ज. थ)। कुरंग (ज. थ)। खंजर नयणी खिण कटी (ज)।

८८—मन (ख)। राय अंगण (क. ख)। कंचण (ख)। वरर्ण (क) व्रन (ख)।

८९—ति (च)। पूछियो (थ)। य = ए (च)। किहाँ (ज. थ)। पीहरि (थ)। सासुरौ (थ)। विगति (थ)। लियो (ज) कहो सु (थ)।

९० कुमरी (ग)। रायरी (च)। पिंगल राजा कूँवरी (क)। मारवणी (ख. ग.- च)। तिण (क) तिणि (ख) इण (ग) इंण (ज) इणि (थ)। नाम (च) नामि

दृउढ वरसरी मारुवी, त्रिहुँ वरसाँरउ कंत।
बाळपणइ परण्याँ पछइं, अंतर पड्यउ अनंत॥ ९१॥

सउदागर राजा कन्हे अरज करइ एकंति।
साल्हकुँवर सूँ वीनती कहि किण दाखूँ भति॥ ९२॥

सल्हकुवर सुरपति जिसउ रूपे अधिक अनूप।
लाखाँ बगसइ माँगणा, लाख भड़ाँ सिर भूप॥ ९३॥

माळवगढ़ राजा सुधू, कुँवरी माळवणीह।
ढोलइ तिण बहु प्रीति छइ अति रंग नेह घणीह॥ ९४॥

नाम है और पुष्कर नाम के स्थान पर नरवर गढ़ के राजकुमार ढोला के साथ इसका विवाह हुआ है।

९१—उस समय मारवणी डेढ़ वर्ष की थी और उसका पति तीन वर्षों का था। बालपन में विवाह हो जाने के पश्चात् दोनों के बीच में बहुत भारी अंतर पड़ गया।

९२—सौदागर राजा से एकांत में अर्ज करता है कि बताइए, मैं साल्ह-कुमार से किस भाँति विनती कह सुनाऊँ।

९३—साल्हकुमार इंद्र जैसा रूप में अतीव अनुपम है। वह याचकों को लाखों का दान देता है और लाखों योद्धाओं का अधिपति है।

९४—मालवगढ़ के राजा की सुंदर कन्या राजकुमारी मालवणी (उसकी स्त्री) है। ढोला का उससे अति अनुराग और स्नेहपूर्ण घनिष्ट प्रेम है।

(थ)। नलवर (क. ग. थ) गढि (थ)। ढोला तणी (ग) ढोला भणी (च. थ)। परण्या (ख)। पुक्कर (घ) पुष्करि (थ)। गाँम (क. ख. ग) ठांमि (च. थ)।

९१—डोढ (क)। मारवी (ख)। त्रिह (ख)। बत सुणी सौदागरै जाण्यौ सहु वृत्तंत (ग. थ)। बात सुण सउदागरइ जाण्यउ सहु वृत्तंत (च) बाळपणै (क. ख. ग)। परणी (क. ग) परण्या (च)। विन्हें (च), विन्हइ (थ) = पछै। पड़यौ (क. ख. ग)।

९२—कहै (घ)। एक करंत = करै एकंति (क. घ)। सौं (ख)। किम (ख)। भंति (क)।

९३—रूप अनूपम रूप (ख) रूपै अमर सरूप (ग)। लाख (क. ख)। लोयणां (क. ग)। लखाँ (ग)।

९४—सधू (ग)। प्रीत (ख. ग)।

मइँ घोड़ा बेच्या घणा, रहियउ मास चियारि।
राति दिवस ढोलइ कन्हइ, रहतउ, राज दुवारि ॥ ९५ ॥

राजा, कउ जण पाठवइ, ढोलइ निरति न होइ।
माळवणी मारइ तियउ, पूगळ पंथ जिकोइ ॥ ९६ ॥

सउदागर राजासुँ कहइ, सुणउ हमारी कथ्थ।
मारवणी छानी रही, से माळवणी तथ्थ ॥ ९७ ॥

सही समाँणी साथि करि, मंदिरकूँ मल्हपंत।
सउदागर-नेड़ी वहइ, सुणिवा प्रीतम-वत्त ॥ ९८ ॥

९५—मैंने वहाँ बहुत घोड़े बेचे और चार मास तक रहा। तब मैं रात दिन ढोला के पास राजद्वार में ही रहता था।

९६—हे राजन् आप कोई आदमी भेजते हैं पर ढोला को खबर नहीं होती। जो कोई पूगळ के मार्ग पर होता है उसको मालवणी मरवा देती है।

९७—सौदागर राजा से कहता है—हमारी बात सुनिए। जो मारवणी ढोला से अब तक छिपी रही उसका रहस्य मालवणी है।

९८—समवयस्का सखियों को साथ लेकर मंदिर को जाती हुई मारवणी प्रियतम की बातें सुनने के लिये सौदागर के पास से निकलती है।

९५—चीयार (क)। दुवार (क)।

९६—जन (ग)। पाठवै (क. ख. ग)। पिंगळ दिनप्रति (च. थ) पिंगळ राजा (ज)=राजा कउ जण। ढोला (च. ज. थ)। निरत (ज)। होय (ज)। मारै (क. ख. ग)। तिहाँ (च. थ)। सदा मारही=मारइ तियउ (ज) पूगळि (थ)। ज (च. ज), न (थ)=जि।

९७—कहै (क. ख. ग)। कथ (ख)। मालवणी (क. ख. ग)। थ्यौ=से (क)। हत्थ (क)।

९८—संति सखी (क. ख) साति सखी (घ) सह सामहणी (च)। साथे करे (क. ख) साथ कर (ग)। साथ (च)। घर आवै मयमत्त (ग) घरि आवइ मयमत्त (च. थ)=मंदिर कूँ मल्हपंत। सौदागर (क. ख) सौदागर (ग)। नडी (ग) साथी (ग)। वहै (क. ख. ग)। कावले संभालावत (ग) का घळि संभळि वत्त (च. थ)=सुणिवा प्रीतम वत्त।

सउदागर 'संदेसड़ा, साँभळिया स्रवणेहि ।
मारुवणी ते मन दहइ, मूक्यउ जळ नयणेहि ॥ ९९ ॥

सउदागर राजा कन्हइ, कहियउ एह विचार ।
राँणी राय विमासियउ, तेड़इ, साल्हकुमार ॥ १०० ॥

राजा प्रोहित तेड़ियउ, तूँ जाइ ढोलउ ल्याव ।
सखियाँ मारूनूँ कहइ, हुवउ अणंद उछाव ॥ १०१ ॥

राँणी राजानूँ कहइ, मेल्हउ माँगणहार ।
माँगणगारा रीझवइ, ल्यावइ साल्हकुमार ॥ १०२ ॥

राजा प्रोहित राखिजइ, जिण की उत्तिम जाति ।
मोकलि धररा मंगता, विरह जगावइ राति ॥ १०३ ॥

९९—सौदागर के संदेशों को मारवणी ने कानों से सुना। उनसे मारवणी का मन संतप्त हो उठा और नयनों में आँसू बह चले।

१००—सौदागर ने राजा के आगे ये समाचार कहे। (इसके पीछे) राणी और राजा ने परामर्श किया कि साल्हकुमार को बुला भेजें।

१०१—राजा ने पुरोहित को बुलाया और कहा कि जाकर ढोला को ले आओ। यह सुनकर सखियाँ मारवणी से कहती हैं कि अब आमन्दोत्सव हुए।

१०२—राणी राजा से कहती है कि याचकों को भेजो, याचक लोग साल्हकुमार को रिझा लेंगे और उसे ले आवेंगे।

९९—सौदागर (क. ख)। संभळीया (च)। श्रवणेह (क. ख)। मालवणी प्रिय संभरयौ (ख) मारवणी मनमथ हुई (क) मारुवणी मन्नि अंदोह घणी (ज) मारुवणी मनि ऊमह्यो (थ)।

१००—तेड्यो (ख) तेडो (घ)।

१०२—मेल्हे (क)। गाई=गारा (घ)। ल्यावी (ख) सुख पावै (क)=ल्यावइ। कुवार (ख)।

१०३—बाबा विप्र म मोकळे (ग. च) बाबा विप्र म कोळे (थ) ब्रांह्मण बाप म मोकळे (ज)। जांह (क. ख. ग)। उतिम (ख) सूधी (छ) सीतळ (न)। जात (ग)। मेल्हे (क) मूके (ग. थ.)। का=रा (ख. थ)। मागता (ख) मंगिता (थ)। पुकारै (क. ख)। रात (ग)। ज्यउँ विरह=विरह (च)।

पाछइ प्रोहित राखियउ, तेड़्या माँगणहार।
जे भेदक गीताँ-तणा, बात करइ सुविचार ॥ १०४ ॥
ढाढी गुणी बोलाविया राजा तिणही ताळ।
नरवरगढ़ ढोलइ-कन्हइ जावउ वागरवाळ ॥ १०५ ॥
सीख करे पिंगळ कन्हाँ, घर आया तिणि बार।
मेल्हि सखी तेड़ाविया मारू माँगणहार ॥ १०६ ॥
मारू सनमुख तेड़िया, दियण सँदेसा कज्ज।
कहउ कदे थे चालिस्यउ, काँइ विहाणइ अज्ज ॥ १०७ ॥
आज निसह म्हे चालिस्याँ, वहिस्याँ पंथी-वेस।
जउ जीव्या तउ आविस्याँ, मुया त उणिहिज देस ॥ १०८ ॥

१०३—हे राजा, पुरोहित को रहने दो जिसकी जाति उत्तम है। घर के याचकों को भेजिए जो रात्रि में विरह को जागरित करेंगे।

१०४—पीछे राजा ने पुरोहित को रोक लिया और याचकों को बुलाया जो संगीत के भेद जाननेवाले और खूब विचारकर बातें करनेवाले थे।

१०५—राजा ने तत्काल गुणी ढाढियों को बुलवाया और कहा कि हे याचको, नरवगढ़ ढोला कुमार के पास जाओ।

१०६—ढाढी पिंगळ से बिदा लेकर उस समय घर लौट आए। मारवणी ने सखी को भेजकर याचकों को बुलाया।

१०७—मारवणी ने (प्रियतम का) संदेश देने के लिये ढाढियों को सन्मुख बुलवाया और कहा—कहो, तुम लोग कब प्रस्थान करोगे? सवेरे या आज ही?

१०८—ढाढियों ने उत्तर दिया—

आज रात्रि को हम चल देंगे और पथिक के वेश में चलेंगे। यदि जीते रहे तो आवेंगे और मर गए तो उसी देश में (रह जायँगे)।

१०४—प्रोहित घर ना राखिया (थ)। भेंद (थ)। गीता (च)। जणा (थ)।

१०५—गुणी ढाढी (क)। तिणही ज (ग)। नळवर (क. ख. ग)। कुँवर=कन्है (क)। माँगणवाळ (ख)।

१०७—सनमुखे (क. ख)। कहण=दियण (क. ग)। काज (ख) कज (ग)। कदि (ख) का (क. ग)। आज (ख) अज (ग)।

१०८—हूँ (क. ख)। पंथी (क. ख)। जौ (क. ख)। जीवीया (क. ख. ग) जीवीया (थ)। आइस्याँ (ख) आवस्याँ (ग)। मुआँ (ख) मुहा (ग) मूआ (च)

मारुवणी भगताविया मारू राग निपाइ।
दूहा संदेसाँ-तणाँ दीया तियाँ सिखाइ॥ १०९॥

(मारवणी का सँदेसा)

नरवर देस सुहाँमणउ, जइ जावउ पहियाह।
मारू-तणा सँदेसड़ा ढोलइनूँ कहियाह ॥ ११०॥

संदेसा ही लख लहइ, जउ कहि जाणइ कोइ।
ज्यूं धणि आखइ नयण भरि, ज्यँउ जइ आखइ सोइ॥ १११॥

ढाढी, एक सँदेसड़उ प्रीतम कहिया जाइ।
सा धण बलि कुइला भई, भसम ढँढोलिसि आइ॥ ११२॥

१०९—मारवणी ने मारू राग में बनाकर संदेस के दोहे कहे और उनको सिखा दिए।

११०—नरवर देश सुहावना है। हे पथिको, यदि तुम वहाँ जाओ तो मारवणी के सँदेसे ढोला को कहना।

१११—सँदेसों से ही मन की दशा जानी जा सकती है, यदि कोई कहना जाने—जिस प्रकार प्रेयसी आँसुओं से आँखें भरकर कहती है उसी प्रकार यदि वह कहे।

११२—हे ढाढी, जाकर प्रियतम से एक सँदेसा कहना—तुम्हारी वह प्रेयसी जलकर कोयला हो गई है, तुम आकर उसकी भस्म को ढूँढ़ना।

मुआ (थ)। तउ (च)। उणही (च. ज. थ)। देसि (च. ज. थ)। म्हाँकउ सज्जन तिह वसइ, जिहाँ चंदउ चउथइ देसि (च) म्हाका जज्जन तिहाँ बसइ, जिहाँ सुचंगी वैदेस (ज) थाँका सज्जन जिहाँ वसइ, जिहाँ सुचंद चउथइ देसि (थ)। (प्रथम पंक्ति)

१०९—मारवणी (ग. च. ज)। नपाय (ग) नीपाइ (च) नीपाय (ज. थ)। मिसैं=तणा (ग) तीया (ग) तिहाँ (ज) तसु (च)। सिखाय (ग. ज) सीखाइ (च)।

११०—सखी वाक्यं (क. ख)।

सुहावणौ (क) सुहाँमणौ (ख)। जउ (क)। ढोलानै (क)।

१११—संदासा (ख) संदेसउ (च)। लहै (ख) लिख्या (क)। जै (ख)। जाँणै (क. ख. ग)। हूँ=धणि (क. ख. ग)। देखूँ=आखइ (क. ख. ग) त्युं (क) तिम (ख)=ज्यउ। जउ (क) जै (ख)=जइ। देखै (क) अखै (ख) दाखै (घ)।

११२—लगि पुहचाइ (ग)। सायधण (ख. ग)। कोइला (क. ग. झ)। हुई (ख. ग)। ढंढालिस (क)।

ढाढी, जे प्रीतम मिलइ, यूँ कहि दाखवियाह।
पंजर नहिँ छइ प्रांणियउ, थाँ दिस झळ रहियाह॥ ११३॥
पंथी, एक संदेसड़उ, भल माणसनइ भख्ख।
आतम तुझ पासइ अछइ, ओळग रूड़ा रख्ख॥ ११४॥
ढाढी, जे राज्यँद मिलइ, यूँ दाखविया जाइ।
जोबण-हस्ती मद चढ्यउ, अंकुस लइ घरि आइ॥ ११५॥
ढाढी, जे साहिब मिलइ, यू दाखविया जाइ।
आँख्याँ-सीप विकासियाँ, स्वाति ज बरसउ आइ॥ ११६
ढाढी, एक सँदेसड़उ कहि ढोला समझाइ।
जोबण-आँबउ फलि रह्यउ, साख न खाअउ आइ॥ ११७॥

११३—हे ढाढी, यदि प्रियतम मिले तो इस प्रकार कहना—उसके पंजर में प्राण नहीं है, केवल उसकी लौ तुम्हारी ओर जल रही है।

११४—हे पथिक, एक सँदेसा उस भलेमानुस को कहो—उसकी आत्मा तुम्हारे पास है उसके शरीर को चाहे तुम दूर भले ही रखो।

११५—हे ढाढी, यदि राजन् मिलें तो जाकर यों कहना—यौवन-रूपी हाथी मदोन्मत्त हो गया है, तुम अंकुश लेकर घर आओ।

११६—हे ढाढी, यदि स्वामी मिलें तो जाकर यों कहना—आँख-रूपी सीपियाँ विकसित हुई हैं (तुम्हारी प्रतीक्षा में खुल रही हैं), हे स्वाति, तुम आकर बरसो।

११७—हे ढाढी, एक सँदेसा ढोला को समझाकर कहना—यौवन-रूपी आम्र फल रहा है, आकर उसकी फसल क्यों नहीं खाते?

११३—पंथी एक संदेसड़उ ढोलानइ कहीयाँ (च. ज. थ)। पिंडि नही छइ प्राणियउ ऊथि कथे लहियाह (च) पिंड सही छै प्राहुणो ओथे किथ लही-याह (आ)। छै (क. घ)। प्राहुणो (न)। ओथे के लहियाह (क) ऊथे केथा लहिया (घ) ऊथ किथे लहियाह (न) ऊठत कळिकळियाह (थ)। छइ लहीयाह (थ) झळ रहियाह।

११४—माखि (ज) लिख (थ)। मुझ (थ)। ऊळग (थ)। राखि (ज)।

११५—प्रीतम = राज्यंद (ख)। पंथी एक संदेसड़उ (थ) = ढाढी०। इउँ कहि दाष-बीयाह (ख) ढोला लगि ले जाइ (ज. थ)। योवन (क) जोबन (ख)। ज्युं गुड़ै (ख) युं गुड्यौ (क) जुं जुड्यौ (ज) गडवड्यउ (थ) = मद चढ्यउ। तुं अंकुस (च)। थौ थे = ले घरि (ख)। आव (क) आउ (च)।

११६—ढाढी एक संदेसडे ढौलै लगि पहुचाइ (ग)। इउँ कहि दाष-बीयाह (ख)।

ढाढी, जइ प्रीतम मिलइ, यूँ दाखविया जाइ।
जोबण छत्र उपाड़ियउ, राज न बइसउ काइ ॥ ११८ ॥

ढाढी, जइ साहिब मिलइ, यूँ दाखविया जाइ।
जोबण-कमळ विकासियउ, भमर न बइसइ आइ ॥ ११९ ॥

ढाढी, एक सँदेसड़उ ढोलइ लगि लइ जाइ।
जोबन-चाँपउ मउरियउ, कळी न चुट्टइ आइ ॥ १२० ॥

ढाढी, एक सँदेसड़उ ढोलइ लगि लइ जाइ।
कण पाकउ, करसण हुअउ, भोग लियउ घरि आइ ॥ १२१ ॥

११८—हे ढाढी, यदि प्राणाधार मिलें तो जाकर इस प्रकार कहना—यौवन ने छत्र उठाया है, हे राजन् (उसकी छाया में आकर) क्यों नहीं बैठते ?

११९—हे ढाढी यदि स्वामी मिलें तो जाकर यों कहना—यौवन-रूपी कमल खिल गया है, हे भ्रमर, तुम, आकर क्यों नहीं बैठते ?

१२०—हे ढाढी एक सँदेसा ढोला तक ले जाओ—यौवन-रूपी चंपा मौर-युक्त हो गया है। तुम आकर कलियाँ क्यों नहीं चुनते ?

१२१—हे ढाढी, एक सँदेसा ढोला तक ले जाओ—खेती हो गई, अन्न पक गया, तुम घर आकर अपना भोग लो।

आँखि (ख) झल्यां (ग)। सीची (ग)। विकसीया (क) वैकस्सीयाँ (ग)। स्वाति= स्वातिज (ख. ग)।

११८—जउ (क)। ढाढी एक संदेसड़उ (ग. च)। इउं कहि दाख-वीयाइ (ख) प्रीतम लगि पहुँचाइ (ग) कहि ढोला समझाइ (च)। योवन (क) जोबन (ख)। छाँहन (ध) छाजै (च. ज)=राज न। बयसौ (क. ख. ग)। आइ (क. ख. ग)।

११९—ढाढी एक संदेसड़उ प्रीतम कहिओ जाइ (ग)। इउँ कहि दाष-वीयाइ (ख)। योवन (क) जोबन (ख)। विकस्सीयो (ग)। बयसउ (क) बयठउ (ख)=न बइसइ। कळीयाँ मउरीयाँ (च)=कमळ विकासियउ।

१२०—केवल (च) में।

१२१—केवल (च) में।

ढाढी, एक सँदेसड़उ ढोलइ लगि लइ जाइ।
जोबण फट्टि तलावड़ी, पाळि न बंधउ काँइ ॥ १२२ ॥

पंथी, एक सँदेसड़उ लग ढोलउ पैहचाइ।
विरह-महादव जागियउ, अगिन बुझावउ आइ ॥ १२३ ॥

पही, भमंता जइ मिलइ, तउ प्री आखे भाय।
जोबण बंधन तोड़सइ, बंधण घातउ आय ॥ १२४ ॥

पंथी, एक सँदेसड़उ लग ढोलइ पैहचाइ।
निकस वेणी-सापणी, स्वात न वरसउ आइ ॥ १२५ ॥

पंथी, एक सँदेसड़उ लग ढोलइ पैहचाइ।
तन मन उत्तर बाळियउ, दक्खिण वाजइ आइ ॥ १२६ ॥

१२२—हे ढाढी, एक सँदेसा ढोला तक ले जाओ—यौवन-रूपी तलैया फूट चली है क्या तुम आकर पाल नहीं बाँधोगे ?

१२३—हे पथिक, एक सँदेसा ढोला तक पहुँचाओ—विरह-रूपी प्रचंड दावानल प्रज्वलित हो गया है, आकर अग्नि को बुझाओ।

१२४—हे पथिक, भ्रमण करते हुए यदि मिलो तो हे भाई, मेरे प्रियतम से कहना—यौवन बन्धन तोड़ देगा, तुम आकर बन्धन डालो।

१२५—हे पथिक, एक सँदेसा ढोले तक पहुँचाओ—वेणी-रूपो नागिन निकली है, तुम आकर स्वाति का जल बरसो न।

१२६—हे पथिक, एक सँदेसा ढोला तक पहुँचाओ—तन और मन को उत्तरवात (शिशिरवात) ने जला दिया है, हे दाक्षिणात्य पवन तुम आकर चलो।

१२२—पंथी (क)। संदेसड़ै (क)। लग ढोला पैहचाहि (क)। विरह महाजळ ऊमट्यौ (क) पाळ जु बंधौ आय (क)।

१२३—थे अगिन = अगिन (क)।

१२४—गज जोवण = जोबण (क)।

१२५—पैहचाहि (क)। निवसी (क)। थे स्वात = स्वात (क) आय (क)।

१२६—पैहचाइ (क)। बाळीयै (क)। थे दषिण = दक्खिण (क)। आय (क)।

पंथी, एक सँदेसड़इ लग ढोलइ पैहुच्याइ।
विरह-महाविस तन वसइ, ओखद दियइ न आइ ॥ १२७ ॥

पंथी, एक सँदेसड़इ लग ढोलइ पैहुच्वाइ।
विरह-वाघ वनि तनि वसइ, सेहर गाजइ आइ ॥ १२८ ॥

पंथी एक सँदेसड़इ लग ढोलइ पैहुचाइ।
धँण कँमलाँणी, कमदणी, सिसहर ऊगइ आइ ॥ १२९ ॥

पंथी एक संदेसड़इ लग ढोलइ पैहुच्याइ।
धँण कँमलाँणी कँमलणी, सूरिज ऊगइ आइ ॥ १३० ॥

पंथी, एक संदेसड़उ लग ढोलइ पैहुच्याइ।
जोवन खीर समुंद्र हुइ, रतन ज काढइ आइ ॥ १३१ ॥

१२७—हे पथिक, एक सँदेसा ढोला तक पहुँचाओ—विरह-रूपी महा-विष शरीर में व्याप रहा है, आकर औषधि क्यों नहीं देते ?

१२८—हे पथिक, एक सँदेसा ढोला तक पहुँचाओ—विरह-रूपी बाघ तन-रूपी वन में बसता है, तुम शिखर पर आकर गर्जन करो।

१२९—हे पथिक, एक सँदेसा ढोला तक पहुँचाओ—प्रेयसी-रूपी कुमुदिनी कुम्हला गई है, हे चन्द्र, तुम आकर उदय होओ।

१३०—हे पथिक, एक सँदेसा ढोला तक पहुँचाओ—प्रेयसी रूपी कमलिनी कुम्हला गई है; हे सूर्य तुम आकर उदय होओ।

१३१—हे पथिक, एक सँदेसा ढोला तस पहुँचाओ—यौवन क्षीरसागर हो रहा है, तुम आकर रत्न तो निकालो।

१२७—संदेसड़ौ (क)। महा (क)। उषद (क)। दीयै (क)। आय (क)।

१२८—संदेसड़ै (क)। विरहि (क)। में सेहर = सेहर (क)। गाजै आय (क)।

१२९—कमोदीनी (क)। सीसहर थ उगै आय (क)।

१३०—संदेसड़ै (क)। धंणिं (क)। सूरज उगै (क)।

१३१—संदेसड़ौ (क)। सुंमुंद्र (क)। हुवै (क)। थे रतन ज काढै आय (क)

पंथी एक संदेसड़इ लग ढोलइ पैहुच्याइ।
जंघा-कोळिनि फळि गई, स्वात जु. बरसउ आइ ॥ १३२ ॥
पंथी, एक संदेसड़उ लग ढोलइ पैहुच्याइ।
सावज संबळ तोड़स्यइ, बैसासणइ न जाइ ॥ १३३ ॥
पंथी, एक संदेसड़उ लग ढोलइ पैहुच्याय।
जोबन जायइ प्राहुणउ वेगइ रउ घर आय ॥ १३४ ॥
पही, भमंतउ जउ मिलइ, कहे अम्हीणी वत्त।
धण कँणयररी कंब ज्यउँ, सूकी तोइ सुरत्त ॥ १३५ ॥
पंथी, एक सँदेसड़उ कहिज्यउ सात सलाँम।
जबथी हमतुम बीछड़े, नयणे नींद हराँम ॥ १३६ ॥

१३२—हे पथिक, एक सँदेसा ढोला तक पहुँचाओ—जंघा-रूपी कदली फल गई है; हे प्रियतम, तुम आकर स्वातिजल बरसो।

१३३—हे पथिक, एक सँदेसा ढोला तक पहुँचाओ—स्वाद पाथेय (भोजन) से ही मिटता है, विश्वास से नहीं।

१३४—हे पथिक, एक सँदेसा ढोला तक पहुँचाओ—यौवन-रूपी अतिथि (घर आकर निराश) लौटा जा रहा है। जल्दी घर आओ।

१३५—हे पथिक यदि घूमते हुए तुम ढोला से मिलो तो हमारी यह बात कहना—प्रेयसी तुम्हारी सुरत (याद) में कनेर की छड़ी के समान सूख गई है।

१३६—हे पंथी, मेरा एक सँदेसा है। मेरे प्रियतम को सात सलाम

१३२—जंघ (क)। आय (क)।

१३३—संकळ (क)। तोड़सै (क)। जाय (क)।

१३५—पहौ (ग)। भमंतो (ग)। जो मिलै (ग)। ढाढी जे राजिँद मिलै (ख)। ढाढी जे ढोलै मिलै (क)। तैं कहै अम्हीणं वत्त (क) कहिया एह सुवत्त (ख) कहिया धत्त सुवत्त (त)। तो अखे (ग) अखे (च. ज)=कहिया। वत (ग) धत्त (ज)। कणी-यर (ख) कणयर (च)। की=री (च)। काँब ख. ग)। युं (च)। सूसी (ख. त)। तोहि (क) तोही (ज)। सुरत (ग)। (च. में यह दोहा दो स्थान पर आया है—नं० ३९३ और ४०८ में 'कंणयर' के स्थान पर 'केसर' है)

१३६—ढाढी एक संदेसड़ौ (क)। दिस सजणां सलाम (क) दिस सज्जनां सलाम (ज)। पंथी इक दिसि सज्जणां कहियौ सात सळाम (थ)। तुम्ह (च. ज)। थी विछुड़या (ज)=बीछड़े। बीछड़्या (क)। जब हमि तुम्हि थी बीछुड़े (थ)। तब थी नींद हराम (क)।

पंथी-हाथ सँदेसड़इ, धण बिलखंती देह।
पगसूँ काढइ लीहटी, उर आँसुआँ भरेह ॥ १३७ ॥
ढोला, ढीली हर किया, मूँक्या मनह बिसारि।
संदेसउ हन पाठवइ, जीवाँ किसइ अधारि ॥ १३८ ॥
ढोला, ढीली हर मुझ, दीठउ घणो जणेह।
चोल-बरन्ने कप्पड़े, सावर धन अणेह ॥ १३९ ॥
कागळ नहीं, क मस नहीँ, नहीँ क लेखणहार।
संदेसा ही नाविया, जीवुँ किसइ आधार ॥ १४० ॥
कागळ नहीँ, क मसि नहीँ, लिखताँ आळस थाइ।
कइ उण देस सँदेसड़ा, मोलइ वड़इ विकाइ ॥ १४१ ॥

कहना और कहना कि जब से हम तुम बिछुड़े हैं तभी से आँखों को नींद हराम है।

१३७—मारवणी विलाप करती हुई पथिक के हाथ सँदेसा देती है, पैर से (पृथ्वी पर) रेखा खींचती है और अपना हृदय आँसुओं से भर लेती है।

१३८—हे ढोला, तुमने प्रेम को शिथिल कर दिया और मुझे मन से बिसार दिया है। सँदेसा तक नहीं भेजते, बताओ किस आधार पर जिएँ।

१३९—हे ढोला, मेरी प्रेम-स्मृति को शिथिल कर, मजीठ रंग के वस्त्रों में (अर्थात् दूल्हे की पोशाक में) उस अन्य पत्नी को ब्याहकर लाते हुए तुमको बहुत से लोगों ने देखा है।

१४०—कागज नहीं है या स्याही नहीं है या लिखनेवाला नहीं है? तुम्हारे सँदेसे ही नहीं आए, मैं किस आधार पर जियूँ।

१४१—कागज नहीं है या स्याही नहीं है या लिखते हुए आलस्य होता है।

१३७—संदेसड़ै (क) संदेसड़ो (ज)। बिलवंती (ज)। स्यौं (ज) लीहड़ी (ज)। ए भरेय (क) = नयण भरेह।

१३८—धर (च) मन (छ) घर (द) = हर। कीया (च)। बीसारि (च)। जन (द)। आधारि (च)।

१३९—ढोलू (च) ढोलो (ट)। टीली (च) ढाली (ट)। हरडे (ज) हारडे (छ) = हर मुझ। दीठा (ट)। जणेहि (च)। लाल सुरंगे कपड़े (ट)। सावरते नयणेहि (च)।

१४०—ज (क. घ) = क। मिस (झ)। लिखणहार (क. ख. घ)। जीवौं किस (ख' घ. झ)। अधार (क)।

१४१—कइ लिखतां = लिखताँ। मोल (च. छ)। विकवाइ (छ)।

वायस बीजउ नाँम, ते आगलि लल्लउ ठवइ।
जइ तू हुई सुजाँड़, तउ तूँ वहिलउ मोकळे॥ १४२॥

संदेसउ जिन पाठवइ, मरिस्यउँ हीया फूटि।
पारेवाका भूल जिउँ पड़िनइँ आँगणि त्रूटि॥ १४३॥

संदेसा मति मोकळउ, प्रीतम, तूँ आवेस।
आँगलड़ी ही गळि गयाँ, नयण न वाँचण देस॥ १४४॥

फागुण मासि वसंत रुत आयउ जइ न सुणेसि।
चाचरिकइ मिस खेलती, होळी झंपावेसि॥ १४५॥

जइ तूँ ढोला नावियउ, कइ फागुण कइ चेत्रि।
तउ म्हे घोड़ा बाँधिस्याँ, काती कुड़ियाँ खेत्रि॥ १४६॥

१४२—वायस का जो दूसरा नाम (अर्थात् काग) है उसके आगे लकार रखकर—अर्थात् कागल (पत्र)—यदि तुम सुजान हो तो तुरंत भेज देना।

१४३—(निठुर,) सँदेसा भी नहीं भेजते; मैं हृदय फटकर मर जाऊँगी कबूतर का झूला जैसे आँगन में गिरकर टूट जाता है।

१४४—हे प्रियतम, सँदेसा मत भेजो, तुम्हीं आ जाओ। मेरी अँगुलियाँ भी गल गई हैं और मेरी आँखें मुझे बाँचने नहीं देतीं।

१४५—वसंत ऋतु के फाल्गुन मास में यदि मैं तुमको आया हुआ नहीं सुनूँगी तो चर्चरी नृत्य के मिस खेलती हुई होली की ज्वाला में फाँद पड़ूँगी।

१४६—हे ढोला, यदि तुम या तो फाल्गुन में या चैत्र में नहीं आए तो हम ही कार्त्तिक में, फसल कट जाने पर, घोड़ों पर जीन कसेंगी।

१४२—ललउ (च)। ठवि (च)। तुं हुई (च)।

१४३—फूळ=भूल (च)।

१४४—संदेसउ जन पाठवइ (च)। अत=मति (क)। पीतम (क)। आवेह (ख)। जन कागळ लिखि देई (च)=प्रीतम०। कागज ही (क. ख. ग)। आगळ का ही गळ गया (क)। ण=न (च) वाचण देइ (च)। देह (ख)। धार खंडेस=वाँचइ देस (क)।

१४५—मास (क. ख. ग. थ। रितु (ख. ग. ज. थ)। जो प्रीतम नावेस (क) जउ तूं ढोला नावेसि (च)। लउ ढोला नावेसि (थ)। जै (ग)। चाचर कै (क. ख) तौ चाचर (ग) तउ चचिरि (च)। मिसि (थ)। झाँफ भरेस क) झाँफ भरेसि (ख झाँप मरेस (ग)।

१४६—जे (ज)। तुं (च)। नावीयै (क. ग)। का (ग. ज)। फागुण=कइ

जउ साहिब तू नावियउ, मेहाँ पहलइ पूर।
विचइ वहेसी वाहळा, दूर स दूरे दूर॥ १४७॥

सज्जणिया, सावण हुया, धड़ि उलटी भंडार।
विरह-महारस ऊमटइ, के ताकहूँ सँभार॥ १४८॥

जउ तूँ साहिब, नावियउ सावण पहिली तीज।
बीजळ-तणइ झबूकड़इ मूँध मरेसी खीज॥ १४९॥

जइ तूँ ढोला, नावियउ काजळियारी तीज।
चमक मरेसी मारवी, देख खिवंताँ वीज॥ १५०॥

१४७—हे नाथ, जो तुम मेघों के प्रथम धारापात पर नहीं आए तो बीच में नाले बहने लगेंगे और जो दूर है वह दूर से भी दूर हो जायगा।

१४८—हे साजन, यह सावन आया, पृथ्वी ने अपना गुप्त भंडार उलट दिया। विरह का महा जल-प्रवाह उमड़ रहा है, उसको कौन सँभालेगा?

१४९—हे नाथ, यदि तुम सावन की प्रथम तीज पर नहीं आए तो बिजली की चमक से मुग्धा मारवणी खिजलाकर मर जायगी।

१५०—हे ढोला, जो तू कजरी की तीज पर नहीं आया तो बिजली को चमकती हुई देखकर मारवणो चौंककर मर जायगी।

फागुण (क)। का (क. ग. ज)। चैत (ग)। चैति (थ)। म्हंई (क. ज) तो अम्हेंई (ग) कइ तो म्हे (थ)=तउ म्हं। बंधिस्यां (क) बांधस्यां (ग. ज) कुडीयाह (क) कुडीये (ज) कुडस्यां (ग) ऊडइ (थ)। खेत्र (ग. ज) खेति (थ)। तो मैं लेसूँ ल्हासिउ काती राम रखेत्र (ध)।

१४७—जे (क. ख) जै (ग)। तुं (च. ज) तूं (थ)। ढोला (च. ज. थ) नावीयौ (क. ख. ग)। मेहा (च) सांवण (क. ख) मे श्रावण (ग)। पहलै (क. ख) पहली (ग) पहले (थ)। पूरि (च. थ) विचै (क. ग) तौ आडा (ख)। बहिसी (ख) वहइला (च) वहेस्यइ (थ) दूरि (क. ख. ग. च. थ)।

१४८—साजाणियां (थ) सजनी (ज)। हुआ (ज) हुआ (थ)। सावण (च)। घट्ट (ज) घड़ि (थ)। उलट्टीयौ (ज) भंडारि (थ)। ऊमट्यउ (थ)। संभारि (थ)।

१४९—जे (ख)। ढोला=साहिब (च)। ढोला जे तूं नावीयइ (क) श्रावणि (च) सांवणि (थ)। पैहली (क)। त्रीज (क. च. थ)। जबूकड़े (क. ख)। वीजलीयाँ विल-लाईयाँ (च. थ)। मेरस्यइ (थ)। खीजि (च. थ)। उथ खिवेजी वीजळी रा धण मसै खीज (क) साइधण हियड़ो फूटसी देखि खिवंती वीज (न)।

बीजुळियाँ जाळउमिल्याँ, ढोला, हूँ न सहेसि।
जउ आसाढि न आवियउ, सावण समकि मरेसि ॥ १५१ ॥

बीज, न देख चहड्डियाँ प्री परदेस गयाँह।
आपण लीय झबुक्कड़ा, गळि लागी सहराँह ॥ १५२ ॥

बीजुळियाँ पारोकियाँ नीठ ज नीगमियाँह।
अजइ न सज्जन बाहुड़े, वळि पाछी वळियाँह ॥ १५३ ॥

जउ तूँ ढोला, नावियउ मेहाँ नीगमताँह।
किया करायइ सज्जणा दाधा माँहि घणाँह ॥ १५४ ॥

१५१—बिजलियों के जाल मिल रहे हैं। मैं यह नहीं सहूँगी, जो तुम अषाढ़ में नहीं आए तो मैं सावन में चौंककर मर जाऊँगी।

१५२—हे बिजली, ऊँची चढ़ी हुई तुम परदेश गये हुए दूसरों के प्रियजनों को नहीं देखती जो तुम स्वयं शिखरों के गले लगकर क्रीड़ा करती हुई चमक रही हो।

१५३—परकीया नायिकाओं की भाँति बिजलियाँ बड़ी ही कठिनता से गई थीं। हे साजन, तुम अभी तक नहीं लौटे और वे (बिजलियाँ) फिर लौट आईं।

१५४—हे ढोला, यदि तुम मेघों के जाते जाते नहीं आए तो हे साजन, मेघों से परिपूर्ण ऋतु में भी मेरे किए कराए (सौभाग्य, अथवा पुण्य) जल जायँगे।

१५१—वीजुका (ज)। जाळमला (ज) विललाइयाँ (थ)। महेम (ज) आसाढ (ज. थ)। तो श्रावण (च)। समक (ज) चमकि (थ)। मरेस (ज)।

१५२—केवल (ट) में।

१५३—बीजलीया (ट)। परोकियाँ (ट. च)। परणीयां (ट)। नीठे जी गमियाँह (ट)। ढोला आगळि इउँ कहे (च)=अजइ०। वल (ट) वीजळि=पाछी (च)।

१५४—जै (ग)। साहिब (ग) ढोला। मेहा (च. ज)। नीगम-ताह (ग)। तौ कीयौ करायौ (ग) किं कीजइ तीयाँ (च) कीया कराया (थ)। सजनां (ग. ज)। दीधो (ग) दीधा (ज) दीधी (थ. ध)। माहि (च) मही (ज) नहीं (थ) संझ (ध)। धणांह (ज) हीयांह (ध)।

वहिलउ आए वल्लहा, नागर चतुर सुजाँण।
तुझविणधणविलखी फिरइ, गुणबिन लाल कमाण॥ १५५॥

राति ज रूँनी निसह भरि, सुणी महाजनि लोइ।
हाथळी छाला पड़्या, चीर निचोइ निचोइ॥ १५६॥

ढोला, मिलिसिमवीसरिसि, नवि आविसि, ना लेसि।
मारू तणइ करंकडइ वाइस ऊडावेसि॥ १५७॥

हियड़इ भीतर पइसि करि ऊगउ सज्जण रूँख।
नित सूकइ नित पल्हवइ, नित नित नवला दूख॥ १५८॥

अकथ कहाणी प्रेमकी किणसूँ कही न जाइ।
गूँगाका सुपना भया, सुमर सुमर पिछताइ॥ १५९॥

१५५—हे नगर चतुर सुजान प्यारे, शीघ्र आना। तुम्हारे बिना प्रेयसी उदास फिरती है, जिस प्रकार प्रत्यंचा के बिना लाल कमान।

१५६—कल जा मैं रात भर रोई तो गुरुजनों (तक) ने सुना। (और) साड़ी को निचोड़ते निचोड़ते मेरी हथेलियों में छाले पड़ गए।

१५७—हे ढोला, न तो मिलते हो, न आते ही हो और न ले जाते हो। (फिर आकर) मारवणी के अस्थि-पंजर पर कौवों को उड़ावोगे।

१५८—मेरे हृदय में प्रविष्ट होकर साजन-रूपी वृक्ष उगा है। वह नित्य सूखता है और नित्य पल्लवित होता है जिससे नित्य नए नए दुःख देखने पड़ते हैं।

१५९—प्रेम की अकथनीय कहानी किसी से नहीं कही जाती। वह गूँगे के स्वप्न की भाँति हो गई है जिसे वह याद करके पछताता है (क्योंकि किसी से कह नहीं सकता)।

१५५—वैगौ (क. ख. घ) वहिलौ (ग)। आवै (ग) आवे (च. ज) आवि (घ)। वालहा (च)। नागरि (ग)। तो=तुझ (क. ख. घ)। धन (ग)। फिरै (क. ख. ग. घ)। ज्युं गुण (क. ख. ग. घ) ज्यउ गुण (च. ज)=गुण।

१५६—महाजन (ज. थ)। हथाळी (थ)। छाल्या (च)। निचोय निचोय (ज)।

१५७—साहिब (क. ख. ग) साहिव (झ)। मिलीस (क. ख. थ) मिलस (झ)। न (क. ख.)=म। वीसरसि (च. ज.) वीसरिस (झ)। न (क. ख. थ) ना (घ)। आइसि (ख) आएस (क) आएसि (थ) आवेस (ज. झ)। न लेस (क. घ. झ) तणौ (क. ख. झ) तणय (च. ज) वायस (च. ज)।

१५८—हीया (ख. झ) हीयै (क. घ)। मांही (ख. झ)। कै (ज)=करि।

प्रीतम, तोरइ कारणइ ताता भात न खाहि।
हियड़ा भीतर प्रिय बसइ, दाझणती डरपाहि॥ १६० ॥

चंदण-देह कपूर-रस सीतळ गंग-प्रवाह।
मन-रंजण, तन-उलहवण, कदे मिलेसी नाह॥ १६१ ॥

मत जाणे प्रिउ, नेह गयउ दूर विदेस गयाँह।
बिवणउ वाधइ सज्जणाँ ओछउ ओहि खळाँह॥ १६२ ॥

हूँ कुँमलाणी कंत विण, जळह विहूणी वेल।
विणजारारी भाइ जिउँ गया धुकंती मेल्ह॥ १६३ ॥

आडा डूँगर, वन घणा, आडा घणा पलास।
सो साजण किम वीसरइ, बहु गुणतणा निवास॥ १६४ ॥

१६०—हे प्रिमतम, तुम्हारे कारण मैं गर्म भात नहीं खाती। हृदय में प्यारा निवास करता है उसको जला देने के भय से डरती हूँ।

१६१—हे मन को रंजन करने वाले, शरीर को स्पर्श से उल्लसित करने वाले और चंदन, कपूर-रस तथा गंगा के प्रवाह के सामने शीतल गातवाले नाथ, कब मिलोगे ?

१६२—हे प्यारे, यह मत जानना कि दूर विदेश में जाने से स्नेह भी चला गया। बिछुड़ने पर सज्जनों का प्रेम दुगुना बढ़ता है और दुष्टों का ओछा होता जाता है।

१६३—मैं कंत के बिना कुम्हला गई जिस प्रकार जल-विहीन लता। मेरा प्यारा मुझे बंजारे की भट्टी के समान सुलगती हुई छोड़कर चला गया।

१६४—हमारे बीच में बहुत से पर्वत और वन हैं तथा बहुत से राक्षस (दुर्जन) बीच में हैं। तो भी वे साजन किस प्रकार भूले जा सकते हैं जो अनेक गुणों के घर हैं।

ऊगा (ख. झ)। नित (क. ख. थ. ज)। पालवै (ज. झ) पलवै (घ)। नित (ख. घ)। नित्त (क) नितु नितु (ज)=नित नित:। नवलै (ज)। दूख (झ)।

१६०—खाव (ख)। प्री (क. घ)। भै=ती (क)। डरपाव (ख)।

१६१—चंदन (ग)। कान्न=देह (ग)। उलहमण (ख. ग) उल्लवण (त)। मिलेस्यौ (ख. ग)।

१६२—केवल (झ) में।

१६३—केवल (झ) में।

१६४—केवल (झ) में।

आँखड़ियाँ डंबर हुई, नयण गमाया रोय।
से साजण परदेसमइँ रह्या विडाणा होय ॥ १६५ ॥
मुख नीसाँसाँ मूँकती, नयणे नीर प्रवाह।
सूळी सिरखी सेझड़ी तो विण जाणे नाह ॥ १६६ ॥
वालँभ, एक हिलोर दे, आइ सकइ तउ आइ।
बाँहड़ियाँ बे थकियाँ काग उडाइ उडाइ ॥ १६७ ॥
जिम सालूराँ सरवराँ, जिम धरणी अर मेह।
चंपावरणी वालहा, इम पाळीजइ नेह ॥ १६८ ॥
वालिभ गरथ वसीकरण, वीजा सहु अकयथ्थ।
जिए चड्या दळ उत्तरइ, तरुणि पसारइ हथ्थ ॥ १६९ ॥
वासर चित्त न वीसरइ, निसिभरि अवर न कोइ।
जइ निद्रा-भरि भोगवूँ, तउ सुपनंतरि सोइ ॥ १७० ॥

१६५—मेरी आँखें (फूलकर) लाल हो गईं, मैंने अपनी दृष्टि रो-रोकर खो दी और वे साजन परदेश में पराए हो रहे।

१६६—मुख से निःश्वास छोड़ती है, आँखों से जल बह रहा है। हे नाथ, तुम्हारे बिना सेज को शूली के सदृश समझती है।

१६७—हे वल्लभ, मेरे हृदय में आनंद की एक हिलोर उठाओ, आ सको तो आओ। मेरी दोनों बाँहें काग उड़ाते उड़ाते थक गई हैं।

१६८—जिस प्रकार मेंढ़क और सरोवर, एवं जिस प्रकार पृथ्वी और मेघ, स्नेह निभाते हैं उसी प्रकार हे प्यारे, चंपकवर्णी प्रेयसी के साथ स्नेह निभाइए।

१६९—एक प्यारा ही वशीकरण धन है और सब अकारथ हैं, जिसके प्रेम का मद चढ़ने से और सब मद उतर जाते हैं और युवती व्याकुल होकर हाथ फैलाने लगती है।

१७०—प्रियतम दिन में चित्त से नहीं भूलते, रात भर और कोई

१६५—केवल (झ) में।
१६६—केवल (झ) में।
१६७—केवल (च) में।
१६८—केवल (झ) में।
१६९—केवल (च) में।
१७०—निंद्रा (घ) = निसि। भर (ख, घ, झ)। भोलउँ (झ)। सुपनंतर (घ)।

सोरठा

जेती जउ मनमाँहि, पंजर जइ तेती पुळइ।
मनि वइराग न थाइ, वालँभ वीछुड़ियाँ तणी ॥ १७१ ॥

दूहा

फूलाँ फळाँ निघट्टियाँ, मेहाँ धर पड़ियाँह।
परदेसाँका सज्जणा, पत्तीजूँ मिळियाँह ॥ १७२ ॥

सालूरा पाँणी विना रहइ विलक्खा जेम।
ढाढी, साहिबसूँ कहइ, मो मन तो विण एम ॥ १७३ ॥

पावस मास, विदेस प्रिय घरि तरुणी कुळसुध्ध।
सारँग सिखर, निसद्द करि, मरइ स कोमळ मुध्ध ॥ १७४ ॥

बात चित्त में नहीं आती। यदि भर नींद सोती हूँ तो स्वप्न में भी वही दिखाई देते हैं।

१७१—जितनी (अभिलाषाएँ) मन में हैं उतना यदि शरीर दौड़े तो प्राणवल्लभ से बिछुड़ने की मन में विरक्ति न हो।

१७२—फूलों में फलों के लगने पर और मेहों के पृथ्वी पर पड़ने पर प्रतीति होती है, उसी प्रकार हे परदेशी प्यारे; तुम्हारे मिलने पर ही मैं पतियाऊँगी।

१७३—मेंढ़क जिस प्रकार पानी के बिना विकल रहते हैं, हे ढाढी, तू स्वामी को कहना कि उसी प्रकार मेरा मन तुम्हारे बिना व्याकुल है।

१७४—वर्षा का महीना है, प्रियतम विदेश में है और शुद्ध कुलवाली प्रिया घर में है। शिखर पर मोर शब्द करता है, कहीं कोमलाँगी मुग्धा मर जायगी।

१७१—तेती (क) जौतां (झ)। जाइ = मांहि (ख)। तौ = जइ (क. घ)। वेदन न हूवै (क. घ. त) = मनि वैराग न। काय (क) काई (घ) = थाइ। वाल्हां (ख)।

१७२—निघटीयाँ (ख) गकटीया (ग) नवहीयाँ (ज)। निफूलियाँ (झ)। मेह (घ)। धरि (ज)। पडीयां (ग)। रा = का (ज)। पत्तीज्युं (ग) पत्तीजुं (ज)।

१७३—सालरा (ग)। विलषी (घ)।

१७४—विदिस (घ)। प्री (घ)। घर (ख)। सुध (ख)। मसंद (ख) नसद्द (झ)। सु = स (क)। मूंध (घ) मुंध (ख)।

तुँही ज सज्जण, मित्त तूँ, प्रीतम तूँ परिवाँण।
हियड़इ भीतरि तूँ वसइ, भावइँ जाँण म जाँण॥ १७५॥

हूँ बळिहारी सज्जणाँ, सज्जण मो बळिहार।
हूँ सज्जण पग पानही, सज्जण मो गळहार॥ १७६॥

लोभी ठाकुर, आवि घरि, काँई करइ विदेसि।
दिन दिन जोवण तन खिसइ, लाभ किसाकउ लेसि॥ १७७॥

बहु धंधाळू आव घरि, काँसू करइ वदेस।
संपत सघळी संपजे, आ दिन कदी लहेस॥ १७८॥

अवसर जे नहिं आविया, वेळा जे न पहुत्त॥
सज्जण तिण संदेसड़इ करिज्यउ राज बहुत्त॥ १७९॥

१७५—तू ही सज्जन है, तू ही मित्र है, तू निश्चय ही प्रियतम है। मेरे हृदय के अंदर तू बसता है इस बात को तू चाहे जान या न जान।

१७६—मैं प्रियतम पर बलिहारी हूँ और प्रियतम मुझ पर बलिहार हैं। मैं प्रियतम के पाँवों की जूती हूँ और वे मेरे गले के हार हैं।

१७७—हे लोभी स्वामी, घर आओ। विदेश में क्या करते हो? दिन दिन यौवन और शरीर गल रहा है। कौन से लाभ प्राप्त करोगे?

१७८—बहुत धंधोंवाले (प्रियतम), घर आओ किसके कारण विदेश वास करते हो? यौवन की सब संपत्ति इसी समय संचित हो रही है। यह सुदिन फिर कब पावोगे?

१७९—जो अवसर पर नहीं आए और समय पर जो नहीं पहुँचे तो—उन सजन से संदेश कहना कि—तुम फिर बहुत दिनों तक राज्य करते रहना।

१७५—तू ही (ख)। मित्र (क. ख. घ)। परमाण (क) परवांण (घ)। हीयै (क)। भीतर (ख)।
१७६—केवल (झ) में।
१७७—केवल (च) में।
१७८—केवल (ट) में।

सोरठा

संभारियाँ सँताप, वीसारिया न वीसरइ।
काळेजा बिचि काप, परहर तूँ फाटइ नहीं ॥ १८० ॥

दूहा

यहु तन जारी मसि करूँ, धूँआ जाहि सरग्गि।
मुझ प्रिय बद्दळ होइ करि, बरसि बुझावइ अग्गि ॥ १८१ ॥

भरइ, पळट्टइ, भी भरइ, भी भरि, भी पळटेहि।
ढाढी-हाथ संदेसड़ा धण विललंती देहि ॥ १८२ ॥

दूहा संदेसा मिसइँ दीधा तिणाँ सिखाइ।
प्रीतम आगळि वीनती करिया इणि विधि जाइ ॥ १८३ ॥

१८०—स्मरण करने से संताप होता है, भुलाने से नहीं भूलते। कलेजा भीतर से कट रहा है। तुमने छोड़ दिया है पर यह तो भी नही फटता।

१८१—यह तन जलाकर मैं कोयला कर दूँ और उसका धुआँ स्वर्ग तक पहुँच जाय। मेरा प्रियतम बादल बनकर बरसे और बरस कर आग को बुझा दे।

१८२—मारवणी सँदेसे को कहती है, बदलती है, फिर कहती है, कहकर फिर बदल देती है। इस प्रकार वह प्रियतमा विलाप करती हुई ढाढ़ी के हाथ सँदेसे देती है।

१८३—उसने सँदेसे के मिस उन ढाढ़ियों को दोहे सिखा दिए और कहा कि प्रियतम के आगे इस प्रकार जाकर विनती करना।

१८०—केवल (झ) में।

१८१—केवल (झ) में।

१८२—भरै (क. घ) तलै (ख) भरि (ग. झ)। पलटै (क. ख. ग) पलटी (झ)। भरै (क. ख. ग. घ. झ)। भरि भरि (क) भी भर (ज)। पलटेह (क. ख)। पंथी = ढाढी (ज)। हाथि (च)। संदेसड़ौ (क) संदेसडो (ज)। विलवंती (च. ज. ग. झ)। देह (क. ख. ग. झ)।

१८३—दीन्हा (क. घ) दीया (ग)। तणाँ (ख) तिया (ग)। सिषाय (ग)। आगळ (ख)। वेनवी (घ)। कहिया (ग)। इण (ग)।

(ढाढियों का नरवर जाना)

स्रवण सँदेसा साँभळे ढाढी किया प्रयाँण।
मागरवाळ जु आविया देसे साल्ह सुजाँण ॥ १८४ ॥
पूगळहूँताँ पुहकरइ ढाढी कीध प्रयाँण।
माळवणीका माणसाँ आए मिल्या अजाँण ॥ १८५ ॥
ढाढी रात्यूँ ओळग्या, गाया बहु बहु भंत।
माँगण-पंथी जाँणि कइ, तब छंडिया निचंत ॥ १८६ ॥
वागरवाळ विचारियउ, ए मति उत्तिम कीध।
साल्ह-महलहूँ ढूकड़ा ढाढी डेरउ लीध ॥ १८७ ॥
ढाढी गाया निसह भरि राग मल्हार निवाज।
च्यार पहर झड़ मंडियउ, घण गुहिरइ सुरगाज ॥ १८८ ॥

१८४—कानों से संदेसों को सुनकर ढाढ़ियों ने प्रयाण किया। इसके बाद वे याचक सुजान साल्ह कुमार के देश में आए।

१८५—ढाढ़ियों ने पूगल से पुष्कर की ओर प्रयाण किया और मालवणी के मनुष्यों से छिपे हुए आ मिले।

१८६—ढाढ़ी रातों रात चल करके (नरवर में) पहुँचे और उन्होंने बहुत भाँति से गीत गाए। तब रक्षकों ने उन्हें याचक पथिक जानकर निश्चित होकर छोड़ दिया!

१८७—याचकों ने विचारा—यह विचार उत्तम किया। साल्हकुमार के महल के नजदीक ढाढ़ियों ने डेरा लिया।

१८८—ढाढ़ियों ने रात्रिभर मल्हार राग रचकर गाया। चार पहर तक वर्षा की झड़ी लगी रही और बादल गंभीर स्वर से गरजते रहे।

१८४—केवल (क) में।

१८५=हंता (ख) हुता (ग)। पहकरं (ख)। ढोला दिसै=ढाढी कीध (ग)। प्रणाम (क) प्रमाण (घ)।

१८६—ढोलै (क) ढोलै (क घ)=रात्यूँ। उळग्या (क. घ) ऊळग्या (ग)। गावै (क. घ)। बह बह (क. घ) भाँति (ख) भाँति (ग)। पंथी (क)। जण कथा (क. ग)। छोडीया (ख) छंडाया (घ)। निछंत (ग)।

१८७—विचारीयै (ग)। उत्तम (ख)। ढाढियां=ढूकड़ा (ख)। नेडै=ढाढी (ख) डेरा (क) ढेरा (ग)।

१८८—गावै (क. घ)। मिवाज=निवाज (क. ख)। पुहर (ग (। घणि (ग)। सुं=सुर (क)। सिर काज=सुर गाज (ग)।

सिंधु परइ सउ जोयणाँ खिवियाँ वीजुळियाँह।
ढोलउ नरवर सेरियाँ, धण पूगळ गळियाँह॥ १८९॥
सिंधु परइ सत जोअणे खिवियाँ वीजळियाँह।
सुरहउ लोद्र महक्कियाँ, भीनी ठोवड़ियाँह॥ १९०॥
सिंधु परइ सउ जोअणे नीची खिवइ निहल्ल।
उर भेदंती सज्जणाँ, ऊचेड़ंती सल्ल॥ १९१॥
ढाढी गाया निसह भरि, सुणियउ साल्ह सुजाँण।
ओछइ पाँणी मच्छ ज्यउँ वेलत थयउ विहाँण॥ १९२॥
दुख-वीसारण, मनहरण, जउ ई नाद न हुंति।
हियड़उ रतन-तळाव ज्यउँ फूटी दह दिसि जंति॥ १९३॥

१८९—समुद्र के पार सौ योजनों पर बिजुलियाँ चमक रही हैं। ढोला नरवर की गलियों में और प्रेयसी पूगल की गलियों में है।

१९०—समुद्र के पार सौ योजनों पर बिजुलियाँ चमक रही हैं, लोद्र देश (पूगल) सुरभि से महकने लगा और ठौर ठौर (वर्षा से) भींग गईं।

१९१—समुद्र के पार सौ योजन पर बिजली बहुत ही नीची चमक रही है। वह प्रेमियों के हृदयों को भेदन करती हुई विरह-रूपी शल्य को उखेलती है।

१९२—ढाढ़ियों ने रात्रि भर गाया और सुजान साल्हकुमार ने सुना। छिछले पानी में तड़पती हुई मछली की तरह तड़पते हुए उसे प्रभात हुआ।

१९३—दुख को विस्मय करनेवाला और मन को हरनेवाला यह संगीत यदि न होता तो हृदय रत्न सरोवर की भाँति फूटकर दशों दिशाओं में बह जाता।

१८९—संधि (क)। दिसउ=परइ (क)। शत (च)=सौ (क)। खिवै न (ज)। विजुळीयांह (च) वीजुळियाँ (ज)। ढोलइ (क)। नळवर (च)।

१९१—दिसै (क)=परइ। सौ (क)। जोयणां (क)। निहल (क)। भेदंतां (क) बीधंती (?)। विरहियाँ (?)=सज्जणां। मारू छेडै सल (क)।

१९२—गावै (क. घ)। सुणीया (ख)। उछै (क. ग) ओछौ (घ)। मछ (ख)। जिम (ख) जूँ (ग)। विलपत (ग)।

१९३—केवल (क) में।

(ढोला से ढाढियों का मिलना)

मंदिरहूंताँ ऊतरथउ रवि ऊगंतइ वार।
माँगणहार बोलाविया पूछण तास विचार॥ १९४॥

कवण देसतइँ आविया, किहाँ तुम्हारउ वास।
कुँण ढोलउ, कुँण मारुवी, राति मल्हाया जास॥ १९५॥

पूगळहुंता आविया, पूगळ म्हाँकउ वास।
पिंगळ राजा तास धू मेल्ह्या थाँकइ पास॥ १९६॥

मारुवणी पिंगळ सुधू, अपछररइ उणिहार।
बाळपणइ परणी पछइ, भूल न कीन्ही सार॥ १९७॥

१९४—सूर्योदय के समय वह महलों से नीचे उतरा और याचकों को उनका विचार जानने के लिए बुलाया।

१९५—ढोला का प्रश्न—

तुम कौन से देश से आए हो ? तुम्हारा निवास कहाँ है ? कौन ढोला है और कौन मारुवी है जिनके विषय में रात में तुमने गाया था।

१९६—ढाढ़ियों का उत्तर—

हम पूगल से आए हैं। पूगल में हमारा निवास है। वहाँ पिंगल नाम के राजा हैं। उनकी पुत्री ने हमें आपके पास भेजा है।

१९७—मारवणी पिंगल राजा की सुपुत्री है। वह अप्सरा के समान सुंदरी है। बाल्यकाल में विवाह होने के पीछे भूल करके भी आपने उसकी सुधि न ली।

१९४—मंदिर (घ)। हुआ (घ)। ऊगतै (ख)। सु वार (ख) मांगळहार (घ)। तेडावियौ (ख)।

१९५—ढाढी सनमुख तेडीया कहो बात सु प्रकास (ग) = कवण०। किण दिसा सुं आवया (घ)। तुम्हारा (घ)। तास = जास (क. ग. घ)।

१९६—हुंता (ख)। हुती (घ)। आवीयौ (ख)। तासु (क)। मेल्हा (घ)।

१९७—कुमरी = मारुवणी (ग)। रायनी = सुधू (ग)। री (ख)। अणुहार (ख)। उणहार (ग)। बालापणै (ख)। मूळ = भूल (क)। म = न (क)।

दुज्जण वयण न संभरइ, मनाँ न वीसारेह।
कूँझाँ लाल बचाँह ज्यउँ खिण खिण चीतारेह॥ १९८॥

सज्जण, दुज्जण के कहे भड़िक न दीजइ गाळि।
हळिवइ हळिवइ छंडियइ जिम जळ छंडइ पाळि॥ १९९॥

संदेसे ही घर भर्‌यउ कइ अंगणि कइ वार।
अवसि ज लग्गा दीहड़ा, सेई गिणइ गँवार॥ २००॥

जळमँहि वसइ कमोदणी, चंदउ वसइ अगासि।
ज्यउ ज्याँहीकइ मनि वसइ, सउ त्याँही कइ पासि॥ २०१॥

१९८—दुर्जनों के वचनों को न सुनों और मन से मारवणी को मत विसारो। कुंझ पक्षी जिस प्रकार (अपने) लाल लाल बच्चों को क्षण क्षण में याद करते रहते हैं उसी प्रकार (मारवणी तुमको) याद करती है।

१९९—हे सज्जन, दुर्जनों के कहने से एक दम परित्याग नहीं कर देना चाहिए। यदि छोड़ना ही हो तो धीरे-धीरे छोड़ना चाहिए जैसे पानी किनारे को छोड़ता है।

२००—क्या आँगन और क्या दरवाजे—सारा घर मारवणी ने सँदेसों से भर दिया है। दिन अवश्य लग गए हैं पर उनकी गणना गँवार (को छोड़ कर और कौन) करता है।

२०१—कुमुदिनी पानी में रहती है और चंद्रमा आकाश में रहता है परंतु फिर भी जो जिसके मन में बसता है वह उसके पास ही होता है।

१९८—पिसुणां चींत्यौ जनि करहु = दुज्जण० (थ)। मनह न (ग. घ)। बीसारेहि (थ)। क्रूंझी (ग) कुंझी (थ)। चींतारेहि (थ)।

१९९—केवल (झ) में।

२००—संदेसा (घ)। आंगण (घ)। अवस (घ)। लगे (ख)। से किम (घ)। गयौ (ख)।

२०१—मै (ग)। कमोदिनी (ख. ग)। कमळ कमोदिक जळ बसइ (च) जेम कमोदणि जळ वसइ (ज)। चन्दा (ग) चन्दौ (क. ख)। वसै (क. ख. ग)। अगाह (ख) आकास (क. ग. घ) आकासि (ज)। जे (क. ख. ग. ज) जाहू (क. ख. ग) जीयाँ रै (ज)। मन (क. ग. घ. ज)। बसै (क. ख. ग)। ते = सउ (ज)। ताहू (क. ख. ग. झ)। तीयाँ रै (ज)। पास (क. ख. ग. घ. ज. झ)।

चुगइ, चितारइ, भी चुगइ, चुगि चुगि चितारेह।
कुरभी बचा मेल्हिकइ, दूरि थकाँ पाळेह॥ २०२॥
चीतारंती चुगतियाँ कुंभी रोवहियाँह।
दूराहुंता तउ पलइ, जऊ न मेल्ह हियाँह॥ २०३॥
दिसि चाहंती सज्जणा, नेहाळंदी मुंध।
सा धण कुंभि-बचाह ज्यउँ लंबी थई तुँ कंध॥ २०४॥
चीतारंती सज्जणाँ, नीहाळंती मग्ग।
धण कुंझाह-बचाहि जिउँ लाँबा हूयापग्ग॥ २०५॥
आसालुध्धो हूँ न मुइय सज्जन-जंजाळेइ।
मारू सेकइ हथ्थड़ा भीणे अंगारेइ॥ २०६॥

२०२—कुंझ चुगती है, फिर अपने बच्चों की याद करती है और चुग चुगकर फिर याद करती है। इस प्रकार कुंझ अपने बच्चों को छोड़कर भी, (चुगने के लिए दूर जाने पर भी) दूर रहती हुई, पालती है।

२०३—चुगती हुई कुझें अपने बच्चों की याद करके रो उठती हैं। दूर होते हुए भी (वे) तभी पल सकते हैं जब कि उन्हें हृदय से न भुला दिया हो।

२०४—वह मुग्धा प्रेयसी प्रियतम (के आने) की दिशा देखती हुई और प्रतीक्षा करती हुई कुंझ के बच्चे की तरह लंबी गर्दनवाली हो गई है।

२०५—प्रियतम की याद करती हुई और उसका मार्ग देखती हुई प्रियतमा मारवणी के पैर कुंझ के बच्चे की भाँति लंबे हो गए हैं।

२०६—प्रियतम के स्वप्नों द्वारा मिलन की आशा से लुब्ध हुई मारवणी

२०२—चीतारे (क. घ)। कूंभां (ख) कुरुभ (घ)। मेल्हीया (क) मेलहया (घ)।

२०३—चुगंतीयां (च)। चुगंति फळ (थ)। कूंभी (ग)। रोरवीयांह (ग. न) रोहवीयांह (ज) रोहबियांह (थ)। दूरां (च)। हूंत (ग) हुंती (ज)। जो=तउ (ग. ज) जउ (थ)। मिलै (ग) मिळइ (च) पुलै (ज)। तो (ग) तौ (ज) तउ (थ)=जऊ। मन मेलहइ याह (ग)। मेल्हियहियांह (थ)। दूर थकांही पलहवै जौ वन मेल्ही जाह (?)।

२०४—दिस (ज)। सजनां (ज)। नेहालडी (च)। नेह उलंघ्या पंथ (थ)। साय धण (ज)। वचह (ज। कुंभ न चंच ज्युं=कुंभि० (थ)। लांबी (थ)। भई (ज)। कुकंब=तुँ कंध (थ)।

२०५—केवल (च) में।

२०६—केवल (च) में।

चंदमुखी, हंसा-गमणि, कोमळ दीरघ केस।
कंचन-वरणी कामनी वेगउ आवि मिलेस ॥ २०७ ॥

ढोलइ मनि आरति हुई, सांभळि ए विरतंत।
जे दिन मारू विण गया, दई न ग्याँन गिणंत ॥ २०८ ॥

माँगणहाराँ सीख दी ढोलइ तिणहि ज ताळ।
सोवन-जड़ित सिँगार दे नाँख्यउ दळिद् उताळ ॥ २०९ ॥

माँगणहाराँ सीख दी, आयउ मंदिर माँहि।
ढोलइ मन आणँद भयउ, मारूतणइ उछाहि ॥ २१० ॥

नहीं मरी। इस प्रकार वह अपने हाथ मानों आधे बुझे हुए अंगारों में सेक रही है।

२०७—चाँद जैसे मुखवाली, हंस जैसी गतिवाली, कोमल और लंबे केशोंवाली और स्वर्ण जैसे रंगवाली कामिनी से शीघ्र आकर मिलो।

२०८—यह वृत्तांत सुनकर ढोला के मन में लालसा उत्पन्न हुई और सोचने लगा कि मेरे जो दिन मारवणी के बिना गए विधाता उनको मेरे जीवन में न गिने।

२०९—ढोला ने उसी समय याचकों को बिदा दी और सुवर्ण जड़े हुए शृंगार देकर उनका दारिद्र्य नष्ट कर दिया।

२१०—ढोला ने याचकों को बिदा दी और महल में आया। ढोला के मन में मारू के मिलन के उत्साह से आनंद हुआ।

२०७—चन्दामुषि (ख)। गमण (ख)। काटिहर=दीरघ: (ग)। कंचण (ग)। वरणा (ख. ग)। वालहा (ख. ग) बलहा (घ)। आव (ग) आई (ख)। मिलेसि (ख. ग)।

२०८—मन (ख. ग)। आतर (ग) आरित (घ)। सांभळ (ख)। विन (ग)। लहंत (ख) गिनंत (ग)।

२०९—सोवण (ख)। जड़त (क)। सणगार (ख) सिणगार (क) सिंगारि (घ)। नाँखौ (क) नांख्या (घ)। दळद (क. घ) दरिद्र (ग)।

२१०—हुवौ (ख)। तणौ (ख)। उछाह (ख)।

(ढोला की आतुरता)

मन सींचाणउ जइ हुवइ, पाँखाँ हुवइ त प्राँण।
जाइ मिलीजइ साजणाँ, डोहीजइ महिराँण॥ २११॥
आडा डूँगर वन घणा, ताँह मिलीजइ केम।
ऊलाळीजइ मूँठ भरि मन सींचाणउ जेम॥ २१२॥
इहाँ सु पंजर मन उहाँ, जय जाणइला लोइ।
नयणा आडा वींझ वन, मनह न आडउ कोइ॥ २१३॥
जिउँ मन पसरइ चिहुँ दिसइ, जिम जउ कर पसरंति।
दूरि थकाँ ही सज्जणाँ, कंठा ग्रहण करंति॥ २१४॥

(ढोला-माळवणी संवाद)

माळवणी सिणगार सझि, आई वालँभ पास।
मन संकोची पदमिणी, प्रीतम देखि उदास॥ २१५॥

२११—यदि मन बाज पक्षी हो और प्राण पाँखें हों तो महारण्य को उलाँघा जाय और प्रियतमा से जा मिला जाय।

२१२—बीच में बहुत से पर्वत और वन हैं, उस (प्रियतमा) से कैसे मिला जाय। बाज की भाँति मन को मूँठ भरकर उड़ा दिया जाय।

२१३—मेरा देह-पिंजर तो यहाँ है और मन वहाँ है। वास्तव में यदि लोग समझें तो यद्यपि आँखों के अवरोधी घने जंगल हैं परंतु मन का अवरोधी कोई नहीं।

२१४—जिस प्रकार मन चारों दिशाओं में प्रसरित हो जाता है उसी प्रकार यदि हाथ भी प्रसरित होते तो दूर बसती हुई प्रियतमा को गले से भेंटता।

२१५—शृंगार सजाकर मालवणी प्रियतम के पास आई, परंतु प्रियतम को उदास देखकर वह पद्मिनी मन में संकुचित हो गई।

२११—जो (क. घ)। हुवै परांण (ख)। सज्जनां (ख)। डोडहीजै (क)।

२१२—वींझ वन = वन घणा (क)। वीन वीन (घ)। तिहीं (ख)। ऊडाडीजै (झ)। सीचाणै (ख)।

२१३—केवल (च) में।

२१४—जे (ख) जिम (झ)। चहुं दिसां (ख)। त्युं (क) त्यौं (ख) तिम (झ) = जिम। जे = जउ (क. ख.)। पसरंत (क. ख)। दूर (क)। वसंता = थकां ही (क. ख)। साजणा (ख) ग्रहा न (क)। करन्त (क)।

२१५—सजि (ख)। प्रिय पास जे = सिणगार सजि (ग)। देखी प्रीय उदास (ख), देखी चिंत उदास (ग)।

जेहा सज्जण काल्ह था, तेहा नाँही अज्ज।
माथि त्रिसूळउ, नाक सळ, कोइ विणट्ठा कज्ज ॥ २१६ ॥
मनह सँकाणी माळवणि, प्रियु काँई चलचित्त।
कइ मारुवणी सुधि सुणी, कइ का नवली वत्त ॥ २१७ ॥
साहिब हँसउ न बोलिया, मुझसूँ रीस ज आज।
अंतरि आमणदूमणा, किसउ ज इवड़उ काज ॥ २१८ ॥
चिंता डाइणि ज्याँ नराँ, त्याँ दृढ अंग न थाइ।
जइ धीरा मन धीरवइ, तउ तन भीतर खाइ ॥ २१९ ॥

२१६—वह मन में सोचने लगी कि प्रियतम जैसे कल थे वैसे आज नहीं हैं। (आज उनके) मस्तक पर त्रिशूल बन रहा है और नाक में सल पड़ रहा है; जान पड़ता है कि कोई काम बिगड़ गया है।

२१७—मालवणी मन में शंकित हुई कि प्रियतम का चित्त क्यों चलायमान है, क्या उन्होंने मारवणी की सुध सुनी है या कोई नई बात हुई है?

२१८—मालवणी—

हे प्रियतम तुम न हँसते हो न बोलते हो, आज मुझसे अवश्य रिसाए हुए हो। अंतःकरण में व्यथित एवं उदास हो। ऐसा कौन सा भारी काम आ पड़ा?

२१९—जिन लोगों को चिंता-रूपी डाइन लगी हुई है उनके अंग दृढ़ नहीं होते। जो धीर पुरुष हैं वे धैर्यपूर्वक सह लेते हैं, तो भी उनके तन को भीतर ही खाती है।

२१६—केवल (ख) में।

२१७—मन (ज) मनि (थ)। मालवी (ज)। प्रीव (ज)। कांय (ज)। चिल (थ)। का (थ)। मारवणी (ज)। बुद्धि (ज)। तणी = सुणी (थ)। कइ वळि (ज) कानि पडी वळि (थ)।

२१८—बोलही (क. घ)। रीसौं (घ)। अज (घ)। इतरो (क) इतरू (घ) = अंतरि। अवडो (घ) इतरौ (ख)। कज (घ)।

२१९—डाइण (क. ग. घ) डाकिण (ख)। जिहाँ (ख. घ. च. थ)। जहा (ग)। तिहां (क) तां (ख) तीयां (घ) तिह (च)। घटि = दृढ़ (च)। अंगि न = अंग न (च)। माइ (च. थ) माय (ज)। जीयां (क) जो (च)। धीरै (ख) धीरो (ज)। धीरण पण रहइ (च) धीरपण रहै (ज) धीरत पणे (थ) = मन धीरवइ। जे नर चिंता वस करै (ध)। तीयां (क) तौ (ख) त्यां (ग) तसु (ज. थ) भीतर पैसी खाई (च. थ) भीतर पयसी खाय (ज)।

चिंता बंध्यउ सयळ जग, चिंता किणहि न बध्ध।
जे नर चिंता वस करइ, ते माणस नहि सिध्ध ॥ २२० ॥

माळवणी, तूँ मन-समी, जाणइ सहू विवेक।
हिरणाखी, हसिनइ कहइ, करउँ दिसाउर एक ॥ २२१ ॥

गढ नरवर अति दीपता, ऊँचा महल अवास।
घरि कामिण हरणाखियाँ, किसउ दिसावर तास ॥ २२२ ॥

तंती-नाद तँबोळ-रस, सुरहि सुगंधउ जाँह।
आसण तुरि घरि गोरड़ी, किसउ दिसाउर त्याँह ॥ २२३ ॥

२२०—ढोला—

सारा जगत् चिंता से बँधा हुआ है पर चिंता को किसी ने नहीं बाँधा। जो मनुष्य चिंता को वश में कर लेते हैं वे मनुष्य नहीं किंतु सिद्ध हैं!

२२१—हे मालवणी, तू मेरे मन में समा गई है, तू सब बातों को समझती है। हे हरिणाक्षी, यदि तू हँसकर कहे तो मैं एक (बार) परदेशाटन करूँ।

२२२—मालवणी—

जिनके नरवर जैसा प्रसिद्ध गढ़ है, ऊँचे ऊँचे महल और घर हैं और घर में हरिणाक्षी कामिनी है उनके लिये देशाटन कैसा?

२२३—जिनको तंत्री का नाद, तांबूल का रस, सुरभित सुंगधि, घोड़े की सवारी और घर में सुंदरी स्त्री (उपलब्ध है) उनके लिये देशाटन कैसा?

२२१—वसी=समी (क. घ.)। मनि सूं सही (च) मनि सांमुही (ज) मनि संमुही (थ)=तूं मन समी। जाणै (क. ख. घ)। विवेक (क. ख. च. ग. थ)। हरिणाखी (क. ख. ग. घ. झ) हिरणंखी (च)। हसनें (ज)। करां (ग. ज. थ) दिसावर (क. ख. ग. घ. च. छ)।

२२२—नळवर (ग)। दीपती (क) दीपतां (घ)। आवास (क. ग. घ)। घर (क. ख. ग.)। हरिनाखियां (ग) हरिणावीयां (घ)।

२२३—सुरह (ज) सुगंधी (थ)। ज्याह (ज) जाइ (थ)। आसणि (च. थ.)। तुरीय (च)। तुरी (थ)। पग मोजड़ी (च. ज. थ.)। करउँ (थ) दिसावर (ज) देसाउर (थ)। तांह (थ)।

ईडरकी धर अउळगउँ, जइ तूँ कहइ तु जाँह।
अउथि घड़ाऊँ आभरन माल्हवणी, मेलाँह॥ २२४॥

ईडरकी धर अउलगण, हूँ तउ जाण ण देसि।
घरि बइठाही आभरण, मोल मुहंगा लेसि॥ २२५॥

मुळताणी धर मन वसी, सुहँगा नइ सेलार।
हिरणाखी, हसि नइ कहइ, आणउँ हेडि तुखार॥ २२६॥

२२४—ढोला—

यदि तुम कहो तो मैं ईडर की यात्रा करने के लिये जाऊँ। हे मालवणी, वहाँ आभूषण बनवाऊँ और तुम्हें भेजूँ।

२२५—मालवणी—

ईडर का प्रवास करने को मैं तुम्हें नहीं जाने दूँगी। घर बैठे ही महँगे मोल पर आभूषण खरीद लूँगी।

२२६—ढोला—

मुलतान की भूमि मेरे मन में बसी है। हे हरिणाक्षी, यदि तू हँसकर कहे तो वहाँ से सहज ही में सस्ते घोड़ों के झुंड लाऊँ।

२२४—राजा (च. ज)=की धर। ऊळगूं (क. झ) ओलगूँ (ख) ओळगण (ज)। जे (क. ख. ग) जौ (ज)। थे=तूं (क. ख. ग. घ. ज. झ)। कहो त (क. ख. ग. घ. झ) कहि तौ (ज)। जाउ (घ)। उहा (च. ज) उवाडुं (क) उवाह (घ) ऊथि (ग) ऊबाहूं (झ)। घणाइ (च)। घोड़ो (क) घाडा (घ) घोड़ा (झ) घडावै (ज) मालवणी (च. ज)। मलांह (ज) मल्हाउ (घ)।

२२५—इडर राजा (च. ज) ऊळगूं (च. थ) उळगण (क. ख. ग. घ) ओळगण (ज)। हुं (क. ख. ग. घ)। तुझ (क. ख. ग. घ. ज)। न (क. ख. ग. घ. ज)। देस (क. ख. ग. घ. ज)। इथे (क) एथ (ख) एथि (घ)=घरि। बैठा (क. ख. ग. घ) मूल (ग) मोलि (च. थ)। महंगा (ख) महुंगा (ज) मुहगा (थ)।

२२६—जाइ कै (ख)=मन बसी। अनै (क. घ)। सेलाइ (क)। मुलताणी सोवन समा सुहगा आणि भरतार (थ) हरणाखी (क. ख. ग. घ)। हस (ख. ज)। नै (क. ख. ग) नी (घ) नें (ज) कहै (क. ग. घ) कह्यौ (ख) आणां (क. ख. ग. घ) एथ (क) पंथ (ग)=हेडि हेड (ख. ज)। विसाइ (क. घ) विसार (ग)=तुखार।

नोट—च. ज. थ. ध. में पंक्तियों का क्रम उलटा है।

हिरणाखी हसि नइ कहइ तुं आणउ हेडि तुखार। मुलताणी मो मन समा सुहड़ा ते असवार (च०) मुहंगाने सौ वार (ज०) सुहिणा नी सुविचार (ध)।

घरि बइठा ही आविस्यइ, लाखे लियाँ लडंग।
तिणिमइँ लेस्याँ टाळिमा, वाँकड़ मुहाँ विडंग ॥ २२७ ॥

काछी करह विथूँभिया, घड़ियउ जोइण जाइ।
हरणाखी, जउ हसि कहइ, आणिसि एथि विसाइ ॥ २२८ ॥

साहिब, कच्छ न जाइयइ, तिहाँ परेरउ द्रंग।
भीभळ नयण सुवंक धण, भूलउ जाइसि संग ॥ २२९ ॥

२२७—मालवणी—

घर बैठे ही (व्यापारी) लाखों घोड़े लिए हुए आ जायँगे। उनमें से हम चुने हुए बाँके मुँहवाले घोड़े लेंगे।

२२८—ढोला—

कच्छदेश के बड़ी थूही वाले ऊँट घड़ी भर में योजन जाते हैं। हे हरिणाक्षी यदि तू हँसकर कहे तो उनको मोल लेकर यहाँ लाऊँ।

२२९—मालवणी—

हे स्वामिन् कच्छ मत जाइए, वहाँ पराया दुर्ग (राज्य) है। वहाँ कजरारे नयनोंवाली सुंदरी स्त्रियाँ हैं जिनके साथ भूले हुए तुम चले जाओगे।

२२७—एथि (क) घर (ख. ग) एथ (घ)। बैठा ही (क. ख. ग. घ. ज)। आविसी (क. घ) आइसी (ख) आवसी (ग. ज)। मुहे (क. ख. ग. घ)=लियाँ। तिण मैं (क. घ) तांहमि (ख) ताहि मैं (ग) त्यां मांहि (ज तिणि मांहे (च)। लैसां (ख) लीसां (घ) टाळिवा (ख) टाळमा (घ)। चुणवा लीजसी (ज) चुणि लीजस्यइ (च)। बंक (च) वांक (घ) मुह (ग)।

२२८—काछीया (ख)। कर (ग) करहा (घ) रह (च)। वे थूंभिया (ग) विथुंभीया (ज)। घड़ीया (च)। घड़ीयां (ज)। जाय (ज)। जाइण (ग) जोयण (ज)। हरिणांखी (ग)। जौ (ज)। हसिनै=जउ हासि (घ)। मालवणी जइ तू कहइ (च) हरणाखी०। आणां (क. ख. ग. ज) आणो (घ)। पंथ (ख. ग. घ)। एथ (ज) विसाय (ग. ज)।

२२९—ढोला (च. ज)=साहिब। कठि (ख) कछ (ग)। म जाइसि कछ दिसि (च) म जाइसि कच्छ देसि (थ)। वालँभ म जाए कछ्छड़े (न)। ताह (क. ख. ग. घ) त्यांह ज (ज)। परे रै (क) परेरा (ख) परेहरा (म) प्रहरें (ज)। द्रंगि (ख. च. ज. थ)। भींभळ (ग) भंभळ (झ) भिंभळ (थ)। नैण (ज) नयणि (झ)। सुचंग (क. ख. ग. घ. ज. झ)। त्री (ख) धी (क) त्रीय (ग)=धण। भूलो (क. ख. ग. घ. झ)। जाइस (क. ख. ग. घ. ज. झ)। संगि (च. थ)। जाइस भूलो संग (ग. घ)।

सउ सहसे एकोतरे, सिरि मोतीहरि सुध्ध।
नदी निवासउ उत्तरइ, आणूँ एक अविंध॥ २३०॥

मरजीवउ पाँणी तणउ, साल्ह, उघटनइ खाइ।
दुख सहणा, पुहरा दियण, कंत, दिसाउरि जाइ॥ २३१॥

गयगमणी, गूजर धरा आणाँ दखणी चीर।
मनह सँकोडी माळवी, सोहइ तुझ्झ सरीर॥ २३२॥

सहसे लाखे साटविसु, परिघळ आणाँ वेसि।
घरि बइठा ही प्रीतमा, पट्टोळा पहिरेसि॥ २३३॥

२३०—ढोला—

समुद्र में उतरकर एक लाख एक सौ एक का एक अविद्ध सुमेर का शुद्ध मुक्ताफल लाऊँगा।

२३१—मालवणी—

हे साल्ह कुमार, पानी के पनडुब्बे को कोई जीव उचटकर खा जायगा। हे कंत, दुःख सहने और पहरा देने के लिये भला कोई परदेश जाता है?

२३२—ढोला—

हे गजगामिनी, मैं गुजरात से तुम्हारे लिये दक्षिणी चीर लाऊँगा। हे मन में संकुचित होनेवाली मालवणी, वह तुम्हारे शरीर पर शोभा देगा।

२३३—मालवणी—

हजारों लाखों के पहिनने के वस्त्र मैं इकट्ठे ही मँगा लूँगी और हे प्रियतम, मैं घर बैठे ही पट्टकूल पहनूँगी।

२३०—सौ सहस्से (ज)। इकोतरें (ज)। सिर (ज)। सुधि (च)। निवासौ (ज)। उतरां (ज)। आण (ज) अवंधि (च)।

२३१—साम्हो घट (ज)=साल्ह उघट। खाय (ज)। सहिणा (ज) पोहर (ज)। कवण दिसावर जाय (ज)।

२३२—गुज्जर (थ)। आणा (च) आणी (थ)। विचक्षण (च)। मालवणि (च. थ)। सोहै (ज)। तुझ्झ (ज)।

२३३—लाखवे (थ)। साटविस (ज)। आणि सु विस (च)। पटोळी (ज) पट्ट-कूल (थ)।

गाहा

दीसइ विवहचरीयं, जाणिज्जइ सयण दुज्जण सहावो ।
अप्पाणं च कळिज्जइ, हंडिज्जइ तेण पुहवीए ॥ २३४ ॥
साहिब, रहउन राखिया कोड़ि प्रकार कियाह ।
का थाँ काँमिण मन वसी, का म्हाँ दूहवियाह ॥ २३५ ॥
वळि माळवणी बीनवइ हुँ प्री, दासी तुझ्झ ।
का चिंता चित अंतरे सा प्री, दाखउ मुझ्झ ॥ २३६ ॥

२३४—ढोला—

विदेशों में भ्रमण करने से अनेक प्रकार के चरित्र दिखाई पड़ते हैं, सज्जनों और दुर्जनों के स्वभाव मालूम होते हैं और मनुष्य अपने आपको पहचान जाता है—इसलिये पृथ्वी पर भ्रमण करना चाहिए ।

२३५—मालवणी—

स्वामिन्, तुम रोके नहीं रहते, मैंने करोड़ों उपाय कर लिए । या तो कोई अन्य सुंदरी आपके मन में बसी है या हमसे नाराज हो गए हो ।

२३६—फिर मालवणी विनय करती है—हे प्रियतम मैं तुम्हारी दासी हूँ । हे प्रिय, तुम्हारे मन में क्या चिंता लगी है वह मुझसे कहो ।

२३४—विवहचरीयं (क) जाणीजै (ख) जाणिज (ग) । सै (ख) सजन (ग) सजना (घ) । दुजण (ख) दुजन (ग. घ) । विसेसो (क. ग. घ)=सहावो । अपाणं (ख) अप्पानं (ग) । आयाण (घ) । त (ख)=च । कळिजै (ख. घ) कालिजै (ग) । हिंडीजै (क) हंडजै (ख) । पहवेण (ख. ग) ।

संस्कृत छाया—

दृश्यते विविधचरितं ज्ञायते सज्जनदुर्जनस्वभावः ।
आत्मानं च कलय्यते हिण्ड्यते तेन पृथिव्याम् ॥

२३५—रदो न पालिया (ख) । कीया (क. थ) का कामिणका (क. घ) कामिण थांरै (ग) । कै (ख) । मैं (क. घ) कहाँ (ख) । दुहवीया (घ) ।

२३६—मालवणी इम (क. ख. ग. घ)=वळि मा० । प्रीय (ग. थ) प्रीयु (च) । तुझ (क. ख. ग. घ. झ) । जीव ऊतरै (ख)=चित्त अं० । चिंता चित अंतरि बसइ (ज) चिंता चित्त भीतरि बसइ (च) चिंता चित अंतरी अछै (थ) । मो (घ)=साइ (च. थ) सोई (ज) । थे (क. ग. घ)=प्री । प्रकासउ (च. ज)=प्री दाखउ । तुझ (ख. ग. घ) ।

ढोला आमण दूमणउ, नख ती खूदइ भीति ।
हमथी कुण छइ आगळी, बसी तुहारइ चीति ॥ २३७ ॥
सुणि सुंदरि, सचउ चवाँ, भाँजइ मनची भ्रंति ।
मो मारू मिळिवातणी, खरी विलग्गी खंति ॥ २३८ ॥
माळवणीकउ तन तप्यउ, विरह पसरियउ अंगि ।
ऊभी थी खड़हड़ पड़ी, जाणे डसी भुयंगि ॥ २३९ ॥
छाँटी पाँणी कुमकुमइँ, वीभण वीझ्या वाइ ।
हुई सचेती माळवी, प्री आगलि विललाइ ॥ २४० ॥

२३७— हे ढोला, तुम उदास हो रहे हो, नखों से भीत को खरोंच रहे हो। हमसे बढ़कर कौन है जो तुम्हारे चित्त में आ बसी है ?

२३८—ढोला—

हे सुंदरी, सुनो, सच्ची बात कहते हैं कि जिससे तुम्हारे मन की भ्राँति दूर हो—मुझे मारवणी से मिलने की बड़ी अभिलाषा लगी है ।

२३९—यह सुनते ही मालवणी का शरीर संतप्त हो उठा और उसके अंगों में विरह व्याप्त हो गया। वह खड़ी थी, यह सुनकर धड़ाम से जमीन पर गिर पड़ी मानो साँप ने काट खाया हो ।

२४०—तब ढोला ने उसे गुलाब-जल के छींटे दिए और पंखे से हवा की। मालवणी होश में आई और फिर प्रियतम के आगे कातर होकर रोने लगी।

२३७—केवल (च) में ।

२३८—सुंदर (ग) । सुंदरि सुणि (ज) । सचौ (ख) ढोलउ (च. थ) साचौ (ज) । कहइ (च. थ) कहाँ (ज)=चवाँ । भाजै (क. ख) भाणै (ग) भानाँ (ज) भाजौ (थ) । की (क. घ) रा (ग) नी (च) री (ज. थ)=ची । भाँत (क) भ्रांति (ख) भाँति (घ. ज) जाति (ग) । मारवणी (थ)=मो मारू । मिलवा (क. ख. घ) । विलगी (क) विलांगी (ख) विलागी (ग) । खाँत (क) खाँति (ख. ज) ।

२३९—मनि विलवती (च. ज) मनि विलविलइ (थ)=कउ तन तप्यौ । पसरिग्यौ (क) पसरगौ (ग) पसरग्यौ (घ) पसारइ (च) पसरियों (ज) पसारयउ (थ) । अंग (क. ग. घ) । खरहड़ (ज) घड़ि हड़ि (च) खड़हय (ग) । डसीय (च) भुयंग (क. घ) भुवंग (ख) ।

२४० सीतळ पानी छंटि (च) सीतळ पाणी छाँटिया (ज. थ) ताढौ वीजण वाउ (क) वाजी ताढी वाइ (ख) ठंढी वाजै वाय (ग) ताढौ वीजौ वाय (घ) वींझै वींझण वाय (ज) वीझड़ वीजइ वाइ (थ) । वाउ (च) सचेतन (थ) । माळवणि (च) । आगइ (च. थ) आगे (ख. ग) । विललाय (ज) ।

(ग्रीष्म-वर्णन)

थळ तत्ता लू साँमुही, दाम्फोला पहियाह।
म्हाँकउ कहियउ जउ करउ घरि बइठा रहियाह॥ २४१॥

कहिए माळवणी-तणइ, रहियउ साल्ह विमास।
ऊन्हाळउ ऊतारियउ, प्रगट्यउ पावस-मास॥ २४२॥

(वर्षा-वर्णन)

गउखे बइठा एकठा, माळवणी नइ ढोल।
अंबर दीठउ ऊनयउ, तिम संभार्यउ बोल॥ २४३॥

२४१—भूमि तपी हुई है, लू सामने है, हे पथिक, (यदि मारवणी के देश को गए तो) तुम जल जाओगे। जो हमारा कहना करो तो घर ही पर बैठे रहना।

२४२—मालवणी के कहने से साल्हकुमार दो मास तक रुक गया। ग्रीष्म ऋतु बीत गई और वर्षा का महीना आया।

२४३—मालवणी और ढोला दोनों एक साथ झरोखे में बैठे हुए थे। उस समय ढोला ने आकाश (में बादलों) को उमड़ा देखा त्योंही मालवणी का वचन याद किया।

२४१—सामुहा (ग) सामुही (च)। दाझे सु पहीया (च) पहुचो नहि पहियाउ (थ)। जै (ख)। तौ घरि (क) तौ घर (ख)=घरि। (तउ) घण बुठइ घरि जाउ (च. थ)।

२४२—कहीये (क. ख ग. घ)। रहियौ (क. ख. ग. घ)। ढोलउ रह्यउ (च. ज)= रहियउ साल्ह। ऊनाळौ (क. ख) ऊन्हाळौ (ग)। ऊतारियौ (क. ख. ग) ऊतरि गयौ (झ) प्रगट्यौ (क. ख. ग)।

२४३—गौखै (क. ख. ग. घ) गोखें (ज) गोषइ (झ)। बैठा (क. ग. घ) बेठां (ख)। एकठां (ख)। नै (क. ग. घ)। ने (ख)। आंबर (ख)। दीठौ (क) देखे (ख) देख्यौ (ग) दिख्यौ (घ) दीठी (च) दीठो (ज)। ऊनम्यौ (क. ख. ग. घ. झ. थ) ऊनया (च) ऊँनम्यो (ज. थ) तब (क. ख. ग. घ. झ) मनि (थ)=तिम। चितार्यौ (क. ख) चीतार्यौ (ग. घ)।

पगि पगि पाँणी पंथसिर, ऊपरि अंबर-छाँह।
पावस प्रगट-थउ पदमिणी, कहउ त पूगळ जाँह ॥ २४४ ॥

लागे साद सुहाँमणउ, नस भर कुंझड़ियाँह।
जळ पोइणिए छाइयउ, कहउ त पूगळ जाँह ॥ २४५ ॥

जिण रुति बग पावस लियइ धरणि न मेल्हइ पाइ।
तिण रुति साहिब वल्लहा, कोइ दिसावर जाइ ॥ २४६ ॥

जिण रुति बहु पावस झरइ, बाबहियउ बोलंत।
तिण रुति साहिब वल्लहा, को मंदिर मेल्हंत ॥ २४७ ॥

२४४—ढोला—

पग पग पर मार्ग में पानी भर गया है, ऊपर आकाश में बादलों की छाया हो गई है। हे पद्मिनी, वर्षा ऋतु प्रकट हुई, अब कहो तो पूगल जावें।

२४५—रात भर कुंझों का शब्द सुहावना लगता है। सरोवरों का जल कमलिनियों से छा गया है। यदि कहो तो अब पूगल जावें।

२४६—मालवणी—

जिस ऋतु में बगुले भी वर्षा के कारण धरती पर पैर नहीं रखते, हे प्यारे स्वामी, भला उस ऋतु में कोई घर को छोड़ता है।

२४७—जिस ऋतु में वर्षा खूब झड़ी लगाए रहती है और पपीहे बोलते हैं उस ऋतु में, हे प्रिय स्वामिन्, बताओ भला कोई घर को छोड़ता है ?

२४४—पग पग (क. ख. ग. घ)। सामुहा (च. थ) = पंथ सिर। ठाढी बादळ (क) बादल ठाढी (ख) बादळि ठाँढी (ग) ताढी बादळ (घ. ज. न) = ऊपरि अंबर। आयौ (क. ख. ग. घ. थ) आयो (ज)। पदमिनी (ग) पदमंणी (घ)। कहौ (क. ख. ग. घ) पूंगलिं (ज)। जांहि (घ)।

२४५—टीहाँ सद सुहामणा सरवर कुरझड़ियाँह।
जळ में पोइण छाइयाँ......... । (न)

२४६—रुत (घ) रित (ट)। पग (ग)। धरण (ग. घ. ट)। मेलै (ख. ग)। पाव (क)। जिन (ग)। बाल्हिहा (ग)। को मंदिर मेल्है जाइ (ग)। तिण रित मेले मालवणि प्री परदेस न जाय (ट) तिण रुति बूढी ही झुरै तरुणी केम रहाई (घ)।

२४७—झुरै (क)। बावीहा (ख) बोलंति (ग)। बल्हहा (ग)। कोइ (क)। मंदिर ही (क. ख) मंदर ही (घ)।

प्रीतम कामणगारियाँ थळ थळ बादळियाँह ।
घण बरसंतइ सूकियाँ, लूसूँ पाँगुरियाँह ॥ २४८ ॥
कप्पड़, जीण, कमाण-गुण भीजइ सब हथियार ।
इण रुति साहिब ना चलइ, चालइ तिके गिमार ॥ २४९ ॥
बाजरियाँ हरियाळियाँ, बिचि बिचि बेलाँ फूल ।
जउ भरि बूठउ भाद्रवउ, मारू देस अमूल ॥ २५० ॥
धर नीली, धण पुंडरी, धरि गहगहइ गमार ।
मारू-देस सुहामणउ साँवणि साँझी वार ॥ २५१ ॥

२४८—हे प्रियतम, स्थल स्थल पर जादूगरनी बदलियाँ छाई हुई हैं । वे मेंह बरसने से सूख जाती हैं, परंतु लू से पनप जाती हैं । (?)

२४९—इस ऋतु में कपड़े, जीन, धनुष की डोरी और सारे हथियार भीग जाते हैं । इस ऋतु में प्रियतम नहीं चलते । जो चलते हैं वे गँवार हैं ।

२५०—ढोला—

बाजरियाँ हरी हो गई हैं और उनके बीच बीच में बेलों में फूल लगे हैं । यदि भादों भर बरसता रहा तो मारू देश अमूल्य (अनुपम शोभावाला) होगा ।

२५१—पृथ्वी नीलवर्ण होगी परंतु प्रियतमा श्वेतवर्ण हो गई होगी । ग्रामीण जनों के घर घर में खूब गहमह—आनंदोत्सव की धूमधाम—होगी । मारू देश सावन में संध्या के समय बड़ा सुहावना होगा ।

२४८—केवल (न) में ।

२४९—कपड़ (ख. ग. घ) । जीन (ग) । कमाण (ग) । तिण (घ) । रुत (घ) । बन (ख) न (ग) = ना । गँवार (ख) गमार (ग) ।

२५०—बेलडियां (ज) । हरीया हुई (च) हरियां हुई (थ) नीलाणियाँ (न) । विचि टीडसीयां फूल (ज) विचि तिडि तिलया फूल (थ) । भर दे आयो भाद्रवउ (ज) । अमुल्ल (थ) ।

२५१—णीली (ख) । घर (क) । पूंवरी (क. ख. घ) पूयरी (थ) । पूवरी (त) छबूकिया लवार (क) छब्रूकती लवार (ख) छच्छूकिया लवार (घ) छिछुकती लवार (ट) । छब्रूकिया लवार (त) घरि गह रहे गमार (ध) वीजळी झणकार (द) । गिवार (ज) लबार (थ) । सौहामणउ (च) सुहांवणौ (ख) सुहांवणो (ज) । श्रवण बरसै बार (घ) । संझी (ख. त) साँझ (ट) । सवार (ट) ।

बाबहियउ पिउ पिउ करइ, कोयल सुरँगइ साद।
प्रिय, तिण रुति आळिग रह्याँ ताह सुँ किसउ सवाद ॥ २५२ ॥

डूँगरिया हरिया हुया, वणे झिँगोरथ्या मोर।
इणि रिति तीनइ नीसरइ, जाचक, चाकर, चोर ॥ २५३ ॥

चोर मन आलस करि रहइ, जाचक रहइ, लुभाइ।
राज्यँद, जे नर क्यउँ रहइ माल पराया खाइ ॥ २५४ ॥

फौज घटा, खग दाँमणी, बूँद लगइ सर जेम।
पावस पिउ विण वल्लहा, कहि जीवीजइ केम ॥ २५५ ॥

२५२—मालवणी—

पपीहा पिउ पिउ कर रहा है, कोयल सुरंगा शब्द कर रही है। हे प्रिय, ऐसी ऋतु में प्रवास में रहने से क्या स्वाद मिलेगा ?

२५३—पहाड़ियाँ हरी हो गई, वनों में मोर कूकने लगे। ऐसी वर्षा ऋतु में भिखारी, नौकर और चोर ये ही तीन घर से बाहर निकलते हैं।

२५४—इनमें भी चोर कभी कभी मन में आलस्य करके रह जाते हैं और भिखारी लुभाकर रह जाते हैं परन्तु जो लोग पराया अन्न खाते हैं वे (अर्थात् नौकर) हे राजन्, तुम्हीं बताओ कैसे घर रह सकते हैं ?

२५५—बादलों की घटाएँ फौज हैं, बिजली तलवार है और वर्षा की बूँदें बाणों की तरह लगती हैं। हे प्रियतम, ऐसी वर्षा ऋतु में प्यारे बिना कैसे जिया जाय।

२५२—बाबीहौ (ख) बाबहियाँ (घ) बाबहीया (ज) बाबीह (च)। प्रिउ प्रिउ (ग. ज) प्रीप्री (घ) प्रीय प्री (च)। मधुरै (ख. ग. घ. ज)=सुरंगै। प्री (घ) प्रीउ (च)। तिणि (च) इण (ज)। रिति (च)। अलिंगन (ग) अलिगण (घ) अळगा (च. थ) अळगो (ज)। रहै (ख. ग. घ) रहौ (ज)। सेजइ (च) सेझ (ज)=ताह सुं। त्यांह कु (घ)।

२५३—हुवा (क. ख. ग. ज)। वनें (क. च) वनें (ग. घ)। झिंगोरै (ज) झँगारै (थ) झकोरथा (न)। इण रुति (क. ख. ग. घ)। चालै तिण जण (ख) चालै तीन जण (ग) तीने सासरै (घ)। नीकळइ (च)। चाकर मंगित चोर (क. ख) याचक चातक चोर (च. ज)। मंगत (ग) मांगण (घ) जाचिग (थ)। चात्रिग (थ)=चाकर।

२५५—प्रीय (क) प्रिय (ग. घ)। वलहा (ग. घ)।

नदियाँ, नाळा, नीझरण पावस चढिया पूर।
करहउ कादिम तिलकस्यइ, पंथी पूगळ दूर॥ २५६॥

अति घण ऊनिमि आवियउ, झाझी रिठि झड़वाइ।
बग ही भला त बप्पड़ा धरणि न मुक्कइ पाइ॥ २५७॥

पावस-मास प्रगट्टिउं, जगि आणंद विहाय।
वग ही भला जु बापड़ा धरण न मेल्हइ पाय॥ २५८॥

जिण रुति बहु बादळ झरइ, नदियाँ नीर प्रवाह।
तिण रुति साहिब वल्लहा, मो किम रयण विहाय॥ २५९॥

२५६—वर्षा ऋतु में नदियाँ, नाले और झरने पानी से भरपूर चढ़े हुए हैं। ऊँट कीचड़ में फिसलेगा। हे पथिक, पूगल बहुत दूर है।

२५७—घने बादल उमड़ आए हैं। अत्यंत शीत झड़ी की वायु चल रही है। बेचारे बगुले ही भले, जो पृथ्वी पर पैर नहीं रखते।

२५८—वर्षा ऋतु का महीना आ गया, जगत् आनंदपूर्वक काल-यापन करता है। (तुमसे तो) बेचारे बगुले ही भले, जो इन दिनों पृथ्वी पर पैर नहीं रखते।

२५९—जिस ऋतु में बहुत से बादल झरते हैं, नदियों में पानी वेग से बहता है, उस ऋतु में हे प्रिय नाथ, तुम्हारे बिना मेरी रात कैसे बीतेगी ?

२५६—पाणी (च) पांणी (ज) = पावस। चढ़ीयौ (क. ग. घ) चडीया (च)। करहौ (क. ख. ग. घ)। कागद (ख) कादम (क. ग. घ) कादै (ज) क्युं चलै (क. ग) किम चलै (ख. घ) क्रिम क्रिमै (ज) = तिलकस्यइ। साहिब (क. ख. ग घ) पाळां (ज) = पंथी। पंथज (ज) = पूगळ। दूरि (च)।

२५७—अत (ज)। उँनमि (ज)। झाझ (थ)। रिति (ज) रितु (थ)। झडाइ (?)। वाउ (थ)। ति (थ)। मूकै (ज)। पाउ (थ)।

२५८—प्रगटीयौ (क. ग. घ)। जग (ध) नग (ग)। आनंद (ग)। ज (क. घ)। भला = भलाजु (ग)।

२५९—घण (क. घ) = वहु। झुरै (क. ग. घ)। वलहा (ग. घ) रैण विहाई (घ)।

च्यारइ पासइ घण घणउ, बीजळि खिवइ अगास।
हरियाळी रुति तउ भली, घर सपति, पिउ पास ॥ २६० ॥

जिण दीहे पावस झरइ, बाबीहउ, कुरळाइ।
तिणि दिनकउ दुख वल्लहा, मइँ क्यउँ सहणउ जाइ ॥ २६१ ॥

जिण दीहे पावस झरइ, समनेहाँ सुख होइ।
तिणि दिन वयरी वल्लहा, सेज न मुक्कइ कोइ ॥ २६२ ॥

महि मोराँ मंडव करइ, मनमथ अंगि न माइ।
हूँ एकलड़ी किम रहउँ, मेह पधारउ माइ ॥ २६३ ॥

२६०—चारों ओर घने बादल हैं। आकाश में बिजली चमकती है। ऐसी हरियाली की ऋतु तभी भली है जब कि घर में सम्पत्ति हो और प्रियतम पास में हो।

२६१—जिन दिनों वर्षा की झड़ी लगी रहती है और पपीहा करुण शब्द करता है, हे प्रियतम, उस दिन का दुःख मुझसे कैसे सहा जाय ?

२६२—जिन दिनों वर्षा की झड़ी लगी रहती है और समान प्रेमवाले प्रेमियों को सुख होता है, उन दिनों हे वैरी प्रियतम, सेज को कोई नहीं छोड़ता।

२६३—पृथ्वी पर मोर मंडप बनाकर (पिच्छ फैलाकर) नाच रहे हैं और काम अंगों में नहीं समाता। मैं अकेली कैसे रहूँगी—अरी माँ! आप मेंह के इन दिनों में पधार रहे हैं।

२६०—घन (ख)। वीजळ (ग. घ)। आकास (क. ब)। अंगास (ग)। प्रीय (क) प्रीउ (ग)।

२६१—जिण रुति पावस बहु घणौ (क. ख) जिण रुति बहु पावस झरै (ग) जिण रुति बहु पावस घणौ (घ)। झूरइ (ज)। बाबहिया (क. ग. ज) बावीहा (ख. ग. थ)। करळाय (ज)। दिन का (क. ख. ग) रुत का (घ) = दिन कउ। वालहा (च) वलहा (ग) से (क) मो (ख. ग. घ) कौ (ज) = मइँ। सहणा (क. ख. घ) सहिया (ग)। जाय (ज)।

२६२—पाळो झूरइं (ज)। झुरइ (थ)। सनेहां (ज)। होय (ज) रिति (थ) = दिन। मंदिर (ज. थ) = सेज। कोय (ज)।

२६३—मोर महा (च) मेह मोर (थ)। तांडव (च) डंबर (द)। मन्मथ (च)। अंग (ज)। एकली (च) अकेली (ज) एकल्ली (थ)। करूँ (ज) = रहूँ।

मेहाँ बूठाँ अन बहुळ, थळ ताढा जळ रेस।
करसणपाका, कण खिरा, तद कउ वलण करेस ॥ २६४ ॥
जिण दाहे वण हर धरइ, नदी खळक्कइ नीर।
तिण दिन ठाकुर किम चलइ, धण किम बाँधइ धीर ॥ २६५ ॥
जिण दीहे पावस झरइ, वाजइ ताढो वाय।
तिण रिति मेल्हे माळविण प्री, परदेस म जाय ॥ २६६ ॥
काळी कंठळि बादळी वरसि ज मेल्हइ वाउ।
प्री विण लागइ बूँदड़ी जाँणि कटारी घाउ ॥ २६७ ॥
ऊँचउ मंदिर अति घणउ आवि सुहावा कंत।
वीजळि लियइ झबूकड़ा सिहराँ गळि लागंत ॥ २६८ ॥

२६४—मेंह बरसने से अन्न बहुत हो गया है। पृथ्वी जल के कारण शीतल हो गई है। खेती पक गई। अन्नकण पककर गिरने लगे। बताओ ऐसे समय में कौन गमन करेगा।

२६५—जिन दिनों बन हरियाली धारण करते हैं और नदियों में पानी कलकल करता हुआ बहता है उन दिनों स्वामी कैसे चलेंगे? और प्यारी कैसे धैर्य धारण करेगी?

२६६—जिन दिनों में वर्षा की झड़ी लगी रहती है और ठंढी हवा चलती है उस ऋतु में मालवड़ी को छोड़कर हे प्रिय, परदेश मत जाओ।

२६७—काली कंठुलीवाली बदली बरसकर हवा को छोड़ रही है। प्रियतम के बिना बूँदें ऐसी लगती हैं मानो कटारी के घाव हों।

२६८—यह महल अत्यंत ऊँचा है, हे सुहावने कंत, आओ (बैठें); (देखो) बिजली झबक-झबककर शिखरों के गले लग रही है।

२६४—केवल (ट) में।

२६५—केवल (ट) में।

२६६—केवल (ट) में।

२६७—कांठळ (घ. ज)। वरस (क. ग. घ)। र=ज (ज)। मल्हे (ज) वाव (ग. घ. ज)। आज धराऊ ऊनह्यौ वाज्यौ सीतळ वाय। पुणग ज लागौ पीय विण (घ)। बूंद ज लागै प्रीय विण=प्री...बूँदड़ी (ग)। बूंद ज लागै प्रीय विना (घ)। जाणै (घ)। जांण (ज)। घाव (ग. घ. ज)। केवल (क. ग. घ. ज) में।

२६८—ऊँचा (क)। घणा (क)। आव (क. ग. घ)। वीजळि (क. घ)। खिवै= लियइ (क)। सेहरां (क. ज)। सिहरा (ग)। गळ (ग. घ. ज)।

सावण आयउ साहिबा, पगइ विलंबी गार।
अच्छ विलंबी बेलड़याँ, नराँ विलंबी नार ॥ २६९ ॥
पावस-मास प्रगट्टियउ, पगइ विलंबइ गारि।
धण की आही वीनती पावस पंथ निवारि ॥ २७० ॥
आज धरा-दस ऊनम्यउ, काळी घड़ सखराँह।
उवा धण देसी ओळँबा कर कर लाँबी बाँह ॥ २७१ ॥
आज धरा-दस ऊनम्यउ महलाँ ऊपर मेह।
बाहर थाजइ ऊगरइ, भीगा माँझ घरेह ॥ २७२ ॥
ढोला, रहिसि निवारियउ, मिलिसि दई कइ लेखि।
पूगळ हुइस ज प्राहुणउ दसराहा लग देखि ॥ २७३ ॥

२६९—हे स्वामिन्, सावन आ गया; पैरों में कीचड़ लग रही है, वृक्षों से लताएँ लिपट रही हैं और अपने प्रिय पुरुषों से नारियाँ लिपट रही हैं।

२७०—वर्षा का महीना आया, पैरों में कीचड़ लिपट रही है। प्यारी की प्रार्थना यही है कि वर्षाऋतु में यात्रा बंद रखो।

२७१—ढोला कहता है—

आज पृथ्वी की ओर मेघ झुक आए हैं और शिखरों पर घनघोर श्याम घटा की तहें जम रही हैं। वह प्रियतमा भुजा पसार पसार करके उलहने देगी।

२७२—आज उत्तर दिशा की ओर महलों पर मेह उमड़ा है। बाहर छज्जे पर पानी पड़ता है और मैं घर के भीतर (मारवणी के स्नेह के कारण ?) भीगता हूँ।

२७३—मालवणी कहती है—

हे ढोला, रोके नहीं रुकते, विधाता के लेख अवश्य पूरे होंगे, यदि पूगल के पाहुने बनोहीगे तो दशहरे तक और देखो।

२७०—आयउ प्रीतमा = मास प्रगट्टियउ (च. ज. थ)। विलगी (च)। विलग्गै (थ) गार (क. ग. घ. ज) नारि (च)। धन (ग)। री = की (ज)। आहीज = आही (ज)। धणी आई ही = धण की आही (घ)। वेनती [घ]। म्हाँ कउ कहियउ जउ करउ = धण की आही वीनती (च. थ)। तउ पावस = पावस (च)। गमण पंथ (ज)। निवार (क. ग. घ)।

२७१—घटा = घड़ (घ)। म्हांरउ साहिब घर नहीं काजळ कूँ पहराइ (थ) केवल (घ. द) में।

२७३—विरह वीयापति वीनवै सुंदरि कहै रुति वेख (क. ख. ग. घ) में प्रथम पंक्ति। वीयापत (क) विश्रापत (घ)। विख = वेख (घ)। प्रीतम मड़ु उक्तावळो = ढोला रहिसि

दसराहा लग भी रह्यउ मालवणीरी प्रीत।
वरिखा-रुति पाछी वळी, आवी सरद सुचीत ॥ २७४ ॥
वयणे माळवणी-तणइ रहियउ साल्हकुमार।
प्रेमइ बंध्यउ प्री रहइ जउ प्री चालणहार ॥ २७५ ॥
माळवणी, ढोलउ कहइ, हिव म्हाँ सीख करेह।
ऊन्हाळउ, वरखा विन्हे रहिया तुझ्झ सनेह ॥ २७६ ॥
सीयाळइ तउ सी पड़इ, ऊन्हाळइ लू वाइ।
वरसाळइ भुइँ चीकणी, चालण रुति न काइ ॥ २७७ ॥

२७४—(ढोला) मालवणी की प्रीति के कारण दशहरे तक और भी रहा। वर्षा ऋतु लौट गई और सुंदर शरद् ऋतु आई।

२७५—मालवणी के कहने से साल्हकुमार रुक गया। प्रियतम यदि जानेवाला होता है तो भी प्रेम से बँधा हुआ रुक जाता है।

२७६—(जब दशहरा आ गया तब) ढोला कहता है—

हे मालवणी, अब हमें बिदा दो। तुम्हारे प्रेम के कारण हम ग्रीष्म और वर्षा दोनों ऋतुओं में रुक गए।

२७७—मालवणी कहती है—

शीतलकाल में तो शीत पड़ता है, ग्रीष्म में लू चलती है, वर्षा में भूमि (कीचड़ से) चिकनी रहती है—इसीलिये चलने के लिये कोई ऋतु (उपयुक्त) नहीं है।

निवारियउ (न)। दईव रै (ज)। हुइ सौं (ख)। प्राहुणौ (क. ग. घ)। दुसराहा (क)। देख (क)। दिखि (घ)। म्हाकउ कहीयउ जउ करइ=पूगळ हुइस ज प्राहुणउ (च. ज. थ)।

२७४—दुसराहा (क)। की=री (ख)। प्रीति (ख)। वरखा (क)। आई (ख. घ)। सचीत (क) सचेत (घ)। अंबर दीठौ ऊनम्यौ मारू आई चीत (ग में द्वितीय पंक्ति)।

२७५—बद्धौ (ज)। प्रीतमा=प्री रहइ (ज)। प्रीव (ज)। चल्लण (थ)। केवल (च. ज) में।

२७६—म्हाँ सूँ=म्हाँ (क. घ)। करेस (घ)। उन्हालू (ग) ऊन्हाल्यौ (घ) सनेस (घ)। केवल (क. ख. ग. घ) में।

२७७—ऊन्हालै (क. ख. ग. घ)। वाय (क. ग. घ. ज)। पावस पड़ै=मुँह चीकणी (ज. ट)। चलण (घ)। रुत (घ) रत। (ट)। रित्तु (थ)। काय (क. ग. ट)। कोई (घ)। किणी रिति ढोलउ जाइ=चालण रुति न काइ (च) ढोला पंथि रिति न काय (ज) पंथीया चालण (ट)।

मालवणी, म्हे चालिस्याँ, म करि हमारा तात।
का हसि करि म्हाँ सीख दे, खड़िस्याँ माँझिन रात ॥ २७८ ॥
जिणि दीहे पाळउ पड़इ, टापर तुरी सहाइ।
तिणि रिति बूढ़ी ही झुरइ, तरुणी केम रहाइ ॥ २७९ ॥
जिणि दीहे पाळउ पड़इ, टापर पड़ तुरियाँइ।
तियाँ दिहाँरी गोरड़ी दिन दिन लाख लहाँइ ॥ २८० ॥
जिणि रिति मोती नीपजइ सीप समंदाँ माहिँ।
तिणि रिति ढोलउ ऊमह्यउ, इँम को माणस जाहि ॥ २८१ ॥

२७८—ढोला—

मालवणी, (अब) हम चलेंगे। हमारी चिंता मत करो। या तो हँसकर हमें बिदा दो या हम आधी रात को चल पड़ेंगे।

२७९—मालवणी—

जिन दिनों पाला पड़ता है और घोड़ों की रक्षा टापर ही से होती है, उस ऋतु में प्रौढ़ा भी (पति बिना) विकल हो जाती है। भला, युवती कैसे रह सकती है?

२८०—जिन दिनों पाला पड़ता है, घोड़ों पर टापर पड़ती है, उन दिनों की प्यारी प्रति दिन लाखों (का लाभ) पाती है।

२८१—जिस ऋतु में समुद्रों के अंदर सीपों में मोती निपजते हैं, उसी ऋतु में ढोला (चलने को) उमंग-युक्त हो रहा है। भला, ऐसे भी कोई मनुष्य जाता है?

२७८—चालस्याँ (ग)। न=म (क. घ)। हसि करि सीख दै=हसि करि म्हां सीष दै (क)। माझिम (ख)। राति (घ)। केवल (क. ख. ग. घ) में।

२७९—पालि (च)। सहै तुरियाँह=तुरी सहाई (ज) तुरी सुहाइ (च)। रित (ज)। रहाय (ज)। नवि रहइ (थ) किम रहवाय (थ)।

२८०—जिण (क. ख. ग. घ)। रुति=दीहे (क. ख) रुतिड़ी=दीहे (ग. घ)। पी पालौ पड़ै=पालउ पड़इ (क. ख)। पाला पड़इ (क. ख)। पाला पड़इ (च. थ)। तुरी सहाइ=पड़ तुरियाँइ (ख. घ)। सहे तुरियांह (थ) तुरी सहाय (क)। तुरी सहांइ (ग)। ताँह (क. ख. ग. घ)। दियाँ (थ) दीहा री (च)। दिहाड़ां (क) दिहांडरि (ग)। लहाय (क) लहाइ (ख)।

२८१—जिण (क. ख. घ. ज)। जिन (ग)। रुति (क. ख. घ) रुत (ग) रित (ज)। सीपां (च)। समुंदां (क. ग. घ)। समुंद्रां (च)। तिण (ज)। रित (ज)। कोई=को (ज)। प्रीतम=माणस (ज)। जाय (ज)। तिण रुति साहीब बल्लहा कोइ मंदिर मेल्हि जाइ (क. ख. ग. घ में द्वितीय पंक्ति)। छंडे=मेल्हि (क) मेल्हे (ग)।

जिणि दीहे तिली त्रिड़इ, हिरणी झालइ गाभ।
ताँह दिहाँरी गोरड़ी पड़तउ झालइ आभ ॥ २८२ ॥

जिणि दीहे पाळउ पड़इ, माथउ त्रिड़इ तिलाँह।
तिणि दिन जाए प्राहुणउ, कळियळ कुरझड़ियाँह ॥ २८३ ॥

जिण रित नाग न नीसरइ, दाझइ वनखँड दाह।
जिण रित मालवणी कहइ, कुँण परदेसाँ जाह ॥ २८४ ॥

दिन छोटा, मोटी रयण, थाडा नीर पवन्न।
तिण रित नेह न छाँडियइ, हे बालम वडमन्न ॥ २८५ ॥

२८२—जिन दिनों तिल की फली फटने लगती है और हरिणियाँ गर्भ धारण करती हैं उन दिनों की (प्रिय-वियोगिनी) नारियाँ मानो गिरते हुए आकाश को झेलती हैं।

२८३—जिन दिनों कड़ाके का पाला पड़ता है और तिलों की फलियाँ फटने लगती हैं तथा कुंझ पक्षी करुण शब्द करते हैं, (क्या) उन दिनों पाहुने होकर (कहीं) चला जाता है?

२८४—जिस ऋतु में साँप भी (बिल से) नहीं निकलते और दावानल वनखंड को जला देता है, मालवणी (अपने प्रिय से) कहती है कि उस ऋतु में कौन विदेश जाता है।

२८५—मालवणी कहती है कि हे उदारचित्त बालम, जिस ऋतु में दिन छोटे और रातें बड़ी होती हैं तथा पानी और पवन ठंडे हो जाते हैं उस ऋतु में स्नेह नहीं छोड़ना चाहिए।

२८२—तिली (क. ख. घ)। तिड़ै (क) कोंरड़ कुडै=तिल्ली त्रिड़इ (न)। हरिणी (क. घ)। गब्भ (न)। कामिनी=गोरड़ी (क) कांमणी (घ)। पड़े तो (घ)। अब्भ (न)। केवल (क. ख. घ. झ) में।

२८३—माथा (ज)। तिड़ै (ज)। कळीअळ (च) कुंजड़ीयांह (च)। केवल (च. ज) में।

२८४—रत (ट)। साप (ट)। दाख=दाह (ट)। तिण=जिण (ट)। सजण विदेस म जाय=कुण परदेसाँ जाह (ट)। केवल (ज. ट) में।

२८५—थाडो (ज)। पवन (ज)। तण (ट)। छोडाए (ट)। सुण=हे (ट)। वालंब (ट)। मन (ज)। केवल (ज. ट) में।

उत्तर आज स उत्तरउ सही पड़ेसी सीह।
वालँभ, घरि किमि छंडियइ जाँ नित चंगा दीह ॥ २८६ ॥

उत्तर आज स उत्तरउ, पड़सी वाहळियाँह।
उर ओले प्रो राखियइ मूँधा काहळियाँह ॥ २८७ ॥

उत्तर आज स बज्जियउ, सीय पड़ेसी पूर।
दहिसी गात निरध्धणाँ, धण चंगी घर दूर ॥ २८८ ॥

२८६—आज उत्तर (दिशा का पवन) उतर आया है, अवश्य ही शीत पड़ेगा। हे बालम, (ऐसे समय में) घर कैसे छोड़ा जाय जहाँ नित्य अच्छे दिन (व्यतीत होते) हैं।

२८७—आज उत्तर (दिशा का पवन) चलना शुरू हो गया है—उसकी नदियाँ बहेंगीं। हे प्रिय, (इस समय तो) कातर मुग्धाओं को अपने हृदय की ओट में रखना चाहिए।

२८८—आज उत्तर (दिशा का पवन) चलने लगा है, पूरा पूरा शीत पड़ेगा। आज प्रिया-विरहित प्रेमियों का गात जल जायगा (क्योंकि) उनकी प्यारी स्त्रियाँ बहुत दूर घर पर हैं।

२८६—वाजिवौ = उत्तरउ (घ)। सीय = सही (झ)। सी ही = सही (घ)। पडे = पड़ेसी (ग)। घर (ग)। किम (ग)। वीछडै = छंडियै (ग) छंडिजे (घ)। जांह (घ) जहाँ (ग)। नत (घ)। केवल (ख. ग. घ. झ) में।

२८७—उतर (ख)। वजीयौ = उत्तरउ (क) वजिवौ (घ) उतरौ (ख)। वहसी = पडसी (ग) वूहौ (न)। वाहलीयाँ (घ)। उल्ले (झ)। देई प्रिउ टंकीयां = आले प्री राखियइ (न)। तीय (क)। राखीया (घ)। राखीयौ (झ) मूंध (क. ग. घ)। मूंधी (न)। काहलीयाँ (घ)। केवल (क. ख. ग. घ. झ) में।

२८८—उत्तरौ = बज्जियउ (क)। धन (घ)। चंगा (घ)। दूरि (ख)। (ग) का यह १५४ वाँ दोहा है। उस प्रति में इसी दोहे की प्रथम पंक्ति ली गई है और दूसरी पंक्ति (ख) के १६४ वें दोहे की ली गई है, जो इस प्रकार है—दहिसी गात ज विरहिनी जाका प्रिय परदेस (ग)। परंतु तुक नहीं मिलती।

उत्तर आज स उत्तरउ, पल्लांणियाँ दूरक।
दहिसी गात कुँवारियाँ, थळ जाळी, बळि अक्क ॥ २८९ ॥
उत्तर आज स उत्तरउ, सीय पड़ेसी थट्ट।
सोहागिण घर आँगणइ, दोहागिणरइ घट्ट ॥ २९० ॥
उत्तर आज स उत्तरउ पाळउ पड़िसी रीठ।
दोहागिण-घट सॉमुहउ, साहागिणरी पीठ ॥ २९१ ॥
उत्तर आज स उत्तरउ. पाळउ पड़इ असेस।
दहिसी गात जु विरहिणी जाका प्री परदेस ॥ २९२ ॥

२८९—आज उत्तर (पवन) शुरू हो गया है—प्रवास को जाते हुए (प्रेमियों का हृदय) फट जायगा। वह स्थल को जलकर और आकको बालकर कुमारिकाओं का गात जला देगा।

२९०—आज उत्तर (का पवन) चलने लगा है—खूब शीत पड़ेगा—सुहागिनी (पतिसंयुक्ता) के आगन में और दुहागिनी (पतिविहीना) के शरीर में।

२९१—आज उत्तर (का वायु) उतर आया है—खूब कड़ाके का पाला पड़ेगा—पति-विहीना के हृदय के सामने और पति-संयुक्ता के पीठ पीछे।

२९२—आज उत्तर उतर आया है, घना पाला पड़ रहा है। आज जिसका पति परदेश है (ऐसी) विरहिणी का शरीर जल जायगा।

२८९—उतरो (ख)। वजिवौ (घ) वज्जियौ (ग)। पलांणीया (क. ख. घ)। दरक (क. ख. घ) वरक्क (भ) ऊपडिया सी दरक्क (न)। दहसै (क) दहिसै (घ) दहिस्यै (ग)। गात्र (क)। निरद्धनां=कुँवारियाँ (ग)। कुवरीयाँ (घ)। वहि वेली थळ=थळ जाळी वळि (क)। विह=बळि (घ)। वहि=बळि (ख)। अक (क. ख. घ)। थळाँ जळेसी अक्क (न)।

२९०—वजिवो (घ)। बट=थट्ट (घ)। थट (ख. घ)। सौहागण (घ)। रै=घर (क. घ)। दौहागण (घ)। घट (ख)।

२९१—पड़सी (घ)। समहळ (ख) सौमुहां (घ)। सी=री (ख)। रीठ=पीठ (ख)।

२९२—वजीयौ (क)। वजिवौ (घ)। पड़सी (घ)। दहिस्यौ (क) दहिसै (घ)। गात=गात जु (घ)। विरहिणी (ख)। कुवरियाँ=विरहिणी (घ)। जाको (क)। प्रीय (क)।

उत्तर आज स उत्तरउ, पाळउ पड़इ तरंत।
माळवणी इम वीनवइ, हूँ किम जीवूँ कंत ॥ २९३ ॥
उत्तर आज स उत्तइउ, पाळउ पड़इ रवंद।
का वासंदर सेवियइ, कइ तरुणी, कइ मंद ॥ २९४ ॥
उत्तर आज स उत्तरउ, ऊकटिया सारेह।
बेलाँ बेलाँ परहरइ, एकल्लाँ मारेह ॥ २९५ ॥
उत्तर आज स उत्तरइ, ऊपाड़िया सी कोट।
काय दहेसइ पोयणी, काय कुँवारा घोट ॥ २९६ ॥
उत्तर आज स वज्जियउ, ऊकठियइ केकाँण।
काँमिण काँम-कमेड़ि ज्यउँ हइ लागउ सीँचाण ॥ २९७ ॥

२९३—आज उत्तरी हवा चलने लगी है। जोरों का पाला पड़ रहा है। मालवणी इस प्रकार विनय करती है कि हे प्रियतम, (ऐसी ऋतु में तुम्हारे वियोग में) मैं कैसे जिऊँगी ?

२९४—आज उत्तर का पवन उतर आया है। जोरों का जाड़ा पड़ रहा है। (इस समय) या तो अग्नि का सेवन करना चाहिए या तरुणी स्त्री का या मद्य का।

२९५—आज उत्तर का पवन उतर आया है। शिरीषों को सुखा दिया है। जो दो दो हैं उनको छोड़ देता है परन्तु जो अकेले हैं उनका घात करता है

२९६—आज उत्तरी पवन चलता है। शीत के गढ़ के गढ़ उमड़ आए हैं (अर्थात् बड़े कड़ाके का शीत पड़ रहा है)। या तो कमलिनी को जला देगा या कुँवारे युवाओं को।

२९७—आज उत्तरी पवन चला है—(नायकों के) घोड़े निकल पड़े हैं (?)—जो (उत्तरी पवन) काम की पिंडुकी (पक्षी) के समान कामिनी पर बाज होकर झपटेगा।

२९३—मालवनी (ग)। वीनवौ (घ)। जीवौ (ग)।

२९४—रवद (झ)। वैश्वानर (घ)। कां = कै (झ)। केवल (घ. झ) में।

२९५—ऊकठा (क. ख)। सरीस (घ.) सारै (क)। बेला-बेली (क)। परहरै (क. घ)। अकेलाँ (घ)। मारेस (घ) मारै (क)। केवल (क. ख. घ) में।

२९६—केवल (क) में है।

२९७—उत्तरौ (ग) वजिवो (घ)। ऊकटीया (ग) ऊकटीया (घ)। केकाण (क)

उत्तर आज स उतरइ, वाजइ लहर असाधि।
संजोगणी सोहामणइ, विजोगणी अँग दाधि ॥ २९८ ॥

उत्तरदी भुइँ जु उपड़इ, पाळउ, पवन घणाँह।
हरणाखी, हस नइ कहइ, साँम्हो साले जाह ॥ २९९ ॥

माह महारस समय सब, अति ऊलहइ अनंग।
मो मन लागो मारवण, देखल पूगळ द्रंग ॥ ३०० ॥

उत्तर आज न जाइयइ, जिहाँ स सीत अगाध।
ता भइ सूरिज डरपतउ, ताकि चलइ दखिणाध ॥ ३०१ ॥

२९८—आज उत्तरी पवन उतर आया है। (उसकी) असह्य लहरें चल रही हैं। (वे) संयोगिनी को सुहावनी लगती हैं, (परंतु) विरहिणी के अंगों को जला देती हैं।

२९९—ढोला—

उत्तर दिशा की भूमि की ओर जो अत्यंत पाला और पवन उमड़ रहा है; हे मृगनयनी मालवणी ! तुम हँसकर कहो तो उस शल्य (की भाँति तीखे शीत और वायु) के सामने जावें।

३००—माघ मास में सबको मदन का महारस (अर्थात् नशा छाया हुआ) है और (हृदयों में) काम खूब उमड़ रहा है। मेरा मन मारवणी में तथा पूगल नगरको देखनेमें लगा (लालायित) है।

३०१—मालवणी—

आज उत्तर दिशा की ओर न जाइए जहाँ असाध्य शीत पड़ता है। सूर्य भी उसके डर से संत्रस्त हुआ दक्षिण की ओर रुख करके चलता है।

कीकाण (घ)। कमेड़ (क. ग)। जू (घ)। हुइ = हइ (ग)। ही = हइ (घ)। लगौ (ग)।

२९८—केवल (क) में।

२९९—केवल (क) में।

३००—माहा (ज)। मास कांमण घणे = महारस मयण सब (ट)। अत (ट)। उलटि (ट)। पुगळ (ट)। भ्रंग (ज)। केवल (ज. ट) में।

३०१—जाइयौ (क. घ)। जिह (झ)। यह दिस (ख. ग) जयां त (घ) = जिहांस। ता तैं (झ)। सूरज (घ)।

फागण मास सुहामणउ, फाग रमइ नव वेस।
मो मन खरउ उमाहियउ देखण पूगळ देस॥ ३०२॥
आवी सव रस आँमली, त्रिया करइ सिणगार।
जिका हिया न फाटही, दूर गया भरतार॥ ३०३॥
ढोलउ हल्लाणउ करइ, धण हल्लिवा न देह।
झबझब झूँबइ पागड़इ, डबडब नयण भरेह॥ ३०४॥
हल्लउँ हल्लउँ मत करउ, हियड़इ साल म देह।
जे साचे ई हल्लस्यउ, सूताँ पल्लाँणेह॥ ३०५॥

३०२—ढोला—

फागुन मास सुहावना है, सब लोग नए वेश से फाग खेलते हैं। मेरा मन पूगल देशको देखने के लिए पूरा-पूरा उमंगयुक्त हो रहा है।

३०३—मालवणी—

वही विमल (शरद्) ऋतु आ गई, (जिसमें) स्त्रियाँ शृंगार सजाती हैं। (ऐसे समय में) जिनके पति दूर देश चले गए हैं (क्या) उनके हृदय नहीं फटेंगे?

३०४—ढोला चलने की करता है और प्रेयसी चलने नहीं देती। वह घोड़ेकी रिकाब को पकड़कर झबझब झूमती है और डबडबाकर आँखें भर लेती है।

३०५—मालवणी—

'चलता हूँ, चलता हूँ'—यों मत करो। हृदय में साल मत मारो। जो सचमुच ही चलोगे तो, मेरे सोते समय (ऊँट पर) जीन कसना (प्रयाण करना)।

३०२—केवल (ट) में है।

३०३—केवल (ट) में हैं।

३०४—हल्लो हल्लौं (ज) हलं (थ) चालूं चालूं (क. घ)। चालेवा = हल्लाणउ (ख ग)। चालिवा = हल्लिबा (ख) चल्लिबा (थ) चालणै (क. ग. घ) हलणा (ज)। नह (ज)। देइ (च) देस (क. घ)। जब जब (च)। विलगइ (च) झबै (घ) झंबे (थ) झूँबै (क. ख. ग. झ) = झूंबइ। पागड़ै (क. ख. ग. घ. झ) पयाड़ा (थ)। भरेस (क) भरेइ (च)।

३०५—चालूँ चालूँ (क. ख. ग. घ) हालुं हालुं (ज)। हीयै (ख)। ना = म (ज)। जउ (ज)। साचा ही (ख. ग) साचांणी (क) सौंचौ ही (ज. घ)। हल्लणु (थ) चालस्यो (ज) चालिस्यै (क. ख. ग)। सूती (ख. ज)। पलांणेह (ख)।

थाँ सूताँ म्हे चालिस्याँ, एह निचिंती होइ।
रइबारी, ढोलउ कहइ, करहउ आछउ कोइ॥ ३०६॥

(ढोले का प्रस्थान की तय्यारी करना)

ढोलइ चित्त विमासियउ, मारू देस अळग्ग।
आपण जाए जोइयउ करहा-हुंदउ वग्ग॥ ३०७॥
पलाणियउ उपवने मिलइ, घड़िए जोइण जाय।
रइबारी, ढोलउ कहइ, सो मो आवइ दाय॥ ३०८॥
दूजा दोवड़-चोवड़ा, ऊँटकटाळउ-खाँण।
जिण मुखि नागरबेलियाँ सो करहउ के काँण॥ ३०९॥

३०६—ढोला—

तुम्हारे सोते समय हम चलेंगे, इस विषय में निश्चित हो जाओ। फिर ढोला (ऊँटशाला के रक्षक के पास गया और कहने लगा—हे रेबारी एक अच्छा ऊँट देखो।

३०७—ढोला ने चित्त में सोचा कि मारू देश बहुत दूर है (इसलिये रेबारी पर ही भरोसा न करके उसने) स्वयं ऊँटों की शाला में जाकर देखभाल की।

३०८—ढोला रेबारी से कहता है कि हे रेबारी, जो (ऊँट) जीन रखने के बाद हवा से मिल जाय और घड़ी भरमें योजन भर चला जाय, वह मुझे पसंद होगा।

३०९—रेबारी कहता है कि दूसरे तो दूने-चौगुने हैं और ऊँटकटारा (एक साधारण कँटीली घास) खानेवाले हैं परंतु जिसके मुँह में नागरबेल है (जो नागरबेल खाता है), वही ऊँट घोड़ा (जैसा अर्थात् सर्वोत्तम) है।

३०६—निचंती (ग)। होय (घ)। रयबारी (क)। जोय (घ)।

३०७—आप ज (ज) आपां (थ)। सोध्यउ=जोइयउ (थ)। हंदो (ज)। केवल (च. ज) में।

३०८—पलांण्यौ (क. थ) पल्याणां (च) पलांण्यो (ज)। पवना (ग) पवनां (च) पवनें (ज)। घडीयां (ख) घड़ीया (क. ग. घ. ज)। जोइण घड़ीए=घडीए जोइण (च)। जोजन (ख) जोयण (घ)। जाइ (क. च) जांइ (ख)। रैबारी (क. ख. ग. घ) रूबारी नइ (थ)। करहउ सोइ देखाइ (च. ज) करहौ आछो जोइ (ख) करह दिखाडै आइ (थ)=सो मो आवइ दाय।

३०९—दूजौ (क. घ) दूवड़ (ग) देवड़ (घ)। ऊँट (ख)। खाइ (क. ग. घ)।

नागरबेली नित चरइ, पाँणी पीवइ गंग।
ढोला, रयबारी कहइ, करहउ एक सुचंग ॥ ३१० ॥
जिण मुख नागरबेलड़ी करहउ, एह सुरंग।
माँगळोर बाड़ी चरइ, पाणी पीवइ गंग ॥ ३११ ॥
किणि गळि घालूँ घूघरा, किण मुखि वाहूँ लज्ज।
कवण भलेरउ करहलउ मूँध मिलावइ अज्ज ॥ ३१२ ॥
मो गळि घालउ घूघरा, मो मुखि वाहउ लज्ज।
हूँ ज भलेरउ करहलउ मूँध मिलाऊँ अज्ज ॥ ३१३ ॥

३१०—हे ढोला, जो सदा नागरबेल चरता है और गंगा का पानी पीता है (ऐसा) सुंदर ऊँट एक ही है।

३११—हे ढोला, यह ऊँट सुंदर है जिसके मुँह में नागरबेल है, (यह) मांगलोर की वाड़ीमें चरता है और गंगा का पानी पीता है।

३१२—ढोला कहता है—

किस (ऊँट) के गले में घुँघुरू बाँधूँ, किसके मुख में (नाक में) नकेल (लगाम) बाँधूँ, कौन भले (ऊँट) का जाया ऊँट मुझे आज मुग्धा (मारवणी) से मिलावेगा।

३१३—वही ऊँट कहता है।

मेरे गले में घुँघुरू डालो, मेरे मुँह के लगाम बाँधो। भले का जाया मैं ही ऊँट आज मुग्धा (मारवणी) से (तुमको) मिलाऊँगा।

जिस (क. घ)। मुख (क. ग. घ)। वेलड़ी (ग. घ)। करहो (ख)=सो करहउ। सो मो आवै दाई (क)=सो करहउ के कांण।

३१०—नागरवेला (घ)। पाणी (ग)। पवै (घ)। ढोलो रैबारी ने कहै (झ)। एहइ=एक (क. झ)। ए (ग)=एक।

३११—सोई=एह (ज)। सुचंग (ज. थ)। मांगलार (च) वासो वसे (थ)। चारौ=बाड़ी (ज)। पीवै ति (ज)।

३१२—किस (क. ख. ग. घ)। लगि (ख) गळ (क)। घातूं (ख)। गुघरा (ज) किस (क. ख. ग. घ)। गळि=मुखि (च. ज. झ)। वाधउ=वाहूं (च)। घालूं=वाहूं (ज)। लाज (क. ख. ग. घ. च. झ)। कुण (ग. घ)। कांण (क)। भलैरो (क. ख. ग)। करहलो (क. ख. ग. घ)। जो मुंध=मूंध (ख)। मिलावै (ख) मिलावुं (थ) मेलावै (ग) मेलावइ (च)। अज (घ)। आज (क. ख. ग. च)।

३१३—इस=मो (घ)। गळे (घ)। वाहे=घालउ (घ)। घालै (ज)। घुघरा (ज)। इस=मो (घ)। गळि=मुखि (च)। बांधे (च)। घालै (ज)। घाले (घ)। एह=हूंज (घ)। भलौ रो (घ)। मिलावै (घ)। मेलावुं (च)।

सुणि करहा, ढोलउ कहइ, साची आखे जोइ।
अग्गर जेहा झूँपड़ा तउ आसंगे मोइ॥ ३१४॥

सुणि ढोला, करहउ कहइ, साँमि-तणउ मो काज।
सरढी-पेट न लेटियइ मूँध न मेळूँ आज॥ ३१५॥

(मालवणी-करहा-संवाद)

माळवणी मनि दूमणी आवी वरग विमासि।
रइवारी पूछी करी आई करहा पासि॥ ३१६॥

माळवणी करहइ कन्हइ ए वीनती करेह।
साहिब मारू ऊमह्या, खोड़उ होइ रहेह॥ ३१७॥

३१४—ढोला कहता है—

हे ऊँट सुन, सोच विचार कर सच कहना, यदि (तू) झोंपड़ों को भी महलों जैसा जानता है (कष्टों को भी सुख मानने के लिये प्रस्तुत है) तो मुझे अंगीकार करना (मेरे साथ चलना)।

३१५—ऊँट कहता है—

हे ढोला सुनो, यह मेरे मालिक का काम है, जो आज तुम्हें मुग्धा से न मिला दूँ मैं ऊँटनी के पेट में नहीं लेटा।

३१६—मन में उदास हुई मालवणी विचारकर ऊँटशाला में आई और रेबारीसे पूछकर ऊँट के निकट आई।

३१७—मालवणी ऊँट के आगे यह विनती करने लगी कि (हे ऊँट) मेरे स्वामी मारवणी के लिये उमंगयुक्त हो रहे हैं, तू लँगड़ा होकर रह जा।

३१४—सुण (घ)। ढोलै (घ)। मोह=जोइ (घ)।

३१५—सुण (घ)। सांम (घ)। लेटियै (ख. ग. घ. झ)। मेलौं (ख) मेलुं (घ)।

३१६—आई (ज)। मझारि=विमासि (थ)।

३१७—करहा प्रेम समीगळा (च) करहा तो कौडै मरां (ज)=माळवणी करहइ कन्हइ। ए माळवणी=माळवणी (ग)। करहो (घ)। एह (क)। करंत (क) करेस (झ)। म्हां कां कह्यौ करेह (ज) कहीयउ इवक करेज (च) अरज एक करंत (घ)=ए वीनती करेह। ढोला=साहिब (ज) ढोलउ (ज)। माहरौ=मारू (ग)। ऊमह्यौ (ग) ऊमहय्यां (ज) ऊमाहियौ (क) ऊमहयउ (च) उमाहीयो (घ)। खोड (च)। होय (ज)। रहइज (ज) रहेइ (ग) रहेंत (क. घ) रहेस (झ)।

खोड़उ हुँ तउ डाँभिज्यउँ, बाँध्यउ भूख मरेसि।
थे बिहुँ सज्जण रळि मिल्यउ, हूँ बिच दुक्ख सहेसि ॥ ३१८ ॥

खोड़उ हवँ तउ डाँभिज्यउँ बँधियउ भूख मरूँह।
जाउँ ढोला-रइ सासरइ सफळा मूँग चरूँह ॥ ३१९ ॥

बाँधउँ बड़री छाँहड़ी, नीरूँ नागरबेल।
डाँभ सँभाळूँ करहला, चोपड़िसूँ चंपेल ॥ ३२० ॥

३१८—ऊँट जवाब देता है—

लँगड़ा बन जाऊँ तो दागा जाऊँगा। (फिर एक स्थान पर) बँधा हुआ भूखों मरूँगा। तुम दोनों प्रेमी तो हिलमिल जाओगे। बीचमें पड़नेवाला मैं दुःख सहूँगा।

३१९—यदि लँगड़ा बन जाऊँ तो दागा जाऊँगा। (फिर एक जगह) बँधा बँधा भूखों मरूँगा। यदि ढोला की ससुराल जाऊँगा (तो वहाँ) फलियों सहित मूँग चरूँगा।

३२०—मालवणी कहती है—

(यदि तू दागा जायगा तो) तुझे बड़ की छाया में बाँधूँगी, नागर-बेल खाने को दूँगी, हे ऊँट, तुम्हारे दाग (के घाव) को (अपने हाथ से) सम्हालती रहूँगी और उसपर चमेली का तेल लगाऊँगी।

३१८—खोडौ (क. ख. ग. घ)। खोडौ (ज)। हुवां=हुँ (क. ख. ग. घ)। तौ (क. ख. ग. घ) तो (ज)। डांभिजां (ख) डांभिज्युं (ज) डांभिज्यां। (क. ग) डंभिजूं (घ)। बाधौ (क. ख. घ) बांधौ (ग) बाधा (ज)। भुख (घ)। मरांह (क. ख. ग. घ. ज) मरांउ (थ)। बेहुं (ख) बेऊ (ग) बे (ज)। साहिब बेहुँ (क)=बिहुँ सज्जण। साहिब बेउ (घ)। सजन (ज) हसि मिलौ (क. ख. ग.) हस मिल्यौ (घ)। विचिका (क. ख. ग. घ)=बिचि। म्हे विच (ज)। दूख (घ)। सहां (ग) सहांह (क. ख. घ. ज)। बिहुं विचि भूख सयउ (थ)।

३१९—जास्यां मारू देस मैं हरिया मुंग चरांह (द)।

३२०—बांधू (क. ख. ग. घ. झ)। की=री (ज)। वेलि (च)। संभालौ (ग)। हाथ सूं=करहला। चोपडिस्यां (ख) चोपड़ि चोपड़ि (थ)। चंपलि (ज)। चोपड़ चोपड़ तेल (झ)।

रह रह, सुंदरि, माठ करि, हळफळ लग्गी काइ।
डाँभ दिरावइ करहलउ, सेकंतां मरि जाइ॥ ३२१॥

करहा, तूँ मनि रूअड़उ, वेध्याँ करइ विछोह।
अजइ कुआरउ बप्पड़ा नहीं ज काँमिण मोह॥ ३२२॥

अबही मेली हेकली करही करइ कलाप।
कहियउ लोपाँ साँमि-कउ सुंदरि, लहाँ सराप॥ ३२३॥

३२१—ऊँट उत्तर देता है—

अरी सुंदरी, बस बस, चुप कर। क्या (ऐसी) व्यग्रता लगी है? जो ऊँट (अपने को) दगावे तो (तेरे) सेकते सेकते भी मर जायगा।

३२२—मालवणी कहती है—

हे ऊँट, तू मन का बड़ा अच्छा है। संयोगी जनों में बिछोह करवाता है, (तू क्या जाने) तू बेचारा अभी कुँवारा है। अभी नारी का मोह तुझे नहीं है।

३२३—ऊँट जवाब देता है—

अपनी ऊँटनी को मैंने अभी अकेली छोड़ी है, वह विलाप कर रही है (परंतु क्या करें) यदि मालिक का कहा न मानें तो हे सुंदरी, शाप के भागी हों।

३२१—रहि रहि (क. ग. घ)। सुंदर (क. ख. घ)। मठ (ख)। कावच (क) कैवद्धी (ख)। भळफळ = कावच (थ)। लगि (ख) लगी (ग)। कोई (घ) काय (ग) गाइ (ख)। हिव वळ लग्गै न काय (न)। दिलावै (ख) दिवारिसी (थ)। करहिलौ (ख) माहरै = करहलउ (न)। डांभीतौ = सेकंतां (न)। डांभां थी (थ)।

३२२—कूडलै = रूअड़उ (ज)। सुणि करहा सुंदरि कहै = करहा तूँ मनि रूअड़उ (ख. ग)। करहा सुणि सुन्दरि कहै (क)। वींधां (ख) वेधां (ग. घ)। अजेस = अजइ (ग. ज) अजीया (च)। अजुं (क) अजाहि (झ)। कुमारौ (ख) कुमारो (झ.)। कुवारौ (घ)। तुं फिरइ (च. ज) रहै = बप्पड़ा (झ)। जु (ख)। कामणि (ख.) कांमण (घ. च)। कांमणि रां = ज कांमिण (झ) कांमण रां (ज)। मोहि (ख)। तोहि = मोह (ग)।

३२३—मेल्ही (ग. घ) छांडी (च. ज. झ. थ)। एकली (ख. ग. च. ज. झ.)। विलाप (च. ज. घ)। पिण कहीयउ = कहियउ (च) न करां (क. ख. ग. घ. झ) लोपइ (च) = लोपां। सांमरो (घ. ज) सांमिकौ (क. ख. ग)। लहे (ख. ग. झ)। करहा तो नहिं पाप (च) = सुंदरि लहाँ सराप। ढोलउ मारू मोहियउ तूँ खोड़ो होए आप (थ में-द्वितीय पंक्ति)।

सुंदरि, मो सारउ नहीं, कुँअर वहेसी मग्ग।
साहिब चित्त उपाड़ियउ जिम केकाँणाँ वग्ग॥ ३२४॥

करहा सुणि, सुंदरि कहइ, मिहर करउ मो आज।
साहिब म्हारउ ऊमह्यउ, हिव सगळी तो लाज॥ ३२५॥

भाई कहि बतळावसूँ, नागरबेल निरेस।
हउ हउ करहा, कुँवर-नइ मत ले जाय विदेस॥ ३२६॥

करहा, माळवणी कहइ, खोड़उ होइ रहेस।
जे ढोलउ राखण करइ डाँभण तुझ्झ न देस॥ ३२७॥

सुंदर, थाँके ही कहइ खोड़उ होय रहेस।
जउ ढोलउ डाँभण करइ डाँभण मुझ्झ न देस॥ ३२८॥

३२४—हे सुंदरी, अब मेरे वश की बात नहीं, कुमार मार्ग में चलेगा ही। स्वामी ने चित्त को (यहाँ से) उचाट कर लिया है जिस प्रकार घोड़े बाग को उठा लेते हैं।

३२५—सुंदरी कहती है कि हे ऊँट, सुनो, आज मुझ पर दया करो, मेरे स्वामी (चलने को) उमंग-युक्त हुए हैं, अब तुम्हें ही मेरी सब लाज है।

३२६—मैं तुझे भाई कहकर पुकारूँगी, नागरबेल चरने को दूँगी। अरे अरे ऊँट, कुमार को विदेश मत ले जा।

३२७—मालवणी कहती है कि हे ऊँट, लँगड़ा बन जा। यदि तू ढोला को रखने की (चेष्टा) करेगा तो तुझे दागने नहीं दूँगी।

३२८—ऊँट कहता है—

हे सुंदरी, तुम्हारे ही कहने से मैं लँगड़ा बन रहूँगा (परंतु) यदि ढोला दाग लगाने की करे तो (तुम) मुझे दागने मत देना।

३२४—वहंसि (ख)। मगि (ख) मग (ग. घ)। चित्र=चित्त (ख)। चित (घ)। ज्युं (क. ग. घ)। वग (ख. ग. घ)।

३२५—करहौ (घ)। सुण (घ)। सुंदर (ग. घ)। महिर (ग. घ)। अज (घ)। म्हारौ (घ)। लज (घ)। केवल (ख) (ग) (घ) में।

३२६—केवल (ज) में।

३२७—केवल (ट) में।

३२८—केवल (ज) में।

करहानूँ समझाइ कह, घर आई बहु जाँण।
करहउ साल्ह मँगावियउ, आण्यउ माँडि पलाँण॥ ३२९॥

करहउ मन कूड़इ थयउ राखे यूँ ही पग्ग।
ढोलइ मन चिंता हुई, दीजइ केइक दग्ग॥ ३३०॥

रइबारी तेड़ावियउ, दाग दियउ दुइ च्यारि।
करहइ तउ पग राखियउ, दूती मेल्हइ नारि॥ ३३१॥

राखउ करहउ डांभस्यउ, रे मूरखा अजाण।
नरवर-कउ जाँणइ नहीं करहा-तणउ सँधाण॥ ३३२

३२९—(मालवणी) ऊँट को (इस प्रकार समझाकर और यही बहुत मानकर ल.ट आई। तब सल्हकुमार ने ऊँट को मँगवाया और जीन कसकर ऊँट लाया गया।

३३०—ऊँट ने झूठे मन से पैर यों ही (लँगड़ाते हुए पृथ्वी पर) रखा)। यह देखकर ढोला के मन में चिंता हुई (और उसने सोचा) कि कुछ दाग देने चाहिएँ (जिससे ठीक हो जाय)।

३३१—फिर रेबारी को बुलाया और कहा कि ऊँट के दो चार दाग दे दो। जब ऊँट ने पैर खींच लिया (लँगड़ाने लगा) तो नारी (मालवणी) ने अपनी दासी को भेजा।

३३२—उसने दागनेवालों से मालवणी का संदेसा सुनाया—अरे अनजान मूर्खो, (ठहरो) ऊँट को दाग से बचाओ, नरवर में कोई ऊँट का उपचार नहीं जानता (ऐसा जान पड़ता है)।

३२९—नै = नूं (घ)। घरि (ग. घ)। आंणौ (ग)। अपणो (झ) कसबी = आण्यउ (घ)। केवल (ख) (ग) (घ) (झ) में।

३३०—कूडौ (ख)। थकै (ग. घ)। राख्यौ (ग) यूं ही राखै = राखे यूँ ही (घ)। पाग (ख)। कोइ क (ग) केई (घ) कोइ (झ)। दाग (ख)।

३३१—तेड़ावीया (ग. घ)। दीया (ख. झ)। घौयौ (घ)। दोइ (झ)। च्यार (ग. घ)। भेजे = मेल्हइ (ग. घ)। केवल (ख. ग. घ. झ) में।

३३२—रखे (ग)। मूरिख (ग) मूरख (घ)। नळवर (ग) : संधान (ग) सधाण (घ.)। केवल (ख. ग. घ) में।

साहिब, म्हाँका बापकइ छइ करहाँकउ वग्ग।
जइ करहउ खोड़उ हुवइ गादह दीजइ दग्ग ॥ ३३३ ॥
तव बोली चंपावती साल्हकुँवररी मात।
रे बाजारण, छोहरी, काँइ खेलाड़इ घाति ॥ ३३४ ॥
गादह दाध्यउ दग्ग करि, सासू कहइ वचन्न।
करहउ ए कूड़इ मनइ खोड़उ करइ यतन्न ॥ ३३५ ॥
करहउ कूड़इ मनि थकइ पग राखीयउ जाँण।
ऊकरड़ी डोका चुगइ अपस डँभायउ आँण ॥ ३३६ ॥

३२३—फिर ढोला से कहती है—

हे स्वामिन्, हमारे पिता के यहाँ ऊँटों की टोलियाँ हैं। (वहाँ) यदि ऊँट लंगड़ा हो जाता है तो गधे के दाग दिया जाता है।

३३४—(गधे को दागा हुआ देखकर) साल्हकुमार की माता चंपावत बोली—अरी नीच छोकरी, क्या घात खेल रही है?

३३५—सासू (चंपावती) वचन कहती है—

गधे को दाग से जला दिया। यह ऊँट तो झूठे मन से लँगड़ाने की चेष्टा करता है।

३३६—फिर ढोला से कहा—

ऊँट ने तो झूठे मन से जान बूझकर पैर को खींच रखा है। घूरे पर डंठल चरते हुए बिचारे पशु (गधे) को (व्यर्थ ही) लाकर दाग दिलवाया।

३३३—ढोलां=साहिब (च. ज. थ)। म्हांकै (ग. घ)। वप्प कै (ज)। है=छइ (ग)। का=कउ (ख)। वाग (ख) वग (ग. घ)। जो (ज)। दीजै गदहे=गादह दीजइ (ख) दीजै गादह (ज)। गद्दह (च)। दाग (ख)। दग (ग. घ)।

३३४—चांपावती (ख)। वात=मात (ख)। वाजारिण (ग. घ)। छोकरी (ग)। छोहरीया (घ)। आ किम खेली घात (झ) किम खेली घात (घ)।

३३५—डांभ्यो (ज)। दुख=दग्ग (ज)। करै (ज)। करहौ (ज)। राखै तन्न—करइ यतन्न (ज. थ)।

३३६—रे ढांढां करि छोहड़ी करइ करहांरी काणि (थ में प्रथम पंक्ति)। रंट ढिली करि छाहरी करइ करही कांणि (च में प्रथम पंक्ति)। रे छांडो करि छोहरी करइ करहारी कांणि (ज में प्रथम पंक्ति। तौ कूडै=कूड़इ (ख. ग)। मन (ग. घ)। मन कूड़ै (झ)। थकौ (ग. घ)। जांणि (ग) ऊकरडै (थ. च) उकरडी (ज)। चरइ (च) चुणै (थ)। कांइ करंड त्युं=अपस डँभायउ (च) स्युं पसु डँभायो (ज)। सो आप दाग्यउ (थ)। डँभायौ (ग)। सो पसु=अपस (द)। डँभावै जाण (घ. त)। आप दगायो (क. ख)। आंणि (ख. ग. झ)।

साइधण हल्लण साँभळइ ऊभी आँगण
काजळ जळ भेळा करी नाँखी नाँख भरेह ॥ ३३७ ॥

डूँगर - केरा वाहळा, ओछाँ - केरा नेह ।
वहता वहइ उतामळा, झटक दिखावइ छेह ॥ ३३८ ॥

पिय खोटाँरा एहवा, जेहा काती मेह ।
आडंबर अति दाखवइ आस न पूरइ तेह ॥ ३३९ ॥

थे सिध्धावउ, सिध करउ, बहु-गुणवंता नाह ।
सा जीहा सतखंड हुइ जेण कहीजइ जाह ॥ ३४० ॥

हिव माळवणी वीनवइ, हूँ प्रिय, दासी तोहि ।
हिव थे चढिस जु चालिया सूती मेल्हे मोहि ॥ ३४१ ॥

३३७—वह प्रेयसी, आगन के किनारे पर खड़ी हुई, चलने की बात सुनती है और काजल को आँसुओं में मिलाकर, गिरा-गिराकर फिर (आँखें आँसुओं से) भर लेती है ।

३३८—मालवणी—

पहाड़ी नाले और ओछे पुरुषों का प्रेम बहते समय तो बड़ी तेजी से बहते हैं परंतु तुरंत ही छेह (अंत) दिखा देते हैं ।

३३९—भाग्यहीनों के प्रियतम ऐसे होते हैं जैसे कातिक के मेघ जो आडंबर तो बहुत दिखाते हैं पर आशा पूरी (कभी) नहीं करते ।

३४०—हे बहुत गुणोंवाले नाथ, आप सिधावें, सिद्धि करें । वह जिह्वा सौ सौ टुकड़े हो जाय जो यह कहे कि "आप जावें"

३४१—अब मालवणी ढोला से विनय करती है कि हे प्रियतम, मैं तुम्हारी दासी हूँ । (यदि जाना ही है तो) अब आप मुझे सोती हुई छोड़कर (यात्रा को) चढ़ना ।

३३७—केवल (ट) में ।
३३८—केवल (ट) में ।
३४०—केवल (झ) में ।

३४१—हिवि (घ) । प्रीय (ग) । हिवड़ै = हिव थे (ख) । चले = चढिस (ख) । चढिस (घ) । चढि नै (झ) = चढिस जु । देखै = मेल्हे (ग. घ) ।

(ढोले का प्रस्थान)

पनरह दिनहूँ जागती प्रीसूँ प्रेम करंत।
एक दिवस निद्रा सबळ सूती जाँणि निचंत॥ ३४२॥
ढोलउ करहउ सज कियउ कसबी घाति पलाँण।
सोवन-वानी घूघरा चालण-रइ परियाँण॥ ३४३॥
सगुणी-तणा सँदेसड़ा कही जु दीन्हा आँणि।
ससिवदनी-कइ कारणइ हुई पलाँणि पलाँणि॥ ३४४॥
घाली टापर वाग मुखि, झेक्यउ राजदुआरि।
करहइ किया टहूकड़ा, निद्रा जागी नारि॥ ३४५॥

३४२—मालवणी पंद्रह दिनों तक लगातार जागती हुई प्रियतम से प्रेम करती रही। (उसके बाद) एक दिन गहरी नींद में निश्चित सोती जानकर—

३४३—ढोला ने कसबी और जीन डालकर ऊँट को सजाया और चलने के वास्ते सुनहरे घुँघुरू डाले।

३४४—गुणवती (मारवणी) के संदेशे किसी ने लाकर ढोला को कहे थे (इसलिये अब) शशिमुखी मारवणी के लिये—ऊँट पर) जीन कसो, जीन कसो—यह शब्द होने लगा।

३४५—ढोला ने ऊँट पर टापर डालकर और मुँह से लगाम बाँधकर राजद्वार पर (उसे लाकर) बिठाया। उस समय ऊँट ने शब्द किया और नारी (मालवणी) नींद से जाग पड़ी।

३४२—दिन (ख. घ) = दिवस। निद्रावंत = निद्रा (ख)। निद्र (घ)।

३४३—करहौ साल्ह सिंगारीयौ (क. ख. ग. घ) = ढोलउ करहउ सज कियउ। सिणगारियौ (क)। सींगारियौ (घ)। सज्ज (ज)। ऊपरि सावटू पळांण (च. ज) = कसबी घाति पलाँण। करि सावटू (थ)। घाते = वानी (क. ख. ग. घ)। सोना केरा (थ)। झूंवणां = घूघरा (थ)। का = रइ (क. ख. ग. घ)। परमाण (ग) परिवाण (ख)।

३४४—सगुणां (ज) सुगणी (ग. घ)। किण ही = कही जु (ज)। दीधा (ज)। आँण (ज)। सिसवदणी (ग) शसवदनी (घ)। हरप वदन हियड़े वसी = ससिवदनी कइ कारणइ (ज)। तव हुई = हुई (ज)। पलांण पलांण (ख)।

३४५—साकी = घाली (ज) सारी = घाली (द. ध)। लाज = वाग (ज)। बैठो = झेक्यउ (ज)। करहो कीयो कुहकड़ो। (ज) प्रभाते बोल्यो कुकड़ो (द. ध)। नींद गई तिण वार = निद्रा जागी नारि (ध)। (ज) के माजिन पर इसी दोहे का दूसरा पाठांतर दोहा यह दिया है—तन भरै चढीया सही मतलै राज कुमार।
करहो पांल कुहकीयो निद्रा जागी नार (ज)।

सजि कसणा, करि लाज ग्रहि चढियउ साल्ह कुमार।
करह करंकउ श्रवण सुणि निद्रा जागी नार॥ ३४६॥
ढोलइ करह चलावियउ करि सिणगार अपार।
आस्याँ तउ मिळस्याँ वळे, नरवर कोट, जुहार॥ ३४७॥

(मालवणी का विलाप)

धावउ धावउ हे सखी, दो दाँवणि, को लाज।
साहिब म्हाँकउ चालियउ, जइ कउ राखइ आज॥ ३४८॥
ढोलउ चाल्यउ हे सखी, वाज्या विरह-निसाँण।
हाथे चूड़ी खिस पड़ी, ढीला हुया सँधाण॥ ३४९॥

३४६—कसने कसकर और हाथ में लगाम लेकर साल्हकुमार सवार हुआ। उस समय ऊँट का शब्द कानों से सुनकर नारी नींद से जगी।

३४७—ढोला ने बहुत शृंगार करके ऊँट को चलाया (और नरवर की ओर देखकर बोला) यदि (जीते) लौट आए तो फिर मिलेंगे, ए नरवरके दुर्ग, प्रणाम।

३४८—इधर ढोले को जाता हुआ जान कर मालवणी कहने लगी—

हे सखी, दौड़ो, दौड़ो, कोई दामन पकड़ो और कोई लगाम पकड़ो, हमारा प्रियतम चल पड़ा—यदि कोई आज उसको रख सके!

३४९—हे सखी, प्रियतम चल दिए, विरह के नगारे बज उठे। (इस सहसा आघात के कारण) हाथों से चूड़ी खिसक कर गिर पड़ी और शरीर की संधियाँ शिथिल हो गईं।

३४६—कर (ग) गृह (घ) करुकौ (ख)।

३४७—ढोलौ (ग)। करहौ (घ)। ढोलो पुगळ हालीयो=ढोलइ करह चलावियौ (ज)। कर (घ)। शृंगार (घ)। आराम=सिणगार (ज)। आइस्यां (ख)। मेलस्यां (घ)। म्हे वेगाही आवस्यां (ज)=आस्याँ तउ मिळस्यां वळे। नळवर (ज)। कोटि (ज)।

केवल (ख. ग. ज. घ.) में।

३४८—धावौ (ग. घ)। के (ख. ग) किव (घ)। दामणि (च) दांमणि (ज) दमणो (ध)। के (ख. ग) किव (घ)। म्हाँकौ (ग) म्हारौ (घ)। चलीयौ (ख) उमह्यौ (घ)। मारवणी ऊमाहीयउ (च. ज. थ)=साहिब म्हाँकउ चालियउ। सो का (घ) =जइ कउ। ढोलूं (च. थ) को ढोलो (ज)=जे को। राखे (ख. ग. घ. च. ज) राखौ (थ)।

३४९—वाया (थ)। तिरह (च)। नीसाण (च)। हाथा (ग)। चूटी (थ)। खिर (ज)। किसि (च)। हुवा (ज)। पराण (ज)=संधाण।

सखि हे, राजिँद चालियउ पलाँणियाँ दमाज।
किहिँ पुनवंती साँमुहउ, म्हाँ उपराठउ आज॥ ३५०॥

सज्जण चाल्या हे सखी, पड़हउ वाज्यउ द्रंग।
काँही रळी-वधाँमणाँ, काँदी अँवळउ अंग॥ ३५१॥

सज्जण चाल्या हे सखी, वाज्या विरह-निसाँण।
पालंखी विसहर भई, मंदिर भयउ मसाँण॥ ३५२॥

ढोलउ चाल्यउ हे सखी, बज्या दमाँमा-ढोल।
माळवणी तीने तज्या, काजळ, तिलक, तँबोळ॥ ३५३॥

[जज्जण चाल्या हे सखी, पाछे पीळी पज्ज।
नव पाड़ा नग्गर वसइ, मो मन सूँनउ अज्ज॥ ३५४॥]

३५०—हे सखी, यात्रा के बाजे बजाते हुए किसी पुण्यवती के सामने और मुझसे मुख मोड़कर राजन् आज चल दिए।

३५१—हे सखी, प्रियतम चल दिए, दुर्ग पर दुंदुभी बज उठी, कहीं तो आनंदोत्सव हो रहे हैं और कहीं अंग व्यथापूर्ण हो रहे हैं।

३५२—हे सखी, प्रियतम चल दिए, विरह के नगारे बज उठे, आज पालकी मेरे लिए साँप-रूप हो गई और महल श्मशान जैसे हो गए।

३५३—हे सखी, ढोला चल दिया, दमामे और ढोल बजने लगे। मालवणी ने काजल, तिलक और तांबूल तीनों को त्याग दिया।

३५४—हे सखी, साजन चले, (उनके) पीछे (धूल उड़ने से) पीली पालि बन गई है। नगरी में नौ मुहल्ले (चौक) बसते हैं तो भी मेरा मन आज सूना है।

३५०—राजंद (घ)। पलांणिया (ग) पलाणीया (घ)। कही (घ)। पुन्यवंती (ख) पुण्यवंती (ग)। सामुहा (ख. ग)।

३५१—सजण (घ)। पड़हे (घ) वाजै (घ)। वधामणो (घ)। कही (घ)। कांई (झ)। यवल्यौ (क)।

केवल (क) (घ) (झ) में।

३५२—सजण (घ)। विसर (क)। केवल (क. घ) में।

३५३—केवल (च) में।

३५४—केवल (ट) में।

सज्जण चाल्या हे सखी, दिस पूगळ दोड़ेह।
सायधण लाल कबाँण ज्यउँ ऊभी कड़ मोड़ेह॥ ३५५॥
[सज्जण चाल्या हे सखी, वाजइ वाजारंग।
जिण वाटइ सज्जण गया, सा वाटड़ी सुरंग॥ ३५५॥]
सज्जण चाल्या हे सखी, नयणे कीयो सोग।
सिर साड़ी, गळि कंचुवउ, हुवउ निचोवण जोग॥ ३५७॥
[सज्जण चाल्या हे सखी, सूना करे अवास।
गळेय न पाणी ऊतरइ, हियै न मावइ सास॥ ३५८॥
चाल, सखी, तिण मंदिरइँ, सज्जण रहियउ जेंण।
कोइक मीठउ बोलड़इ लागो होसइ तेंण॥ ३५९॥
ढोल वळाव्यउ हे सखी, झीणी ऊडइ खेह।
हियड़उ बादळ छाइयउ, नयण टबूकइ मेह॥ ३६०॥]

३५५—हे सखी, साजन पूगल की ओर दौड़ चले, यह प्रेयसी लाल कमान की तरह खड़ी हुई कटि को मोड़ रही है।

३५६—हे सखी, सजन चले। सुरंगे बाजे बजने लगे। प्रियतम जिस मार्ग से गए हैं वह मार्ग सुंदर है।

३५७—हे सखी, साजन चले, नेत्रों ने शोक किया। सिर की साड़ी और गले की कंचुकी (आँसुओं से इतनी भीग गई हैं कि) निचोड़ने के योग्य हो गई हैं।

३५८—हे सखी, घर को सूना करके प्रियतम चल दिए। (अब) गले से पानी नीचे नहीं उतरता और हृदय में श्वास नहीं समाता।

३५९—हे सखी, उस महल में चलो, जहाँ प्रियतम ने निवास किया था; कोई एक मीठा बोल (अभी भी) उसमें लगा हुआ होगा।

३६०—हे सखी, ढोला चल दिया। झीनी झीनी खेह उड़ रही है। हृदय (-रूप आकाश) बादलों से छा गया है और नेत्रों से मेह टपक रहा है।

३५५—सजन (ज)। चढीया (ज)। साइ (ज)। जिम। (ज)। कर (ट)= कड़। केवल (ज) (ट) में।

३५७—सजन (ग)। चल्या। (ग) कीया (ख)। गळ (क. ग)। कंचवौ (ग) कंचूवौ (क. घ)। हुवो (क. घ)। निचोबन (ग)। केवल (क. ख. ग. घ) में।

ढोलइ चढि पड़ताळिया, डूँगर दीन्हा पूठि।
खोजे वावू हथ्थड़ा धूड़ि भरेसी मूठि ॥ ३६१ ॥

साल्ह चलंतउ हे सखी, गउखे चढि मइँ दीठ।
हियड़उ ठवाँहीसूँ गयउ, नयण बहोड़्या नीठ ॥ ३६२ ॥

ढोलइ करह पलाँणिया सुँदरि सलूणी कज्ज।
प्री मारुवणी सामुहउ, म्हाँ उपराठउ अज्ज ॥ ३६३ ॥

सयणाँ, पाँखाँ प्रेम की तइँ अब पहिरी तात।
नयण कुरंगउ ज्यूँ बहइ, लगइ दीह नइँ रात ॥ ३६४ ॥

३६१—ढोले ने चढ़कर (ऊँट को) चलाया (और) पर्वत पीछे दे दिए। मालवणी धूल से मुट्ठी भरकर (उससे) हवा का रुख देखती है।

३६२—हे सखी, चलते हुए साल्हकुमार को मैंने झरोखे में चढ़कर देखा। हृदय वहीं से (उनके साथ) चला गया और नेत्रों को मैं बड़ी कठिनता से लौटा पाई।

३६३—ढोला ने सलोनी सुंदरी के लिये ऊँट को चला दिया—प्रियतम आज मारुवणी के सम्मुख और मुझसे विमुख हैं।

३६४—हे साजन, तुमने अब प्रेम की वेगवती पाँखें धारण कर ली हैं। मेरे नेत्र हरिण की तरह (तुम्हारे पीछे) दौड़ रहे हैं (तो भी तुम्हें नहीं पहुँच पाते ?) और वे न दिन में लगते हैं न रात में।

३६१—दीया (झ)। वाजै=खोजे (ख. ग. झ)। भरेसा (घ)। मूठ (घ)। केवल (ख. ग. घ. झ) में।

३६२—चलंतै (घ)। चढे (ख) चढ (घ)। मय (घ)=मइँ। ढोलइ करहउ पलाणीयउ दीया डूंगर पूठि (च. ज. थ में प्रथम पंक्ति)। करह (ज)। दीधा (ज)। पूठ (ज)। रही ही सू=सूं (घ)। सौ (ग) मन वारयउ ही नवि रहइ (च) मन वारियौ नव रहै (ज) मन वारथउ ना रहइ (थ)=हियड़उ ठवाँहीसूँ गयउ। नयन (ग)। निवारय (च. ज. थ)=वहोड़्या। निठ (ग) निठि (घ) निठ्ठ (ज)।

३६३—पलाणीयो (ज) पलाणियउ (थ)। काजि (ज. थ)। मारू पनोती (ज)= प्री मारुवणी। मारू त्रीयाँ (थ)। सांमूहो (ज)। मो (च) अम्हां (ज)। आजि (ज) आज (थ)। केवल (च) (ज) (थ) में।

३६४—केवल (ज) में।

प्रिव माळवणी परहरे हाल्यउ पुंगळ देस।
ढोला म्हाँ बिच मोकळा वासा घणा वसेस॥ ३६५॥
साल्ह चलंतइ परठिया आँगण वीखड़ियाँह।
सो मइँ हियइ लगाड़ियाँ भरिं भरि मूठड़ियाँह॥ ३६६॥
साल्ह चलंतइ परठिया आँगण वीखड़ियाँह।
कूवा-केरी कुहड़ि ज्यूँ हियड़इ हुइ रहियाँह॥ ३६७॥
ढोला, जाइ वळि आविज्यउ, आसा सहि फळियाँइ।
सावण-केरी बीज ज्यउँ झाबूकइ मिळियाँह॥ ३६८॥
बीछुड़ताँ ई सज्जणाँ, राता किया रतन्न।
वाराँ विहुँ चिहुँ नाँखिया आँसू मोती ब्रन्न॥ ३६९॥

३६५—प्रियतम मालवणी को छोड़कर पूगल देश को चल दिए। अब ढोला और हमारे बीच में बहुत से वास (गाँव) बसते हैं।

३६६—साल्हकुमार के चलते समय आँगन में पदचिह्न बन गए। उन (की धूल) को मैंने मुट्ठियाँ भर भर के हृदय से लगाया।

३६७—साल्हकुमार ने चलते हुए आँगन में पदचिह्न बना दिए, जो कुएँ के कुहरे की तरह मेरे हृदय में हो रहे हैं।

३६८—हे ढोला, जा करके फिर लौट आना। सब आशाएँ फलीभूत हों। (फिर सहसा) सावन मास की बिजली की तरह झमक कर मिलना।

३६९—हे सज्जन, तुम्हारे बिछुड़ते ही मैंने अपने रत्नरूप नेत्रों को रो-रोकर लाल कर लिया। मैंने दिन-रात लगातार मोतियों जैसे आँसू गिराए।

३६५—केवल (ज) में।

३६६—परठवी (घ. त)। आँगन (ग) आँगणि (घ)। वीखड़ियाँ (घ)। सा (ग. घ)। मइ (झ)। ज (घ) रजी = हियइ (त)। मूठड़ियाँ (घ)।

केवल (ख) (ग) (घ) (झ) में।

३६७—परछीयाँ (ग) परठवी (घ. त) परिखियाँ (न)। आँगन (ग) आँगणि (घ)। वीखड़ियाँ (घ)। सा (ग. घ)। मइ (झ)। कुवै (घ. त)। कुहिड (घ. त) कुहड (न) कुहेड (झ)। हीजरियाँह (ख)। होय (घ)। होइ रहाँ (त)।
(ग) में पंक्तियों का क्रम विपरीत है।

३६८—थे जाठे (च) = जाइ। आविज्यो = वळि आविज्यउ (ज)। आवियौ (थ)। आसां (ज)। झबूकै (ज) झवकै (थ)।

केवल (च. ज. थ) में।

३६९—नावीयउ = नाँखिया (च)। वरन्न (च) वन्न (थ)।

प्रीतम-हूती बाहिरी कवड़ी ही न लहाँइ।
जब देखूँ घर-आँगणइ लाखे मोल लहाँइ॥ ३७० ॥
सज्जणियाँ वउळाइ कइ मंदिर बइठी आइ।
मंदिर काळउ नाग जिउँ हेलउ दे दे खाइ॥ ३७१ ॥
सज्जणिया ववळाइ कइ गउखे चढ़ी लहक्क।
भरिया नयण कटोर ज्यउँ, मुंधा हुई डहक्क॥ ३७२ ॥
हइ रे जीव, निळज्ज तूँ; निकस्यू जात न तोहि।
प्रिय विछुड़त निकस्यउ नहीं, रह्यउ लजावण मोहि॥ ३७३ ॥
सज्जण वल्ले, गुण रहे, गुण भी वल्लणहार।
सूकण लागी बेलड़ी, गया ज सींचणहार॥ ३७४ ॥

३७०—प्रियतम के बिना मैं अपना कौड़ी मोल भी नहीं पाती। जब (उनको) घर के आँगन में देखती हूँ तो मैं अपना मोल लाखों का पाती हूँ।

३७१—साजन को भेजकर मैं अपने महल में आकर बैठी—महल काले नाग की तरह पुकार पुकारकर खाता है।

३७२—साजन को भेजकर मैं ललककर झरोखे में चढ़ी। आँखें कटोरों सी भर आईं और मैं मुग्धा बिलखने लगी।

३७३—अरे प्राण, तू बड़ा निर्लज्ज है, तुझसे निकला भी नहीं जाता। प्रियतम के बिछुड़ते समय तू नहीं निकला, मुझे लजाने के लिये रह गया।

३७४—सज्जन चले गए। (उनके) गुण रह गए। गुण भी अब चलनेवाले हैं। (यह) बेलि अब सूखने लगी (इसके) सींचनेवाले चल दिए।

३७०—हुंता (ग) ढोला हूंतो गोरड़ी (थ)। कवड़ी मोल लहांह (ग)। कवडी मोल कहंत (घ)। कोडी मोलि बिकाउं (थ) कउडी मोल करांह (च)। घरि (घ)। नय अंगणय (च) आपणै (थ)=आँगणइ। तव हूँ लाख लहाँ (च. थ)। लहंत (घ)। लहांह (घ)।

३७१—सजणीथा (ख)। ववलाइ कै (ख) बोलायकै (घ)। बैठी मिंदिर (घ)। मिदर (घ)। काळा (घ)। ज्यूं (घ)। हेलो (ख) लहरी (घ) हेला (झ)=हेलउ।

३७२—केवल (ख) में (मार्जिन पर)।

३७३—निलज (ग. घ)। निकस (ग. घ)। नहीं (ग) नहिं (घ)। पी (घ)। रह्यो (ग. घ)। लजावन (ख)। केवल (ख) (ग) (घ) में।

३७४—केवल (झ) में।

खूँटइ जीण न मोजड़ी, कड़-थाँ नहीं केकाँण।
साजनिया सालइ नहीं, सालइ आही ठाँण॥ ३७५॥
सज्जण, गुणे समुद्द तूँ, तर तर थक्की तेण।
अवगुण एक न साँभरइ, रहूँ विलंबी जेण॥ ३७६॥
साई दे दे सज्जना, रातइ इँणि परि रूँन।
उरि ऊपरि आँर ढळइ, जाँणि प्रवाळी चूँन॥ ३७७॥

सोरठा

सूती पड़ी रणेहि, जोयइ दिसि जाताँ-तणी।
जागी हाथ मळेहि, विलखी हूई, वल्लहा॥ ३७८॥
रूनी रड़ी चड़ेहि, जोई दिसि जाताँ-तणी।
ऊभी हाथ मळेहि, विलखी हूई, वल्लहा॥ ३७९॥

३७५—खूँटे पर जीन नहीं है और न जूते हैं। कड़ी पर ऊँट नहीं है। प्रियतम (हृदय में) नहीं सालते हैं, यह थान सालता है।

३७६—हे प्रियतम! तू गुणों का समुद्र है जिसमें तैरते-तैरते मैं थक गई हूँ। अवगुण एक भी याद नहीं पड़ता जिसका आश्रय लिये रहूँ।

३७७—हे प्रियतम! मैं रात को इस भाँति धाड़ मार-मारकर रोई कि हृदय पर आँसू गिरने लगे मानों मूँगों का चूर्ण हो।

३७८—हे प्यारे, (यह प्रियतमा) तुम्हारे जाने की दिशा को देख-देखकर सोई हुई पड़ी सिसकती है और जगने पर विलख-विलखकर हाथ मलती है।

३७९—हे प्यारे, जाते हुए तुम्हारी दिशा की ओर देख-देखकर (यह प्रियतमा) खूब सिसक-सिसककर रोई, और व्याकुल हो कर खड़ी हुई हाथ मलने लगी।

३७५—पूठै (झ)। जाण (झ)=जीण। कुड़ (च) कुडि (ज)। ठाणि (थ) =कड्याँ। नेही (च) नाहीं (ज)। सज्जनीया (च)। सालै (ज. झ)।

३७७—साभळि सांभळि (थ)=साई दे दे। सज्जणां (च)। रुन्न (थ)। ढळ्या (ज. थ)। चुरण (थ)।

३७८—राती (थ)=सूती। रडी चडेहि (थ)=पड़ी रणेहि। जोई (थ)। साजण (थ)। साजण (थ)=जाताँ। वालहा (थ)।

केवल च. थ. में।

३७९—रडै चडेह (ज)। मसळेहि (च) घसेह (न)। वालहा (ज)।

गया गळंती राति, परजळती पाया नहीं।
से सज्जण परभाति खड़हड़िया खुरसाँण ज्यूँ ॥ ३८० ॥

दूहा

बीछड़ताँ ही सज्जणा, क्याँही कहण न लध्ध।
तिण वेळाँ कँठ रोकियउ, जाँणक सिंघी खध्ध ॥ ३८१ ॥
सज्जण ज्यूँ ज्यूँ संभरइ, देख्याँ आही ठाँण।
झुरि झुरि नइ पंजर हुई, समर समर सहिनाँण ॥ ३८२ ॥
ए वाड़ी, ए बावड़ी, ए सर-केरी पाळ।
वै साजण, वै दीहड़ा, रही सँभाळ सँभाळ ॥ ३८३ ॥
छोटी वीख न आपड़ाँ, लाँबी लाज मरेहि।
सयण बटाऊ वालरे, लंबउ साद करेहि ॥ ३८४ ॥

३८०—प्रियतम रात व्यतीत होते हुए गए थे। उजाला होने पर (मैंने) उन्हें नहीं पाया। वे प्रियतम प्रभात-काल में तलवार की तरह (मेरे हृदय में) खटकने लगे।

३८१—प्रियतम के बिछुड़ते समय मैं कुछ भी नहीं कहने पाई। उस समय मेरा कंठ रुँध गया मानों सिंगिया (नामक विष) खा लिया हो।

३८२—यह स्थान देखने से प्रियतम ज्यों-ज्यों याद आते हैं त्यों-त्यों उनके चिह्नों को याद कर-करके मैं झूर-झूरकर (अस्थियों का) पंजर हो गई हूँ।

३८३—यह वाटिका, यह बावड़ी, यह तालाब की पाल, वे सज्जन और वे दिन—इनका बार बार स्मरण करती हूँ।

३८४—ओछे कदमों से पहुँचा नहीं जाता और लंबे डग भरते हुए लाज मरती है—प्रियतम पथिक चले गए (और मालवणी) लंबा शब्द करती है (पुकार-पुकारकर रोती है)।

३८०—सजन (ग. ज)। परभात (ग)। ज्युं (क. ज) जिम (ख)।

३८१—कांइ (थ)। ऊभी थी खड़हड़ पड़ी (थ) = तिण वेळाँ कँठ रोकियउ। स्वर (न) = कंठ। जांणे (थ)। विखहर (द) सीनी (थ) महुरो (न) नागणि (ध) = सिंघी।

३८२—केवल (ज) में।

३८४—छोटे (ज)। उइयणे घटा वउलीया (च) = सयण बटाऊ वालरे। समय (छ) = सयण। करेई (च)।

साद करे किम सुदुर है, पुळि पुळि थक्के पाँव।
सयणे घाटा वउळिया, वइरि जु हूआ वाव ॥ ३८५ ॥

बाबा, बाळूँ देसड़उ, जिहाँ डूँगर नहिँ कोइ।
तिणि चढि मूकउँ धाहड़ी, हीयउ उरळउ होइ ॥ ३८६ ॥

उर मेहाँ पवनाँह ज्यऊँ करह उडंदउ जाइ।
पूगळ जाइ प्रगडउ करइ, करइ मारवणि दाइ ॥ ३८७ ॥

भूली सारस-सद्दड़इ, जाणइ करहउ थाय।
धाई धाई थळ चढ़ी, पग्गे दाधी माय ॥ ३८८ ॥

३८५—शब्द करने से भी क्या, (प्रियतम) बहुत दूर है; चलते चलते पाँव थक गए। प्रियतम घाटियाँ पार कर गए और वायु भी वैरी हो गया।

३८६—हे बाबा, ऐसे देश को जला दूँ (आग लगे ऐसे देश को) जहाँ कोई पहाड़ तक नहीं कि जिस पर चढ़कर धाड़ मारूँ जिससे हृदय (तो) हलका हो।

३८७—वह, पवन से प्रेरित मेघों की तरह, ऊँट उड़ता हुआ जा रहा है। वह पूगल पहुँचकर प्रभात करेगा और इस प्रकार मारवणी की प्रसन्नता का कार्य करेगा।

३८८—सारस के शब्द से धोखे में पड़ गई—समझी कि ऊँट है। दौड़ी दौड़ी मैं (ऊँचे) थल पर चढ़ी—अरी माँ, मेरे पैर जल गए।

३८५—सादु (च)। करि (च)=किम। दूर=सुदुर (छ)। पुळतां (छ)। घटा (च)। वैळिया (छ)।

३८६—वाळूँ बाबा=बाबा वाळूँ (ज. झ. थ)। डूंगर नहीं ज (झ)=जिहाँ डूगर नहिं। डूंगर नाही (थ) कांय (ज)। चडि=तिणि (च) मूंका (थ) मेलुं (ज)। धाह मारी (थ)। मति हीयउ (झ) हियड़ो (ज)=हीयउ। होय (ज)।

३८७—मैहां (च. ज)। पनांह (च)। करहो (ज)। लुडंदउ (च)। जाय (ज)। पूगळिग्गौ (थ)=पूगल जाइ। परगड़उ=प्रगडउ करइ (च)। मति मारवणि रा दाइ (थ) मारवणी रै चाहि (ज)=करइ मारवणि दाइ।

३८८—करह करंक्यउ माइ (च) जांण्यौ करह किंगाइ (थ)=जाणइ करहउ थाय। थळि (थ)। पगडै (ज)=पग्गे। दधी (ज)। माई (च)। पगड़ा दाधा (थ)।

सारसड़ी मोती चुणइ, चुणइ त कुरळइ काँइ।
सगुण पियारा जउ मिलइ, मिलइ त बिछुड़इ काँइ॥ ३८९॥

थळ-मथ्थइ जळ-बाहिरी, काँइ लबूकी बूरि।
मीठा-बोला घण-सहा, सज्जण मूक्या दूरि॥ ३९०॥

थळ-मथ्थइ जळ बाहिरी, तूँ काँइ नीली जाळ।
कँइ तूँ सींची सज्जणे, कँइ बूठउ अग्गाळि॥ ३९१॥

ना हूँ सींची सज्जणे, ना बूठउ अग्गाळि।
तो तळि ढोलउ बहि गयउ, करहउ बाँध्यउ डाळि॥ ३९२॥

३८९—सारसी मोतियों को चुगती है—यदि चुगती है तो (चुगते समय) क्या कुरलती है? गुणवान् प्रियतम यदि मिलता है तो मिलकर (फिर) क्या बिछुड़ता है?

३९०—हे बूर (घास), सूखे और रेतीले थल पर जल बिना (ही) क्यों डहडही हो रही है! मिष्ट भाषी और सहनशील प्रियतम को (तो तूने) दूर भेज दिया है।

३९१—थली पर स्थित हे जाल (वृक्ष), तू जल बिना कैसे हरी हो रही है? क्या तुझे प्रियतम ने सींचा है या अकाल-वर्षा हुई है?

३९२—जाल उत्तर देती है—

न तो मुझे (तुम्हारे) प्रियतम ने सींचा है और न अकाल-वर्षा हुई है। ढोला मेरे नीचे होकर गया है और उसने अपना ऊँट मेरी डाली से बाँधा था।

३८९—सारडा (च) सारसड़ा (झ. थ)। चुगै (झ) चुणै (ज)। तु (च) ते (झ)। कुरळै (ज. झ)। कांय (ज)। सुगुण (झ)। पियारउ (थ)। सजनां (झ)= जउ मिलइ। मिलै तु (च)। वीछड़ौ (झ)। नांहि (झ) कांय (ज)=काइ।

३९०—मथै (झ)। लहकी (ज. थ)=लबूकी। नीली खजूर (झ) खळही खजूर (घ)=लबूकी बूरि। बोल (च) बोलण (झ)। हसण=सहा (झ)। साजन (ज) साजण (झ)। मेल्या (ज. थ) वसीया (झ)=मूक्या।

३९१—मथै (ज. झ)। जाळ (झ)। कै (ज. झ)। सजनें (ज) सजणें (झ) सज्जणौ (च)। कै (ज. झ)। बूठैज. (ज. झ)। अगाळ (झ) अकाळि (च)।

३९२—सजनें (ज) सजणै (झ)। नां (ज)। बूठौ (ज. झ)। अकाळि (च) अगाळ (झ)। मति (च)=मो तळि। पांढ़ियउ=बहि गयउ (थ)। डाळ (झ)।

ढोला, हूँ तुझ बाहिरी, झीलण गइय तळाइ।
ऊ जळ काळा नाग जिउँ, लहिरी ले ले खाइ॥ ३९३॥
[सुंदर सोळ सिँगार सजि, गई सरोवर-पाळ।
चंद मुळक्कयउ, जळ हँस्यउ, जळहर कंपी पाळ॥ ३९४॥
चंदा तो किण खंडियउ, मो खंडी किरतार।
पूनिम पूरउ ऊगसी, आवंतइ अवतार॥ ३९५॥
चंपा-केरी पाँखड़ी, गूँथूँ नवसर हार।
जउ गळ पहरूँ पीव विन, तउ लागे अंगार॥ ३९६॥]

(शुक-संदेश)

सुणि सूड़ा, सुंदरि कहय, पंखी, पड़गन पाळि।
प्रीतम पूगळ-पंथ-सिरि, किम ही पाछउ वाळि॥ ३९७॥

३९३—हे ढोला, मैं तुम्हारे बिना (अकेली) तालाब में नहाने गई। (उसका) वह पानी काले साँप की तरह लहरें ले-लेकर खाता है।

३९४—सुंदरी सोलह शृंगार सजा करके सरोवर के तीर पर गई। (उसको देखकर) चंद्र मुसकराया, जल हँसा और जलाशय की पालि काँप गई।

३९५—हे चंद्र, मुझे विधाता ने खंडित किया—तुझे किसने खंडित किया है? तू तो पूर्णिमा को पूर्ण (होकर) उगेगा परंतु मैं आगामी जन्म में ही (पूर्ण होऊँगी)।

३९६—चंपे की पँखुरियों का नौ लड़ियोंवाला गूँथती हूँ। यदि (उसे) गले में पहनती हूँ तो प्रियतम के बिना अंगार-सा लगता है।

३९७—अब मालवणी अपने सुग्गे से कहती है—

सुंदरी कहती है कि हे सुग्गे, सुनो। भाईचारा निबाहो। प्रियतम पूगल के मार्ग पर हैं, तू किसी तरह उनको लौटा ला।

३९३—तो (ज)=तुझ। तळाव (च. ज)। सो सरवर (ज) ऊ सरवर (थ)= ऊजळ। कांगला (च)=काला। हेले (च) हेला=लहिरी। दे दे (च. झ. थ)=ले ले। खाय (च. ज)।

३९७—सूवा सुणि (क. ख. ग. घ. झ)=सुणि सूड़ा। सूआ (ज) सुडा (थ)। सुंदर (क) सूंदर (घ) सुंदरी (ख)। कहै (क. ख. ग. घ. झ)। तूँ (च. ज. थ) पंथी (क. घ)=पंखी। पडिवन्नउ (च. थ) पडगनौ (घ)। पाळ (घ)। ढोलउ (च. थ) ढोलौ (ज)=प्रीतम। पुंगळ (ज)। सरि (च) सिर (क. ग)। किवहीं (ख) किमहीक (झ)। पूठौ (झ)। वाळ (घ)।

सूवा, एक सँदेसड़उ, वार सरेसी तुभ्भ ।
प्रीतम वाँसइ जाइ नइँ, मुई सुणावे मुभ्भ ॥ ३९८ ॥

ढोलइ चलताँ परिठ्यउ, अंगणि मोजाँ सल्ल ।
ढोलउ गयउ न बाहुड़इ, सुया, मनावण चल्ल ॥ ३९९ ॥

चंदेरी बँदी बिची, सरवर-केरइ तीर ।
ढोलइ दाँतण फाड़ताँ, आइ पुहत्तउ कीर ॥ ४०० ॥

कहि सूवा, किम आवियउ, किहींक कारण कथ्थ ।
तूँ माळवणी मेल्हियउ, किनाँ अम्हीणइ सथ्थ ॥ ४०१ ॥

३९८—हे सुए, मेरा एक सँदेसा है, यह काम तुझी से पार पड़ेगा। प्रियतम के पास जाकर मुझे मरी हुई सुना दे।

३९९—ढोले के चलते समय आंगन में जूते और भाले के चिह्न बन गये। ढोला गया हुआ लौट नहीं रहा है। हे सुए, उसको मनाने के लिये चल।

४००—चंदेरी और बूँदी नगर के बीच में, सरोवर के किनारे, जब ढोला दँतवन चीर रहा था उस समय, वह सुग्गा आ पहुँचा।

४०१—ढोला सुग्गे को देखकर पूछता है—

हे सुए, कह, कैसे आया? कोई कारण हो तो कह। क्या तुझे मालवणी ने भेजा है अथवा (तू) हमारे साथ (चला आया) है?

३९८—वारू मरसे सूझ=वार सरेसी तुझ्भ (ज)। कै=नइँ (क. ख. ग. घ)। केवल (क. ख. ग. घ. ज) में।

३९९—ढालो (ज)। चलंति (ज)। परिठियाँ (ज) पूरिया (थ)। आंगण (ज)। मोजा (च)। भल्ल (थ)। ढोलो (ज)। कह्यो=गयउ (ज)। नह (ज)। बाहुडै (ज)। सुवा (ज)। मनाकु वल्लि=मनावण चल्ल (ज)।

४००—मंदिर=बूँदी (ख. ग. घ. झ)। नगरी=बूँदी (क. झ)। वचे (ट)। विचै (क. ग)। कैरै (क. ग) केरी (ख. झ)। दांतन (ग)। पहुतौ (ख)। अठे पधारे वीर=आइ पुहत्तउ कीर (ट)।

केवल (क. ख. ग. घ. झ. ट) में।

४०१—आवीया (क)। कहेक (ख) कहीक (घ) केहै (ज) कहीज (ग) कहि किस (झ)। के=तूं (ग. ज)। तो नूं (घ)। माळवनी (ग)। किन्हा (ग)। अमीणै (ख) अम्हीनै (ग)। सथि (ख) सथ (घ)।

साल्ह कुँअर, सूड़उ कहइ, माळवणी मुख जोइ।
प्राँण तजेसी पदमणी, लंछण देस्यइ लोइ ॥ ४०२ ॥
प्रीतम वीछुड़ियाँ पछइ, मुई न कहिजइ काइ।
चोली-केरे पाँन ज्यूँ, दिनदिन पीली थाइ ॥ ४०३ ॥
बोलि न सक्कूँ वीहतउ, हेक ज वात हुई।
राजि अपूठा वाहुड़उ, माळवणी मूई ॥ ४०४ ॥
सूड़ा, सगुण ज पंखिया, म्हाँकउ कह्यउ करे ज।
नव मण चंदण, मण अगर, माळवणी दागे ज ॥ ४०५ ॥

४०२—सुग्गा कहता है कि हे साल्ह कुमार, मालवणी की ओर देखो। वह पद्मिनी प्राण छोड़ देगी और लोग तुम्हें लांछन लगावेंगे।

४०३—प्रीतम के बिछुड़ने पर क्यों न मरी हुई कही जायगी, जब वह मजीठ के पत्तों की भाँति दिन प्रति दिन पीली पड़ती जा रही है।

४०४—मैं डरता हुआ बोल नहीं सकता, एक बात हो गई है, आप वापिस लौटें—मालवणी मर गई है।

४०५—ढोला कहता है—

हे सुए, तू गुणवान् पक्षी है, हमारा एक कहना करना—नौ मन चंदन और एक मन अगरू लेकर मालवणी का दाह-कर्म कर देना।

४०२—साल (ग)। कुंमर (क. ज) कुंवर (ख)। सूबौ (ख. ग) सूवउ (क) सूओ (घ)। कहौ (घ)। माल्हवणी (ख)। मुखि (ज)। जोय (ज)। तिजंती (ज. थ)। पदमिनी (च) पदमिणी (क. ख. ग) पदिमणी (घ)। लंछन (ग)। दे सिर=देस्यइ (ख) देसी (ग. घ) दीसी (घ)। तोहि (ख) तोइ (क. घ.) सोइ (ज. थ.)=लोइ।

४०३—वीछड़ियाँ (क. ज)। सुनजै=कहिजै (ग) सुणियै (क. त)। कोइ (क. घ)। केरा (ग. ज)। होइ=थाइ (क)।

केवल (क. ख. ग. घ) में।

४०४—बोल न (क. ग. घ)। सकुं (ज)। एक (क. ग. घ)। अपुंठा (घ)। बाहुडे (ख) बाहुड्या (ज) माळवंण (घ)। मुई (क. घ)।

४०५—दस=नव (क. ख. ग. घ. ज)। मणि (ज)। तेल सुगंधौ लेय=माळवणी दागेज (ख. ग. ज) लेस (क)।

इस दूहे की दूसरी पंक्ति (क. ख. ग. घ. ज.) में पहली पंक्ति है। पहली पंक्ति (च) से ली गई है। (क. ख. ग. घ. ज.) में दूसरी पंक्ति इस प्रकार है—'गुण थांईको मांणसां मालवणी दागेय'—इसके पाठांतर इस प्रकार हैं—थांकौ ही (क. ग) थांकौ (घ)= थांइकौ। मानिस्यां (क) मानस्यां (ग. ज) मानस्यो (घ)। माळवंण (घ)। दागेस (क. घ)। दागेह (ग)।

सूड़ा, सुगुण ज पंखिया, म्हाँकउ कह्यउ करेह ।
साई देज्यो सज्जणाँ म्हाँ साम्हाँ जोएह ॥ ४०६ ॥
थे सिध्धावउ, सिध करउ, पूजउ थाँकी आस ।
वीछुड़ताँ ही माणसाँ, मेळउ दियउ उल्हास ॥ ४०७ ॥
थे सिध्यावउ, सिध करउ, पूजउ थाँकी आस ।
मत वीसारउ मन-थकी, उवा छइ थाँकी दास ॥ ४०८ ॥
ढोलइ सूवउ सीख दइ, जा पंछी, ग्रह वास ।
उडियर पाछउ आवियउ माळवणी-कइ पास ॥ ४०९ ॥

४०६—हे सुए, तू गुणवान् पक्षी है, हमारा कहा करना—हमारी ओर देखकर (हमारी ओर से) प्रियतमा के पीछे बाँग देना ।

४०७—(जब सुए ने देखा कि मृत्यु-समाचार से भी ढोला का मन नहीं फिरा तो लाचार होकर कहने लगा—)

आप पधारिए, सिद्धि कीजिए, आपकी आशा पूरी हो और बिछुड़े हुए जनों को फिर मिलकर उल्लास देना ।

४०८—आप पधारिए, सिद्धि कीजिए, आपकी आशा पूरी हो । उस (मालवणी) को मन से मत भुलाना; वह आपकी दासी है ।

४०९—ढोला सूवे को बिदा देता है कि हे पक्षी, अपने वास-स्थान को जाओ । तब वह उड़ मालवणी के पास वापिस आया ।

४०६—सगुणा (थ) । करेस (थ) । म्हां सौ माने हेज=म्हांकउ...करेह (थ) । लड़ लाकड़ ढीहर ढकलि म्हां हु इतिया देह=साई...जोएह (ज) ।

केवल (च. ज. थ) में ।

४०७—सिधावो (ज) । सिद्धि (च) । सिधि (थ) । वीछड़ीयां (ज) । प्रीव=ही (ज) । वांसै किसौ वैसास=मेलउ...उल्हास (ज) ।

केवल (च. ज) में ।

४०८—सिधावौ (ख) । सिधि करी (ख) हूं छूं=उवा छै (ख) । थांकौ=थांकी (ख) ।

केवल (क. ख. ग. घ) में ।

४०९—सूवानुं=सूवउ (ज) । दी (ज) । गृह (ख. ज) । उडिअर (ख) उडनै (झ) उडिनै (ज) । पासि (ज) ।

केवल (क. ख. ग. घ. ज. झ. थ) में ।

लाँबी काँब चटक्कड़ा, गय लंबावइ जाळ।
ढोलउ अजे न बाहुड़इ प्रीतम मो मन साल ॥४१०॥

रहि नीमाँणी, माठ करि, सयणाँ वयण न कथ्थ।
ज्याँ पग दीधा पागड़इ वाग उवाँही हथ्थ॥ ४११॥

प्यारा, पाखर पेम की, काँइ ज पहिरी अंगि।
वयण खटक्कइ बाण ज्यूँ, कोइ न लागइ अंगि॥ ४१२॥

साहिब, तुझ्झ सनेहड़इ, प्रीति-तणी पति जाइ।
जळ खिण ही जाणइ नहीं, मच्छ मरइ खिणमाँइ॥ ४१३॥

४१०—उधर पीछे मालवणी विलाप करती है—

लंबी छड़ी की मार से वह गति को द्रुत करता है! मेरे मन का प्यारा साल्हकुमार (ढोला) अभी तक नहीं लौट रहा है।

४११—इतने में सूवा आ जाता है और कहता है—

बोलती रहजा, चुप कर, प्रियतम से वचन न कह। जिन्होंने रिकाब पर पैर दिए लगाम भी उन्हींके हाथ में है (लौटना उन्हींके हाथ में है)।

४१२—पुनः मारवणी विलाप—

हे प्यारे, तुमने प्रेम का कैसा कवच धारण कर लिया है। (मेरे) वचन बाण की तरह आघात करते हैं परंतु तुम्हारे अंग में कोई नहीं लगता।

४१३—हे नाथ, तुम्हारी प्रेम-रीति से प्रीति की प्रतीति चली जाती है। मछली क्षण भर में मर जाती है परंतु जल को क्षण भर के लिये भी उसका ज्ञान (ध्यान) नहीं होता।

४१०—कंब (क. घ)। चटकढ़ा (ख. ग. घ)। गउ (ख)। अजूं (क. ग. घ)। साल्ह (क. ख) सल्ह (घ)।

केवल (क. ख. ग. घ) में।

४११—निमांणी (ज)। मठि (ज)। कथि (ज)। दीनां (ज)। वागां (ज)। त्यांही (ज)।

केवल (ख. ज.) में।

४१२—प्यारी (झ)। सयणा (न)। प्रेमची (न)। काइक (क. घ)। पहेरी (घ) पैहरी (ज)। अंग (क. ख. ग. घ. झ)। तन्न=अंगि (न)। खरडकै (ख. झ.) खटकै (क. ग. ज.) खटकौ (घ)। खतंगा वाहिया=खटक्कइ बाँण ज्यूँ (न)। तास=कोइ (क. घ)। भागै=लागै (घ)। मन्न=अंगि (न)। अंग (क. ख. ग. घ. झ)।

केवल (क. ख. ग. घ. ज. झ. न) में।

४१३—सनेहडै (ज) सनेहडी (क. घ)। प्रीत (ग. घ)। पत (घ)। जाय (ज)।

बाँवळि काँइ न सिरिजियाँ, मारू मंझ थळाँह ।
प्रीतम वाढ़त काँबड़ी, फळ सेवंत कराँह ॥ ४१४ ॥

साँवळि काँइ न सिरजियाँ, अंबर लागि रहंत ।
वाट चलंताँ साल्ह प्रिव, ऊपर छाँह करंत ॥ ४१५ ॥

साँगरा काँइ न सिरजियाँ, प्रीतम हाथ करंत ।
काठी साहँत मूठि-माँ, कोडी कासी संत ॥ ४१६ ॥

४१४—हे विधाता, तूने मुझे मरु देश के रेतीले स्थल के बीच में बबूल क्यों नहीं बनाया, (जिससे कि पूगल जाते हुए) प्रियतम छड़ी काटते और मैं उनके हाथों के स्पर्श का फल पाती !

४१५—(हे विधाता), मुझे श्यामल बदली क्यों नहीं बनाया, जिससे मैं आकाश में लगी रहती और मार्ग चलते हुए प्रिय साल्हकुमार पर छाया करती ।

४१६—(हे विधाता,) मुझे नरसिंहा क्यों नहीं बनाया, जिससे प्रियतम हाथ में लेते; मुट्ठी में कसकर पकड़ते, (और मैं) खूब प्रसन्न रहती ।

माझ (ख. ग)। मांहि (क. ग. ज)। माह (घ)।
केवल (क. ख. ग. घ. ज) में ।

४१४—बांवळ (ख. ग. घ. त) बांवण (झ)। सरजियां (ग)। कांइन सरजी बांवळी (ज)। काँइन सरजी अंबली (ट) = बाँवळि...सिरजियाँ। झाझा = मारू (ज) सरळी = मारू (ट)। मंज (ख)। ढोलो = प्रीतम (ज. ट)। तोड़त (ज) मोड़त (ट) वाढंत (क. ग)। खल = फळ (घ)। चटकावंत = फळ सेवंत (ज. ट)। करहां। (ट)। पाछै परहरियाँ = फळ...कराँह (ख)। पल (त)।

४१५—सवळी (क. ग. घ. त)। सिरजीया। (ख) सिरजई (त)। कांयन सरजी बादळी = साँवळि...सिरजियाँ (ज)। लागी आभ = अंबर लागि (क. घ. त)। लागी साथ वहंत = अंबर...रहंत (ख. ग)। रहंति (त)। करहै प्रीतम काबड़ी = वाट...प्रिव (क. ख. ग. घ. त)। तिहिवाँ (ख. त) तिहिवां (ग) तिहूयां (क) त्रिहुआं (घ) = ऊपर।

४१६—सींगणि (ग. घ.)। सरजियां (ग. घ)। साहठ (ख)। हाथमैं (क. घ. त)। मूंठमैं (ग)। काडे (त)।

हित विण प्यारा सज्जणाँ, छळ करि छेतरियाह।
पहिली लाड लडाइ कइ, पाछइ परहरियाह॥ ४१७॥
[आवि विदेसी वल्लहा, छळ करि छेतरियाह।
मतवाळा रो वतक ज्यउँ, पिय नइँ परहरियाह॥ ४१८॥]
आडा वनखँड दे गया, परवत दीन्हा पूठ।
हियड़ा ऊपर राखती, कदे न कहती ऊठ॥ ४१९॥
सज्जण अळगा ताँ लगइ, जाँ लग नयणे दिट्ठ।
जब नयणाँहूँ बीछुड़े, तब उर मंझ पइट्ठ॥ ४२०॥
[सज्जण देसंतर हुवा, जे दीसंता नित्त।
नयणे तो वीसारिया, तूँ मत विसरे चित्त॥ ४२१॥]

४१७—हे प्रेम-विहीन प्यारे सज्जन, तुमने छल करके (मुझको) ठग लिया। पहले लाड़-प्यार करके (फिर) पीछे छोड़ दिया।

४१८—हे परदेशी प्रियतम, आओ, छल करके तुमने मुझे ठग लिया। मतवाले की सुराही की तरह तुमने पान करके मुझे छोड़ दिया।

४१९—(प्रियतम) जंगल के जंगल बीच में दे गए, पर्वतों को पीछे छोड़ गए। मैं उन्हें सदा हृदय पर रखती और कभी नहीं कहती कि 'उठो'।

४२०—सज्जन तभी तक अलग (रहते) हैं जब तक आँखों से दिखाई देते हैं। जब वे आँखों से बिछुड़ जाते हैं तो हृदय में प्रवेश कर जाते हैं।

४२१—जो प्रियतम सदा दिखाई देते थे वे देशांतर को चले गए। नयनों ने तो उन्हें विसार दिया; पर हे चित्त, तू उन्हें मत विसारना।

४१७—तेहज (क) हेत ज (घ) हित ज (ज) = हित विण। सजणां (ख) सजनां (ज)। कर (घ)। छेतरिया (ख. ग. घ. ज)। लाल = लाड (घ)। नैं = कै (ज)। चहोडिया = लडाइ कै (क. ग. घ) पीछैं (ज) पीछै (घ)। परहरिया (ख. ग) परिहरिया (ज)।

४१८—यह दूहा केवल (ज) में है।

४१९—सज्जन चाल्या हे सखी डूंगर दिया ज पूठ।
हीयै पर हुलरावती, ... (न)।
केवल (ज. न) में।

४२०—सजन (क. ग. घ। जां = तां (क. ग. घ) नयने (ग)। नयणां (क. घ)। दीठ (क. घ)। नयनां (ग)। मांहि (ख)। उमर ज = उर मंझ (घ)।
केवल (क. ख. ग. घ) में।

कुसळ विहावउ सज्जणाँ, पर मंडले थयाँह।
जउ बिहु हिया न हारिस्यइ, वळे मिळेवउ त्याँह॥ ४२२॥
माळवणी इणि विधि घणउ विकळ विलपंति।
ढोलउ पूगळ पंथ सिरि आणँद अधिक खड़ंति॥ ४२३॥
अति आणँद ऊमाहियउ, वहइ ज पूगळ वट्ट।
त्रीजइ पुहरि उलाँघियउ, आडवळारउ घट्ट॥ ४२४॥
[करहउ पाँणि तिसाइयउ, आयउ पुहकर तीर।
ढोलइ ऊतर पाइयउ, निरमळ सरवर नीर॥ ४२५॥]

४२२—हे सज्जन, (अब तुम) दूसरे के मंडल में हो रहे, कुशलपूर्वक दिन बिताओ। जो (हम) दोनों के हृदय हार न गए तो फिर मिलन होगा।

४२३—इस प्रकार मालवणी विरह से अत्यंत व्याकुल होकर विलाप करती है। (उधर) ढोला पूगल के मार्ग में अधिक आनंद में (भरा हुआ) ऊँट को हाँक रहा है।

४२४—(ढोला) अत्यंत आनंद में उमगा हुआ पूगळ के मार्ग में चल रहा है। (उस दिन) तीसरे पहर उसने आडावळा पहाड़ की घाटी को पार किया।

४२५—पानी के लिये तृषित हुआ ऊँट पुष्कर के तीर पर आया। ढोला ने उतरकर उसे सरोवर का निर्मल पानी पिलाया।

४२२—सुखि (घ) सुखइ (च)=कुसळ। विहावौ (क. ख. ग. घ. झ)। सजणां (ग) सजनां (क. घ)। परि (च)। मंदिरे (थ)। थीयांह (ग) थयांहि (घ)। जे मरि हाडन हारहीं=जउ...हारस्यइ (क. ख. ग. घ. झ)। वलि=विह (थ)। हाड=हिया (थ)। हारवइ (थ)। वळी (झ)। मिळिजै (क. ख. ग. झ)। मिळीजै (घ)। तांह (क. ख. ग. झ. थ)। तांहि (घ)।

४२३—माळवनी (ग)। इंण (ज) इण (क. ग. घ)। विध (ग. घ. ज)। विकुल (ख. ग. घ. ज)। विध विलपंत (ख) विललंत (ग) विलपति (घ)। हिव ढोलौ=ढोलौ (क. घ)। सिर (ख)। आनंद (ग)। खडंत (क. ख. ग. घ)।

४२४—आनंद (ग)। करहा पाणी धउ करे (च) करहा पाणी भव करे (थ) करहा...धौ करे (ज)=अति...ऊमाहियउ। पडिसै (थ) खडिसै (ग) वहिसौ (क) वहिसी (घ) वहौज (झ) कहेज (ज)। वाट (क. ग. ज. झ)। तीजै (ख. ग. झ)। त्रीजै (क) त्रीजी (घ)। पुहर (च) पुहरे (थ) प्रहरे (ज) पहरि (ख. झ) पहिरै (घ) पहर (क)। लंघीयौ (घ. थ) लंघीयउ (च. ज)। आडवळैरो (ख. झ) आडवळारौ (क) अडवळारौ (घ) आडिवळैरौ (ग)। घाट (क. ग. ज)। घट (ख)।

करहा, पाणी खंच पिउ, त्रासा घणा सहेसि।
छीलरियउ ढूकिसि नहीं, भरिया केथि लहेसि ॥ ४२६ ॥

देस विरंगउ ढोलणा, दुखी हुया इहाँ आइ।
मनगमता पाम्या नहीं, ऊँटकटाळा खाइ ॥ ४२७ ॥

करहा, नीरूँ जउ चरइ, कंटाळउ नइ फोग।
नागरवेलि किहाँ लहइ, थारा थोबड़ जोग ॥ ४२८ ॥

४२६—ढोला ऊँट से कहता है—

हे ऊँट, (अब) छककर पानी पी ले। (आगे) प्यास बहुत सहनी पड़ेगी। छीलर गढ़ैयों पर (तो) तू ढूकेगा नहीं और भरे हुए (तालाब यहाँ) कहाँ पावेगा ?

४२७—ऊँट कहता है—

हे ढोला, यह देश विरंगा है। यहाँ आकर के दुखी हुए। मन को रुचनेवाला (घास) नहीं मिलता; ऊँट कटारा खाते हैं !

४२८—ढोला उत्तर देता है—

हे ऊँट, यदि चरे तो ऊँटकटारा और फोग चरने को दूँ। तेरे इस थोबड़े (मुँह) के लिये यहाँ नागरबेलि कहाँ पाऊँगा ?

४२६—खांचि (ख) खींच (ग)। पीव (ग. ज) पी (ख) पिय (क. घ)। तिस (ख) तासा (क. ग. घ)। घणी (ख)। सहेस (क. ग. घ)। छीलरियाँ (क. ख. घ) छीलरिए (ग) छीलरड़े (घ) छीलरिये (ज)। ढूकिस (क. ग. घ. ज) ढूकसि (ख)। परवल (ख) सरवर (क. ग. घ)=भरिया। केथ (ख)। द्रह भरीया न (ज)। सर भरिया (थ)=भरिया केथि लहेस (क. ग. घ)।

४२७—देसे (च)। विडाणउ (थ)। थिया (ज)। तिणि=इहाँ (थ)। पामां (थ)। कंटाळो (ज. थ)। खाय (ज)।
केवल (ज. थ) में।

४२८—कंठीलौ (घ)। अरू=नै (ग. च) अर (ज) का (ख)=नै। लहुं (ज) लहू (झ)। का करहला (क. ख. घ) कहा करह (ग)=किहां लहइ। नारवरना लोक (क. ख) नागर वरना लोग (घ)=थारा थोबड़ जोग। थाहरौ (झ) थोडा=थोबड़ ज)। जोगि (च. ज)। नागर वेली का करहला नागर नररा लोग=द्वितीय पंक्ति (त))।

करहा, नीरूँ सोइ चर, वाट चलंतउ पूर।
द्राख विजउरा नीरती, सो धण रही स दूर ॥ ४२९ ॥

करहा, इण कुळिगाँमड़इ, किहाँ स नागरवेलि।
करि कइराँ ही पारणउ, अइ दिन यूँही ठेलि ॥ ४३० ॥

सुणि ढोला, करहउ कहइ, मो मनि मोटी आस।
कइराँ कूँपळ नवि चरूँ, लंघण पड़इ पचास ॥ ४३१ ॥

करहा, देस सुहामणउ, जे मूँ सासरवाड़ि।
आँब सरीखउ आक गिणि, जाळि करीराँ झाड़ि ॥ ४३२ ॥

४२९—हे ऊँट, जो चरने को दूँ वही मार्ग में पूरे वेग से चलता हुआ चरता जा। जो दाख और बिजोरे चरने को देती थी वह धन्या अब बहुत दूर रह गई।

४३०—हे ऊँट, इस छोटे-से गाँवड़े में नागरवेल कहाँ? यहाँ करील का ही कलेवा कर। ये दिन इसी तरह से बिता दे।

४३१—ऊँट कहता है कि ढोला, सुनो, मेरे मन की आशा मोटी है—चाहे पचास लंघन पड़ जायँ, पर करील की कोंपलें नहीं चरूँगा।

४३२—हे ऊँट, यह देश बड़ा सुहावना है क्योंकि यह मेरी ससुराल है! यहाँ आक को आम गिनो और करीलों के झाड़ों को कदंब!

४२९—जो चरे वाटडियांरो बूर=सोइ...पूर (द)। मेल्ही=रही स (द)।
केवल (ट. द) में।

४३०—ए=इण (ज)। कुळगामडो (ज)। नहींज=किहांस (ज)। कर (ज)। दस=अइ (ज)। युँहीज (ज)।
केवल (च. ज)।

४३१—केवल (च) में।

४३२—सुहावणो (ज)। जो (ज)। मौ (ज)। जउ तू=जे मू (थ)। वाड (ज)। सरीखा (ज)। करहा सीस म झाड़ी (ज) नागर वेली जाळि (थ) रइ करि सीस म झाड़ि (थ)=जाळि...झाड़ि।

करहा लंब-कराड़िश्रा, बे-बे श्रंगुळ कन्न।
राति ज चीन्हो वेलड़ी, तिण लखीणा पन्न॥ ४३३॥

करहा, चरि चरि म चरि चरि चरि चरि म चरि मभूर।
जे वन काल्हि विरोळियउ, ते वन मेल्हे दूर॥ ४३४॥

[ढोलइ करह विमासियउ, देखे वीस वसाळ।
ऊँचे थळइ ज एकलो, वग्राळइ एवाळ॥ ४३५॥]

उज्जळ-दंता घोटड़ा, करहइ चढियउ जाहि।
तइँ घर मुंध कि नेहवी, जे कारणि सी खाहि॥ ४३६॥

४३३—हे लंबी गर्दनवाले ऊँट, तुम्हारे कान दो-दो अंगुल के हैं। रात जो लता पहचानी (देखी) थी उसके पत्ते बहुमूल्य (स्वादिष्ट) थे।

४३४—हे ऊँट, चर-चर, मत चर, चर, अरे चर-चर, मत चर, मत दुखी हो। जिन वनों को कल पार किया था वे वन अब दूर छूट गए।

४३५—ढोले ने ऊँट को (इस प्रकार) समझाया। (फिर) ऊँचे स्थल पर कोई बीस-एक भेड़ों के झुंड के बीच में अकेले (बैठे हुए) एक गड़रिए को देखा।

४३६—वह गड़रिया ढोले को देखकर कहता है—

हे उज्ज्वल दाँतोंवाले युवक, ऊँट पर चढ़ा हुआ तू जा रहा है; क्या तेरे घर पर प्रेममयी मुग्धा है जिसके लिये शीत खा रहा है?

४३३—लंबा (च)। किराडीया (ज)। काछी कालीया (क. ख. घ) काछी करहला (ग) = लंब-कराड़िश्रा। दुइ दुइ (क. ख. ग. घ. ज)। श्रंगुल (क. ग. च. ज) श्रांगल (घ)। कांन (क. ख. ग. घ)। काल्हिजु = राति ज (च)। तिणि (च) तियै (क. घ) तीयै (ग)। पांन (क. ख. ग. व)।

४३४—केवल (च) में।

४३५—केवल (ट) में।

४३६—घेटड़ा (झ) ऊँटिया (न) = घोटड़ा। खंतै खड़ियो = करहइ चढियउ (न)। ज केहवी = कि नेहवी (न)।

केवल (क. झ. न) में।

जइ रूँखाँ मारू हुई, छवडउ पड़ियउ तास।
तइ हुंती चन्दउ कियइ, लइ रचियउ आकास॥ ४३७॥

ढोला, खील्यौरी कहइ, सुँणे कुढंगा वैण।
मारू म्हाँजी गोठणी, सैं मारूँदा सैण॥ ४३८॥

आडवळे आधोफरइ, एवड़ माँहि असन्न।
तिण अजाँण ढोलइ तणइ मूरख भागइ मन्न॥ ४३९॥

क्रम-क्रम, ढोला, पंथ कर, ढाण म चूके ढाळ।
आ मारू बीजी महल, आखइ झूठ एवाळ॥ ४४०॥

४३७—ढोला कहता है—

जिस वृक्ष से मारू (उत्पन्न) हुई उसकी छाल का टुकड़ा गिर गया था। (विधाता ने) उससे चंद्रमा बनाया और लेकर आकाश में रख दिया।

४३८—गड़रिया कहता है कि हे ढोला, मेरे कुढंगे वचन सुनो। मारू हमारी साथिन् है और हम मारू के मित्र हैं।

४३९—आडावले पहाड़ की ढालू जमीन पर, भेड़ों के झुंड के बीच में बैठे हुए उस मूर्ख (गड़रिए) ने अनजान ढोले का मन खिन्न कर दिया।

४४०—(तब ऊँट कहता है कि) हे ढोला, चलो, चलो, रास्ता पकड़ो, इस ढालू भूमि पर ढाण (चाल) को मत चूको। यह मारू दूसरी स्त्री है। यह गड़रिया झूँठ कह रहा है।

४३७—जे सुख अति=जइ रूँखां (झ)। जिण=जे (न)। पड़ी=हुई (न)। छोडौ (झ) छवडै (क)। तिणहुता (न)। रचियै (क. झ)।

केवल (क. झ. न) में। (घ) में इस दूहे का पाठ इस प्रकार है—

चंदन की मारू घड़ी, छोडो पड़ियां पास।
ताको ले चंदो धड्यां, लेइ मुक्यों आकास॥

४३८—खिलहरी (झ)। मारू रा म्हें=सैं मारूँ दा (झ)।

केवल (क. झ) में।

४३९—ऊँचे थलचर एकलो=आडवळे आधोफरइ (ट)। असंभ=असन्न (क) असन (ट)। उमगया=तिण अजाँण (ट)। ढोला (ट)। तणौ (ट)। मूरिख (ट)। भागौ (ट)।

केवल (क. झ. ट) में।

४४०—केवल (ट) में।

चारण एक ऊँमर तणउ, मिलियउ एह असन्न।
ढोलउ जातउ देखि कइ, मूरख भागउ मन्न॥ ४४१॥
जिण धण कारण ऊमह्यउ, तिण धण संदावेस।
तिण मारूरा तन खिस्या, पंडर हुवा ज केस॥ ४४२॥
ढोला, मोड़ो आवियउ, गइ बाळापण वेस।
अब धण होई खोरड़ी, जाए कहा करेस॥ ४४३॥

४४१—ऊमर-सूमरे का एक चारण इसके पास ही मिला। ढोले को जाता हुआ देख करके वह मूर्ख मन में जल उठा।

४४२—वह चारण ढोला से कहने लगा—

जिस प्रेयसी के लिए तू उमंग से भरा हुआ (जा रहा) है उसी प्रेयसी का संदेशा कहता हूँ। उस मारू के अंग ढीले हो गये हैं और बाल श्वेत हो गये हैं।

४४३—हे ढोला, तू देरी से आया। उसकी बाल्यावस्था चली गई। अब वह प्रेयसी वृद्धा हो गई है। (तू) जाकर क्या करेगा?

४४१—उमर (ख)। एक=एह (घ)। जांणि=एह (ग)। जावतो (घ) जावंतो (ग)। देख (घ)। कर (ग)।

केवल (ख. ग. घ) में।

४४२—जिन (ग)। कारणि (क)। उमह्यौ (घ)। ढोला तूं ऊमाहीयउ=जिण... ऊमह्यउ (च. ज. थ)। धणि (ख) धन (ग)। जिणि धणि हंदी रेस (ज) जिणि धण स्युं तू रेसि (च. थ)=तिण...वेस। सुंदरवेस=संदावेस (ध)। तिणि (च)। रो (ग. ज)। का=रा (च) तिन (ख)। मारूरो तो=तिण मारूरा (ख)। मारू तो तन ही=तिण...तन (घ)। खस्या (क. ख)। पुंडर (च) पंडुर (क. घ)। हूवा (ख) हुवात (ज) थयात (च) थयाज (झ) भयौत (घ)।

उस दूहे का पाठ (ट) में इस प्रकार है—

जरा आवे जोवण गयो, गई बाळापण वेस।
नैणांरी वंकम गई, पंडर हुआ ज केस॥

४४३—केवल (ट) में।

ढोलइ मन चिंता हुई, चारण-वचन सुणेह।
हिव आव्यउ पाछउ वळइ, करहा, केम करेह॥ ४४४॥

करहा, कहि कासूँ करॉं, जो ए हुई जकाह।
नरवर-केरा माणसाँ, कासूँ कहिस्याँ जाह॥ ४४५॥

दुरजण-केरा बोलड़ा, मत पाँतरजउ कोय।
अणहुंती हुंती कहइ, सकळी साच न होय॥ ४४६॥

४४४—चारण के वचन सुनकर ढोले के मन में चिंता हुई (और वह ऊँट से बोला) अब आए हुए वापिस चलें? हे ऊँट, बता क्या करें?

४४५—हे ऊँट, बता अब कैसे करें, जो यह हुई सो देख। नरवर के लोगों को अब जाकर क्या कहेंगे?

४४६—दुर्जन के वचनों से कोई धोखा मत खाना। (वे) अनहोनी को होनी बताते हैं—(उनका) सब (कथन) सत्य नहीं होता।

४४४—ढोला (ग) ढोलो (ध)। भनि चिंता ढोला तणे (च. ज) मन चिंता ढोला वसी (ध)=ढोलइ मन चिंता हुई। पूरख=चारण (क)। भणी (थ)। सुनेह (ग)। सांभळ तास वचन्न (च. ज. थ) सांभळ ए कुवचन्न (ध)=चारण...सुणेह। हव (घ)। आया (ज. थ) अथिहू (ख) आयौ (क. ग. घ)। वळूं (ग) वळु (घ) वळी (च) वळां (ज)। करहो (घ)। तिणि मन भागउ मन्न (च) इण उथापियो मन्न (ज) इण वचने हुइ लज्ज (थ) करहा केम करेह।

(ध) में इस दूहे की दूसरी पंक्ति इस प्रकार है—"हिव आयो पाछो वळूं इणें उथाप्यो मन्न।"

४४५—करहां (च. ज)। हिव (झ) जौ (ग. घ)=कहि। गलहां मंदीयां (क) गालि भंछीयां (च) गली भुछीया (ज)=कहि...करां। जोण (ख) जोई (ग. घ) जोय (क)=जोए। जकाज (ख) जिकाय (क) जिकाई (ग. घ) जिकाइ (च. झ)। नरहर (च)। केरां (ख) सदां (ग. घ)=केरा। उं नरवररां=नरवर-केरां (क)। किसूं (क) कास्युं (च. ज)। कहिसां (क. घ)। जाय (क. घ) जाइ (ख. च ग)।

४४६—केवल (ट) में।

ढोलउ म चलपत थयउ, ऊभउ साहइ लाज।
साम्हउ वीसू आवियउ, आइ कियउ सुभराज ॥ ४४७ ॥

वीसू सुणि, ढोलउ कहइ, एकइ कहियउ एम।
मारवणी बूढी हुई, कहि साँची तूँ केम ॥ ४४८ ॥

जे तइँ दीठी मारवी, कहि सहिनाँण प्रगट्ट।
साँच कहे तूँ दाखवइ, वहाँ ज पूगळ-वट्ट ॥ ४४९ ॥

४४७—ढोले का मन पीपल (के पत्ते की तरह चलायमान) हो गया। वह वहीं खड़ा खड़ा लगाम को सम्हालने लगा। (इतने में) सामने से वीसू (नाम का एक चारण) आया और उसने आकर शुभराज किया (श्रीमान् का कल्याण हो यह आशीष दी)।

४४८—ढोला कहने लगा कि हे वीसू, सुनो, एक ने ऐसा कहा है कि मारवणी बूढ़ी हो गई। तू सच बता कि क्या बात है।

४४९—यदि तुमने मारवणी को देखी हो तो सब चिह्न प्रकट करके बतलाओ। जो तुम सच सच बताओ तो पूगल के मार्ग पर (आगे) बढ़ें।

वीसू कहता है—

४४७—ढोलै (घ)। सन (घ)=मन। थकं (ग)। साही ऊभौ (क)=ऊभौ साहै। लाल (घ)=लाज। समां (घ)। आग्रीयौ (क)। आए (घ)।

केवल (क. ख. ग. घ) में।

४४८—तूं साची (ख)=साची तूँ।

केवल (क. ख. ग. घ) में।

४४९—जां (च. ज)। तइ (च)। दीठ वरसरी (ख)=जे तइँ दीठी। मारवी (ख. ज) मारुइ (च)। को (च. ज)=कहि। सहिणांन (ग) सहनाण (च) सैनांण (झ)। प्रकट (ख. ग. घ)। मोति सिरि गळि कंचूउ (च) मोती सिरि गळि कंटलो (ज)=साँच......दाखवै। जु (ख)=ज। वट (ख. ग) वाट (घ)। कढि कस्तूरी वट्ट (च. ज)=घहाँ ज पूगल वट्ट।

दुउढ वरसरी मारुवी, त्रिहुँ वरसाँरिउ कंत।
उणरउ जोवन बहि गयउ, तूँ किउँ जोवनवंत ॥ ४५० ॥

(मारवणी-रूप-वर्णन)

गति गंगा, मति सरसती, सीता सीळ सुभाइ।
महिलाँ सरहर-मारुई अवर न दूजी काइ ॥ ४५१ ॥
नमणी, खमणी, वहुगुणी, सुकोमळी जु सुकच्छ।
गोरी गंगा-नीर ज्यूँ, मन गरवी, तन अच्छ ॥ ४५२ ॥

४५०—(जब विवाह हुआ था तब) मारवणी डेढ़ वर्ष की थी और (उसका) पति तीन बरसों का था। उसका यौवन चला गया ? तब तू यौवनपूर्ण कैसे रह गया ?

४५१—मारवणी गति में गंगा, बुद्धि में सरस्वती, और शील-स्वभाव में सीता है। महिलाओं में मारवणी की बराबरी करनेवाली दूसरी कोई नहीं है।

४५२—वह विनयशीला, क्षमाशीला, अनेक गुणोंवाली, सुकोमल, सुंदर कक्षवाली, गंगा के पानी के समान गौरवर्ण, गरुए मनवाली और सुंदर शरीरवाली है।

४५०—दौढ (ख. ग. ज) डोढ (क. घ) दिउढ (थ)। मारवी (ख. ग) मारुइ (च. ज)। तिहुं (च. ज. ग) त्रिह (ख)। वरस (च. ग. घ)। किम (ख) = वहि। किम आ जोवन हुइ गई (च) किम उवा जोवण हुं गई (थ) किम वा जोवण वहि गई (ज) = उणरउ जोवन वहि गयउ। क्यों (ख) किम (ग) क्युं (घ) किम तू: (च) क्युं तूं (ज) = तूं किउँ।

(ट) में इस दूहे का पाठान्तर इस प्रकार है—

(थे) ढोला तीन वरसरा, धन वारे छः मास।
मारू किम वुढी भई, जो थे लील वलास ॥

४५१—गत (ट) सरस्वती (ग) सुहाइ (झ) सुभाय (ग)। मेहला (ट)। उत्तिम (ख) दीठी (क. घ) तेहीं (झ) = सरहर। मारुवी (क) मारवी (ख. ग)। कळमैं उत्तिम (ग. घ) कळिमैं उत्तिम (क) = महिळां सरहर। कळिमां उत्तिम (ख) = अवर न दूजी। और (ट) = अवर। महियल जेही मारवी कळमैं बीजी न काइ (न)।

४५२—नामनि (ख)। खमनी (ग)। सुखमणी (घ)। सुकच्च (झ) सुकच्च (ग) सुकिछ (घ) सुलज (ट)। मारू (क. ग) = गोरी। ज्यां (ख) जूं (घ)। गुण (ट) = मन। गरुई (ट)। तनि (ट)। तछ (ग) अछि (घ) = अछ।

रूप अनूपम मारुवी, सुगुंणी नयण सुचंग।
सा धण इण परि राखिजइ, जिम सिव-मसतक गंग ॥ ४५३ ॥

गति गयंद, जँघ केळिग्रभ, केहरि जिम कटि लंक।
हीर डसण, विद्रम अधर, मारू-भृकुटि मयंक ॥ ४५४ ॥

मारू-घूँघटि दिट्ठ मइँ, एता सहित पुणिंद।
कीर, भमर, कोकिल, कमळ, चंद, मयंद, गयंद ॥ ४५५ ॥

नमणी, खमणी, बहुगुणी, सगुणी अनइ सियाइ।
जे धण एही संपजइ, तउ जिम टळउ जाइ ॥ ४५६ ॥

४५३—मारवणी रूप में अनुपम और सद्गुणोंवाली है। उसके नयन अत्यंत सुंदर हैं। वह प्रेयसी इस प्रकार रखी जानी चाहिए जिस प्रकार शिव-जी गंगा को मस्तक पर (रखते हैं)।

४५४—(उसकी) चाल हाथी जैसी, जंघाएँ कदलीगर्भ जैसी, कमर सिंह की सी लचकीली, दाँत हीरों के समान, अधर मूँगे के सदृश और भृकुटी चंद्र जैसी (टेढ़ी) है।

४५५—मारवणी के घूँघट में मैंने कीर, भ्रमर, कोकिल, कमल, चंद्र, सिंह और हाथी—इतनों के साथ फणींद्र को देखा।

(कीर = नासिका। भ्रमर = भ्रू। कोकिल = वाणी। कमल = नेत्र। चंद्र = मुख। सिंह = कटि। हाथी=चाल, जंघा। फणींद्र=वेणी।)

४५६—(वह) विनयवती, क्षमाशीला, अनेक गुणोंवाली, सद्गुणागार और सुहावनी है। यदि ऐसी प्रेयसी मिल जाय तो खाली मत जाना।

४५३—अनोपम (घ) अनोंपम (क)। मारवी (क. ग. घ) सुगणी (घ)। नैं (ग) अनैं (क. घ)=नयण। साइ (क. ग. घ)=सा। अैसे (क. घ)=इण परि। राखीयौ (क) रखीयै (घ) मसकत (ख) मत्थे (क. घ)=मसतक।

४५४—गळि लीलं=गति गयंद (ग)। लीलंघ=गयंद (घ)। बिषय केळि= केळिग्रभ (ग)। कैळ (घ)। गरभ (क)। केहर (ग. घ)। विद्रम (क. ख. ग)। अधर (ख. ग)। भृकुट (ग)।

४५५—घूंघट (क. ग)। एतां (क)। कुणिंद (क. ग. घ)। किर (ख. ग)। भ्रमर (ख. घ) चमर (भ)=भमर। कुरग (भ)=कमल।

४५६—बहगुणी (घ) सकोमली (घ)=सगुणी अनइँ। जनम=जिम (भ)। ढलौ (क. ख) जाय (घ)।

मारू - देस उपन्नियाँ, ताँहंका दंत सुसेत।
कूँझ - बचाँ गोरंगियाँ; खंजर जेहा नेत ॥ ४५७ ॥

खंजर नेत विसाल, गय चाही लागइ चख्ख।
एकण साटइ मारुवी, देह एराकी लख्ख ॥ ४५८ ॥

तीखा लोयण, कटि करल, उर रत्ताड़ा बिबीह।
ढोला, थाँकी मारुई जाँणि विलूधउ सीह ॥ ४५९ ॥

डींभू लंक, मराळि गय, पिक-सर पही वाँणि।
ढोला, एही मारुई, जेहा हंझ निवाँणि ॥ ४६० ॥

४५७—जिन्होंने मारू देश में जन्म लिया है उनके दांत अत्यंत उज्ज्वल होते हैं। वे कुंझों के बच्चों के समान गौरांगिनी होती हैं और (उनके) नेत्र खंजन जैसे होते हैं।

४५८—मारवणी के विशाल नेत्र खंजन जैसे हैं और उसकी गति ऐसी है कि देखने से नजर लगती है। एक मारवणी के बदले लाख एराकी घोड़े दिए जा सकते हैं।

४५९—(उसके) लोचन तीखे हैं, कटि मुष्टिग्राह्य है, दोनों उरोज (पपीहे के समान) लाल हैं। हे ढोला, तुम्हारी मारवणी (ऐसी है) मानों (पालतू) विलुब्ध सिंह हो।

४६०—उसके बर्र की सी कमर, हंसिनी की सी चाल और कोयल के स्वर जैसी वाणी है। हे ढोला, मारवणी ऐसी है जैसा सरोवर में स्थित हंस।

४५७—ऊपनियाँ (ख) उपनीयां (ग. घ) उरयु गयंबर पंक घण (च) उरज गयंवर पंग घण (ज)=मारू देस उपन्नियां। तिहां (क) सपेत (क. ग) सपत (घ) दांमिणी दंत रुस्वेत (च)=तांहका दंत सुसेत। कांमण दंत=तांहका दंत (ज)। कूंभी। (क. ग. घ) कुरभां (च)। बर्ची (क. ज) बांली (च)=बचां। गोरीयां (घ. च)। तांहका (क. ख)=जेहा। नेत्र (च)। खंजेह नेह=खंजर जेहा नेत (घ)।

४५८—नैण (ख)। लायै (ग)। एकणि (क. ग. घ)। सठै (घ)। पंच (क. ख. ग. त)=देह।

४५९—त्रीखा (थ)। लांइन (ग) लोइण (घ) कडि (ग) कर (क. घ)=कटि। कशल (ग) कमल (क. घ)=करल। रतरा=(ग) रत्तडा। ऐही=थांकी (क. घ) विरतौं (ख) विरीतौ (घ) विरूतैं (क) विरुद्धउ (थ)=विलूधउ।

४६०—डीभू (ख) डीबू (झ)। लंकि (ज)। मराल (क. ख. घ. च. झ) मृणाल (ग)=मराळि। गइ (च)। पिकु (च) जेही (क. ग. घ. च. ज) एहवी (झ)=एही।

मारू-लँक दुइ अंगुळाँ, वर नितंब उस मंस।
मल्हपइ माँझ सहेलियाँ, माँन-सरोवर हंस ॥ ४६१ ॥

चंपा-वरनी, नाक सळ, उर सुचंग, विचि हीण।
मंदिर बोली मारुवी, जाँणि भणक्की वीण ॥ ४६२ ॥

आदीताहूँ ऊजळो, मारवणी-मुख-ब्रन्न।
झीणा कप्पड़ पहिरणइ, जाँणि झँखइ सोब्रन्न ॥ ४६३ ॥

४६१—मारवणी की कमर दो अंगुल है, और सुंदर नितंब और उरःस्थल मांसल हैं। (जब) वह सहेलियों के बीच में मंदगति से चलती है (तो मालूम होता है) मानों मानसरोवर में हंस (चल रहा है)।

४६२—वह चंपे के से रंगवाली है, उसकी नाक शलाका सी है, उरःस्थल अत्यंत सुंदर है और कमर पतली है। (ऐसी) मारवणी महल में बोलती है (तो जान पड़ता है) मानों वीणा झनकार कर उठी हो।

४६३—मारवणी के मुख की कांति सूर्य से भी समुज्ज्वल है। झीने वस्त्र पहनने से (उसके देह की कांति ऐसी झलकती है) मानों सोना झलक रहा है।

भक्ख (च. न)। भख्य (ज)=वांणि। हंज (ख. घ) हंस (ग)। नियांण (क. ग)। चाही लागइ चक्ख (च. ज. न)=जेही हंज निवांणि। लख्य=निवांणि (ज)।

इस दोहे का (च. ज) में एक और पृथक् रूपांतर मिलता है—

चंपावरणी, सिसिमुखी, पिक सर जेही वाणि।
ढोला एही मारुई, जाणे बिंझ निवांण ॥ (च)

जिसके पाठांतर (ज) में इस प्रकार हैं—सिस (ज)। जेही (ज)=जांणें। कुंभ (ज)=बिंझ। निवाणि (ज)।

४६१—आंगुली (घ)। धड़ (क. ख. घ)=वर। गय। (ध. ख. घ)=घर। मांस (ग)। मांहि (ग)। मान (ख. ग. घ)।

४६२—नक (क. ख)। ससि मुखी=नाक सळ (झ)। सुरंग (ग. घ) हार (ग)=हीण। बोलै (क. ग)। मारवी (ख. ग. घ)। जाँण (ग)।

४६३—आदिताउ (ग)। ऊजलौ (झ)। ब्रंन (ग) ब्रन (क) कपड़ा (घ)। जे पहिरै सिणगार कजि (ग)=झीणा कप्पड पहिरणइ। जाणिउ (ग) झखौ (ग) झाखै

सोरठा

मारुवणी मुँह - वंन्न, आदित्ताहूँ उज्जळी।
सोइ झाँखउ सोवंन्न, जो गळि पहिरउ रूपकउ ॥ ४६४

दूहा

भुमुहाँ ऊपरि सोहलो परिठिउ जाँणि क चंग।
ढोला, एही मारुवी नव नेही, नव रंग ॥ ४६५

मृगनयणी, मृगपति-मुखी, मृगमद तिलक निलाट।
मृगरिपु-कटि सुंदर वणी, मारू अइहइ घाट ॥ ४६६

४६४—मारवणी के मुख की कांति सूर्य से भी समुज्ज्वल है। यदि (वह) गले में चांदी का गहना पहने तो भी सोने का सा झलकता है।

४६५—(उसकी) भौंहों पर सोहली (आभूषण विशेष) पहनी हुई है, (वह ऐसी मालूम होती है) मानों (आकाश में) पतंग (उड़ रही) हो।। हे ढोला, नित्य नया नेह करनेवाली और नये रंगवाली मारवणी ऐसी है।

४६६—(वह) मृग के-से नयनोंवाली और मृगपति (चंद्र) जैसे मुख-वाली है। (उसके) भाल पर मृगमद (कस्तूरी) का तिलक लगाया हुआ है और (उसकी) कमर मृगरिपु (सिंह) की-सी सुंदर है। (हे ढोला,) मारू ऐसी बनावट की है।

(झ) सोवन्न (ख) सोव्रन (क. घ)। ग्रहणे पहिरयां सोहक ज सो झांखो सोव्रन्न (न)।

४६४—आदीतां (ज)। सुं (ज)=हूँ। ऊजळौ (न)। सोय (च)। झाँखै (ज) बांध्यो (ज)=पहिरउ। रूपकजि (ज)। यह (ज) में दूहे के रूप में है।

४६५—भूहां (ग) भ्रमुहा (घ) सोळही (च. ज. ग. घ)। परठो (ज) परठी (घ) परठी (क. ख. ग. घ. झ)=परिठिउ। जानि (ग) जाणिख (च. ज) जांणि (झ)= जाणिक। पतंग=(क) चंग (झ. थ) चंच=चंग (घ) तंग=चंग (च. ज)। ऐही (ग)। मारवी (ख. ग. घ) मारूई (च. ज)। नौ (ग)।

४६६—नयनी (ग)। लिलाट (ग)। मगरिप (ग)। सुरपति (घ) सुर (क)= सुंदर।

पर-मन-रंजन कारणइ, भरम म दाखिस कोइ।
जेही दीठी मारुवी, तेहा आखे मोइ ॥ ४६७ ॥
थळ भूरा, वन भंखरा, नहीं सु चंपउ जाइ।
गुणे सुगंधी मारवी, महकी सहु वणराइ ॥ ४६८ ॥
लखण बतीसे मारुवी निधि, चंद्रमा निलाट।
काया कूँकूँ जेहवी, कटि केहरि सै घाट ॥ ४६९ ॥
अहर, पयोहर, दुइ नयण, मीटा जेहा मक्ख।
ढोला, एही मारुई, जाणे मीठी दक्ख ॥ ४७० ॥

४६७—ढोला कहता है—

दूसरे के मन को प्रसन्न करने के लिये कोई भ्रमपूर्ण बात मत कहना; मारवणी को जैसी देखी हो ठीक वैसा ही वर्णन मेरे आगे करना।

४६८—वीसू कहता है—

(मारवाड़ की) भूमि (बालू से) भूरी है, वन झंखाड हैं, (वहाँ) चंपा उत्पन्न नहीं होता। मारवणी के गुणों की सुगंधि से ही सारा वनखंड महक उठा है।

४६९—मारवणी बत्तीसों सुलक्षणों की खानि है। (उसका) भाल चंद्रमा जैसा है, देह कुंकुम जैसी है और कमर सिंह की-सी है।

४७०—(उसके) अधर, कुच और दोनों नयन मधु की तरह मीठे हैं। हे ढोला, मारवणी ऐसी है मानों मधुर द्राक्षा हो।

४६७—रंझन (ग) भमर (घ) = भरम। न (ग) = म। दाखिसि (घ) राखै। (ग) = दाखिस। जिसड़ी (ग) = जेही। मारवी (ख. ग घ)। तिसड़ी (ग) = तेही।

४६८—हट्टन पट्टन वाणीयउ (च. ज. थ) = थळ भूरा, वन भंखरा। ज (ग) = सु। उथिन (च. ज. थ) नहीं सु। चंपो (ज) चांपौ (क. ख)। चंपौ (ग. घ) चाइ (घ) जाय (ज) = जाइ। मारू सदा सुवास छइ (च. ज. थ) = गुणे...मारवी। महिकी (घ)। सहि (ध) सब (ख)। वनराइ (ग)। अंगह तणंइ सुभाइ (च. थ) = महकी सहु वणराइ।

४६९—लखन (ग)। वत्रीसे (घ) बत्तीसे (क)। मरवी (ख. ग. ध)। निध (क. ग. घ)। जैहै (क. ख. घ) = सै। काटि (घ) = घाट। केवल (क. ख. ग. घ.) में।

४७०—अहर (ज)। दोय (ज)। नयणि (ज) जेह (ज) = जेहा। डीभू जेहै लंक (ज) = जाणे मीठी दक्ख। केवल (च. ज. थ) में।

अंगि अभोखण अच्छियउ, तन सोवन सगळाइ।
मारू अंबा-मउर जिम, कर लग्गइ कुँमळाइ ॥ ४७१ ॥

अहर अभोखण ढंकियउ, सो नयणे रँग लाय।
मारू पक्का अंब ज्यूँ, झरइ ज लग्गे वाय ॥ ४७२ ॥

जंघ सुपत्तळ, करि कुँअळ, झीणी लंब-प्रलंब।
ढोला, एही मारुई जाँणि क कणयर-कंब ॥ ४७३ ॥

उरि गयवर, नइ पग भमर, हालंती गय हंझ।
मारू पारेवाह ज्यूँ, अंखी रत्ता मंझ ॥ ४७४ ॥

४७१—(उसके) अंगों पर स्वच्छ आभूषण हैं और सारे अंग सुहावने हैं। मारवणी आम के मौर के समान हाथ छूते ही कुम्हला जाती है।

४७२—(उसका) अधर आभूषण से ढक रहा है, जो नेत्रों को रंजित कर रहा है। मारवणी (ऐसी सुकुमार है कि) वायु के लगते ही पके हुए आम के समान टपक पड़ती है।

४७३—(मारवणी की) पिँडली पतली है और हाथ कमल के समान हैं। वह अत्यंत सुकुमार और लंबी है। हे ढोला, मारवणी ऐसी है मानो कर्णिकार की छड़ी हो।

४७४—(उसका) उरस्थल हाथी के (कुंभस्थल) जैसा है, और पैर (पहने हुए स्वर्ण-विनिर्मित नुपूरों के कारण) भ्रमर (की भाँति मुखर) हैं। (वह) हंस की चाल से चलती है। मारवणी कबूतर की तरह आँखों में लालिमा (लाल डोरे) वाली है।

४७१—अंग (ज)। अभोखण (ज. थ)। अछीयो (ज)। तनु (ज)। ज्युं (ज)। लागै (ज)। मोरड्यइ (थ)=मउर जिम। सोवन्न गळाइ (थ)=सोवन सगलाइ। केवल (च. ज. थ) में।

४७२—नयण सुगंधा भाइ (न)=सो...लाय। जोवन में न समाय (न)=झरइ ज लग्गे वाइ। केवल (ट. न) में।

४७३—झंघ (ज)। कमल। (ज)। कणियरि (ज) कुसुम (थ)=कुँअळ। कंबु (च)। केवल (च. ज. थ) में।

४७४—वदन तसु ससिहर मुंह भमर (ट)=उरि...भर। उर गमर गेहज (ट)= हलंती गय हंझ। कंडि (ज)=नइ। भमर (ज)=पग भमर। गयंद (च)=गय हंझ। मंद (थ)=हंझ। पारेअहर (ट)=पारेवाह। जम (ट)। आंखी (ट)। राता (ट) रत्तां (ज)। मंडि (च)। आँखी रत्ता मंद (थ)। केवल (च. ज. ट. थ) में।

मारू मारइ पहियड़ा, जउ पहिरइ सोवन्न।
दंती, चूड़इ, मोतियाँ, त्रीयाँ हेक वरन्न॥ ४७५॥

[कसतूरी कड़ि केवड़ो मसकत जाय महक्क।
मारू दाड़म-फूल जिम दिन-दिन नवी डहक्क॥ ४७६॥

ढोला, सायधण माँणने, झीणी पाँसळियाँह।
कइ लाभे हर पूजियाँ, हेमाळे गळियाँह॥ ४७७॥

मारू सी देखी नहीं, अण मुख दोय नयणाँह।
थोड़ो सो भोळे पड़इ, दणयर उगहंताहँ॥ ४७८॥

४७५—मारवणी यदि सुवर्ण धारण कर लेती है, तो पथिकों को मोहित कर लेती है। (उसके) दाँत, चूड़ा और मोती तीनों एक रंग के (दिखाई देते) हैं।

४७६—(मारवणी ऐसी है मानो) कस्तूरी और केवड़े की कली की महक उड़ती हुई जा रही हो। वह दाड़िम के फूल की भाँति दिन-दिन नया विकास पाती है।

४७७—हे ढोला, उसकी पँसुलियाँ बड़ी सुकुमार हैं। रंग (प्रेम) करने के लिये वैसी प्रेयसी या तो शिव की आराधना करने से मिल सकती है या हिमालय में (तपस्या करते हुए) गलने से।

४७८—मारवणी जैसी स्त्री इस (मेरे) मुख ने (अपनी) दो आँखों से नहीं देखी। (हाँ), सूर्य का उदय होते समय उसका थोड़ा सा भ्रम होता है (थोड़ी सी झलक दिखाई देती है)।

४७५—मीरे (च)। पंथियां (थ) = पहियड़ा। पंथी मारसी (ट) = मारइ पहियड़ा जो (ट)। पेहरे (ट) परिहरो (ध) = पहिरै। सोवण (ट) चुडां दांतां (ट) = दंती तूड़ै दंताँ (ध)। हाथि ज्युं (ध) = मोतियां तीने (ट) त्रिहुवां (थ)। एक (च. ज)। वरण(ट)।

(ट) में इस दोहे की पंक्तियों का क्रम विपरीत है।

४७६—केवल (ट) में।

४७७—केवल (ट) में।

४७८—केवल (ट) में।

चंदवदण, मृगलोयणी, भीसुर ससदळ भाल।
नासिका दीप-सिखा जिसी, केळ-गरभसुकमाळ॥ ४७९॥

दंत जिसा दाड़म-कुळी, सीस फूल सिणगार।
काने कुंडळ भळहळइ, कंठ टँकावळ हार॥ ४८०॥

बाँहे सुंदरि बहरखा, चासू चुड़ स वचार।
मनुहरि कटि-थळ मेखळा, पग झांझर झणकार॥ ४८१॥

बाँहड़ियाँ रूँआळियाँ, धण बंके नयणेह।
जण-जण साथ म बोलही, मारू बहुत गुणेह॥ ४८२॥

मारू-देस उपन्नियाँ, नड़ जिम नीसरियाँह।
साइ धण, ढोला, एहवी, सरि जिम पध्धरियाँह॥ ४८३॥

४७९—(वह) चंद्रमुखी और मृगलोचनी है। (उसका) ललाट चंद्रमा के समान दीप्तिमान है। (उसकी) नासिका दीप की लौ जैसी है (और वह) केले के पेड़ के भीतरी भाग जैसी सुकोमल है।

४८०-(उसके) दाँत दाड़िम के दानों जैसे हैं, (उसके) शीश पर फूलों का शृंगार है, कानों में कुंडल झिलमिला रहे हैं और गले में बहुमूल्य हार है।

४८१—सुंदरी की बाँहों में बोरखा नामक आभूषण है और चुस्त चूड़ा पहना हुआ है, मनोहर कटि-प्रदेश में करधनी पड़ी है और पैरों में झाँझर की झंकार हो रही है।

४८२—उसकी बाहें रूपमयी हैं। वह प्यारी बाँके नेत्रोंवाली है। वह प्रत्येक के साथ नहीं बोलती। मारवणी बहुत गुणोंवाली है।

४८३—मारू देश में उत्पन्न हुई स्त्रियाँ ऐसी हैं मानों झरने निकल पड़े हैं। हे ढोला, वह प्रेयसी ऐसी है जैसे कोई सीधा बाण हो।

४७९—केवल (झ) में।

४८०—केवल (झ) में।

४८१—केवल (झ) में।

४८२—बाहुडीयां (घ)। रूवालीयां (ग) रूयाडिया (थ) रूपालीयां (च)। धन (ग)। चंगी (क. ख. ग. घ)=वंके। नयणांह (ज. थ) नवणेहि (च)। सथ (घ)। म (ख)=न ; गुणेहि (च) गुणांह (ज)। बहु गुणियांह (थ)।

४८३—ज्यूं (घ)=जिम। घन ख)। ज्यूं (घ)। केवल (ख. ग. घ) में।

मारू-देस उपन्नियाँ, सर ज्यउँ पध्धरियाँह।
कड़ुआ बोल न जाणही, मीठा बोलणियाँह॥ ४८४॥

देस सुहावउ, जळ सजळ, मीठा-बोल लोइ।
मारू काँमण भुइँ दखिण, जइ हरि दियइ त होइ॥ ४८५॥

गह छंडइ गहिलउ हुअउ, पूछइ वळि पूछंत।
मारू-तणइ संदेसड़इ, ढोलउ नहु धापंत॥ ४८६॥

तेता मारू माँहि गुण, जेता तारा अभ्भ।
उचळचित्ता साजणाँ, कहि क्यउँ दाखउँ सभ्भ॥ ४८७॥

४८४—मारू देश में जन्मी हुई (कामिनियाँ) बाण की तरह सीधी (लंबी) होती हैं। कटु वचन वे जानती ही नहीं, वे मीठी बोलने वाली होती हैं।

४८५—देश सुहावना है, जल स्वास्थ्यप्रद है, लोग मधुर भाषी हैं। (ऐसे) मारू देश की कामिनी दक्षिण देश में यदि भगवान् ही दें तो मिल सकती है।

४८६—घर छोड़ कर पागल-सा बना हुआ, बार-बार पूछ कर फिर पूछता है; मारवणी के समाचारों से ढोला तृप्त नहीं होता।

४८७—वीसू कहता है—

मारवाणी में उतने गुण हैं जितने आकाश में तारे हैं, हे चलचित्तवाले प्रेमी कहो, सबका वर्णन कैसे करूँ?

४८४—सरि ज्यों (च)। पधरियां (ज)। कड़िवा (ज)। बोलहीं (ज. थ)= जाणही। बोल त्रियांह (थ)=बोलणियाँह। (केवल (च. ज. थ) में।

४८५—निवाणुं (च. थ) निवांणी (ज)=सुहावउ। मुइं (क. ख. ग. घ)=जळ। सयळ (क)। गुय सयळ (त)=जळ सजळ। मीठा-बोली (क. ख. ग. थ) लोय (ज)। कांमिन (ग) कांमिण (क. घ) कांमणि (च)। ने मुइ (ग)=मुइँ। भुय (त)। दिक्षण (ज) सजळ (ग)=दखिण। दक्षिणवर (घ)=दक्षण घर (च)=भुइँ दखिण। दई (ख)=जइ हरि। हर (घ)। जो हरि दियौ तो होय। (ज)।

४८६—गहि (घ)। गहलो (ज)। हुवा (ज) हुयौ (घ)। पूछी (ज)। वळ (ग. ज) पूछंति (घ)। चारण (ज)=मारू। तणा (ज)। संदेसड़ा (ज)। ढोले (घ)। नहि (ख) नह (ग. घ) धापंति (घ)। केवल (क. ख. ग. घ. ज) में।

४८७—जेता (क. ख. ग. घ) एता (न)=तेता। मझ्झि (न)। गुन (ग) तेता (क. ख. ग. घ)=जेता। उचल (घ)। चित्तौ (क. ख. घ)। साहिबौ (क. ख. थ. झ)।

एकणि जीभ किसा कहूँ, मारू-रूप अपार।
जे हरि दियइ त पाँमियइ उदियइ इण संसार ॥ ४८८ ॥
वीस कहिया दूहड़ा, मारू-रूप विचार।
ऊतर मुहर पसाउ करि, दीन्ही साल्हकुमार ॥ ४८९ ॥
वीसू, सुणि, ढोलउ कहइ, हिव खड़ि पूगळ जात।
देह' वधाई दिन थकइ म्हे आएस्याँ रात ॥ ४९० ॥

(ढोला की यात्रा और चिंता)

दीह गयउ डर डंबरे, नीले नीझरणेहि।
काळी-जाया करहला, बोल्यउ किसे गुणेहि ॥ ४९१ ॥

४८८—मारवाणी के अपार रूप का वर्णन एक जीभ से कैसे करूँ। इस संसार में, भाग्योदय होने पर, यदि भगवान् ही दे तो (ऐसी स्त्री) मिल सकती है।

४८९—मारू के रूप को विचारकर वीसू ने ये दोहे कहे। उत्तर में साल्ह-कुमार ने प्रसन्न होकर (उसे) मोहरों का पुरस्कार दिया।

४९०—ढोला बोला—हे वीसू, सुनो, अब (ऊँट को) चलाकर पूगल जाओ। तुम जाकर दिन रहते बधाई दो। हम रात को आवेंगे।

४९१—(वीसू के चले जाने पर तीसरे पहर ढोला चला। चलते-चलते संध्या हो गई और पूगल अभी तक नहीं आया। ढोला ऊँट से नाराज होकर कहता है)—

ऊठिया (न) सजनां (ज)=सज्जणाँ। कौ (ज)=कहि। किम (ग)। कुण (न) क्या (ख. झ। क्युं (क. घ)=क्यउँ। दाखां (ज) दाखूं (क. ख. ग. झ)। तुझ (क. ख. ज)। शुभ (झ) सभ (ग. घ)।

४८८—एकण (ग)। तौ (क. ख)=त। पामिजै (ग)। उदयैं (घ)। केवल (क. ख. ग. घ) में।

४८९—अपार (घ)=विचार। महुरां (ख. ग) मुहरां (क) मौज कीयां=पसाव करि (क) लाख पसाव (घ)=पसाउ। कीयै (घ)=करि दीन्हो (ग) दीन्हा (घ)। कुंवार (ग) कुवार (घ)।

केवल (क. ख. ग. घ) में।

४९०—सुण (घ) सुनि (ग)। खड (घ)। जाह (घ)। मे (ग)=म्हे। आविस्यां (ग) आएसां (घ)। राति (ग. घ)।

केवल (क. ख. ग. घ) में।

४९१—गयौ (क. ख. ग. घ. ज)। डंवरि (च) डूंगरे (ध) डेबरे (घ)=डंबरे।

सड़-सड़ वाहि म कंबडी, रांगाँ देह म चूरि।
बिहुँ दीपाँ बिचि मारुई, मो-थी केती दूरि॥ ४९२॥
करहा, तो बेसासड़उ, मो विण-सारथा काज।
अंतरि जउ वासउ हुवउ, मारू न मिळइ आज॥ ४९३॥
ढोला, वाहि म कंबड़ी, दसिए एकणि पूरि।
जे साजण वीहंगडे, वीहंगड़उ न दूरि॥ ४९४॥

दिन बीत गया। (आकाश में) अंबर-डंबर छा गए। झरने नीलायमान हो गए। अरे काली ऊँटनी से उत्पन्न हुए ऊँट, तू किस बूते पर बोला था (कि मैं पहुँचा दूँगा)?

४९२—ऊँट बोला—

सड़-सड़ छड़ी मत मारो। रानों से (मेरी) देह को चूर-चूर मत करो। दोनों द्वीपों के बीच में मारवणी मुझसे कितनी दूर (हो सकती) है?

४९३—ढोला कहता है—

हे ऊँट, तुम्हारा भरोसा है। मेरा काम अभी पूरा नहीं हुआ। जो बीच में ठहरना पड़ा तो मारवणी आज नहीं मिल सकेगी।

४९४—ऊँट कहता है—

हे ढोला, दस-दस छड़ियाँ एक ही साथ मत मारो। यदि (तुम्हारी) प्रेयसी पक्षी हो तो वह पक्षी भी (मेरे लिये) दूर नहीं है।

नोट—इस दूहे का अर्थ अस्पष्ट है।

काळे (थ) नीचे (च) काळी (क. ज. घ) = नीलें। नीझरणेह (क. ख. ग. घ)। काळे (ग)। काधा (च) = जाया। करह हा (घ)। बाल्यौ (ख)। गुणेह (ख)।

४९२—पासे राग (च. ज)—रांगाँ देह। पास (ग) = देह। चूर (क. ग. घ)। बिहूँ (ख)। दियां (ख) दीभां (च) दांतां (ज) दीहां (थ) = दीपां। बिच (ख) मैं (क. ग) मांहि (घ) = बिचि। मारूवी (क) मारवी (ख. ग. घ) मेता (ख) मीथी (घ)। दूर (क)।

४९३—वेसासडै (ज. थ.)। बेगसड्या (थ)। विणढा सवि (ज) = विणसारथा। अंतरि (ज)। यो (ज) = जौ। हुवो (ज)।

केवल (च. ज) में।

४९४—न (क. झ)। दस-दस (क. झ) दिसदस (ज) = दसिए। एकण धूर (क. झ) दसणे दिसि किणि सूरि (थ)। साजन (ज)। वहा गडो (ज) वेहग्गडै (थ) = वीहंगडे वेहागडो (ज) वेहंग्गडो (थ)।

केवल (च. ज. थ) में। (क. झ) में एक दूहा है जो इस दूहे की प्रथम पंक्ति तथा आगे दूहा संख्या ४९७ की दूसरी पंक्ति लेकर बनाया गया है।

विहाँगड़े ज उदाध्धयाँ, सर ज्यउँ, पंडुरियाँह।
कालर काभा कमळ ज्यउँ, ढळि-ढळि ढेर थियाह ॥ ४९५ ॥

करहा काछी काळिया, भुइँ भारी, घर दूर।
हथड़ा काँइ न खंचिया राहु गिलंतइ सूर ॥ ४९६ ॥

करहा, वामन रूप करि, चिहुँ चलणे पग पूरि।
तूँ थाकउ, हूँ ऊसनउ, भुइं भारी, घर दूरि ॥ ४९७ ॥

४९५—समुद्रों पर जिस प्रकार पक्षी (उड़ते ही जाते हैं, जब तक वे हार नहीं जाते), सरोवरों में जिस प्रकार पंडुख (तैरते ही जाते हैं, जब तक वे हार नहीं जाते), और कीचड़ में फँसे हुए कमल जिस प्रकार मुरझा-मुरझाकर ढेर हो जाते हैं, उसी प्रकार मैं भी चलता ही जाऊँगा, जब तक कि हार न जाऊँ या ढेर न हो जाऊँ।

नोट—इस दूहे का अर्थ भी अस्पष्ट है।

४९६—हे कच्छ देश के काले ऊँट, फासला बहुत है और घर दूर है। राहु ने सूर्य को ग्रास करते समय हाथ क्यों नहीं खींच लिया (ताकि सूर्य अस्त नहीं होता)।

४९७—हे ऊँट, अब वामन का सा रूप धारण करके अपने चारों पैरों से पथ को नाप ले। तू थक गया है और मैं भी खिन्न हो गया हूँ। फासला बहुत है और घर दूर है।

४९५—विहागडो (ज)। वेहग्गडे जु दधियाँ (थ)। जे (ज)=ज। दधीयाँ (ज)। परिज्यो (ज)=सर ज्यउँ। पडिरियांह (च)। कायर (च)। खांघा (ज)—काभा। कळवर काभी कमळड्यो (थ)=कालर .... ज्यउँ। ढरि ढरि (ज)।

विहगडो जो दखीओ परजुं पंडरिआँह,

काकर कमळ ज काळजो ढइ ढइ ढार थयांह (ध)।

केवल (च. ज थ. द. ध) में।

४९६—मुद्र (घ)=भुइ। घरि (घ)। दूरि (ख)। कोंई (ग)=काँइ। गहंतै (ख. ग)। गिलतै (घ)=गिलंतइ।

केवल (क. ख. ग. घ) में।

४९७—पंथ (ज)=पग। पंथ दूरि (थ)=पग पूरि। ऊंमाहियो (ज)=ऊसनऊ। हुं थाकै तुं उमांहीयै (क) हुँ थाँकौ तुभ्क महीयौ (भ्क)। धण चंगी पंथ दूर (क) धण चंगी घर दूर (भ्क)। पंथ (क. ज)=घर।

नोट—(क. भ्क) में पहली पंक्ति दूहा ४९४ की भाँति हैं।

करहा, लंबी वीख भरि, पवनाँ ज्यूँ वहि जाह।
झंभ वळंतइ दीवळइ, धण जागंती जाँह ॥ ४९८ ॥

करहा काछी काळिया, चाली गइ किरणाँह।
संझ वळंतइ दीवळइ, धण जागंती जाँह ॥ ४९९ ॥

सकती बाँधे वीटुळी, ढीली मेल्हे लज्ज।
सरढी पेट न टियउ, मूँध न मेळउँ अज्ज ॥ ५०० ॥

४९८—हे ऊँट, लंबी-लंबी डगें भर। तू पवन की तरह उड़ जा, जिससे (संध्या को) दीपक जलते-जलते, और प्रिया के जागते हुए ही, पहुँच जायँ।

४९९—हे कच्छ के काले ऊँट, (पृथ्वी से सूर्य की) किरणें चली गईं। (किसी प्रकार) संध्या के दीपक जलते-जलते, प्रिया के जागते हुए ही, पहुँच जायँ (ऐसा उपाय कर)।

५००—ऊँट कहता है—

पगड़ी कसकर बाँध लो, लगाम को ढीली छोड़ दो। मैं ऊँटनी के पेट में नहीं लेटा यदि आज उस मुग्धा को तुम्हें न मिला दूँ।

४९८—काछी काळीयाँ (ज)=लंबी वीख भरि। जउं (च)=ज्यूँ। जाय (ज)। थंभ (ज)=झंभ। आवंतै। (ज थ)=वळंतइ।

केवल (च. ज. थ) में।

४९९—कछा (ख) कछी (ग)। काळीयां (क)। लंब कराडियां (थ)=काछी काळिया। सांझ (क. ग. घ) थांभ (थ)। हवंतै (न)=वळंतइ। दीवडै (ख)। जागती लहांइ (थ)।

५००—सगती (च) काठी (ख. ग) सकसी (क. घ)=सकती। बांधे (क) बांधैं (ख. ग) बांधी (च) बंधै (ज)। पाघडी (ख. ग) :वीटळी (क. घ)=वीटुळी। मूके (च) मुंकै (ज)=मेल्हे। लाज (क. ख. घ. च) राग (ग)=लज्ज। सरली (च)= सरढी। पेटि (च)। लोटीयो (घ. ज) पेटियइ (च)=लेटियउ। मूध (क) जे मुंध (ख)। आज (क. ख. ग. घ. च)

(मारवणी का स्वप्न)

जिण दिन ढोलउ आवियउ, तिण अगलूणी रात।
मारू सुहिणऊ लहि कह्यउ, सखियाँ सूँ परभात ॥ ५०१ ॥

सुपनइ प्रीतम मुझ मिळया, हूँ लागी गळि रोइ।
डरपत पलक न खोलही, मतिहि विछोहउ होइ ॥ ५०२ ॥

सुपनइ प्रीतम मुझ मिळया, हूँ गळि लग्गी धाइ।
डरपत पलक न छोडही, मति सुपनउ हुइ जाइ ॥ ५०३ ॥

आज ज सूती निसह भरि, प्रीय जगाई आइ।
विरह-भुयंगम की डसी, लबथबती गळ लाइ ॥ ५०४ ॥

५०१—जिस दिन ढोला (पूगल) आया उसकी पहली रात को मारवणी ने स्वप्न देखकर प्रातःकाल सखियों से कहा।

५०२—हे सखियो, स्वप्न में प्रियतम मुझसे मिले। मैं रोती हुई (उनके) गले लगी। डरती हुई मैंने पलकें नहीं खोलीं कि कहीं (उनसे) विछोह न हो जावे।

५०३—स्वप्न में मुझे प्रियतम मिले। मैं दौड़कर गले लग गई। मैंने (इस डर से) डरते हुए पलकें नहीं खोलीं कि कहीं यह (सचमुच ही) स्वप्न न हो जाय।

५०४—आज जो रात भर सोई हुई थी (तो ऐसा जान पड़ा) मानो प्रियतम ने आकर जगाया। (प्रियतम को देखते ही) विरह रूप साँप से डसी हुई मैंने डगमगाकर (उन्हें) गले लगा लिया।

५०१—जिन (ग)। आविसी (घ) आविस्ययैं (क)। ताह (घ)=तिण। राति (ग. घ)। सुवणौ (ग) सुपनौ (घ)।

केवल (क. ख. ग. घ) में।

५०२—सुपनौ (घ)। मुझि (घ)। गळ गली (ग)=लागी गळि। डरती (ग)। सुपनै (ग)=हि विछोहउ।

केवल (क. ख. ग. घ) में।

५०३—सुपनौ (घ)। मुझि (घ)। मिलौ (घ)। गळ लागी (ख)। खोलही (ग. घ)=छोडही। मत (ग)। जाय (घ)।

केवल (क. ख. ग. घ) में।

५०४—हुं (ग) स (घ)=ज। निस (ग. घ)। भर (ग)। जाणि (घ)। जगाई

सोरठा

मोती-जड़ी ज हाथि, सुरह - सुगंधी वाटली।
सूती माँझिम राति, जाणूँ ढोलूँ जागवी ॥ ५०५ ॥

दूहा

घर नीगुल दीवउ सजळ, छाजइ पुणग न माइ।
मारू सूती नींद्र भरि, साल्ह जगाई आइ ॥ ५०६ ॥

सोरठा

सुरह सुगंधी वास, मोती काने झुळकते।
सूती मंदिर खास, जाणूँ ढोलइ जागवी ॥ ५०७ ॥

५०५—(ढोला का स्वागत करने के लिये) मोतियों से जड़ा हुआ और सुरभित द्रव्य से भरा हुआ पात्र हाथ में लिए हुए मैं मध्य रात्रि के समय सोई थी उस समय मुझे जान पड़ा मानो ढोला ने मुझे (आकर) जगाया।

५०६—महल में बिना गुल का सुंदर दीपक (जल रहा) था। (उसकी लौ) सर्प के फण के आकारवाले छज्जे में नहीं समाती थी। (ऐसे समय) मारू भर नींद सोई हुई थी, (उस समय मानो) साल्हकुमार ने आकर जगाया।

५०७—मेरे वस्त्र सौरभ से सुगंधित थे, कानों में मोती झलमला रहे

(घ)। भुयंग (घ)। गळि (घ)। थाइ (क)=लाइ। लुबधवती विळळाइ (झ)= लबथबती गळ लाइ।

केवल (क. ख. ग. घ. झ) में।

५०५—जडीया (ग) जडीए (च. ज)=जड़ी ज। हत्थड़े (च. ज) हाथ (ख. घ.)। सुन्है (क. ख) सुरै (ग. घ) सोंहै (झ)=सुरह टाटळी (ग) वटळी (घ) वाट्टि (च) वात (ज)। जिण जाणुं (ख)=जाणूँ। साल्ह जगाईया (क. ख. ग. घ. झ) ढौले (ज)।

यह सोरठा (ग. ज) में दूहा के रूप में है।

५०६—घरि (ज)। नींगळ (क. ख. ग. घ)। दीपक (क. ख. घ)) दीवौ (ग) दीवळो (ज)। बळइ (च. ज. थ)=सजळ। आछी (च. ज. थ.)=छाजइ। पुणिग (घ) ति (क. घ) त्रि (च)=न। माय (ग)। विमाय (ज)। सूती सज्जण संभरया (क. ख. ग. घ)=मारू...भरि। जाणुं ढोलइ। (च. ज)=साल्ह। लीधी जगाइ (थ)= जगाई आइ। आय (ग. ज)।

५०७—सुरह सुगंधी वाट जाणे किर मोती जड़या (थ)।

दूहा

राति ज बादळ सघण घण, बीज-चमंकड होइ।
इण समईयइ, हे सखी, साल्ह जगाई मोइ॥ ५०८॥

[हुंता सज्जण - हीयड़े सयणाँ - हंदा हत्त।
जउ सोहणो साचइ होअइ, सोहणो बड़ी वसत्त॥ ५०९॥

सोहण याई फर गया. मइँ सर भरिया रोइ।
आव सोहागण नींदड़ी वळि प्रिय देखूँ सोइ॥ ५१०॥

जद जागूँ तद एकली, जब सोऊँ तब बेल।
सोहणा, थे मने छेमरी, वीजी भीजी हेल॥ ५११॥

सुहिणा, हूँ तइ दाहवी, तोनइ दहियउ अग्गि।
सव जोयण साजण वसइ, सूती थी गलि लग्गि॥ ५१२॥

थे। खासल महल में सोती हुई (ऐसी मुझको) मानो साल्हकुमार ने आकर जगाया।

५०८—रात को बहुत से घने बादल छाए हुए थे। बिजली चमक रही थी। ऐसे समय में, हे सखी, साल्हकुमार ने मुझे जगाया।

५०९—(इस प्रिया) के हृदय पर प्रियतम के हाथ थे। यदि (यह) सपना सच्चा हो तो सपना बड़ी वस्तु है।

५१०—सपना आकर चला गया, मैंने रो-रोकर सरोवर भर दिए। हे सौभाग्यवती नींद, आ, (जिससे) फिर उसी प्रियतम को देखूँ।

५११—जब जागती हूँ तो अकेली रह जाती हूँ और जब सोती हूँ तो दो हो जाते हैं। हे सपने, नए-नए खेल करके तूने मुझे ठग लिया।

५१२—हे स्वप्न, तूने मुझे जलाया, तुझे अग्नि जलावे। (तूने मुझे ऐसा धोखा दिया कि जो) प्रियतम (यहाँ से) सौ योजनों पर बसते हैं, मैं उन्हीं प्रियतम के गले लगकर सोई हुई थी।

५०८—सघन घन (ग) घण घणा (घ)। समयै (क)। मोहि (क. ख. घ)। केघल (क. ख. ग. घ) में।

५१२—तो (ज) = तइ। दूहवी (थ)। दहिज्यो (ज)। अग्गि (च)। सौ (ज) गळ (च) लग्गि (च)।

जिम सुपनंतर पामियउ, तिम परतख पामेसि।
सज्जन मोतीहार ज्यूँ, कंठा-ग्रहण करेसि ॥ ५१३ ॥

सुहिणा, तोहि मराविसूँ, हियइ दिराऊँ छेक।
जद सोऊँ तद होइ जण, जद जागूँ तद हेक ॥ ५१४ ॥

सहिए फिरि समझावियउ, सुहिणइ दोस न कोइ।
सउ जोयण साहिब वसइ, आँण मिळावइ तोइ ॥ ५१५ ॥

आज फरूकइ अंखियाँ, नाभि, भुजा, अहराँह।
सही ज घोड़ा सज्जणाँ साम्हाँ किया घराँह ॥ ५१६ ॥

५१३—जैसे स्वप्न में पाया वैसे यदि प्रत्यक्ष पाऊँ तो प्रियतम को मोतियों के हार की भाँति कंठ में धारण करूँ।

५१४—अरे सुपने, तुझे मैं मराऊँगी, तेरे हृदय में छेद करवाऊँगी। जब सोई होती हूँ तब तो (हम) दो होते हैं (और जब) जागती हूँ तब एक ही रह जाती हूँ।

५१५—फिर सखियों ने समझाया कि स्वप्न को कोई दोष नहीं। जो प्रियतम सौ योजन दूर रहते हैं (वह) उन्हें भी लाकर तुमसे मिला देता है।

५१६—मारवणी फिर कहती है—

आज आँखें, नाभि, भुजाएँ और अधर फड़क रहे हैं। हे सखी, अवश्य ही प्रियतम ने (मेरे) घर की ओर घोड़े किए हैं।

५१३—जौ (ज)=जिम। सपनंउतर (च)। जदि (ज)=तिम। परतखिहूँ (थ) प्रतच्च (च)। मिलेस (ज)=पामेसि। ग्रीव (ज)=सज्जन। करेस (ज)।

५१४—सुपना (क. ख. ग)। मराविस्युं (ग) दिरावुं (ग. घ)। जब (ग) जदि (घ)। तदि (ग. घ) जब (ग)। जणा (घ)। जदि (घ)=तदि। एक (क. ख. ग)
केवल (क. ख. ग. घ) में।

५१५—सखियाँ (ग)। समझाइयौ (ग)। जोइण (ग)। तोहि (ग)। सो किम आवै अज (क)=आँण...तोइ।
केवल (क. ख. ग. घ) में।

५१६—फुरकै (क. ख. घ)। नाभ (घ)। अहिरांह (ग)। साजणां (ख. घ) सजनां (ग)। साम्ही (क) सामा (ग)।
केवल (क. ख. ग. घ) में

अहर फुरक्कइ, तन फुरइ, तन फुर नयँण फुरंत।
नाभी - मंडळ सहु फुरइ, साँझइ नाह मिळंत ॥ ५१७ ॥

आज उमाहउ मो घणउ, ना जाणूँ किव केण।
पुरुख परायउ वीर वड, अहर फुरक्कइ केण ॥ ५१८ ॥

सहिए, साहिब आविस्यइ, मो मन हुई सुजाँण।
आगम - वाधाऊ हुया अंग-तणा अहिनाँण ॥ ५१९ ॥

आँखि निमाँणी क्या करइ, कउवा लवइ निलज्ज।
सउ जोइन साहिब बसइ, सो किम आवइ अज्ज ॥ ५२० ॥

५१७—अधर फड़कते हैं, शरीर फड़कता है, और शरीर फड़ककर नयन फड़कते हैं; नाभिमंडल (इत्यादि) सभी (अंग) फड़कते हैं। (निश्चय ही, आज) साँझ को नाथ मिलेंगे।

५१८—आज मुझे बड़ा उल्लास है, नहीं जानती कि क्यों और किस कारण? पर-पुरुष तो (मेरे लिये) बड़े भाई के समान है, फिर अधर किस कारण फड़कता है?

५१९—हे सखि, प्रियतम आवेंगे, (ऐसी) मेरे मन में प्रेरणा हुई है। मेरे अंगों के चिह्न (उनके आगमन की) पहले से बधाई देनेवाले हो रहे हैं।

५२०—फड़कती हुई आँख क्या करेंगी और निर्लज्ज कौवा बोलता है (उससे भी क्या?)। प्रियतम तो सौ योजन (की दूरी पर) बसते हैं, वे आज कैसे आ सकते हैं?

५१७—अहिर (ग)। नयन (ग)। फिरै (क. ख. घ)। संझ्या (ग)।
केवल (क. ख. ग. घ) में।

५१८—क्युं (क. ख) किम (ग) = किव। वीरवर (ख. घ)। आंखि (ग) = अहर।

५१९—सखीए (ग)। आविसै (घ) आवसी (ग)। हुआ (ख. ग)।
केवल (क. ख. ग. घ) में।

५२०—आंख (घ)। फिरै (घ) = करै। कौवा (घ)। लिवै (घ)। जोयण (घ)। आज (घ)।
केवल (ग. घ) में।

(ढोला का पूगल पहुँचना)

काली-कंठळि बीजुळी नीची खिवइ निहल्ल ।
उर भेदंती सज्जणां, ऊचेड़ंती सल्ल ॥ ५२१ ॥
सांझी बेळा सामहलि कंठळि थई अगासि ।
ढोलइ करह कँबाइयउ, आयउ पूगळ पासि ॥ ५२२ ॥
ऊँडा पाणी कोहरइ, थळ चढीजइ निट्ट ।
मारवणी - कइ कारणइ देस अदीठा दिट्ठ ॥ ५२३ ॥
ऊँडा पाणा कोहरे दीसइ तारा जेम ।
ऊसारंता थाकिस्यइ, कहउ, काढिष्यइ केम ॥ ५२४ ॥

५२१—काली कंठुली (-वाले मेघों) में बिजली बहुत ही नीचे चमक रही है। प्रेमियों के हृदयों का भेदन करती हुई वह (विरह-रूपी) शल्य को उखेलती है।

५२२—संध्या समय आकाश में सामने बादलों की कंठुली (-वाली घटा) उमड़ आई। ढोला ने ऊँट को छड़ी से मारा और (उसे तेजी से हाँककर) पूगल के पास आ पहुँचा।

५२३—ढोला कहता है—

पानी बहुत गहरा कुओं में मिलता है और थलों (अर्थात् कँकरीले ऊचे स्थानों) पर बड़ी कठिनाई से चढ़ा जाता है। मारवणी के कारण (ऐसे) अदृष्टपूर्व देश देखे।

५२४—वहाँ किसी पानी निकालनेवाले को देखकर ढोला कहता है—

कुओं में पानी (इतना) गहरा है कि (ऊपर से) तारे की तरह (नीचे चमकता हुआ) दिखाई देता है। उसको खींचते हुए (तुम) थक जाओगे; कहो, कैसे निकालोगे ?

५२१—कांठळि (ज. थ)। सजनां (ज)। उंचायदी = ऊचेड़ंती (ज)।
केवल (च. ज. थ) में।

५२२—सांमळी (ज) सामुही (थ) = सामहळि। अकासि (ज)। खिवइ जु अधिक अगासि (क)। ढोलो (ज)। कंघावियो (ज)।

५२३—कोहरां (ड़)। नीठ (ड़)। तुझ (ड़) = कइ। कारणै (ड़)। दीठ (ड़)।
केवल (ज. ड़) में।

५२४—कोहरा (ड़)। तारा जिम मिळकंत (ड़) = दीसइ तारा जेम। ऊसारतां (ड़)। थाकीस नहीं (ड़) = थाकिस्यै। काढेसी (ड़)। कंथ (ड़) = केम।
केवल (ज. ड़) में।

तुम्ह जावउ घर आपणइ, न्हाँरी केही तात।
दीहे-दीह उसारित्याँ, भरिस्याँ माँझिम रात॥ ५२५॥

एण समईयइ आवियउ वीसू तिणही वार।
पिंगळ-राजानूँ कहइ, आयउ साल्हकुमार॥ ५२६॥

राजा-राँणी हरखिया, हरख्यउ नगर अपार।
साल्हकुँवर पध्यारिउ, हरखी मारू नार॥ ५२७॥

(मारवणी का हर्ष)

साहिब आया, हे सखी, कज्जा सहु सरियाँह।
पूनिम-केरे चंद ज्यूँ दिसि च्यारे फळियाँह॥ ५२८॥

५२५—पानी निकालनेवाला उत्तर देता है—

तुम अपने घर जाओ, (तुम्हें) हमारी क्या चिंता पड़ी है? दिन भर हम पानी खींचेंगे और मध्यरात्रि में (कोठे) भरेंगे।

५२६—इसी समय, उस काल में वीसू (पूगल) आ पहुँचा। उसने पिंगल राजा से कहा कि साल्हकुमार आ गया है।

५२७—राजा और रानी प्रसन्न हुए। सब नगर बहुत आनंदित हुआ। साल्हकुमार आया (यह जानकर) नारी मारवणी हर्षित हुई।

५२८—मारवणी ने सखी से कहा—

हे सखी, स्वामी आए, सब कार्य सफल हुए। पूर्णिमा के चंद्र की तरह (ढोलारूपी चंद्र के उदय होने से) चारों दिशाएँ प्रफुल्लित हो गई हैं।

५२५—थे? (झ)=तुम्ह। किसी पराई (झ)=म्हांरी केही। दीहाडो अवसर बोलसां (झ)=दीहे दीह उसारिस्यां। मांजिम (झ)।

५२६—इलौ (झ)। काळ (ख)=वार। कह्यौ (घ)।
केवल (क. ख. ग. घ. झ) में।

५२७—सहु परिवार (झ)=नगर अपार।
केवल (क. ख. ग. घ. झ) में।

५२८—साजण (थ) सजण (ग. न) सजन (ज)=साहिब। मिळिया धृति हुई (थ. ज. न)=आया हे सखी। कजा (ख. घ)। सहि (ज. ग. घ)। पूनिम चंद मयंक (क. ख. ग. घ. थ) पूनिम रात मयंक (न)=पूनिम...चंद। ज्यौं (ख) जिम (ग) ज्युं (क. ज)। दिस (ग. ज)। वसीयांह (थ)=फळियांह।

सखिए; साहिब आविया, जाँहकी हूँती चाइ।
हियड़उ हेमाँगिर भयउ, तन-पंजरे न माइ॥ ५२९॥

संपहुता सज्जण मिल्या, हूँता मुझ हीयाह।
आजूणइँ दिन ऊपरइ बीजा वळि कीयाह॥ ५३०॥

आजूणउ धन दीहड़उ, साहिब-कउ मुख दिट्ठ।
माथा भार उळाथियउ, आँख्याँ अमी पयट्ठ॥ ५३१॥

सखिए, साहिब आविया, मन चाहंदी मोइ।
वाड़ी हुआ वधाँमणा, सज्जण मिळिया सोइ॥ ५३२॥

५२९—हे सखी, (वे) स्वामी आ गए जिनकी लगन थी। मेरा हृदय (प्रफुल्लित होकर) हिमालय (जैसा विशाल) हो गया है और तनरूपी पंजर में नहीं समाता।

५३०—जो मेरे हृदय में थे वे प्रियतम आ पहुँचे और मिले। (मैंने) आज के (शुभ) दिन पर दूसरे (सब दिन) बलिहार कर दिए।

५३१—आज का दिन धन्य है कि स्वामी का मुख देखा। (मेरे) सिर का भार उतर गया और आँखों में अमृत पैठ गया।

५३२—हे सखी, स्वामी आ गए, मेरी मनचाही हुई। वही प्रियतम आ मिले और घर में बधावे हुए।

५२९—सजन मिलिया हे सखी (ङ) सजण आया हे सखी (ग. घ)=सखिए... आविया। ज्यांरी (ङ)। हुंदी (क) हुती (ग) हुंती (ङ)। चाहि (ग. घ. ङ) चाह (ख)। हीयौ (ख. घ)। हेम झलकीयो (ङ) हेमागर हुवौ (ग)। मन (झ)=तन। माय (क)। बुझी वळंती लाय (ङ) बूझी वलंती भाइ (घ)=तन...माइ।
केवल (क. ख. ग. घ. ङ. झ) में

५३०—संपति हूंता सज्जणां (झ)। साजण (क)। आजून (ग)।
केवल (क. ख. ग. घ. झ. त) में।

५३१—पईठ (ग)। हिव (घ)=भार।

५३२—सखीयैं (ग)। चाहंती (क. ग. त)। मोही (क. ख. त)। जोइ (ग)= मोइ। वाटां (ग) वाटी (त)। हूई (ग) हुया (क) हूआ (त)। वधाइयां (ग)। सजण (क)। आया (ग)=मिळिया।
केवल (क. ख. ग. घ. झ. त) में।

सखी, सु सज्जण आविया, हुंता मुझ्झ हियाह।
सूका था सू पाल्हव्या, पाल्हविया फळियाह॥ ५३३॥
सज्जण मिळिया सज्जणाँ, तन मन नयण ठरंत।
अणपीयइ पाणग्ग ज्यूँ नयणे छाक चचंत॥ ५३४॥

(सखियों द्वारा मारवणी का शृंगार और ढोला)
के पास ले जाया जाना)

साखिए ऊगट माँजिणउ खिजमति करइ अनंत।
मारू-तन मंडप रच्यउ, मिलण सुहावा कंत॥ ५३५॥
मारवणी सिणगार करि मंदिर कूँ मल्हपंति।
सखी सुरंगी साथ करि गयगयणी गय गंति॥ ॥ ५३६॥

५३३—हे सखि, वे प्रियतम आ गए जो मेरे हृदय में थे। जो मनोरथ सूखे थे वे पल्लवित हो गए और पल्लवित होकर फल गए।

५३४—प्रियतम प्रेयसी से आ मिले। (मेरे) तन-मन और नयन शीतल हो रहे हैं। (मद्य का) प्याला पिए बिना ही मेरे नयनों में नशा-सा छा रहा है।

५३५—सखियाँ उबटन, स्नान आदि अनेक प्रकार से मारवणी की सेवा कर रही हैं। उन्होंने सुहावने कंत से मिलने के लिये मारवणी के तनरूपी मंडप को सजाया।

५३६—सुंदर गजगामिनी मारवणी शृंगार करके रँगीली सखियों को साथ लेकर गज की चाल से महल को जाती है।

५३३—हुंता (ग. त)। पाल्हया (ख) पालव्या। (त)। सु फळीयाह (क. घ) फळ्याह (ग)। से (त)=सू।

५३४—सखी सू (ग)=सज्जण। पीवैं (ग)। पांणगसुं (ग)। यं पीये पाणिग ज्युं (त)। नेणे (त)। चढंति (त) चटंत (घ)।

५३५—सखीये (ज)। मांजणा (क. ख. ज) मंजणा (ग) मंजण (त)। खिजमत (ख. ज) खिजमित (त) खिजमिति (थ)। सुहावै (क. ग. त)। (ज. थ) में द्वितीय पंक्ति इस प्रकार है—

मारवणी मंदिर महलि, कामिणि मिळियो कंत (थ)।
मारवणी मंदिर महिलि, कंमणि मिळिया कंत (ज)।

५३६—तु (ग) दिस (त)=कुं। मल्हपंत (क. ख)। साथि (क)। गत्त (क)। गत (ख)।

केवल (क. ख. ग. घ. झ. त) में।

घम्मघमन्तइ घाघरइ, उलट्यउ जाँण गयंद।
मारू चाली मंदिरे, भीणे बादळ चंद॥ ५३७॥

मारू चाली मंदिराँ, चन्दउ बादळ माँहि।
जाँणे गयँद उलट्टियउ कज्जळ-वन महँ जाहि॥ ५३८॥

घम्म-घमंतइ घूघरइ, पग सोनेरी पाळ।
मारू चाली मंदिरे, जाँणि छुटो छंछाळ॥ ५३९॥

बोली वीणा, हंस गत, पग वाजंती पाळ।
रायजादी घर-अंगणइ छुटे पटे छंछाळ॥ ५४०॥

सोई सज्जण आविया, जाँहकी जोती बाट।
थाँभा नाचइ, घर हँसइ, खेलण लागी खाट॥ ५४१॥

५३७—घूमते हुए घाघरे को पहिने हुए मारवणी महल की ओर चली, मानों गजेंद्र उमड़ चला हो अथवा झीने बादल में चंद्रमा चल रहा हो।

५३८—मारवणी महलों में चली मानों चंद्रमा बादल में चलता हो अथवा मदोन्मत्त हुआ गजेंद्र कजली-वन में जा रहा हो।

५३९—छम-छम बजते हुए घुँघरू और सोने की पायल, पैरों में पहने हुए मारवणी महल को चली, मानों फव्वारा छूटा हो।

५४०—(उसकी) बोली वीणा के समान है, चाल हंस जैसी है, पैरों में पायल बज रही है। इस प्रकार राजकुमारी घर के आँगन में (चल रही) है। उसके खुले हुए केशपाश फव्वारे के समान हैं।

१४१—वही प्रियतम आ गए जिनकी बाट जोह रही थी। (चारों ओर

५३७—घम-घम घमकै घूघरा (क) घम-घमते पाय घूघरा (ड) घम-घमाट पायै घुघरा (ट)। ऊलटो (क) उलटो (ट)। मांहल पधारी मारवी (क) महिल पधारै मारवी (ड) महिल पधारी मारुई (ट)। मंदरां (भ)। भीनै (क) भीने (ड़) = भीणे।

५३८—केवल (भ) में।

५३९—केवल (भ) में।

५४०—चाल वळी हंस चालती (ट) = बोली...गत। पायळ (ट)। राय अंगण (ट) = घर अंगणइ। छुटो जांण (ड़) = छुटे पट।

केवल (ट. ड़) में।

५४१—सेइ (ग)। ते साजन पधारिया (ज) सो सजन घरे आवीया (न) सजन

(ढोला-मारवणी-मिलन)

सखि वउळावी फिरि गई, प्री मिळियउ एकंत।
मुळकत ढोलउ चमकियउ, वीजळ खिवी क दंत॥ ५४२॥

[ढोलइ जाँण्यउ बीजळी, मारू जाँण्यउ मेह।
च्यारि आँख एकठि हुई, सयणे वध्यो सनेह॥ ५४३॥]

ढोलउ मिळियउ मारवी दे आलिंगण चित्त।
कर ग्रह आँणी अंक-मइँ, सेज सुणेसी वत्त॥ ५४४॥

आनंद का इतना उल्लास है कि) खंभे नाच रहे हैं, घर हँस रहा है और पलँग खेलने लगा है।

५४२—सखियाँ (मारवणी को ढोला के पास) भेजकर लौट गईं और प्रियतम एकांत में मिला। (मारवणी के) मुसक्याते ही ढोला चौंका कि यह बिजली चमकी या दाँत।

५४३—ढोला ने समझा कि (मारवणी) बिजली है, मारवणी ने समझा (ढोला) मेघ है। जब चार आँखें एक हुईं तो (दोनों) प्रेमियों में प्रेम की वृद्धि हुई।

५४४—ढोला हृदय से आलिंगन करके मारवणी से मिला। (उसने उसको) हाथ पकड़कर अंक में ले लिया और कहा—सेज पर (बैठकर) बात सुनो।

मिलीया है सखी (ड़) = सोंई...आविया। ज्याह (ज. न) ज्यां (ड़)। री (न) = की। जोऊँ (क. ख. त) जोवंती (ड़. न)। कुदै (ड़) बोलै (क. ख) = नाचइ। घरि (ज)। फाग (ख)।

५४२—सखी (क. ख. ग. ज. त)। बौलाए (क. ख. ग) वोलावै (ज)। फिर (ख. त) घरि (ज. थ)। गया (क. ख) गयां (त)। प्रीय (ख) प्रीव (ज) प्रिय (थ)। एकंति (ज. थ)। हसतौ (क)। बीजुळि (थ) खिवइ (थ)। कि (क) ज्युं (थ) = क। दंति (ज)।

५४४—मारुवी (ख)। चित (ख)। चित्त में (ग) = अंक मैं।
केवल (क. ख. ग. घ. त) में।

मारू वइठी सेज-सिर, प्री मुख देखइ तास।
पूनिम-केरे चंद ज्यूँ मंदिर हुवउ उजास॥ ५४५॥
काया झबकइ कनक जिम, सुंदर, केहे सुख्ख।
तेह सुरंगा जिम हुवइँ, जिण वेहा बहु दुख्ख॥ ५४६॥
मनि संकाणी मारुवी, खुणसउ राखइ कंत।
हँसताँ पीसूँ वीनवइ, सांभळि, प्री, विरतंत॥ ५४७॥
पहुर हुवउ ज पधारियाँ मो चाहंती चित्त।
डेडरिया खिण-मइ हुवइ घँण वूठइ सरजित्त॥ ५४८॥

५४५—मारवणी सेज पर बैठी। प्रियतम उसके मुख को देखता है। पूनों के चंद्र के समान (उसके मुखमंडल की आभा से) महल में उजेला हो गया।

५४६—(ढोला ने विनोद में मारवणी से प्रश्न किया—) तुम्हारी काया कंचन के समान झलक रही है। हे सुंदरी, कौन से सुख से? वे सुरंगे कैसे रह सकते हैं जिनको बहुत से दुःखों ने बींध रखा है।

५४७—मारवणी मन में संकुचित हुई कि प्रियतम मन में खुनस रखता है। वह हँसती हुई प्रियतम से विनय करती है—हे प्यारे, वृत्तांत सुनो।

५४८—आपको पधारे हुए और (आपको) चित्त में चाहते हुए मुझे एक प्रहर हो गया है। मेंढ़क तो घन के बरसते ही क्षण भर में संजीवित हो जाते हैं।

५४५—पर (ग)=सिर। प्रीय (क. ख)। हूओ (त)।
केवल (क. ख. ग. घ. त) में।

५४६—झलकै (न)। ढोलौ पूछै मारुवी दे आलिंगन मुख (क. त)=काया...... सुख्ख। सुख (ख)। जिउं (थ)=जिम। तांह (क. ख) तिके (ग)। क्यौं (ख) क्यउ (क)। हुवै (क. ख. ज)। जे (क. ख. ग) जां (थ)। देहां (थ)। दाध, माहे (क. ख) दाधा हुवे ज (ग) दाधा हूवै जु (झ)=वेहा बहु। त्रीया सरीर न सोभही बहु दीहांके दुख्ख (न)।

५४७—मन (क. ख. ग)। संकोची (क. ख. ग)। मारूई (ज) मारवी (ख.ज.थ)। खुणसइ (थ) खुणस (त. ज)। रालसे (त) रक्खे (थ) करेलो (ज)। वनिता (क. ख) अरपी (ग) पदमणि (क) हँसि करि (थ)=हँसताँ। प्रीउ (क) पीउ (ख)। प्रति (ज. थ)=सु। इम कहइ (ज. थ)=वीनवइ। प्रीय (ज) त्री (ख) ए (ग. घ)=प्री।

५४८—पहर (क. त. थ)। हूवौ (ख) हुयौ (क) हुवो (ज)। पावधारीय (थ)।

पहिली होय दयामणउ रवि आथमणउ जाइ।
रवि ऊगइ विहसइ कँमळ, खिण इक विमणउ थाइ ॥ ५४९ ॥
ढोलउ मन आणंदियउ चतुर तणे वचनेह।
मारू-मुख सोरंभियउ, आवि भमर भणकेह ॥ ५५० ॥
कंठ विलग्गी मारवी करि कंचूवा दूर।
चकवी मनि आणँद हुवउ, किरण पसारया सूर ॥ ५५१ ॥
आसालूँध उतारियउ धण कुंचुवउ गळाँह।
घूमइ पड़िया हंसड़ा भूला माँनसराँह ॥ ५५२ ॥

५४९—सूर्य को अस्त होते (देखकर) पहले (जो) दयनीय दशा को प्राप्त हो जाता है (वही) कमल सूर्य के उदय होते ही क्षण भर उन्मना होकर (पुनः) विकसित हो जाता है।

५५०—चतुर (मारवणी) के वचनों से ढोला मन में आनंदित हुआ। मारवणी के सुरभित मुख पर (ढोला-रूपी) भ्रमर आकर मँड़राने लगा।

५५१—कंचुकी को दूर करके मारवणी (प्रियतम के) के कंठ से लगी। मानों सूरज ने किरणें फैलाई और चकवी के मन में आनंद हुआ।

५५२—आशालुब्ध प्रेयसी ने गले से कंचुकी को उतार दिया। (उसके कुच-युग इस प्रकार दिखाई दिए) मानों मानसरोवर में भूले हुए हंस पड़े घूम रहे हैं (अथवा मानसरोवर को भूलकर हंस यहाँ पड़े घूम रहे हैं)।

ज्यांसुं मन की प्रीत (ज) जहसुं मनरी प्रीत (थ) = मो...चित्त। डंडर तां (ज. थ)। मो (घ) एक (ग) मांहि (क. ख) = मइ। हेक मै (झ) = मै हुवै। घडियां थयां (थ) घडीयां हुवै (ज) = खिण में हुवै। बुट्ठै (थ)। सरि (ज) जीत (क. थ)।

५४९—पहिलौ (क. ग. न)। होय (ज) हुवइ (क. ख. ग)। अस्थमणे (घ)। ऊगंतौ लोइ (ख) प्रगटंतै लोइ (क. ग.) = आथमणउ जाइ। विवणो (थ. न)। एह पटंतर जोइ (क) एह पटंतर लोइ (ख) एह पतंतर लोइ (ग) = खिण...थाइ।

५५०—आवत (ग) = आवि। भमेह (ग) = भणकेह।

केवल (क. ख. ग. घ. त) में।

५५१—सेज रमंतां (ग) = कंठ विलग्गी। मारवणी ढोलै मिली (थ) मारवणी ढोलो मिल्या (ज) = कंठ...मारवी। सब कप्पड़ (क. ख. त. थ. न) सब कपड़ा (ग) = कंचूवा। दूरि (ख. ग. थ. ज)। मन (ख. ग)। भयौ (क. ख. ग)। पसारइ (थ)। जांणे किरण (ज) = किरण। जांणिक ऊगौ सूर (क. ख. ग. घ)।

५५२—उतारियां (ज)। धन (ग)। कंचूअउ (थ)। उजास (ग) = गळांह। घूमें (ज) हँसला (ज)। भूलां (क. ख)। मान (क. थ)। सराह (थ. त)।

मन मिळिया, तन गड्डिया, दोहग दूरि गयाह।
सज्जण पाणी-खीर ज्यूँ खिल्लोखिल्ल थयाह॥ ५५३॥

पंचाइण नइँ पाखर-थउ, मइँगळ नइ मद कीध।
मोहण वेली मारुई, कंत पेम-रस पीध॥ ५५४॥

ढोलउ मारू एकठा करइ कतूहळ केळि।
जाँणे चंदन-रूँखड़इ विळगी नागर-वेळि॥ ५५५॥

५५३—मन मिल गए, तन गड़ गए (परस्पर दृढ़ आलिंगित हो गए) और दुर्भाग्य दूर हो गए; प्रेमी दंपति पानी और दूध की तरह मिलकर एक हो गए।

५५४—मानो सिंह था और भक्ष्य पाकर छक गया, हाथी था और मद कर लिया। (इसी प्रकार) मारवणी मोहन बेलि तो थी ही फिर उसने प्रियतम के प्रेम का रस पी लिया (अब उसकी शोभा का क्या कहना!)।

५५५—ढोला और मारवणी एकत्र कौतूहल-क्रीड़ा करते हैं, मानों चंदन वृक्ष पर नागर बेलि लिपट गई हो।

५५३—गडीया (ख. ग. ज. त)। थयांह (क. ग) थयाह (ख. त)=गयाह। साजण=(क. त.)। वाण (त)=खीर। पाणीवाण (क. ग) पाणीवीण (ख) पाणी-खाण (झ) पाणवाण (न)=पाणी-खीर। महि (ख)=ज्युं। खिलीखीर (ख) खिलेखीर (ग) खालीखीर (घ) खील्लेखीर (झ) पुलेखीर (न)=खिल्लोखिल्ल। थयांह (क)।

५५४—एक सीह (त) केसर (न)=पंचाइण। अर (त. घ)=नइ। एक सीह अरु पाखरयौ (क. ख) पाखरियो ने पंचमल (ड़) इस केसर वळि पाखरयौ (न)=पंचाइण नइँ पाखरथउ। मेंगळ (ज)। इक हस्ती (क. ख. ग)=मइँगल नइ। ने (ज)। पीद्ध (ज) दीध (ड़) अंध (थ) पीध (क, ख)=कीध। वसि किद्ध (न)=मद कीध। आगै हुंती (ड़)=मोहण बेली। मारवण (ड़) मारवी (ग. थ. न)। कंतै (क. ग. घ)। समरस (घ) सोहागिणि (थ) सुहागण (ज. ड़)=पेमरस। किद्ध (ज. थ. न) कीध (ढ़)=पीध।

५५५—कुतूहल (क)। केळ (क. ग. घ. त)। जाणै (क. ख) चांणै (ग) जाणे (घ) जांणें (ज)। रूखड़उ (ग) रूखड़े (त) रूखड़ौ (ग)। चड़ीसु (ख) चढीजु (ज) चढीज (त. ज) चडीजु (थ)=विलगी। वेळ (क. ग. घ. त)।

लहरी सायर-संदियाँ, वूठउ-संदउ वाव।
वीछुड़ियाँ साजण मिळइ, वळि किउँ ताढउ ताव॥ ५५६॥

हियमाँ करइ वधाँमणाँ, सही त सीधा काज।
जे सुपनंतर दीखता, नयणे मिळिया आज॥ ५५७॥

जिणनूँ सुपनेँ देखती, प्रगट भए प्रिव आइ।
डरती आँख न मूँदही, मत सुपनउ हुय जाइ॥ ५५८॥

आजे रळी-वधाँमणाँ, आजे नवला नेह।
सखी, अम्हीणी गोठमइँ दूधे वूठा मेह॥ ५५९॥

५५६—समुद्र की लहरियाँ हो, बरसे हुए की हवा हो और बिछुड़े हुए प्रियतम मिल जायँ। फिर (हृदय को शीतल करनेवाले इन सुखों के सामने शरीर का) ताप कैसे ठहर सकता है?

५५७—(मारवणी) हृदय में बधाइयाँ करती है कि सभी कार्य सिद्ध हो गए। जो स्वप्न में दिखाई पड़ते थे वे आज आँखों के सामने (प्रत्यक्ष) आ मिले।

५५८—जिनको स्वप्न में देखती थी वे प्रियतम आकर प्रकट हो गए। मैं डरती हुई आँख नहीं मूँदती कि कहीं स्वप्न (यह सब) न हो जाय।

५५९—आज आनंद-बधाइयाँ हो रही हैं; आज नया नेह छा रहा है। हे सखि, हमारी गोष्ठी में आज दूध का मेह बरसा है।

५५६—तूठै (ग) = वूठउ। संदी (क. ग. त) हंदी (झ)। वाह (त.)। वीछडीयां (ग. त. घ)। सजन (ग. त)। किम (ग) क्युं (घ.) तदौ (ख)। ताह (ग)। वाजै ताढी बाव (झ) = वळि...ताव। क्यूं तढां = किउ ताढउ (त)।

५५७—हीयड़ा (थ) हीयड़ो (न)। करे (थ. ज)। वधामणौ (थ. न)। ज (थ) = त। सरीयां सगळा काज (न)। सुपनंतर (ज)। ते नयणे (ज) सो सज्जण (न) ते साजन (थ) = नयणे।

५५८—केवल (ज) में।

५५९—आज (क. ख. ग. घ. त)। बधामणा (ख) वधावणा (त) आज (क. ख. ग. घ. त)। अमीनै (ग)। मे (त) = मइँ। अंगणै (झ) = गोठमइँ।

सजण मिल्या, मन ऊमग्यउ, अउगुण सहि गाळयाह।
सूका था सू पाल्हव्या, पाल्हविया फळियाह॥ ५६०॥

सेज रमंताँ मारुवी खिण मेल्हणी म जाइ।
जाँणि क विकसी केतकी भमर वयट्ठउ आइ॥ ५६१॥

जिम मधुकर नइ कमलणी, गंगासागर वेळ।
लुबधा ढोलउ - मारुवी काँम - कतूहल - केळ॥ ५६२॥

धरती जेहा भरखमा, नमणा जेही केळि।
मज्जीठाँ जिम रचणाँ, दई, सु सज्जण मेळि॥ ५६३॥

५६०—प्रियतम मिले, मन उमंग-युक्त हुआ, सारे अवगुण गल गए। जो (प्रेम-रूपी वृक्ष) सूखा था, सो पल्लवित हो गया और पल्लवित होकर फल गया।

५६१—सेज पर रमण करते हुए (प्रियतम द्वारा) मारवणी क्षण भर भी छोड़ी नहीं जाती। मानों केतकी विकसित हुई और उस पर भ्रमर आकर बैठ गया हो।

५६२—मधुकर और कमलिनी, तथा गंगा नदी और सागरवेला की तरह प्रेम-लुब्ध ढोला और मारवणी काम की कौतूहल-क्रीड़ा कर रहे हैं।

५६३—जो पृथ्वी की तरह सहनशील, कदली के समान नमनशील और मंजिष्ठ की तरह गहरा रंग लानेवाले हैं, हे विधाता उन प्रेमियों को मिला।

५६०—सज्जण (क) सज्जन (ख. ग)। मिलिया (क. ख. ग. घ)। उमग्यो (क. ख. ग)। ओगण (त)। सो (झ) से (त)। पल्हया (ग) पल्हव्या (त)। पाल्हवि (त) सुफल्याह (ख) सुफळीयाह (क. ग. त)।

५६१—रमंती (क. घ)। मारवी (त. ख)। मूकड़ी (घ) मेल्हवी (त)। जाणी (घ) जाण (त)। बयठो (घ) बइठ (त)। आय (त. घ)।

५६२—ने (त) = नइ। केतकी (ग) = कमलणी। वेलि (झ)। लबधा (घ. त. क) लुबध (ग)। ढोला (क. ख)। मारवी (घ. त)। निण विधि साल्ह कुमर रमइ (झ) = लुबधा...मारुवी। कुतूहळ (क)। केळि (ख)।

५६३—भरखमी (त)। रमणी (झ. त) = नमणी। जेहा (त) केळ (त. ग. घ)। मजीठा (ग) मंजीठा (त)। रचणा (ग. घ) रचणी (त)। साजण (क) सजण (त) सजन (ग. घ) मेल (ग. घ. त)।

ज्यूँ सालूराँ सरवराँ, ज्यूँ धरतीसूँ मेह।
चंपक-वरणउ वालहउ चंदमुखीसूँ नेह ॥ ५६४ ॥

चंद्रायणा

बेऊँ चतुर सुजाँण पेम-रँग-रस पिया।
वरखा-रुति घण वरख जाँणि कु हरखिया ॥
भी सिणगार सँवारि क आई सेज परि।
(परिहाँ) जाँणे अपछर इंद्र क बैठा आप घरि ॥ ५६५ ॥
दोउ मयमंत सुजाँण सेज दिसि बाहुड़इ।
जाँणे धरती-काज असप्पति आहुड़इ ॥
अहरे अहर लगाइ तने तन मेळिया।
(परिहाँ) जाँणि क गाँधी-हाट जुवाँने भेळिया ॥ ५६६ ॥

५६४—जिस प्रकार मेंढकों का प्रेम सरोवरों से और मेघ का प्रेम पृथ्वी से होता है, उसी प्रकार चंपक वर्णवाले प्रियतम (ढोला कुमार) का चंद्रमुखी (मारवणी) से प्रेम है।

५६५—दोनों (दंपति) चतुर और सुजान हैं और प्रेमरंग का रस पिए हुए हैं। मानों वर्षा ऋतु में बादल बरसकर हर्षित हुए हों।

फिर (मारवणी) शृंगार सजकर सेज पर (ढोला के पास) आई, मानो अप्सरा और इंद्र अपने घर पर बैठे हों।

५६६—दोनों मदमत्त प्रेमी सेज की ओर चले, मानों दो राजा धरती के लिये (युद्ध में) जुट रहे हों।

अधर से अधर लगाकर शरीर से शरीर मिला दिया, मानों गंधी की हाट पर युवकों ने धावा किया हो।

५६४—सालूराँ सरवर विना (त. ग) सालूराँ अरु सरवरां (ख)=ज्यूं...सरवराँ। अर सरवरां (क)। ज्यडं (ख)। वरणौ (क. ख. ग) वरणों (त)। वालहो (त)। चंद-वदनी (त) चंद-मीषी (घ)।

५६५—प्रेम (त)। वरखत (त) वरषि (ग)। जांण (त)। वरख कीया (त) वरखीया (ख)=हरखिया। जांणि कूँवर हरखीया (ग)। बरखा रुति अति मंड कवदर (? कँवर) मन हरषीया (झ)। त्री (त) भा (घ)=भी। समारि (त) सुवारि (ग)। पर (त. घ. ग)। जिनके (ग)=जाँणे। इंद (ग)। बेठा (त)। घर (क. त. घ)।

५६६—दूऊं (ग)। मइमत (त) मइमात (घ)। दिस (क. ग. त)। बाहुडे (त)।

दूहा

मारवणी इम वीनवइ, धनि आजूणी राति।
गाहा-गूढा-गीत-गुण कहि का नवली वाति ॥ ५६७ ॥
गाहा-गीत-विनोद-रस सगुणाँ दीह लियंति।
कइ निद्रा, कइ कळह करि, मूरिख दीह गमंति ॥ ५६८ ॥
विरह वियापी रयण भरि, प्रीतम विणु तन खीण।
वीण अलापी देखि ससि, किस गुण मेल्ही वीण ॥ ५६९ ॥
वीण अलापी देखि ससि रयणी नाद सलीण।
ससिहर-मृगरथ मोहियउ, तिण हसि मेल्ही वीण ॥ ५७० ॥

५६७—मारवणी यों विनय करती है कि आज की रात धन्य है। आज कोई गाथा या पहेली या गीत या गुणोक्ति या कोई नई कथा कहो।

५६८—गुणवान् मनुष्यों के दिन गाथा, गीत और विनोद के रस में बीतते हैं और मूर्ख या तो नींद में या कलह में दिन बिताते हैं।

५६९—ढोला प्रश्न करता है—

प्रियतम के वियोग में कृश शरीरवाली नायिका ने रात भर विरह-व्यथा से व्याप्त होकर वीणा बजाई, फिर चंद्रमा को देखकर किस कारण उसे रख दिया?

५७०—मारवणी उत्तर देती है—

विरहिणी को वीणा बजाते देखकर चंद्रमा रात्रि में उसके नाद में लीन हो गया और चंद्रमा के रथ के मृग मोहित हो गए। इसी लिये उसने हँसकर वीणा को रख दिया।

जांण (ख. त)। धरंती (ग)। असपत (ग. घ) असपति (त)। आहुडे (त)। अहरां (ग) लगाय (ग)। तनां (ग)। जुवानां (ख. ग) जुवाना (त)। मेल्हियां (ग)।

५६७—मारविणी (त)। अप (घ) = इम। वीनवे (त)। धन (क. ख. ग. घ)। वात (त)।

(ग) में दूसरे और चौथे चरणों का क्रम-विपर्य्यय है।

५६८—गूढ (ख) = गीत। गुणां (ख) = सगुणां। रमंति (झ) गमंति (क. ग. त)। के (त) का (ग. झ) = कै। मूरख (त) इम बोलंति (त) = दीह गमंति।

५६९—रैण (त) भर (त)। विण (ग. घ) विन (त)। आलापी (ग)। शशि (क. घ. त) शसि (ख) मिस (झ)। वीणं (क)।

५७०—शशि (क. त)। रैणी (त)। संलूण (त)। शशिहर (क. त)। रथमृग

सुंदरि चोरे संग्रही, सब लीया सिणगार।
नक-फूली लीधी नहीं, कहि सखि, कवण विचार ॥ ५७१ ॥
अहर-रंग रत्तउ हुवइ, मुख काजळ मसि-अन्न।
जाँण्यउ गुंजाहळ अछइ, तेण न ढूकउ मन्न ॥ ५७२ ॥
परदेसाँ प्री आवियउ, मोती आँण्या जेण।
धण कर-कँवळाँ झालिया, हसि करि नाँख्या केण ॥ ५७३ ॥
कर रत्ता मोती नृमळ, नयणे काजल-रेह।
धण भूली गुंजाहळे, हसिकरि नाँख्या तेह ॥ ५७४ ॥

५७१—ढोला—

सुंदरी को चोरों ने पकड़ लिया और उसके सब शृंगार (आभूषण) उतार लिए परंतु नकफूली नहीं ली। हे सखि, कहो किस विचार से ?

५७२—मारवणी—

नकफूली अधर के रंग में लाल हो रही थी और उसका मुख काजल के कारण काले रंग का हो रहा था। अतएव चोरों ने जाना की गुंजाफल है और इसलिये उनका मन उसे लेने को नहीं हुआ।

५७३—ढोला—

परदेश से प्रियतम आया जिसने मोती लाकर दिए। प्रेयसी ने उनको अपने कर-कमलों में ग्रहण किया और फिर हँसकर उनको किस कारण डाल दिया ?

५७४—मारवणी—

हाथ लाल (रंग के) थे, मोती निर्मल थे और नयनों में काजल की रेखा थी। इन (हाथ और नयनों) का प्रतिबिंब मोतियों पर पड़ने से

(क. ग. त)। मोहीव्या। (त)। तिणि (भ)। ससि (भ) हस (त) = हसि। मूंकी (ग) = मेल्ही।

५७१—सुंदर (त)। चोर (क)। सहि लीधा (ग) शृंगार (त) वैसर (ग) = फूली। लीवी (त)। कविण (घ) कोण (त)।

५७२—अहरंग (त)। रता (ख. त) रातौ (ग)। हुवौ (ग)। मुंख (त)। मिस (क)। अंन (त) अन (ग)। जाँण (ग. त)। गूंजाहळ (त)। तिन (ग) तेणि (घ)। अ (भ) = न। ढयोकौ (घ)। मन (ग) मंन (त)।

५७३—कमले (ख. ग)। भलीया (ग)। तेण (क. ख. ग. त') = केण।

५७४—निरमळा (भ) निमळ (त)। नेणे (त)। गूंजा० (त)। हसकर (त)। तेण (क. ख. ग. घ. त)।

गाहा

तरुणी पुणोवि गहियं परीयच्चय भिंतरेण पिउ दिट्ठं।
कारण कवण सयाणे दीपक्को धूणए सीसं ॥ ५७५ ॥

दूहा

वालँभ, दीपक पवन-भय अंचळ-सरण पयट्ट।
कर-हीणउ धूणइ कमळ, जाँण पयोहर दिट्ठ ॥ ५७६ ॥

गाहा

वनिता-पति विदेस गय मंदिर-मझे अद्धरयणीए।
बाळा लिहइ भुयंगो, कहि सुंदरि, कवण चुज्जेण ॥ ५७७ ॥

प्रियतमा को उनके गुंजाफलों का भ्रम हुआ और इसी लिये उसने हँसकर मोतियों को डाल दिया।

५७५—ढोला—

प्रिय ने देखा कि फिर तरुणी द्वारा हाथ में लिया हुआ दीपक अंचल के अंदर से सिर धुन रहा है। हे सजनी इसका क्या कारण है ?

५७६—मारवणी—

हे प्रिय, दीपक पवन के भय से अंचल की शरण में गया परंतु अंचल के अंदर पयोधरों को देखा तो हाथ न होने के कारण वह सिर धुनने लगा।

५७७—ढोला—

स्त्री का पति विदेश गया। अर्धरात्रि को महल में वह बाला साँप का चित्र लिखती है। हे सुंदरि, कहो किस चीज से ?

५७५—पणो (ग) पुणये (झ)। पणव (त)=पुणोवि। विगहीयं (क)। परि अंतराय (झ) परिच्छेयतेरीयं (घ) परिछेरीयं (त)=परी...रेण। पीउ (ख) प्रिय (ग. झ. घ) प्रीय (त)। कमण (त)=कवण। अयांणो (क. घ) सयाणो (त)। दीपको (घ. त) भूंणिये (झ) धूणे (त)।

५७६—वालम (ग. त)। सरणि (झ)। जाम (ख) ताम (त)=जांण। पयोहरि (झ)।

५७७—तास प्रीय विदेस गयौ (क. घ. त) जास प्रिय गयौ विदेसे (ग)। मंझे (त) मझेय (ग) मधि (घ)। अद (ख)। अधि-सेरणी (त) अधरयणाए (ग) अधि सै रयणीए (घ)। लिखै (ग) लिखौ (घ) लिख्यां (त)। भयंगो (त) भुयंगा (घ)।

दूहा

सा बाळा प्री चिंतवइ, खिणखिण रयणि बिहाइ।
तिण हर-हार परठ्ठ्यउ, ज्यूँ दीवळउ बुझाइ॥ ५७८॥

बहु दिवसे प्री आवियउ, सझिया त्री सिणगार।
निजरि दिखाई आदिरस, किम सिणगार उतार॥ ५७९॥

इन्द्राँ-वाहण-नासिका, तासु तणइ उणिहार।
तस भख हूवउ प्राहुणउ, तिणि सिणगार उतार॥ ५८०॥

५७८—मारवणी—

वह बाला प्रिय का चिंतन करती हुई क्षण क्षण करके रात्रि को बिता रही है। उसने महादेव का हार (अर्थात् साँप) लिया जिससे कि दीपक बुझ जाय (साँप पवन का भक्षण कर लेता है और पवन न होने से दीपक नहीं जल सकता)।

५७९—ढोला—

बहुत दिनों से प्रियतम आया। नायिका ने शृंगार सजाए। फिर एक नजर से शीशे को देखकर, कहो, किस लिये शृंगार उतार दिया?

५८०—मारवणी—

पाहुना (अर्थात् प्रत्यागत प्रियतम) इंद्र के वाहन (अर्थात् हाथी) की नासिका (अर्थात् सूँड़) के समान आकृतिवाले (अर्थात् साँप) का भक्ष्य हो गया इसलिये उसने शृंगार उतार दिए।

कमण (ग) कवल (त)। कउजेण (झ. त) चुजेण (घ) चज्जेण (ग) चुंज्जेण (क)।

५७८—प्रीउ (ग)। चींतवै (ग. त)। रयण (क. ख. ग) रैण (घ. त)। विहाय (ग. त)। हरको = तिण हर (ग)। परठीयौ (क. ख. ग) परठीउज (घ)। ज्यौं (ख. ग) यं = ज्यूँ (त)। दीपको (त)। बुझाय (घ. त)।

५७९—बह (त)। प्रिउ (क. ग) सजीया (ग)। त्रिय (ग)। नजर (क. ख. ग. त)। मदिर (घ) = निजरि। आदरस (ख. त)। शृंगार (त)। उतारि (ग. घ)।

५८०—आसण (घ. त) = वाहण। तास (ख. ग. त)। तणा (झ. त)। उणहार (ग) अनुहारि (घ. त)। हुवौ ज = हूवउ (झ) तिण (ग)।

नोट—(क. ख. घ. त) में तीसरा और चौथा चरण इस प्रकार है—

हुई न हांसी एणि जुग मारू सरीखी नारि।

ससनेही सज्जण मिल्या, रयण रही रस लाइ।
चिहुँ पहुरे चटकउ कियउ, वैरणि गई बिहाइ ॥ ५८१ ॥

(अष्टयाम-वर्णन)

[पहिलइ पोहरे रैणकै, दिवला अंबर झूल।
धण कसतूरी हुइ रही, प्रिव चंपारौ फूल ॥ ५८२ ॥

दूजै पोहरे रयणकै मिळियत गुफ्फागुध्ध।
धण पाळी, पिव पाखरचौ, विहूँ भला भड़ जुध्ध ॥ ५८३ ॥

त्रीजै प्रहरै रैणकै मिळिया तेहा-तेह।
धन नहिँ धरती हुइ रही, कंत सुहावौ मेह ॥ ५८४ ॥

चौथै प्रहरै रैणकै कूकड़ मेल्ही राळि।
धण संभाळै कंचुवौ, प्री मूँछाँरा वाळि ॥ ५८५ ॥

पँचमै प्रहरै दीहरै सायधण दियै बुहारि।
रिमझिम रिमझिम हुई रही, हुइ धण-त्री जौहारि ॥ ५८६ ॥

५८१—स्नेहवाले प्रेमी मिले। रात्रि आनंदमय हो गई। चारों प्रहरों ने शीघ्रता की और बैरिन रात बीत गई।

५८२—रात्रि के पहले प्रहर में दीपक आकाश में झूल रहे हैं। प्रिया कस्तूरी हो रही है और प्रियतम चंपा का फूल (हो रहा है)।

५८३—रात्रि के दूसरे प्रहर में दंपति दृढ़ आलिंगन देकर मिल रहे हैं। प्रिया पैदल है और प्रियतम सवार है। दोनों युद्ध में भले योद्धा हैं।

५८४—रात्रि के तीसरे प्रहर में पति-पत्नी खूब गहरे मिलकर एक हो गए हैं—प्रिया धरती हो रही है और कंत सुहावना मेघ (हो रहा है)।

५८५—रात्रि के चौथे प्रहर में मुर्गे ने बाँग दी। प्रिया चोली को सँभालती है और प्रियतम मूँछों के बालों को (सँभालता है)।

५८६—पाँचवें प्रहर दिन को वह प्रिया (छितराते हुए मोतियों को बटोरने के लिये) बुहारी दे रही है। (उसके पायल की रिमझिम रिमझिम ध्वनि हो रही है और प्यारी एवं प्यारे का जुहार हो रहा है।

५८१—सजण (ख. त) सजन (ग)। चहु (ग) च्युं (क्ष) च्यौंह (त)। पहरे (ग. त)। हूत्रौ (ग. त) = कियउ।

५८२-५९०—केवल (ज) में।

छट्ठै प्रहरैं दिवसकै हुई ज जीमणवार।
मन चावळ, तन लापसी, नैंण ज घीकी धार ।। ५८७ ।।

सत्तम प्रहरैं दिवसकै धण जु वाड़ियाँ जाइ।
आँणै द्राख-बिजोरियाँ, धण छोलइ, प्रिउ खाइ ।। ५८८ ।।

आठम प्रहर संझा समै धण ठव्वै सिणगार।
पान कजळ पाखर करै, फूलाँकौ गळि हार ।। ५८९ ।।

प्रहरै-प्रहर ज ऊतर्युँ, दिवला साख भरेह।
धण जीती, प्रिव हारियउ, वेल्हा मिलण करेह ।। ५९० ।।

(ढोला-मारवणी की क्रीड़ा)

[म्हेंने ढोलो झूँबिया लूँगे-लक्कड़ियेह।
म्हाँने प्रिउजी मारिया चंपारै कळियेह ।। ५९१ ।।

म्हेंने ढोलो झूँबिया, म्हाँनूँ आवी रीस।
चोवा-केरै कूँपळै ढोळी साहिब-सीस ।। ५९२ ।।]

५८७—छठे प्रहर दिन में ज्यौनार हुई जिसमें मन चावल, तन लपसी, एवं नेत्र घी की धारा हैं।

५८८—सातवें प्रहर दिन में प्रिया वाटिका को जाती है और दाख एवं बिजोरे लाती है। प्रिया छीलती है और प्रियतम खाता है।

५८९—आठवें प्रहर संध्या समय प्रिया शृंगार सजाती है और पान खाकर एवं काजल लगाकर उसको तीक्ष्ण (विशेष मनोमोहक) करती है तथा गले में पुष्पों का हार धारण करती है।

५९०—जो प्रहर पर प्रहर बीता उसमें प्रिया जीती और प्यारा हारा। हे दीपक, तू इसकी साख भरना और उनके मिलन की वेला करना।

५९१—मारवणी सखियों से कहती है—ढोला कुमार मुझे लवंग की छड़ी लेकर झूम गया। प्रियतम ने मुझे चंपा की कलियों से मारा।

५९२—ढोला मुझे झूम गया। मुझे रोष आया और मैंने चोवा (अरगजा) का पात्र स्वामी के सिर पर उँड़ेल दिया।

५९१–५९२—केवल (ज) में।

राति-दिवसि रंगइँ रमइ, विलसइ नवरस भोग।
जोड़ी सारीखी जुड़ी केसव-तणइ सँजोग ॥ ५९३ ॥

(ढोला का नरवर को लौटना)

पनरह दिन लग सासरइ रहियउ साल्हकुमार।
पूगळ भगताँ नव-नवी कीधी हरख अपार ॥ ५९४ ॥

सोवँन-जड़ित सिँगार बहु मारुवणी मुकलाइ।
गय, हैँवर, दासी बहुत दीन्हीं पिंगळ-राइ ॥ ५९५ ॥

साथे दीन्ही छोकरी दीन्हो पिंगळ-राव।
ढोलउ नरवरनूँ खड़इ, आणँद अधिक उछाव ॥ ५९६ ॥

५९३—इस प्रकार दंपति रात-दिन प्रेम-क्रीड़ा करते हैं और नव रसों का विलास भोग करते हैं। भगवान् केशव की कृपा से उनकी अनुरूप जोड़ी जुड़ी।

५९४—साल्हकुमार पंद्रह दिनों तक ससुराल में रहा। पूगल (निवासियों) ने अपार हर्ष के साथ (प्रतिदिन) नई-नई खातिर की।

५९५—मारवणी का गौना करके राजा पिंगल ने बहुत-से सुवर्ण-जटित शृंगार, अच्छे-अच्छे हाथी-घोड़े और बहुत-सी दासियाँ दीं।

५९६—साथ में राजा पिंगल ने सहेली (खास दासी) दी। अब ढोला अत्यंत आनंद और उत्साह के साथ नरवर की ओर प्रस्थान करता है।

५९३—दिवस (क. ख. ग. घ. त)। रंगमां (झ)। रमै (क. ख. ग. घ)। विलवे (थ)। नव नव (थ)=नवरस। जुडइ (थ)। साहिब (थ)=केसव। तणी (झ)। संयोगि (थ)।

५९४—राज-(क. ग. त)=साल्ह-। पिंगळ (ग)=पूगळ। अधक (ग. घ. त)= हरख।

नोट—(न) में इस दोहे का पाठ इस प्रकार है—

पुंगळ ढोलो प्रांहुणों रहियो सासरवाडि।
पनर दिहाडा पदमणी माणी मनहरु हाडि॥

५९५—जटित (ख. त)। दे (ख)=बहु। मारवणी (ख. ग. त)। हय (क. ग. झ)। हय गय (झ)=गय हैँ। दीन्हा (ग)। राउ (ख) राय (ग. त)।

५९६—राइ (ख. क)। नैं (ग)। हिव ढोलौ (क)=ढोलउ। उछाह (क. ख. ग. त)।

हिव सूँमर हेरा हुवइ, मारू भूँबणहार।
पिंगळ बोळावा दिया सोहड़ सो असवार ॥ ५९७ ॥

(साँप के पीने से मारवणी की मृत्यु)

बहताँ दिन बीजइ पछइ राति पड़ंती देखि।
रोही मँझि डेरा किया ऊजळ जळ-धर देखि ॥ ५९८ ॥

ढोलउ-मारू पउढिया रस मइँ चतुर-सुजाँण।
च्यारे दिसि चउकी फिरइ सोहड़ भूप जुवाँण ॥ ५९९ ॥

मारवणी मुखससि-तणइ कसतूरी महकाइ।
पासइ पन्नग पीवणउ विळकुळियउ तिणि ठाइ ॥ ६०० ॥

५९७—अब ऊमर-सूमरा को खबर मिली की मारवणी जानेवाली है और पिंगल राजा ने उसे पहुँचाने के लिये सौ सवार दिए हैं।

५९८—चलते हुए, दूसरे दिन के पश्चात्, रात पड़ती जानकर (ढोला ने) निर्मल जल और स्थान देखकर जंगल के बीच में डेरा किया।

५९९—चतुर-सुजान ढोला और मारवणी प्रेम में मग्न हुए सो रहे और चारों ओर सुभट युवा सरदार पहरा देने लगे।

६००—मारवणी के मुखचंद्र से कस्तूरी की महक आ रही थी। उसी स्थान पर पास ही एक (प्राण पी जानेवाला) पीणा साँप निकला।

५९७—हेरौ (झ. त)। भूबणहार (ग. घ)। सबसुहड़ (ग) सबळ सुहळ (झ)= सोहड़ सो।

५९८—रात (क)। पड़ीती (ग)। मझ (ख) मंझ (क. त)। डेरौ (ग)। लीयौ (ग)= किया। धर थळ (क. ख. ग. घ. त)= जळ-धर।

५९९—रमि (ग)= मइँ। रंग रमैं (घ)= रस-मइँ। दिशि (क) दिस (ख. त)।

६००—सिस (झ)। तणौ (क. ख. ग)। कड़ि कसतूरी महमहै मारुवणी मुँह सास (ज) मारुवणी महमास करि कसतूरी महमहै (थ)= मारवणी...महकाइ। नागजु (ग)= पन्नग। पीवणे (ग) पीयणा (थ)। नीसरयौ (क. ख. ग. घ. त)= विळकुळियउ। तिण (ग. क. ज)। वाइ (ग. त) वासि (थ) वास (त)= ठाइ।

नोट—(थ) में यह बड़ा दूहा है।

निसि भरि सूती सुंदरी वालँभ कंठ विलग्गि।
मोहण-वेली मारुई पीधी नाग भुयग्गि॥ ६०१॥
प्रह फूटी, दिसि पुंडरी, हणहणिया हय-थट्ट।
ढोलइ धण ढंढोळियउ, सीतळ सुंदर-घट्ट॥ ६०२॥

सोरठा

झाबकि पइठी झाळि, सुंदरि काँइ न सळसळइ।
बोलइ नहीँ ज बाळ, धण धंधूणी जोइयउ॥ ६०३॥
[झाबकि पइठी झाळि, सुंदरि दीठी सास विँण।
जिमि व्हालाँ विच बाळ, प्रिव जोई मारू नहीँ॥ ६०४॥

६०१—रात्रि भर सुंदरी प्रियतम के कंठ से लगकर सोती रही। तभी मोहनलता मारवी को पीणे साँप ने पी लिया।

६०२—पौ फटी, दिशाएँ पीली हुईं और घोड़ों के समूह हिनहिनाए। ढोला ने प्रिया को टटोला तो सुंदरी का शरीर शीतल था।

६०३—ढोला के हृदय में सहसा ज्वाला उठी कि सुंदरी क्यों नहीं हिलती डोलती। जब सुंदरी नहीं बोली तो पति ने उसको खूब हिला-डुलाकर देखा।

६०४—सुंदरी को साँस बिना देखा तो हृदय में सहसा ज्वाला उठ खड़ी हुई (नोट—दूहे का उत्तरार्ध अस्पष्ट है)।

६०१—निस (क. ग. ज)। मारवी (ग. त) मारूवी (ज)=सुंदरी। ढोला मेल्हे अंग (क. ख. ग. घ)=वालंभ…विलग्गि। भुयंग (क. ख. ग. घ)। पीवी सुतह भयंग (त)। सासनयाँ सारंग गुण पीधा इण पीयणै (ज) सासतयाँ सारंभि गुणि पीधी पीणै पन्नगि (थ)।

नोट—(ज) और (थ) में यह दूहा सोरठे के रूप में है।

६०२—ऊठी (ख. त) फुटी (क. घ)। प्रगड़ो भयौ (क. ख. ग. घ. त)=दिसि पुंडरी। दिस (ज)। पंडरी (थ)। कलहळिया (घ. त)। ढंढेळियो (ग) ढंढोळियो (भ)। धण ढंढोळी ढोलयै (ज. त)। सास न (क. ख. ग. घ. त)=सीतल। सुंदरि (ग. थ. ज)।

६०३—भावकि (थ)। पेटी (थ)। झाळ (थ)। साइ (थ)=काँइ। जाँ बोलै नही (ज)=दीठी सास विँण। धंधोणी (थ)। जोवियो (थ)।

६०४—केवल (ज) में।

दूहा

मारू तोइण कणमणइ साल्हकुमर बहु साद।
दासी तद दीवाधरी साँभळिया पड़साद॥ ६०५॥

मुख जोवइ दीवाधरी, पाछउ करइ पलाह।
मारू दीठी सास विण, मोटी मेल्हइ धाह॥ ६०६॥

सोहड़ सहु भेळा किया, तिण वेळा तिण वार।
नरनारी सहु बिलबिलइ, हय हय सरजणहार॥ ६०७॥

जिणि देसे विसहर घणा काळा नाग भुयंग।
सुवइ निचंती मारुई ढीला मेल्हे अंग॥ ६०८॥

६०५—साल्ह कुमार बहुत पुकारता है तो भी मारवणी नहीं कुनमुनाती। तब दीपकधारिणी दासी ने मारवणी के साँस का प्रतिशब्द सुना।

६०६—दीपक-धारिणी दासी मुख देखती है और देखते ही पीछे भागती है। मारवणी को साँस के बिना देखकर वह लंबी धाड़ मार उठती है।

६०७—उसी समय सभी सुभटों को इकट्ठा किया। नर-नारी सभी 'हा विधाता! हा!' कहकर विलाप करते हैं।

६०८—जिस देश में बहुत से विषधारी काले भुजंग नाग हैं उस देश में मारवणी अंगों को ढीला करके निश्चिंत होकर सोती है।

६०५—न (क. ख. ग. घ. ज. त. थ)=ण। बह (ग)। संद (ग)। साले-कुंवरि सादि कीया तोहि कुंणकुंणै (ज) साल्हकुँमर दे साद काया तोइ न कुणकुणै (थ)। तव जागी (ज)। सांभलियौ (क. ग. घ)। परसद (ग)। साइ जागी पडिसादि दासी साथि दीवाधरी (ज) दासी साथि दीवाधरी, साइ जागी पड़सादि (थ)।

नोट—(ज) में यह सोरठा है।

६०६—पासै (ग)=पाछउ। करेह (ग) किया (झ)। पुलाह (झ)। सारू (ख)= मारू)। मेल्ही (झ)। जो पदमिण पीधी पीयणें बैसे जोई बाँह, देखी जिण दीवाधरी मोटी मुक्की धाह (ज) बैसे जोये बाह जो पदमिनि पीधी पीयणै, देखे मुख दीवाधरी मोटी मूँकी धाह (थ)।

६०७—सुंदरि दीठी साँस विण मिलि आया असवार (ज) मिलि आया असवार सुंदरि दीठी साँस विण (थ)। सुहड़ सहु (ग)। ढोल विछोह्यउ (थ)=नर नारी सहु। ढोलो विछोह्यो टलवलै (ज)=नर इ०। है है (क. ख. ग. घ. ज)। सिर-जन (ख. घ)।

नोट—(थ) में यह सोरठा है।

ढोला, मारवणी मुई, सइँ सारड़ी न लध्ध।
दीवा-केरी बाटि जिम खोड़ी-खोड़ी दध्ध ॥ ६०९ ॥

(ढोला का विलाप)

वाही थी गुणवेलड़ी, वाही थी रसवेलि।
पीणइ पीवी मारवी चाल्या सूती मेलि ॥ ६१० ॥

मारू - मारू कळाइयाँ, उज्जळ - दंती नारि।
हसनइ दे हुँकारड़उ, हिवड़उ फूटणहारि ॥ ६११ ॥

[वीसारियाँ न वीसरइ, चिँतारियाँ नावंत।
मारू सायर - लहर जूँ हिवड़े द्रव्य काढंत ॥ ६१२ ॥]

६०९—हे ढोला, मारवणी मर गई और तूने उसकी सुध भी न ली। वह दीपक की बाती की भाँति धीमे-धीमे जल गई।

६१०—ढोला-वचन—

वही (मारवणी) गुणों की लता थी और वही रस की बेलि थी। ऐसी उस मारवणी को पीणे साँप ने पी लिया और हम उसे सोती छोड़कर चले।

६११—"हे मारू, हे मारू", इस प्रकार कहकर ढोला विलाप करने लगा। "हे उज्ज्वल दाँतोंवाली नारी, हँस करके उत्तर दे, मेरा हृदय फूटनेवाला है।"

६१२—भुलाने से नहीं भूलती और स्मरण करने से पास नहीं आ जाती। मारवणी हृदय को सरोवर की लहर के समान द्रवीभूत किए देती है।

६०८—जिण (क. ख. ग. घ. ज. त)। विखहर (ज)। राजीया (ज) राजिया (थ)=घणा। सूवइ (थ) सूवे (ज)। नचंती (ज)। मेले (थ)।

६०९—केवल (ज) में है।

६१०—उवाही छै (थ) आछी हे (त)=वाही थी। उवाही छै (थ) आछी छै (त)। हुई अवगुण वेल (ज)=वाही थी रसवेलि। आय जमराणा साद करि, वाले जे आ मेल्हि (थ. में दूसरी पंक्ति) जम रांणा सांटो करौ वाले आया छी मेल (ज में दूसरी पंक्ति) जम रांणा सांटो करां वांनेइँ लेज्यो मेल [(थ) में दूसरी पंक्ति]।

६११—केवल (ज) में है।

मारू त्रिहुँ बरसे बड़ी, चंपारइ उणिहार।
सा कुँमरी परणाविस्याँ, चालउ, राजकुँमार ॥ ६१३ ॥
इकि भवि मारू काँमिणी, अन-पाणी इणि सथ्थ।
पूगळनूँ सहू को वळउ, न करउ म्हाँकी कथ्थ ॥ ६१४ ॥
ढोलउ किम परचइ नहीँ, सहु रहिया समझाइ।
के पुळिया पूगळ-दिसी, के काँही कजि काइ ॥ ६१५ ॥

(योगी द्वारा मारवणी का पुनर्जीवित होना)

इक जोगी आणंद - मइँ आव्यउ तिणहिज बाट।
जाँणे श्रीपति भेजिया भाँजण साल्ह - उचाट ॥ ६१६ ॥

६१३—साथ के लोग कहते हैं—

मारवणी से तीन बरस बड़ी और चंपा के समान रूपवाली जो राजकुमारी है वह आपको ब्याहेंगे, हे राजकुमार, यहाँ से चलो।

६१४—ढोला ने उत्तर दिया इस जन्म में मारवणी ही मेरी स्त्री है। मेरा अन्न-जल इसी के साथ है। सब कोई पूगल को लौट जाओ, मेरी बात मत करो।

६१५—ढोला किसी प्रकार नहीं समझता। सब लोग समझाकर रह गए। फिर कुछ तो पूगल की ओर चले गए और कुछ किसी काम से कहीं चले गए।

६१६—एक योगी अपने आनंद में उसी रास्ते पर आ निकला मानो साल्हकुमार की व्यथा को दूर करने के लिये भगवान् ने भेजा हो।

६१३—हुं तिहु (क. ग)=त्रिहु। ता त्रि वरस (त)=त्रिहुवरसे। अणुहारि (ग)। कुमारी (क) कुअार (ग)।

यह दोहा (न) में इस प्रकार है—

पिंगल राय कहावियउ ढोला पाछे आव।
मारू लहुड़ी बहिनड़ी तोहि-भणी परणाव॥

६१४—इण (ख. त)। कांमिनी (क. ख) कांमनी (ग)। अण (ग)=अन। उण (ग) इण (क. ख. त)=इणि। साथी (क) साथ (ख. ग)। अम्हीणी (घ)। कथ (ख) काथ (ग)।

६१५—सो तो (घ) सो तउँ (त)=ढोलो। कहीं (ग)=किम। सह (ग) सहि (क)। परचाइ (ग)=समझाइ। वळिय (ग)=पुळिया। दिसा (झ)। को (ग)=के। क्यांही (झ)। कज (क. ख. त) दिस (झ)=कजि।

६१६—एक (क. घ)। जोड़ी (झ)=जोगी। आनंद (ग)। आयो (ग) आया

साथइ सुंदरि जोगिणी, मारवणीसूँ प्यार।
तिण जोगी ओळखिया ढोलउ मारू-नार ॥ ६१७ ॥

नर नारीसूँ क्यूँ जळइ, नरसूँ नारि जळंत।
साल्हकुँवर, जोगी कहइ, अहलउ केम मरंत ॥ ६१८ ॥

जोगी सुणि, ढोलउ कहइ, तोनूँ केही तात।
थे पंथी, हुओ पंथ-सिर, म करि पराई बात ॥ ६१९ ॥

जोगिण जोगीसूँ कहइ, साँभळि नाथ समथ्थ।
का जीवाड़उ मारुवी, हूँ पिण इणहिज सथ्थ ॥ ६२० ॥

६१७—उसके साथ में एक सुंदरी जोगिन थी जिसका मारवणी से प्रेम था। उस जोगी ने नारी मारवणी और ढोला को पहचान लिया।

६१८—वह जोगी ढोला को देखकर कहने लगा—नर के साथ नारी जलती है, पर नर नारी के साथ क्यों जले ? जोगी कहता है कि हे साल्हकुमार व्यर्थ ही क्यों मरता है ?

६१९—ढोला कहता है कि हे जोगी सुनो, तुम्हें क्या चिन्ता है ? तुम पथिक हो, अपना रास्ता पकड़ो, पराई बात मत करो।

६२०—(तब) जोगिन जोगी से कहती है कि हे समर्थ स्वामी, सुनो, या तो मारवणी को जिला दो, नहीं तो मैं भी इसी के साथ (जल मरती) हूँ।

(झ) आव्या (क)। उणहिज वार (ग) = तिणहि ज बाट। चिंता भाजण (झ) = भाँजण साल्ह।

६१७—साथे (ख. ग)। जोगणी (ग)। री यारि (क. ख. त) = सूं प्यार। प्यार (ख) = नार।

६१८—क्यौं (ख)। बळै (घ)। अहिलौ (ग) इहलौ (त)। काँइ (ग) = केम।

६१९—तूँ काहे कमळात (त) = तोनूँ केही तात। चंपैथी (ग) = थे पंथी। हुऔ (क. ख. ग. घ) हो (त)। न (क. ख. घ. त) = म। करौ (क. ग. त)। म्हाँकी। (ग) म्हाँरी (त) = पराई। तात (घ. त) = बात।

६२०—नूं (घ) = सूँ। समाथ (ग. त)। जीवारौ (ग)। मारवणी (घ)। का हूँ इण साथ (ग)। इणही (क) = इण हिज।

जोगिण जोगी परचव्यउ वयणाँ अधिक अपार।
पाँणी मंत्रे पाइयउ, हुई सचेती नार ॥ ६२१ ॥

हुई सचेती मारवी, ढोलइ मनि आणंद।
जाँणि अँधारी रयणमइँ प्रगट्यउ पूनिम - चंद ॥ ६२२ ॥

ढोलइ - मारू आपणा सब सिणगार उतार।
जोगिण - जोगीनूँ दिया तिण वेळा तिण वार ॥ ६२३ ॥

(ढोला की पुनः नरवर यात्रा)

ढोलइ मनह विमासियउ, एक करीजइ एम।
करहइ चढि आपाँ खड़ाँ, नरवर पहुँचाँ जेम ॥ ६२४ ॥

के मेल्ह्या पूगल - दिसइ, किहीं भळाया भार।
साल्हकुँवर करहइ चढ्यउ, वाँसइ चाढी नार ॥ ६२५ ॥

६२१—जोगिन ने जोगी को अनेक प्रकार की बातों से समझाया। तब जोगी ने जल मंत्रित करके पिलाया जिससे मारवणी सचेत हुई।

६२२—मारवणी सचेत हुई और ढोला के मन में आनंद हुआ, मानो अँधियारी रात्रि में पूर्णिमा का चंद्रमा निकल आया।

६२३—ढोला और मारवणी ने अपने सारे श्रृंगार उतारकर उसी समय जोगी और जोगिन को दे दिए।

६२४—फिर ढोला ने मन में सोचा कि एक ऐसी विधि करनी चाहिए कि हम लोग ऊँट पर चढ़कर चल दें जिससे शीघ्र नरवर पहुँच जायँ।

६२५—(फिर उसने) कुछ लोगों को पूगल की ओर भेज दिया और कुछ को साथ का सामान सँभला दिया। फिर ढोला ऊँट पर चढा और नारी मारवणी को पास में चढ़ा लिया।

६२१—जोगिन (ग)। करि अरदास (ग)=वयणाँ अधिक। करहो (त) वयणे (ख. ग.)। मंत्री (ग)। नरि (क. ख. ग)।

६२२—मन (ख. ग. त)। उछाह (ग)=आणंद। नाह (ग)=चंद।

६२३—आपरा (ग)। सहि (ग)। उतारि (क. ख)। जोगीजोगिणनूँ (भ)।

६२४—मन (क. ग)। बिचारियउ (ग)। प्रेम (क. ख)=एम। आखे (त)= आपाँ। पहूचां (क. ख. ग)।

६२५—मेल्हा (ग) मल्हया (क)। दिसी (ग)। कही (ग)। बाँसै (ग)= करहइ। करहे (ग)=वाँसइ।

(ऊमर सूमरे की कथा)

हेरा गया ऊँमर-कन्हइ, कहिजइ एही बात।
ढोलउ-मारू एकला, लहिस न एही घात॥ ६२६॥

(ऊमर का पीछा करना)

एही भली न, करहला, कळहळिया कइकाँण।
का, प्री, रागाँ प्राँण-करि, काँइ अचंती हाँण॥ ६२७॥
किइँ, ठाकुर, अळगा वहउ, आवउ, अमल कराँह।
म्हे पिण जास्याँ नरवरइ, एकण साथ खड़ाँह॥ ६२८॥
ऊँमर सात्ह उतारियउ, मन खोटइ मनुहारि।
पगसूँ ही पग कूँटियउ, मुहरी झाली नारि॥ ६२९॥

६२६—(इधर ऊमर-सूमरे के) दूत ऊमर-सूमरे के पास गए और यह बात कहने लगे कि अब ढोला और मारवणी अकेले हैं, ऐसी बात फिर नहीं मिलेगी।

६२७—पीछे आते हुए ऊमर-सूमरे के घोड़ों की टापों का शब्द सुनकर मारवणी कहती है—

अरे ऊँट, यह तो ठीक नहीं, घोड़ों का शब्द हो रहा है। (फिर ढोला से कहती है कि) हे प्रिय, या तो इनको अपने प्राणों का मोह है (ये प्राणों के भय से भाग रहे हैं) या हमको कोई अचिंत्य हानि होनेवाली है।

६२८—ऊमर ढोला के पास पहुँच गया तो कुछ दूर से बोला—

हे ठाकुर! यों अलग क्यों चल रहे हो; आओ, विश्राम एवं जलपान आदि कर लें। हम भी नरवर जायँगे, (सभी) एकही साथ चलें।

६२९—ऊमर-सूमरे ने सात्हकुमार को खोटे मन से, आग्रह करके, उतार

६२६—गया (क. ख. ग. घ)। ऊँवर (झ)। कहीज (ख. ग)। ये ही (ग)। एकठा (ख)। लहिरिण (ग)। हिए (क. ख) इसड़ी (ग. ज)।

६२७—एह (ख. ग. थ) एक (झ)। कहकहियै (क. ख)। थल मथै भेकाणि (थ)=कळहळिया कइकाँण। कै (ख. ग) केइ (थ)। प्रिउ (थ)। रागे (थ. झ)। अवेही (क. ग) अचींती (थ)। हाणि (ख. थ. झ) हानि (क)।

६२८—किम (ग)। कमळ (ख)=अमलं। म्हेई (ग)=म्हे पिण। नरवराँ (ख)। नळवर जाइस्याँ (ग) नरवर जाइस्याँ (झ)। खड्ग वाँजि खडांह (क. ख. ग)।

६२९—मनुहार (ख. त)। पगै (क. ख. ग)=पगसूँ ही। कूटियइ (झ)। मुहुरी (ख)। झाले (त. घ)।

पीहर-संदी डूँमणी ऊँमर-हंदइ सथ्थ।
मारवणीनूँ तंतमइँ कहि समझावइ कथ्थ ॥ ६३० ॥

तत तणकइ, पिउ पियइ, करहउ ऊगाळेह।
भल वउळावो दीहड़ा, दई वळावण देह ॥ ६३१ ॥

थळ मथ्थइ ऊजासड़उ, थे इण केहइ रंग।
धण लीजइ. प्री मारिजइ, छाँड़ि विडाँणउ संग ॥ ६३२ ॥

लिया। ढोला ने उतरकर ऊँट का पैर बाँध दिया और मारवणी ने ऊँट की मुहरी (बाग) पकड़ ली (और ढोला ऊमर के पास चला गया)।

६३०—मारवणी के पीहर की एक ढोलिन ऊमर के साथ में थी (उसे यह बात मालूम थी)। वह मारवणी को सब बात बाजे में बजाकर समझाती है।

६३१—तंत्री (बाजा) झनझन करके बज रही है, पति ऊमर के साथ मद्य पी रहा है और ऊँट जुगाली कर रहा है। इस प्रकार दिन भले ही बिताओ, यदि विधाता बिताने दे।

६३२—इस थली पर यह उजाड़ जगह है, तुम इस कौन से रंग में हो (तुम्हारा यह क्या ढंग है)? अभी स्त्री छीन ली जाती है और पति मारा जाता है। पराया साथ छोड़ दो।

६३०—हंदी (ज. झ. थ)। डुंबणी (ज)। घालै नवली घत्त (ज) पाले नवली घत्त (थ)—ऊमर हंदइ सत्थ। संद (त)=हंदइ। सथ (ग)। नैं (ग)। मारू ढोलौ ऊगरै (च. ज. थ)=मारवणीनूँ तंतमइँ। समझाई (झ) समझावो (थ) समझावां (ज) समझावै (त) समझीया (च)। वत्त (थ. ज) वंत (च) कथ (ग. त)॥

६३१—तंती (च. थ)। तणकै (क. ख. ज) तनकै (ग) झुणकै (च) झुणणकै (त)। प्रीउ (क. च) पीउ (ख) प्रीय (ग) प्रीव (ज) प्रिय (थ)। पीवै (क. ख) पिवै (ग) पीयै (च. ज)। उगालेह (ग) ऊगालेहि (च. ज) उग्गालेहि (थ)। भलाँ (क. ग. थ) भले (ख)। वउळावत (च) वउळांवतां (थ)। दीहड़ा भलां बउळावतां (थ)। जउ दइ (ख) दैव (च)=दई। वुलांबाण (च)। देहि (च) देइ (थ)। विह आजूणी टाळेह (न)=दई वलावण देह।

६३२—मथै (च. ज. थ)। उजासड़उ (च. ज) रोही मझे (क. ख. ग. घ. त)। काही कउ कुसंग (च) अही संग कुसंग (ज) कोई कांई कुसंग (थ)=थे इण...रंग। लीज्जै (थ)। प्रीय (क) पीउ (ग) प्रीव (ज) प्रिय (थ)। मारजे (त)। छोड (ग. च. ज. त)।

मारवणी, तूँ अति चतुर, हीयइ चेत, गिँमार।
जउ कंतासूँ कामड़उ, करहउ काँबे मार॥ ६३३॥
मारू मन चिंता धरइ, करहइ कंब लगाइ।
करहउ उठ्यउ उताँमळउ, साल्ह अचंभे थाइ॥ ६३४॥
ऊँमर ढोलइनूँ कहइ, करह अणावाँ तोहि।
करहउ केण न झालियउ, हूँ आणेसूँ मोहि॥ ६३५॥
ढोलइ करहउ झालियउ, मारू आई सथ्थ।
प्रिउ, ए ऊँमर-सूँमरउ, करिस्यइ थाँ भारथ्थ॥ ६३६॥

६३३—हे मारवणी, तू बड़ी चतुर है; अरी गँवार, जरा हृदय में चेत। यदि कंत से काम है तो ऊँट को छड़ी से मार।

६३४—मारू मन में चिंता करती है और ऊँट को छड़ी से मारती है। ऊँट हड़बड़ाकर उठा। उसको यों उठता देखकर ढोला को आश्चर्य होता है।

६३५—ऊमर ढोला से कहता है—

अभी तुझे ऊँट मँगा देते हैं। इस पर ढोला उत्तर देता है कि मेरे ऊँट को (अभी तक) मेरे सिवाय किसी ने नहीं पकड़ा है (इस कारण उसे दूसरा कोई नहीं पकड़ सकेगा), इसलिये मैं स्वयं जाकर लाऊँगा।

६३६—ढोला ने ऊँट को पकड़ लिया, इसी समय मारवणी भी साथ-साथ चली आई और कहने लगी—हे प्रिय, यह तो ऊमरसूमरा है और आपसे लड़ाई करेगा।

६३३—मणहरणि (च) मनिहरणि (ज) मनहरणि (थ)=अति चतुर। नाद न भुल्लै मारवी (न)=मारवणी तूँ अति चतुर। हीयै तु छै गिमार (क) मनमां एम विचार (ख. ग) हिव तुं बूझि गमारि (च) सांभळि नीकी नारि (ज) हीयै तूंही गिमार (त) हिव तूं मूंधि गिमारि (थ) गहिली मुद्ध गिवार (न)। जे (क. ख) जौ (ग. ज) तउ (च)। प्रीतम (क. ख. ग. घ)=कंता। सू (च)। काम छै (क. ख. ग. घ.) कम्मडो (ज)। कांबा (च) कंबे (ज)। मारि (च. ज. घ. थ)।

६३४—लगाय (ग)। ऊठी (ख) ऊठौ (ग)। उंतावलो (ग)। अहंचो (क. ग) अचंभौ (ख)। थाइ (ग. घ)।

६३५—अंणावौ (क) बंधावुं (ग)। बीजै कही न झलजै करह वेसासौ मोहि [(ग) में द्वितीय पंक्ति]।

६३६—साथ (क. ख. ग)। दाखी कत्थ (झ)=आई सत्थ। अहो प्रीय ए ऊमरो (झ)। थां करिसी (ग)। भाराथ (क. ख. ग)।

ढोलइ मनह विमासियउ, साँच कहइ छइ एह।
करह झेकि दोनूँ चढ्या, कूँट न संभाळेह ॥ ६३७ ॥

[प्रिउ ढोलउ, त्री मारुई, करहउ कूँकूँ व्रन्न।
ऊमर दीठा एकठा, बड़ा ज तीन रतन्न ॥ ६३८ ॥]

ऊमर दीठी मारुई, डीँभू जेही लंकि।
जाँणे हर-सिरि फूलड़ा, डाके चढ़ी डहक्कि ॥ ६३९ ॥

ऊमर ऊतावळि करइ पल्लाणियाँ पवंग।
सुरसाणी सधा खयंग चढ़िया दळ चतुरंग ॥ ६४० ॥

६३७—ढोला ने मन में सोचा कि यह सच कहती है। तब ऊँट को बिठाकर दोनों चढ़ गए परंतु ऊँट के पैर के बंधन की ओर ध्यान नहीं दिया।

६३८—पति ढोला, स्त्री मारवणी और कुंकुम वर्णवाला ऊँट—इन तीन बड़े रत्नों को ऊमर ने एक ही साथ जाते देखा।

६३९—ऊमर ने बर्र जैसी (पतली) कमरवाली मारवणी को देखा। वह ऊँट पर चढ़ी डहडहा रही थी मानों महादेवजी के सिर पर फूल डह-डहा रहे हों।

६४०—ऊमर ने जल्दी करके घोड़ों पर जीन कसे। सीधी खुरासानी तलवारों को लेकर चतुरंगिनी फौज बढ़ी।

६३७—मन (ग)। करहो (क. ख. ग. घ)। झेक (ख. ग)। दूने (घ. त) दूनू (क) विन्हे (ग)।

६३८—मारू-हंदै देसमैं दीठा तीन रतन्न।
इक ढोलो इक मारवी करहो कूँकूँ-व्रन्न ॥ (न)

नोट—केवल (ट) और (न) में।

६३९—डिंभू (च. ज)। जेहै (ज) जेही (च): लंकि (ख)। सिर (च. ज)। चढी (थ)। दडडकि (थ)।

६४०—ऊंमरि (थ)। अति भतावलि (थ)=ऊतावळि। पाथरवा (ज) सही (थ)=खयंग। चढियो (ज)।

ऊँमर दीठा जावता, हळहळ करइ करूर।
एराकी ओखंभिया, जइसइ केती दूर ॥ ६४१ ॥

मारू स्रवणे संभळी, वळि दीठी नयणेह।
ऊँमर खड़इ उताँमळा लागउ अधिकउ नेह ॥ ६४२ ॥

ऊँमर बिच छेती घणी घाते गयउ जिहाज।
चारण ढोलइ साँमुहउ आइ कियउ सुभराज ॥ ६४३ ॥

चारण ढोलइनूँ कहइ, किस गुण आया, राज।
ऊपर थे बिन्हें चढ्या, करह कूट किण काज ॥ ६४४ ॥

६४१—ऊमर ने उनको जाते हुए देखा और वह क्रूर (दुष्ट) हलचड़ी करने लगा। उसने घोड़े पीछे दौड़ा दिए और कहने लगा कि कितनी दूर जायगा।

६४२—ऊमर ने मारवणी (के रूप) को कानों से सुना ही था अब आँखों से देख लिया। इसलिये अधिक लगन लगा हुआ ऊमर घोड़ों को शीघ्रता के साथ दौड़ाने लगा।

६४३—जहाज (ऊँट) ऊमर और अपने बीच में बहुत फासला डाल गया। इसी समय एक चारण ने ढोला के सामने आकर शुभराज किया।

६४४—फिर चारण ढोला से कहने लगा—आप किस बूते पर यहाँ तक आए। तुम दोनों तो ऊपर चढ़े हो फिर ऊँट के पैर में बंधन किस लिये ?

६४१—हरहळ (ग)। कळहळ (झ)। जावै (क. ग) जस्यै (झ)।

६४२—नित सुणी (क. त)=संभळी। वळ (ग) वळी (ख)। ऊँतावळा (ख. ग) उतावळौ (झ)। अधिक स्नेह (क. ख)।

६४३—बिच (ख. ग)। पड़ी (ख)=घणी। संमहौ (ख)। साल्ह साम्हो (क. घ) =ढोलइ साँमुहउ। आय (ग) मिल्यौ (क)=आइ। तास करै (क. घ)=कियौ।

केवल (क. ख. ग. घ. त) में।

६४४—सुं (क. घ)=नूँ। बेउं (ख)। करहौ (क. ग. घ)। कूटयौ (क. ग. घ.) कूटै (ख)।

केवल (क. ख. ग. घ. त) में।

कूट कटाड़ी दे छुरी उणही कर तिण तास।
चारण, तूँ देखइ जिसा, कहिज्यउ ऊँमर पास ॥ ६४५ ॥

बीजइ दिन ऊँमर मिल्यउ, पह ऊगंतइ सूर।
ढोलऊ-मारू एकठा, कहि, केतीहेक दूर ॥ ६४६ ॥

ऊँमर, सुणि मुझ वीनती, दउड़ि म मार तुरंग।
करहउ लँधियउ कूटियउ आडावळ बड वंग ॥ ६४७ ॥

ऊँचा डूँगर, विखम थळ, लागा किर तारेहि।
कूठ्यइ करहइ लंघिया, घोड़ा म म्मारेहि ॥ ६४८ ॥

६४५—तब उसने चारण को छुरी देकर उसी के हाथ से उस (ऊँट) का बंधन कटवाया (और चारण से कहा)—हे चारण, तुम हमको जैसा देखते हो, जाकर वैसा का वैसा ऊमर से कह देना।

६४६—(चारण वहाँ से चला।) दूसरे रोज सूर्य के उदय होते हुए मार्ग में ऊमर मिला (और उससे पूछने लगा कि) बताओ, ढोला और मारवणी, जो एक साथ जा रहे हैं, कितनी दूर पर हैं ?

६४७—(उत्तर में चारण ने कहा)—हे ऊमर, मेरी प्रार्थना सुनो, बेचारे घोड़ों को दौड़ाकर मत मार डालो। (वहाँ तो) पैर बँधा हुआ ऊँट आडावळा की महान् घाटी को लाँघ गया है।

६४८—ऊबड़-खाबड़ भूमिको और ऊँचे पहाड़ों को, जो मानो तारों से बातें करते हैं, ऊँट पैर बँधे हुए ही लाँघ गया है। (अब) तू घोड़ों को दौड़ाकर मत मार।

६४५—कढि कटारी (ख. ग) = कूट कटाड़ी। काटे कूटौ तास (ख. ग) काटे बंधण तास (झ) = उणही कर तिण तास। जिसौ (क) तिसौ (ख)।

केवल (क. ख. ग. घ. त. झ) में।

६४६—प्रह (क. घ)। कहो स (क. घ) = कहि। केती (क. घ) = केतीहेक। एक (ग) इक (झ) = हेक। कहो स केती (त) = कहि केती हेक। दूरि (क)।

केवल (क. ख. ग. घ. त झ) में।

६४७—सुणी (ख)। वीनंती (क)। न (ख) = म। करहे (ख)। कूँटै करहै लंघीया (क. ग)। उळंघीयाँ (घ)। आडवळारौ बंग (ख)।

केवल (क. ख. ग. घ. त) में।

६४८—ऊचा (च)। पंथ (ज) = डूंगर। लंगा (ज)। कुंट्यै (ज) कुहटे (थ)। मा (थ)। सो पिण त्रिण पाँवाँ थकां मति घोड़ा मारेह [(ज) में द्वितीय पंक्ति]।

कूटि कटाड़ी इणि करह, हिव नरवर नेड़ेह।
ऊँमर, सुणि मुझ वीनती, घोड़ा म म्मारेह ॥ ६४९ ॥

(ढोला का नरवर लौट आना)

ऊँमर मन विलखउ हुयउ चारण-वचन सुणेह।
उणिहि ज पँथ पाछउ वळयउ. साल्ह निचंत करेह ॥ ६५० ॥
ढोलउ नरवर आवियउ मंगळ गावइ नार।
उछव हुवउ आयउ घरे हरख्यउ नगर अपार ॥ ६५१ ॥

(दंपति-विनोद)

साल्हकुमर विलसइ सदा काँमिण सुगुण सुगात।
माळवणीनूँ एक निस, मारवणी दुइ रात ॥ ६५२ ॥

६४९—ढोला ने इन्हीं हाथों से ऊँट का बंधन कटवाया है और अब तो वह नरवर के निकट होगा। हे ऊमर, मेरी विनती सुन, घोड़ों को मत मार।

६५०—चारण के वचन सुनकर ऊमर मन में उदास हो गया और उसी मार्ग से वापिस लौट गया और इस प्रकार साल्हकुमार को निश्चिंत कर गया।

६५१—ढोला नरवर लौट आया। वहाँ नारियाँ मंगल-गीत गाने लगीं और उत्सव होने लगा। ढोला घर लौट आया (यह सुनकर) सारा नगर बहुत हर्षित हुआ।

६५२—अब साल्हकुमार सद्गुणवती और सुंदरी नारियों के साथ नित्य

६४९—कूंट (क)। करद (क. घ)=करह। नळवर (ग)। गढ नेड़ेह (क. घ)= नेड़ेह। छै तेह (झ)=नेड़ेह। सुण (ग)। न (ख. ग)=म। घोड़ा दौड़ न मारेह (झ)।

केवल (क. ख. ग. घ. झ. त) में।

६५०—मनह (ख)। कियौ (क. घ)। भणेह (झ)=सुणेह। उण (क. ग)। नचींत (ख)।

केवल (क. ख. ग. घ. झ. त) में।

६५१—नळवर (घ)। नारि (क. ख)। हूवा (ग) करि (क. घ)=हूवो। आया (ग)। हरख्या (क)।

६५२—कामणि (ग)। निशि (क)। मारवणी (ख)=माळवणी। राति (ग. त)।

केवल—(क. ख. ग. घ. त) में।

मारवणी नइ माळविण ढोलउ तिण भरतार।
एकणि मंदिर रँग रमइ, की जोड़ी करतार॥ ६५३॥

(मारवाड़ की निंदा)

ततखण माळवणी कहइ, साँभळि कंत सुरंग।
सगळा देस सुहाँमणा, मारू - देस विरंग॥ ६५४॥
बाळऊँ, बाबा, देसड़उ, पाँणी जिहाँ कुवाँह।
आधीरात कुहक्कड़ा, ज्यउँ माणसाँ मुवाँह॥ ६५५॥

सुख भोगने लगा। उसने मालवणी को एक रात और मारवणी को दो रातें दीं (एक रात मालवणी के साथ रहता और दो रात मारवणी के साथ)।

६५३—मारवणी, मालवणी और उनका पति ढोला एक ही महल में आनंद से रंग मनाते हैं। विधाता ने यह (अपूर्व) जोड़ी बनाई।

६५४—उस समय मालवणी कहती है—हे रसिक कंत, सुनो, सारे देश सुहावने हैं, किंतु एक मारू-देश (मारवाड़) ही विरंगा (नीरस) है।

६५५—हे बाबा, ऐसा देश जला दूँ जहाँ पानी गहरे कुँवों में मिलता है और जहाँ पर (लोग) आधी रात को ही पुकारने लगते हैं मानों मनुष्य मर गए हों।

६५३—मारू अर माळवणी (क. ख. ग. घ)। ढोलै (क. ख. ग. घ)। त्यांहरै ढोलो (न)=ढोलो तिण एकण (ग. न) सुखै (न)=रंग। रंग में (क. ख)=रँग रमइ। कीई (ग) करि (न)=की।

केवल (क. ख. ग. घ. न) में।

६५४—सँभळ (ग)। सिगळा (ग)।

केवल (क. ख. ग. घ.) में।

६५५—बाळूँ (क. ख. ग. घ. न)। बाबा बाळूउँ (च. थ)। ढोला प्रीतम (न)= बाबा। जहाँ पांणी (क. ख) जिहाँ पांणी (ज. थ. न. च)। कुएहि (च) कुवेह (ज) कूआं (न) कूवेहि (थ) रातै (न) रातइ (थ)। पुंकारण (च) कूकवा (ज) कूकुयउ (थ) कूकुआ (न) विहांवणौ (क. ख. ग. घ)=कुहक्कड़ा। ज्यौं (क. ख. ग. घ) जिउ (च) जाणें (ज) जिम (न)। मांणिसां (ग) मांणस (च. न)। मुएहि (च. थ) मुवेह (ज) मूआह (न) मुवां (ग)।

बाळउँ, बाबा, देसड़उ, पाँणी - संदी ताति।
पाणी - केरइ कारणइ प्री छंडइ अधराति ॥ ६५६ ॥
[बाळूँ, ढोला, देसड़उ, जइँ पाँणी कूँवेण।
कूँकूँ वरणा हथ्थड़ा नहीं सुँ घाढा जेंण ॥ ६५७ ॥]
बाबा, म देइस मारुवाँ, सूधा एवाळाँह।
कंधि कुहाड़उ, सिरि धड़उ, बासउ मंझि थळाँह ॥ ६५८ ॥
बाबा, म देइस मारुवाँ, वर कूँआरि रहेसि।
हाथि कचोळउ, सिरि घड़उ; सीचंती य मरेसि ॥ ६५९ ॥

६५६—हे बाबा, उस देश को जला दूँ जहाँ पानी का भी कष्ट है और पानी (निकालने) के लिये प्रियतम आधी रात को ही छोड़कर चले जाते हैं।

६५७—हे ढोला, उस देश को जला दूँ जहाँ पानी गहरे कुँवों में मिलता है और जहाँ कुंकुमवर्णवाले सुंदर हाथ उसको नहीं निकालते।

६५८—बाबा, मारू-देश में सीधेसादे भेड़ चरानेवालों को मुझे मत देना (विवाहना), जहाँ कंधे पर कुल्हाड़ा और सिर पर घड़ा रखना पड़ेगा और थळी (मरुभूमि) के बीचों-बीच रहना पड़ेगा।

६५९—बाबा, मुझे मारू देश में मत देना, कुमारी चाहे रह जाऊँ।

६५६—बाळूँ (क. ख. ग. घ)। बाळुँ (न)। बाबा बाळूँ (च. थ)। पांणि (च)। जहाँ पांणी की (क. ख. ग. घ)=पाँणी-संदी की (क. ख. ग. घ. न) हंदी (ज.) हुंती (च)। तात (क. ख. ग. घ) वात (च. थ)। धण एकली सुइ रहे (क. ख. ग. घ. न) एक घड़ी के कारणें (ज)=पांणी केरइ कारणइ। प्रीव (ज) प्रिय (थ)। सींचै (क. ख. ग. घ. न) छांडै (ज)=छंडइ। आधी (च. ग. थ)। रात (ज. क. ख. ग. घ)।

६५७—केवल (ज) में।

६५८—न (च. थ)=म। देईस (क. ख. ग. घ. झ) मारवाडि (ज) मारुई (च. थ)। जावा (ज. थ. च)=सूधा। गोवाळांह (क. ख. ग. घ. न) एहवळाहँ (ज)। सिर (क. ख. ग. घ. ज)। मझि (थ) मंझि (क. ख. ग. घ)।

६५९—न (च. थ)। देई (ग. च. ज)। मारुइ (च. थ) मारुवाड़ि (ज)। थळि (च) वळि (थ)। कुमारि (क. ख. ग. घ) कुँआरि (च. ज) कुँवारी (थ)। राह (थ)। हुंचै पेट भरेस (ज)=वर कूँआरि रहेसि। हाथ (च. ज. क. ख. ग. घ)। सिर (क. ख. ग. घ. च. ज)। पांणी भरति (ज) सींचता (थ) सीचंती (क. ख. ग. घ) सीचंतौ (झ)=सीचंती य। कूवाह (थ)=मरेसि।

मारू, थाँकइ देसड़इ एक न भाजइ रिड्ड।
ऊचाळउ क अवरसणउ, कइ फाकउ, कइ तिड्ड ॥ ६६० ॥

जिण भुइ पन्नग पीयणा, कयर-कँटाळा रूँख।
आके-फोगे छाँहड़ी, हूँछाँ भाँजइ भूख ॥ ६६१ ॥

पहिरण - ओढण कंबळा, साठे पुरिसे नीर।
आपण लोक उभाँखरा, गाडर - छाळी खीर ॥ ६६२ ॥

वहाँ हाथ में कटोरा (जिससे घड़े में पानी भरा जाता है), और सिर पर घड़ा, इस प्रकार पानी ढोती-ढोती ही मर जाऊँगी।

६६०—हे मारवणी, तुम्हारे देश में एक भी कष्ट दूर नहीं होता, या तो ऊचाळा होता है, या वर्षा नहीं होती, या फाका या टिड्डी आ पड़ती है (एक-न-एक कष्ट सदा लगा ही रहता है)।

६६१—(तुम्हारा देश ऐसा है) जिस भूमि में पीणे साँप हैं, जहाँ करील और ऊँटकटारा घास ही पेड़ गिने जाते हैं, जहाँ आक और फोग के नीचे ही छाया मिलती है और जहाँ भुरट नामक कँटीली घास के बीजों से ही भूख दूर होती है।

६६२—जहाँ पहिनने-ओढ़ने के लिये कंबल ही मिलते हैं, जहाँ साठ पुरुष नीचे पानी मिलता है, जहाँ लोग स्वयं भ्रमणशील (?) हैं, और जहाँ भेड़ और बकरी का ही दूध मिलता है।

६६०—मारवाडिकै (भ.) मारवाड़कै (न) मारुआडि पै (क-भू. थ) = मारू थाँकइ। देसमें (भ. न) देस-महि (क-भू) देस-मइ (थ)। मारूकोइ देसमाहि (च)। तीजै (क. ख) जावै (न) जाइ (च) जाई (थ) जाश्रै (क-भू) भाजइ। रीड (क. ख) रड्ड (क-भू) पीड (न. भ.) रिड (ग)। कवही होई (ग) कबही हुवै (न) कदही होइ (च) कदेही होई (थ) = ऊचाळउ क। अवरसणा (क-भू)। कबही मेह बरसे नहीं (भ.)। का (क. ख. घ) = कइ। पाका (ग) फाकउ (क. ख. ग. ध. भ.)। का (क. ख)। कबही फाका (न) = कइ फाका कइ। तीड (क. ख. ग. न. भ.)।

६६१—पीवणा (थ)। जिहाँ छै सांगर रूखड़ो (ज) = जिण भुइ पन्नग पीयणा। कंटाळो (ज) कूवा कंठे (थ) = कयर कँटाळा। हुंचै (ज) फूंगा (ध)। भुख (थ)। हुंछां तणां भुरट (घ)।

६६२—पैहरणा (ज)। पुरसे (च)। देस खरो ही भंखरो (ज)।

(मालव देश की निंदा)

वळती मारवणी कहइ, मारू - देस सुरंग।
बीजा तउ सगळा भला, माळव - देस बिरंग॥ ६६३॥

बाळूँ; बाबा, देसड़उ, जहाँ पाँणी सेवार।
ना पणिहारी झूलरउ, ना कूवइ लैकार॥ ६६४॥

बाळूँ, बाबा, देसड़उ, जहाँ फीकरिया लोग।
एक न दीसइ गोरियाँ, घरि - घरि दीसइ सोग॥ ६६५॥

(मारवाड़ की प्रशंसा)

मारू देस उपन्निया, तिहाँ का दंत सुसेत।
कूझ - बची - गोरंगियाँ, खंजर जेहा नेत॥ ६६६॥

६६३ - उत्तर में मारवणी कहती है कि मारू देश सुरंगा है: और सब देश तो अच्छे हैं पर मालव देश बिरंगा है।

६६४—बाबा, उस देश को जला दूँ जहाँ पानी पर सेवार छाया रहता है और जहाँ न तो पनिहारिनों का झुंड आता-जाता रहता है और न कूँवों पर पानी निकालनेवालों का लयपूर्ण शब्द ही होता है।

६६५—बाबा, उस देश को जला दूँ जहाँ के लोग फीके (नीरस) हैं, जहाँ एक भी गोरी (सुंदरी) दिखाई नहीं देती, और जहाँ (काले वस्त्र पहनने का रिवाज होने के कारण) घर-घर शोक छाया-सा दिखाई देता है।

६६६—जो मारू-देश में उत्पन्न हुई हैं उनके दाँत बड़े उज्ज्वल होते हैं, वे कुंझ पक्षी के बच्चों की भाँति गौर-वर्ण होती हैं और उनके नेत्र खंजन जैसे होते हैं।

६६३—मारू (क. ख) = माळव। वळ बीजा केइ क भला पिण माळव देस विरंग (न)।

६६४—ललकार (झ)।

६६५—प्रातम (न) = बाबा। फीकरिथा (ग. न)। गोरड़ी (न) घर घर (क. ख. न)।

६६६—उपनीया (ग)। ताहकां (ग)। सपेत (ग) सुस्वेत (च)। कूंभी (ग)। बचा (ग)। खंज गली लांग श्रंगियां (थ)।

मारू - देस उपन्नियाँ, सर ज्यउँ पध्धरियाह ।
कड़वा कदे न बोलही, मीठा बोलणियाह ॥ ६६७ ॥

देस निवाणूँ, सजळ जळ, मीठा - बोला लोइ ।
मारू काँमिणि दिखणि धर हरि दीयइ तउ होइ ॥ ६३८ ॥

देस सुरंगउ, भुइं निजळ, न दियाँ दोस थळाँह ।
घरि घरि- चंद - वदन्नियाँ, नीर चढ़इ कमळाँह ॥ ६६९ ॥

सुणि, सुंदरि, केता कहाँ मारू - देस - वखाँण ।
मारवणी मिळियाँ पछइ जाण्यउ जनम प्रवाँण ॥ ६७० ॥

झगड़उ भागउ गोरियाँ, ढोलइ पूरी सख्ख ।
मारू रूळियाइत हुई, पाँमी प्रीय परख्ख ॥ ६७१ ॥

६६७—मारू-देश में उत्पन्न हुई स्त्रियाँ तीर की भाँति सीधी होती हैं, वे कभी कटुवचन नहीं बोलतीं और स्वभाव से ही मीठी बोलनेवाली होती हैं।

६६८—वहाँ की भूमि नीची और उपजाऊ है, पानी स्वच्छ एवं स्वास्थ्यप्रद है, और लोग मीठे बोलनेवाले हैं। ऐसे मारू-देश की कामिनी, ईश्वर ही दे तो, दक्षिण की भूमि में मिल सकती है।

६६९—ढोला कहता है—

(मारवाड़ का) देश सुरंगा है, यद्यपि भूमि निर्जल है—थळी को दोष मत दो—वहाँ जल पर खिले हुए कमलों के समान, घर-घर चंद्रवदनी स्त्रियाँ हैं।

६७०—हे सुंदरी, सुनो, मैं मारू देश का कितना बखान करूँ। मारवणी के मिलने के बाद मैंने जन्म को प्रमाणित (सफल) जाना है।

६७१—ढोला ने मारवणी की साख भरी (समर्थन किया), और दोनों

६६७—सरि जिम (ज)। पधरीयांह (ज. ग) पधरीयाँ (त्र)। कडुआ बोल न जाणही (थ) कडवा बोल ण बोलही (ज) कडवा बोल ण जाणही (च) सो मीठा (च)=मीठा।

६६८—निवांणी (ज)। जळ सजळ (थ)। बोली (ज. थ)। दखण धरा (त्र) दक्खिण वर (थ)। जै हरि (ज) जौ हरी (त्र)=हरि। जै हरि दिय त होई (थ)।

६६९—सजळ (ग)। वदनीया (ग)। चंदा (झ)। चढौ (घ)।

६७०—कहुं (च) कहूं (थ)। पछै (थ)। जाणां (च) जाण्या (थ)।

६७१—वे त्रियाँ (ग. ज)। कँवरें (ज)=ढोलै। सक्खि (च) साख (ज) साखि (थ)। रळियाइत (ज. थ)। पीव (ज)। परख (ज)।

माळव - देस विखोडिया, मारू किया वखाण ।
मारू सोहागिण थई सुंदरि सगुण सुजाण ॥ ६७२ ॥

जिम मधुकर - नइँ केतकी, जिम कोइल सहकार ।
मारवणी - मन हरखियउ तिम ढोलइ भरतार ॥ ६७३ ॥

उपसंहार

आणद अति, ऊछाह अति नरवर माँहे ढोल ।
ससनेही सयणाँ - तणाँ कळिमाँ रहिया बोल ॥ ६७४ ॥

स्त्रियों का झगड़ा मिट गया । मारवणी आनंदित हुई । उसने प्रियतम के प्रेम की परीक्षा पा ली ।

६७२—ढोला ने मालव देश की अप्रशंसा की और मारू देश की प्रशंसा की । इस प्रकार सद्गुणवती और चतुर मारवणी सौभाग्यवती हुई ।

६७३—जिस प्रकार केतकी से मधुकर का, और जिस प्रकार आम्रवृक्ष से कोकिल का, मन हर्षित होता है उसी प्रकार ढोला पति से मारवणी का मन हर्षित हुआ ।

६७४—अत्यंत आनंद और बड़े उत्सवों के साथ ढोला नरवर में रहने लगा । उन प्रेमी स्नेहियों की वार्ता इस कलियुग में रह गई है ।

६७२—मालवणी (क. ख. घ. न) । विखोडियों (ग. न) । कीयां (न) । सोहागणि (क. ख) सुहागण (ग) । हुई (न) = थई । सुगुण (ग. न) ।

६७३—सिर (न) = नइँ । सुं (न) = मन । ज्यों (क. ख. ग) = तिम । सु ढोलौ (ग) = ढोलइ । ढोलो (न) । ज्युं हंस सोहै मांनसर ज्युं ढोलो मारूरै भरतार [(झ) में द्वितीय पंक्ति] ।

६७४—अधिक (न) = अति । वाज्या (न) = माँहे । ससनीहो (क. ख) । सयणां (ग. न) । तणौ (क. ख) तणी (न) । मैं (ग. न) । रहियौ (न) ।

परिशिष्ट

नोट

परिशिष्ट में भिन्न भिन्न प्रतिलिपियों में उपलब्ध पद्य अथवा गद्य का वही अंश दिया गया है जिसका हमारे अनुसार वाचक कुशल-लाभ से पूर्व की 'ढोला-मारूरा दूहा' की असली प्राचीन प्रति में, यदि प्राप्य होती तो, होना संभव नहीं था।

जो दोहे मूल में रख लिए गए हैं उनकी संख्या, मूल के अनुसार, परिशिष्ट में उद्धृत प्रतिलिपियों में दे दी गई है जिससे यदि कोई विद्वान् उन प्रतिलिपियों के पूर्ण रूप को खड़ा करना चाहें तो, संख्याओं के स्थान पर मूल के उन्हीं संख्याओंवाले दोहों को रखकर, सहज ही में कर सकते हैं।

परिशिष्ट (१)

टिप्पणी

शीर्षक

ढोला—अप० ढोल्ला। इसकी व्युत्पत्ति संस्कृत के दुर्लभ शब्द से हुई बताई जाती है (दुर्ल्लभ, दुल्लभ, दुल्लह, दुल्लह, ढोल्लह, ढोल्ल, ढोल्ला)। अपभ्रंश कविता में यह शब्द नायक के अर्थ में आता था। हेमचंद्र के प्राकृत-व्याकरण के अपभ्रंश भाग में यह शब्द तीन बार आया है* और तीनों बार नायक के अर्थ में। प्राकृत-†पिंगल-सूत्र में भी एक स्थान पर यह शब्द आया है और टीकाकारों ने वहाँ पर उसका अर्थ ढोल किया है पर वीर, नायक, नेता यह अर्थ भी किया जा सकता है।

राजस्थानी भाषा में यह शब्द बहुत प्रचलित रहा है और आज भी है। राजस्थान की ग्रामीण कविता एवं गीतों में इसका बहुत प्रयोग हुआ है। इसका अर्थ नायक, पति या वीर होता है और यह बहुधा संबोधन में ही प्रयुक्त होता है। दो-चार उदाहरण नीचे दिए जाते हैं—

(१) गोरी छाई छै जी रूप, **ढोला**, धीराँ-धीराँ आव।

---

* (१) **ढोल्ला** सामला, धण चंपावण्णी। (८-४-३३०)
  (२) **ढोल्ला**, मइँ तुहुँ वारिया, मा कुरु दीहा माणु।
  णिद्दए गमिही रत्तडी, दडवड होइ विहाणु॥ (८-४-३३०)
  (३) **ढोल्ला**; एह परिहासड़ी अइभ न कवणहिं देसि।
  हउँ झिज्जउँ तउ-केहिँ, पिअ, तुहुँ पुणि अन्नहि रेसि॥ (८-४-४२५)

† **ढोल्ला** मारिय ढिल्लि महँ मुच्छिउ मेच्छ-सरीर।
पुर जज्जल्ला मंतिवर चलिअ बीर हम्मीर॥
चलिअ वीर हम्मीर पाअ-भर मेइणि कंपइ।
दिगमग णाह अंधार धूलि सुररह आच्छाहिइ॥
दिगमग णाह अंधार आण खुरसाण कउल्ला।
दरमरि दमसि विपक्ख मारु ढिल्ली मह **ढोल्ला**॥

(२) सावण खेती, भँवरजी, थे करी जी, हाँजी ढोला, भादूड़े कर्यो छो निनाण। सीट्टाँरी रुत छाया, भँवरजो, परदेश में जी, ओ जी म्हाँरा घणा-कमाऊ उमराव, थाँरी प्यारी ने पलक न आँवड़े जी।

(३) गोरी तो भीजै, ढोला, गोखड़े, आली जो भीजै जी फौजाँ माँय। अब घर आय जा आसा थारी लग रही हो जी।

(४) दूधाँने सीँ चावो ढोला जीरो नीँ बूड़ो ओ राज।

हमारी सम्मति में यह ढोला शब्द किसी व्यक्ति के नाम से प्रसिद्ध हुआ है। किसी प्रसिद्ध लोक-प्रिय व्यक्ति का नाम ढोला (सं० दुर्लभराज) रहा होगा और बाद में उसका नाम नायक के अर्थ में प्रचलित हो गया होगा। राधा और कृष्ण वास्तविक व्यक्ति थे परंतु अंत में वे समस्त कविता के नायक-नायिका हो गए। यह ढोला या दुर्लभराज कौन था यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता पर हमारा अनुमान है कि यह ढोला इसी ढोला-मारूरा दूहा काव्य का नायक था। यह ढोला एक ऐतिहासिक व्यक्ति है। वह जयपुर के राजवंश का पूर्व पुरुष था। जयपुर का कछवाहा राजवंश पहले नरवर में राज्य करता था। इस नरवर को नल नाम के राजा ने बसाया था और इसी नल का पुत्र ढोला था। ढोला की दो-तीन पीढ़ियों के बाद कछवाहे राज-पुताने में चले गए और वहाँ राज्य करने लगे। इतिहास के अनुसार ढोला का समय संवत् १००० के आस-पास आता है। नैणसी ने अपनी ख्यात में लिखा है कि इस ढोला के दो स्त्रियाँ थीं जिनमें एक मारवाड़ की और दूसरी मालवे की थी। राजस्थान के प्रसिद्ध ऐतिहासिक मुंशी देवीप्रसादजी लिखते हैं कि आमेर के कछवाहों की लंबी-चौड़ी वंशावली में लिखा है कि नल नरवर का राजा था जिसकी रानी दमयंती थी और ढोला उसका बेटा था जो बहुत बलवान् और स्त्रियों का रसिया था। वह मारुणी नाम की एक स्त्री को बहुत प्यार करता था। ढोला और मारवणी के विवाह तथा प्रेम की कथा का राजस्थान में बहुत प्रचार हुआ और ढोला-मारू ये नाम घर घर में प्रसिद्ध हो गए। धीरे धीरे इन्होंने इतनी लोक-प्रियता प्राप्त कर ली कि ये नायक-नायिका के साधारण अर्थ में प्रयुक्त होने लगे।

मारू—सं० मरु से। इसका अर्थ है मरु का या मरु की। यहाँ यह शब्द स्त्रीलिंग है। इस शब्द के अनेक रूपांतर मिलते हैं जैसे मारू, मारुवी, मारवी, मारुवणी, मारवणो, मारवण, मरवण। राजस्थान में रानी का नाम प्रायः देश के नाम पर रख दिया जाता है; जैसे मीराँ के लिये मेड़तणी राणी (मेड़तावाली

रानी)। इसी प्रकार ढोला की इस रानी का नाम मारवणी प्रसिद्ध हुआ। उसकी दूसरी रानी मालवा की थी और वह माळवणी (माळवे की) नाम से प्रसिद्ध थी। कभी कभी कन्या का नाम भी अपने देश पर रख दिया जाता है। संभव है, ढोला की स्त्री मारवणी का यह नाम उसके पितृगृह का ही रखा हुआ हो।

ढोला की भाँति मारू या मारवण शब्द भी राजस्थान में खूब प्रचलित रहा है। गीतों आदि में इसका बहुत प्रयोग मिलता है। वर्त्तमान काल में नायिका के अर्थ में मारू शब्द नहीं आता, मारवण या मरवण आता है। मारू का प्रयोग अब पुँल्लिंग में, नायक के अर्थ में होता है और वह कभी कभी ढोला शब्द के साथ भी आता है। नीचे कुछ उदाहरण दिए जाते हैं—

(१) उर नवड़ी, कड़ पातळी, ठावो-ठावो मंस।
ढोला, थारी **मारवण** पावासररो हंस॥

(२) **मारवण** थारे तो नैणांरो पाणी लागणो।
हां प्यारा **मारवण**, थारा नैणाँरो पाणी लागणो॥

(३) मदछकिया महाराज, थाँने कण तो पियाई दारूड़ी।
बोलो नी, दारूरा **मारू**, पूछूँ थाँरी **मारूड़ी**॥

(४) इतरा में, **ढोला-मारू**, थे ही जी गँवार। नित उठ घुड़ला थे कसो जी म्हाँरा राज। इतरा में, **मरवण**, म्हे हाँ ए सपूत, नित उठ रण में म्हे ही चढाँजी म्हारा राज॥

मारू इस काव्य की नायिका है। यह पूगळ के परमार राजा पिंगळ की कन्या थी। संभव है कि इसकी कथा के अत्यंत प्रसिद्ध होने के बाद व्यक्ति-वाचक मारू या मारवणी शब्द जातिवाचक बन गया हो और नायिका के अर्थ में प्रयुक्त होने लगा हो।

रा—पश्चिमी राजस्थानी (मारवाड़ी) में संबंधकारक का चिह्न रो (पुरानी वर्त्तनी में रउ या रौ) है। हिंदी की भाँति राजस्थानी में भी भेद्य के अनुसार यह चिह्न बदल जाता है—

पुँल्लिंग एकवचन—रो (रउ, रौ)	= (हिं०) का
पुँल्लिंग बहुवचन—रा	= (हिं०) के
विकारी रूप (पुँल्लिंग)—रे (रइ, रै)	= (हिं०) के
(स्त्रीलिंग)—री	= (हिं०) की

प्राचीन राजस्थानी कविता में रो के स्थान पर अन्यान्य संबंध कारक के प्रत्यय भी प्रयुक्त हुए हैं। जैसे—को (पूर्वी रासस्थानी और व्रज), नो (गुजराती), चो (मराठी), जो (सिंधी), दो (पंजाबी)।

रो प्रत्यय की उत्पत्ति प्रा० और अप० केरो- केरउ प्रत्यय से हुई है।

दूहा—अप० हिं० दोहा। इस शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत दोधक या दोग्धक शब्द से की जाती है। हमारी सम्मति में दोहा अपभ्रंश का ही शब्द है। यह छंद दो पंक्तियों में लिखा जाता है इसी कारण इसका यह नाम पड़ा है। राजस्थानी में यह दूहो (बहु० दूहा) कहलाता है। अपभ्रंश-काल से यह साहित्य का सबसे अधिक लोकप्रिय छंद है। छोटे होने के कारण इसको याद रखने में सुभीता होता है। राजस्थान में आज भी हजारों दूहे लोगों की जबान पर पाए जाते हैं।

राजस्थानी में दूहा छंद सब छंदों का मानो प्रतिनिधि है। अतः कभी कभी सामान्य छंद अर्थ में भी इसका प्रयोग कर दिया जाता है।

राजस्थानी में सोरठा भी दोहे के अंतर्गत समझा जाता है और उसे सोरठियो दूहो (= सोरठ देश का दोहा) कहते हैं। जैसे—

सोरठियो दूहो भलो, भलि मरवणरी बात।
जोबन-छाई धण भली, ताराँ छाई रात॥

राजस्थानी में दूहा चार प्रकार का होता है। चारों प्रकारों के नाम ये हैं—

(१) दूहो, (२) सोरठो, (३) बड़ो दूहो या अंतमेळ दूहो—१-४ चरण ११ मात्रा के, २-३ चरण १३ मात्रा के, (४) तूँवेरी मा मध्यमेळ दूहो—१-४ चरण १३ मात्रा के, २-३ चरण ११ मात्रा के। तुक सदा ११ मात्रावाले चरणों की ही मिलती है।

गाहा १—गाहा—अप० प्रा० गाहा, सं० गाथा। संस्कृत पिंगल में इस छंद का नाम आर्या है पर प्राकृत और अपभ्रंश में यह गाथा या गाहा नाम से ही प्रसिद्ध है। प्राकृत साहित्य का मुख्य छंद गाथा ही है। हाल कवि की गाथा-सप्तशती इसी छंद में लिखी हुई है। गाथा छंद का प्रयोग बहुत पुराना है। प्राचीन बौद्ध-साहित्य में पाली और संस्कृत-मिश्रित गाथाएँ मिलती हैं जिनकी भाषा को कई विद्वानों ने भ्रमवश संस्कृत और पाली के बीच की भाषा माना है।

राजस्थानी में (और हिंदी में भी) गाथा छंद का प्रयोग नहीं होता। राजस्थानी के प्राचीन आख्यानक-काव्यों में कहीं कहीं गाथाएँ मिलती हैं। वे उपदेशात्मक अवतरणों की भाँति आई हैं। इनकी भाषा बड़ी विचित्र प्राकृत-अपभ्रंश एवं राजस्थानी-मिश्रित, होती है। उसे टूटी-फूटी प्राकृत कहना चाहिए। उससे प्राचीनत्व की झलक अवश्य उत्पन्न हो जाती है।

पूगळि—पूगळ + इ (अधिकरण का प्रत्यय) = पूगळ में।

पूगळ बीकानेर राज्य में बीकानेर नगर से कोई ५० मील पश्चिमोत्तर में है। पहले यहाँ परमार राजपूतों का राज्य था और पीछे यह जेशळमेर के भाटियों के अधीन हुआ। बीकानेर राज्य की स्थापना के समय यह एक स्वतंत्र राज्य था और इसका शासक बड़ा प्रातापी एवं प्रभावशाली था। बीकानेर के संस्थापक राव बीकोजी ने अपना प्रभाव बढ़ाने के लिए उसकी राजकुमारी से विवाह किया। पीछे से यह बीकानेर राज्य में मिला लिया गया। इस समय दूसरे दरजे की रियासत है। पूगळ के ठाकुर को राज्य की ओर से वंशपरंपरागत राव की उपाधि प्राप्त है।

परमारों का मूल राज्य आबू के आस-पास था जहाँ से वे मारवाड़, सिंध, मालवा और गुजरात तक फैल गए। परमारों के दो बड़े प्रतापशाली राज्य थे। एक आबू में और दूसरा मालवा में, जिसकी राजधानी धार थी। आबू के परमारों के राज्य के नौ बड़े विभाग थे जो बाद में स्वतंत्र हो गए। इन्हीं नौ राज्यों के कारण मारवाड़ राज्य अब भी नौ-कोटी मारवाड़ कहलाता है। इन नौ राज्यों में एक पूगळ भी था।

इस समय पूगल की प्राचीन महत्ता सर्वथा नष्ट हो चुकी है। साहित्य और जन-समाज में पूगळ की पद्मिनी स्त्रियाँ बहुत प्रसिद्ध हैं। अब भी उधर की स्त्रियाँ सुंदर समझी जाती हैं।

पिंगळ—यह पूगळ का परमारवंशी राजा था। इतिहास में इसका पता नहीं चलता। (तत्कालीन इतिहास की अभी पूरी खोज हुई भी नहीं है।

राऊ—सं० राजा; प्रा० राअ, राय, राउ।

नळ—यह कछवाहा-वंश का राजा जयपुरवालों का पूर्वज था। उस समय कछवाहों का राज्य ग्वालियर के आस पास था। ये पहले कन्नौज के प्रतिहार सम्राटों के सामंत थे फिर उनके निर्बल होने पर स्वतंत्र हो गए। नळ ने नळवर या नरवर नामक नगर बसाकर उसे अपनी राजधानी

बनाया। भाट इसे प्रसिद्ध पौराणिक राजा नल (जो दमयंती का पति था) बतलाते हैं।

नरवरे—नरवर + ए (अधिकरण-प्रत्यय) नरवर में। नरवर ग्वालियर राज्य में एक कसबा है।

अदिठा—सं० अदृष्टाः; प्रा० अदिट्ठा। यद्यपि परस्पर देखे हुए नहीं थे। यह बहुवचन का रूप है एकवचन अदिठ या अदिठो होगा।

दूरिट्ठा—सं० दूरस्थिताः या दूरे स्थिताः।

ये—सं० ये। यह शब्द किसी प्रति में नहीं है; केवल (झ) प्रति में दूरठाय पाठ है। छन्द की मात्राएँ पूरी करने के लिये हमने इसे जोड़ दिया है।

दईय—दई + य (संबंध-प्रत्यय) = दैव का। सं० दैव; प्रा० दइव, दइअ; राज० दइ।

दूहा २—दूकाळ—सं० दुकाल। आधुनिक राजस्थानी में अकाल के लिये विशेषतः काळ शब्द आता है। दुकाळ भी कभी कभी कह देते हैं।

थियुँ—वर्त्तमान देश-भाषाओं में संस्कृत भू और प्राकृत हुव धातु के अनेक रूपांतर हो गए हैं। गुजराती में 'होना' के लिये 'थवुँ' क्रिया है। हिंदी में वर्त्तमान और भविष्य में होना के रूप 'है' और 'होगा' होते हैं परंतु भूतकाल में 'था' हो जाता है। राजस्थानी में तीनों कालों में 'ह' ही रहता है (है, हुसी, हो तथा हुवै है, हुसी, हुयो) पर पुरानी कविता में कई प्रकार के प्रयोग मिलते हैं। भूतकाल में हुवउ (हुवौ, हुवो) के अतिरिक्त भयउ (भयौ-भयो), हुयउ, थयउ, थियउ, थायउ, थ्यउ (थ्यौ-थ्यो) आदि रूप पाए जाते हैं। भूतकाल के इन रूपों में लिंग-भेद भी होता है। थयुँ-थयूँ, थियुँ-थियूँ ये रूप नपुंसक लिंग के हैं। माध्यमिक और आधुनिक राजस्थानी में नपुंसक लिंग नहीं होता पर प्राचीन राजस्थानी के प्रभाव के कारण उसके नपुंसक लिंग के कुछ रूप माध्यमिक राजस्थानी में अवशिष्ट रह गए। वैसे नपुंसक लिंग और पुल्लिंग में कोई अंतर नहीं।

इस शब्द की व्युत्पत्ति सं० स्था (स्थित) और प्रा० था (थिअ-थिय) से की जाती है।

किणहीं—मिलाओ—हिं० किसी (किस + ही)। संस्कृत किम्, प्रा० क, अप० काइँ-कवण, राजस्थानी में कुण या कोण (हिं० कौन) हो जाता

है। उसका विकारी रूप किण या के (कभी कभी कुण भी) होता है। उसी के आगे ही अव्यय जुड़ा हुआ है। यह 'ही' अव्यय कभी कभी सानुनासिक कर दिया जाता है। जैसे—किणहीँ अवगुण कूँझड़ी कुरळी माँझिम रत्त। (दूहा ५७)

विसेसि—विसेस (विशेष) + इ (कर्त्ता का प्रत्यय)।

ऊचाळउ—सं० उच्चलन; प्रा० उच्चालो। अकाल पड़ने पर मरुस्थल की कई जातियाँ अपने परिवार तथा पशुओं के साथ स्वदेश को छोड़कर किसी पानी और घासवाले स्थान को चली जाती थीं। कभी कभी सभी लोग ऐसा करते थे। आजकल सब लोग तो ऐसा नहीं करते किंतु गाय बैल आदि पालनेवाली जातियाँ कभी कभी ऐसा करती हैं। राजस्थान के लोग प्रायः मालवा की ओर जाते थे। ऐसे जानेवाले लोगों को मऊ कहा जाता था—माळवे जातोड़ी मउरी राख लीजो लाज। (नरसी-मेहतोरो मायेरो)

कियउ—सं० कृत; प्रा० कअ-कय, किअ-किय। मिलाओ—हिं० किया। करणो क्रिया का सामान्य भूतकाल। यह रूप कविता में ही विशेषतया आता है। बोलचाल में 'कर्‌यो' अधिक प्रयुक्त होता है। सामान्य भूतकाल के अन्य रूप—कर्‌यउ, कीधउ, किद्धउ, किद्ध, कीध्यउ।

हिंदी की भाँति राजस्थानी के अधिकांश भूतकालों के रूप भूत कृदंत से बने हैं और उनमें, यदि क्रिया सकर्मक है तो, कर्म के लिंग-वचन-पुरुषानुसार परिवर्त्तन होता है।

नरवरचइ—चइ (चै-चे) चो का विकारी रूप है। चो संबंध का प्रत्यय है। आधुनिक भाषाओं में मराठी के संबंध कारक में चा प्रत्यय लगता है। पुरानी राजस्थानी तथा गुजराती कविता में भी इसका प्रयोग अन्यान्य कई संबंध-प्रत्ययों के साथ साथ हुआ है। मिलाओ—ऊपर 'रा' प्रत्यय पर टिप्पणी।

दूहा ३—दियउ—सं० दत्त; प्रा० दअ-दय, दिअ-दिय। सामान्य भूतकाल, पुल्लिंग। अन्य रूप—दयउ, दीधउ, दीध्यउ, दिद्धउ, दिद्ध। मिलाओ—दूहा नं० २ में 'कियउ' पर टिप्पणी।

जउ—सं० यः, प्रा० जो।

राजवियाँ—राज+अवी प्रत्यय। राजवी शब्द के बहुवचन का विकारी रूप। विभक्ति-प्रत्यय विकारी रूप के आगे जोड़े जाते हैं पर पुरानी भाषा में

विशेषतः कविता में ये प्रत्यय लुप्त भी हो जाते हैं। यहाँ संबंध का प्रत्यय लुप्त है। अर्थ है राजवियों के। राजवी शब्द का अर्थ राजा और राजवंशी दोनों होता है। राजा के निकट-संबंधी राजस्थान में राजवी कहे जाते हैं।

सवि०—सं० सर्व; प्रा० सव्व, सव, सवि। अन्य रूप—सउ, सौ, सहु, सहू, सब, सब्ब।

रावळा—सं० राजकुल; प्रा० राअउल, राउल। बहुवचन। राजस्थानी में 'रावळो' का अर्थ राजमहल या जनाना महल होता है। लक्षणा से 'रानियों का समूह' अर्थ भी ग्रहण किया जाता है।

अइ—ओ शब्द का बहुवचन = ये। आधुनिक रूप अै, अप० एइ।

लोग—यहाँ नौकर-चाकरों से अभिप्राय है।

दूहा ४—तणउ—आधुनिक रूप तणो। संबंध-प्रत्यय। इसमें भेद्य संज्ञा के लिंग-वचनानुसार परिवर्त्तन होता है (तणा, तणी, तणे-तणै तणइ)।

रॉणि—सं० राज्ञी; प्रा० रण्णी, अप० राणी; हिं० रानी। पुल्लिग—राणो (हिं० राणा०)। छंद की मात्राएँ ठीक करने के लिये णी को ह्रस्व कर दिया गया है।

दूहा ५—पदमिणी सं० पद्मिनी। अन्य रूप—पदमणी-पदमणि, पदमिण-पदमणि, पदमण। स्त्री की चार जातियों में पद्मिनी सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वसुंदर जाति होती है। सिंहल एवं पूगळ की पद्मिनी स्त्रियाँ साहित्य में प्रसिद्ध हैं।

कभी कभी सामान्य स्त्री के अर्थ में भी यह शब्द प्रयुक्त होता है—पीड़ सहे बिन **पदमणी** पूत न लेहि उछंग (कबीर)।

तिणि—सं० तत्। मिलाओ—हिं० तिन। 'इ' संबंध-प्रत्यय।

नॉम—राजस्थानी में (और अपभ्रंश में भी) यदि आगे कोई नासिक्य वर्ण हो या व हो तो पूर्व का स्वर सानुनासिक कर दिया जाता है। इसी प्रकार नासिक्य वर्ण र और व भी कभी कभी सानुनासिक बना दिए जाते हैं।

जोइ—प्रा० जो, जोअ, जोव (पूर्वकालिक रूप)। जोणो या जोवणो क्रिया। इसका अर्थ आधुनिक राजस्थानी में देखना और खोजना भी होता है। गुजराती में भी यह क्रिया आती है। मिलाओ—हिं० बाट जोहना।

धन्न—सं० धन्य; प्रा० धण्ण। अन्य रूप—धन, धिन, धिन्न।

काँम—सं० कर्म; प्रा० कम्म। यहाँ रचना (कृति) का अर्थ है।

दूहा ६—सारीखी सं० सदृश; प्रा० सारिक्ख। ई स्त्रीलिंग का प्रत्यय है।

जोड़ी—सं० युज्। राजस्थानी में जुड़नो क्रिया बनती है; उसका सकर्मक जोड़नो हुआ। जोड़ना क्रिया के आगे ई प्रत्यय लगाकर संज्ञा बनाई गई है। अर्थात् वस्तुओं का अनुरूप मेल जैसे इन दोनों की जोड़ी है। साथ रहनेवाली (विशेषतः दो) वस्तुओं को जोड़ी कहते हैं। दो के लिये भी इस शब्द का प्रयोग होता है। जैसे—हाथों का जोड़ी (कंगन), पैरों की जोड़ी (जूतियाँ)।

जुड़ी—सं० युज्; प्रा० जुड। सामान्य भूत, स्त्रीलिंग, एकवचन।

आ—ओ (यह) का स्त्रीलिंग।

अउ—ओ का प्राचीन रूप।

नाह—सं० नाथ = स्वामी, पति, वर।

सँ—राजस्थानी में करण और अपादान का चिह्न। अन्य रूप—स्यउँ-स्यौं-स्यों, सुँ सूँ सेँ सैँ सेँ सैँ स्यैँ स्यइँ। कविता में ते तें थी आदि रूप भी आते हैं।

इसकी व्युत्पत्ति सुंतों से बताई जाती है पर बहुत संभव है कि यह संस्कृत विभक्ति स्मात् या सम शब्द से निकला हो। इसका एक रूप सम भी कविता में आता है।

कहइ—सं० कथ; प्रा० कह। कहणो क्रिया—कह+अइ। अइ वर्त्तमान अन्य पुरुष का और मध्यम पुरुष एकवचन या प्रत्यय है। आधुनिक रूप—कहै। आधुनिक राजस्थानी में यह संभाव्य भविष्यत् का रूप है। आधुनिक वर्त्तमान बनाने के लिये, हिंदी की भाँति, है क्रिया के रूप आगे और जोड़ने पड़ते हैं।

कीजइ—सं० क्रियते; प्रा० किज्जइ। आज्ञा का रूप। राजस्थानी में कर्त्तृवाच्य आज्ञार्थ और कर्मवाच्य वर्त्तमानकाल के रूप एक से होते हैं। आधुनिक राजस्थानी में कीजै के स्थान पर करीजै रूप प्रयुक्त होता है। मिलाओ—हिं० कीजै, कीजिए।

वीमाँह—सं० विवाह, प्रा० वीवाह। व और म का पारस्परिक परिवर्त्तन अपभ्रंश, हिंदी राजस्थानी एवं गुजराती में पाया जाता है।

दूहा ७—नूँ—कर्म का प्रत्यय। आधुनिक राजस्थानी में ने आता है। यह संभवतया संस्कृत विभक्ति-प्रत्यय आन् (जैसे रामान्) से निकला है।

विचारउ—विचारणो क्रिया। विचार+अउ। आज्ञा का रूप, मध्यम पुरुष, बहुवचन। आधुनिक रूप—विचारो।

विषइ—विखो+इ (अधिकरण चिह्न)। विखो = सं० विषय। इसका अर्थ दुःख के दिन होता है।

द्याँ—देणो क्रिया। संभाव्य भविष्यत्, उत्तम पुरुष, बहुवचन का रूप। आधुनिक रूप—दाँ।

दीकरी—राजस्थानी देशी शब्द। हिंदी-शब्दसागर में इसकी व्युत्पत्ति सं० डिम्बक से की गई है।

हाँसउ—सं० हास=हँसी। सजातीय कर्म।

हसिसी—सं० हसिष्यन्ति; प्रा० हसिस्सइ। सामान्य भविष्य।

लोइ—सं० लोक; प्रा० लोअ-लोय।

दूहा ८ कोइलाँ—सं० कोकिल; प्रा० कोइल; आधु० राज० कोयल। बहु० वचन (आँ)।

सालूराह—सं० शालूर-सालूर राज० सालूर-सालूरो। बहुवचन। अंत में ह छंद की मात्रा पूरी करने के लिये जोड़ा गया है। राजस्थानी में ऐसा बहुत होता है।

राज—सं० राजन्। संबोधन। यह शब्द आपके अर्थ में भी आता है।

हिवइ—अन्य रूप-हिवै, हवै, हमैं, अबै, अब, हणाँ = अब।

मा—सं० मा; प्रा० मा-म; राज० मा-म-मत। मिलाओ—हिं० मत। यह शब्द विशेषतया आज्ञार्थ में आता है।

पाँतरउ—सं० प्रमत्त; प्रा० पमत्त, पवंत-पाँत। पाँतरणो क्रिया। आज्ञार्थ।

धण—यहाँ धण शब्द स्त्री, कन्या के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

द्यउ—ऊपर दूहा ७ में द्याँ देखो। आज्ञार्थ बहुवचन।

अवराँह—सं० अपर-अवर। बहुवचन, विकारी रूप, संप्रदान कारक, विभक्ति प्रत्यय लुप्त हो गया है। ह पाद-पूर्त्यर्थ जोड़ा गया है। अन्यार्थ—अब।

दूहा ९ ज्यूँ—सं० यथा या यद्वत्; प्रा० जधा या जद्व; अप० जिध, जेवँ, जिवँ, जिउँ, ज्युँ, ज्यूँ। अन्य रूप—ज्युं, जिउँ, जिँ, जिम, जिमि, जेम। मिलाओ—हिं० ज्यों।

थे—राजस्थानी में मध्यम पुरुष का बहुवचन। एकवचन में तू होता है। आदर दिखाने के लिये एकवचन में भी थे का प्रयोग होता है (हिंदी में ऐसी जगह आप आता है)। बहुत अधिक आदर दिखाने के लिये राजस्थानी में भी आप आता है पर अधिकतर थे काफी होता है। राजस्थानी का तू हिंदी के तू के स्थान पर और राजस्थानी का थे हिंदी के आप या तुम लोग के स्थान पर है। हिंदी तुम का पर्याय राजस्थानी में नहीं है।

जाणउ—सं० ज्ञा; प्रा० जाण; राज० जाणनो; हिं० जानना। आधुनिक रूप—जाणो। संभाव्य भविष्य, मध्यम पुरुष, बहुवचन।

त्यूँ—देखो ज्यूँ।

करउ—करणो (हिं० करना) क्रिया का आज्ञार्थ बहुवचन रूप।

आइस—सं० आदेश; प्रा० आएस; मिलाओ—हिं० आयसु।

दीध—सं० दत्त। सामान्य भूतकाल। अन्य रूप—दि्ध, दि्धो, दीधो। यह रूप सीधे संस्कृत से आया है। नियमित रूप दियो, दिया, दी होते हैं। दीध या दिध्ध सब लिंगों और वचनों में एक सा रहता है। दिध्धो या दीधो में कर्म के लिंग-वचनानुसार परिवर्त्तन होता है।

ओ—यह अक्षर यहाँ एकमात्रिक है। प्राचीन रूप—अउ।

म्हाँ—प्रा० अम्हे; राज० म्हे = हम; म्हे का विकारी रूप म्हाँ होता है। हिंदी में जहाँ सप्रत्यय कर्त्ता आता है वहाँ राजस्थानी में विकारी रूप का प्रयोग होता है। म्हाँ कर्‌यो = हमने किया।

नातरउ—अन्य रूप—नातो, नातरो; हिं० नाता = संबंध। यहाँ मतलब विवाह-संबंध से है। आधुनिक राजस्थानी में इसका एक दूसरा अर्थ विधवा के साथ विवाह-संबंध का है।

कीध—सं० कृत; प्रा० किद्ध। अन्य रूप—किध्ध, किध्धउ, कीधउ। मिलाओ—ऊपर दीध पर टिप्पणी।

दूहा १० परणिया—सं० प्रा० परिणी। परणनो क्रिया का सामान्य भूत, पुँल्लिंग, बहुवचन। इसका अर्थ विवाहित होना है।

वरदळ—(१) वर = अच्छा; दळ = दल, समूह; अच्छे दल का अर्थात् धूमधाम या ठाटबाट का या (२) वर = अच्छे। दळ = पक्ष; दो अच्छे पक्षों या कुलों में।

वि०—इस शब्द का ठीक अर्थ निश्चित नहीं हो सका।

हुवउ—सं० भू; प्रा० हुव। हुवणो क्रिया का सामान्य भूत, पुँल्लिंग एकवचन। अन्य रूप—थयउ, भयउ।

उछाह—सं० उत्साह; प्रा० उच्छाह, ऊसाह। अन्य रूप—उछाव। संस्कृत में इस शब्द का अर्थ उत्साह होता है पर राजस्थानी में यह उत्सव और आनंद के अर्थ में भी आता है। यह भी संभव है कि यह सं० उत्सव, प्रा० उच्छव, राज० उच्छव-उच्छव-उछाव से बना हो।

दूहा ११ आवियउ—सं० आ + या; प्रा० आव। आवणो क्रिया का सामान्य भूत, पुँल्लिंग एकवचन।

देसे—देस + ए (अधिकरण का प्रत्यय)।

थयउ—मिलाओ—ऊपर दूहा २ में थियुँ।

सुगाळ—सं० सुकाल; प्रा० सुगाल।

तेणि—सं० तेन; प्रा० तेण, तेणं = तिससे, उस कारण से, इसलिये।

राखी—सं० रक्ष; प्रा० रक्ख, राख; हिं० रखना। राखणो क्रिया का सामान्य भूत, स्त्रीलिंग, एकवचन।

सासरइ—सासरो + इ (अधिकरण-प्रत्यय) सं० श्वाशुर (श्वशुरस्य अयं) प्रा० सासुर (देखो—सुरसुंदरी चरिअं ८-१६४)

अजे—सं० अद्यापि प्रा० अज्जवि = अभी। अन्य रूप—ओजूँ, अजूँ।

स—एक निरर्थक अव्यय जो जोर देने के लिये, या पादपूर्त्यर्थ, जोड़ दिया जाता है। इसका मूल सो या सु हो सकता है। गानेवाले कभी कभी छंद के बीच में इसे जोड़ देते हैं—जेठ महीनो लागियो (स)।

दूहा १२ जिम—सं० यथा या यद्वत्; प्रा० जहा या जद्द; अप० जेंव, जिंव, जेवँ-जिवँ।

अमले—अरबी अमल = अधिकार। यह अधिकरण का प्रत्यय है।

किअइ—करणो का वर्तमानकालिक अनियमित रूप = करता है।

चढंती—प्रा० चड; हिं० चढ़ना; राज० चढणो क्रिया का स्त्रीलिंग वर्त्तमान-कृदंत (Fem. Present Participle)। मिलाओ—हिं०

चढ़ती (=चढ़ती हुई)। आधुनिक राजस्थानी में वर्त्तमान-कृदंत चढतो-चढती होता है पर कविता में चढंतो-चढंती रूप भी मिलते हैं।

जाइ—सं० या; प्रा० जा, जाअ, जाव; राज० जावणो क्रिया का वर्त्तमान काल। आधुनिक—रूप जावै।

तरणापउ—तरण + आपउ। तरण = सं० तरुण। आपउ या आपो भाववाचक संज्ञा बनाने का तद्धित प्रत्यय है। मिलाओ—बूढापो (हिं० बुढ़ापा)।

थाइ—सं० स्था; प्रा० ठा, था। राज० थावणो = होना। वर्त्तमान काल का रूप। मिलाओ—दूहा २ में थियुँ। यह क्रिया केवल कविता में आती है।

दूहा १३ चलण—सं० चलन = चाल।

कदळीह—ह एक अर्थहीन प्रत्यय है जो पाद-पूर्त्यर्थ या कभी कभी जोर देने के लिये जोड़ दिया जाता है।

जँघ—सं० जंघा। संस्कृत में यह शब्द प्रायः पिँडुली के अर्थ में आता है पर हिंदी व राजस्थानी में इसका अर्थ सदैव जाँघ (ऊरु) होता है।

केहर—सं० केसरी; हिं० राज० केहरी। राजस्थानी में अंतिम ईकार को लुप्त या ह्रस्व करने की (इसी प्रकार अंतिम इकार को लुप्त करने की भी) प्रवृत्ति पाई जाती है।

मुख—मुखमंडल, चेहरा।

सिसहर—सं० शशधर; प्रा० ससहर। राजस्थानी में कभी कभी शब्द के आरंभ का अकार इकार में बदल जाता है।

खंजर—(१) सं० खंज (खंजन पक्षी)। स्वार्थ में र प्रत्यय। मिलाओ—ऊपर दूहा ८ में पाँतरउ। (२) यह शब्द संभवतः खंजन का ही अपभ्रंश होगा। अथवा (३) खंजर का अर्थ कटार लिया जाय। खंजर के समान अर्थात् तीक्ष्ण, कटीले।

श्रीफल—बेल का फल; नरियल भी हो सकता है।

कँठ—कंठस्वर।

वीण—वीणा का स्वर।

दूहा १४ इसइ—इसउ (इसो) का विकारी रूप। मिलाओ—हिं० ऐसे; सं० ईदृश; प्रा० ईइस; राज० इसो।

आरखइ--आरखउ (आरखो) का विकारी रूप, अधिकरण का प्रत्यय लुप्त अथवा आरखो + इ (अधिकरण-प्रत्यय) ।

सूती--सं० सुप्त; प्रा० सुत्त; राज० सूतो । सामान्य भूत स्त्रीलिंग या स्त्रीलिंग भूत-कृदंत । सूवणो या सोवणो क्रिया का नियमित रूप सोई-सूई-सुई होते हैं । इन नियमित रूपों की अपेक्षा सूती रूप अधिक प्रयुक्त होता है ।

साल्हकुँवर—ढोला का नाम ।

सुपनइँ—सुपनो + इँ (अधिकरण-प्रत्यय) । सं० स्वप्न । यह शब्द राजस्थानी में प्राकृत से होता हुआ नहीं आया है । अन्य रूप—सुहिणो (प्रा० सुविण) ।

मिल्यउ--मिलनो और मिळनो दोनों रूपों में यह क्रिया राजस्थानी में प्रयुक्त होती है ।

जागि—जाग + इ (पूर्वकालिक प्रत्यय) । अन्य प्रत्यय ए, ई, करि, कै, कइ, नइ, नै-ने, अर ।

निसासउ--सं० निःश्वास, प्रा० णीसास, राज० निसासो, निसास ।

खाइ--खावणो (सं० खाद्, प्रा० खा, खाव) क्रिया का वर्त्तमान-कालिक रूप ।

दूहा १५ ऊलंबे--सं० अवलंब्; प्रा० ओलंब; राज० ओलंब या ऊलंब । ये पूर्वकालिक प्रत्यय हैं ।

हत्थड़ा—ड़ो अपभ्रंश एवं राजस्थानी में एक प्रत्यय है जो कभी कभी स्वार्थ में और कभी कभी अनादर प्रकट करने के लिये जोड़ा जाता है । गुजराती में भी यह आता है । ड़ा ड़ो का बहुवचन है ।

चाहंदी— चाह(=चाहना, देखना, बाट जोहना) क्रिया का स्त्रीलिंग वर्त्तमान-कृदंत । यह पंजाबी का प्रभाव है । राजस्थानी रूप चाहंती या चाहती अथवा चावती होता है ।

अन्यार्थ—चाह (=प्रेम)+हंदी (=की) । हंदो-संदो राजस्थानी में संबंध कारक के प्रत्यय हैं । इनकी व्युत्पत्ति प्रा० हुंतो-सुंतो से की जाती है ।

घण—सं० घन; प्रा० घण ।

ऊमट्यउ—ऊमटणो का सामान्य भूत, पुलिंग, एकवचन । अन्य रूप—उमड़णों-ऊमड़नो, ऊमहणो-ऊमहनो । मिलाओ—हिं० उमड़ना ।

थाह—सं० स्थाघ; प्रा० थाह ।

निहाळइ—निहाळनो का वर्त्तमानकालिक रूप। सं० निभाल्; प्रा० णिहाल; राज० निहाळ = देखना, खोजना, पता लगाना। अन्य रूप—निहारणो=देखना।

मुध्ध—सं० मुग्धा; प्रा० मुध्धा। अंतिम स्वर का लोप। अन्य रूप—मुंधा-मुंध, मूँधा-मूँध-मूध. मुगधा। साहित्य में एक प्रकार की नायिका जो यौवन में प्रवेश कर चुकी हो परंतु जिसमें न तो कामचेष्टा उत्पन्न हुई हो और न जिसने विरह संताप भोगा हो।

दूहा १६—उक्कंबी—उक्कंबणो का पूर्वकालिक रूप (उक्कंब+ई)। सं० उत्कंधा (?); या प्रा० उक्कंब = काठ से बाँधना। सिर को हाथों पर बाँधकर अर्थात् रखकर।

चाहंती—चाहणो का स्त्रीलिंग वर्त्तमान-कृदंत। चाह+अंती। ऊपर दूहा नं० १५ में चाहंदी देखिए। चाह का अर्थ प्रेम भी होता है अतः चाहंती का अर्थ प्रेम करती हुई—प्रेममग्न होती हुई भी हो सकता है।

ऊँची—सं० उच्च। राजस्थानी में यह विशेषण है और इसका प्रयोग क्रियाविशेषण की भाँति होता है। वाक्य में इसके लिंग-वचन विशेष्य के अनुसार बदलते हैं। जैसे—छोरो ऊँचो चढ्यो; छोरी ऊँची चढी; छोरा ऊँचा चढ्या; छोरयाँ ऊँच्याँ चढ्याँ।

चातृंगि—सं० चातकी; प्रा० चातगी। अपभ्रंश और राजस्थानी में कभी कभी बीच में र या सानुस्वार र जोड़ दिया जाता है। चातक=चात्रंग इस र को फिर ऋ कर दिया गया है।

मागि—सं० मार्ग; प्रा० मग्ग, माग। इ कर्म का प्रत्यय है। अन्य रूप—मारग।

दूहा १७ गिणइ—सं० गण; प्रा० गण, गिण; हिं० गिनना। दिन गिणना=निरंतर प्रतीक्षा करना।

आसालुध्ध—सं० आशालुब्ध=आशा से लुभाई हुई। आशा उसे बराबर लुभाए रहती है अर्थात् बनी रहती है। यह आशा न तो पूरी होती है और न पीछा छोड़ती है।

घाँघल—प्रा० घंघल; जैसे—जिवँ सुपुरुस तिवँ घंघलइँ, जिवँ नइ तिवँ वलणाइँ। जिवँ डोंगर तिवँ कोट्टरइँ, हिआ, विसूरइ काइँ?

(हेमचंद्र—व्याकरण ८-४-४२२)

घणा--सं० घन; प्रा० घण; राज० घणो; हिं० घना। राजस्थानी में यह बहुत (संख्यावाचक और परिमाणवाचक) के अर्थ में आता है।

दूहा १८ ऊनमियउ--ऊनमणो का सामान्य भूत, पुँल्लिग, एकवचन। सं० उन्नम्; प्रा० उण्णम। अन्य रूप--उनवणो, उनमणो। पुरानी हिंदी में उनवना क्रिया बहुत आई है। मिलाओ--

(१) **उन्नमति** नमति वर्षति गर्जति मेघः। (मृच्छकटिक)

(२) **ऊँनमि** आई बादली बरसण लगे अँगार।
उठि कबीरा धाह दे दाझत है संसार॥

(कबीर--साखी ५१--२)

उनई घटा चहूँ दिसि आई। छूटहिं बान मेघ झरि लाई॥

(जायसी)

इसका एक दूसरा रूप उनरना या ऊनरना भी हिंदी कविता में आया है-

(१) **उनरत** जोबन देखि नृपति मन भावइ हो।

(तुलसी--रामलला-नहछू)

(२) **ऊनरी** घटा में आली तू न री अटा पै बैठ। (हरिश्चंद्र)

यहाँ ऊनमियउ क्रिया का कर्ता मेह (मेघ) लुप्त है। कभी कभी आकाश, या दिशा जिधर मेह उमड़ता है, इस क्रिया का कर्त्ता बना दिया जाता है। जैसे--नभ ऊनम्यउ = आकाश उमड़ आया अर्थात् आकाश में मेह उमड़ा। उत्तर ऊनम्यौ--उत्तर दिशा उमड़ी अर्थात् उत्तर दिशा में मेह उमड़ा। मिलाओ--उत्तर आज स **ऊतरयो** (दूहा २८६-२९८)।

दिसइँ--दिस + इँ (अधिकरण-प्रत्यय)।

गाज्यउ--सं० गर्ज्; प्रा० गज्ज, गाज। अन्य रूप--गाजियउ। यह क्रिया गज्जणो और गरजणो इन रूपों में भी प्रयुक्त होती है।

यहाँ भी कर्त्ता मेह लुप्त है। यह क्रिया भी ऊनमणो की भाँति आकाश और किसी दिशा-विशेष के साथ भी आती है।

गुहिर--सं० गभीर; प्रा० गहिर, राज० गहर, गहीर, गुहिर, गहरो। गहर-गँभीर राजस्थानी का एक मुहावरा है।

प्रिउ--सं० प्रिय। अन्य रूप--प्रियु, प्री, प्रिव, पी, पिव, पिय, पियु, पीय, पियो।

संभरयउ--संभरणो का सामान्य भूत, पुँल्लिग, एकवचन। सं० संस्मृ; प्रा० संभर, संभल। अन्य रूप--साँभरणो, साँभळनो, सँभारणो। मिलाओ--

बंदि पितर सब सुकृत सँभारे। (तुलसी)
तेहि खल पाछिल बयरु सँभारा। (तुलसी)
नयणे—ए अपादान का प्रत्यय।

बूठउ—वूठणो का सामान्य भूत, पुँल्लिग, एकवचन। सं० वृष्ट; प्रा० वुट्ठ; राज० वूठणो। यह क्रिया संस्कृत के भूत-कृदंत से बनी है। संस्कृत धातु वृष् या वर्ष् से बरसणो क्रिया बनती है। मिलाओ—

हरिया जाँणै रूँखड़ा उस पाणी का नेह।
सूका काठ न जाँणई कबहूँ वूठा मेह॥ (कबीर ५५—१)
परब्रह्म वूठा मोतियाँ घड़ बाँधी सिखराँह।
(कबीर—साखी ५५—३)

दूहा १९ आखइ—आखणो का वर्त्तमान। सं० आख्या; प्रा० आख। मिलाओ—जे अब के सतगुरु मिलैं सब दुख आखौं रोय। (कबीर)

काइँ—प्रा० कइँ=क्यों। अन्यार्थ—क्या। आधुनिक रूप—काँई। यह 'क्या' अर्थ में प्रयुक्त होता है।

चित्राँम—राजस्थानी शब्द=चित्र।

काँम-चित्राँम—काम-चित्र अर्थात् ढोले की काम जैसी मूर्त्ति जो मारवणी ने स्वप्न में देखी थी।

जु—सं० यत्; प्रा० ज, जो। यहाँ पर यह शब्द अव्यय है। जोर देने के लिये या पाद-पूर्त्यर्थ या कभी कभी ही के अर्थ में इसका प्रयोग होता है।

दिट्ठ—सं० दृष्टि; प्रा० दिट्ठि; राज० दिट्ठ, दीठ।

मइँ—अधिकरण का प्रत्यय। मिलाओ—हिंदी 'में'। अन्य रूप—मैं, में (आधुनिक राज०)।

इसकी उत्पत्ति संभवतः संस्कृत प्रत्यय स्मिन् और प्रा० म्मि से हुई है। मध्ये शब्द से होना भी संभव है—मध्ये, मज्झे, मज्झि, महि, महिँ, मइँ, में।

दिट्ठ मइँ—अन्यार्थ—मैंने देखा है। दिट्ठ=सं० दृष्ट; प्रा० दिट्ठ=देखा। मइँ=सं० मया; प्रा० मइँ=मैंने।

रूप—मूर्ति।

भूलइ—भूलणो का वर्त्तमान। प्रा० भुल्ल। यहाँ यह अकर्मक क्रिया है सकर्मक नहीं। अर्थ है—उसका रूप मुझे नहीं भूलता है अर्थात् उसका रूप मुझसे भुलाया नहीं जा सकता है।

तास—सं० तस्य; प्रा० तस्स। अन्य रूप—तासु, ताह।

दूहा २० अम्हाँ—सं० अस्माकम्; प्रा० अम्हाहं; अप० अम्हहं।

सखियाँ—सखी का बहुवचन। सख्याँ रूप भी होता है।

एम०—अप० एम्व, एवँ।

तइँ—सं० त्वया; प्रा० तइँ। हिंदी के सप्रत्यय कर्त्ता तूने की जगह राजस्थानी में तइँ-तैँ होता है। अप्रत्यय कर्त्ता हिंदी की भाँति तू होता है।

अणदिट्ठा—सं० निषेधवाचक अ-अन् उपसर्ग के स्थान पर राजस्थानी में अण होता है। अ और अन भी आते हैं। दिट्ठा क्रिया का उलटा है अण-दिट्ठा = नहीं देखा।

सज्जणाँ—सं० सज्जन; प्रा० सज्जण; राज० सज्जण, साजण, सज्जन, साजन, सयण, सैण; सज्जणो-साजणो (बहुवचन में ही)। नासिक्य वर्ण को या नासिक्य वर्ण के पूर्व आनेवाले वर्ण को प्रायः सानुनासिक कर देते हैं। यहाँ आदर के लिये बहुवचन का प्रयोग किया गया है।

तइँ इ०—अन्यार्थ—तुझसे अदृष्ट सज्जन के प्रति।

किउँ—अप० केम्व, किम्व, किवँ, किउँ। ऊपर दूहा ६ में ज्यूँ देखिये। अन्य रूप—किऊँ, क्यूँ, क्युं, क्यों।

करि—करणो क्रिया का पूर्वकालिक। किउँ करि प्रायः साथ ही आता है। मिलाओ—हिं० क्योंकर।

लग्गा—सं० लग्न; प्रा० लग्ग। व्याकरण की दृष्टि से लग्गो होना चाहिए। लग्गा इस शब्द पर खड़ी बोली का प्रभाव ज्ञात होता है अथवा यहाँ प्रेम को बहुवचन कर दिया है जिससे क्रिया भी बहुवचन हो गई है।

पेम—सं० प्रेमन्; प्रा० पेम्म, पेम।

दूहा २१ जे—सं० ये; प्रा० अप० जे।

जीवण—सं० जीवन। जीवन का आधार या जीवन का कारण अतः जीवन-रूप।

जिन्हाँ—जिनका विकारी रूप। मिलाओ—हिं० जिन्हों (का)।

वसंत—वसणो धातु का वर्त्तमानकालिक रूप। सं० वसंति। अंत प्रत्यय प्रायः बहुवचन में आता है पर कभी कभी एकवचन में भी प्रयुक्त होता है।

धारइ—धार या धारा + इ (करण या अधिकरण का प्रत्यय)।

पयोहरे—पयोहर + ए (अपादान- प्रत्यय)।

काढंत--काढणो का वर्त्तमानकाल। सं० कृष्ट; प्रा० कड्ढ; राज० कढणो। काढणो कढणो का सकर्मक है।

तात्पर्य--दूध बालक का जीवन है। वह माता के शरीर में ही रहता है। बालक उसको नहीं देख सकता तो भी निकाल लेता है। इसी प्रकार जो जिसका जीवन होता है वह उसके पास ही अथवा उसके शरीर में ही रहता है।

दूहा २२ ससनेही--सं० सस्नेह। ई मूल से जोड़ दिया गया है। यह शब्द राजस्थानी साहित्य में बहुत आता है।

समदाँ--सं० समुद्र; प्रा० समुद्द; राज० समुंद, समंद, समँद, समद। आँ विकारी रूप का प्रत्यय है। संबंध का चिह्न लुप्त है।

परइ--सं० परं। मिलाओ--हिं० परे।

वसत--वसणो का वर्त्तमान। अन्य रूप वसइ-वसै, वसंत।

हिया--सं० हृदय। अन्य रूप हियो, हीयो।

मंझार--सं० मध्य; प्रा० मज्झ; राज० मंझ। मज्झ आर (मझआर भी) देशी शब्द है। देखिए--देशी नाममाला ६-१२१।

आँगणइ--आँगणो (सं० अंगन)+इ (अधिकरण प्रत्यय)

जाँण--सं० जाने; प्रा० जाणे। अन्य रूप--जाँणि, जाँणे। मिलाओ--हिं० जनु। आधुनिक राजस्थानी में जाँणे शब्द मानो के अर्थ में आता है।

दूहा २३ सखिए--ए संबोधन का प्रत्यय है। अप्रत्यय कर्त्ता कारक के बहुवचन में (क्वचित् एकवचन में भी) यही रूप आता है। मिलाओ--

सहिए फिरि समुझावियो (दूहा ५१५)।
सखिए ऊगट माँजिणउ खिजमति करइ अनंत।
संबोधन में यह शब्द दूहा ५२६ और ५३२ में भी आया है।

वल्हहा--सं० वल्लभ; प्रा० वल्लह; राज० वल्लहो, व्हालो, वालो। अन्य रूप--वालंभ (=प्रियतम)। यह शब्द प्रिय (प्यारा और प्रियतम) के अर्थ में आता है। आदरार्थ बहुवचन।

जइ--सं० यदि; प्रा० जइ। अन्य रूप--जै-जे।

तोइ--सं० तदापि; प्रा० तोवि।

विसारइ--सं० विस्मृ; प्रा० विस्सर; राज० विसरणो, वीसरणो। प्रेरणार्थक--विसारणो। विसरणो और विसारणो का एक ही अर्थ होता है।

खिण खिण इ०—अन्यार्थ—वह प्रियतम क्षण क्षण में अपनी याद कराता रहता है और अपने आपको भुलवाता नहीं। (संभर = याद करना या याद आना)।

दूहा २४ एह—यह, अन्य रूप—ए।

हमारी—राजस्थानी रूप म्हारी है पर प्राचीन कविता में हमारो हमारी भी मिलता है।

बुझ्झ—सं० बुध्; प्रा० बुझ्झ; राज० बूझणो; हिं० बूझना। बूझणो क्रिया से भाववाचक संज्ञा बुझ्झ या बूझ बनती है। इसका अर्थ है समझ। मिलाओ—हिं० पहेली बूझना। बूझणो क्रिया का अर्थ राजस्थानी में समझना भी होता है। जैसे—

जाणंता बूझ्या नहीं बूझि न कीया गौण।
भूलाँ कूँ भूला मिल्या पंथ बतावै कौण॥

सुहिणइँ—सुहिणो + इ (अधिकरण-प्रत्यय) सं० स्वप्न; प्रा० सुरण, सुविण, सुमिण, सिविण, सिमिण।

साहित्य तथा दंत-कथाओं के प्रेम-वर्णन में स्वप्न का विशेष महत्त्व है। कभी कभी केवल स्वप्न में दर्शन होने से ही प्रेम उत्पन्न हो जाता है जैसे उषा का प्रेम अनिरुद्ध के प्रति। साहित्य-शास्त्र में स्वप्न को तेंतीस संचारी भावों में गिनाया गया है।

यहाँ पर यह प्रश्न हो सकता है कि मारवणी ने ढोला को पहले कभी देखा ही नहीं था उसे स्वप्न में क्योंकर देखा और फिर विरह क्यों उत्पन्न हुआ। परंतु उषा की भी यही अवस्था है। उसने भी अनिरुद्ध को पहले नहीं देखा था; और स्वप्न द्वारा ही प्रेम उत्पन्न होकर विरह उत्पन्न हुआ था। फिर मारवणी तो ढोला को एक बार बचपन में देख चुकी है—अवश्य ही अब उसे ढोला की आकृति स्मरण नहीं रह सकती! इसी लिए वह स्वप्न में ढोला को देखकर उसे पहचान नहीं पाती।

सउ—सं० सः; प्रा० सो; आधुनिक राज० सो।

तुझ्झ—अप० तुज्झ।

दूहा २५ सुण्या—सुणनो क्रिया का सामान्य भूत, पुँल्लिग, बहुवचन। सं० श्रु; प्रा० सुण; हिं० सुनना।

की—पूर्वी राजस्थानी में संबंध-प्रत्यय को (की, का, के) आता है और पश्चिमी राजस्थानी में रो (री, रा, रे)।

झाळ—सं० ज्वाला = जलन, ताप, लपट। अन्य रूप—झळ। मिलाओ—
साहब मिलै न झल बुझै रही बुझाइ बुझाइ। (कबीर)

मिर्च या राई आदि की चरपराहट या तीक्ष्ण स्वाद को भी झाळ (हिं० झाल) कहते हैं। मिर्च खाते ही समस्त शरीर में एकदम आग सी लग जाती है। मारवणी के शरीर में भी वैसी ही विरहज्वाला प्रसूत हो उठी।

ऊपन्नउ—सं० उत्पन्न; प्रा० उप्पण्ण, सामान्य भूत, पुं०, एकवचन

दूहा २६ तनह—तन + ह (अपादान या संबंध का प्रत्यय)।

अपभ्रंश काल में अधिकांश विभक्ति-प्रत्यय घिस घिसाकर ह के रूप में रह गए। अतः ह प्रायः सभी कारकों के प्रत्यय का काम करता है। इससे अर्थ-बोध में असुविधा होने लगी अतः अपभ्रंश के उत्तर-काल में कारक-संबंध प्रकट करने के लिये अन्य शब्द या विभक्ति-प्रत्यय जोड़े जाने लगे।

जावइ—जावणो क्रिया का वर्त्तमान काल। अन्य रूप—जाइ (यह रूप केवल कविता में आता है)।

बाबहियउ—अप० बप्पीहा; हिं० पपीहा। अन्य रूप—बाबीहो, पपीहो, पपइयो। इसे संस्कृत में चातक कहते हैं। यह एक प्रसिद्ध पक्षी है। इसकी लंबाई प्रायः ५½ इंच होती है। मध्य भारत, नैपाल, बंगाल, आसाम, अराकान और मलय प्राय-द्वीप में यह विशेष रूप से पाया जाता है। इसका रंग हरा और काला होता है। यह वर्ष में दो बार रंग परिवर्त्तन करता है। यह बागों में कीड़ों की तलाश में फिरता है। मई में अंडे देना प्रारंभ करता है जो संख्या में तीन होते हैं। इसका घोंसला भूमि से थोड़ी ऊँचाई पर कटोरी के आकार का बहुत ही सुंदर होता है।

भारतीय साहित्य में इस पक्षी का वर्णन बहुत आया है। इसे लेकर भारतीय कवियों ने बड़ी सुंदर सुंदर उक्तियाँ कही हैं। गोस्वामी तुलसीदास का चातक-प्रेम-वर्णन (दोहावली) साहित्य की एक अपूर्व वस्तु है। चातक का प्रेम आदर्श प्रेम माना गया है। चातक के विषय में यह प्रवाद है कि वह पड़ा हुआ पानी नहीं पीता। जब मेह बरसता है तो उसका जल ऊपर से ही ले लेता है। प्यास से चाहे मर जाय पर तालाब और नदी का पानी वह कभी नहीं पीता। यह भी प्रवाद है कि वह स्वाती नक्षत्र के दिन को छोड़कर और कभी बरसता हुआ पानी भी नहीं पीता।

भाषा के कवियों ने मान रखा है कि वह जो बोली बोलता है सो 'पी कहाँ, पी कहाँ' इस प्रकार पुकारा करता है। इसकी बोली कामोद्दीपक तथा विरहवर्धक मानी गई है। चातक-विषयक कुछ सूक्तियाँ दी जाती हैं—

बप्पीहा, पिउ पिउ भणवि कित्तिउ रुवहि हयास।
तुह जलि महु पुणु वल्लहउ बिँहु वि न पूरिअ आस ॥ १ ॥
बप्पीहा, कइँ बोल्लिएण निग्घिण वारइ वार।
सायर भरियइ विमल जलि, लहहि न एक्कइ धार ॥ २ ॥
(हेमचंद्र)

चातक सुतहि पढ़ावही आन नीर मति लेइ।
मम कुल यही सुभाव है स्वाति-बूँद चित देइ ॥ १ ॥
पपिहा पन कौ ना तजै तजै तो तन बेकाज।
तन छूटै है कछु नहीं पन छूटे है लाज ॥ २ ॥
पपिहा कौ पन देखि करि धीरज रहै न रंच।
मरते दम जल मैं पड़्या तऊ न बोरी चंच ॥ ३ ॥
ऊँची जाति **पपीहरा** पियै न नीचा नीर।
कै सुरपति कौ जाँचई कै दुख सहै सरीर ॥ ४ ॥
(कबीर)

पपैया प्यारे कद को बैर चितारयो
मैं सूती छी अपणे भवन में पिउ पिउ करत पुकारयो।
दाधी ऊपर लूण लगायो हिवड़े करवत सारयो ॥ १ ॥
पपीहा रे पिउ को नाँव न लेइ।
काइक जागै विरहिणी रे पीउ कह्याँ जिउ देइ ॥ २ ॥
पपइया रे पिउ की बाँणि न बोल।
सुणि पावैली विरहणी रे थारी रालैली पाँख मरोड़ ॥
चाँच कटाऊँ **पपइया** रे ऊपर राळूँ लूँण।
पिउ मेरा मै पीउ की रे तूँ पिउ कहै स कूँण ॥ ३ ॥
(मीराँ)

ज्यों चातक बस स्वाति-बूँद के बस ज्यों जीय।
सूरदास, प्रभु, अति बस तेरे समुझि देखि धौं हीय ॥ १ ॥
सखी री चातक मोहि जिआवत।
जैसेहि रैन रटति हौं पिय पिय तैसेहि सो पुनि पुनि गावत ॥

अतिहि सुकंठ नाँउ प्रीतम को ताहि जोभ मन लावत।
आपु न पिवत सुधा-रस सजनी बिरहिनि बोलि पिआवत ॥ २ ॥

चातक न होइ, कोउ बिरहिनि नार।
अजहूँ पिय पिय रजनि सुरति करि झूठेहि माँगत बारि ॥
अति कृस गात, देखि सखि, याको अहनिसि रटत पुकारि।
देखो प्रीत बापुरे पसु की मानत नाहिँन हारि ॥ ३ ॥

हौं तो मोहन के बिरह जरी, तू कत जारत ?
रे पापी, तू पंखि **पपीहा** पिउ पिउ पिउ अधराति पुकारत ॥
सब जग सुखी, दुखी तू जल बिन, तऊ न तन की बिथा बिचारत।
सूर, स्याम बिन ब्रज पर बोलत, हठि अगिलोऊ जनम बिगारत ॥

(सूर)

जो, घन बरखै समय-सिर, जो भरि जनम उदास।
तुलसी, याचक चातकहि तऊ तिहारी आस ॥
उपल बरखि, गरजत तरजि, डारत कुलिस कठोर।
चितव कि चातक मेघ तजि कबहुँ दूसरी ओर ?
मान राखिबो, माँगिबो, पिय सों नित नित नेहु।
तुलसी, तीनिउ तब फबैं, जब चातक मन लेहु ॥
प्रीति **पपीहा** पयद की प्रगट नई पहिचानि।
जाचक जगत कनाउड़ो, कियो कनौड़ो दानि ॥
बधिक बध्यो, पर्‍यो पुन्य जल, उलटि उठाई चोंच।
तुलसी चातक-प्रेमपट मरतहुँ लगा न खोंच ॥

(तुलसी)

दादुर-मोर-किसान-मन॰ लग्यौ रहै घन माँहि।
पै रहीम चातक रटनि सरवरि को कोउ नाँहि ॥

(रहीम)

अरे **पपैया** बावरा, आधी रात न कूक।
होळे होळे सुलगती, सो तैं डारी फूँक ॥
पीहू पीहू करणरी बुरी, **पपीहा**, बाँण।
थारो सहज सुभाव ओ, म्हाँरे लागै बाण ॥

(राजस्थानी सुभाषित)

आसाढ—चातक का वर्णन वर्षा ऋतु में किया जाता है। वह वर्ष भर प्यासा रहता है, वर्षा के आने पर उसे प्यास बुझाने की आशा होती है (आषाढ़ से वर्षा का आरंभ माना जाता है)। आषाढ़ में ही चातक को मेघ का प्रथम दर्शन होता है, अतः वह जोरों से पुकारने लगता है।

विरहणि—सं० विरहिणी। अन्य रूप—विरहिण-विरहिणि-विरहिणी, विरहण-विरहणी।

दूहा २७ नइ—सं० अन्यत्; अन्य रूप—अनइ-अने। जोधपुरी और गुजराती में ने और अने 'और' के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। बीकानेरी आदि में और का प्रयोग होता है।

दुहुवाँ—दुहूँ = दोनों। आँ विकारी रूप का प्रत्यय है जो यहाँ वाँ हो गया है। संबंध कारक का चिह्न लुप्त।

सहाव—सं० स्वभाव; प्रा० सहाव। अन्य रूप—सुहाव सुभाव, सभाव।

जब—बोलचाल की राजस्थानी में जद आता है।

घण—सं० घन; प्रा० घण।

प्रियाव = प्रिय + आव = हे प्रिय, तू आ। आव आवणो क्रिया का आज्ञा का रूप है। न शब्द के साथ अवणो क्रिया की भी संधि हो जाती है। जैसे—संदेसा ही **नाविया** (दूहा १४०)।

कवियों ने पपीहे की बोली के कई अर्थ लिए हैं—(१) पी पी, (२) पी कहाँ, पी कहाँ, (३) पी आव, पी आव।

दूहा २८ गउख—सं० गवाक्ष।

सिरि—यह शब्द अधिकरण-प्रत्यय 'पर' के अर्थ में प्रयुक्त होता है। कबीर ने इसका ऐसा प्रयोग कई स्थलों पर किया है। जैसे—

> विरहिणि ऊभी पंथ-**सिरि** पंथी पूछै धाइ।
> एक सबद कहु पीव का कबर र मिलैंगे आइ॥

ऊँचइरी—ऊँचउ + एरउ। स्त्रीलिंग। एरउ या एरो प्रत्यय स्वार्थ में लगता है। मिलाओ—वेगइरउ (दूहा १३४) आघेरउ (दूहा ६३)।

मत ही = कहीं न।

साहिब—अरबी साहब। कविता में यह शब्द प्रियतम या पति के अर्थ में आता है। आजकल यह आदरार्थ संबोधन में प्रयुक्त होता है और यूरोप-वासी के अर्थ में भी आता है। अन्य रूप—सायब, सा'ब (आधु०)।

बाहुड़इ—बाहुड़णो क्रिया का संभाव्य भविष्य। बहुड़णो और बाहुड़णो एक ही अर्थ में आते हैं। ये संभवतः बहु से निकले हैं। कुमारपाल-प्रतिबोध में बाहुडिअ शब्द गए हुए के अर्थ में आया है। कोष में इसे देशी शब्द कहा गया है। मिलाओ—हिं० बहुरि, बहुरना।

को—सं० कोऽपि; प्रा० कोवि; राज० कोइ, कोई। अंतिम इ छंद की सुविधा के लिये लुप्त कर दिया गया है।

गुण—इस शब्द के बात, प्रेरणा, बूता, शक्ति, प्रकार आदि कई अर्थ होते हैं। देखो—दूहा ४६१ और ६४४।

आवइ—संभाव्य भविष्य। कविता में संभाव्य भविष्य और वर्त्तमान कालों के रूप एक से होते हैं।

चीत—चीत आवणो का अर्थ याद आना है। चीत (ची त भी) संभवतः चित् से बना है। मिलाओ—चींतणो = मन में लाना, सोचना और चिँतारणो = याद करना।

दूहा २९ पाज—तालाब के चारों ओर मिट्टी जमा करके जो ऊँची भूमि बना दी जाती है उसे राजस्थानी में पाज या पाळ कहते हैं। हिंदी में इसके लिये पार शब्द आता है। उदाहरण—

बाई ऊभी सरवर-पाळ ऊँचा चढै नीची ऊतरै।

(नरसी मेहतेरो माहेरो)

दूहा ३० सोरठा—राजस्थानी में सोरठा दूहे का ही भेद माना जाता है। इसे सोरठियो दूहो कहते हैं। यह सोरठ देश का छंद है। करुणरस में इस छंद का अधिकतर प्रयोग किया जाता है। सुभाषित प्रसिद्ध है—सोरठियो दूहो भलो, भलि मरवणरी बात।

चोर—अर्थात् दुष्ट, छिपकर सतानेवाला।

चाँच—सं० चंचु; हिं० चोंच। अन्य रूप—चंच, चाँच, चूँच।

कटाविसूँ—कटावणो का सामान्य भविष्य, उत्तम पुरुष, एक वचन। कटावणो काटणो का प्रेरणार्थक है।

ज—यह अव्यय पद-पूर्त्यर्थ या जोर देने के लिये जोड़ दिया जाता है।

दीन्ही—प्रा० दिण्ण; देवणो क्रिया का (अनियमित) सामान्य भूत काल स्त्रीलिंग का रूप। अन्य रूप—(अनियमित) दिग्ध, दीध, दीधो-धी, दीन्ह। (नियमित) दयो-दी।

लोर—मिलाओ—हिं० लोरी।

प्री—सं० प्रिय।

दूहा ३१ निल—सं० नील।

पंखिया—पंख + इया (वाला अर्थ का तद्धित प्रत्यय)। निल-पंखिया निलपंखियो का संबोधन है।

मगरि—सं० मुकुल (= देह); प्रा० मउळ, मगुळ। राजस्थानी में मगर पीठ को कहते हैं।

रेह—सं० रेखा; प्रा० रेहा; अंतिम स्वर का लोप।

मति—देखो—ऊपर दूहा नं० २८।

पावस—सं० प्रावृष्; प्रा० पाउस।

तळफि—सं० तप् (?); प्रा० तळप्प। प्राकृत पिंगल-सूत्र में यह तळप्प शब्द आया है।

जिउ—सं० जीव; प्रा० जीअ; अप० जीउ। अन्य रूप – जिव, जिय, जी, जिया।

देह—देवणो का संभाव्य भविष्य। ह पाद-पूर्त्यर्थ जोड़ा गया है अथवा देय के य का स्थानापन्न है।

दूहा ३२ तर—फारसी = हरा।

तइँ—प्रा० अप० तइँ। देखो—दूहा २०।

किउँ—क्यों। देखो—दूहा २०।

चकोर—भारतीय साहित्य में जिन पक्षियों को अधिक महत्त्व दिया गया है वे चक्रवाक, चातक और चकोर हैं। चकोर साधारण तीतर से कुछ बड़ा होता है। हिंदी-शब्दसागर में उसे एक प्रकार का बड़ा पहाड़ी तीतर कहा गया है। यह नैपाल, नैनीताल तथा पंजाब और अफगानिस्तान के पहाड़ी जंगलों में मिलता है। इसके ऊपर का रंग काला होता है। जिस पर सफेद सफेद चित्तियाँ होती हैं। पेट का रंग कुछ सफेद होता है। चोंच और आँखें रक्तवर्ण होती हैं। यह झुंड में रहता है और वैशाख-ज्येष्ठ में बारह बारह अंडे देता है। इसके पंख बहुत ही नयनाभिराम होते हैं।

प्राचीन समय में राजा लोग इसे पाला करते थे और भोजन के समय खाद्य पदार्थ इसे दिखाकर खाते थे। यदि उनमें विष होता तो चकोर की दृष्टि पड़ते ही उसकी आँखें रक्तवर्ण हो जाती थीं और वह मर जाता था।

चकोर चाँदनी का बड़ा प्रेमी होता है। चंद्रमा की ओर टकटकी लगाकर बराबर देखा करता है। उसके विषय में प्रवाद है कि वह जलती हुई चिनगारियाँ खा जाता है। एक पक्षी-प्रेमी सज्जन का कहना है कि उन्होंने चकोर को पत्थर के कोयले की जलती हुई चिनगारियाँ खाते देखा है। साहित्य में चकोर के विषय में बहुत सी सूक्तियाँ हैं। कुछ नीचे दी जाती हैं—

चित दै देखि चकोर-त्यों, तीजैं भजै न भूख।
चिनगी चुगै अँगार की, चुगै कि चंद-मयूख॥

शीत ऋतु का वर्णन—

लगत सुभग सीतल किरन, निसि-सुख दिन अवगाहि।
माह ससी-भ्रम सूर त्यों रहत चकोरी चाहि॥
(बिहारी)

तैं, रहीम, मन आपुनो कीन्हो चारु चकोर।
निसि-बासर लाग्यो रहै कृष्णचंद की ओर॥
(रहीम)

दूहा ३३ बाढत—बाढणो राजस्थानी में काटने या चीरने के अर्थ में आता है। अत वर्त्तमान का प्रत्यय है। अन्य रूप—बाढंत। नियमित रूप—बाढइ (बाढै) है।

दइ—पूर्वकालिक प्रत्यय कभी कभी लुप्त हो जाता है। अन्य रूप—देई-देई (कविता में)

लूण—सं० लवण; हिं० लौन।

मेरा—खड़ी बोली का प्रभाव। राजस्थानी व्याकरण के अनुसार मेरो होना चाहिए।

स—सो का संक्षिप्त रूप।

कूण—अप० कवण; हिं० कवन, कौन। अन्य रूप—कुण, कौण। वि० ऐसा ही भाव मीराँ के एक पद में आया है। देखो—दूहा २६ की टिप्पणी में उद्धृत मीराँ का तीसरा भजन।

दूहा ३४ रत—सं० रक्त; प्रा० रत्त, रात।

बोलइ—मीठे मीठे शब्द बोलकर विरह को जगाता है अतः।

काइ—सं० किं०। अन्य रूप—का, कइ, कै (देखो—दूहा ६६०)। इसका अर्थ या होता है। मिलाओ—हिं० क्या तो, यह, क्या यह।

लवंतउ—लवणो का वर्त्तमान कृदंत, सं० लप्; प्रा० लव।

माठि—सं० मष्ट; प्रा० मट्ठ। मिलाओ—मष्ट करहु, अनुचित, भल नाहीं। (तुलसी)

करि—करणो का आज्ञा का रूप।

परदेसी—परदेश-वासी; प्रवासी।

आँणि—आणनो क्रिया का आज्ञा का रूप। सं० आ + नी; प्रा० आण। वि०—परदेशी शब्द के पहले 'काइ' (= या) शब्द लुप्त है।

दूहा ३५ काइक—काइ + इक = कोई एक। यहाँ एक अनिश्चय के अर्थ में आया है। मिलाओ—केतीहेक (दूहा ६४६)। इस एक का कभी कभी क ही शेष रह जाता है। जैसे—आधीक रात = आधी-एक रात (कोई आधी रात, लगभग आधी रात)।

कह्याँ—मिलाओ—हिं० कहे (=कहने से या कहने पर)। कह्यो का बहुवचन विकारी रूप।

देह—संभाव्य भविष्य सामान्य भविष्य के अर्थ में अथवा देसी—देही इस सामान्य भविष्य का संक्षिप्त रूप।

दूहा ३६ डूँगर-दहण—अपने मर्म-भेदी स्वर से पर्वतों में भी ज्वाला उठा देनेवाला। जिसके करुण शब्द से पर्वत जैसा कठोर चीजों में भी ज्वाला उत्पन्न हो जाय वह यदि विरही-हृदय को जलन से विकल कर दे तो कौन बड़ी बात है!

छाँडि—प्रा० छड्डु, छंड। आज्ञा का रूप—छंडणो, छाडणो, छोड़नो। बोलचाल में छोड़नो प्रयुक्त होता है!

हमारउ—प्रा० अम्ह + रउ (संबंध चिह्न)। हमारो व्रज में तथा हमारा हिंदी में आता है। राजस्थानी के अपने रूप महारउ, म्हारउ हैं।

पुकारियउ—पुकारणो क्रिया अकर्मक और सकर्मक दोनों प्रकार से प्रयुक्त होती है।

दूहा ३७ भए—व्रज का रूप, राजस्थानी रूप 'भया' होगा।

मारू इ०—मिलाओ—चातक न होइ ए विरहिनि नार।

(सूर)

(पूरा पद ऊपर दूहा २७ की टिप्पणी में देखो।)

दूहा ३८ बोलर—बोलण चाहिए। बोलणो + अण। मिलाओ—हिं० बोलने।

कंता—कंत का संबोधन; कंत, कंतो, कंता तीनों रूपों में प्रयुक्त होता है।

नवि—इसके अर्थ न और नहीं तो (=अन्यथा) दोनों होते हैं।

कीधउ—सं० कृत; प्रा० किद्ध; सामान्य भूत, पुँल्लिंग, एकवचन का अनियमित रूप।

जोर करणो—प्रबल होना, पूरे बल पर होना, पूर्णत्व को पहुँचना, मन में प्रियतम के लिये तीव्र भावनाओं का उत्पन्न होना।

दूहा ३९ गहक्किया—गहक्कणो का सामान्य भूत, पुँल्लिंग बहुवचन। कविता में मात्राएँ पूरी करने के लिये कभी कभी अक्षर को द्वित्व कर देते हैं। गहकना=चाह या उमंग से भरना, ललकना, उमंगित होना (उमंगित होकर बोलना भी)।

मूँक्या—मूँकणो का सामान्य भूत, पुँल्लिंग, बहुवचन। सं० मुच्; प्रा० मुंच, मुक्क; राज० मुक्क या मुंक। मिलाओ—गुज० मूँकवुँ। इसका अर्थ छोड़ना होता है। लक्षणा से 'दे देना' अर्थ है।

धणियाँ—धणी का बहुवचन विकारी रूप। कर्म का प्रत्यय लुप्त। धणी का अर्थ पति और मालिक होता है। मिलाओ—हिं० धनी (द्वार धनी के पड़ रहे धका धनी का खाइ—कबीर)।

धण—यह शब्द राजस्थानी में नायिका, स्त्री, प्रेयसी इन अर्थों में आता है। इसका पुल्लिंग धणी है जो धण से ही बनाया गया है। इसकी व्युत्पत्ति सं० धन्या से की गई है पर सं० धन से भी हो सकती है। पुराने जमाने में स्त्री को भी एक प्रकार का धन ही समझा जाता था। इसका पुँल्लिंग धणी संभवतः धनिन् (धनवाला—स्त्री से बना हो। इसका प्रयोग अपभ्रंश-काल से मिलता है। राजस्थानी में तो यह बहुत आता है। आधुनिक गीतों में भी इसका प्रयोग खूब होता है। कबीर और जायसी में भी यह आया है। पीछे दूहा ८ में यह सामान्य रूप में स्त्री के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। प्रयोगों के उदाहरण—

ढोला सामळा धण चंपावण्णी। (८-४-३३०)
सामि-पसाउ, सलज्जु पिउ, सीमा-संधिहिँ वासु।
पेक्खिवि बाहु-वलुल्लडा धण मेल्लइ णीसासु॥ (८-४-४३०)
(हेमचंद्र)

धन मैली, पिउ ऊजला, लागि न सक्कौं पाइ। (५-३६)
(कबीर)

(१) धनि सूखै भरे भादौं माँहा। अबहुँ न आएन्हि सींचेन्हि नाहा।

(२) बरस दिवस धनि रोइकै हारि परी चित झंखि।
मानुस घरि घरि बूझिकै बूझै निसरी पंखि॥

(जायसी—नागमती-वियोग-खंड १७)

(१) उदियापुरसूँ बीज मँगाय, ओ धण वारी रे हंजा।
जोधाणेरी बाड़याँ में नींबू नीपजै ओ राज॥
माखणियारी पाळ बँधाय, ओ धण वारी रे हंजा।
दूधाँ ने सींचावो ढोलाजीरो नींबूड़ो ओ राज॥

(२) धण रे आँगण बाग लगावो
सायब मिलणेरे मिस आवो।

(३) थाँने आय पुजास्याँ गणगोर,
सुंदर धण, जात्रा दो जी।

(४) आवो, ए कुरजाँ, बैठो म्हाँरी पास, कुणांरी तो भेजी अठे आई जी म्हाँरा राज। थाँरी धणरी तो भेजी अठे आई जी थारी धणरा कागद साथ; भँवर, थे बाँच लेवो जी म्हाँरा राज।

(राजस्थानी गीत)

सालण—सालणे का तुमंत रूप; हिं०—सालने। सालणो=सं० शल्य; प्रा० सल्ल।

वूठैतौ—वूठणो+ऐतौ (वर्त्तमान कृदंत का प्रत्यय)। अन्य रूप—बूठंतो, वूठतो। व्याकरण के अनुसार यहाँ विकारी रूप वूठैते होना चाहिए।

दूहा ४० गुणिय—सं० गुणी।

सगळाँ—सं० सकल; प्रा० सगळ, सयल; राज० सगळो। विकारी रूप। संबंध का प्रत्यय लुप्त।

ऊछव—सं० उत्सव; प्रा० उच्छव।

दूहा ४१ ऊनमि इ०—मिलाओ-ऊँनवि आई बादली बरसण लगे अँगार।

(कबीर)

बद्दळी—अन्य रूप—बादळी। बादळ की व्युत्पत्ति कुछ लोग सं० वार्दल से करते हैं और कुछ लोग उसे देशी शब्द बनाते हैं। हेमचंद्र ने देशी कहा है।

प्रयोग—

ओ गोरी मुह णिज्जिअउ वद्दलि लुक्कु मियंकु।
अन्नुवि जो परिहविय-तणु सो किवँ भँवइ निसंकु॥

(८—४—४०१)

चित्त—चित्त में (या स्मृति में)—दूहा २८।

यो—इसकी संज्ञा मेह है। बद्ली को माना जाय तो या होना चाहिए।

दूहा ४२ दिसइँ—इँ अधिकरण-प्रत्यय है, अन्य प्रत्यय ए, इ।

मेड़ी—प्रा० । देखो—मेडय। मिलाओ—तस्स य सयणट्ठाणं संचारिय-कट्ठमेड्यसुवरिं (सुपाहनाहचरिअं पृ० ३५१)।

जीवसे—जीवणो का सामान्य भविष्य। से भविष्य का प्रत्यय है। अन्य प्रत्यय—सी, सइ, स्सइ। आधुनिक बोलचाल की राजस्थानी में सी (जीवसी) प्रत्यय प्रयुक्त होता है। कई मुसलमान जातियाँ से का भी प्रयोग करती हैं। देहाती बोली में भी से प्रायः आता है। जैसे—जासे।

सनेह—सनेही। तुक के लिये अंतिम स्वर का लोप किया गया है। अथवा विशेषण के लिये संज्ञा प्रयुक्त की गई है।

दूहा ४३ काळी कंठळि—काली गोलाकार घटा। देखो—दूहा ५२१।

दूहा ४५ मिलउँली—मिलणो का सामान्य भविष्य, उत्तम पुरुष, एक-वचन स्त्रीलिंग। राजस्थानी में भविष्यकाल के चार-पाँच प्रकार के रूप होते हैं। मिलसूँ-मिलूँला (इनमें लिंग-भेद नहीं होता), मिलूँली, मिलूँगी (इनमें लिंग-भेद होता है)।

दूहा ४८ टबक—नगाड़े आदि का शब्द।

भावार्थ—दादुर, मोर और मेघ का शब्द मानो नगाड़े की आवाज है और बिजली, जो चमक रही है, मानो तलवार है। इस प्रकार मानो कोई सेना उस विरहिणी पर चढ़ी आ रही है।

दूहा ४९ किँगार—कगार; यहाँ सरोवर आदि के किनारे।

दूहा ५० नीळजियाँ—निर्ल्लज्जा, यहाँ विशेष्य के साथ साथ विशेषण को भी बहुवचन किया गया है। साधारणतया तथा गद्य में ऐसा नहीं किया जाता (ओकारांत पुँल्लिंग विशेषण इस नियम के अपवाद हैं)।

मधुरइ मधुरइ—जोर जोर से गरजकर विरह-वेदना को न जगा किंतु अपनी धीमी धीमी मीठी आवाज से लोरी की भाँति उसे धीरे धीरे सुला दे।

दूहा ५१ काइ—सं० कापि, प्रा० कावि।

कुरळी—कुरळनो क्रिया का सामान्य भूत, स्त्रीलिंग, एकवचन। कुरलना राजस्थानी का एक बड़ा ही भावपूर्ण शब्द है। इसका प्रयोग विशेषतः क्रौंच, चातक, सारस, कोयल, मयूर आदि के करुण किंतु मधुर शब्द के अर्थ में होता है। उदाहरण—

(१) हूँ चातक ज्यूँ **कुरळाऊँ** जी।
कछु बाहर कहि न जणाऊँ जी॥
(२) मोर असाढाँ **कुरळहे** घन चात्रग सोई हो।

(मीराँबाई)

सरवर सँवरि हंस चलि आए।
सारस **कुरळहिँ**, खंजन देखाए॥

(जायसी—नागमती-वियोग-खंड)

अंबर कुंजाँ **कुरलियाँ** गरजि भरे सब ताल। (कबीर)

उवै—साधारण रूप वै है। मिलाओ–हिं० वे, अगला दोहा देखो।

मेळी—मिलाइँ, बंद कीं। अंखि मेळी = सोई।

दूहा ५२ कहिजइ—कहणी का कर्मवाच्य; आधुनिक रूप—कहीजै। अन्य रूप—कहियइ-यै।

पसू—पशु की भाँति विवेक-रहित।

केरा—केरो का बहुवचन। केरो संबंध का प्रत्यय है।

प्रा० केर; अप० केरअ। इसी से राजस्थानी रो, बँगला एर, ब्रज को, एवं हिंदी 'का'—ये संबंध-प्रत्यय बने हैं।

अणुराव—अनु + रव = पीछे पीछे बोलना। वैसा ही शब्द करना। अणुराव गूँज को भी कहते हैं।

दूहा ५३ तिणका—बहुवचन = उनके।

जिणकी इ०—अर्थात् जो प्रियतम से बिछुड़ जाते हैं वे सदा इसी प्रकार करुण शब्द से रोया करते हैं जो चारों ओर फैलकर गूँजने लगता है। मिलाओ—

अंबर कुंजाँ कुरलियाँ गरजि भरे सब ताल।
जिनिपै गोबिंद बीछुटे तिनिकै कवन हवाल॥
अंबर घनहर छाइया बरसि भरे सब ताल।
चातक ज्यौं तरसत रहै तिनिकौ कवन हवाल॥

(कबीर)

कुरझड़ियाँ कुरळा रही, गूँजि उठे सब ताल।
जिनकी जोड़ी बीछड़ी तिनका कोण हवाल॥
(राजस्थानी सुभाषित)

दूहा ५४ कूँझड़िया—सं० क्रौंच; प्रा० कुंच, कोंच: राज० कुंज-कूँज, कुंझ-कूँझ, क्रुंझ-क्रूँझ, क्रुंझी-क्रूँझी, कुरज, कुरझ-कुरझी, कुंजड़ी कुंझड़ी-कूँझड़ी-क्रूँझड़ी। अनुवाद में इसका अर्थ कुररी दिया गया है, जो ठीक नहीं है। हिंदी में इसको कराँकुल कहते हैं। यह सारस की जाति का पक्षी होता है और सरोवर आदि के जल के किनारे रहता है। यह झुंड बनाकर आकाश में उड़ता है। इसका स्वर बड़ा ही करुण होता है। राजस्थानी साहित्य में यह पक्षी चातक की ही भाँति महत्त्वपूर्ण है। चातक राजस्थान में नहीं होता, क्रौंच होता है अतः उसका महत्त्व और भी अधिक है। क्रौंच के करुण रुदन ने ही भारतीय काव्य-रचना को जन्म दिया। आदिकवि वाल्मीकि की कवित्व-शक्ति का आकस्मिक स्फुरण एक क्रौंच पक्षी के व्याध द्वारा निहत अपने प्रियतम के प्रति करुण रुदन को सुनकर ही हुआ था और भारतीय साहित्य की उस प्रथम काव्य-कृति ने क्रौंच को अमर कर दिया है—

मा, निषाद, प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौंच-मिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥

क्रौंच के बच्चे निर्मल श्वेत वर्ण के होते हैं। स्त्रियों के गौर वर्ण से उनकी उपमा दी जाती है (कूँझ बचाँ गोरंगियाँ खंजर जेहा नेत—दूहा ४५७)। कहते हैं कि कुंज पक्षी अपने बच्चों को छोड़कर जब चुगने जाता है तब वहाँ से उनको बराबर पुकारता रहता है और बच्चे भी बराबर गर्दन ऊँची किए उसकी प्रतीक्षा करते रहते हैं (देखो—दूहा २०२ से २०५)। कबीर ने भी इस भाव का एक दोहा कहा है (देखो—दूहा २०२ की टिप्पणी में अवतरण)। उदाहरण—

तूँ छै ए, कुरजाँ, भायेली, तूँ छै धरम की बहण।
एक सँदेसो, ए बाई म्हारी, ले उडो, ए म्हारी
राज, कुरजा, म्हारा पीव मिला दे ए॥
(राजस्थानी गीत)

करळव—सं० कलरव। यह शब्द प्रायः मधुर किंतु करुण शब्द के अर्थ में आता है।

वणेहि—वण (सं० वन)+एहि (अधिकरण-प्रत्यय)।

द्रह—सं० ह्रद, द्रह; प्रा० दह।

दूहा ५५—दरंग-दरंग+इ । दरंग = सं० दुर्ग । अन्य रूप—द्रंग, दुग्ग । अपभ्रंश और राजस्थानी में कभी कभी आगे का द्वित्व वर्ण Single कर दिया जाता है और मात्रा पूरी करने के लिये पूर्व वर्ण को सानुस्वार कर दिया जाता है। कुछ विद्वान् यह मानते हैं कि पुराने लेखक द्वित्व अक्षर लिखने का परिश्रम बचाने के लिए पूर्व अक्षर पर अनुस्वार का सा एक चिह्न कर देते थे (मिलाओ—उर्दू का तशदीद), वही बाद में भ्रम से अनुस्वार हो गया। मक्कड का मंकड हो गया, द्रग्ग का द्रंग, इसी प्रकार और भी।

करवत—सं० करपत्र; प्रा० करवत्त ।

बूही—बूहणो क्रिया का सामान्य भूत, स्त्रीलिंग, एकवचन । राजस्थानी में वहणो (हिं० वहना) क्रिया चलना के अर्थ में आती है। कविता में तथा कुछ देहाती बोलियों में यह क्रिया बुहणो और बूहणो के रूप में भी प्रयुक्त होती है। प्रयोग—

जिण मारग केहर बुहो लागी वास तिणाँह ।
ते खड़ ऊभा सूकसां नहिं चरसी हिरणाह ॥

(राजस्थानी सुभाषित)

दूहा ५६—बइसि—बइसणो का पूर्वकालिक । बइस=सं० उपविश्; प्रा० बइस । राजस्थानी में बैसणा और बैठणो दोनों रूप आते हैं।

सारहली—सं० शल्य; प्रा० सल्ल, साल; राज० सार । हली ऊनवाचक प्रत्यय । बढ़ई के छेद करने के औजार को सार कहते हैं।

सल्हियाँ—मिलाओ—हिं० सालना ।

दूहा ५७—समंदाँ—समुद्रों के, यहाँ जलाशय के ।

वीँट—(१) सं० वृंत; प्रा० विंट = फल-पत्तों आदि के डंठल या बंधन । (२) सं० विष्ठा । पक्षियों की विष्ठा को राजस्थानी में वीँट कहते हैं। वि०—(ख) प्रति का बैठ (= बैठकर) पाठ स्पष्टतर है।

जामोपत्त—जाम (सं० जन्म; प्रा० जम्म) + उपत्त (सं० उत्पत्ति)। इस शब्द का ठीक अर्थ स्पष्ट नहीं है।

माँझिम रत्त—सं० मध्यम रात्रि=आधी रात ।

दूहा ५८—कळिअळ—सं० कलकल; प्रा० कलयल ।

वाइ—सं० वायु ।

त्याँ—विकारी रूप, कर्म का प्रत्यय लुप्त = उनको ।

दूहा ५९—पइलइ—हिं० परला; राज० पैलो; गुज० पेलुं ।

वूहा—(१) देखो दूहा ५५ में वूही । (२) सं० वृष्ट; राज० वूठो, वूठों ।

सोरठा ६०—आवी—आवणो का पूर्वकालिक । आवी वहइ संयुक्त क्रिया है—आकर बहती है = आ बहती है (आ निकलती है) ।

एकणि—एकण + इ (अधिकरण-प्रत्यय) । ण प्रत्यय स्वार्थ में लगता है । एकण का अर्थ 'एक ही, अकेला' भी होता है ।

दूहा ६१—आडा—यह विशेषण बीच में क्रिया-विशेषण का काम देता है ।

वणइ—वणनो का वर्त्तमानकाल, हिं० बनता है ।

जाणइ—जाणो कृदंत संज्ञा का विकारी रूप, संबंध-प्रत्यय लुप्त =जाने की ।

भत्त—हिं० भाँति; राज० भाँत=प्रकार, उपाय ।

वणइ इ०—अन्यार्थ—बीच में वन हैं; उन वनों में जाने का अर्थात् वनों को पार करने का उपाय नहीं है ।

संदइ—संदउ का विकारी रूप । संदउ (संदो) राजस्थानी में संबंध का प्रत्यय है । ऐसा ही दूसरा प्रत्यय हंदों है । इसकी व्युत्पत्ति प्रा० सुंतो से की जाती है ।

हिलूसइ—हिलूसणो का वर्त्तमानकाल । सं० उल्लस् ।

दूहा ६२—द्यउ नइ—मिलाओ—हिं० दो न ।

विनउ—मिलाओ—हिं० बाना ।

लंघी—लंघणो का पूर्वकालिक (लंघ + ई)

मिलउँ—अन्य रूप—मिलौं, मिलूँ ।

दूहा ६३—आघेरि—सं० अग्र; प्रा० अग्ग; राज० आगो, आघो एरो । स्वार्थिक प्रत्यय है । मिलाओ—वेगेरो, ऊँचेरो ।

दूहा ६४—उपराठियाँ—पीठ किए हुए । देखो—दूहा ३५० और ३६३ ।

नइ—कर्म का प्रत्यय । वर्त्तमान रूप—ने । अन्य रूप—नूँ ।

इनके अतिरिक्त कूँ, कौं, को, कौ, कहुँ आदि भी प्रयुक्त होते हैं ।

कहियाँह—कहना ।

दूहा ६५ हवाँ—हुवणों का संभाव्य भविष्य, उत्तम पुरुष, बहुवचन। अन्य रूप—हुवाँ।

चवाँ—चवणो का संभाव्य भविष्य, उत्तम पुरुष, बहुवचन। प्रा० चव।

छाँ—वर्त्तमान काल, उत्तम पुरुष, बहुवचन। पश्चिमी राजस्थानी—हाँ; हिं०—हैं।

पाठविसि—भेजेगी (तो)।

दूहा ६६ थाहरइ—(१) थाहरणो का वर्तमान काल। अन्य रूप—ठाहरणो, ठहरणो। (२) आधुनिक रूप—थारे = हिं० तुम्हारे; गुज० त्हारे।

काजळ—अर्थात् मसि जिससे संदेश लिखा जाय।

गहिलाइ—गहिलाणो का कर्मवाच्य, संभाव्य भविष्य। सं० गृहीत।

कहिवाइ—कहणो का प्रेरणार्थक, कर्मवाच्य, वर्तमानकाल=कहाए जाते हैं। प्रेरणार्थक रूप—कहवाणो, कहावणो, कहाड़नो।

दूहा ६७—गँमार—किसी शिकारी से अभिप्राय है।

आखर—सं० अक्षर; प्रा० अक्खर = प्रेरणा। प्रयोग—

काटी-कूटी माछली छींके धरी चहोड़ि।
कोइ एक **आखिर** मनि बस्या, दह मैं पड़ी बहोड़ि॥

(कबीर)

सँभार—अन्य रूप—सँवार, सम्हाल।

दूहा ६८ हुवइ—हुवणो का संभाव्य भविष्य।

मनाँ—मन का बहुवचन, विकारी रूप, कर्म का प्रत्यय लुप्त = मनोंको।

बँधाड़ाँ—बाँधणो का प्रेरणार्थक बँधाड़नो। संभाव्य भविष्य, उत्तम पुरुष, बहुवचन। अन्य रूप—बँधावणो।

दूहा ७० भुइ—सं० भू; जमीन, बीच की जमीन; अतः फासला।

माँगी ताँगी—मिलाओ—हिं० रोटी ओटी।

दूहा ७१ ई—ही।

किउँ—सं० किम्; अप० किंव, किवँ। यहाँ किमपि—कुछ का मतलब है।

अवाड़ू—सं० अपवृत्त (?) = विपरीत।

दूहा ७२ मिळीजइ—मिळनी का आज्ञार्थ या कर्मवाच्य = मिलिए या मिला जाता है।

हूँ—अपादान का प्रत्यय। यह दूसरे अपादान प्रत्यय सूँ से बना है। राजस्थानी में स का ह प्रायः हो जाता है। मिलाओ—हिं० हू, हूं।

मेल्हियइ—प्रा० मेल्ल, मिल्ल; आज्ञा का रूप। मेल्हणो क्रिया राजस्थानी में छोड़ना, भूलना, रखना, भेजना आदि अर्थों में आती है।

दिणियर—सं० दिनकर; प्रा० दिणयर।

दूहा ७३ हुंति—हेतुहेतुमद्भूत = होता या होते। अन्य रूप—हुंत, होत, हुता, होता (आधुनिक राजस्थानी)।

दूहा ७४ वजउ—(१) सं० व्रज्; प्रा० वज्ज। (२) सं० वा; प्रा० वाय; राज० वाज।

उआँ—ऊ (= वह) का विकारी रूप। कर्म का प्रत्यय लुप्त। अन्य रूप—वाँ।

लाख पसाउ—सं० लक्ष + प्रसाद। पुराने जमाने में राजा लोग बहुत प्रसन्न होकर कवियों आदि को कई प्रकार के पुरस्कार देते थे जिनमें लाख-पसाव, कोड़पसाव और अड़बपसाव मुख्य हैं। इन नामों का मतलब है प्रसाद या अनुग्रह करके लाख, करोड़ या अरब द्रव्य का दान देना। अड़बपसाव करनेवाले राजा इनेगिने ही हुए हैं। पहले वास्तव में इतना द्रव्य दिया जाता था पर बाद में तो लाख आदि का नाम ही नाम रह गया। यह आवश्यक नहीं था कि पुरस्कार में नकद द्रव्य ही दिया जाय। जागीर, घोड़े, हाथी, वस्त्र आदि भी दिए जाते थे। राजस्थानी साहित्य में नीचे लिखे दानी प्रसिद्ध हैं—

* (१) सिंध का राजा ऊनड़—इसने नौ लाख गाँववाली सिंध की समस्त भूमि एक ही दिन में दान दे डाली।

(२) अजमेर का गौड़वंशी राजा बच्छराज—इसने अड़बपसाव (एक अरब द्रव्य) दान किया था।

* (१) माई एहा पूत जण जेहा **ऊनड़** जाम।
    दीधी सातूँ सिंध इम जिम दीजै इक गाम॥

(२) देतो **अड़बपसाव** दन धिनो गोड़ **बछराज**।
    गढ अजमेर सुमेरसूँ ऊँचो दीसै आज॥

(३) कोड़ दीध कमधज **करमै**, सवा कोड़ यह **सींग**।
    बीकाणे दाता वडा, उभै हुवा अरडींग॥

(३) बीकानेर-नरेश राजा रायसिंह ने सवा करोड़ का दान किया ।

(४) बीकानेर के राव लूणकरण का छठा पुत्र करमसी—इसने एक चारण को करोड़ रुपए का दान दिया । जो कुछ पास था वह सब दे चुकने पर भी जब एक करोड़ की रकम पूरी नहीं हुई तब अपने कीरतसी नामक कुँवर को चारण के हवाले कर दिया ।

दूहा ७५ दिऊँ—आधुनिक रूप—दूँ ।

मेळइ—मेळनो मिळना का प्रेरणार्थक है ।

मुज्झ, तुज्झ—कारक-प्रत्यय लुप्त । वि०—भाव के लिये मिलाओ—

काढि कलेजो मैं धरूँ, रे कौवा तूँ ले जाइ ।
ज्याँ देसाँ म्हाँरो पिव वसै वे देखै तू खाइ ॥

दूहा ७६ जागवइ—जागवणो, जागणो का प्रेरणार्थक है । अन्य रूप—जगावणो ।

परि—भाँति, ज्यों । मिलाओ—

तिल तिल बरख बरख परि जाई । पहर पहर जुग जुग, न सेराई ॥
(जायसी)

गावै करि मंगल चढ़ि चढ़ि गउखे मनै सूर सिसुपाल-मुख ।
पदमिणि अनि फूलै परि पदमिणि, रुखमिणी कमोदणी-रुख ॥
(कृ० रु० री वेलि)

दूहा ७७ भाणी—मिलाओ—हि० भावनी ।

कुँमलाँणी—कुमलावणो क्रिया का सामान्य भूत, स्त्रीलिंग, एकवचन । अनियमित रूप । मिलाओ—बिकाणी, लजाणी ।

दूहा ७८ ऊमा देवड़ी—देवड़ा चौहान राजपूतों की एक शाखा है । ये सोनगरा चौहानों से निकले हैं । आजकल सिरोही का राज्य देवड़ों का है । देवड़ा नाम क्यों पड़ा, इसका ठीक पता नहीं चलता । ख्यातों में लिखा है कि चौहान राजा आसराज के यहाँ देवी रानी होकर रही और उसके वंशज देवड़े कहलाए । कुछ लोग कहते हैं कि एक राजा का दूसरा नाम देवराज था जिसकी संतान देवड़ा कहलाई । (विशेष देखो, भूमिका)

ऊमा पिंगळ की स्त्री एवं मारवणी की माता थी । कुशललाभ और जोधपुरीय कथानकों में इस काव्य का एक धुर-संबंध (प्रस्तावना या उपोद्घात) भी मिलता है जिसमें पिंगळ और ऊमा के विवाह की कथा दी गई है जो इस प्रकार है—

एक बार राजा पिंगळ शिकार खेलने को गया। वहाँ उसे एक भाट मिला जिसने ऊमा के रूप की बहुत प्रशंसा की। नगर में लौट आने पर राजा ने अपने प्रधान को ऊमा के पिता सामंतसिंह के पास जालोर भेजा और ऊमा को माँगा। ऊमा की सगाई इससे पूर्व गुर्जर-नरेश उदयादित्य (उदयचंद) के पुत्र रणधवल के साथ हो चुकी थी पर ऊमा की माता इस संबंध से संतुष्ट न थी। उसने पिंगळ को कहलवाया कि अमुक अमुक लग्न के दिन तुम आबू यात्रा के बहाने यहाँ आ जा और हम ऊमा का विवाह तुम्हारे साथ कर देंगे। उधर उक्त लग्न के थोड़े दिन पहले एक दूत लग्न लेकर उदयादित्य के पास भेजा गया। उदयादित्य से दूत ने कहा कि मैं मार्ग में बीमार पड़ गया इसलिये पहले न आ सका। उदयादित्य ने देखा कि लग्न पर बरात नहीं पहुँच सकती पर उसने रणधवल को बरात के साथ रवाना कर दिया। उधर लग्न पर पिंगळ पहुँच गया। जब गुजरात की बरात ठीक समय पर नहीं आई तो ऊमा का विवाह पिंगळ के साथ कर दिया गया क्योंकि तेल चढ़ी हुई कन्या कुमारी नहीं रखी जा सकती। उदयादित्य को यह खबर मिली तो वह बहुत क्रुद्ध हुआ। उसने जाळोर को घेर लिया। विवाह के बाद पिंगळ तो पूगळ पहुँच गया पर ऊमा साथ न भेजी जा सकी। इसलिये पिंगळ के प्रधान जेसळ ने एक बैलों की जोड़ी ऐसी तैयार की जो खूब तेज जाकर लौट आ सके और उदयादित्य के सैनिकों द्वारा पकड़ी न जा सके। उस जोड़ी को गाड़ी में जोतकर वह एक रात को जाळोर गया और ऊमा को ले आया। (विशेष देखो परिशिष्ट में (थ) और (झ) प्रति का प्रारंभिक अंश।)

कहिया—कहने (के लिये)। अन्य रूप—कहण।

भणी—यह एक प्रत्यय है जो कई कारक-प्रत्ययों का काम देता है। जैसे—

(१) कर्म—जिम पहुँचाँ नळवर-गढ-भणी (को)।
(२) करण—छाना मिळिया भाऊ-भणी (से)।
(३) संप्रदान—घणा गरथ दिया तिण-भणी (को)।
(४) अपादान—माँगी हूती राजा-भणी (से)।

इसके सिवा यह 'प्रति' और 'पास' का भी अर्थ देता है। जैसे—
ऊमावो हूओ तुझ-भणी (प्रति)।
नरवरगढ ढोलइ-भणी (पास)।

(ये सब उदाहरण कुशललाभ की चौपाइयों के हैं। देखो—परिशिष्ट में (थ) प्रति।)

दूहा ८० आखय—आखइ। इ का य हो गया है।

दाइ—दाव (?)।

दूहा ८१ साँढिया—साँढ + इया (वाला अर्थ देनेवाला प्रत्यय) = साँढवाले, साँढनी-सवार। मिलाओ—ऊँटिया (ऊँटवाला, ऊँट का सवार)।

पाठवइ—सं० प्रस्थापम्; प्रा० पट्ठव पट्ठाव; राज० पाठवणो, पठावणो।

तेड़न—तेड़नो का तुमंत रूप। तेड़ना क्रिया राजस्थानी तथा गुजराती में बुलाने न्यौता देने के अर्थों में प्रयुक्त होती है।

काजि—हिंदी में भी यह शब्द 'लिये' के अर्थ में आता है।

दूहा ८२ को—कोइ। इ लुप्त हो गया है।

सँदेसड़ा—सं० संदेशक; प्रा० संदेस; अप० संदेसडउ; राज० संदेसड़उ (संदेसड़ो)। बहुवचन—ड़ो प्रत्यय स्वार्थ में या अनादर में आता है।

बगड़—(१) राज० बाघड़। (२) बग्गड़ या बागड़ बिना बस्ती के देश को भी कहते हैं। अतः मरुभूमि के जंगल के बीच में।

बिचाहू—बीच में ही। विच्च देशी प्राकृत शब्द है और हू ही का दूसरा रूप है।

दूहा ८३ आवंत—(१) सं० आयांत; प्रा० आवंत। आता हुआ है = आता है। (२) सं० आयांति; प्रा० आवंति। आवत, आवंत ये रूप वर्त्तमानकाल के दोनों वचनों में प्रयुक्त होते हैं।

बेच्या—बेचे हुए अर्थात् बेचे जाने पर। बेच्याँ पाठ हो तो 'बेचने पर' अर्थ होगा।

लाख लहंत—लाख रुपए लाते हैं, लाख रुपयों में बिकते हैं (देखो—दूहा २८० और ३७०)।

दूहा ८४ करे—कर + ए (पूर्वकालिक प्रत्यय)।

दूहा ८६ अउझकइ—अचानक। मिलाओ—हिं० औचक।

खिँवी—चमकी। बिजली के चमकने के लिये यह क्रिया आती है। यह उग्रता सूचित करती है।

संझ—सं० संध्या; प्रा० संझा।

दूहा ८७ सोवन—सुनहरा।

तसु- सं० तस्य; प्रा० तस्स; राज० तास, तस, तसु।

अलत्ता—सं० अलक्तक ।

दूहा ८८ सउदागर—इस चरण में एक मात्रा कम है ।
लइ मन्न—मन लेकर, अपने अनुकूल पाकर या बनाकर ।
दीसइ—सं० दृश्यते; प्रा० दीसइ, दीखती है, देखी जाती है ।
रायंगण—सं० राजांगण ।

ब्रन्न—सं० वर्ण । राजस्थानी में आगे के वर्ण पर का रेफ कभी कभी पूर्व वर्ण के नीचे चला जाता है । अन्य उदाहरण—ध्रम्म (धर्म्म), क्रम्म (कर्म्म), क्रीति (कीर्ति), सोव्रन्न (सुवर्ण), न्रिमल (निर्मल), स्त्रग (स्वर्ग) ।

दूहा ८९ किह—प्रा० अप० किह, किहँ; हिं० कहाँ ।
पीहर—पितृगृह ।
विगतइ—विगत (ब्यौरा) + इ (करण-प्रत्यय ।

दूहा ९० पुहकर—पुष्कर नामक स्थान ।

दूहा ९२ कन्हे—पास, से ।
एकंति—अन्यार्थ—एक ।

दाखूँ—दाखणो का संभाव्य भविष्य, उत्तम पुरुष, एकवचन । दाखणो राजस्थानी क्रिया है जो संभवतः आँख के साम्य पर बना ली गई है ।
भंति—भाँति ।

दूहा ९३ जिसउ—सं० यादृश; अप० जइस; राज० जिसउ; हिं० जैसा ।
लाखाँ—हिं० लाखों ।
बगसइ—फा० बख्शना ।
भड़—सं० भट ।
सिर—पर, ऊपर ।

दूहा ९४ सुधू—सु + धू (सं० दुहिता; प्रा० धूआ, धूया) । आधुनिक रूप—धी, धीवड़ी ।
ढोळइ तिण—ढोले में और उसमें ।

दूहा ९६ कउ—कोउ । देखो—दूहा ८२ में को ।
निरति—खबर, सुध ।
तियउ—अन्य रूप—तिको = वह । सो, वो, जो इनकी जगह राजस्थानी में तिको, जिको-जको ये रूप भी आते हैं ।

जिकोइ—जिको = जो। अन्यार्थ—जि = जो + कोइ = कोई।

दूहा ९७ सुँ—छंद-पूर्त्यर्थ ह्रस्व कर दिया गया है।

कह—कहता है। वर्त्तमान काल।

छानो—सं० छन्न; प्रा० छण्ण = प्रच्छन्न, गुप्त, छिपा। स्त्रीलिंग।

से—सो

तथ्थ—सं० तथ्य = रहस्य।

दूहा ९८ सही—सखी।

समाँणी—समान उम्र की।

मल्हपंत—प्रा० मल्ह (=लीला करना)। लीला के साथ धीमे धीमे चलना।

नेड़ी—सं० निकट; प्रा० णिअड, नेड विशेषण, स्त्रीलिंग।

दूहा ९९ साँभळिया—सं० संभल; प्रा० संभल; गुज० सांभळवुं।

मूक्यउ—सं० मुक्त; प्रा० मुक्क।

दूहा १०० विमासियउ—सं० विमर्श; प्रा० विमस्स।

दूहा १०२ माँगणहार—याचक। यहाँ याचक जाति के पुरुष से अभिप्राय है। चारण, भाट, ढोली, ढाढी आदि याचक जातियाँ कहलाती हैं।

गारा—फारसी गर प्रत्यय, जो संभवतः संस्कृत कार से बना है। राजस्थानी में यह वाला या करनेवाला के अर्थ में आता है। मिलाओ—कामणगारा।

रीझवइ—रीझवणो रीझणो का प्रेरणार्थक है। अन्य रूप—रिझावणो।

ल्यावइ—लावइ का रूपांतर।

दूहा १०३ मोकळि—सं० मुक्त; प्रा० मुक्क, मोक्कल, गुज० मोकळवुं। आज्ञार्थ।

उत्तिम—उत्तम।

मंगता—याचक। आजकल मँगता बुरे अर्थ में प्रयुक्त होता है।

घररा—घर के, अपने।

जगावइ—संगीत द्वारा विरह को उद्दीप्त करें।

दूहा १०४ भेदक—सं० भेदज्ञ।

दूहा १०५ ढाढी—विवाह, जन्मोत्सव आदि शुभ अवसरों पर बधाई आदि के गीत गानेवाले मुसलमान गवैए। प्रयोग—

हौं तो तेरो घर घर को ढाढी सूरदास मो नाउँ। (सूर)

श्री गौरीशंकर हीराचंद ओझा ने हमारे पूछने पर लिखा है—"ढाढी जाति की उत्पत्ति का ठीक ठीक पता नहीं चलता, परंतु अंदाजे से ढाढी शब्द लगभग १६ वीं शताब्दी से काम में लाया जाता है। जब वे इस नाम से पुकारे जाने लगे, करीब करीब उसी समय से मुसलमान हो गए थे। संभवतया पहले वे ढोली या भाट थे; परंतु मुसलमान होते ही वे अपनी जातिवालों से नीची निगाह से देखे जाने लगे और 'ढाढी' कहलाने लगे। ढाढियों और ढोलियों का पेशा एक ही सा है—उत्सवों पर गाना, बजाना, बंदीजन और संदेशवाहक का काम करना। ढाढियों का अब तक यही पेशा है और वे सारे हिंदू रीति-रिवाजों का पालन करते हैं। वास्तव में मुसलमान तो वे केवल नाम के हैं।

राजस्थान में अब भी कोई उत्सव या मंगल-कार्य ढाढियों के सहयोग बिना अधूरा ही समझा जाता है। गढ़ों के द्वार पर नौबत और शहनाई यही बजाते हैं। सवारी के समय नगाड़े और तुरही बजाते हुए और विरुद गाते हुए निशान का (झंडा) हाथ में लिए घोड़ों या ऊँटों पर चढ़कर वही सबसे आगे चलते हैं। जान पड़ता है, पहले युद्ध-यात्रा के समय भी ऐसा ही होता रहा होगा। वे अपने यजमानों की वीर-गाथाओं को कविताबद्ध भी करते रहे हैं और शांति के समय उनका विरुद बखानकर, संगीत सुनाकर तथा वीरता या प्रेमपूर्ण सुंदर सुंदर कहानियाँ कहकर उनका मनोरंजन भी करते रहे हैं। यजमानों का भी उन पर सदा से अटल विश्वास रहा है। राजपूत जाति के इतिहास में युद्ध और प्रेम इन दो बातों का सदा प्राबल्य रहा और ढाढियों ने उनके दोनों प्रकार के कार्यों में पूरा सहयोग दिया है। अब भी इस जाति में बड़े बड़े गुणी, उच्च कोटि के गवैए, सब प्रकार के वाद्य बजानेवाले, कहानी कहनेवाले और अच्छे अच्छे कवि मौजूद हैं। हिंदी के सिद्धहस्त गद्य-पद्य-लेखक मुंशी अजमेरी जी, जिन्होंने आगरा में महात्मा गांधी को अपनी विनोद और हास्यपूर्ण बातों से प्रसन्न किया था और अपने गानों और कथाओं से रिझाया था, इसी जाति के रत्न थे।

बोलाविया—सं० ब्रू, प्रेरणार्थक; प्रा० बोल्लावइ, बुल्लावइ; हिं० बुलाना; राज० बोलणो का प्रेरणार्थक बोलावणो; सामान्य भूत, पुँल्लिंग, बहुवचन। यहाँ यह शब्द 'बुला भेजने' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, 'पुकारने' के अर्थ में नहीं।

ताळ—सं० ताल। ताली बजाने में जितना समय लगता है, उतना समय। क्षण, समय। उदाहरण—

'तिणि ताळि सखी गळि स्यामा तेही'। (बेलि १७७)

वागरवाळ—सं० वागर; प्रा० वागर = विद्वान्, पंडित। वाळ प्रत्यय (= हिं० वाला)। प्रत्यय यहाँ पर निरर्थक जान पड़ता है।

विद्याव्यसनी होने के कारण कदाचित् ढाढियों को इस नाम से पुकारा जाता है। धीरे धीरे इस शब्द का अर्थ याचक या गा-बजाकर माँगनेवाला रह गया है।

दूहा १०६ सीख—सं० शिक्षा; प्रा० सिक्खा; हिं० सीख। राजस्थानी में यह शब्द 'बिदा' के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है, जैसा कि इस स्थल पर हुआ है।

मेल्हि—सं० मुच्; प्रा० मेल्ल; राज० मेल्हणो + इ (पूर्वकालिक प्रत्यय)।

तेड़ाविया—सामान्य भूत, पुँल्लिंग, बहुवचन। राजस्थानी—तेड़णो + आव (प्रेरणार्थक प्रत्यय) तेड़ावणो + इया; प्रा० तेड़; राज० तेड़ा (संज्ञा) = न्यौता, निमंत्रण, बुलावा।

मांगणहार—राज० मांगणो + अण + हार। माँगनेवाला, याचक। मांगण—सं० मार्ग; प्रा० मग्ग; हिं० माँगना। हार (प्रत्यय)—सं० धार; हिं० हार, हारा।

दूहा १०७ दियण—राज० देणो + अण = देने के लिये। सं० प्रा० दा; हिं० देना।

कज्ज—सं० कार्य; प्रा० कज्ज; हिं० काज = लिये, के हेतु, निमित्त।

कदे—सं० कदा; प्रा० कदा; हिं० कब; राज० कद = किस समय।

चालिस्यउ—(सामान्य भविष्य, मध्यम पुरुष, बहुवचन) सं० चल्, प्रा० चल; हिं० चलना; राज० चालणो।

विहाणइ—(अधिकरण) सं० विभात; प्रा० विहाण = प्रभात में। उदाहरण—निद्दए गमिही रत्तड़ी दडवड होइ **विहाणु**॥

(हेमचंद्र ८—४—३३०)

अज्ज—क्रियाविशेषण) सं० अद्य; प्रा० अज्ज; हिं० आज।

दूहा १०८ निसह—सं० निश, निशा; प्रा० निस, निसा = रात्रि में। ह अधिकरण-कारक का चिह्न है। मिलाओ—

जल बिन हंस निसह बिन रबू।
कबीरा कौ स्वामी पाइ परिकैं मनैंबू लो।

(२१३—३७६)

म्हे—(सर्वनाम, कर्त्ता कारक, बहुवचन) सं० अस्मत्; प्रा० अम्हे, अप० अम्हइं, अम्हे; हिं० हम।

बहिस्याँ—(भविष्य, उत्तम पुरुष, बहुवचन) सं० वह; प्रा० बह; हिं० बहना = चलेंगे। राजस्थानी में यह शब्द मनुष्यों के अथवा वाहन के मार्ग चलने के अर्थ में प्रयुक्त होता है।

पंथी—सं० पथिन्; प्रा० पंथिय।

जीव्या—(सामान्यभूत, पुँल्लिंग, बहुवचन) सं० जीव, प्रा० जीव, हिं० जीना = जिए, जीते रहे।

मुया—सं० मृत; प्रा० मुअ, मूअ; हिं० मुए, मर गए तो।

त—(अव्यय) सं० तद् या तु; राज० हिं० तो, त = तब, उस दशा में।

'सतगुर मिल्या त का भया, जे मनि पाड़ी भोल'।

(कबीर)

किसी शब्द पर जोर देने के लिये राजस्थानी में स, त, ज का निरर्थक प्रयोग भी होता है।

दूहा १०९ भगताविया—सं० भुज्, भोग; हि० भोगना, भुगतना, भुगताना; राज० भोगणो, भोगावणो (प्रेरणार्थक), भुगतणो, भुगताणो, भुगतावणो (प्रेरणार्थक)। राजस्थानी मुहावरे में यह शब्द संदेस के साथ साधारणतः प्रयुक्त होता है; जैसे—'संदेसो भुगतावणो'।

मारू—सं० मरु; प्रा० मरू, मरुअ।

(१) एक राग जिसको माँण भी कहते हैं। इस राग की उत्पत्ति मरुस्थल से ही हुई जान पड़ती है अथवा मारवाड़ में अधिक गाए जाने से इसका नाम 'माँड़' पड़ा, जिस प्रकार पूर्व से 'पूर्वी' सिंध से 'सिंधरा' और सौराष्ट्र से सोरठ। मारवाड़ में अब तक यह राग सबसे अधिक लोकप्रिय है और उत्सव के अवसरों पर गाया जाता है 'सोरठ' और 'देश' का भी राजस्थान में बहुत प्रचार है परंतु उतना नहीं जितना माँड़ का।

पहले जब राजस्थान भारत का आदर्श युद्ध-क्षेत्र बना हुआ था, तब योद्धाओं को उत्साहित और उत्तेजित करने के लिये इसी राग में त्याग, वीरता

और यश के गान गाए जाते थे परंतु ज्यों ज्यों यह देश विलास-भूमि बनता गया और वह उच्च आदर्श भ्रष्ट होकर "दारूड़ा पियो और मारूड़ा गाओ" तक ही रह गया, त्यों त्यों इस राग ने भी पलटा खाया और इसमें शृंगाररस का प्रवाह बहने लगा। रात्रि के समय जब कोई इस राग में विरह की टेर लगा देता है तो हृदय व्याकुल हो जाता है।

माँड़ संपूर्ण राग है। इसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं। यह श्री राग का पुत्र समझा जाता है। मारवाड़ के गवैए ढोला-मारू के प्रसिद्ध दूहे इस राग में बड़े सुंदर ढंग से गाकर मन को लुभा लेते हैं। माँड़ राग की चीजों में जब तक बीच बीच में दोहे नहीं रहते तब तक उसका मजा अधूरा ही रहता है।

(२) इस शब्द का दूसरा अर्थ मरुस्थल-निवासी भी होता है। जयपुर-निवासी बिहारीलाल कवि ने इस अर्थ में प्रयोग किया है—

मरुधर पाय मतीरहू **मारू** कहत पयोधि। (बिहारी)

आधुनिक राजस्थानी में 'ढोला' की तरह यह शब्द केवल 'नायक' के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है; जैसे—पन्ना मारू, जल्ला मारू। उदाहरण—

आई रे आई, **मारू**, सावणियाँरी तीज, राज सइयाँ,
कसूंबो रे म्हारा गाढा **मारू** ओढियो।
(प्रचलित 'कसूंबो' गीत)

निपाइ—सं० निष्पद; प्रा० णिप्पाअ; राज० निपाणो, नीपाणो, नीपावणो; हिं० निपजाना = बनाकर, रचकर। उदाहरण—

किरि **नीपायौ** तदि निकुटी ए मठ पूतळी पाखाण मै। (वेलि ११०)

तियाँ—सं० तत्; हिं० तिन = उनको। विकारी रूप, कारक-प्रत्यय लुप्त। अन्य रूप—त्याँ।

दूहा ११० सुहाँमणउ—(विशेषण) सं० शुभ; प्रा० सोह; राज० सोहणो + आँमणो (प्रत्यय)। अन्य रूप—सोहणो, सुहावणो, सुवावणो। मिलाओ—हिं० सुहावना।

पहियाह—सं० पथिक; प्रा० पहिय; राज० पहिय + आ (संबोधन-चिह्न) + ह (पाद-पूर्त्यर्थक) = हे पथिको।

दूहा १११ संदेसा—संदेसाँ होना चाहिए। अनुस्वार का लोप हो गया है। विकारी रूप, करण कारक का प्रत्यय लुप्त।

लख लहइ—सं० लक्ष; प्रा० लक्ख; हिं० लखना; राज० लखणो = जान लेता है। 'लख' धातु है जो लहइ से मिलकर संयुक्त क्रिया बनाता है।

लहइ—सं० लभ; प्रा० लह; हिं० लहना; राज० लहणो। केवल कविता में प्रयुक्त होता है।

आखइ—(संभाव्य भविष्य) सं० आख्या; प्रा० अक्खा, अक्ख; हिं० आखना; राज० आंखणो। (क) में, जो अब तक प्राप्त प्रतियों में सबसे प्राचीन है, इस दूहे के प्रथम और दूसरे 'आखइ के स्थान पर क्रमशः 'देखूँ' और 'देखै' पाठ है, जो 'दाखूँ' (कहती हूँ और 'दाखे' (कहे) के स्थान पर प्रतिलिपिकार की गलती से लिख गया जान पड़ता है। (क) का यह पाठ रखने से अर्थ होता है—"जिस प्रकार मैं आँखें भरकर देखती हूँ, उसी प्रकार यदि वह देखे"—जो ठीक नहीं जँचता।

दूहा ११२ बळि—सं० ज्वल्; प्रा० बल; हिं० बलना, बरना। पूर्वकालिक। प्रयोग—

कमल बालि विरहिणी वदन किय,
अंब पाळि संजोगि उर। (वेलि २२२)
महु कंतहो गुट्ठ-ट्ठि अहो कउ झुंपड़ा बलंति।
(हेमचंद्र ८-४-४१६)

कुइला—सं० कोकिला; प्रा० कोइला; हिं० कोयला।

ढँढोलिसि—सं० ढुंढनम्; प्रा० ढुंढुल्ल, ढंढुल्ल, ढंढोल; राज० ढूँढणो, ढंढोलणो; हिं० ढूँढ़ना, ढँढोरना। प्रयोग—

(१) सायर मांहि ढंढोलताँ हीरा पड़ि गया हथ्थ।
(कबीर)
(२) दुपहर दिवस जानि घर सूनो, ढूँढि ढँढोरि आप ही आयो।
(सूर)

दूहा ११३ यूँ—(अव्यय) अप० एम्व, इम्व, एवँ, इवँ; राज० एम, इम, इयुँ।

प्राँणियउ—प्राण + इयउ (अनादरवाचक प्रत्यय) = बेचारा प्राण।

झळ—सं० ज्वाल; हिं० झल, झार = ताप, दाह, उग्र कामना, उत्कट इच्छा। उदाहरण—

(१) झाँखाँणा उरि उठी झळ। (वेलि १४०)
(२) साहिब मिलै न झल बुझै, रही बुझाय बुझाय।
(कबीर)

दूहा ११४ ओळग—सं० अपलग्न; अप० ओळग्ग; राज० अळगो; हिं० अलग = दूर, जुदा, भिन्न, पृथक् ।

रूड़ा—सं० रूढ़ = प्रशस्त; हिं० रूरा = अच्छा, भला, प्रशंसनीय। मिलाओ—

लटकन ललित ललाट लटू री,
दमकत द्वै द्वै दँतुरियां रूरी। (सूर)

दूहा ११७ साख—राजस्थानी में 'साख' फसल को कहते हैं।

दूहा ११८ उपाड़ियउ—सं० उत् + पाट्य; प्रा० उप्पाड़िय; राज० उपाड़णो; हिं० उपाड़ना = ऊपर उठाना, उखेड़ना। उदाहरण—

ऊपड़ी रजी मझि अरक एहवो। वेलि ११५)

दूहा ११९ बइसइ—सं० उपविश; प्रा० बैस, बईस; गुज० बेसवुँ; राज० बैसणो = बैठना। उदाहरण—

ते मंदिर खाली पड़े, बैसण लागे काग। (कबीर)

दूहा १२० मउरियउ—सं० मुकुलित; प्रा० मउरिअ, मउलिअ; हिं० मौरना = मंजरी-युक्त होना। उदाहरण—

मारगि मारगि अंब मौरिया। (वेलि ५०)

चुट्टइ—प्रा० चुंट। राजस्थानी में (और अपभ्रंश में भी) कभी आगे द्वित्त वर्ण होने पर उसे single करके पूर्व वर्ण को सानुस्वार कर देते हैं और कभी इसके विपरीत अनुस्वार को हटाकर आगे के वर्ण को द्वित्त कर देते हैं।

दूहा १२१ कण—(सं०) धान्य-कण। उदाहरण—

कण एक लिया किया एक कण कण। (वेलि १२८)

करसण—सं० कर्षण; प्रा० करिसण। इसी से राजस्थानी में करसा (= किसान) और हिं० किसान बनता है।

भोग—(सं०) उपभोग, कर। इससे राजस्थानी भोगता शब्द (= जमींदार, जागीरदार) बना है।

दूहा १२२ फट्टि—सं० स्फटित; प्रा० फट्टिअ (सामान्य भूत); राज० फाटणो, हिं० फटना। जोबण फट्टि इ०, मिलाओ—

सरवर हिया घटत नित जाई। टूक टूक होइकै बिहराई ॥
बिहरत हिया करहु पिय टेका। दीठ दवँगरा मेरवहु एका ॥
(जायसी)

तलावड़ी—सं० तडाग, तडागिका; प्रा० तलाग, तलाइआ; राज० तलाव; हिं० तलैया। ड़ी ऊनवाचक प्रत्यय।

पाळि—सं० पालि; राज० पाळ, पाज; हिं० पाल, पार = मेंड़, जलाशय का किनारा। मिलाओ—

टूट पाळ सरवर बहि लागे। (जायसी)

सरवरियारी, बीरा, ऊँची-नीची रे पाळ एक चढूँ दूजी ऊतरूँ।

(राजस्थानी गीत)

दूहा १२३ पैहचाइ—सं० प्र + भू; प्रा० पहुच; अप० पहुचइ (हेमचंद्र); राज० पूंजणो; हिं० पहुँचना। प्रेरणार्थक, आज्ञा।

दूहा १२४ पही—सं० पथिक; प्रा० पहिअ।

घातउ—प्रा० घत्त; राज० घातणों, घालणों। आज्ञा। मिलाओ—मराठी घेंत, घेंतले। उदाहरण—

धर स्यामा सरिस स्यामतर जलधर घेघूंचे गळि बाहाँ घाति।

(वेलि २०१)

दूहा १२५ निकसी वेणी-सापणी इ०—ऐसा प्रसिद्ध है कि साँप के मुँह में स्वाती की बूँद पड़ने से विष बनता है, इससे संभवतः उसे संतोष और शांति प्राप्त होती है (?)।

कदली, सीप, भुजंग-मुख, स्वाति एक, गुण तीन।
जैसी संगति बैठिए, तैसो ही गुण दीन॥
(रहीम)

दूहा १२६ उत्तर—(सं०) लक्ष्यार्थ में उत्तर का पवन, शिशिर बात, जिसके चलने से लता-गुल्म आदि जल जाते हैं। उदाहरण—

प्रज उदभिज खिसिर दुरीस पीड़तौ
ऊतर ऊथापिया असन्न। (वेलि २४९)

दक्खिण—लक्ष्यार्थ में दाक्षिणात्य पवन। शीतल, मंद, सुगंधित वासंतिक वायु, जिसके चलने पर सूखी हुई वनस्पति में फिर से प्राण का संचार होता है और नवांकुर प्रस्फुटित होने लगते हैं।

वाजइ—सं० व्रज; प्रा० वच्च, वज्ज, वज्जइ, वाजइ = चलता है, चलती है। राजस्थानी में हवा के चलने को 'हवा वाजणो' कहते हैं।

दूहा १२७ ओखद—सं० ओषधि = दवा, उपचार।

दूहा १२८ सेहर—सं० शिखर; प्रा० सिहर। यहाँ पर शिखर पर गर्जन करने से—नायक का मेघ के रूप में गर्जन करके यौवन रूपी-बाघ के दर्प को शांत करने से—आशय है। बाघ को मेघगर्जन सुनकर क्रोध होता है, परंतु उस पर उसका वश नहीं चलता।

दूहा १२९ कँमळाँणी—सं० कु+म्लान; प्रा० कुम्मण, हिं० कुम्हलाना = मुरझा जाना, गतप्रभ होना। उदाहरण—

काटत बेलि कूँपलै मेल्हीं, सींचताड़ी कुमिळाँणी। (कबीर)

सिसहर—सं० शशधर; प्रा० ससहर = चंद्रमा। उदाहरण—

ससिहर कै घरि सूर न आनैं। (कबीर १५७-२०२)

दूहा १३१ खीर—सं० क्षीर; प्रा० खीर = दुग्ध। जिस प्रकार देवता और असुरों ने क्षीरसमुद्र का मंथन कर सूर्य, चंद्र, विष, अमृत आदि चौदह रत्न निकाले थे, उसी प्रकार यौवन-समुद्र का मंथन करके प्रेमरूपी रत्न निकालने के लिये ढोला का आह्वान किया जा रहा है।

काढइ—सं० कर्सण; प्रा० कड्ढण = निकालना। उदाहरण—

खनि पताल पाना तहँ काढ़ा।
छीरसमुद निकसा हुत बाढ़ा॥ (जायसी)

दूहा १३२ केळिनि—सं० कदली (स्त्रीलिंग); प्रा० कयली, केळो का स्त्रीलिंग या केलोंवाली (केले के वृक्षों की बाड़ी)। मिलाओ- कमलिनी (स्त्रीलिंग)। कहा जाता है कि स्वाती नक्षत्र में वर्षा होने पर कदली में कपूर पैदा होता है। यथा—

सीप गयो मुक्ता भयो, कदली भयो कपूर।
अहि-फन गयो तो बिख भयो, संगत को फल सूर॥ (सूर)
व्याल मुख विष ज्यों, पीयूख ज्यों पपीहा मुख,
सीपी मुख मोती, कदली मुख कपूर है। (देव)

दूहा १३३ साव—सं० स्वाद; प्रा० साद, साअ, साव। उदाहरण—

(१) नराँ नाहराँ बनफळाँ, पाकाँ पाकाँ साव। (पृथ्वीराज)

(२) कबीर प्रेम न चषिया; चषि न लीया साव। (कबीर)

संबळ—सं० संबल = रास्ते का भोजन, पाथेय।

वैसासणइ—सं० विश्वास; प्रा० विस्सास, वीसास; राज० वैसासणो। अण-प्रत्यय = विश्वास करने से। उदाहरण—

मनि परतीति न ऊपजै, जीव बेसास न होइ ।

(कबीर)

पाठांतर—'सावज संकळ तोडस्यइ वैसासणइ न जाइ'—अर्थात् मेरा यौवन-रूपी अदमनीय हिंस्र पशु बंधन को तोड़ा चाहता है; उससे (शांत) बैठा नहीं जाता ।

सावज—सं० श्वापद = जंगली हिंस्र पशु । प्रा० सावय; गुज० सावज । उदाहरण—

सावज सीह रहे सब माँची, चंद अरु सूर रहे रथ खाँची ।

(कबीर)

संकळ—सं० शृंखला; प्रा० संकल, संकला; हिं० साँकल । बंधन, शील, मर्यादा-रूपी बंधन ।

वैसासणै—सं० उपविश; प्रा० वैस, बईस; गुज० वेसवुँ; राज० बैसणो = बैठना, शांत होकर रहना ।

ते मंदिर खाली पड़े, **बैसण** लागे काग । (कबीर)

दूहा १३४ हेक—सं० एक । एक और उससे बने हुए शब्दों का ए राजस्थानी में प्रायः हे हो जाता है । मिलाओ—हेकठा । उदाहरण—

हेक बड़ो हित हुवै पुरोहित, वरैसुसा सिसुपालवर ।

(वेलि ३५)

वेगइरउ—सं० वेग; राज० वेगो (विशेषण) + एरउ या एरो प्रत्यय (स्वार्थ में) । मिलाओ—भलेरउ, आघेरउ, बडेरउ ।

दूहा १३५ भमंतउ—सं० भ्रम; प्रा० भम; राज० भम या भँव + अतउ (वर्त्तमान कृदंत-प्रत्यय) ।

कणयर—सं० कर्णिकार; प्रा० कण्णियार; हिं० कनेर, कनियर = एक पुष्प-वृक्ष विशेष ।

कंब—सं० कंबा, कंबी; प्रा० कंब, कंबा = लीलायष्टि, हाथ में रखने की छड़ी, बाँस की छोटी डाली । किसी पेड़ से काटी हुई, हाथ में रखने की अथवा पशु को त्वरित करने की, छोटी डाली ।

सुरत्त—सं० स्मृति = याद, ध्यान, सुरति । उदाहरण—

सुरति समाँणी निरति में, निरति रही निरधार । (१४—२२)

दूहा १३६ सात सलाँम से केवल सात बार ही अभिवादन करने का आशय नहीं है वरन् अनेकानेक प्रणाम का आशय है ।

थी--सं० तः (अपादान विभक्ति-चिह्न) = से । मिलाओ--

तरवर थे फल झड़ पड़े बहुरि न लागै डार ।

(कबीर)

दूहा १३७ विललंती—सं० विलाप अथवा अनु० शब्द बिल बिल करना = बिलखना, विलाप करना ।

(१) औंधाई सीसी सुलखि बिरहबरी **बिललात** । (बिहारी)

(२) एक खड़े ही लहैं, और खड़ा **बिललाइ** । (कबीर)

'पग सूँ काढ़इ लीहटी'—मिलाओ—

चारु चरन नख लेखति धरनी ।
नूपुर मुखर मधुर कवि बरनी ॥ (तुलसी)

स्वभावोक्ति का बड़ा सुंदर उदाहरण है ।

काढइ—खींचती है, कुरेदती है । मिलाओ—भिन्न प्रयोग दोहा १३१ में ।

लीहटी—सं० रेखा; प्रा० लेहा, राज० लीह + टो (ऊनवाचक प्रत्यय)

दूहा १३८ हर—सं० स्मर, प्रा० म्हर, हर = आकांक्षा, अभिलाषा, उत्कट इच्छा । राजस्थानी का साधारण प्रचलित शब्द है । उदाहरण--

हर म करो अनि राय हर । (वेलि ७७)

मनह—(सं० मनस्) मन से, मन में । उदाहरण—

(१) **मनह** मनोर्थ छाड़ि दे, तेरा किया न होइ । (कबीर)

(२) **मनह** उतारी झूठ करि, तब लागी डोलै साथ । (कबीर)

हन—(१) हिं० नहीं का विपर्य्यय । अथवा (२) ह = भी न = नहीं ।

दूहा १३९ सावर—सं० सा + वर = वह सुंदरी स्त्री ।

अंणेह—सं० आ + नी; प्रा० आ० + णय ।

कप्पड़े—सं० कर्पटकः; प्रा० कप्पड़; हिं० कपड़े । उदाहरण--

पासि बिनंठा कप्पड़ा, क्या करे बिचारी चोल ।

(कबीर)

पाठांतर--

सावरते नयणेहि—(१) शाबरनयनी, मृगनयनी कामिनी के ।
(२) आँखों के प्रत्यक्ष सामने ।

(१) सं० शाबर--मृग । (२) संज शांप्रत = प्रत्यक्ष ।

दूहा १४० कागळ—अरबी—कागज; गुज० कागळ । उदाहरण—

कागळ दीधो एम कहि । (वेलि ५६)

नाविया—(राज०) न+आविया की संधि । इस प्रकार के प्रयोग प्राचीन राजस्थानी में मिलते हैं । मिलाओ—गुज० नथी; सं० नास्ति ।

दूहा १४१ थाइ—सं० स्था; प्रा० था । वर्त्तमानकाल । मिलाओ—

ऊँची डाली पात है; दिन दिन पीले थाँहि । (७२—१३)

मोलइ—सं० मूल्य; राज० मोल+इ (अधिकरण और कर्मविभक्ति का चिह्न)

दूहा १४२ बोजउ—सं० द्वितीय; प्रा० विइज; राज० बिओ, बीजो । गुजराती में भी प्रयुक्त होता है । देखो—'बिइज्जो बीओ' । (हेमचंद्र १—२४८)

बंभण मिसि बंदे हेतु सु बीजौ । (वेलि ७३)

आगळि—सं० अग्र; प्रा० अग्ग; स्वार्थ में 'ळो' प्रत्यय ।

आगळि पितु मात रमंती अंगणि । (वेलि १८)

ठवइ—सं० स्थापय; प्रा० ठव ।

बहिलउ—(अप० वहिल्ल); गुज० वहेलो ।

ऐक्कु कइअ ह वि न आव हीं अन्नु वहिल्लउ जाहि ।

(हेमचंद ८-४-४२२)

मोकळे=सं० मुच्; प्रा० मुक्क (प्रेरणार्थक); गुज० मोकळवुँ, मराठी मोकलणें=भेजना । भविस्सत्तकहा में 'मोकल्लइ' का इस अर्थ में प्रयोग हुआ है ।

दूहा १४३ पारेवा—सं० पारावत; प्रा० पारेवय ।

झूल—सं० दोला; प्रा० झुल्ल । कबूतर पालनेवाले घर के आँगन में एक लंबे बाँस के सहारे छत की ऊँचाई से कुछ ऊपर कबूतरों के बैठने का एक चौखट लगा देते हैं जिस पर कबूतर विश्राम करते हैं । बिल्ला कुत्ते आदि पशुओं से बचाने के लिये झूल बनाया जाता है ।

त्रूटि—सं० त्रुट; प्रा० तुट्ट, तुड । त्रूटै कंध मूल जड़ त्रूटै । (वेलि)

दूहा १४५ चाचरि सं० चर्चरी; प्रा० चच्चरी=फागुन में होलिकोत्सव के उपलक्ष में होनेवाले गान, नृत्य इत्यादि । चर्चरी होली में गाई जानेवाली राग विशेष को भी कहते हैं ।

(१) तुलसीदास चाचरि मिस कहै राम-गुन-ग्राम । (तुलसी)
(२) खिनहिं चलहिं खिन चाँचरि होई ।
नाच कूद भूला सब कोई ॥ (जायसी)

झंपावेसि—(सं० झंप्) उछलना, कूद पड़ना ।

(१) करि अपनो कुल नास, बहिन सो अगिन झंप दै आई । (सूर)
(२) नैनाँ अंतरि आव तूँ, ज्यूँ हौं नैन झँपेउँ । (कबीर)

दूहा १४६ कुड़ियाँ—(१) सं० कूट=कूटे हुए अनाज की राशि, ढेर । यथा—अन्नकूट । (२) देशीय कुड़ । कूरा, कूड़ा का भी यही अर्थ होता है । राजस्थानी मुहाविरा कूड़ा करना = खलिहान में काटे हुए धान्य की राशि का ढेर लगाना ।

दूहा १४७ वाहळा—(दे०) राजस्थानी में क्षुद्र बरसाती नदी या नाले के अर्थ में बहुधा प्रयुक्त होता है । उदाहरण—

अति अँबु कोपि कुँवर उफणियौ, वरसाळू वाहळा वरि (बेलि ३४)

दूहा १४८ धड़ि—सं० धटिका, धटी । वस्तु-राशि का तौल अथवा माप । यहाँ पर पृथ्वी के उद्भिज्ज पदार्थों की राशि से आशय है ।

महारस—(सं०) महा-जल-राशि । लाक्षणिक अर्थ में यहाँ पर प्रेम-जलधि का आशय है ।

ऊमटइ—सं० उन्मंडन; प्रा० उम्मडण; हिं० उमड़ना । बाढ़ आना, भर जाना, उतराकर चलना । पाठांतर—केता कहूँ = कहाँ तक कहूँ ।

सँभार—(१) संभारणो का आज्ञा का रूप = सम्हाल । (२) प्रिय-संबंधी एकत्रित विचारसमूह, स्मृतियाँ अथवा हृदयोद्गार ।

दूहा १४९ झबूकड़इ—(अनु० शब्द) झबूकणो (= झब झब करके चमकना) से संज्ञा । उदाहरण—

(१) मंदिर माँहि झबूकती, दीवा केसी जोति । (कबीर ७३—१७)
(२) डूबा था पै उब्बर्‌यो गुन की लहरि झबकि ।
(कबीर २५४—७४)

दूहा १५० काजळियारी तीज—भाद्रपद कृष्णपक्ष की तृतीया को 'कजली' अथवा 'काजळियारी तीज' कहते हैं । राजस्थान में वर्षाऋतु और ऋतुओं से अधिक आनंदप्रद होती है । जनता का वर्षा संबंधी आनंदोल्लास इस त्योहार के रूप में रूढ़िगत हुआ है ।

खिवंताँ—सं० क्षिप् ; प्रा० खिवण = बिजली का चमककर प्रेरित होना । राजस्थानी बोलचाल की भाषा में बहुतायत से प्रयुक्त होता है । उदाहरण—

कहौ कौन खिवै कहौ कौन गाजै कहाँ थैं पांणी निसरै।

(कबीर १७७—२६१)

दूहा १५१ जाळउ—सं० जाल; राज० जाळो। मिल्याँ—भूत कृदंत, स्त्रीलिंग, बहुवचन = जाल की तरह मिल रही हैं। इस प्रकार मिल रही हैं कि जाल की तरह गुथी हुई दिखाई देती हैं।

समकि—'चमकि' का मारवाड़ी रूपांतर। बोलचाल में मारवाड़ के लोग 'च' के स्थान में 'स' का उच्चारण करते हैं। जोधपुरी मारवाड़ी में ऐसे प्रयोग बहुतायत से होते हैं; जैसे—चतुर्भुज का सतरभुज, चबूतरा का सबूतरा इत्यादि।

दूहा १५२ चहड्डियाँ—प्रा० चड़। राजस्थानी में शब्द के बीच में निरर्थक अक्षरों का आगम किया जाता है। यहाँ 'चड' शब्द में 'ह' का निरर्थक आगम किया गया है। इस प्रकार—

अंबरि का अंबहरि। (वेलि १४)

उदाहरण—काटी कूटी मछली, छींके धरी चहोड़ि।

(कबीर ३६—२४)

दूहा १५३ पारोकियाँ—सं० परकीया = परकीया नायिकाएँ।

नीठ—सं० अनिष्टि; प्रा० अणिट्ठि। राजस्थानी में प्राथमिक 'अ' का कभी कभी लोप हो जाता है = कठिनता से। हिं० उदाहरण—

(१) सदा समीपिन सखिन हूँ, नीठि पिछानी जाय। (बिहारी)

(२) निसा तणौं मुख दीठ निठ (वेलि १६३)

बाहुड़े—सं० प्रघूर्णन; प्रा० पहोलन; हिं० बहुरना; राज० बाहुडणो, बहोडणो (प्रेरणार्थक)। उदाहरण—

(१) काया हाँडी काठ की, नाऊँ चढ़ै बहोड़ि।

(कबीर २४-३१)

(२) गई बहोरि गरीबनिवाजू। (तुलसी)

दूहा १५४ किया करायइ......घणाँह—पंक्ति का दूसरा अन्वयार्थ = तो मुझसे (किया + कर + आयइ) किस प्रकार आया जा सकता है, क्योंकि बीच में अनेक बाधाएँ (दाधा) हैं।

दूहा १५५ लाल कमाण—फारसी—कमान। लाल कमान साहित्य में प्रसिद्ध है। लाल रंग की कमान योद्धाओं को विशेष प्रिय होती है। उदाहरण—एक ज दोसत हम किया, जिस गलि लाल कबाँइ।

(कबीर २६-११)

दूहा १५६ रूँनी—सं० रुदित; प्रा० रुण्ण। उदाहरण—

राल्यूँ रूँनी विरहनी, ज्यूँ बंचौ कूँ कुंज। (कबीर ७—१)

लोइ—सं० लोक; प्रा० लोअ, लोय।

हाथाळी छाला पड़्या—मिलाओ—

जीभड़ियाँ छाला पड़्या, राम पुकार पुकार।

(कबीर ९—२२)

दूहा १५७ करंकडइ—प्रा० करंक = हाड़, अस्थि-पंजर। उदाहरण—

(१) 'करंकचयभीसणे मसाणम्मि'।

(सुपासनाहचरिअ १७५)

(२) यहु तन जारौं मसि करौं, लिखौं राम का नाउँ।
लेखणि करूँ करंक की, लिखि लिखि राँम पठाउँ॥

(कबीर ८—१२)

ऊडावेसि—सं० उड्डी; प्रा० उड्ड; प्रेरणार्थक उड्डाव (भविष्यत् रूप)।

दूहा १५८ पइसि—सं० प्र + विश्; प्रा० पइस। उदाहरण—

(१) देवाळै पैसि अंबिका दरसे। (वेलि १०८)

(२) मंदिर पैसि चहूँ दिसि भीगे, बाहरि रहे ते सूका।

(कबीर १४७—१७५)

पल्हवइ—सं० पल्लव; हिं० पलुहना = फूलना-फलना, हरा-भरा होना। उदाहरण—

(१) सूखि बेलि पुनि पल्हवै, जो पिउ सींचै आइ। (जायसी)

(२) पलुहइ नारि सिसिर ऋतु पाई। (तुलसी)

दूहा १५९ अकथ कहाणी इ०—भाव मिलाओ—

(१) अकथ कहाँणी प्रेम की, कछू कही न जाई।
गूँगे-केरी सरकरा, बैठे मुसकाई॥ (कबीर १३६—१५६)

(२) अकथ कहाँणी प्रेम की कह्याँ न को पत्ययाइ।

(कबीर ६५—१०)

दूहा १६० प्रीतम तोरइ इ०—इसी प्रकार की ऊहात्मक प्रेमोक्ति के लिये मिलाओ—

कबीर हरि का डरपताँ, ऊन्हाँ धान न खाउँ।
हिरदा भीतर हरि बसै, ताथै खरा डराउँ॥ (कबीर ७६—७ टि०)

दाझण—सं० दह्, दग्ध; प्रा० दज्झ; राज० दाझणो की संज्ञा। उदाहरण—

भाठ पहर का दाझणाँ, मोपै सह्या न जाइ। (कबीर १०-३५)

ती—सं० तः (अपादान-प्रत्यय)।

दूहा १६१ उल्हवण—सं० उत्+लस = उल्लसित करनेवाला। हिंदी उदाहरण—

केलि-भवन नव बेलि सी दुलही उलही कंत। (पद्माकर) कदे—सं० कदा। उदाहरण—

'षटरस भोजन भगति करि, ज्यूँ कदे न छाड़ै पास।'

(कबीर २०—१९)

दूहा १६२ बिवणउ—सं० द्विगुण; प्रा० बिवण, बिउण। देखो–हेमचंद्र–१—९४ और २—७९, "द्विन्योरुत्" दुउणो-बिउणो, दुइओ-बिइओ।

ओहि—सं० भू, प्रा० हुअ; हिं० होहि। पूर्व ह का लोप।

दूहा १६३ विहूणी—सं० विहीन; प्रा० विहीण, विहूण। उदाहरण—

देख्या चंद बिहूँणाँ चाँदिणा, तहाँ अलख निरंजन राइ।

(कबीर १३—१५)

नींव बिहूँणाँ देहुरा, देह बिहूँणाँ देव। (कबीर १५—४१)

विणजारा—सं० वाणिज्य + कार; प्रा० वणिज्जार; हिं० बनजारा = मध्यकाल में बैलों पर वस्तुएँ लादकर एक देश से दूसरे देश में वाणिज्य करनेवाले व्यापारी। इनके बैलों की कतार को राजस्थानी में 'बाळद' कहते हैं। ये लोग बड़ी लंबी-लंबी यात्राएँ करते थे और मार्ग में विश्राम करते-करते आगे बढ़ते थे। जिस स्थान पर विश्राम करते थे, वहीं पर अग्नि जलाकर भोजन बनाते थे। विश्रामस्थल से चले जाने पर इनके परित्यक्त स्थल कुछ दिन तक इनकी यात्रा के स्मारक बने रहते थे।

भाइ—सं० भ्राष्ट; प्रा० भट्ठ; हिं० भाड़ = भट्ठी।

धुखंती—सं० धुक्ष; प्रा० धुक्ख (= जलाना) = धुखती हुई।

यह शब्द राजस्थानी में बहुतायत से प्रयुक्त होता है। इससे आग के प्रज्वलित होने की उस दशा का बोध होता है जब खूब धुआँ निकलता है, लपटें नहीं उठतीं। लाक्षणिक अर्थ में हृदय की वैसी ही उद्विग्न दशा।

दूहा १६५ डंबर—(सं०) संध्या समय के आकाश की लाली को अंबर-डंबर कहते हैं। उसी से आँखों की लाली की समता दी गई है। उदाहरण—

अंबर डंबर साँझ के, बारू की सी भीत।

बिडाणा—फा० बेगाना। मिलाओ—हिं० बिराना। उदाहरण—

भोमि बिडाणी में कहा रातो, कहा कियो, कहि मोहि।

(कबीर)

दूहा १६७ वालँभ—सं० वल्लभ। अनुस्वार का आगम।

बे—सं० द्वि; प्रा० बि, बे। उदाहरण—

जिणि सेस सहस फण फणि फणि बि बि जीह। (वेलि ५)

हिलोर दे—आशय-गर्भित मुहावरा है। जिस प्रकार समुद्र की तरंग का हिलोर अकस्मात् तट की ओर बह निकलता है, उसी प्रकार, हिलोर की तरह, पति के आगमन की प्रतीक्षा मारवणी करती है।

काग उडाइ-उडाइ—साहित्य में प्रतीक्षोत्कंठित नायिकाओं का काग को उड़ाकर पति के आगमन की शकुन-चिंता करना रूढ़ि-संगत हो गया है। अपभ्रंश और प्राकृत साहित्य में ऐसी उक्तियाँ बहुतायत से उपलब्ध होती हैं। उदाहरण—

(१) काग उडावण धण खड़ी आयो पीव भड़क्क।
आधी चूड़ी काग-गळ, आधी गई तड़क्क॥ (राजस्थानी सुभाषित)

(२) पिक चातक बन बसन न पावहिँ, बायस बलिहि न खात।
सूरश्याम, संदेसन के डर पथिक न उहि मग जात॥ (सूर)

(३) काग उडावत मोरी भुजा पिरानी। (कबीर)

दूहा १६८ बालहा—सं० वल्लभ; प्रा० वल्लह।

दूहा १६९ गरथ—(१) सं० ग्रथ=सामग्री, संपत्ति; एकत्रित धन इत्यादि। या (२) अरथ (अर्थ=धन) के अनुकरण पर बना हुआ शब्द। अरथ-गरथ बोला जाता है।

अकयथ्थ—सं० अकथ्य; प्रा० अकथ्थ। य का आगम।

दळ चड्या—राजस्थानी मुहावरा 'दळ चडणो'=घमंड होना, मद होना।

दूहा १७० अवर—सं० अपर; प्रा० अवर।

सुपनंतरि—सं० स्वप्न+अंतर+इ (अधिकरण-चिह्न)=स्वप्न में। उदाहरण—दया धर्म औ गुरु की सेवा ए सुपनंतरि नाहीँ।

(कबीर २७९—५०)

सोरठा १७१ पंजर—तन-पंजर। राजस्थानी और हिंदी में दार्शनिक अर्थ में यह शब्द बहुधा शरीर के लिये प्रयुक्त होता है।

पुळइ—राजस्थानी देशीय शब्द = चलता है, गतिशील होता है।

उदाहरण—पुळियै मग पुळियाइ, हुवै दरस अदरस हुवा।
जळ पैठाँ जळियाइ, मंदा क्रम मँदाकिनी॥
(राठोड़ पृथ्वीराज)

दूहा १७२ निघट्टियाँ—सं० नि + घट्=उत्पन्न होने पर, घटित होने पर।

पत्तीजूँ—सं० प्रत्यय (प्रति + इ); प्रा० पत्तिज, पत्तिअ = विश्वास करूँ।

उदाहरण—

(१) बोल्यो विहग विहँसि रघुवर बलि कहौं सुभाय पतीजै।
(तुलसी)

(२) जाति जुलाहा नाम कबीरा, अजहूँ पतीजौं नाहिं। (कबीर)

दूहा १७३ विलक्खा—सं० विकल या विलक्ष; प्रा० विलक्ख = दुखी, व्याकुल। उदाहरण—

(१) विकसित कंज कुमुद विलखाने (तुलसी)

(२) बहु विलखी वीछड़ती बाळा। (वेलि १७)

दूहा १७४ निसद्द—सं० नि + शब्द; प्रा० निसद्द, णिसद्द।

दूहा १७५ परिवाँण—सं० प्रमाण; प्रा० पमाँण; राज० परवाँण = सचमुच निश्चय। उदाहरण—

करता की गति अगम है, तूँ चलि अपणैं उनमान।
धीरै धीरै पाव दे, पहुँचैंगे परवाँन। (कबीर १८—१७७)

भावइँ—सं० भास्; प्रा० भाव; हिं० भाना (क्रिया) = अच्छा लगे। यहाँ अव्यय। मिलाओ—हिंदी 'चाहे'।

(१) एम्वहिँ राह-पओहरहं जं भावइ तं होउ।
(हेमचंद्र ८-४-४२०)

(२) भावइ पानी सिर पड़इ, भावइ पड़इ अँगार।

भावइँ जाँण म जाँण—मिलाओ—

जतन करत पतन ह्वै जैहै, भावै जांण म जाँणी। (कबीर २१९-३६७)

म—सं० मा (निषेधवाचक); अपभ्रंश म। उदाहरण—

लोणु विलिज्जइ पाणिएण अरि खल मेह म गज्जु।
बालिउ गलइ सुझुंपड़ा गोरी तिम्मइ अज्जु (हेमचंद्र ८-४-४१८)

दूहा १७६ पानही—सं० उपानह्; प्रा० पाणही; हिं० पनही। उदाहरण—

बिनु पानहि हु पयादेहि पाए, संकरु साखि रहेउ यहि घाए।

(तुलसी)

दूहा १७७ ठाकुर—सं० ठक्कुर = ईश्वर, सरदार, स्वामी।

खिसइ—(दे०) = खसकना, स्थान से हटना, गिरना। मिलाओ—

(१) खसी माल मूरति मुसुकानी। (तुलसी)

(२) परभाते तारे खिसहि त्यो इहु खिसै सरीरु।

(कबीर २५६-९०)

किसाकउ—सं० कीदृशकः।

दूहा १७८ धंधाळू—हिं० धंधा + आळू (राजस्थानी प्रत्यय) = कामकाजी।

वदेस—सं० विदेश। मिलाओ—

जिन पाऊँ सं कतरी, हांडत देस बदेस। (कबीर)

सघळी—सं० सकल; प्रा० सयल, सगल। उदाहरण—

स्वारथ का सबका सगा, जग सघला ही जांणि।

(कबीर ५२-१५)

संपजे—सं० संपद्यते; प्रा० संपजइ = उत्पन्न होती है, एकत्रित होती है।

दूहा १७९ पहुच—सं० प्र + भूत; प्रा० पहुच। उदाहरण—

जे जम आगै ऊबरौं, तो जुरा पहूँती आइ। (कबीर ७२-८)

सोरठा १८० संभारियाँ—याद करने पर। स० सं + स्मृ; प्रा० संभर, संभळ।

काप—सं० कृप्; प्रा० कप्प; राज० कापणो से संज्ञा।

दूहा १८१ यहु तन इ०—भाव मिलाओ—

यहु तन जालौं मसि करूँ, ज्यूँ धूवाँ जाइ सरग्गि।

मति वै राम दया करै, बरसि बुझावै अग्गि॥ (कबीर ८-११)

दूहा १८२ भरइ—सं० भृ; प्रा० भर। लाक्षणिक अर्थ में राजस्थानी मुहावरा 'संदेसो भरणो' संदेश भेजने के अर्थ में प्रयुक्त होता है।

पळट्टइ—सं० पर्यस्त; प्रा० पलट्ट।

भी—(राजस्थानी देशीय) = फिर। उदाहरण—

(१) बिरहिन ऊठै भी पड़ै, दरसनि कारनि राम। (कबीर ८–७)

(२) अजहूँ बीज अंकूर है, भी ऊगण की आस। (कबीर ८६–६)

दूहा १८४ साँभळे—सं० प्रा० अप०—संभल; राज० सांभळणो; गुज० सांभळवुं। ए पूर्वकालिक-प्रत्यय।

उदाहरण—साँभळि अनुराग थयो मनि स्यामा। (वेलि २६)

मागरवाळ—देखो दोहा १०५ में वागरवाळ पर टिप्पणी।

दूहा १८५ हूँताँ—प्रा० 'हिंतो' (अपादान विभक्ति का चिह्न)= से। उदाहरण—

(१) हूँ ऊधरी त्रिकुटगढ-हूँती, हरि बंधे वेळाहरण।

(वेलि ६३)

(२) कुसस्थली-हूँता कुंदणपुरि, किसन पधार्‌या लोक कहंति।

(वेलि ७२)

(३) जब हुँत कहिंगा पंखि विदेसी, तब हुँत तुम बिन रहै न जीऊ।

(जायसी)

माणसाँ—सं० मानुष; प्रा० माणुस।

दूहा १८६ निचंत—सं० निश्चित; प्रा० णिच्चिंत = चिंता-रहित।

दूहा १८७ ढूकड़ा—सं० ढौक्; प्रा० ढुक्क। ढूक+ड़ो (ऊनवाचक प्रत्यय) = पास।

डेरउ लीध—(राजस्थानी मुहावरा) डेरा लेना, निवासस्थान स्थिर करके रहना।

दूहा १८८ मल्हार—सं० मल्लार। वर्षा ऋतु का रागविशेष। राजस्थान में वर्षा सर्वप्रिय ऋतु होने के कारण ढाढियों ने उसी ऋतु के राग को अपनाया।

निवाज—सं० निष्पाद्य; प्रा० णिवज्ज = बनाकर।

झड़ मंडियउ—सं० क्षर; प्रा० झड; हिं० झड़ी। वर्षा की झड़ी लगने के अर्थ में राजस्थानी में "झड़ मँडणो" मुहाविरा आता है। उदाहरण—

झड़ मातौ मांड्यौ झड़। (वेलि १२१)

गुहिरइ—सं० गंभीर; प्रा० गहिर। उदाहरण—

सघण गाजियौ गुहिर सदि। (वेलि १६६)

दूहा १८९ जोयणाँ—सं० योजन; प्रा० जोअण, जोयण।

सेरियाँ—अप० सेरी = लंबी-पतली तंग गली। उदाहरण—

सेरी कबीर साँकड़ी, चंचल मनवा चोर। (कबीर २८–४)

दूहा १९० सुरसहु—सं० सुरभि; प्रा० सुरहि।

लोद्र—(संज्ञा) देश-विशेष का नाम। लुद्र, लुद्रवा, लोद्रवा पश्चिमी राजस्थान के भूभाग (जेसळमेर राज्य) का प्राचीन नाम है जिसकी प्राचीन राजधानी पूगळ थी।

भीनी—सं० भिन्न; हिं० भीगना, भीजना। उदाहरण—

कौन ठगौरी भरी हरि आजु बजाई है बाँसुरिया रसभीनी।

(रसखान)

ठोवड़ियाँह—सं० स्थान; प्रा० ठाण; अप० ठाव; राज० ठावड़, ठोड़; हिं० ठौर। इयाँ प्रत्यय।

दूहा १६१ निहल्ल—सं० निखिल; प्रा० णिहिल = बहुत अधिक, पूरी, खूब।

ऊचेइंती—सं० उत् + चालय्; प्रा० उच्चाल, उच्चाड; हिं० उचाटना।

सल्ल—सं० शल्य; प्रा० सल्ल = काँटा, मार्मिक वेदना।

दूहा १९२ वेळत—सं० वेल्; प्रा० वेल्ल = हिलना, चलना, काँपना। यहाँ बेचैनी से चंचल होना।

दूहा १९३ ई—सं० इदम्; प्रा० इथम्। उदाहरण—

देवग्य तोड़ि वसुदेव देवकी, पहिलौ ई पूछै प्रसन।

(वेलि १४६)

रतन-तळाव—(सं० रत्न + तड़ाग) हृदय भाव-रूपी रत्नों से भरे हुए सरोवर की तरह है, जो दुःखरूपी तरंगों से आकुल होने पर बाँध को तोड़कर चारों ओर बह निकलता है। संगीत ही में यह शक्ति है कि वह भाव-तरंगावली को पुनः व्यवस्थित करके मर्यादाबद्ध कर देता है।

दहदिसि जंति—मिलाओ—

बनिज खुटानौं पूँजी टूटि, षाडू दहदिसि गयौ फूटि।

(कबीर २१५—३८३)

दूहा १९५ मल्हाया—अप० मल्ह = मौज मानना, लीला करना। प्रेरणार्थक = खिलाना, लड़ाना, गाना। उदाहरण—

हलरावै दुलराइ मल्हावै, जोइ सोइ कछु गावै। (सूर)

दूहा १९६ मेल्ह्या—सं० मुच्; प्रा० मेल्ल् = छोड़ना, परित्याग करना, भेजना। उदाहरण—

(१) राज लगै मेल्हियौ रुखमणी, समाचार इणि माँहि सहि।

(वेलि ५६)

(२) हँसै न बोलै उनमनी, चंचल मेल्ह्या मारि।

(कबीर २—६)

दूहा १९७ अपछर—सं० अप्सरा; प्रा० अच्छरी।

उणिहार—सं० अनुहार; प्रा० अणुहार = समान, समरूप।

सार—सं० स्मृ; प्रा० सर, हर; हि० सार=याद, स्मृति, सुधि। उदाहरण—

जन को कहु क्यों करिहै न सँभार
जो सार करै सचराचर की। (तुलसी)

दूहा १९८ चीतारेह—सं० चिंत; चिंता करना, याद करना। उदाहरण—

चुगै चितारै भी चुगै चुगि चुगि चितारै।
(कबीर २५३—५०)

दूहा १९९ भड़िक—(अनुकरणात्मक शब्द) अचानक, झट, बिना सोचे-बूझे।

गाळि—सं० गाल = फेंकना, दूर करना।

हळवइ—सं० लघु; प्रा० लहु का विपर्य्यय हलु-हरु; हिं० हरुआ, हौले। उदाहरण—

(१) हौळे हौळे सुलगती सो तैं दीनी फूँक (राजस्थानी सुभाषित)
(२) नां सो भारी नां सो हलवा, ताकी पारिष लखै न कोई।
(कबीर १४४—१६६)

दूहा २०० वार—सं० द्वार; प्रा० दुआर, वार, बार।

दूहा २०१ जळ मँहि इ०—मिलाओ—

कमोदनीं जलहरि बसै, चंदा बसै अकासि।
जो जाही का भावता, सो ताही कै पासि॥ (कबीर ६७—१)

दूहा २०२ चुगइ, चितारइ इ०—मिलाओ—

चुगै चितारै भी चुगै, चुगि चुगि चितारै।
जैसे बच रहि कुंज मन, माया ममता रै॥ (कबीर २५३—५०)

थकाँ—(दे०)=होते हुए। उदाहरण—

(१) भीतर थका बाहिर इम भासै,
मनि लाजती सुहाग मुख। (वेलि २१३)
(२) दिवस थकाँ साईं मिलौं, पीछै पड़िहै रात।
(कबीर २६—१३)

दूहा २०६ आसालुध्धी—सं० आशालुब्ध; प्रा० आसालुध्ध। हतोत्साह और निराश प्रेमी के मन को भी प्रिय-मिलन की संभावना के प्रलोभन द्वारा लुभाए रखने की शक्ति आशा में होती है।

जजाळेह—(दे०) राजस्थानी में 'जंजाळ' स्वप्न के माया-प्रपंच को कहते हैं।

सेकइ—सं० श्रेषण; हिं० सेंकना=गरम करना, भूनना।

झीणे—सं० क्षीण, प्रा० झीण = बुझे हुए। उदाहरण—

(१) पांणी ही तै पातळा, धूवाँ ही तैं भीण।

(कबीर २६-१२)

(२) मनवा तो अधर बस्या, बहुतक झीणा होइ।

(कबीर २६-१४)

दूहा २०८ जे दिन इ०—मिलाओ—

जे दिन गए भगति बिन, ते दिन सालैं मोहि। (कबीर ७९-११)

दूहा २०९ सीख—सं० शिक्षा। राजस्थानी मुहाविरा 'सीख देणो' बिदा करने के अर्थ में आता है।

सोवन—सं० सुवर्ण; प्रा० सुवरण।

नाँख्यउ—सं० नाश;=फेंकना; राज० 'नाखणो'=डालना, फेंकना। उदाहरण—निउछावरि नाँखिया नग। (वेलि २४०)

उजाळ—(१) सं० उड्डी; प्रा० उड्डाव, उड्डाड; राज० उडाइ, उडाळ, उळाळ (डलयोरभेदात्)। (२) सं० उन्नमय; प्रा० उल्लाल = उड़ाया जाना, ऊँचा फेंका जाना। उन्नमेरुत्थङ्घोल्लालगुलुगुंछोप्पेलाः। (हेमचंद्र ८-४-३६)

दूहा २११ सींचाणउ—सं० संचान; अप० सिंचाण; गुज० सिंचाणो; हिं० सचान। उदाहरण—

(१) काल सिचाँणाँ नर चिड़ा, औझड़ औच्यंताँ।

(कबीर ७२—२)

(२) बिरह अगनि लपटनि सकै, झपट न मीच सिचान। (बिहारी)

डोहीजइ—सं० दोलन; हिं० डोलना = चलकर पार करना, उलाँघना। मिलाओ—मराठी डोही=गहरा।

महिराँण—सं० महार्णव; प्रा० महण्णव; डिं० महराण = समुद्र। मि०—हंसड़ौ तौ महराँण को, ऊडि पड्यौ थळियाँह। (कबीर ७७—२)

दूहा २१२ ऊलाळीजइ—देखो दूहा २०९ में 'उलाळ' पर टिप्पणी।

मूँठ—सं० मुष्टि; प्रा० मुट्ठि; हिं० मुट्ठी, मूँठ।

दूहा २१३ वींझ—सं० विंध्य; प्रा० विंज्झ। मिलाओ—

भील लुक्या बन बीझ में, ससा सर मारै। (कबीर १४१-१६१)

दूहा २१४ पसरइ—सं० प्र + सृ; प्रा० पसर; हिं० पसरना; राज० पसरणो = फैलना, बढ़ना।

दूहा २१६ सळ—(दे०) = सिकुड़न । नाक सळ=नाक सिकोड़ना । मि०—हिंदी मुहावरा—नाक भौंह सिकोड़ना = अप्रसन्न होना ।

विणट्ठा—सं० विनष्ट; प्रा० विणट्ठ; बिगड़ना, नाश होना । मिलाओ—पासि बिनंठा कप्पड़ा, क्या करै बिचारी चोल ।

(कबीर ३—२४)

दूहा २१८—आमणदूमणा—सं० उन्मनाः + दुर्मनाः; प्रा० उम्मण-दुमण; राज० आमणदूमणो = उदास, खिन्न, उद्विग्न-मन । उदाहरण—

यहु मन आमन धूमनां, मेरो तन छीजत नित जाइ ।

(कबीर १००—३०२)

इवड़उ—सं० इयत् ; प्रा० एवड; राज० एहड़ो, इतना । मिलाओ—

'एवडु अंतरु' (हेमचंद्र, ८—४—४०८)

काँइ इवड़ा हठ निग्रह कियाँ । (वेलि २८८)

दूहा २१९—धीरवइ—सं० धीर से क्रिया ।

दूहा २२० सयळ—सं० सकळ; प्रा० सयल; अप० सगल; राज० सगळा । चिंता···सिध्ध—इस दोहे के भाव से मिलाओ—

संसै खाया सकल जुग, संसा किनहूँ न खद्ध ।
जे बेधे गुर अष्विरां, तिनि संसा चुणि चुणि खद्ध ॥

(कबीर ३-२२)

दूहा २२१—दिसाउर—सं० देशांतर; प्रा० देसावर = दूसरा देश । मिलाओ—

पंखी चले दिसावराँ, विरषा सुफल फलंत ।

(कबीर ७७-७)

दूहा २२२ दीपता—सं० दीप् = प्रसिद्ध, प्रकाशित, शोभित । उदाहरण—

(१) दक्खिण दिसि देस विदरभति दीपति । (वेलि १०) ।

(२) द्वार में दिसान में दुनी में देस देसन में ।
देख्यो दीप दीपन में दीपत दिगंत है । (पद्माकर)

दूहा २२३—तंती-नाद—तंत्री का नाद, संगीत । मिलाओ—

तंत्रीनाद कवित्त रस, सरस राग रति रंग । (बिहारी)

दूहा २२४ ईडर—ईडर राज्य गुजरात में है ।

अउळगउँ—सं० उल्लंघ; प्रा० उलंघ, ओलंघ; हिं० उलाँघना=

प्रवास-यात्रा करना। 'बीसलदेवरासो'[1] में यह शब्द इस अर्थ में बहुत प्रयुक्त हुआ है।

अउथि—सं० उतः + स्थ (क्रिया-विभक्ति); हिं० उत; राज० ओथ, ओथिये। मिलाओ—अप० एत्थु, केत्थु, तेत्थु।

दूहा २२६ मुळताणी—मुलतान की; मुलतान पंजाब में प्रसिद्ध स्थान है।

सुहँगा—सं० समर्घ; प्रा० समग्घ; हिं० सुहँगा = सस्ता, अल्प मूल्यवाला।

सेलार—(१) देशी सेराह—सेलिया, घोड़े की एक उत्तम जाति। उदाहरण—

सिरगा, समँदा स्याह सेलिया सूर सुरंगा।
मुसकी पँचकल्याण, कुमेद औ केहरिरंगा॥ (सूदन)

हेडि—(संज्ञा स्त्रीलिंग) प्रा० हेडा; हिं० लेहँड़ी, हेड़ी; राज० हेड़ = समूह, झुंड। चौपायों के समूह जिनको व्यापारी या बनजारे मेले में बिक्री के लिये ले जाते हैं। वि०—ठीक अर्थ अस्पष्ट है।

तुखार—सं० तुषार = हिमालय के उत्तर का एक प्राचीन देश जहाँ के घोड़े प्रसिद्ध थे। प्रा० तुक्खार=उत्तम जातिका घोड़ा।

दूहा २२७ लडंग—सं० यष्टि; प्रा० लट्ठि; हिं० लड़ी, लड़ = पंक्ति कतार, बड़ी संख्या (घोड़ों की)। वि०—ठीक अर्थ अस्पष्ट है।

टाळिमा—(दे०); हिं० टालना = चुनिंदा; चुने हुए, छटे हुए।

वाँकड़—सं० वक्र, बंक; प्रा० बंक, बाँक = टेढ़ा, तिरछा (बल और साहस का द्योतक) मिलाओ—रण बंका राठौड़।

विडंग—ठीक अर्थ अस्पष्ट है।

दूहा २२८ काछी—कच्छ नामक देश का। कच्छ देश के ऊँट प्रसिद्ध होते हैं।

करह—सं० करभ; प्रा० करभ, करह; राज० करहो, करहलो = ऊँट। उदाहरण—(१) बन ते भगि बिहड़े परा करहा अपनी बाँनि।
वेदन करह कासों कहै को करहा को जाँनि॥ (कबीर)
(२) दादू करह पलाँणि करि को चेतन चढि जाइ। (दादू)

विथूँभिया—राज० वि० + थूँभि + इया। सं० स्तूप; प्रा० थूव; राज० थूही, थूह=ऊँट की कूब, ऊँट की पीठ पर की थूही। ऊँट एक थूहीवाले और दो थूहीवाले भी होते हैं। दो थूहीवाले उत्तम समझे गए हैं।

घड़ियउ—सं० घटिका; प्रा० घड़िआ; हिं० घड़ी = काल का एक मान जो २४ मिनट के बराबर होता है।

एथि—सं० इतः + स्थ; राज० एथ, एथिये=यहाँ पर। मिलाओ—'अउथि' दूहा २२४।

विसाइ—सं० व्यवसाय; हिं० बिसाहना=खरीद करना। पूर्वकालिक रूप। उदाहरण—

ओह सुनहि हर नाम जस उह पाप बिसाहन जाइ।

(कबीर २५६-१३७)

दूहा २२९ परेरउ—सं० पर। एरउ प्रत्यय संबंध का अर्थ देता है या स्वार्थिक प्रत्यय।

द्रंग—सं० दुर्ग, राजस्थानी में अनुस्वार का निरर्थक आगम। यहाँ गढ़ अथवा राज्य का अर्थ है।

भीभळ—सं० विह्वल; प्रा० भिंभल, विब्भल=प्रेम-प्रतीक्षा में विह्वल, अथवा देखनेवाले को विह्वल कर देनेवाले (नेत्र); विह्वलता (तरलता) के कारण सुन्दर (नेत्र) उदाहरण—

बउलसरी मद भीभलु ई भलु भणि अलि राजु।
संपति विण सुकुमाल ती मालती वीसरु आजु॥

(वसंत-विलास काव्य-७४)

दूहा २३०—मोती हरि—सं० मुक्ताफल; प्रा० मुत्ताहल, मोताहल; हि० मुताहल।

दूहा २३१ मरजीवउ—सं० मरजीवक; प्रा० मरजीवय (देखो—प्राकृत श्री श्रीपालकथा ३८५ गाहा); हिं० मरजीवा, मरजिया = वह व्यक्ति जो समुद्र के भीतर उतरकर मोती आदि वस्तु निकालने का काम करता है; पनडुब्बा। उदाहरण—

(१) मोती उपजे सीप में, सीप समुंदर माहिं।
कोई मरजीवा काढ़ेसी, जीवनकी गम नाहिं॥ (कबीर)

(२) जस मरजिया समँद धँसि मारे हाथ आव तब सीप।

(जायसी)

उघट—सं० उद्घाटन; प्रा० उग्घाडण; हिं० उघटना, उघड़ना। पूर्वकालिक रूप प्रकट होकर; ऊपर उठकर; ऊपर उछलकर।

दूहा २३२ सँकोडी—सं० संकोच; हिं० सिकुड़ना, सकुचना, सकुचाना= संकुचित हुई। उदाहरण—

संकुड़ित सम समा संध्या समयै। (वेलि १६२)

दूहा २३३ साटवि—(दे०) प्रा० सट्ट; हिं० सट्टा = विनिमय करके, खरीदकर। अवि पूर्वकालिक-प्रत्यय। उदाहरण—

(१) सिर साटै हरि सेविए, छाड़ि जीव की बाँणि।
(कबीर ७०—३१)

(२) जब रे मिलेगा पारिषू, तब हीराँ की साटि।
(कबीर ७८-७४०)

वि०—इस शब्द का ठीक अर्थ स्पष्ट है। यह राज० शब्द साँवटू का दूसरा रूप भी हो सकता है।

परिघळ—(१) सं० परि + गृह (?); प्रा० परिघर, परिघल (?)। धारण करने योग्य वस्तु, वस्त्रादि। (२) परघळ = बहुत।

वि०—इसका ठीक अर्थ अस्पष्ट है।

पटोळा—सं० पट्टकूल; प्रा० पट्टऊल, पट्टोल = रेशमी वस्त्र। उदाहरण—

फाड़ि पुटोला धज करौं, कामलड़ी पहिराउँ। (कबीर ११-४१)

दूहा २३५ दूहवियाह—सं० दुःख; प्रा० दूहव। उदाहरण—

'किम केणवि दूहविया'। (कुम्मापुत्तचरिय, पृ० १२)

वि०—इस दूहे के चतुर्थ चरण का यह अर्थ ठीक जान पड़ता है—'या हमने दुखी किया है।'

दूहा २३६ दाखउ—दे० दक्ख; राज० दाखणो = कहना। आज्ञा बहुवचन।

दूहा २३८ खंति—मिलाओ राज० ख्यँत, खँत, खँति = लगन, सावधानी, चैतन्य, चतुरता। उदाहरण—

खँति लागौ त्रिभुवनपति खेड़ै।
धर गिरि पुर साम्हा धावंति॥ (वेलि ६८)

दूहा २४० कुमकुमइँ—सं० कुंकुम; हिं० कुमकुम = गुलाबजल। विकारी रूप।

(१) कुमकुमैं मँजण करि धौत बसत धरि। (वेलि ८१)
(२) जहाँ स्यामघन रास उपायौ,
कुमकुम जल सुखवृष्टि रमायौ। (सूर)

वीझण—सं० व्यजन; प्रा० वियण, विंजण, वीजण; हिं० बिजन, बीजन = पंखा। उदाहरण—

बिजन डुलाती ते वै बिजन डुलाती हैं। (भूषण)

वीझ्या—'वीझण' से क्रिया। सामान्य भूत।

दूहा २४२ ऊन्हाळउ—सं० उष्ण + काल; प्रा० उण्ह-आल, उण्हाल; राज० ऊन्हाळो = ग्रीष्म ऋतु।

ऊतारियउ—सं० अवतरण; प्रा० उत्तरण; हिं० उतरना = ढलना, बीतना। स्वार्थ में प्रेरणार्थक।

दूहा २४३ गउखे—सं० गवाक्ष; हिं० गौखा, गोख = अटारी पर की खिड़की, झरोखा। उदाहरण—

"गावै करि मंगळ चढि-चढि गौखे"। (वेलि ४२)

दूहा २४५ नस—सं० निश् = रात्रि।

दूहा २४८ कामणगारियाँ—राज० काँमण (जादू) + गर (कर) = जादूगरनियाँ। देखो इस प्रकार के प्रयोग—मेळगर, निरतगर, जाणगर (वेलि)।

पाँगुरियाँह—राजस्थानी 'पाँगरणो' = पनपना, हरा-भरा होना, पुनः पल्लवित होना। सामान्य भूत, बहुवचन।

दूहा २५३ डूँगरिया—अप० डुंगर = पहाड़। उदाहरण—अब्भा लग्गा डुंगरिहिं पहिउ रडंतउ जाइ। (हेम० ८-४-४४५)

झँगोरया—सं० झंकार; प्रा० झिंगार; राज० 'झिंगोरणो' = मोर का बोलना।

दूहा २५६ कादिम—सं० कर्दम; प्रा० कद्दम; राज० कादो। उदाहरण—करि ईंट नीलमणि कादो कुंद्रण। (वेलि २०४)

तिळकस्यइ—(दे०) तिलकना = फिसलना, राज० तिसळणो।

दूहा २५७ झाझी—सं० दग्ध, प्रा० दज्झ; दाझ; राज० झाझ। इतनी अधिक शीतल कि जिससे जलने का भाव प्रतीत हो। अत्यधिक शीत भी अग्नि की तरह जलाता है, अतएव अत्यंत शीतल वायु को झाझी (दग्ध करनेवाली) वायु कहा है।

दूहा २६२ समनेहाँ—सं० सम + स्नेह। बहुवचन, विकारी रूप। यहाँ संभवतः 'ससनेहाँ' पाठ रहा होगा, लिखने में 'स' का 'म' हो गया होगा; क्योंकि 'समनेहाँ' का प्रयोग राजस्थानी में प्रायः नहीं पाया जाता। ससनेहाँ का अर्थ 'स्नेहियों' है।

वयरी—सं० वैरी। अपने पति को वैरी संबोधन इसलिये किया है कि वह उसे विरह के मुख में छोड़कर जाना चाहता है।

दूहा २६३ मंडव—सं० मंडप; प्रा० मंडव।

दूहा २६४ बहळ—सं० बहुल। उदाहरण—

बहलो धणी सिँघासणवाळो,
पाळो होइ हालियो पंथ। (पृथ्वीराज)

ताढा—सं० स्तब्ध; प्रा० थड्ढ; हिं० ठंढा; मराठी तंडा, थंडा; राज० थाढा, ताढा।

रेस—अप० रेस, रेसि, रेसिं, रेसिम्मि = निमित्त, लिये, वास्ते। उदाहरण—

(१) हउं झिजउं तउ केहिं पिअ
तुहुँ पुणु अन्नहि रेसि। (हेमचंद्र ८-४-४२५)
(२) सुनि आगम नगर सहू साऊजम,
रुषमणि क्रिसन वधावण रेसि। (वेलि १४१)

दूहा २७१ घड़—सं० घटा; प्रा० घडा, घड; राज० घड़, घटा। उदाहरण—

तोड़ाँ घड़ तुरकाणरी मोड़ाँ खान-मजेज।
दाखै अनमी भोजदे, जादम करै न जेज॥

(राजस्थानी दूहा)

ओळँबा—सं० उपालंभ; प्रा० ओलंभ; राज० ओळभो; हिं० उलहना।

दूहा २७२ बाहर थाजइ इ०—भाव मिलाओ—

(१) कबीर बादल प्रेम का, हम परि बरष्या आय।
अंतरि भीगी आतमाँ, हरी भई वनराइ॥ (कबीर ४—३४)
(२) कबीर गुण की बादली, तीतरबानी छाँहि।
बाहिर रहे ते ऊबरे भीगे मंदिर माँहि॥ (कबीर ३४—२३)

बाहर था जइ ऊगरइ—अन्यार्थ—"जो बाहर थे वे बच (उबर) गए"। अनुवाद के अर्थ से यह अर्थ अधिक युक्तिसंगत जँचता है।

ऊगरइ—सं० उद्+गृ; प्रा० उग्गिर, उग्गिल। राजस्थानी में उगरणो, उबरणो=बच रहना, निकलना।

दूहा २७३ ढोला, रहिसि इ०—अन्यार्थ—हे ढोला, मेरे रोकने पर रुक जा; विधाता का लेख तो मिलेगा ही।

निवारियउ—(१) निवारियउ=निवारण किया जाता हुआ, रोका हुआ। (२) नि=नहीं+वारियउ=रोका हुआ।

दूहा २७४ सुचीत—सं० सु+चित=शुभ है चिंतन जिसका; मनोज्ञ, मनोरम।

दूहा २७७ सीयाळइ, ऊन्हाळइ, वरसाळइ—सं० शीत+काल, उष्ण+काल, वर्षा+काल।

चीकणी—सं० चिक्कण=स्निग्ध, कोमल, फिसलनेवाली।

दूहा २७८ तात—देखो दूहा ५२५।

दूहा २७९ पाळउ—सं० प्रालेय; प्रा० पालेअ; हिं० पाला=तुषार, हिम का गिरना।

टापर—(दे०) पशुओं को ओढ़ाने का मोटा कपड़ा। राज० तप्पड़, तापड़। अँग्रेजी—तारपॉलीन। हिं० त्रिपाल, तिरपाल।

झुरइ—अप०=क्षीण होती है, व्याकुल होती है। उदाहरण—

दुखिया मूवा दुख कौं, सुखिया सुख कौं झूरि।

(कबीर ५४—८)

दूहा २८० गोरड़ी—सं० गौरी। गोरी शब्द राजस्थानी में स्त्री, पत्नी, नायिका, प्रेयसी आदि के अर्थ में आता है।

दूहा २८१ नीपजइ—सं० निष्पद्यते; प्रा० णिपज्जइ; हिं निपजना। उदाहरण—

उलटा सुलटा नीपजै ज्यों खेतन में बीज। (कबीर)

दूहा २८२ तिल्ली—सं० तिल।

त्रिड़इ—तड़्तड़् से अनुकरणात्मक क्रिया। राज० तिड़कणो; हिं० तड़कना=सूखकर चटख जाना।

झालइ—सं क्ष्वेल; प्रा० झेल; हिं० झेलना; राज० झालणो=ग्रहण करना, धारण करना। उदाहरण—

कबीर केवल राम कहि, सुध गरीबी झालि। (कबीर २६—५२)

गाभ—सं० गर्भ; प्रा० गब्भ=गर्भाधान।

आभ—सं० अभ्र; प्रा० अब्भ=बादल, आकाश।

दूहा २८४ नीसरइ—सं निः+सृ; प्रा० निस्सर; हिं० निसरना। उदाहरण—

कहौ कौन खिवै कहौ कौन गाजै, कहाँ थैं पाँणी निसरै। (कबीर)

दूहा २८६ उत्तर—देखो दूहा ११६।

उत्तरउ—सं० अव + तृ; हिं० उतर आना=अचानक आ जाना।

सही—अवश्य, निश्चय करके। मिलाओ—

"हुए हरण हथलेवौ हूऔ, सेस संसकार हुवइ सहि।" (वेलि १५२)

सीह—सं० शीत; प्रा० सीअ = सरदी, जाड़ा। उदाहरण—

(१) जहाँ भानु तहँ रहा न सीऊ। (जायसी)

(२) प्रतिहार प्रताप करे सी पाले। (वेलि २२५)

चंगा—सं० चंग; पंजाबी चंगा; मराठी चाँगळा; हिं० चंगा = स्वस्थ, नीरोग, सुंदर। मिलाओ—मन चंगा तो कठौती में गंगा।

दूहा २८७ वाहळियाँह—देखो दूहा १४७ में वाहळा पर टिप्पणी।

ओले—सं० क्रोड़; हिं० ओल = ओट, शरण। उदाहरण—

(१) सूरदास ताको डर काको हरि गिरिवर के ओलै। (सूर)

(२) ढूँढत-ढूँढत जग फिर्या, तिण कै ओल्है राँम। (कबीर)

काहळियाँह—सं० कातर; प्रा० काहल=डरपोक, अधीर। देखो, हेमचंद्र ८—१—२१४।

दूहा २८९ पल्लाणियाँ—सं० पर्याण; पल्लाण=जीन किए हुए, सवार, प्रवास को जाते हुए।

दरक—सं० दर; हिं० दरकना=विदीर्ण होना, फटना (हृदय का)

अक्क—सं० अर्क; प्रा० अक्क; हिं० आक = मदार का वृक्ष।

दूहा २९० दोहागिण—सं० दुः + भागिनी; प्रा० दुहागिणि = वह स्त्री जिस पर पति का प्रेम न रह गया हो।

दूहा २९१ रीठ—सं० अरिष्ट; प्रा० रिट्ठ = विनाशकारी (शीत) रूखी (सरदी)। राजस्थानी में 'रट्ठ' असहनीय शीत को कहते हैं।

दूहा २९२ तरंत—सं० तरंत = समुद्र। पाले का समुद्र अर्थात् जोरों का शीत।

दूहा २९४ रवंद—(सं० रव ?) जोर-शोर का।

वासंदर—सं० वैश्वानर=अग्नि। उदाहरण—

जिहि बैसंदर जग जल्या, सो मेरे उदिक समान।

(कबीर ६३—४)

मंद—सं० मद्य; प्रा० मद्द, हिं० मद। अनुस्वार का आगम।

दूहा २९५ ऊकटिंया—सं० अव + काष्ठ; हिं० उकठना=सूख जाना। उदाहरण—जिमि न नवै पुनि उकठि कुकाठू। (तुलसी)

सारेह—सं० शिरीष; प्रा० सरीह। शिरीष का वृक्ष राजस्थान में बहुतायत से पाया जाता है।

बेलाँ—सं० द्वि; प्रा० बे, वि; एला प्रत्यय, = दो, युग्म, दंपति।

दूहा २९६ ऊपड़िया—सं० उत्पत्; प्रा० उप्पड़; हिं० उपड़ना। उदाहरण—

ऊपड़ी धुड़ी रवि लागी अंबरि। (वेलि १९३)

कोट—राजस्थानी मुहाविरा 'कोट-रा-कोट'=अनंत राशि।

पोयणी—सं० पद्मिनी; प्रा० पोइणी। उदाहरण—

(१) सर पोइणिए थई सुश्री। (वेलि २०६)

(२) पोयण फूल प्रतापसी। (पृथ्वीराज)

घोट—सं० घोटक। लक्षणा से घोड़े के समान स्फूर्तिमान् युवा पुरुष।

दूहा २९७ ऊकठियइ—सं० उत् + कर्ष; प्रा० उकड्ढ हिं० कढ़ना =बाहर निकल पड़ना।

केकाण—(दे०) घोड़ा। संभवतः केकय शब्द से बना है जहाँ के घोड़े प्रसिद्ध होते थे। उदाहरण—

केकाणाँ पाइ सुगह किया। (वेलि १२७)

कमेडि—हिं० कुमरी। पंडुख की जाति की एक चिड़िया, जो सफेद कबूतर और पंडुख से उत्पन्न होता है। राजस्थान में इसे कमेड़ी कहते हैं। इसकी बोली से 'केशव तू केशव तू' जैसी आवाज निकलती जान पड़ती है।

दूहा २९९ साले—सं० शल्य; प्रा० सल्ल; हिं० सालना ?

दूहा ३०० ऊलहइ—सं० उत् + लस; प्रा० उल्लह। उदाहरण—

दोष वसंत को दीजै कहा,

उलही न करील की डारन पाती। (पद्माकर)

द्रंग—(१) सं० द्रंग=वह नगर जो पत्तन से बड़ा और कर्बर से छोटा हो। (२) दुर्ग।

दूहा ३०१—दखिणाध—सं० दक्षिणतः, दक्षिण की ओर का। आधुनिक राजस्थानी में दखणाद या दिखणाद बोलचाल का रूप है।

दूहा ३०३ सव—सं० सः । प्रा० सो; सौ, सव ।

रत—सं० ऋतु । अन्य रूप—रिति, रुति, रुत, रित, रत । आधुनिक राजस्थानी में रुत् प्रयुक्त होता है ।

आँवळी—सं० अमल, स्त्रीलिंग । निर्मल ।

वि०—इस दूहे के प्रथम चरण का अर्थ अस्पष्ट है ।

दूहा ३०४ हल्लाणउ—अप० हल्ल + आणउ (भाववाचक संज्ञा बनाने का प्रत्यय) ।

झबझब, डब डब—अनु० शब्द ।

झूंबइ—प्रा० झंप; हिं० झूमना ।

पागड़इ—दे०, रिकाब, ऊँट या घोड़े की काठी का पावदान जिस पर पैर रखकर सवार होते हैं ।

दूहा ३०६ रइबारी—दे० जाति-विशेष जो ऊँटों को चराने और रखने का काम करती है ।

दूहा ३०७ वग्ग—सं० वर्ग; प्रा० वग्ग = बाड़ा । मिलाओ—

मैं जाण्यो धोळो मुओ, खाली हुयगो वग्ग ।
बाड़े उणहि ज बाछड़ू औरूँ ताँडण लग्ग ॥ (बाँकीदास)

दूहा ३०८ दाय आवइ—पसंद आना । राजस्थानी मुहाविरा, जो बोल-चाल में अब भी आता है ।

दूहा ३०९ दोवड़-चोवड़ा—मिलाओ; हिं० दोहरा-चौहरा=दुगुने-चौगुने, भारी शरीरवाले ।

नागरवेलियाँ—सं० नागवल्ली, पान की वेल ।

दूहा ३११ माँगळोर—संभवतः किसी स्थान का नाम है । इसका पता नहीं चलता । जोधपुर राज्य में माँगळोद नाम का एक गाँव है पर वह माँगळोर से सर्वथा भिन्न है ।

दूहा ३१२ घालूँ—अप० घल्ल = डालना ।

बाहूँ—सं० बंध; हिं० बाँधना ।

लज्ज—सं० रज्जु; प्रा० लज्जु; लज्ज = नकेल, लगाम ।

भलेरउ—भला + एरउ (स्वार्थिक प्रत्यय) ।

दूहा ३१४ अग्गर—सं० आगार = रहने का सुंदर आवास ।

आसंगे—सं० आ + संग से क्रिया-प्रयोग=संग करना । संज्ञा आसंग सामर्थ्य के अर्थ में राजस्थानी में बोलचाल में आता है; जैसे—म्हारी आसंग कोय नी ।

दूहा ३१६ दूमणी—सं० दुर्मना; प्रा० दुम्मण।

बरग—सं० वर्ग = बाड़ा। देखो—दूहा ३०७ में वग्ग।

दूहा ३१७ कन्हइ—हिं० कने = पास, नजदीक।

(१) मीत तुम्हारा तुम्ह कने तुमही लेहु पिछानि। (दादू)

(२) अब आके बुढ़ापे ने किया हाय! ये कुछ कहर।
अब जिसके कने जाते हैं लगते हैं उसे जहर॥

(नजीर)

खोड़उ—अप० (देशी नाममाला २-८०)।

दूहा ३१८ डाँभिज्यउँ—सं० दह्; प्रा० डंभ; राज० डाँभणो; हिं० दागना। कर्मवाच्य, संभाव्य भविष्य, उत्तम पुरुष, एकवचन। पहिचान के लिये अथवा रोग-निवारण के लिये पशु को दागा जाता है।

रळि—प्रा० रल; हिं० रलना = मिलना। उदाहरण—

कबीर, गुर गरवा मिल्या, रळि गया आटै लूँण।

(कबीर २-१४)

दूहा ३२० चोपड़िस्यूँ—अप० चोप्पड़ = स्निग्ध, चिकना करना।

चंपेल—सं० चंपा + तेल = चमेली अथवा चंपा का तेल।

दूहा ३२१ हळफळ—दे० अनु० शब्द; प्रा० हल्ल फल्ल; हिं० हड़बड़ी = त्वरा, शीघ्रता, व्याकुलता। (देखो—हेमचंद्र २-१८४)

दूहा ३२२ रूअड़उ—सं० रूढ = प्रशस्त, अच्छा, भला।

वेध्याँ—सं० विध्। वेध्यो का विकारी रूप; बहुवचन, कारक-प्रत्यय लुप्त। पारस्परिक प्रेम से बिँधकर माला के मनकों की तरह ऐक्य-सूत्र में आबद्ध अर्थात् प्रेम-संयुक्त।

बप्पड़ा—अप० बप्पुड़ा; हिं० बापुरा; गुज० बापडुं। उदाहरण—

प्रिय एम्वहिं करे सेल्लु करि छड्डुहि तुहुँ करवालु।
जं कावालिय बप्पुडा लेहिं अभग्गु कवालु॥

(हेमचंद्र ८-४-३८७)

दूहा ३२३ कळाप—सं० कल्प् = दुःख की उद्भावना करना, बिलखना, विषाद करना। उदाहरण—

(१) मुख कहि कुसन रुषमिणि मंगळ
काँइ रे मन कळपसि कृपणा। (वेलि २८९)

(२) नेकु तिहारे निहारे बिना कलपै जिय क्यों पल धीरज लेखौ ।
(पद्माकर)

लोपँ—सं० लुप् = लुप्त करना = न मानना । संभाव्य भविष्य, उत्तम पुरुष, बहुवचन । उदाहरण—

कलि सकोप लोपी सुचालि निज कठिन कुचालि चलाई ।
(तुलसी)

दूहा ३२४ सारउ—सं० सृ (?); हिं० सरना (?); राज० सारो = वश । बोलचाल का शब्द है ।

दूहा ३२६ बतळावसूँ—राजस्थानी में पुकारने के अर्थ में 'बतळावणो' आता है ।

दूहा ३२९ माँडि पलाँण—'पलाँण माँडणो' = ऊँट पर जीन कसना ।

दूहा ३३० कूड़इ—सं० कूट; प्रा० कूड़ = असत्य, मिथ्या, झूठा, छल-युक्त । उदाहरण—

जांमण मरण बिचारि करि, कूड़े काम निवारि । (कबीर)

दूहा ३३१ तेड़ावियउ—राज० दे० 'तेड़णो' = निमंत्रित करना, बुलाना । प्रेरणार्थक रूप । उदाहरण—

दैवग्य तेड़ि वसुदेव देवकी, पहिलौई पूछे प्रसन । (वेलि १४६)

दूहा ३३२ राखउ करहउ डाँभस्यउ—अन्यार्थ—अरे अनजान मूर्खों । पाले हुए (रक्षित) ऊँट को (क्या) दाग लगाओगे ?

सँधाण—सं० संधान; प्रा० संधाण = दवा-दारू से ठीक करना, स्वस्थ करने का उपचार ।

दूहा ३३४ खेलाड़इ—सं० खेल + आड (प्रेरणार्थक प्रत्यय) ।

दूहा ३३६ ऊकरड़ी—अप० उकरडु = घूरा, गंदगी इकट्ठा करने की जगह ।

डोका—राजस्थानी शब्द—धान्य के पौदे के सूखे डंठल जो पशुओं के चारे की तरह काम में आते हैं ।

अपस—सं० अपशु = कुत्सित पशु, गदहा ।

दूहा ३३७ छेह—अप० = प्रांत, अंत, किनारा । (देखो—देशी नाम-माला ३-३८) ।

भेळा—सं० भेल् = मिश्रण करना, इकट्ठे। उदाहरण—

भावी सूचक थिया कि भेळा, सिंघरासि ग्रहगण सकल।

(वेलि ६६)

दूहा ३३९ खोटाँ—सं० क्षुद्र; प्रा० खुड्ड। बहुवचन विकारी रूप।

दाखवइ—सं० दृश्; प्रा० दक्ख। प्रेरणार्थक।

दूहा ३४० सिध्धावउ—सं० (प्रेरणार्थक); हिं० सिधाना = सिद्धि के लिये प्रयाण करना। उदाहरण—

लायक हे भृगुनाथ सो धनु सायक सौंपि सुभाय सिधाये।

(तुलसी)

दूहा ३४३ कसब्री—(दे०) ऊँट पर जीन कसने के लिये पट्टा अथवा मोटा फीता। कसब्री जड़ाऊ अथवा चित्रित के अर्थ में भी आता है।

सोवन-वानी—सं० सुवर्ण + वर्ण = सुनहले, सुवर्ण वर्णवाले। 'वानी' के प्रयोग के लिये देखो—

बादल **वानी** राम घन उनया, बरषै अमृतधारा।

(कबीर १३७-१५१)

परियांण—सं० प्रमाण; प्रा० परवाण = वास्ते, लिये। उदाहरण—

कहिबे को सोभा नहीं देखा ही **परवांन**। (कबीर २५२-४८)

दूहा ३४५ झेक्यउ—(राज०) ऊँट के बैठने को राजस्थानी में 'झेकणो' कहते हैं। ऊँट को बैठाते समय 'झे झे' शब्द किया जाता है, उसी के अनुकरण पर यह शब्द बना है।

टहूकड़ा—(दे० अनु० शब्द) ऊँट के बरगलाने का शब्द। कोयल के बोलने को भी 'टहूकड़ा' कहते हैं। साधारणतः सुंदर और कर्णप्रिय शब्द के लिये प्रयुक्त होता है।

दूहा ३४६ कसणा—(संज्ञा) सं० कर्षण; प्रा० कस्सण; हिं० कसना = बाँधने की रस्सियाँ या फीते।

करंकउ—(अनु० शब्द) पशु के बोलने का शब्द।

दूहा ३४८ दाँवणि (१)—(फा० दामन) पहिनने के वस्त्र का निचला भाग या छोर; अथवा (२) (सं० दाम = रज्जु, बंधन)—लाक्षणिक अर्थ में नियंत्रण। दूहे की पहली पंक्ति का दूसरा अर्थ यों भी हो सकता है—हे सखी, दौड़ो, दौड़ो, (जब मेरा प्रियतम चल ही पड़ा) तो अब कौन-सा बंधन (मर्यादा-बंधन) रह गया, क्या लाज है।

दूहा ३४९ निसाँण--हिं० निसान = नगाड़ा, धौंसा। उदाहरण—

(१) चीस सहस घुम्मरहिं निसाना। (जायसी)

(२) घुरै नीसाण सोइ घण घोर। (वेलि ४०)

संधाण—सं० संधि, संधान = शरीर की संधियाँ। दोहा ३३२ में लाक्षणिक अर्थ में, भिन्न आशय में, यह शब्द प्रयुक्त हुआ है।

दूहा ३५० दमाज--फा० दमामा (?) = ढोल, नगाड़ा, धौंसा।

दूहा ३५१ पड़हउ—सं० पटह; प्रा० पडह।

अँवळउ--सं० अपर; प्रा० अवर (?); राज० अँवळो = (१) उलटा, चक्करदार; (२) अस्वस्थ (स्वस्थ का उलटा)। राज० अँवळा-सँवळा=हिं० उलटा-सुलटा।

दूहा ३५२ पालंखी—सं० पल्यंक = पालकी।

विसहर--सं० विषधर।

दूहा ३५४ पाड़ा--सं० पाटक; प्रा० पाड्य = महल्ला।

दूहा ३५५ ऊभी—सं० उत् + भू=खड़ा होना। उदाहरण—

विरहिन ऊभी पंथ सिर, पंथी पूछै धाय।
एक शब्द कहु पीव का, कबर मिलेंगे आय॥ (कबीर)

कड़—सं० कटि; प्रा० कडि।

दूहा ३५८ अवास—सं० आवास = निवास-स्थान।

मावइ—सं० मा; हिं० अमाना = समाना।

दूहा ३६० टबूकइ—अनु० शब्द = टप् टप् अथवा टब् टब् शब्द करके गिरना।

दूहा ३६१ पड़ताळिया—सं० परि + ताग्; प्रा० पडताल = तेजी से चलाया।

पूठि—सं० पृष्ठ; प्रा० पिट्ठ; हिं० पीठ, पूठ। उदाहरण—

पच्छिम दिसि पूठ पूरब मुख परठित। (वेलि १५४)

वावू—सं० वायु; प्रा० वाव।

दूहा ३६२ उवाँ ही—हिं० वहाँ ही।

बहोड़या—सं० प्रघूर्ण; प्रा० पहोल=लौटाना। सा० भू० बहु०। मिलाओ हिं० बहुरि। उदाहरण—

कबीर यहु तन जात है, सकै तो लेहु बहोड़ि। (कबीर)

दूहा ३६३ सलूँणी—सं० सलावण्य; हिं० सलोनी।

दूहा ३६५ मोकळा—(दे०) = बड़ा; घना, बहुत। उदाहरण—
मुकति दुआरा **मोकला** सहजै आवौ जाउ। (कबीर २५०-१७)

दूहा ३६६ वीखड़ियाँ—सं॰ वीखा = गति; पद; पदचिह्न।

दूहा ३६७ कुहड़ि—सं॰ कुहेडि; हिं॰ कोहरा = जल-कणों से युक्त शीतल भाप। यहाँ कोहरे से लाक्षणिक अर्थ में अंधकार से आशय है।

दूहा ३६८ वीज—सं॰ विद्युत्; प्रा॰ विज्जु।

दूहा ३६९ राता—सं॰ रक्त; प्रा॰ रत्त = लाल। उदाहरण—

भृकुटी कुटिल नैन रिस **राते**। (तुलसी)

दूहा ३७० बाहिरी—सं॰ बहिर् = बिना, विहीन। उदाहरण—

जेहि घर कंता ते सुखी तेहि गारू तेहि गर्व।
कंत पियारे **बाहरे** हम सुख भूला सर्व॥ (कबीर)

दूहे के भाव से मिलाओ—

साँई मैं तुझ **बाहरा** कौड़ी हूँ नहिं पावँ।
जो सिर ऊपर तुम धनी, महँगे मोल बिकावँ॥ (कबीर)

दूहा ३७१ लहक—हिं॰ लहकना = लहलहाना, प्रफुल्लित होना। उदाहरण—

लहर भरे **लहकहिं** अति कारे। (जायसी)

दूहा ३७२ सूकण लागी बेलड़ी इ॰—मिलाओ—

सूकण लागा केवड़ा, तूटीं अरहर माल।
पांणी की कल जांणताँ, गया ज सींचणहार॥
(कबीर ७४-३५)

दूहा ३७३ मोजड़ी—अप॰=जूती (देशीनाममाला ६-१३९)।

आ—यह (स्त्रीलिंग)।

ठाँण—सं॰ स्थान; प्रा॰ ठाण=घोड़े आदि के चरने का स्थान।

आहीठाँण—(१) सं॰ अभिस्थान; प्रा॰ अहिट्ठांण; राज॰ आहीठाँण। (२) सं॰ अभिज्ञान; प्रा॰ अहिण्णाँण; राज॰ अहिनांण = चिह्न।

दूहा ३७६ बिलंबी—(१) सं॰ विलंब्; हिं॰ बिलमना अथवा (२) सं॰ अवलंब्। पूर्वकालिक क्रिया या भूत कृदंत स्त्रीलिंग का रूप। उदाहरण—

(१) जीव **बिलंब्या** जीव सौं, अलख न लखिया जाय। (कबीर)
(२) कबीर तहाँ **बिलंबिया**, करे अलख की सेव। (कबीर)

दूहा ३७७ साई—सं० साति; प्रा० साइ; हिं० साई = वह धन जो किसी वस्तु-निर्माण के लिये निर्माता को पेशगी दिया जाता है। यहाँ पर 'साई दे' का अर्थ है—प्रचार कर, प्रकट। साई दे दे रोवणो—यह मुहावरा धाड़ मारकर रोने के अर्थ में आता है।

प्रवाळी—सं० प्रवाल = मूँगिया लाल रंग का एक पत्थर अथवा रत्न। उदाहरण—खुंभी पनाँ **प्रवाळी** खंभ। (वेलि ३६)

चूँन—सं० चूर्ण।

सोरठा ३७८ रणेहि—सं० रणरणाय्; प्रा० रणरणक् = दुःखमय निःश्वास; व्याकुलता।

सोरठा ३७९ रड़ो—सं० रट; प्रा० रड्; गुज० रडवुँ।

चड़ेहि—प्रा० चड=चढ़कर; बढ़-बढ़कर।

सोरठा ३८० गळंती—सं० गॄ; प्रा० गळ; हिं० गलती हुई=क्षीण होती हुई, समाप्त होती हुई। उदाहरण—

गत प्रभा थियौ ससि रयणि **गळंती** (वेलि १८२)

परजळती—सं० प्रज्वल्; वर्त्तमान कृदंत, स्त्रीलिंग=प्रकाशित होती हुई, रात बीतने के बाद होनेवाले प्रकाश के समय। उदाहरण—

दीपक **परजळतो** न दीपै। (वेलि १८२)

खड़हड़िया—अनु० शब्द 'खट् खट्'; प्रा० खड खड=आवाज करना, खटकना।

खुरसाँण—फा० खुरासान। यहाँ तलवार से मतलब है। खुरासान की तलवार तथा घोड़े प्रसिद्ध थे। खुरासानी शब्द तलवार, घोड़ा और शाण-चक्र के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है।

दूहा ३८१ सिंघी—सं० श्रृंगी; प्रा० सिंघी, सिंघिया; हिं० संखिया=एक बहुत जहरीली धातु, जिसके खाते ही मौत हो जाती है।

दूहा ३८२ समर—सं० स्मर; प्रा० समर।

सहिनाँण—सं० संज्ञान; प्रा० सण्णाण। देखो—दूहा ४४६।

दूहा ३८४ आपड़ाँ—सं० आ + पत्; प्रा० आपड=पहुँचना।

वालरे—सं० वल्; प्रा० वळ = चलना, लौटना; स्वार्थिक र प्रत्यय।

साद—सं० शब्द; प्रा० सद्द।

दूहा ३८५ घाटा—सं० घट्ट=पहाड़ी रास्ता, घाटी।

दूहा ३८६ धाहड़ी—अप० धाह=चिल्लाना, रोकर पुकारना; हिं० धाह या धाड़ मारना। उदाहरण—

रैंणा दूर विछोहिया, रहु रे संष म झूरि।
देवलि देवलि धाहड़ी, देसी ऊगे सूरि॥ (कबीर)

उरळउ—सं० उदार; प्रा० उराळ, उरल; राज० उरलो (?)=विशाल, विस्तीर्ण, विश्रब्ध, शांत। राजस्थानी बोलचाल में बहुधा प्रयोग होता है।

दूहा ३८७ मेहाँ—सं० मेघ; प्रा० मेह = बादल।

प्रगडउ—सं० प्रकट; प्रा० पगड = प्रकाश, सूर्य का प्रकाश। मिलाओ—

कबीर, पगड़ा दूरि है जिनकै बिचि है रात।
का जाणौं का होइगा उगवंते परभात॥ (कबीर)

दूहा ३८८ सद्दड़इ—सं० शब्द; प्रा० सद्द। ड़ो स्वार्थिक प्रत्यय, विकारी रूप।

थळ—सं० स्थल; प्रा० थळ; राज० 'थळ' विशेष अर्थ में रेतीली या कंकरोली ऊँची भूमि के लिये आता है। राजस्थान के रेगिस्तान को इसी लिए 'थळी' कहते हैं।

दाधी—सं० दग्ध; प्रा० दध्ध; राज० दाधउ।

दूहा ३८९ चुणइ—सं० चि; प्रा० चिण; हिं० चुनना, चुगना = इकट्ठा करना, एकत्र करना (देखो—हेमचंद्र ८-४-२४३)।

दूहा ३९० मथ्थइ—सं० मस्तक; प्रा० मथ्थअ; हिं० माथे = ऊपर। राजस्थानी में 'माथै' अधिकरण-विभक्ति-चिह्न की तरह 'पर या ऊपर' के अर्थ में प्रयुक्त होता है।

लबूकी—(दे०) लहलहाना, हरी भरी हो जाना।

बूरि—सं० बूर; प्रा० बूर = एक घास विशेष जो राजस्थान में बहुत होती है।

दूहा ३९१ जाळ—दे०—राजस्थान का वृक्ष विशेष।

अग्गाळि—सं० अकाल; प्रा० अगाल।

दूहा ३९३ झीलण—प्रा० झिल्ल; राज० झूलना = स्नान करना। 'झिल्लइ' का प्रयोग देखो—कुमारपाल-चरित में।

दूहा ३९४ सोळ सिंगार—साहित्य में प्रसिद्ध सोलह प्रकार के श्रृंगार।

मुळक्कयउ—अप० मुर = खिलना; स्वार्थ में क प्रत्यय। नेत्रों द्वारा हँसी प्रकट करना, मुसकराना। उदाहरण—

आगै थैं हरि मुलकिया, आवत देख्या दास। (कबीर)

जळहर—सं० जलधर; प्रा० जलहर = सरोवर। उदाहरण—

जलहर भर्‌यौ ताहि नहिं भावै,

कै मरि जाय कै उहै पियावै। (कबीर)

दूहा ३९६ नवसर हार—सं० नव + सृक् = नौलड़ा।

दूहा ३९७ सूड़ा—सं० शुक; प्रा० सुअ + ड़ो प्रत्यय। अन्य रूप—सूओ, सूवड़ो, सुअड़ो, सूटो, सूवटो।

पड़गन—सं० प्रतिग्रहण; प्रा० पड़िग्गहण=प्रतिगृहीत कार्य का संपादन करना, वचनबद्ध कार्य करना।

वाळि—सं० वल्; प्रा० वल। प्रेरणार्थक। उदाहरण—

वळी सरद अगलोक वासिए। (वेलि २०९)

दूहा ३९८ वार—सं० वार; प्रा० वार = अवसर, वेला।

दूहा ३९९ परिठव्यउ—सं० परि + स्थापय्; प्रा० परिट्ठव। सामान्य भूत, एकवचन उदाहरण—

परठित ऊपरि आतपत्र। (वेलि १५४)

मोजाँ—देखो दूहा ३७५ में मोजड़ी पर टिप्पणी।

दूहा ४०० चंदेरी—सं० चेदि, एक प्राचीन नगर जो वर्त्तमान ग्वालियर राज्य के नळवाड़ा प्रांत में है। आजकल की बस्ती से ४-५ कोस की दूरी पर पुरानी राजधानी के भग्नावशेष मिलते हैं। पहले यह नगर भारत में प्रख्यात था और समृद्ध दशा में था। रामायण, महाभारत और बौद्ध ग्रंथों में इसका उल्लेख मिलता है। महाभारत-काल में चंदेरी का प्रसिद्ध राजा शिशुपाल था। प्राचीन समय में इसके आसपास का प्रदेश चेदि, कलचुरि और हैहय-वंश के अधिकार में था और चेदि देश के नाम से प्रख्यात था। चंदेल क्षत्रियों के राजा यशोवर्मा ने कलचुरियों के हाथ से कालिंजर का प्रसिद्ध किला छीनकर इस प्रदेश पर सं० ९८२ से सं० १०१२ तक राज्य किया। अल-बरूनी ने चंदेरी का उल्लेख किया है। ई० सन् १२५१ में गयासुद्दीन बलबन ने चंदेरी पर अधिकार किया। सन् १४३८ में यह नगर मालवा के बादशाह महमूद खिजली के हाथ में चला गया। सन् १५२० में चित्तौर के महाराणा साँगा ने इसे जीतकर मेदिनीराय को सौंप दिया। उससे बाबर ने जीता। सन् १५८६ के बाद यह नगर बुंदेलों के अधिकार में रहा। अंत में सन् १८११ में ग्वालियर राज्य में सम्मिलित हुआ।

बूँदी—राजस्थान का प्रसिद्ध राज्य। बूँदी में पहले मीणों का राज्य था। सं० १३९८ के आसपास हाड़ा देवींसिंह ने मीणों से बूँदी को छीनकर उसे अपनी राजधानी बनाया। उक्त संवत् से बहुत पूर्व बूँदी का आबाद होना संभव है परंतु इसके बसने का निश्चित संवत् ज्ञात नहीं हुआ (ओझा)।

पुहत्तउ—सं० प्र+भू; प्रा० पहुच। उ का व्यत्यय। सामान्य भूत, पुँल्लिंग। आइ पुहचौ कीर—मिलाओ—

पांणी माँहिला माँछली, सकै तो पाकड़ि तीर।
कडी कदू की काल की, आइ पहुंता कीर॥
(कबीर ७४-३२)

दूहा ४०४ वीहतउ—स० भी; प्रा० बीह। वर्त्तमान कृदंत, पुँल्लिंग।

अपूठा—सं० आ+पृष्ठ; प्रा० आपुट्ठ, आपिट्ठ; राज० अपूठा = वापिस; पीछा, पीठ की ओर।

दूहा ४०६ साई—देखो—दूहा ३७७।

दूहा ४०७ पूजउ—सं० पूर्यते; प्रा० पूजइ = पूरी हो, सफल हो।

दूहा ४०८ थकी—अपादान का प्रत्यय; प्रा० थक्क।

दूहा ४१० चटकड़ा—अनु० शब्द = पशु को छड़ी से मारने अथवा ताड़ने का चत् चट् शब्द।

गय—सं० गति; प्रा० गय = गति, चाल।

लंबावइ—सं० लंब (प्रेरणार्थक) = लंबा करना।

दूहा ४११ नीमांणी—सं० निम्न; प्रा० णिण्ण = नीचा होकर रहना, लाक्षणिक अर्थ में चुप रहना।

दूहा ४१२ पाखर—सं० प्रक्खर; प्रा० पक्खर = घोड़े का कवच, यहाँ पर साधारण अर्थ में कवच के लिये उपयुक्त है।

दूहा ४१३ पति—सं० प्रत्यय या प्रतिष्ठा; हिं० पत, पति = मर्यादा, प्रतिष्ठा, इज्जत, लज्जा। उदाहरण—

अब पति राखि लेहु भगवान। (सूर)

दूहा ४१४ बाँवळि—सं० बब्बूर; प्रा० बब्बूल; हिं० बबूल; राज० बांबळ = काँटेदार वृक्ष विशेष।

बाढत—राज० 'बाढणो' = काटना, छेदन करना।

दूहा ४१५ साँवळि—सं० श्यामला; प्रा० साँवळी = श्याम रंग की बदली।

दूहा ४१६ सींगण—सं० शृंग; प्रा० सिंग; हिं० सींगी = सींग का बना हुआ वाद्य विशेष।

काठी—सं० कष्ट, कृष्ट; प्रा० कट्ठ = खूब मजबूती से। राजस्थानी का प्रचलित बोलचाल का शब्द है।

साहँत—सं० साध्; प्रा० साह; हिं० साधना = पकड़ना।

कोडी—दे० कुड्ड, कोड्ड = हर्ष, प्रसन्नता। मिलाओ—

कुंजरु अन्नहँ तरु अरहँ कुड्डेण घल्लइ हत्थु।
मणु पुणु एकहिं सल्लइहिं जइ पुच्छइ परमत्थु॥
(हेमचंद्र ८-४-४२२)

कासी—अरबी खास = प्रधान; राज० कासा, खासा = अधिक, विशेष। बोलचाल की राजस्थानी भाषा में 'ख' का 'क' उच्चारण प्रायः होता है। वि०—अंतिम चरण का अर्थ अस्पष्ट है।

दूहा ४१७ छेतरियाह—दे० राज०, यह शब्द गुजराती में भी प्रयुक्त होता है; 'छेतरवुं' = छलना, कपट करना।

लाड—सं० लालय्; हिं लाड़।

लडाइ—राज० लडाणो, लडावणो = लाड़ करना।

दूहा ४१८ वतक—राज० = बत्तख की गर्दन के आकार की सुराही, जिसमें शराब रखी जाती है।

दूहा ४२१ विसरे—विसरणो का परोक्ष विधि काल, एकवचन।

दूहा ४२२ परमंडळे—दूसरे के मंडल में अर्थात् दूसरे के अधीन। दूसरे का अभिप्राय मारवणी या मारवणी के प्रेम से है।

हारिस्यइ—हारेंगे अर्थात् प्रेमशून्य होंगे।

मिळेवउ—मिळणो + एवो (भाववाचक संज्ञा बनाने का प्रत्यय) = मिलाप। मिलाओ—करेवो, देवो, जाएवो। इस अर्थ में बो-वो प्रत्यय भी आते हैं।

त्याँह—उनका।

दूहा ४२३ खड़ंति—खड़नो का वर्त्तमान काल। यह इकारांत रूप विशेषतः स्त्रीलिंग में आता है। विलपंत और खड़ंत पाठ लिए जाते तो ठीक होता। इसका अर्थ 'चलना' होता है। इसका प्रेरणार्थक खेड़नो होता है जिसका अर्थ 'चलाना, हाँकना' आदि होता है। मिलाओ—

सुग्रीवसेन नै मेघपुहप समवेग बळाहक इसै वहंति ।
खँति लागौ त्रिभुवनपति खेड़े धर गिरिपुर साम्हा धावंति ॥ ६८ ॥
आयौ अस खेड़ि अरि-सेन अंतरै प्रथिमी गति आकास-पथ ।
त्रिभुवन-नाथ-तणौ वेळा तिणि रव संभळी कि दीठ रथ ॥ १११ ॥
(कृष्ण-रुक्मिणीरी वेलि)

दूहा ४२४ ऊमाहियउ—सं० उन्मद्; प्रा० उम्माय; या० सं० उन्मथ्; प्रा० उम्माह। उमहणो का प्रेरणार्थक। (आनंद द्वारा) उमंगित किया हुआ।

वट्ट—सं० वर्त्म; प्रा० वट्ट।

पुहरि—राजस्थानी में कभी उ जोड़ दिया जाता है, कभी लुप्त हो जाता है और कभी अदल-बदल हो जाता है; जैसे—पुह (पथ) पुहचाइ (पहुचाइ), पुहर (पहर)। अन्य रूप—पहर, पहुर, पहोर, पोहर, प्होर।

आडवळा—आडावळा नामक राजस्थान का प्रसिद्ध पहाड़ जिसे अँगरेजी वर्त्तनी की कृपा से लोग अरवली कहने लगे हैं। अन्य रूप—आडावळ, आडावळा।

घट्ट—घाटी।

दूहा ४२५ तिसाइयउ—सं० तृषायित।

पाइयउ—पीवणो का प्रेरणार्थक; अन्य रूप—पियावणो; हिं० पिलाना।

दूहा ४२६ खंच—खंचणो का पूर्वकालिक, खींचकर। खंच का मतलब तृप्त होकर, पेट भरकर भी होता है। वही अर्थ यहाँ उपयुक्त जान पड़ता है।

त्रासा—त्रास का पुँल्लिंग। आधुनिक रूप=तासो। संभव है यह तृषा शब्द से बना हो क्योंकि तासे का मतलब ज्यादातर प्यास होता है।

ढूकिसि—ढूकणो का सामान्य भविष्य। ढूकणो का अर्थ पास जाना होता है। जानवरों के पानी पीने के लिये पानी के पास जाने को भी ढूकणो कहते हैं। पूरा आना, बराबर बैठना, फिट होना, इन अर्थों में भी यह क्रिया आती है। ढूकड़ा (=ढूके हुए) शब्द पास के अर्थ में ऊपर दूहा नं० १८७ में आया है।

केथि—अप० केत्थु। जेसळमेर एवं पश्चिमी बीकानेर की देहाती बोलियों में केथ, केथिये शब्द प्रयुक्त होते हैं। मिलाओ—कित्थुँ, कित्थेँ (पंजाबी) प्रयोग—

जइ सो घड़दि प्रयावदी केत्थु विलेप्पिणु सिक्खु।
जेत्थुवि तेत्थुवि एत्थु जगि भण को तहे सारिक्खु॥
(हेमचंद्र ८-४-४०५)

दूहा ४२७ विरंगउ—बिना रंग का, नीरस, सूखा।

ढोलणा—ढोलणो का संबोधन। 'अणो' ड़ा की भाँति ऊनवाचक प्रत्यय है।

गमता—मिलाओ, गुज० गमवुँ = अच्छा लगना, भाना।

पाम्या—सं० प्राप्; प्रा० पाम; गुज० पामवुँ; राज० पामणा; हिं० पाना।

दूहा ४२८ नीरूँ—नीरणो का संभाव्य भविष्य, उत्तम पुरुष, एकवचन। नीरणो देशी प्राकृत का शब्द है। इसका अर्थ होता है चारे आदि को पशु के आगे उसके खाने के लिये डालना।

फोग—एक प्रकार का क्षुप पौधा जो राजस्थान में बहुत होता है। इसमें छोटे-छोटे दाने लगते हैं जिन्हें फोगला कहते हैं और जिनका रायता बनाया जाता है। देहात में उनकी बूजी बनाकर रोटी के साथ खाई जाती है।

थोबड़—हिं० तोबड़ा = घोड़े को दाना खिलाने का थैला; लाक्षणिक अर्थ मुँह।

दूहा ४३० कुळिगाँमड़इ—कुगाँव (?) = बुरा देश। अथवा व्यंग से कुलग्राम = बड़ा ग्राम।

कइर—सं० करीर; प्रा० कइर, करीर।

पारणउ—सं० पारणा = व्रत के दूसरे दिन का भोजन; यहाँ पर भोजन।

यूँही—इसी प्रकार।

ठेलि—हिं० ठेलना = आगे चलाना, बिताना।

दूहा ४३२ सासरवाड़ि—ससुराल।

जाळि—कदंब। राजस्थान में भी जाळ नाम का एक बड़ा पेड़ होता है पर वह कदंब से सर्वथा भिन्न है।

दूहा ४३३ लंब-कराड़िआ—(१) कराड़ ऊँट की आवाज को कहते हैं अतः लंबी आवाजवाले। मिलाओ—ठाढी माइ कराड़ै टेरै है कोइ ल्यावो गहि रे। (कबीर-ग्रंथावली, पृष्ठ १३७, पद १५१)। (२) लंबे और बाहर निकले हुए दाँतोंवाले को भी कराळ कहते हैं। (गउडवहो)।

लाखीणा—लाख + ईणा (प्रत्यय) = लाख के, लाख मुद्रा जिनका मूल्य हो, बहुमूल्य; यहाँ स्वादिष्ट।

दूहा ४३४ म—सं० मा; प्रा० म; राज०, हिं० मत। पुरानी राजस्थानी में यह शब्द बहुत प्रयुक्त हुआ है। कबीर में भी जगह-जगह इसके प्रयोग मिलते हैं—

हरि-गुण सुमिर, रे नर प्राणी।
जतन करत पतन है जैहै भावै जाण म जाणी॥

झूर—प्रा० झूर; आज्ञा। झुरणों या झूरणो किसी की याद कर—करके दुखी होने को कहते हैं। क्षीण होने के अर्थ में भी यह क्रिया आती है। देखो—दूहा ३८२। प्रयोग—

झुरै है बाबो नंदजी अरे झुरै जसोदा माय।
सब गोपी व्रज की झुरै बाला राधा रही मुरझाय॥

(मीराँ)

विरोळियउ—प्रा० विरोल = मथना; राज० बिलोवणो; हिं० बिलोना।

मेल्हे—खड़ीबोली का प्रभाव; राज० रूप = मेल्ह्या।

दूहा ४३५ बसाळ—राजस्थानी शब्द।

वच्चालइ—प्रा० विच; राज० बिच, बीच; पं० बिच। वच + आळइ। आळो का अर्थ वाला है, वच्चाळो का अर्थ बीचवाला स्थान। बच्चालइ=बीच-वाले स्थान में।

एवाळ—सं० अजपाल; प्रा० अयवाल। मिलाओ—गुवाळ (= गोपाल)।

दूहा ४३६ घोटड़ा—घोड़ा:, लक्षणा से युवा घोड़े की तरह सुंदर एवं बलवान्।

तइँ—विकारी रूप। संबंध-प्रत्यय लुप्त।

कि—किम् = क्या।

नेहवी—नेह + वी = नेहवाली।

सी—सं० शीत; प्रा० सीअ।

खाहि—खाता है, सहन करता है। क्या तुम्हारी प्रिया इतना स्नेह करनेवाली है कि तू इस भयंकर शीत की पर्वाह बिना किये इस तरह दौड़ा जा रहा है?

दूहा ४३७ छवडउ—प्रा० छवडी (देशी नाममाला ३—२५)।

हुंती—प्रा० हुंतो=से।

कियइ—पूर्वकालिक रूप मिलाओ—दूहा १२।

दूहा ४३८ खील्यौरी—राजस्थानी शब्द।

सुँणे—सुणनो का आज्ञा का रूप ।

म्हाँजी—जा सिंधी में संबंध का प्रत्यय है ।

गोठणी—सं० गोष्ठिनी; प्रा० गोट्ठिणी=सखी, वयस्का ।

सैं—पंजाबी = हम ।

सैण—सं० सज्जन, प्रा० सयण = मित्र, प्रेमी ।

दूहा ४३९—आधोफरइ—इसका अर्थ अर्धमार्ग या अधर होता है। राजस्थानी में यह छज्जे के अर्थ में भी आता है। इस दूहे में इसका अर्थ या तो ढालू जमीन का हो सकता है जो छज्जे की तरह ढालू हो या यह हो सकता है कि जब ढोला आधा मार्ग तय कर चुका था (उस समय आडावळा पहाड़ में) मिलाओ—हिं० अधभर। प्रयोग—

जळ-जाळ श्रवति जळ काजळ ऊजळ पीळा हेक राता पहल ।
आधोफरै मेघ ऊधसता महाराज राजै महल ॥ (वेलि २०३)

अध अधफर ऊपर आकास । चलत दीप देखियत प्रकास ।
चौकी दे मनु अपने भेव । बहुरे देवलोक को देव ॥
(केशव)

एवड़—यह शब्द सं० अजा; प्रा० अय से बना है। मिलाओ—हिं० रेवड़। एवड़ की निगरानी करनेवाले या रखनेवाले को एवाड़ियो या एवाळियो कहते हैं।

असन्न—सं० आसीन या सं० आसन्न ।

भागइ—सं० भंज्; प्रा० भंज=तोड़ता है, खिन्न करता है, शंकाकुल या चल-विचल करता है। आधुनिक राजस्थानी में भाँगणो तोड़ने के और भागणो टूटने के अर्थ में आता है।

दूहा ४४० क्रम—सं० क्रम = चलना ।

पंथ कर—रास्ता पकड़ ।

ढाण—ऊँट की तेज चाल। ढाण घालणो—तेज चलाना। मिलाओ—ऊँटने चढ़ताँ ही ढाण नहीं घालणो (कहावत)।

महल—सं० महिला ।

दूहा ४४१ ऊँमर—ऊमर या ऊमर सूमरा नामक जाति का राज्य सिंध में संवत् ११११ से १४०६ तक रहा। ये किस वंश के थे इसका ठीक पता नहीं चलता। भाट उन्हें सोढा परमारों की ऊमट शाखा में बतलाते हैं। तवारीख तुहफे-तुल कराम आदि मुसलमानी इतिहासों में उन्हें अरब जाति का लिखा

है। अन्य लोग उन्हें भाटी राजपूत बतलाते हैं जिन्हें सिंघ में मुसलमानों का राज्य होने पर कई अन्य जातियों के साथ मुसलमान होना पड़ा। संवत् ११११ के आसपास उन्होंने ठट्ठे से मुसलमानों को निकालकर अपना राज्य कायम किया। सूमरा इस वंश का पहला राजा था। छठे और सोलहवें राजाओं के नाम ऊमर थे जिन्होंने क्रमशः ४० और ३५ वर्ष राज्य किया। यहाँ यह ऊमर व्यक्तिवाचक नहीं किंतु जातिवाचक नाम जान पड़ता है। यह ऊमर स्वतंत्र राजा नहीं किंतु कोई सरदार होगा क्योंकि संवत् १००० के लगभग सूमरे स्वतंत्र नहीं हुए थे। ऊमर मारवणी को चाहता था और उसको अपनी स्त्री बनाना चाहता था। उसने कई बार पिंगळ पर जोर डाला पर पिंगळ राजी नहीं हुआ। यह जाति का परमार तो नहीं हो सकता क्योंकि परमार कभी परमार-कन्या को पत्नी नहीं बना सकता। मुसलमान होना ही अधिक संभव जान पड़ता है। इसकी कथा आगे फिर आती है। (दूहा नं० ५६७ और ६२६ से ६५०)

जातउ—वर्त्तमान-कृदंत = जाता हुआ। अन्य रूप—जावंतो, जावंत। आधुनिक रूप—जातो, जांवतो।

भागउ—खिन्न हुआ। देखो—दूहा ४३६।

दूहा ४४२ ऊमह्यउ=सामान्य भूत, पुँल्लिंग, एकवचन। उमंगित होकर चला है। देखो—दूहा ४२४।

संदावेस—(१) संदावणो = सदेश कहना। संदेश कहूँगा। (२) संदा = के। वेसि=वेश, रूप (ऐसा हो गया है)।

तन खिस्या—(१) शरीर खिस गया अर्थात् यौवनापगम होकर शिथिल हो गया। (२) स्तन शिथिल हो गए अर्थात् यौवन बीत गया।

दूहा ४४३ मोड़ो—राजस्थानी शब्द, विशेषण=देरी से, देर करके।

वेस—सं० वयस् = अवस्था।

होई—सामान्य भूत, स्त्रीलिंग। अन्य रूप—हुई, हूई।

खोरड़ी—सफेद केशोंवाली। खोरा पड़ना सिर की एक बीमारी है।

जाए—जावणो + ए (पूर्वकालिक)।

दूहा ४४४ आव्यउ—भूत-कृदंत, पुँल्लिंग, एकवचन। आया हुआ।

पाछउ—वि० वापिस।

वळइ—सं० वल्। लौटना, चलना, जाना।

करेह—संभाव्य भविष्य, उत्तम पुरुष, बहुवचन = करें।

दूहा ४४५ कासूँ—यह शब्द संभवतः का और शूँ (गुजराती) इन दो एकार्थवाची शब्दों को मिलाकर बनाया गया है।

जो—जोवणो का आज्ञा का रूप। जो प्राकृत की धातु है।

जकाह—जो (स्त्रीलिंग)। जो बात, जो घटना।

जाइ—जा पूर्वकालिक क्रिया है। इ पादपूर्त्यर्थ जोड़ा गया है।

दूहा ४४६ हुंती—होती हुई, होनेवाली, संभव।

दूहा ४४७ चलपत—सं० चलपत्र=पीपल पीपल के पत्ते हवा के न होने पर भी हिलते रहते हैं। अत्यंत चंचल, चलायमान।

साहइ—सं० साध्; प्रा० साह। साधना, सम्हालना। मिलाओ—साहणी=घोड़ों का निगरानीदार।

वीसू—एक चारण। वीसू संभवतया व्यक्तिवाचक नाम न होकर चारणों की किसी जाति विशेष का नाम है, जैसे—वीठू।

सुभराज—महाराज का शुभ हो। चारण भाट ढाढी ढोली आदि याचक जातियाँ अपने जजमान को सुभराज कहकर आशीष देती हैं।

दूहा ४४८ एकइ—एक का विकारी रूप। राजस्थानी में विकारी रूप सप्रत्यय कर्त्ता के लिये प्रयुक्त होता है।

दूहा ४४९ सहिनाँण—सं० संज्ञान; प्रा० सन्नाण। इसी प्रकार अहिनाण (सं० अभिज्ञान)। मिलाओ—

यह मुद्रिका, मातु, मैं आनी।
दीन्ह राम तुम कहँ सहिदानी॥ (मानस-सुंदरकांड)

दूहा ४५२ खमणी—खम दातु+अणी (कर्तृ-प्रत्यय)=खमनेवाली। सं० क्षम्; प्रा० खम।

कच्छ—सं० कक्ष; प्रा० कक्ख, कच्छ।

गरवी—सं० गुर्वी; हिं० गरुई।

दूहा ४५३ लंक—लंक का अर्थ भी कटि ही होता है। दो शब्दों के प्रयोग का अभिप्राय सौंदर्य पर जोर देना है। अथवा लंक का अर्थ बाँकी या लचकीली लिया जाय।

डसण—सं० दशन। सं० द के स्थान पर प्राकृत आदि में कई शब्दों में ड हो जाता है; जैसे—डंभ, डंड, डंस, डज्झ, डब्भ, डोला इत्यादि।

दूहा ४५५ पुणिंद—सं० फणींद्र।

मयंद—सं० मृगेंद्र।

वि०—इस दूहे में रूपकातिशयोक्ति अलंकार है।

दूहा ४५६ सियाइ—सुहाय (?)। अन्य संभव अर्थ—(१) गौरवर्णा (सं० सिता, प्रा० सिया) (२) श्री वाली (अप० सिअ=श्री)। इसका अर्थ अस्पष्ट है।

संपजइ—सं० संपद्यते; प्रा० संपज्जइ।

जिम—मिलाओ—जिन = मत। या जि + म।

ठल्लउ—अप० ठलिय, ठल्ल = खाली, खाली हाथ।

दूहा ४५७ उपन्नियाँ—भूत-कृदंत, स्त्रीलिंग, बहुवचन। सं० उत्पन्न; प्रा० उप्पण्ण।

कूँझ इ०—देखो—दूहा ५४।

बचाँ—देखो—दूहा २०२, २०४-२०५।

नेत—सं० नेत्र; प्रा० णेत्त। मिलाओ—

तारुणी सऊजल सेतदंत। बाणी सुवाणि नइ लाजवंत।
सोहली भूमि वाँका सुभट्ट। झूझार दियइ करिमाळ झट्ट॥
(राउ जइतसीरउ छंद, १००)।

दूहा ४५८ चाही—अ० चाह। भूतकृदंत, स्त्रीलिंग=देखी हुई अर्थात् देखी जाने पर।

चक्ख—सं० चक्षु; प्रा० चक्ख; राज० चाख। राजस्थानी में चाख लगना नजर लगने को कहते हैं।

एकण—एक ही, अकेला, एकमात्र।

साटइ—अप० सट्ट = बदले। मिलाओ—सट्टा।

एराकी—इराक देश के घोड़े जो बहुत प्रसिद्ध होते हैं।

दूहा ४५९ करल—मुष्टि। लक्षणा से मुष्टिग्राह्य। मिलाओ—

स्यामा कटि कटिमेखला समरपित
कृसा अंग मापित करल (वेलि ६६)

बिन्नीह—अप० बप्पीहा। देखो—दूहा २६।

विलूधउ—सं० विलुब्ध।

सीह—सं० सिंह; प्रा० सीह; राज० सीँ।

दूहा ४६० डींभू—राजस्थानी शब्द।

सर—सं० स्वर; प्रा० सर।

हंझ—सं० हंस।

निवाँणि—सं० निम्न; प्रा० णिम्म, निम्व = नीचा। आण प्रत्यय। निचाई = नीचा स्थान = जलाशय।

दूहा ४६३ झँखइ—झँखणो, झाँखो पड़नो। झलक दिखाई देना, झलक पड़ना। मिलाओ—झाँकी।

सोरठा ४६४ वन्न—सं० वर्ण; प्रा० वण्ण। अन्य रूप व्रन्न।

पहिंरउ—नियमित रूप पहिरयउ या पहिरियउ होगा।

रूपकउ—सं० रूप्यक। चाँदी का गहना।

दूहा ४६५ भमुहाँ—सं० भ्रू; प्रा० भमुह-हा।

सोहली—ललाट पर पहनने का एक आभूषण।

परिठिउ—सं० परि+स्थापय्; प्रा० परिट्ठव। परठनो राजस्थानी में एक ऐसी क्रिया है जो कई अर्थों में प्रयुक्त होती है। इसका साधारण अर्थ कोई कार्य करना या संपन्न करना है फिर चाहे यह धारण करने का हो या पहनने का या स्थापित करने का।

मिलाओ—

(१) प्रोळा-प्रोळी तोरण **परठीजै** (स्थापित किए जाते हैं)।

(२) **परठि** द्रविण सोसण सर पंच (धारण करके)।

(३) पच्छिमि दिसि पूठ, पूरब मुख **परठित** (स्थापित, किया हुआ)।

(कृष्ण-रुक्मिणीरी वेलि)

(४) नारिकेळ-फळ **परठि** दुज (पृथीराज-रासो—पद्मावती समय)।

क—मिलाओ—हिंदी कि। जाँणि क=मानो कि।

दूहा ४६६ निलाट—सं० ललाट; प्रा० णिलाड।

अइहइ—ऐहै—ऐसे।

घाट—सं० घट् = बनावट, गठन।

वि०—लाटानुप्रास अलंकार।

दूहा ४६८ जाइ—सं० जन्; प्रा० जा = उत्पन्न होना। आजकल केवल भूतकाल में यह क्रिया आती है। जायोजाई = जनमा+जनमी (इनका अर्थ जना-जनी भी होता है)।

वणराइ—सं० वनराजि। मिलाओ—

सात समँद की मसि करौं लेखणि सब **वणराइ**। (कबीर)

दूहा ४६९ लखण बतीसे—मिलाओ—

लखण बत्रीस, बाल-लीला-मै राजकुँभरि द्रूलड़ी रमंति।
(वेलि १३)

सै—से, समान।

दूहा ४७० मख्ख—(१) सं० माक्षिक; प्रा० मक्खिअ। मधुमक्षियों का मधु। (२) प्रा० मंख; राज० मक्खण, माखण; हिं० मक्खन।

दूहा ४७१ अच्छियउ—अच्छ का अच्छियो बना लिया गया है।

दूहा ४७३ करि—इ कर्त्ता का प्रत्यय है।

झीणी—सं० क्षीण; प्रा० झीण = पतली। देशी नाममाला में झीणी का अर्थ शरीर भी दिया हुआ है।

दूहा ४७५ चूड़इ—चूड़ो = चूड़ियों का समूह। आजकल चूड़े का अर्थ दूसरा होता है। राजस्थानी स्त्रियाँ हाथीदाँत की चूड़ियाँ दो भागों में करके पहनती हैं। पहला भाग कुहनी के नीचे तक रहता है और दूसरा कुहनी के ऊपर से लेकर कंधे तक। इस दूसरे भाग की चूड़ियों को आजकल चूड़ो कहा जाता है। पहले भाग को मुठिया कहते हैं।

त्रीयाँ—त्री + याँ = तीनों।

दूहा ४७६ कड़ि—सं० कली; राज० कळी।

डहक्क—डहडहाती हुई, प्रफुल्लित।

दूहा ४७७ हेमाळे—सं० हिमालय। इ अधिकरण का प्रत्यय है।

प्रथम पंक्ति का अन्यार्थ—हे ढोला, उस प्रेयसी से रंग करो न, उसकी पँसुलियाँ पतली हैं (वह पतले शरीर की है)।

दूहा ४७८ अण—नियमित रूप इण। इकार के लोप की प्रवृत्ति।

उगहंताँह—नियमित रूप उगंताँह। ग और अनुस्वार के बीच में एक ह जोड़ दिया गया है।

दूहा ४७९ भीसुर—सं० भास्वर।

ससदळ—(१) शश है दलमें जिसके = चंद्रमा। (२) शशधर का अपभ्रंश—ससधर, ससहर, ससहळ।

दूहा ४८० कुळी—सं० कली।

सीस फूल—सीसफूल सिर का एक गहना भी होता है।

टँकावळ—टँका + आवळ (= वाला) = टकों वाला। बहुत टकों का। 'लाख टकों का हार' कहानियों में प्रसिद्ध है। बहुमूल्य। टँका रुपए के बराबर एक सिक्का होता था। (सुपाहनाहचरिअ पृ० ५१३)।

दूहा ४८१ बहरखा—बोरखा नामक हाथ का एक गहना।

चासू इ०—इस चरण का अर्थ अस्पष्ट है।

दूहा ४८२ रूँआळियाँ—रूँअ या रूअ = सं० रूप, प्रा० रूअ। आळो वाला का अर्थ देनेवाला प्रत्यय है, आळियाँ उसका स्त्रीलिंग बहुवचन का रूप है।

बोलही—प्रा० बोल्लइ। वर्त्तमान का इ प्रत्यय आगे चलकर हि एवं ही में बदल गया। ऐसे रूप केवल कविता में प्रयुक्त होते हैं। बोलचाल में तो अंतिम अइ आगे चलकर ऐ में बदल गया है। हकारवाले रूप सूर, तुलसी आदि हिंदी कवियों में बहुत पाये जाते हैं। जैसे—

कटकटहिं मर्कट विकट भट बहु कोटि कोटिन्ह धावहीं।

दूहा ४८३ नइ—सं० नद; प्रा० णड; हिं० नाला; राज० नाळा, नाडो।

सरि—(१) सं० शर; प्रा० सर। (२) सं० सरित्; प्रा० सरि।

पध्धरियाँह—प्रा० पद्धर (देशी नाममाला ६—१०); राज० पाधरो; गुज० पाधरूँ। स्त्रीलिंग बहुवचन।

दूहा ४८४ बोलणियाँह—बोलनेवाले या बोलनेवालियाँ। इया (= वाला) प्रत्यय।

दूहा ४८५ सजळ—सुंदर, स्वच्छ, निर्मल, नीरोग, प्रकाशमान। देखो—दूहा ५०६।

मीठा-बोला—मीठा बोलनेवाले, मीठे हैं बोल जिनके।

लोइ—सं० लोक; प्रा० लोअ, लोय।

दूहा ४८६ छंडइ—इ पूर्वकालिक का प्रत्यय है।

गहिलउ—सं० गृहीत; प्रा० गहिल्ल; राज० गैलो; गुज० घेलुँ।

धापंत—वर्त्तमान काल। धापणो क्रिया संभवतः सं० ध्रै (तृप्त होना) के प्रेरणार्थक ध्राप्य से बनी है। सं० ध्रात (तृप्त हुआ) प्रा० धाअ से राजस्थानी में धायो रूप भूतकृदंत और सामान्यभूत में बनता है।

दूहा ४८८ उदियइ—उदित होकर।

दूहा ४८९ पसाउ—सं० प्रसाद; प्रा० पसाव। देखो—दूहा ७४ में लाख पसाउ। अनुग्रह या प्रसन्न होकर दिया हुआ दान।

दूहा ४९० थकइ—होते हुए, रहते हुए।

दूहा ४९१ डर डंबरे—मिलाओ—हिं० अंबरडंबर।

नीले—संध्या की कालिमा से नीलवर्ण हो गए। नीलणो नामधातु है। देखो दूहा २५१। अन्य रूप—नीलाणो। मिलाओ—

नीलाणी नीळंबर न्याइ। (वेलि १६८)

जाया—सं० जात; प्रा० जाअ; राज० जायो। संबोधन।

गुणेहि—देखो—दूहा २८।

दूहा ४९२ राँगा—मिलाओ—हिं० रान।

बिहुँ दीपाँ—आकाश और पृथ्वी।

थी—अपादान का प्रत्यय। गुजराती में इसका प्रयोग होता है।

दूहा ४९३ विण-सारया—विण = बिना। सारया=सिद्ध किये हुए (सं० सार्‌य, प्रा० सार=सिद्ध करना)। पाठांतर—(१) वेणसड्या—विनष्ट हुए (२) विणठा सवि = सब विनष्ट हो गए।

दूहा ४९४ दसिए—दसों, दसों ही।

एकणि—एक ही (साथ)।

पूरि—भरकर, एक साथ।

विहंगड्उ—प्रा० विहग = आकाश (पाइअ-सद्द-महण्णवो)

दूहा ४९५ नि०—इस दूहे का अर्थ अस्पष्ट है। प्रथम पंक्ति का, अनुवाद में दिए गए अर्थ के अतिरिक्त, नीचे लिखा अर्थ भी हो सकता है—चाहे वह आकाश में हो और चाहे समुद्र में हो, चाहे तीर की तरह दौड़ रही हो और चाहे पंडुख पक्षी की तरह (तो भी मैं उसे जा पहुँचूँगा)। पंडुरियाँह का अर्थ पंडुख भी ठीक नहीं जान पड़ता।

दूहा ४९६ काळिया—काळियो काळो का अनादर-सूचक है।

दूहा ४९७ चलणे—सं० चरण; प्रा० चलण। ए करणकारक का प्रत्यय है।

थाकउ—प्रा० थक्क। भूत-कृदंत।

ऊसनउ—सं० अवसन्न या उत्सन्न; प्रा० उस्सण्ण = उत्सुक।

दूहा ४९८ वीख—राजस्थानी शब्द। देखो—दूहा ३६६-३६७।

झंभ—शुद्ध पाठ संभवतः झंझ है। थंभ पाठांतर भी मिलता है। अथवा प्रा० झंप् से यह शब्द बना है = शीघ्रता से।

दूहा ५०० सकती—फा० सख्त।

वीटुळी—सं० वेष्ट्; प्रा० विंट; गुज० वीटँवुं। घेर करके बाँधी हुई = पगड़ी। मिलाओ—राजस्थानी वींटो = बिस्तर।

सरढी—राजस्थानी शब्द = ऊँटनी।

दूहा ५०१ अगलूणी—आगलो + ऊणी (= वाली)। आगेवाली, पूर्व की। मिलाओ—आथूणी, उग्गूणी, आजूणी।

सुहिणउ—सं० स्वप्न; प्रा० सुविण, सुहिण।

दूहा ५०२ डरपत—डरपणो क्रिया का वर्त्तमान-कृदंत ।

मतिहि—कहीं न । देखो—दूहा २८, २६ । नीचे मति भी इसी अर्थ में आया है ।

दूहा ५०३ छोडही—छोड़ती है । पलक छोड़ना = मिले हुए पलकों को अलग करना ।

दूहा ५०४ लबथबती—लबथबणो का वर्त्तमान कृदंत, स्त्रीलिंग । यह अनुकरणात्मक क्रिया है । पाठांतर—लुब्रधवती = पति-प्रेम में लुब्धा ।

सोरठा ५०५ वाटली—(१) सं० वर्त्तुली; प्रा० बट्टुली; राज० वाटळी, वाटकी, वाटी = छोटी कटोरी । अर्थांतर—अंगूठी ।

जाणूँ—मानो ।

ढोलूँ—ढोलो का विकारी रूप (अनियमित) या ढोलो का नपुंसक लिंग में प्रयोग । देखो—दूहा ६ ।

दूहा ५०६ नीगुल—बिना गुल का ।

छाजइ—दीवट पर का छज्जा जो प्रायः सर्प के आकार का बना होता है ।

पुणग—सं० पन्नग । उ जोड़ने की प्रवृत्ति पुहर; पुह आदि शब्दों में भी पाई जाती है ।

दूहा ५०८ चमंकउ—हिं० चमक । अनुस्वार का आगम । मिलाओ—नींद्र, बंक ।

समईयइ—समय-समइ समई + अइ-यइ ।

दूहा ५०९ हुंता—अन्य रूप हुता, हूँता । मिलाओ—गुजराती—इता (= थे) ।

दूहा ५१० याई—आई = आकर ।

फर—फिर । इकार के लोप की प्रवृत्ति के लिये मिलाओ—गत, सर तरणो इ० ।

दूहा ५११ बेल—बे + एल । मिलाओ—अकेल, एकल, एकलो ।

थे—आधुनिक बहुवचन । यहाँ तैं के लिए प्रयुक्त हुआ है ।

मने—मुझे । ने कर्म का प्रत्यय है ।

वीजी इ०—अर्थ अस्पष्ट है । भीजी को त्रीजी भी पढ़ा जा सकता है ।

दूहा ५१२ हूँ इ०—सं० अहं त्वया दाहिता ।

तोनइ—तुमको । तो + नइ (कर्म का प्रत्यय) ।

दूहा ५१३ पामेसि—पाऊँगी। संभाव्य भविष्य के अर्थ में सामान्य भविष्य।

कंठा—कंठ में कंठ से। एकवचन के लिए बहुवचन।

ग्रहण—धारण।

दूहा ५१४ छेक—छेकणो (सं० छिद्) क्रिया से संज्ञा। मिलाओ—

सतगुरु साचा सूरमा सब्द जो मारया एक।
लागत ही भव मिट गया पड़्या कलेजे **छेक**॥ (कबी०)

दूहा ५१५ सहिए—सखियों ने। ए कर्त्ताकारक का प्रत्यय।

सुहिणइ—सुहिणउ का विकारी रूप। कर्म का प्रत्यय लुप्त।

तोइ—अन्यार्थ—तो भी।

दूहा ५१६ फरूकइ—सं० स्फुर्; प्रा० फुर; राज० फरक, फरक्क, फड़क्क, फरुक।

अहराँह—सं० अधर। आ स्वार्थ में प्रत्यय। ह पादपूर्त्यर्थ।

दूहा ५१८ किव—अप० किंव। कैसे।

केण—सं० केन = केन कारणेन।

वीर—भाई। अन्य रूप वीरो। मिलाओ—

वे हलधर के **वीर**। (बिहारी)

वड—बड़ा।

दूहा ५१६ आगम—आगे से ही, पहले ही।

दूहा ५२० निमाँणी—नीची, बेचारी। देखो—दूहा ४११।

लवइ—सं० लप्; प्रा० लव।

दूहा ५२१ काळी कंठळि—गोलाकार काली घटाएँ। मिलाओ—

काळी करि **काँठळि** ऊजळ कोरण धारे श्रावण धरहरिया
गळि चालिया दसो दिसि जळग्रभ थंभि न, विरहिण नयण थिया।
(वेलि १६२)

नीची—क्षितिज के पास।

निहळ—यह दूहा कुछ पाठांतर के साथ पुनरावृत्त हुआ है। देखो—दूहा १६१।

दूहा ५२२ सांझी—साँझ की।

सामहलि—साँमह + ली (= वाली)। मिलाओ—आगली, लारली, पाछली, नीचली, ऊँचली, ऊपरली, साँमली।

कँबाइयउ—कंब से नामधातु कंबावणो = छड़ी से मारना। देखो—दूहा १३५, ४१०, ४१४, ४७३।

दूहा ५२३ ऊँडा—अप० उंड (देशी नाममाला १–८५), बहुवचन।

कोहरइ—सं० कुहर=कुँआ।

दूहा ५२४ ऊसारंता—सं० उत्सारय्; प्रा० उस्सार; राज० ऊसारणो का वर्त्तमान-कृदंत; बहुवचन।

दूहा ५२५ तात—सं० तप्त; प्रा० तात (संज्ञा)=कष्ट।

दीहे-दीह—दिन दिन, दिन भर।

दूहा ५२८ कज्जा—स्वार्थ में आ प्रत्यय।

दूहा ५२९ जाँहकी—बीच में ह व्यर्थ जोड़ दिया गया है।

हूँती—थी। अन्य रूप—हुती; गुज० हती।

दूहा ५३० संपहुता—सं० उपसर्ग है।

आजूणइँ—आजूणो + इँ (विकारी-प्रत्यय)। आजूणो=आज + ऊणो (का)=आज का।

दूहा ५३१ उळाथियउ—मिलाओ—हिंदी उलटना।

अमी—सं० अमृत; प्रा० अमिअ।

पयट्ठ—सं० प्रविष्ट; प्रा० पइट्ठ।

दूहा ५३२ मन इ०—मेरे मन में चाहते हुए, जब मैं मन में चाह रही थी।

वाड़ी—मिलाओ—बँगला वाड़ी = घर।

वधाँमणा—सं० वर्द्धापन; प्रा० वड्ढावण, वद्धावण; राज० वधामणा, बधावणा।

दूहा ५३३ सु, सू—सो का संक्षिप्त रूप।

दूहा ५३४ ठरंत—ठरणो क्रिया का वर्त्तमान काल=ठंढे होते हैं।

अणपीयइ—अनपिये=न पिए हुए, बिना पिए ही।

पाणग्ग—सं० पाहक; प्रा० पाणग=पीने की कोई वस्तु, विशेषतः मदिरा।

छाक—छकने का भाव, तृप्ति। विशेषतः किसी नशीली वस्तु द्वारा होने-वाली तृप्ति। मस्ती, नशा, मद। छकणो क्रिया संभवतः सं० चक् से बनी है। मिलाओ—खरी विषम छवि-छाक। (बिहारी)

दूहा ५३५ ऊगट—सं० उद्वर्त्त्; प्रा० उव्वट।

माँजिणउ—सं० मज्जन; प्रा० मज्जण, मंजण।

खिजमति—फा० खिदमत।

दूहा ५३६ गयगयणी—गयगमणी पाठ है।

गंति—सं० गति; राज० गत्ति, गति।

दूहा ५३७ घम्मघमंतइ—(१) घम्म घम्म शब्द करता हुआ; अनुकरणात्मक। (२) घूमना से घूमता-घामता; खूब घेरदार। मिलाओ—घूम घुमालो।

घाघरइ—अप० घग्घर। इ—विकारी रूप का चिह्न। करण कारक। घाघरे से, घाघरे के सहित।

दूहा ५३८ उलट्टियउ—उलटणो क्रिया उमड़ने के अर्थ में भी आती है।

दूहा ५४० पाल—प्रा० पाल; राज० पायल = पैर का एक गहना, पाजेब।

रायजादी—राय = सं० राज; प्रा० राअ, राय + जादी (फारसी शब्द)= पुत्री। मिलाओ—शाहजादी।

छुटे—छुटे हुए, खुले हुए।

पटे—हिं० पट्टे; केशपाश।

छंछाळ—अप० छिंछोळ = छोटी धारा। (देशी नाममाला ३-२७)

दूहा ५४२ वउळावी—वउळावणो क्रिया का पूर्वकालिक। इसका अर्थ भेजना व बिताना होता है। संभवतः बोलना (= बुलाना) का प्रेरणार्थक है।

दूहा ५४३ एकठि—सं० एकस्थ; प्रा० एगट्ठ; हिं० इकट्ठी, एकठी।

दूहा ५४४ चित्त—(१) चित्त-पूर्वक, मनोयोग के साथ। (२) हृदय से। (३) मानसिक।

दूहा ५४६ झबकइ—झब झब करना, ज्योति की लपटें उठना। अनुकरणात्मक शब्द।

वेहा—सं० विध्; प्रा० वेह = बींधा।

दूहा ५४७ संकाणी— संकणो का सामान्य भूत, स्त्रीलिंग। मिलाओ—लजाणी (लाजणो), भराणी (भरणो), बिकानी (बिकणो), उडाणी (उडणो), समाणी (समावणो)।

खुणसउ—हिं० खुनस।

दूहा ५४८ डेडरिया—सं० दर्दुर; प्रा० डड्डुर + इयो—राजस्थानी अनादर वाचक प्रत्यय।

सरजित्त—संजीवित। मिलाओ—सरजीवन = संजीवन।

दूहा ५४९ पहिली—पहले, क्रिया-विशेषण।

दयामणउ—दया + आमणो; हिं० दयावना = दया के योग्य। अप० दयावण (देशी नाममाला ५-३५, भविस्सयत्तकहा)। मिलाओ—देवी देव दानव दयावने है जोरैं हाथ। (तुलसी)

आथमणउ—प्रा० अत्थमण; राज० आथूँणी = पश्चिम को, अस्त होने की दिशा को

विमणउ—सं० विमना; प्रा० विमण।

दूहा ५५० सोरंभियउ—सं० सोरभ; प्रा० सौरंभ से भूत-कृदंत=सुरभित।

दूहा ५५१ कंचूवा—सं० कंचुक; प्रा० कंचुअ। स्त्रियों के पहनने का काँचळी नामक वस्त्र।

दूहा ५५२ लूँध—सं० लुब्ध; प्रा० लुद्ध। मिलाओ—मूँध = मुग्धा।

दूहा ५५३ गड्डिया—मिलाओ—हिंदी गड़ना।

दोहग—सं० दौर्भाग्य; प्रा० दोहग्ग।

खिल्लोखिल्ल—खिलणो या खेलणो से = प्रफुल्ल।

दूहा ५५४ पंचाइण—सं० पंचानन।

पालख्यउ—अर्थ अस्पष्ट है।

मइँगळ—सं० मदकल; प्रा० मअगळ।

दूहा ५५५ कतूहळ—सं० कुतूहल। उकार का लोप।

दूहा ५५६ संदियाँ—संदी का बहुवचन।

वाव—सं० वायु; प्रा० वाउ, वाय।

ताढउ—(१) हिं० ठाढ़उ (?) = खड़ा हुआ। (२) सं० स्तब्ध, प्रा० ठड्ढ, राज० ठाढो = तेज। (३) ठंढे के अर्थ में भी आता है।

ताव—सं० ताप।

दूहा ५५८ भए—व्रजभाषा का प्रभाव राज० रूप—भया।

दूहा ५५९ आजे—ए स्वार्थ में प्रत्यय। मिलाओ—काले = कल। यह शब्द हीं अव्यय का अर्थ भी देता है तब आगे का अर्थ होगा आज ही।

रळी—आनंद। मिलाओ।

विविध कियौ व्याहविधि वसुदेव मन उपजी **रली**। (सूर)

आक-कली न **रली** करै अली, अली, जिय जान। (बिहारी)

गोठ—सं० गोष्ठ; प्रा० गोट्ठ।

दूहा ५६० पाल्हव्या, पाल्हविया—पाल्हवाणो धातु का सामान्यभूत, पुँलिंग, एकवचन। राजस्थानी में सामान्य भूत में इया और या प्रत्यय लगते हैं। जोधपुरी में इया प्रयुक्त होता है और बीकानेरी आदि में या।

दूहा ५६१ मेल्हणी—व्याकरण की दृष्टि से मेल्हणी या मेल्ही होना चाहिए।

दूहा ५६२ वेळ— सं० वेला। अंत्य आ का लोप। मिलाओ—वाळ=वाला; मूँध = मुग्धा।

लुब्धा इ०— अन्यार्थ —ढोला और मारवाणी काम की कुतूहलपूर्ण क्रीड़ावों में लुब्ध हुए। इस अवस्था में लुब्धा लुब्धणो क्रिया का सामान्य भूत का रूप होगा।

दूहा ५६३ भरखमा—भर = भार। खमा—खमने अर्थात् सहनेवाले (सं० क्षम)।

रच्चणाँ—रचनेवाले, प्रेम-रंग में रँगनेवाले। मिलाओ—मेंहदी का रचना या राचना।

मेळि—मिळनो का प्रेरणार्थक। मेलणो का अर्थ भेजना भी होता है।

चंद्रायणा ५६५ चंद्रायणा—यह छंद राजस्थानी साहित्य में बहुत प्रयुक्त होता है। बोलते समय चौथे चरण के पहले 'परिहाँ' शब्द प्रायः जोड़ दिया जाता है।

वरख—वर्त्तमान काल या पूर्वकालिक रूप।

कु, क—पाद-पूर्त्यर्थ निरर्थक अव्यय।

चंद्रायण ५६६ बाहुड़इ—लौटते हैं, यहाँ जाते हैं।

वि०—दोनों सेज पर बैठे थे इसलिये उनका फिर सेज की ओर जाना कैसे कहा? इसका उत्तर यही है कि लोक-गीतों (Ballads) में प्रायः ऐसा हुआ करता है।

असप्पति—सं० अश्वपति। राजस्थानी में यह शब्द राजा के अर्थ में आता है। मिलाओ—

> **असपतियाँ** उतमंगसूँ ऊँचा छतर उतार।
> राणै दीधा रेणुआँ सँगै जग साधार॥ (बाँकीदास)

आहुड़इ—आहुड़नो, आभड़णो = भिड़ना।

जुवाँने—ए कर्त्ता का चिह्न।

भेळिया—भेळनो = धावा करके तोड़ना, लूट लेना, चीजों को अस्त-व्यस्त कर देना। यह शब्द विशेषतया गढ़ या किले के साथ आता है। मिलाओ—

> (१) काची गार किलेह, साचा माँही सूरमा।
> **भेळ्या** केम **भिळेह**, रावाँ कोप्याँ, राजिया॥
> (२) आ बिड़ली **भिळसी** ज दिन घलसी मो सर धाव।

दूहा ५६७ गूढा—गूढार्थवाले वाक्य, पहेलियाँ। पहेलियाँ पूछना दांपत्य-विनोद का एक मुख्य अंग है। आजकल भी जब जमाई ससुराल जाता है तो सालियाँ एवं अन्य सहेलियाँ उससे पहेलियाँ पूछा करती हैं।

का—काइ=कोई।

दूहा ५६८ लियंति—(१) लेते हैं अर्थात् बिताते हैं (गुणवान्)। (२) लयंत अर्थात् बीतते हैं (गुणवानों के दिन)।

गमंत—सं० गम्=बिताना। मिलाओ—

काव्यशास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमताम्।
व्यसनेन च मूर्खाणां निद्रया कलहेन वा॥

दूहा ५६९ इन दूहों में जो पहेलियाँ दी गई हैं वे जनसाधारण में प्रचलित पहेलियाँ थीं। एकाध पहेली गाथा छंद में भी है। प्रायः ये सब पहेलियाँ माधवानल-कामकंदला चौपई में भी ज्यों की त्यों पाई जाती हैं।

दूहा ५७० सलीण—स + लीन।

तिण—इस कारण से।

दूहा ५७१ संग्रही—सं० संग्रह्=पकड़ना।

नक-फूली—नाक में पहनने का एक गहना।

दूहा ५७२ मुख—नकफूली का।

गुंजाहळ—गुंजाफल। मिलाओ—मुगताहळ, मुताहळ=मुक्ताफल।

अछइ—अन्य रूप छइ (=है)।

तेण—तेन कारणेन।

ढूकउ—अर्थ 'पास गया' है। यहाँ नकफूली पर गया।

दूहा ५७३ जेण—जिसने।

झालिया—धारण किए, (हाथ में) लिए।

केण—केन कारणेन।

दूहा ५७४ नृमळ—सं० निर्मल; राज० त्रिमळ, नृमळ। देखो दूहा ८८।

गाहा ५७५ तरुणी इ०—संस्कृतच्छाया—

तरुण्या पुनरपि गृहीतः परिच्छदाभ्यंतरेण, प्रियेण दृष्टम्।
कारणः कः सज्ञाने दीपकः धूनयति शीशम्॥

दूहा ५७६ जॉण—सं० यावत्; राज० जाम=जब, ज्योंही।

गाहा ५७७ गय—सं० गतः, प्रा० गय।

लिहइ—सं० लिख्।

चुज्जेण—चोज से, प्रेरणा से।

दूहा ५७८ हर-हार—महादेव का हार अर्थात् नाग।

परट्ठव्यउ—देखो दूहा ४६५।

ज्यूँ—अप० जेम्व = जिससे, ताकि।

दूहा ५७९ आदिरस—सं० आदर्श; प्रा० आदरिस। मात्राओं का व्यत्यय।

दूहा ५८० प्राहुणउ—सं० प्राघूर्ण; प्रा० पाहुन; हिं० पाहुना। यह शब्द पति के लिये भी प्रयुक्त होता है, क्योंकि उसकी प्रतीक्षा की जाती है।

दूहा ५८१ चटकउ—चटको = शीघ्रता। शीघ्रता प्रदर्शित करने के लिये अँगूठे और अँगुली को बजाकर चटकारी की जाती है। मिलाओ—चटचट = झटपट।

वैरणि—रात्रि ने शीघ्र बीतकर शत्रुता का कार्य किया, क्योंकि अब प्रियतम बिछुड़ जायगा।

दूहा ५८२ दिवला—सं० दीप; प्रा० दीव। लो ऊनवाचक प्रत्यय है।

ढूळ—सं० दोल्।

दूहा ५८३ मिळियत—कर्मवाच्य, मिला जाता है = मिलते हैं।

पाळी—मिलाओ—हिंदी पैदल। अन्य रूप—उपाळी।

पाखरचौ—सन्नद्ध। ठीक अर्थ स्पष्ट है।

भड़—सं० भट; प्रा०भड।

दूहा ५८४ नहि—मानो। धण क्या धरती नहीं हो रही है? अर्थात् हो रही है। वैदिक भाषा में 'न' शब्द उपमा के अर्थ में आता है।

मिलाओ—नाईं, न्यूँ = ज्यों।

दूहा ५८८ छोलइ—अप०—छोल्ल (हेमचंद्र ४-३९५)।

दूहा ५८९ ठव्वै—सं० स्थापय्; प्रा० ठव्व, ठव। वर्त्तमान काल।

पाखर—सं० प्रखर।

दूहा ५९० ऊतर्‌युँ—उतरणो का अर्थ यहाँ बीतना है।

साख—साक्षी।

मिलाओ—

धण धाई, पिव छाकिया, घोड़ा घास चरंत।
पखवाड़ो पूरो हुयो, दिवला साख भरंत॥

(राजस्थानी सुभाषित)

दूहा ५९२ म्हेंने—मने, म्हाँने = मुझे, हमें।

झूँबिया—हिं० झूमना = घेर लेना।

म्हाँनूँ—नूँ गुजराती में कर्म का प्रत्यय अब भी है।

कूँपली—प्रा० कुंप + ली ऊनवाचक प्रत्यय। लकड़ी का कुप्पी के आकार का बहुत छोटा पात्र जिसमें स्त्रियाँ काजल-टीकी और सुगंध आदि सुहाग का सामान रखती हैं। राजस्थान में कन्या के दहेज के साथ ऐसी कूँपलियाँ दी जाती हैं।

ढोळी—मिलाओ—हिं० ढालना=ढरकाना।

दूहा ५९४ भगताँ—मिलाओ—हिं० आवभगत; राज० भावभगत।

दूहा ५९५ मुकळाइ—मुकळावणो का अर्थ गौना करवाना होता है। यह क्रिया अप० मोकळ से बनी है। मिलाओ—गुज० मोकलवुँ।

हैंवर—सं० हयवर। अनुस्वार का आगम।

दूहा ५९६ छोकरी—प्रा० छोयरी। यहाँ साथ रहनेवाली लड़की अर्थात् सहेली अथवा दासी से अभिप्राय है। अन्य रूप—छोहरी, छोरी। मिलाओ—हि० छोकड़ा, छोकरा।

दीन्ही—यह शब्द दो बार आया है। पाठ में अशुद्धि जान पड़ती है, पर सभी प्रतियों में यही पाठ मिलता है।

दूहा ५९७ हेरा—दूत। हेरा हुवइ—दूतों द्वारा खबर होती है।

झूँबणो—सं० झंप् (?) = जाना।

बोळावा—पहुँचाने के लिये, बोलावणो + आवा (तुमर्थ प्रत्यय)।

सोहद—सं० सुभट; प्रा० सुहड।

दूहा ५९८ रोही—राजस्थानी शब्द = जंगल।

ऊजळ —सं० उज्ज्वल।

जळ-थर—(१) जलाशय। (२) जलवाली भूमि। (३) जल और भूमि।

दूहा ५९९ पउढिया—अप० पवड्ढ = सोना, लेटना।

च्यारे—चारों।

चउकी—चौकी, पहरा।

दूहा ६०० पीवणउ—पीनेवाला। पीवणा राजस्थान में एक प्रकार का साँप होता है। रात को जब मनुष्य सो जाता है तो यह आकर उसकी साँस पीने लगता है। इससे मनुष्य की मृत्यु हो जाती है। पीवणा साँप एक से दो फुट तक लंबा होता है। उसका रंग मटमैला खाकी होता है। पीठ पर

तीन काली धारियाँ होती हैं। फन सिकुड़ा हुआ और पेट सफेद होता है। चमड़ी रबड़ की भाँति चिकनी होती है जिससे लाठियों और पत्थरों से इसे मारना बड़ा कठिन होता है। बरसात में इसके जहर की पोटली फूलती है। इसी ऋतु में यह प्रायः देखा जाता है और सैकड़ों को पी जाता है। यह विशेषतः रेतीले टीबों में होता है। यह काटता नहीं। कहते हैं कि 'पीने' के बाद पूँछ की फटकार से आदमी को सजग करने की चेष्टा करके चला जाता है। दुर्गंध, विशेषतः प्याज खाए हुए मनुष्य के पास नहीं जाता। लोग प्याज खाकर या मुँह पर पट्टी बाँधकर सोते हैं। इसके पीने के बाद बहुत से तो सोते ही रह जाते हैं। परंतु यदि ४-५ घंटों में पता लग जाय तो बचना संभव है। दवा के तौर पर ऊँट का मूत्र पिलाया जाता है और यह रामबाण दवा मानी जाती है। इससे कै होती है और जहर निकल जाता है। इसके पिए हुए को फिटकरी और नमक खारा नहीं लगता। लोगों का विश्वास है कि यह साँप साँस को पी जाता है पर वास्तव में यह सोते समय मुँह में जहर टपका जाता है। मुँह बंद किए हुए या करवट सोए हुए आदमी को यह हानि नहीं पहुँचाता। यह बड़ा होशियार होता है और छिपकर आता जाता है। इसे देखना या पकड़ना बहुत कठिन है।

विळकुळियउ—चंचलता के साथ हिलना। सामान्यभूत।

दूहा ६०१ भुयग्गि—भुजंग ने। रामस्थानी में कभी कभी द्वित्व वर्ण को Single करके पूर्ण वर्ण पर अनुस्वार लगा देते हैं तो कभी इसके विपरीत अनुस्वार को दूर करके आगे के वर्ण को द्वित्त कर देते हैं।

दूहा ६०२ प्रह—मिलाओ—हिंदी पौ फटना=उषःकाल होना।

पुंडरी—सं० पांडुर।

थट्ट—अप० थट्ट; हिं० ठाट।

ढंढोळियउ—प्रा० ढंढोल्ल्। अकर्मक की तरह प्रयुक्त।

घट्ट—मिलाओ—हिं० घट (घटघटवासी)।

सोरठा ६०३ झाबकि—झबककर, तुरंत।

झाळि—सं० ज्वाला।

सळसळइ—सं० सृ; प्रा० सर। संभवतः अनुकरणात्मक शब्द। मिलाओ—सळसळइ सेस सायर-सळिळ धड़हड़ कंप्यउ धवळहर (जटमल कृत गोराबादळरी बात)

धंधूणी—सं० धू; प्रा० धूण।

सोरठा ६०४ व्हालौं—सं० वल्लभ ।

दूहा ६०५ कणमणइ—कुनमुनाना, शब्द करना ।

सादं—सं० शब्द; प्रा० सद्द ।

दीवाधरी—दीपक रखनेवाली दासी ।

पड़साद—सं० प्रतिशब्द; प्रा० पडिसाद ।

दूहा ६०६ पलाह—(१) सं० पलाय् ; (२) सं० प्रलाप; प्रा० पलाव ।

धाह—अप० धाहा; हिं० धाड़ ।

दूहा ६०९ सारड़ी—सं० स्मृ; प्रा० सर, सार । संज्ञा । ड़ो अनादर-वाचक प्रत्यय ।

खोडी-खोडी—सं० खंड खंड = धीरे-धीरे ।

दध्ध—सं० दग्ध; प्रा० दद्ध ।

दूहा ६११ कळाइयाँ—प्रा० कल (=कोलाहल) से ।

दूहा ६१३ बडी—मारवणी के बहन होने का कहीं उल्लेख नहीं मिलता । बड़ी बहन तो होना संभव नहीं । छोटी बहन संभव है । कहीं कहीं चौपाई में लहुड़ी बहन लिखा है । लहुड़ी पाठ होता तो ठीक था पर किसी प्रति में मिला नहीं ।

दूहा ६१४ भवि—भव में = जन्म में ।

अन—सं० अन्न । अन्न-पाणी = जीवन ।

दूहा ६१५ परचइ—सं० प्रत्यय (?)=विश्वास करना, मानना, समझना ।

के—कई ।

कँही—कहीं ।

कजि—कार्य से ।

दूहा ६१७ ओळक्खिया—सं० उपलक्ष् ; प्रा० ओलक्ख = पहचानना । यह क्रिया गुजराती एवं मराठी में भी आती है ।

दूहा ६१८ सूँ—से, साथ

अहलउ—(१) सं० अफल; प्रा० अहल = व्यर्थ (२) यों ही अर्थात् व्यर्थ ।

दूहा ६२० जीवाड़उ—जीवणो का प्रेरणार्थक, आज्ञा, बहुवचन । अन्य रूप—जियावणो, जिवावणो ।

पिण—मिलाओ—गुज० पण = भी । सं० पुनर् ।

दूहा ६२१ परचव्यउ—समझाया, प्रार्थना की ।

मंत्रे—ए पूर्वकालिक का प्रत्यय है ।

दूहा ६२५ भळाया —आधु० रूप—भोळाया = सौंपा ।

वाँसइ—सं० पार्श्वे = पीछे ।

दूहा ६२६ ग्या—गया; गए ।

कहिजइ—कही जाती है ।

दूहा ६२७ कळहळिया—सं० कलकल (=कोलाहल) से ।

करि—संबंध का प्रत्यय ।

दूहा ६२९ कूँटियउ—ऊँट का पैर मोड़कर पैर से बाँध देने को कूँटणो कहते हैं ।

मुहरी—मोहरी । आधु० रूप—मोरी । ऊँट की नकेल ।

दूहा ६३० डूँमणी—डूम जाति की स्त्री । यह जाति गाने-बजाने का काम करती है । इसे ढोली भी कहते हैं ।

तंत—सं० तंत्री; प्रा० तंति=ताँत का बाजा । डूम लोग सारंगी पर गाया करते हैं ।

दूहा ६३१ तणक्कइ—तन् तन् शब्द करता है ।

पियइ—(मद्य) पीता है ।

ऊगाळेह—प्रा० उग्गाळ = जुगाली करना ।

वउळाओ—बिताओ ।

दूहा ६३२ मथ्थइ—आधुनिक रूप—माथे = पर ।

ऊजासड़उ—उजाड़ भूमि ।

लीजइ—ले ली जाती है । भविष्य के अर्थ में वर्त्तमान ।

दूहा ६३३ कांमड़उ—काम + ड़उ (ऊनवाचक प्रत्यय)

दूहा ६३४ उताँमळउ—प्रा० उत्तावळ; हिं० उतावला ।

दूहा ६३५ अणावाँ—आणनो का प्रेरणार्थक । संभाव्य भविष्य, उत्तम पुरुष, बहुवचन ।

मोहि—स्वयं ।

दूहा ६३६ थाँ—कर्म का प्रत्यय लुप्त ।

भारथ्थ—भारत, युद्ध ।

दूहा ६३७ कूँट—पैर का बंधन ।

दूहा ६३९ लंकि—लंकी = लंकवाली ।

डाके—राजस्थानी डागो = ऊँट ।

डहकि—डहडहाती है ।

दूहा ६४० पवंग—सं० प्लवंग = घोड़ा ।

सूधा—सं० शुद्ध । मिलाओ—हिंदी सीधा ।

खयँग—सं० खड्ग , राज० खयँग, खंग, खग्ग ।

चतुरंग—ऊमर के पास उस समय केवल घुड़सवार थे। फिर भी चतुरंग सेना का चढ़ना कहा गया है। यह केवल परिपाटी का निर्वाह है। लोक-गीत (Ballad) की यह एक विशेषता है। आल्हखंड में जहाँ जहाँ युद्ध का वर्णन आया है वहाँ वहाँ वे ही शब्द बारबार पुनरावृत्त हुए हैं चाहे उनमें वर्णित बातों के लिये मौका हो या न हो।

दूहा ६४१ हळहळ—अर० हल्लोहल्ल = हलचल ।

करूर—सं० क्रूर=दुष्ट ।

ओखंभिया—सं० उत्कंप् ; प्रा० उक्कंप (?) = चंचल किया, चलाया ।

जइसइ—जैसे । जावणो का सामान्य भविष्य । प्रा० जास्सइ ।

दूहा ६४३ छेती—सं० छिद् । संज्ञा=अंतर, फासला ।

घाते—प्रा० घत्त । पूर्वकालिक ।

जिहाज—सवारी, यहाँ ऊँट । मिलाओ—Ship of Desert (मरुभूमि का जहाज) ।

दूहा ६४५ कटाड़ी—कटाड़नो काटणो का प्रेरणार्थक है। सामान्यभूत, स्त्रीलिंग ।

तिण—उसने अर्थात् ढोले ने ।

तास—उसका अर्थात् ऊँट का ।

दूहा ६४६ पह—सं० पथ; प्रा० पह ।

दूहा ६४७ वंग—घाटी ।

दूहा ६४८ किर—सं० किल । मिलाओ—

आरँभ मैं कियो जेणि उपायौ गावण गुणनिधि हूँ निगुण ।
किरि कठचीत्रपूतळीं निज करि चित्रारै लागी चित्रण ॥

(वेलि २)

प्राणनाथ प्रीतम मिळयो किरि सरि बइठो हंस ।

दूहा ६५० विलखउ—सं० विलक्ष् ; प्रा० विलक्ख ।

दूहा ६५५ कुहकड़ा—कुहकना, कू कू आवाज करना, कूकने का शब्द।
ज्यउँ इ०—मानों मनुष्यों के मरने पर कूक रहे हों।

दूहा ६५७ जइँ—जहँ। अन्य रूप—जें।
कूँवेण—कुवों से (प्राप्त होता है)।
कूँकूँ-वरणा हत्थड़ा—अर्थात् कुंकुमवर्ण हाथोंवाली स्त्रियाँ।
सुँ घाढा—ठीक अर्थ स्पष्ट है। धाढा = काढ़ा (?)।
जेंण—जहाँ से।

दूहा ६५८ देइस—देना।
मारुवाँ—मारू = मरुस्थलवासी। (विकारी रूप) मिलाओ —
मरुधर पाइ मतीर हू मारू कहत पयोधि। (बिहारी)
सूधा—सं० शुद्ध = सीधे-सादे, गँवार।
थळाँह—थली के। थली = मरुस्थल।

दूहा ६५९ वर—भला, भले ही, चाहे।
कचोळउ—प्रा० कचोळक=कटोरा जिससे घड़े में पानी भरा जाता है।
सीचंती—खींचती हुई या खींचकर ढोती हुई।
य—ही।

दूहा ६६० भाजइ—सं० भंज्। भाजणो = भागना, जाना, दूर होना। रिड्ड—सं० अरिष्ट, रिष्ट।
फाकउ—टिड्डियों के बच्चे।
तिड्ड—टिड्डी-दल।

दूहा ६६१ पीयणा—देखो दूहा ६००।

दूहा ६६२ पुरिसे—सं० पुरुष। दोनों हाथ फैलाने पर एक की अँगुलियों से दूसरे की अँगुलियों तक की नाप को एक पुरस कहते हैं। यह लगभग ३ हाथ का होता है।
आपण—स्वयं।

उभाँखरा—खड़े रहनेवाले, कहीं न टिकनेवाले, भ्रमणशील, जिनका एक जगह निवास न हो (nomad)।
गाडर—अप०।
छाळी—सं० छागली; अप० छाली।
दूहा ६६३ वळती—लौटती हुई, प्रत्युत्तर देती हुई।

दूहा ६६४ झूलरउ—समूह। मिलाओ—

सात सहेल्याँरे झूलरे, पणिहारी ए लो।
पाणीड़ेने चाली रे तळाव, बाला जो ॥

(प्रसिद्ध पनिहारी का गीत)

लैकार—सं० लयकार = लयपूर्ण शब्द।

दूहा ६६५ फीकरिया—फीका + र (स्वार्थ प्रत्यय) + इया (अनादर-वाचक प्रत्यय)।

दूहा ६६६-६६८ ये दूहे पहले आ चुके हैं। देखो दूहा नं० ४५७, ४८४ ४८५।

निवाँणू—नीची भूमि जहाँ जल भरता है। अतः उपजाऊ।

दूहा ६६९ नीर चढइ—(१) पानी पर चढ़े हुए। (२) पानी के लिये चढ़ती हुई (= जाती हुई)।

दूहा ६७० वखाँण—सं० व्याख्यान। प्रशंसा।

दूहा ६७१ पूरी सख—साख भरना=समर्थन करना।

रुळियाइत—रळी + आइत (वाली)। उ के आगम की प्रवृत्ति।

परख—सं० परीक्षा।

दूहा ६७२ विखोड़िया—अप०—निंदा किया।

मारू—मरु देश, मारवाड़।

सोहागिण—पति-प्रेमवाली। मिलाओ—दुहागिन = पति प्रेम से वंचित।

दूहा ६७३ नइँ—से।

दूहा ६७४ ढोल—अन्यार्थ—नरवर में ढोल बजने लगे।

बोल—कथा।

परिशिष्ट (२)

(थ)

[यह प्रति बीकानेर के रँगड़ी-श्वेतांबर-जैन-उपाश्रय के महिमाभक्ति-भांडार में है। इसका पाठ जोधपुरीय (च) प्रति से मिलता है। यह प्रति प्राचीन जान पड़ती है। इसमें जेसलमेर-निवासी वाचक कुशललाभ द्वारा रची हुई चौपाइयाँ भी सम्मिलित हैं। इसका पाठ अत्यंत शुद्ध है।

ढोला-मारवणरी चोपई

श्रीसारदाय (शारदायै) नमः

दूहा

सकळ-सुरासर-सामिनी, सुणि, माता सरसत्ति।
विनय करीनइ वीनवुँ, मुझ द्यउ अविरल मत्ति॥
जोताँ नवरस एणि जुगि सविहूँ धुरि सिणगार।
रागइँ सुर-नर रँजियइ, अबळा तसु आधार॥
वचन-विलास, विनोद-रस, हाव-भाव, तिहाँ हास।
प्रेम-प्रीति, संयोग-सुख, ए सिणगार-अवास॥
गाहा-गूढा - गीत - गुण - कउतिग - कथा-कलोळ।
चतुर-तणा चित-रंजवण, कहियइ कवि कल्लोळ॥

गाहा

मणहर-नवरस-मज्झे सुंदरि-नारीण सरस - संबंधा।
निरुवम कव्व-निबद्धा सुणउ, सयणा जणा सगुणा॥
नरवर-नयर-नरिंदो नळराय सुउ सु सल्हकुमर वरो।
पिंगळराय स धूआ वनिता मारुवणी वरणेसु॥

कवित्त

पंथ उदंड प्रचड सदा चंगो पुरसाणी।
बीजी निर्मळ वस्त्र पंक विणु गंगानउ पाँणी॥

पट्टकूल पट्टणी देस भोगी घर दक्षण ।
कुंजर कदळीखंड विप्र तेरोतरी विचक्षण ॥
तिम-चंद वदनि, चंपक-वरणि,दंत झबुकइ दामिनी ।
सारंग-नयणि संसारि इणि मनोहर मारू कामिनी ॥
मरुधर देस मझारि सबळ धन - धन्न - समिद्धउ ।
नामइ पूगळ नयर पुहवि सगळइ परसिद्धउ ॥
राज करै रिणराह प्रगट पिंगळ पृथिवीपति ।
प्रतपै जस-परताप दानि जळहर जिम दीपति ॥
देवड़ी नाम ऊमा घरणि, मारुवणी तसु धू कुमरि ।
चौसठि कळा सुंदरि कुँमरि चतुर कथा कहिस्युँ सुपरि ॥

चउपई

पूगळ नयरी मरुधर देस, निरुपम पिंगळ नामि नरेस ।
मारुवाडी नवकोटी धणी, उत्तर सिंधु भूमि तसु-तणी ॥
मोटा नगर लोग सुखि बसइ, चावउ कुँवर कुळ छइ चिहुँ दिसइ ।
आठ सहस हयवर तसु मिळइ, पंच सहस पायदळ तसुजुडइ ॥
वरस वारमइ वइठउ राजि, अरि भाजइ संभळि आवाजि ।
त्रिणि वरस माहि निज प्राणि, साधी सुंधु मनावी आण ॥
पनर वरस पोढउ राजान, रूपवंत रतिराय समाण ।
पाळइ राज सुखी आपणउ, तिणि अवसरि हूओ, ते सुणउ ॥
एकणि दिवसि हुँउस आपणो, भूप चढइ अहेडा-भणी ।
कटक सहू सारंगी केड़ि, वहिया जूजू ऊजड़ वेड़ि ॥
रानि भमंतउ राष्यउ (? थाक्यउ) राय, व्याप्यो तृषा ऊन्हाळइ वाय ।
वहतो राजा पडियो वाट तरुतळ वइठउ दीठउ भाट ॥
तासु पासि छागळि जळि भरी, ठाकुर-तणी दृष्टि वे ठरी ।
देषी भाट दीयो दीर्घायु, रेवंत-थी ऊतरियो राय ॥
निरमळ सीतळ पायउ नीर, सुषी हूओ नरराय सरीर ।
भाट पासि तव पूछइ भूप, कवण काजि, तुझ किसउ सरूप ॥
नळवर गढ मुझ वसिवा ठाउ, मागउँ राउळ हुंसु पसाउ ।
इह आव्यउ जस कीरति सुणी, पिंगळ राजा मेटण-भणी ॥
मोटउ नगर लोग सुखि वसइ, चावउ कुँवर कुळ छइ चिहूँ दिसइ ।
आठ सहस हयवर तसु मिलइ, पंच सहस पायदळ तसु जुडइ ॥

वरस वारमइ वइठउ राजि, अरि भाजइ संभळि आवाजि ।
पँचाग तेहनइ कीध पसाउ, भाटइ ओळखियउ नरनाह ॥
कहउ भट्ट, तइँ कुण-कुण ठाम, कुण-कुण देस, नगर कुण नाम ।
वस्तु अपूरव दीठी जेह, मुझ आगळि परगासउ तेह ॥
भाट कहइ, संभळि मुझ वात, मइ दीठा मरहठ, मेवात ।
दीठा वंग, गौड, बंगाल, कुंकण, नइ काबिल, पंचाळ ॥
दीठौ सगळउ दक्षण देस, चतुर नारि तनि चंचल वेस ।
माळव नैइ काबिल, मुकराण, कासमीर, हुरमुज, पुरसाँण ॥
सिंहळ-दीप पदमिनी नारि, परम उलँघि रयणायर पार ।
गुज्जरात, सोरठ, गाजणउ, जोयउ देस तिहाँ स्त्री-तणउ ॥
सिंधु, सवालख, नै सोवीर, पूरव गंगा पइलइ तीरि ।
दीठा मइँ इणि परि बहु देस, आपणि हरखि भाट नै वेसि ॥
पिंगळराय कहइ तिणि वार, काँई वळी (? वसत) अपूरब सार ।
दीठी हुइ, सा मुझनइ दाखि, गम गोवर मन माहिँ म राखि ॥
उत्तम दीठी वस्त अनंत, ते कहताँ किम आवइ अंत ।
ताहरइ मनि जे अचरिज होइ, कहउ तेह, जिम दाखुँ सोइ ॥
नेडइ मंडळि काई नारि, रूपवंत हुय राज - कुँमारि ।
अति अद्‌भुत सुंदर आकार, ते परणेवा हरख अपार ॥
भाट भणइ, सुणि पिंगळराउ, मुझ भुइ जोवा-तणउ सुभाउ ।
वरस वीस लगि इणइ वेसि, जोई वनिता देसि-विदेसि ॥
रमणी घणी रूपि रतन्नि, निरखी एकाएक असंभ ।
पण जाळोर नगर पदमनी, दीठी गउखि, जाणि दामिनी ॥

दूहा

सिरि अढार आबू-धणी, गढ जाळोर दुरंग ।
तिहाँ सामँतसी देवडउ, अमली आण अभंग ॥

चउपई

सबल सेन, सोवन-गिरि-धणी । पटराणी झाली (सोढी) तसु तणी ॥
तसु पुत्री ऊमा देवड़ी । जाणि विधाता सइहथि घडी ॥

दूहा

चंद-वयणि, चंपक-वरणि, अहर अलत्ता-रंगि ।
षंजर-नयणी, खीण-कटि, चंदन-परिमळ चंग ॥

अति अद्भुत संसार इणि नारी रूपि रतन्न ।
खंजर-नयणी खीण-कटि कुमरि सु कंचन-वन्नि ॥
जौ तुझ सारीखउ जुडइ भामिणि तिणि भरतार ।
जोडी राही-कान्ह ज्यउँ कर मेळै करतार ॥

चउपई

भाट वचन राजा साँभळी, कउतिग ए हियडइ अटकळी ।
कहइ भाट, का बुधि विनाणि, जिणि ए कारज चडइ प्रमाणि ॥
राजा-तणा कटक असवार, ते आवी मिळिया तिणि वारि ।
भाट साथि लीधउ करि भाउ, आपण नयर पधारयउ राय ॥
राजा पासि भाट ते रहइ, नित-नित नवा कणहता लहइ ।
राजा-मनि ऊमा-देवडी, नवि वीसारइ एक जि घडी ॥
तेडि प्रधान मंत्रि आपणउ, करइ आळोचन परिणेवा-तणउ ।
तेह जि भाट मूँक्यउ परधान, देई अनर्गळ वंछित दान ॥
साथइ जेसळ नाम खवास, रायइ मूक्या मन वेसास ।
धणी भलामण थेहनइ कही, तूँ साचउ मित्र माहरउ सही ॥
काँई बुद्धि सुमति केळवे, जिम तिम ए जोडी मेळवे ।
सर्व साजहसुँ परवड्या, आवी जाळोरइ ऊतर्या ॥
वंस छत्रीस साख माँहि वडउ, चावउ सामँतसी देवडउ ।
पिंगळराय-तणा परधान, आया सुणी दियउ बहुमान ॥
भगति करी परधानह-तणी, पूछइ, कहउ (बात) आपणी ।
पूगल-हूँती पिंगळराय, किणि कारणि मूँक्या इणि ठाइ ॥
एक वीनती हिव अम्हतणी, संभळि तूँ सोवनगिरि-धणी ।
कुँअरि तुम्हारी अपछर जिसी, पिंगळराय-तणइ मनि वसी ॥
श्रवणे सुणीयउ कुमरी-रूप, उछक थयउ आप मनि भूप ।
अम्हनइ मोकळिया इणि ठाइ, कुमरि तुम्हारी मागइ राय ॥
वतळउ सामँतसी बोलीयउ, कुमरि नातरउ पहिलउ कीयउ ।
पहिली जूनागढनो धणी, माँगी हूँती राजा-भणी ॥
तेहनइ म्हे तउ ऊतर दियउ, वरसे वडउ वींद निरखीयउ ।
उदयचंद राजा चावडउ, छइ रिणधवळ कुमर तसु वडउ ॥
सतर सहस गुज्जरधर-धणी, तिणि प्रधान मूँक्या अम्ह-भणी ।
कुमरि मँगावी मीनति करीं, दीन्ही ऊमादे कुँअरी ॥

झाली अजी न मानी वात, रोगिल देस गंड गुजरात ।
निबळ पुरुष नइ नीळज नारि, किम तिहाँ दीजइ राजकुमारि ॥
करते तउ कीधउ नातरउ, पाणि जाणे पडीयउ पँतरउ ।
कहइ बात जेसळ सब कहिउ, तउहिव सीख अम्हानइ दीयउ ॥
एह बात झाली सँभळी, ते प्रधान तेडाया वळी ।
एक उपाय बुद्धि तिणि लह्यउ, वळतउ, जेसळनइ इम कह्यउ ॥
कुमरि-वात जोतिष ए कही, वरस एक लगि सूझइ नही ।
पाछइ लगन-तणउ दिन नही, एह बुद्धि म्हे करिस्याँ सही ॥
कुमरी लगन परिणवा चार, आगळि एक दीह असवार ।
मूँकेस्याँ रिणधवलह-भणी, सकिस्यइ नहीं आवि ते-भणी ॥
लगनि-थकी पहिलइ इक मासि, माणस मूँकेस्याँ तुम्हि पास ।
छानी वात विमासी बहू, संझि सहू को आविसी सहू ॥
आबू-तणी जात्रनइ मिसइ, लगन तणी बेळा हुइ जिस्यइ ।
आवि इहाँ ऊतरियो तुम्हे, कुमरी परणावेस्याँ अम्हें ॥
उदयचंद रिणधवळह भणी, कुमरि वीवाह लगनि दिन गिणी ।
आगिमि एक दीह असवार, मूँकेस्याँ परिणवा विचार ॥
किम आवेस्य इक दिन माहि, लगन दीह वहि आघउ थाइ ।
दोस न कोई इम अम्ह-तणउ, साच वचन होस्यइ इम आपणउ ॥
सीष मागि चाल्या परधान, दीधा अरथ गरथ बहुमान ।
पूगळ नयरि पहूता आइ, मिळिया हरषइ पिंगळराय ॥
समाचार सविस्तर कह्या, पिंगळराय हीय गहगह्या ।
छाना नितु पुहचइ परधान, रळियात थ्या चिति परधान ॥
मास दीह आगळि असवार, आया पूगळि नयरि ति वारि ।
करी सजाई जानह-तणी, पिंगळ चाल्या परणण-भणी ॥
सबळसेन साथइ बहु थट्ट, याचक चारण बाँभण भट्ट ।
आप सरीषा राजकुँमार, साथइ एक सहस परिवार ।
पहिरण पट्टकूळ सवि-तणइ, चडीया आडंबर घणइ ।
वाजित्र वाज पंच सबद्द, रिण कोळाहळ काहळ सद्द ॥
सबळ सेन साथइ परिवऱ्या, जाइ जाळोर नयरि ऊतऱ्या ।
चाचि (ग) दे सगली परि सुणी, परि माडी परिणाबा-तणी ॥
लोक सहू पाषतियइ मिळ्या, देषी कटक देस खळभळ्या ।
पूछइ प्रजा, कवण ए राय, कवण काजि, जास्यइ किणि ठाइ ॥

वळता ऊतर एहवा करइ, रषे कोइ मन माहे डरइ ।
पिंगळ राजा पूगळ-धणी, जास्यइ जात्रा आबू भणी ॥
गोधूळिक वेळा जब हूई, ओवा जान पधारी जूई ।
तब पिंगळ तेडी सुभ वार, परिणाव्यउ करि मंगलच्यारि ॥
निरषयउ नयणे पिंगळराय, राजाइ तसु आप्यउँ दाय ।
रूपवंत नइँ सुंदर देह, सोढी-मनि निरषतां सनेह ॥
सोळह वरसे परण्यउँ राउ, अति सुकमाळ असंभय काय ।
बारह वरस-तणी देवडी, लोक कहइ, ए जोडी जुडी ॥
एक कहइ, तूठउ करतार, पाम्यउ तिणि पिंगळ भरतार ।
सगे कीयउ वीवाह सुरंग, विहुँ ना मनि वाधिउ उछरंग ॥
भगति-जुगति कीजय अति घणी, सामुहणी सा सोढी-तणी ।
खरच्या गरथ नगरि जाळोरि, गूँजइँ गिरि वाजित्रह घोर ॥
अणहिळवाडा-पाटण सामि, बीजउ नफर गयउ तिणि ठामि ।
उदयचंदनय कियउ जूहार, परणावउ रिणधवळ कुँमार ॥
वळतउ पूछइ वात विवेक, लगन विच्चइँ थायइ दिन एक ।
पंथइ वहताँ माँदउ पड्यउ, तिणि कारणि मौडउ आपड्यउ ॥
राजा कोप धर्यउ मन माहि, नफर कढाव्यो वाहइ साहि ।
राजा कहइ न बीजउ कोइ, जउ मुझ मागी परणइ सोइ ॥
करी सजाई परणण-तणी, चडी जान रिणधवळाँह-तणी ।
घणी उतावळि सउ परवर्यउ, सोवन गिरि नेडउ संचर्यउ ॥
बीजइ दिनि चाचिगदे राइ, बइठउ मन माँहि करइ उपाय ।
मत आवइ रिणधवळाँहँ जान, करिसी झूँझ पिंगराजान ॥
अळगाँ थी ऊपडती खेह, देषी राजा पड्यउ संदेह ।
सही एह रिणधवळाह सिँघात, विणसेस्यइ हिव सगळी वात ॥
नर थोडा पिंगळ नरनाथ, सबल एह रिणधवळह साथ ।
माहोमाह झूझ माँडिस्यइ, कुळिकळंक माहरइ लागिस्यइ ॥
चाचिगदे मनि पडियो सोच, सोढी साथि करइ आळोच ।
जउ जाणेस्यइ पिंगळ राय, दीठइ कटकि छाँडि किम जाय ॥
करि आळोच तेह नइ कहउ, आपाँ बिहुँ नेह तउ रहइ ।
थे पहुचउ हिव पूगल-धणी, तउ अविहड होइ प्रीति आपणी ॥
जदि त्रेवडि करिस्याँ अउझणउ, तदि हहलाणउ कुमरी तणउ ।
पीहरि राखी राजकुमारि, पिँगळ राय चाल्यउ तिणि वारि ॥

चाल्यउ कटक सहू दळ चडी, पीहरि छइ ऊभा देवडी ।
परणा नइ दळ साथइ करी, पहुता कुसळइँ पूगळ पुरी ॥
तव आवी रिणधवळइ जान, मिळियो चाचिगदे राजान ।
मोडा आव्या हिव किणि काज, नफर तणउ दोस महाराज ॥
नगन बेळा लगि जोई वाट, नाया तुम्हे थयउ ऊचाट ।
नेह लगन जउ किमही टळइ, वळतउ वरस पंच नवि मिळइ ॥
तिणि वेळा पूगळनउ धणी, जात्रा जातउ आबू-तणी ।
अरडइ ते वहतउ आवीयउ, पिंगळ राजा परणावियउ ॥
रीसाणउ रिणधवळ कुमार, बाप-भणी मूक्यउ समाचार ।
एहवउ छळ चाचिगदे कीयउ, पिंगळ राजा परणावियउ ॥
उदयादीतइ जाणी बात, चाचिगदे इम षेली घात ।
करी कोप मन माहे घणउ, तेडाव्यउ कुमर आपणउ ॥
उदयचंद चाचिगदे राय, रोस चड्या वे षेलइँ दाव ।
माहोमाहि माँडाणउ षेध, वधियौ वयर हुयउ वहु वेध ॥
सोवनगिरि-हूँती चिहुँ दिसइ, लूसे देस कदे नहु वसइँ ।
पिंगळ राजा ते परि सुणी, माँड्या सेन सजाई घणी ॥
उमादेस्यउँ अविहड प्रीति, वाळपणा लगि लागी चीति ।
कहवास्यउ चाचिगदे-भणी, आवाँ भीर अम्हे तुम्ह-तणी ॥
वळतउ चाचिगदे वीनवइ, रखे कटक ले आवउ हिवइ ।
नही सोनगिरि केहनइ पाडि, जास्यइ आपण ही गढ छाडि ॥
हिव ते जेसळ नामि षवास, मनि आपणइ सुबुद्धि विमासि ।
पूगळ माहि बुद्धि केळवइ, गोवळ सहि गोवर मेळवइ ॥
धवळ धेनुवे धवळइ वरणि, सारीषा वाछडा सुवर्ण ।
घोडा-तणी वाळि माहि आणि, पाइगहइ बाँध्या तिणि ठाणि ॥
घोडा समउ ग्रास ते लहइ, मापणि बाँधी साथइ रहइ ।
पीयइ दूध मनगमता ग्रास, वेगइ ते हारवइ ब्रहास ॥
वेआसणी वहिल अति चंग, कीधी एक अपूरव अंग ।
वेवइ धवळ जोतरिया तेणि, जाणे पंषी चाल्या जेणि ॥
जेसळ आप चडइ असवार, फोस वधरइ वारावार ।
जोयण एक घडीमइ जाइ, हारइ नही न थाका थाइ ॥
इम दीहाडी करइ अभ्यास, जाँ लगि हूआ बारह मास ।
जोजन ग्रउढ घडी माहि नीम, वळी जाइ आवइ करि सीम ॥

इणि परि धोरी सीषवि दोइ, राजा प्रति वीनवियउ सोइ ।
वरस एक जब पूरण हुवा, तब पिंगळ चिंतातुर थया ॥
इक आपणउ पुरुष पाठवइ, कहउ त आवणउ कीजय हिवइ ।
तउ वहि जाइ राजानइ भिळयउ, मारग सहू सूधउ साँभळयउ ॥
धवळा आसण मंडइ राउ, तउही बँधि न वइठइ काइ ।
घणी सझाई थई अउझणइ, त्रेवडि छइ ऊमादे-तणइ ॥
साथइ जउ गाडर असवार, आथर ऊठ चलावइ भार ।
सवळ साथ जउ वाटइ वहइ, तउ रिणधवळ नहीं सा सहइ ॥
सू (? रू) धी वाट कटक संग्राम, अनरथ थास्यइ जाइमाँम ।
चाचिगदे तिणि आगइ वहू, कही वात मारगनीसहू ॥
जउ प्रछन्न आवइ एकलउ, पहिली आणउ कीधउ भलउ ।
कुमरी घरि पुहुचावी पछइ, सगळी बात सोहिली अछइ ॥
ते आव्यउ जेसळ परधान, हरषित मिळयउ पिंगळ राजान ।
मारग-तणी वात सहू कही, तेवड झूझ म करियो सही ॥
एकणि वहिलइ जेसळ साथ, इम त्रेवडि माँडी नरनाथ ।
इतलउ कहिइ माहरउ मान, कहियउ चाचगदे राजान ॥

दूहा

जेसलनइ पिंगळ कहइ करि आणा परिआण ।
दिन एकणि माँहि देवडी जिम आवइ इणि ठामि ॥
साचउ छोरू तू सही, तूँ सेवक हूँ साँमि ।
आगइ ते परणावियउ, करि वळि एतउ काँम ॥
सोवनगिरिहुँ चिहुँ दिसइ रूधा मारग घाट ।
पंथी को पूगळ-तणउ वहे न सकइ वाट ॥
कटकी जउ आपे करों, तउ रीसावइ राय ।
साँमतसी रूठइ थकइ बंधि न बइसइ काय ॥
वचन सुणी राजा-तणउ जेसळ कीयउ प्रणाँम ।
तउ हूँ छोरू ताहरउ, जउ सारूँ ए काँम ॥

चउपई

राय कहइ जेसळ इक वात, सउ कोस जावउ एकणि रात ।
इणि परि वहिस्यउ जोयण घडी, आणेस्यउ ऊमा देवडी ॥
सीष मानि जेसळ वीनवइ, लूण हलाल करेसुँ हिवइ ।
तउ ताहरउ छोरू महाराज, जउ मेळावउँ वहिली आज ॥

तेह जि वहिल सज्ज तिणि करी, धवळा ते धोरी जोतरी ।
पहिली जे सीषविया हुता, जोयण घडी जाइ आवता ॥
जोजन घडीयइ झाझउ थाय, लोहा भरइ न थाका थाइ ।
दीवइ मारगि जेसळ वहइ, वाटघाट सगळी विधि लहइ ॥
सभई भूमइ अवरइ नाम, कहइ अवर मुझ अवरे काम ।
साँझ समइ कीधइ रमझोळा, जायइ ऊतरीयउ जाळोर ॥
चाचिगदे राजा साँभळिउ, जेसळनइ तब आवी मिळिउ ।
सोढी-भणी जणावी वात, सहू समास्या एकणि राति ॥
बीजइ दिनि ते छानउ रहिउ, कुमरि इलाणउ किणि नवि लहिउ ।
एक लाष नउ छइ तु' (? उ)झणउ, ते मंडाविउ कुमरी-तणउ ॥
ताँ लगि इहाँ कणि राषिउ अछइ, पूगळि कुमरी पहुना पछइ ।
मोकळिस्याँ मोटइ मंडाण, ताहरइ छइ बहुलउ परिपाण ॥
सहू जडाव साथि तसु दीयउ, साँझ समइ मुकलावउ कीयउ ।
चाली ऊमादे कुँअरी, दीधी साथइ दीवाधरी ॥
न लियइ वीसाम उनविरहइ, पवन वेग ते वाटे वहइ ।
कहइ उडइ पंषी आगासि, प्रगडइ आया पूगळ पासि ॥
वहिल छोडि ऊतरिया जिसइ, पिंगळराय पधारिउ तिसइ ।
साथे कटक मेळि परिवार, करइ भट्ट तिहाँ जयजयकार ॥
चामर ढालइ छत्र सिरि चंग, वाजइ तंती नाद मृदंग ।
पइसारउ तिणि इणि परि कीयउ, पटराणी ले घरि आवीयउ ॥

दूहा

सुणी वात रिणधवळ, सहि काळउ थयउ कुमाँर ।
पाटण पहुतउ आपणइ, आरति करइ अपार ॥
पाछ सामँतसी सुपरि मोठउ करि मंडाण ।
ऊमादेरउ ऊझणउ इणि परि चढ्यउ प्रमाण ॥
पटराणी पिंगळ-तणी अपछरनइ अणुहारि ।
आछइ उमा देवडी सुंदरि इणि संसारि ॥
सुंदरि सोळ सिंगार सजि सेज पधारी सझि ।
प्राणनाथ प्रीतम मिल्यउ उर सरि बइठउ संझि ॥
अदभुत रूप असंभ जग जोवइ इणि परि जपइ ।
राणी परतखि रंभ कहउ उपम केही कहाँ ॥

सोरठा

प्रीय सुँ अधिकउ प्रेम, रयणि दिवस रंगइ रमइ ।
मोह्यउ मधुकर जेम कुसुम जाँणि केतकि-तणउ ॥
माथउ धोई मेटि ऊभी सूरज साँमुही ।
ताह उपन्नी पेटि मोहणवेली मारुई ॥

चउपई

राजा मन मइँ घणउ उछरंग, पट्टराणी सुँ प्रेम प्रसंग ।
मनह मनोरथ सुँ नवमास, हुआ पूरा पूगी आस ॥
मात पिता मनि आणँद घणउँ, जनम हूओ मारुवणी-तणउ ।
कीया वधावा नगर मझारि. पुत्र-तणी परि मंगळचार ।
अति सुंदर सरूप आकार, अपछर रंभ-तणी अणुहारि ।
परिमळ मधुकर पासइ रहइ, किर पदमनी सहू को कहइ ॥

दूहा

वरस ग्यउढ वउळा पछे, देव न वूठउ देसि ।
षड पाषइ सवि लोग षडि, वसिवा गया विदेसि ॥
मारुवाडिका देसमइँ, एक न जाई रड्ड ।
कदि ही होइ अवरसणउ, कइ फाकउ कइ तिड्ड ॥
पिंगळि परियणि पूछियउ, कीजइ तेवडि काइ ।
ठाम सु ठाम सु अटकली, जेथी वसिजइ जाइ ॥
जळ षड कारणि षोजिवा, देसउ दउ इणि ठामि ।
पुष्करि षड पाणी प्रथळ, संभळि पिंगळ राय ॥

चउपई

पूगळथी ऊचाळा कीया, घण गोपळ सवि साथइँ लीया ।
नगर सकळ लोकि परवरर्‍या, आवी पुरि पुष्करि ऊतर्‍या ॥
नीला षड नइँ नीरमळ नीर, परिघळ अन्न घणा दधि षीर ।
गाडे वास किया तिणि ठामि, सहु को षुसी थया तिणि गामि ॥
तिणि वेला ते भाउ भाट, विषमा पंथ र बहुला घाट ।
नळवर गढ पोहतउ आपणइ, राजा आदरि तेड्यउ घणइ ॥

सगळी वात सविस्तर कही, पिंगळराय-तणी परि सही।
भाऊ-भणी थइ राजा घणउ, हिव साल्हकुमरनी उतपति सुणउँ ॥
नळराजा नळवरगढ राय, वइरी दड भंजइ भड वाइ।
पाइक लाष एक परिवार, सात सहस सेना असवार।
पंच सहस माता उ मता, षग्ग त्यागि नहु काइ षता।
भरिया रिधि नवनिधि भंडार, परिथळ गाम अंत नहु पार ॥
त्रीस वरग तसु करहा-तणा, जावइँ पंथि घडी जोयणा।
ताजी बहुत राय तस-तणय, भुपति सबळ सहूको भणइ ॥
नहीं रायनइ पुत्र संतान, तिणि अहनिसि चिंता असमान।
दिनि प्रति पूजय देवी देव, सारइ जती-व्रतीनी सेव ॥
ओषध मंत्र यंत्र आदरइ, भरणा पुत्र काजि बहु भरइ।
पुत्र काजि मन चिंता घणी पेषइ अथिर रिधि आपणी ॥
इक परदेसी इम ऊचरइ, जउ पुष्कर-तणी जात्रपति करइ।
कुटुँब सहित पहुचउ तिणि थानि, तौ सही हुवे पुत्र संतान ॥
मानी वात राइ मनि षरी, पुष्कर-तणी जात्रपति करी।
अनुक्रमि राणी थ्या आधान; हरष्या नगर लोक राजान ॥
पुत्र जनमि हरष्यउ राजान, मनि आणंद्यौ नळ राजान।
घरि घरि उछव मंगळ घणा, कीया वधावा पुत्रह-तणा ॥
मायताय मनि पूगी हाम, साल्हकुमर तसु दीधउ नाम।
मृतवच्छा माता भय होइ, ढोलउ नाम कहइ सहु कोइ ॥
अति सरूप सुंदर आकार, अभिनव कामदेव अवतार।
कुमर हुवउ त्रिहुँ वरसाँह-तणउ, जनम सफल जाणे आपणौ ॥
राजा सुहणउ पाम्यो रात्रि, जाणे जायो पुष्कर जात्र।
तेडि प्रधान मंत्रि ऊचरइ, जात्रा-तणी सजाइ करे ॥
साथइ सेज बाला पंचास, सहस ऊठ, एकसउ त्रहास।
राज भळायो मुहता-भणी, राजा चाल्यो जात्रा-भणी ॥
भले दिवस कीया परियाण, पंच सबद वाजइ नीसाण।
वाटे निरभय सुषीयाँ वहइ, सूरा सगळे आदर लहइ ॥
घणी रिधि साथइ बळ घणउ, संघ चल्यउ ए राजा-तणउ।
बाटइ मास एक ते वही, परि सिरि पुहकरि आव्या सही ॥
विधि मेटिया आदि बाराह, अधिकउ कीयो सबळ उछाह।
भगति जुगति पूजा तसु-तणी, सफळ जात्र हुई राजा-तणी ॥

दूहा

इणि अवसरि घण ऊनम्या, प्रगट्यउ पावस मास ।
पासइ पिंगळ-रायनइ, किया ऊतारे वास ॥
उनमियो ऊत्तर दिसा' गयण गरज्जे घोर ।
दह दिसि चमकइ दामिनी, मंडइ तंडव मोर ॥
च्यारि मास निश्चळ रह्या, सरवर-तणे प्रसंगि ।
पिंगल नेइ नळ भूपती, मिळिया मनि अति रंगि ॥

चउपई

सूर धीर देवइ सुकमाळ, दीसे वीन्हइ भला भूपाळ ।
रयणि-दीहि संगति ते रमइ, भूपति बे आहेडइ भमइ ॥
एक दिवस आहेडा आळि, नळ राजा चडियो पुहगाळि ।
एक ससउ अरडे नीसर्यो, तिणि पूठे आघउ संचर्यउ ॥
नाठे ससउ पिँगळ-आवासि, वासइ राजा चड्यइ ब्रहासि ।
घरि सूता छइ राणी सही, नळ राजा किणि लखियउ नहीं ॥
पोढी छइ ऊमा देवडी, जाणि विधाता सइहथि घडी ।
असि थाँबी नइ ऊभउ रह्यो, जोवे किणि दिसि ससउ गयो ॥
गयो ससउ कडि लंका हेठि, दीठा नळ राजा ते द्रेठि ।
पटराणी पिंगळ-तणी, दीठी नळवर-गढनइ धणी ॥
पोढी मारवणी पालणइ, सोवन्न ग्रन्न चीर आढणइ ।
पेखी राजा पाछउ वळ्यउ, इसी बुद्धि मन माँहि अटकलो ॥
कुमरी साल्हकुमरनइ काजि, नातौ कीजै तौ सुख हुइ आजि ।
ए नातौ जै किणि विधि मिळे, तौ मनह मनोरथ सगळा फळै ॥
तिणि प्रभाति नळ राजा तिहाँ, आपण आयो पिंगळ जिहाँ ।
भगति अम्हे माँडी तुम्हतणी, तुम्हे पधारौ कृपा करि घणी ॥
तिहाँ पधारउ पिंगळ राय, राजा मनि आणंद न माइ ।
अमृत समा सरस आहार, जीमाड्यउ पिंगळ परिवार ॥

दूहा

*सो वग्गा स सहि सावट्ट, कोडीधज केकाण ।
अम्हे साम्हा आविया, प्रीति चडी परवाणि ॥

---

* पाठांतर (छ)—सोना वागा सावट्ट=सो वग्गा० । आम्हा साँम्हा आपिया । वढै=चढी । परिवाँण ।

चउपई

करि भोजन बइठा एकठा, आण्या पासा नइ सोगठा।
रंगइँ रम्या बिन्हइँ राजान, बोल्यो नळराजा - परधान ॥
प्रीति बिहूँ भूपाळइ-तणीं, सगपण हुइ तौ वाधइ घणी।
दस दीहे आपणडइ देसि, वसिस्यइ सहु का गया विदेसि ॥
साल्हकुमर सजी सिणगार, करि सरूप ए देष कुमार।
आपण रँगि रमतउ आवियउ, पिंगळि राजा षाळै लियउ ॥
विनय करे नळराय वीनवै, ए सगपण आपाँ जउ हुवइ।
तउ आँपाँ हुइ अविहड प्रीति, राजाँनाँ घरि एह जि रीति ॥
पिंगळि राजा कियो पसाउ, करि सगपण संतोष्यो राउ।
दी मारवणी डोला-भणी, प्रीतै प्रीति जु अधिकी वणी ॥
घरे पधारयउ पिंगळ राउ, मारवणी तेडी मनि भाइ।
घणुँ लडावइ आदरि घणै, लै ऊमादे इणि परि भणै ॥
मारवणी किणि कारणि आज, घणुँ लडावइ काइ महाराज।
पिंगळ राजा हसि बोलियो, नात्र साल्हकुमरिसुँ कियो ॥

दूहा

आषै ऊमा देवडी, वाल्ँभ हिय (यै) विचारि।
मनइ गकोडी, मारुवी दीन्ही समुद्रह पारि ॥
कंता, अणदीठइ कुमरि कीयो नातरउ काँय।
प्रीय पति पट्टराणी भणै, जिहाँ सिरज्यउ तिहँ जाइ ॥

चउपई

पाणिग्रहण-तणउ परियाण, माड्यौ विहु भूपति मंडाण।
महोछव तोरण वंदरमाळ, वृधि वाधइ वारणइ विसाळ ॥
सुभ वेळा सुभ दिनि सुभ घडी, तेवडि लगन-तणी तेवडी।
चवरी माँडइ मंगळचार, जानी मानी मिळ्या ति वारि ॥
मायताय विहुँ बंधी गंठि, परण्या पुष्करि तीरथि कंठि।
धवळ मंगळ गीतध्वनि कीया, साल्हकुमर मारू परणिया ॥
अरथ गरथ खरचीया अपार, बालक वेवइ विन्हय कुमार।
थाँभइ नाम सविस्तर लिष्या, आया गया सहू ओळष्या ॥

इणि अवसरि पावस ऊतर्‌यउ, साम्हउ सीतकाळ संचर्‌यउ ।
आपापणे देसे मनि धरइ, चालण-तणी सजाई करइ ॥
नळि कहिराव्यउ प्रोहित साथि, मारुवणी मूँकउ अम्ह साथ ।
बोलइ पिंगळ, कुमरी बाळ, न रहइ मात पषय इकताळ ॥
पाँचाँ साताँ वरसाँ पछे, ताँ लगि कुमरी इहाँकणि अछइ ।
कुमर मूँकियो आणा काजि, कुमरी मूँकेस्याँ, महाराज ॥
सीषि मागि मिळि गळि सुषि घणइ, पहुता देसे आपापणइ ।
पूगळ नयरी पिंगळ राय, नळवर गढि आव्यउ नळराय ॥
अळगी भूमि न को परि लहइ, वाटि घाटि पंथी नवि वहइ ।
समाचार नहु सोझ न कोइ, अळगे सगपणि ए परि होइ ॥
इणि अवसरि नळवरगढ-धणी, आळोच्या त्रेवडि आपणी ।
परणी थी मारुवणी-तणी, सुधि न कहियो ढोलाभणी ॥
मारुवणी परणी जाँणिस्यइ, आणा काजि जई आणिस्यइ ।
धणीं भूमि, मारगि भय घणा, तिणि पाल्या माणस आपणा ॥
पाछइ नळराजा परधान, तियाँ तेडि दीया बहु मान ।
चिहु दिसि सगपण काजि चालवइ, मूँक्या सरस देस माळवै ॥

दूहा

माळव देस महीपतइँ भीम नाँम भूपाळ ।
माळवणीं धू तसु-तणइ, सुंदरि अति सुकमाळ ॥
परधानह नळरायने माँगी घणइ मँडाँणि ।
जोताँ जोडावइ जुडइ प्रीति चडी परमाँणि ॥
भीमसेनि भगताविया नलरायहँ परधान ।
नळनंदनरउ नातरउ मिलियो बहु मनि मानि ॥

चउपई

कीयो नातरउ ढोला-तणउ, बिहुँ राजा मनि आणँद घणउ ।
थाप्यउ लगन, मूँक्या परधान जुगति पधारी ढोला-जान ॥
खरच्या अरथ गरथ अति घणा, संतोष्या परीयण आपणा ।
माळवणी परणी मनि रंगि, अह-निसि ढोला मन उछरंगि ॥
हाथ मेल्हावै गज पाँचसइ, नगर पँचास गाम सुषि वसइ ।
चारि सहस तेजी तोषार, भरिया रिधि नवनिधि भंडार ॥

महीपति सबळ सु माळवधणी, तिणि परणावी धू आपणी।
माळवणी तसु कुमरी नाम, अति सरूप सुंदरि अभिराम॥
ढोला साथइ लागी प्रीति, चतुराईस्युँ वधतइ चींति।
नळवर गढ परणी आवियौ, करि मँडाण पइसारउ कीयौ॥
परण्यउ मारुवणी संघाति, ढोलउ तेह न जाणइ वात।
पूगळ दिसा न आवइ कोइ, मारुवणीनी नीरति न होइ॥
पनरह वरस गया जब वही, सउदागर इक आव्यउ सही।
तिणि साथइ छइ घोडा घणा, ढोलइ मोलविया तसु-तणा॥
ढोलउ नितु फेरवइ प्रभाति, सउदागर पणि तेडइ साथि।
भगति जुगति जीमण तसु-तणी, पूरी हउँस साल्ह तसुतणी॥
मास पाँच सउदागर रह्यउ, लेइ मोल घराँनइ वह्यउ।
वहतउ रहतउ पूगळि आवियउ, पिंगळि राजा भगतावियउ॥

दूहा

साँझ समै सउदागरी आप-तणै उतारि।
बइठी गउषै तिणि समइ नयणे निरषी नारि॥

[इसके आगे मूल के ८७, ८९, ९० और ९१ नंबरवाले दूहे हैं।]

चउपई

पिंगळराजा-तणउ षवास, बइठउ थउ सउदागर पासि।
धुरि हूँती माँडीनइ घणी, वात कही मारुवणी-तणी॥
वळतउ सउदागर इम भणइ, साल्हकुमर नळवर गढि रहइ।
मइ धोडा तिहाँकणि वेचिया, ढोला सुँ भाइपण किया॥
तेहनइ घरि माळवणीं नारि अपछर तणी जाणिं अणुहारि।
ढोलारइ तिणस्युँ बहु प्रीति, चतुराई लगि लागौ चीत॥
रूपइ रूडउ ते राजान, कुमर न कोई साल्ह समान।
षरचइ लाष लाष विद्रवे, लाषे-कोडे लेषा हुवइ॥
वसिया पाँच मास, तिणि ठामि, निसि दिनि हूँता ढोला गामि।
समाचार सहि ढोला-तणा, कहिया सउदागर अति घणा॥
मारुवणी तव चिंति चळवळी, छानी वाताँ सहि साँभळी।
साचे मनि सउदागरि (कही), मारुवणी हीयडै गहगही॥

दूहा

[इसके आगे मूल के ६६ और १८९ नंबर के दूहे हैं ।]

* वाँहडियाँ रूँयाडिया धण वंके नयणाँह ।
वासी चंदन महमहै मारू गोरडियाँह ॥

चउपई

सहियर चाली साथइँ करी, मारुवणी आघी संचरी ।
पंषी हुवइ तौ उडी मिलइ, मारुवणी प्रीतम संभरइ ॥

[इसके आगे मूल के ३४, १८, ६० (बडो दूहो), ६२, ६४, ६५, ५३, ६७, और ९८ नंबर के दूहे हैं ।]

चउपई

सउदागर पेषी सुख लहइ, मारूनइ सँभळावी कहइ ।
सिरजनहारइ सइहथि घडी, ए जोडी सारीषी जुडी ॥
किहाँ नरवरगढ साल्हकुमार, रूपवंत नइँ सगुण दातार ।
दानि करनि वळि पंडव जिसउ, भोग पुरंदर सुंदर जिसउ ॥
मारुवणी हुई तसु नारि, तउ सही जनम सफळ दातार ।
जोवन सही जु लहरे जाइ, करउ तेम जिम मेळउ थाइ ॥
सहि वाताँ साँभली षवासि, आव्या पिंगळ राजा पासि ।
वात सहू ढोलानी कही, सउदागर ते तेड्यउ सही ॥
पिंगळराय सहित परिवार, सउदागर पूछइ तिणि वारि ।
वाताँ सगली ढोला-तणी, सउदागरे कही नृप भणी ॥
सहि वाताँ पिंगळ साँभली, आपण हिय विमासइ सही ।
हिव काई त्रेवडि कीजइ साइ, जिणि ढोलउ आवइ इणि ठाइ ॥
देई सीष सउदागर-भणी, ते पहुता धरती आपणी ।
पिंगळरायनइ चिंता घणी, एह वात मारुवणी सुणी ॥
सुणि मारुवणी आवइ घरे, व्याप्यउ विरह मयण बळ धरे ।
सूती सेज करे वेषास, मोडइ अंग, मूँकइ नीसास ॥
सषियाँ साथि वात नवि करइ, वेदन विरह नयण जळ भरइ ।
वीजी सषी गई घरि सही, दीवाधरीं इक पासइ रही ॥

---

* पाठांतर (छ)—ढोरूळियाँ = रूँयाडिया । सहि श्रर ढोलडियांह = धण वंके इ० ।

आडा जडिया विन्हइ किमाड, दीवाधरी बोलावइँ माड ।
आज काई वेदन तसु-तणइ, रम्यो हउँस नहि कारण किणइ ॥
सुणी सुद्धि मै बालँभ-तणी, विरह विथा तिणि छेइ मुझ घणी ।
जीवण पषइ जमारउ जाइ, भाजइ दुष जै मेळउ थाय ॥
सषी नयण तव नीद्रइँ घुळइ, मारूतणी आँषि नवि मिळइ ।
मध्यराति वउळी जेतळइ, ऊमादे चिंतइ तेतळइ ॥
किणि कारणि मारवणी आज, घरे न आवइ केणइ काजि ।
बोलावण करि जे ते तिहाँ, माता आवी मारू जिहाँ ॥
माता छानी ऊभी रहइ, सषी प्रतइ मारवणी कहइ ।
मुझनइ नींद्र न आवइ आज, विरह वियापी मूँकइ लाज ॥
कुंझडियाँ मिळि दूहा कहइ, माता साँभळि छाँनी रहइ ।
वार-वार प्रीतम संभरइ, करि विलाप नै आँसू झरइ ॥

दूहा

[इसके आगे मूल के ५१, ५५, ५६ और ५४ नंबर के दूहे हैं ।]

प्रीतम-तणा सँदेसडा मारुवणी कहियाह ।
माता मन माहि जाणियो विरह वियाप थयाह ॥

[इसके आगे मूल के ७९, ८०, ८१, ८२, और ९६ नंबर के दूहे हैं ।]

चउपई

इणि प्रस्तावे साल्हकुमार, माळवणीसुँ प्रीति अपार ।
बे पहरे उन्हाळा-तणै, पोढ्यउ छे मंदिर छे आपणे ॥
सुषसेजइ माळवणि सँघाति, वैठो करि प्रीति सुष वात ।
तिसडइ माता चंपावती, अलगाथी दीठी आवती ॥
ते देषी लाजियो कुमार, छानी निद्रा करइ ति बार ।
माता आवी ऊभी रही, जाण्यो सुत पोढ्यउ छे सही ॥
वहू कन्हा जणणी इक वार, आरीसउ माँग्यउ तिणि वार ।
देता लागी अधिकी वार, आण्यो मन माहे अहँकार ॥
सासू वहू प्रतइ ऊचरइ, काँई बडाई एवडी करे ।
जो मारवणी अळगी रही, तौ तुँ करे वडाई सही ॥
पिंगळराय-तणी पदमिनी, अळगी रही बहू मुझ-तणी ।
तउ तूँ न्याय करइ अहँकार, इम कहि माता गई ति वारि ॥

वात सहू ढोलइ साँभळी, माळवणी हुई आकुळी।
कंत कन्है मागइ बहुदान, कीजइ एक वातनो दान॥
जे पूगळथी आवइ कोइ, ते पंथी नितु मो वसि होइ।
ढोलइ तेह जि कियो पसाउ, माळवणी इम माँडियउ दाउ॥
आडा रषवाळा आपणा, भूमि घणी वइसास्या घणा।
पूगळथी आवता मारियो, ते पंथी ऊठे राषियो॥
ढोला लगे न आवइ कोइ, मारू-तणी निरति नवि होइ।
इणि तेवडि माळवणी रहइ, पूगळ पंथि न कोइ वहइ॥
पूगळराय ते जाँणी वात, माळवणी इम षेलइ घात।
भीमसेन प्रोहित आपणउ, मन वेसास तेहनइ घणु॥
ते तेडी पिंगळराय कहइ, नळवरि पंथि न कोई वहइ।
ढोलउ तेडावी जइ इहाँ, प्रोहित तुम्हे पधारउ तिहाँ॥
सहु सामहणी प्रोहित करइ, पूगळ माँहि वात विस्तरइ।
प्रोहित ढोला तेडण-भणी, एह वात मारुवणी सुणी॥
मारुवणी सुनि वात विमासि, राते आवी माता पासि।
माता जाइ बापने कह्यउ, थे इणि वात मरम नवि लह्उ॥

[इसके आगे मूल के १०३ और १०४ नंबर के दूहे हैं।]

तीयाँने आप्या तुरी, दीया गरथ अपार।
सीष लेई पिंगळ कन्हा आया मारू पासि॥

[इसके आगे मूल के १०६, ११३, ११४, १९८, २०३, २०४, १६, ४२२, १४८, १४७, १४९, १५१, १५४, १४५, १५६, ११५, १३६, १४६ और १५७ नंबर के दूहे हैं।]

पंषि (? थि)-पसारण जग-भमण कह्या संदेसा भट्ट।
तियाँ देसाँराँ माँणसा कदि हूँ जोवुँ वट्ट॥

[इसके आगे मूल का १०८ नंबर का दूहा है]

चउपई

सगळाई दूहा सीषव्या, सीष मागि मारग-सिरि थया।
पंथि वहंता पूछइ कोइ, देस अनेरा दाषइ सोइ॥
भाट वेसि ते मारगि वहइ, पूगळ नाम प्रगट नवि लियइ।
गढ नळवरनइ आया घाटि, माळवणी तिहाँ वाँधइ वाट॥

तीए झाल्या मारू जाणि, ततषिण बोल्या बीजी वाणि ।
पाँच दिवस ओळगिया तेइ, भाँट जाणीनइ छाँड्या बेउ ॥
रातइ नळवर गढ आविया, ऊतारा कुंभारे किया ।
भाऊ भाट-तणइ आवासि, नाँम-ठाँम पूछइ जण पासि ॥
छाना मिळिया भाऊ-भणी, वात कही पिंगळराय-तणी ।
दीधी भेट कह्या संदेस, म्हे छाना आव्या पंथी (थी) वेसि ॥
वळतउ भाट तियाँनइ कहइ, ए परि जउ माळवणी लहइ ।
माळवणी थाँनुँ माराविस्यइ, सहि त्रेवडि पेरूँ थाइस्यइ ॥
छाना रहउ प्रजापति-घरे, एतउ कहियौ माहरउ करे ।
टाणउ हूँ जिणइ दिने लहेसि, साल्हकुमर तुम्ह भेटावेसि ॥
ते कुंभार-तणइ घरि रहइ, वेळा मिलण-तणी नवि लहइ ।
एक दिवसि माळवणी सही, सषी साथि वनि रमिवा गई ॥
गाइँगीय (त)मधुर स्वर सादि, कोकिल कंठि अनोपम नादि ।
जाणइ छत्रीसे राग विचार, ते जउ तेडावउ इक वार ॥
भाऊ भाट ने साल्हकुमार, बेउँ तेडाव्या माँगिणहार ।
साँझ समइ तेडाया तेह, निरष्या ढोलइ ते नयणेहि ॥
ढोलइ सइमुषि तेडाविया, मान महुत अधिका आपिया ।
मारू दूहा सीषाया जेह, सुसरि कंठि आलाप्या तेह ॥
दूहा सगळा तीए कह्या, ढोलइ ते हियडइ संग्रह्या ।
ढोलउ पूछइ भाउ तम्हा, ए दूहा कहिया केहना ॥
कुण ढोलउ, कुण मारू नारि, रूपइ रूडी राजकुमारि ।
वळतउ भाउ तेहनइ कहइ, तू परणी-तणी सार नवि लहइ ॥
पिंगळ राय-तणी कुँमरी, अपछर-रूप धरी अवतरी ।
ते उपकंठइ पुष्कर-तणइ, परणी ते तइ-बालापणइ ॥

दूहा

ए माणस तिणि पाठव्या साल्हकुमर तसु काजि ।
मालवणीहूँ वींहता मइ मेळविया आज ॥
*ढोलइ नरवर सेरियाँ धण पूगळ गळियाँह ।

* मूल के १८९ और १९० नंबर के दूहे मिलाओ । मूल का १८९ नंबर का दूहा इस (थ) प्रति में ऊपर भी आ चुका है ।

भीनउ लोद महकियउ मारू लोवडियाँह ॥
मारुवणी सइमुषि कह्या दूहा मिसि संदेस ।
मन मारू मेळावा करइ पधारउ उणि देसि ॥
सइमुषि ढोलइ पूछिया मारू-तणा वृतंति ।
ढोलउ नइ भाऊ विन्हइ वेसारी एकंति ॥
भाटे मारुवणी-तणे वारू वरण वखाण ।
मारू जिणि निरषी नहीं जनम तियाँ अप्रमाण ॥
भाऊ ढोलानै कहइ कीजइ सीष पसाउ ।
इयाँरी वात (? ट) उतावळी जोवे पिंगळ राउ ॥
जउ ए मोडा आविस्यइ मुझ पाषइ संदेस ।
तउ मारुवणी मालती पावकि करइ प्रवेस ॥

चउपई

साल्हकुमरनइ करी जुहार, करइ वीनती मागिणिहार ।
बिहुँ माँसनउ अम्हसुँ बोल, करी आवी तुम्ह पासै ढोल ॥
हिव जउ तूँ तिह आविसि नही, मारू अगनि प्रवेसै सही ।
मया करीनइ थे महाराज, सीष पसाउ करउ हम आज ॥
वीस तुरी आपिया ब्रहास, फदिया दिया सहस पंचास ।
वागा वस्त्र अपूरव वळी, संतोषीया, पूगो मन रळी ॥
भाऊ भाट दियउ तिहाँ साथि, आपि अनर्गळि तेहनइ आथि ।
भला ग्रहणा मारू-भणी, मोकळिया प्रीतइ अति घणी ॥
भाऊ भाट नै मागिणहार, सीष मागि चाल्या असवार ।
आहेडा मिसि साल्हकुमार, पहुचावी आव्यो तिणि वार ॥

दूहा

संदेसा सहि सविगता कहियाँ तियाँ सँभाळि ।
माळवणी मनि संकतो सीष देइ ततकाळ ॥
भाऊ भाट, संदेसडउ दिसि सयणाँ कहियाह ।
कीयउ मारू अळजउ बाहाँ दे मिळियाह ॥
विराँसिया विरुओ कियउ रषे इम म करेसि ।
ढोलाँ तणाँ सँदेसडा अळगाँ थकाँ कहेसु ॥

सोरठा

अइ युँ भाजइ एम ढोलउ धण ऊमाहियउ ।
पंष विहुणा एम मन सीचाणउ झडपिस्यइ ॥

[इसके आगे मूल का २०१ नंबर का दूहा है ।]

चउपई

कुमरि चलाव्यो भाउ भाट, मारू मिळिवा-तणउ उमाह ।
चिंता करतौ आव्यो घरे, चालण-तणी सजाई करे ॥
ढोला मनि अति चिंता घणी, षाँति घणी मारुवणी-तणी ।
आवीनइ पौढ्यउ आवासि, माळवणी आवी प्रिय पासि ॥
दीठउ प्रीतम चिंत्ति उदासि, माळवणी पूछियौ षवासि ।
कुमर कहौ किणि कारणि जीये, दीसइ आज उचटियो हीये ॥
जाणउ तुम्ह सुँ कारण केइ, माळवणी संतोषइ सोई ।
वळती कही षवासे वात, भाऊ भाटे षेली घात ॥
पिंगळराय कन्हा आविया, साल्हकुमरि ते तेडाविया ।
पूगळ थळ नै प्रिय भुय धणी, कही सुद्धि मारुवणी-तणी ॥
भाऊ भाट नै साल्हकुमार, अळगा तेडी मागिणहार ।
समाचार सुणि मारू-तणा, ढोलइ हरष किया अति घणा ॥
सीष देई ते पहुचाविया, भाऊ भाट पणि साथइ दिया ।
घणा गरथ दिया तिणभणी, करइ सजाई हालण-तणी ॥
कही षवासे सगळी वात, माळवणी आवी प्रिय पासि ।
हासा मिसी पूछइ विरतंत, कँइ सचींता दीसउ कंत ॥

दूहा

[इसके आगे मूल के २१६, २१७, २२१, २२३, २२६, २२५, २३०-२२८ (प्रथम पंक्ति २३० का पूर्वार्ध एवं द्वितीय पंक्ति २२८ का पूर्वार्ध), २२९, २३२, २३३, २३६, २३८, २३६, २४०, २४१, २४२, २४३, २४४, २५१, २५०, २५६, २७०, २६१, २५७, २६३, २५२, २५३, २६२, २७३, २७५ और २७७ नंबर के दूहे हैं ।]

चउपई

मालवणीसुँ प्रेम अपार, ढोलउ रहियउ मास बे चारि ।
सुंदरि नेह विलूधउ सही, तोइ मारुवणी वीसारइ नही ॥

इणि अवसरि ते मागिणिहार, सरि सउ भाऊ भाट अपार ।
त्रिणि मास ते मारग वही, पूगळि नयरि पधारया सही ॥
साम्हउ आयउ पिंगळराय, भगति घणी मंडइ बहु भाइ ।
मनवंछित ऊतारा दीया, भोजन विगति कणहता दीया ॥
समाचार सहि ढोला-तणा, विस्तरि ईणइ कहिया घणा ।
ढोलै सीष कही मुझ-भणी, कहियो सामहणी आणा-तणी ॥
जाँहूँ आवुँ एणइ ठामि, ताँ थे रहियो पूगळ गामि ।
दीया ग्रहणा मारू-तणा, हरष थया मनि सगळा घणा ॥
इणि प्रस्तावइ साल्हकुमार, चिंता चालण-तणी अपार ।
माळवणी मनि भगतावीयो, तेतळइ दसराहउ आवीयउ ॥
ढोलौ माळवणीनइ कहइ, हिव सव कांई ब्राँटाँ बहइ ।
हिव जइ हसिनइ द्यौ आदेस, तो पहुँचा मारवणी-देसि ॥
माळवणी ए परि साँभळी, आप हुई विरहाकुळी ।
कंता साँभळि साल्हकुमार, प्रीतम प्रीय जीवन नर नारि ॥

[इसके आगे मूल के २७९, २८१, ३७०, २८३, ३०४, ३०५, ३०७, ३०८, ३११, ३४३, ३१६, ३२२, ३२३-३१७ (प्रथम पंक्ति ३२३ का पूर्वार्ध एवं द्वितीय पंक्ति ३१७ उत्तरार्ध), ३१८ और ३२० नंबर के दूहे हैं ।]

* करहउ रहइ न वारियउ झळफळ लग्गी काइ ।
ऊन्हाँ डाँभ दिवारिसी डाँभाँथी मरि जाऊँ ॥
करहा माळवणी कहइ संभळि बोल्यो सब्ब ।
तातो लोहड ताहरइ वळि लागो ना बद्ध ॥

चउपई

इम करहा समझावी नारि, माळवणी आवी घरि बारि ।
ढोलउ करहउ आँण्यौ जेथ, कूडइ मनि पग राषइ सोइ ॥
साल्हकुमर मनि चिंता वसी, कहे हव त्रेवडि कीजइ किसी ।
तेडी आण्या तिणि लोहार, आँका दिवरावणने काजि ॥
लेइ लोहड ताता कीया, लोहार हाथे झालीयाँ ।
आवी कहइ माळवणी तिसइ, कोई रषे करहा डाँभिस्यइ ॥

* मूल का ३२१ नंबर का दूहा मिलाओ ।

इणि गामे नर सहु अजाग, जाणइ नही करइ संधाण।
कारी वीजी सहु परिहरउ, एतउ कहियउ माँहरउ करउ॥

दूहा

[इसके आगे मूल के ३३३ और ३३५ नंबर के दूहे हैं।]

*रे ढाँढाँ-करि छोहड़ी करइ करहाँरी काणि।
ऊकरडे डोका चुणे सो आप डँभायो आणि॥

चउपई

करहउ मूँक्यउ वरग मझारि, प्रिय आग (?गे) इम जंपइ नारि।
जउ हालिवा कीयउ मन घरउ, तउ एतउ कहियउ माहरउ करउ॥
जाँ लगि तेह नइ तूँ प्रिय पासि, ताँ लगि प्रीत म चडे व्रहासि।
झाझी निद्रा व्यापइ अंगि, तिणि वेळ प्रिय चड्यउ पवंगि॥
प्री पासे इण परि मागती, पनरह दीह रही जागती।
झाझी नींद्रे व्यापी नारि, तउ करहउ आणे झेम्यउ बारि॥
सोनइया पाहौरा साथि, सोवन-जडित कंवडी हाथि।
सोनारा घूघरडा गळें, पंषीनी परि मारगि पुळइ॥

दूहा

[इसके आगे मूल के ३४५, ३४८, ३४९, ३६३, ३६८, ३६६, ३७१, ३६२, ३८१, ३८६, ३८७, ३८८, ३८९ और ३९० नंबर के दूहे हैं।]

थळ मत्थइ ऊजासडउ जाणे उग्यउ तूर।
चकवा मनि आणँद हुऔ किरण पसाऱ्यउ सूर॥

[इसके आगे मूल के ३९१, ३९२, ३९३, ३७५, ३७७, ३९७ और ३९९ नंबर के दूहे हैं।]

चउपई

पूगळ पंथइ ढोलउ वहइ, सूडानइ माळवणी कहइ।
जिम तिम करिहि नइ पाछउ वाळि, पंषी ए पडिवजउ पाळि॥
तव आकासि सूअउ ऊडियो, पहरि एक चंदेरी गयउ।
ढोलउ सरवरि दाँतणि करइ, सूडौ जाए इम ऊचरइ॥

* मूल का ३३६ नंबर का दूहा मिलाओ।

दूहा

[इसके आगे मूल के ४०२, ४०६ और ४०८ नंबर के दूहे हैं ।]

चउपई

सूडौ तिहाँथी पाछउ वळै, आवे माळवणीनइ मिळै ।
ढोला-तणी वात सहि कही, माळीवणी अणबोली रही ॥
सरवरथी ढोलौ ऊतरे, करह पंषि जिम पगला भरे ।
चंदेरी वहुटे आवीयो, तिसइ वणिक इक बोलावियो ॥
कुण परदेसी जाइसि किहाँ, माहरइ काम अछे इक तिहाँ ।
ढोलउ तउ राष्यउ नवि रहे, विवहारियौ ति वारइ कहइ ॥
जो कागळ माहरउ ले जाइ, आपाँ सोना माँगउ दाइ ।
जोयण वीस अछइ ते गाम, मुझ कागळ आयउ तिणि ठामि ॥
ढोलउ तेहनइ कहइ ति वारि, ऊभा रहण तणी नही वार ।
विवहारियउ करे वेसास, तूँ सापुरिस, म मूँकि निरास ॥
ढोलउ कहइ, हो व्यवहारिया, जो कारिज जोवे सारिया ।
ऊठ-तणइ पूठइ थिर थापि, कागळ लिखिनइ मुझनइ आपि ॥
ऊभे ऊठि चडे ते साह, कागळ लिखण-तणी तसु आहि ।
ढोलउ करह चलावइ सुषइँ, ऊपरि वइठउ कागळ लिखइ ॥
कागळ लिखिनइ पूरा कीया, तिसइ तेह गामइ आविया ।
साह उतारी पूछइ कोइ, एह ज गाम सही ते होइ ॥
विवहारिया असंभम वात, जाँणी तास फिरी तन धात ।
एती वेळा किम आवियो, हियडउ फूटि हंस ऊडियौ ॥
ढोलउ पुष्कर सरवर-तीरि, ततषिण करहउ पावियो नीर ।
कुण सरवर, नर इक पूछियो, तिणि पुष्कर तीरथ दाषियो ॥
ढोलउ कहइ सरोवर थँभि, आषर लिष्या पुरष दाषंति ।
तिये साथि थई देषियो, परण्या ते नामउ वाँचियउ ॥

दूहा

[इसके आगे मूल के ४२६, ४२७, ४३२ और ४२८ नंबर के दूहे हैं ।]

जहाँ चीना कर कुँवळा नीली लूँव लहक्क ।
ते जो वन लंघन करे मरे न चरही अक्क ॥

[इसके आगे मूल का ४२४ नंबर का दूहा है ।]

पिंगळ राजा रूसव्यौ, चारण कोई चाड।
साल्हकुमर तिणि ओलष्यो, तव बोलावियो माड ॥
[इसके आगे मूल के ४४२ और ४४४ नंबर के दूहे हैं।]
एक ज चारण पंथि सिरि, जोई करहा वट्ट।
ढोलउ चलतउ देषि करि, तिणि मनि थयउ उचट्ट ॥

चउपई

साल्हकुमर मुझ वचन जु सुणउ, ए चारण ऊमरराय-तणउ।
मारू ते माँगण आवियो, पिंगळ ते देसा काढियो ॥
ऊमर मारवणीनइ काजि, घणा दुष देषइ महाराज।
पिंगळराय न करइ नातरउ, मोटाँनइ न पड़इ पाँतरउ ॥
ढोला तुझ अवाज सु सुणी, कुँमरी मूँ क्यों हूँ तुझ-भणी।
जउ मारू अवगुण साँभळौ (?ळै), तौ किम ढौलो पाछउ वळै ॥
ढोला साँभळि माहरी वात, ऊमर षेलेस्यइ घणी घात।
मारवणीसुँ लागो मोह, तुझसुँ घणी माडिस्यइ द्रोह ॥
[इसके आगे मूल का ४५० नंबर का दूहा है।]

चउपई

तिणि वातइ संभळि गहगह्यो, ढोलउ पूगळि वाटइ वहइ।
बारहट्ट पिंगळराय-तणो, गामि एक आव्यउ प्राहुणउ ॥
तिणि ढोलउ दीठउ महाराज, भाटे आवि कीयो सुभराज।
ऊठ षाँचिनइ ऊभो रह्यो, पिंगळरा संदेसा कहइ ॥
समाचार मारवणी-तणा, कहिया हरष थया अति घणा।
भाऊभाट ने माँगिणहार, आवा जउ छइ साल्हकुमार ॥

दूहा

जउ तइ दिठी मारुइ, को सहिनाण प्रगट्ट।
गळि षोलाह रूपको, सो झाषो सोवन्न ॥
[इसके आगे मूल के ४७१ और ४५६ नंबर के दूहे हैं।]
उर जु गयंवर पंग धणु, दाडिम दंत सुतेज।
कुंझी भाषस (?) गोरियाँ, षंजन जेहा नेत्र ॥
सदा उलकी नकि सळि, झीणी लंक मझाह।
दंडा सुत्ता सप्प जि, षंजी कढे साह ॥
[इसके आगे मूल के ४७४, ४६८, ४८४, ४८५ और ४७५ नंबर के।]

*डीभू लंक, मराळ गति, पिक-सर जेही भख्ख।
ढोला, एही मारूई, चाही लागे चख्ख॥

[इसके आगे मूल के ४६०, ४७०, ४८२, ४६५, ४७१ और ४८७ नंबर के दूहे हैं।]

चउपई

जेता दूहा चारण कह्या, सोनईया तेता तिणि लह्या।
चारण ते तिणि थान कि राह्यउ, ढोलउ पूगळि वाटइ वह्यउ॥
थाकउ करहउ आळस करइ, भारी भुँइ पग माठा भरइ।
थळ मोटा तिणि सुसतउ वहइ, ढोला त करहानइ कहइ॥

दूहा

[इसके आगे मूल के ४६१, ४६२, ४६३, ४६४, ४६५, ४६७, ४६८, ५००; ५२१ और ५२२ नंबर के दूहे हैं।]

चउपई

जिणि दिन ढोलउ वाटइ वहइ, तिणि दिन मारू सहिणउ लहइ।
मिलियो प्रीतम नींद्र मँझारि, माता आगळि कहइ विचार॥

दूहा

[इसके आगे मूल का ५०६ नंबर का दूहा है।]

सारति सद्दारेह, भूषउ माँस पत्राखियाँ।
अडियो अंत्रारेह, जाणे ढोलउ आवियौ॥
†सुरहि सुंगधी वाट, जाणे फिर मोती जड्या।
सूती माझिम रात्रि, जाणे ढोलौ आवियौ॥

[इसके आगे मूल के ५१२ और ५१३ नंबर के दूहे हैं।]

चउपई

इणि परि सुहिणउ लाधउ राति, मातानइ कहियो परभाति।
कही विचार सषी ए सही, ढोलउ तेउ पधारइ वही॥
मारू तिणि दिनि हरष अपार, साथइँ सषी तेणि परिवार।
समी साँझनी वेळा थई, कूआ कंठइँ रमिवा गई॥

* मूल के ४६० और ४५८ नंबर के दूहे मिलाओ।

† मूल के ५०५ और ५०७ नंबर के दूहे मिलाओ।

डावउ नेत्र फरूक्यउ तिसइ, सहियर आगइ कहिनइ हसइ ।
मनि संतोष त्रींति उल्हसइ, आज सखी प्रिय-मेळउ हुस्यइ ॥
तिणि वेळा आणंद उल्हासि, आव्यो ढोलउ पूगळ पासि ।
मालइ वइठा हाळी रहइ, ढोलउ तिणि थळि पूठइ वहइ ॥
थाकउ करह कहूका करइ, थळ भारी पग माठा भरइ ।
नवउ कहूको सुणि गहगहइ, हाळी नारी प्रति इम कहइ ॥

दूहा

केहउ करहउ कहूकियउ, झाझा मंझि वणाह ।
ढोलइ ते कंबावियो, ऊमाहियो धणाह ॥

चउपई

कोहरि कोळाहळ वहु सुणी, ढोलउ आयो पाणी-भणी ।
सगळे तिणि साम्हौ जोईयो, आणि अवाहि करहो ढोइयौ ॥
कोउ लखे नहीं तिणी वार, मारू ऊभी कूपदुवारि ।
करहउ कूवइ पीवइ अंब, किणे अजाणे वाही कंब ॥
लागी कंब करह कूदियउ, रयबारी संधीगौ कीयउ ।
मारू ढोलइ परणी जेथ, सरही दीकर मेल्हाण तेथ ॥
सही ए साल्हकुवर तेहनउ, दीसइ तेज रूप एहनउ ।
ढोलउ हूँतउ आवणहार, उभे लोके कियो जुहार ॥

दूहा

जिणि काँबे परहो कियौ, तिणि तो करह म मार ।
कंब चडका ते सहइ, अवराँ लहइ गमार ॥

[इसके आगे मूल का ५२३ नंबर का दूहा है ।]

ढाँचे पाणी झाडि घर, संबळ सुरहि घणेहि ।
साइ सकोडी मारवी, ऊचळि गई वणेहि ॥
कामिणि मारू कारणे, नळवर छंड्यउ राज ।
सुधण सुहावी हूँ कहूँ, मूंध न मिळिस्यइ आज ॥

[इसके आगे मूल के ५२४ और ३२५ नंबर के दूहे हैं ।]

जिणि कारणि थळ लंघिया, तीयाँ चित्त न कोइ ।
साजण केहा कुव सरि, करहउ त्रिसियउ होइ ॥
करहा पाणी खंचि पीउ, जउ ढोलाकउ होइ ।
जउ म्हे जाणत वालहउ, करह न मारत कोइ ॥

चउपई

सहियर ढोलउ हसिनइ कहइ, ढोला मारवणी किम लहइ।
जउ साचउ वाल्हउ सुजाण, तउ मारवणी कहि अहिनाण ॥

दूहा

सव्वे लोवडियाळियाँ, न जाणु घण काइ।
उजल-दंती मारुवी, लसण जु डावइ पाइ ॥
सव्वे लोवडवाळियाँ, सव्वाँ ही गळि हार।
एकणि मारू वाहिरा, सव्वाँ साथि जुहार ॥

चउपई

कूवा कंठइ सहु परिवार, सगळाँ मनि आणंद अपार।
मारुवणी तिहाँ घूँघट करी, सहियर झूल माहि संचरी ॥
सेवक एक वधावा भणी, मेल्ह्यो पिंगळ नयरी भणी।
ढोल पधार्‌यउ कूवा कंठि, पिंगळ मनि अधिक उतकंठ ॥
राजा प्रजा सहू हरषिया, हयवर एक वधाई दिया।
साम्हो चड्यउ घणइ मंडाणि, ढोला मिलण-तणइ परियाण ॥
माथइ मेघाडंबर छत्र, वाजइ पंच सवद वाजित्र।
कूवा कंठइ राय परिवार, मिलि ढोलानइ कीयो जुहार ॥
समाचार नळराजा-तणा, पिंगळ राजा पूछ्या घणा।
ढोलउ राजा साथइ करी, घरे पधार्‍या आणँद धरी ॥
सुरहा तेल-तणा माँजिणा, अंघोलइ सीतल वीजणा।
ऊगटि चंदन केसरि घोळ, करइयु भोजन रंगि तँबोळ ॥
हरषित थयो सहु परिवार, साँझइ कीजइ सहू सिणगार।
सोळ सिँगार सझइ मारुई, जाणे परतषि अपछर हुई ॥

दूहा

[इसके आगे मूल का ५३५ नंबर का दूहा है]

*ते साजण पावधरिया, जे जोवंती वाट।
ते साजण नयणे देषिया, मनि हूओ उच्छाह ॥
तनि सिंगारइ मारुई, सिंगार्‍यउ सहू साथ।
अंगइ चंदन महमहइ, वीडउ सोहइ हाथि ॥

*मूल का ५४१ नंबर का दूहा मिलाओ।

*सखी वउळावी घरि गई, प्रिय मिलियो एकंति ।
हसतां ढोलउ चमकियो, वीजुळि खिवइ जु दंत ॥

चउपई

मारुवणी ढोलउ मनि रंगि, प्रातइँ सुखि बैठा पल्यंकि ।
प्रेमि प्रसंगे वातां करइ, अबळा प्रति ढोलउ इम कहइ ॥
मारवणी तुझ माँगिणहार, आव्या नळवर गढ जिणि वार ।
लाधी निरति पछइ तुझ-तणी, ऊमाहो हूओ तुझ-भणी ॥
एह गुनह खमियो माहरउ, मय वियोग कीयो ताहरउ ।
निरति पखइ कुण जाणइ लोइ, अणजाण्याँ नर दोस न होइ ॥
मावीत्रे पहिलउ वीवाह, बाळपणइ कीधउ उच्छाह ।
हूँ परण्यउ जाणु ही नहीं, तेह वात सहु वीसरि गई ॥
मइ माळवणी परिणी नारि, तिणिसुं बाधी प्रीति अपार ।
परण्या पछइ निरति तुझ लही, पाछइ परवसि रहियो सही ॥
पहिलइ भवे पाप मइ किया, तउ तुझ विन एता दिन गया ।
सयमुखि करता करइ वखाण, जीवित जनम आज परियाण ॥
ढोला प्रति मारूवी नवइ, स्वामी, मेळउ सिरज्यउ हुवइ ।
तुम्हे परणि पहुता नळवरइँ, पूगळ अम्हे आविया उरइ ॥
अंतर विचि हूयउ अति घणउ, संदेस्यउ नाव्यौ तुम-तणौ ।
हूँ आवी जोवन वइ देह, संतावइ मुझ काम ज देह ॥
जोई तुम्ह माणसरी वाट, मूँक्या बाँभण पंथी भाट ।
वळतउ कोई आव नहीं, घड़ी चीत मावीत्रे हुई ॥
तिणि वेळा ऊमर सूमरउ, मुझ परणिवा कियउ मन खरउ ।
मूक्या पिंगळनइ परधान, आवइ घणा करह केकाण ॥
कहियउ तुम्हे माहरउ करउ, मारू मुझ कीजउ नातरउ ।
आपुं तउ हूँ आधौ राज, इणि परि घणा कीया आगाज ॥
कूडी वात तुम्हारी घणी, फोकट ऊडावी मुझ-भणी ।
मात-पिता मुझने पूछियो, वळतउ मइँ ऊतर आपियो ॥
इणि भवि मुझ ढोलउ भरतार; प्रीतम जीवन-प्राण-अधार ।
एह वातनउ निश्चय करु, वीजउ वीजइ भवि आदरुं ॥

---

* मूल का ५४२ नंबर का दूहा मिलाओ ।

ऊँमर अजी लगी ते षपइ, रयणि दिवसि जोगी ज्यउँ जपइ ।
एह वात मारवणी कही, ढोलउ मनि संतोष्यो सही ॥
भाऊ भाट-तणी मनि वात, ढोला-तणी वसी मनि घात ।
मागणहारउ दूहउ कहियउ, तिणि ढोलइ दूहइ चिति रह्यउ ॥
कणयर कंब जिसी पातळी, प्रिय वियोग षीणी पातळी ।
दीसइ छइ अति सुंदर देह, ढोलारइ मनि पड़यउ सँदेह ॥

दूहा

'पहीं भमंतउ जो मिलइ, तउ तूँ आषे वत्त ।
धण कणयररी कंब युं, सूकी तोय सुरत्त' ॥

चउपई

ढोलउ ते दूहउ ऊचरइ, मारुवणी मनि संका करइ ।
प्रीतम तुझ सरिषा मनि वहइ, ढोलउ मारू प्रति इम कहइ ॥

दूहा

[इसके आगे मूल के ५४६, ५४७, ५४८, ५४६ नम्बर के दूहे हैं ।]

चउपई

ढोला मनि अति आणँद घणा, वचन सुण्या चतुराई-तणा ।
मारू बोलंतां मुष-सास, कमल भमर कसतूरी वास ॥

दूहा

[इसके आगे मूल के ५५२, ५५७, ५५१, ५५१, ५२८, ५६३ और ५५४ नंबर के दूहे हैं ।]

चउपई

भोजन नित नित नवला करइ, अधिकी भगति जुगति आदरइ ।
मारवणी मनि भावइँ षरइ, पनरह दीह रह्यउ सासरइ ॥
भाऊ भाट कन्हइ नितु रहइ, एक दिवस ढोलउ इम कहइ ।
करउ सजाई चालण-तणी, जिम पहुचाँ नळवरगढ-भणी ॥
भाऊ भाट कहिउ अति घणउ, कीजइ मारुवणी-अउझणइ ।
पिंगळ राय सजाई करइ, ऊमादे इण परि ऊचरइ ॥
सोवन रतन-जडित सिणगार, पट्टकूळ मुगताफळ हार ।
सोळ सिगार सुंदर सुषवेस, ए सगळा, प्रिय, हूँ आपेसि ॥
अरथ गरथ करह केकाण, षाग षयंग सुद्ध खुरसाण ।
ए सगळउ ही पिंगल-तणउ, माँड्यउ समहूरति उँझणउ ॥

तिणि वेळा ऊमर-सूमरउ, इणि वेळा जो थळ सूमरउ ।
मारगि सिरि ढोलउ मारेसि, मारवणी घरिवास करेसि ॥
इसउ आळोच करइ सूमरउ, नगर पासि भमइ एकलउ ।
देस पूगळ नगरी भमइ, ढोलउ मारू रंगइ रमइँ ॥
जिणि वेळा ढोलउ नीकळइ, केता वउळावा साथइ करइ ।
सोझ करेवउ इणे वातरउ, पडिस्यइ रषे तुम्हाँ पाँतरउ ॥
तो हूँ ऊमर साचउ राय, इणि वेळा जउ खेलउँ दाउ ।
च्यारि पहुर मारगिलागिस्यइ, साँझ समय नळवर जाइस्यइ ॥
मास एक रह्यउ सासरइ, चालण तणी सजाई करइ ।
सहू अउझवणउ साथइ करी, माँगे सीष हरष मनि धरी ॥
सगा सणीजा एकणि संगि, मारू मोकळिवी मनि रंगि ।
प्रस्थानौ समहूरति कियउ, पिंगळ पहुचावा आवियो ॥
साथइ सउ कीया असवार, कीयउ हलाणउ मंगळचार ।
संवळ सीरावण सहु करी, मुकळावइ ऊमा देवडी ॥
सपरिवार मिल्या सहु कोइ, करहउ वळे पलाण्यउ सोइ ।
पूगळ नयरीहूँ चालिया, मात पिता सहु मुकळाविया ॥
जोयण च्यारि इक दिन वह्या, थाकउ साथ, थळ माथइ रह्या ।
असवारे ऊतारा कीया, भोजन परिवळ भगताविया ॥
साँझ पडी आथमियो सूर, करइ साथरा विछावणा भूर ।
ढोला पाषिलि चउकी फिरइ, मारू स्त्रीसुं निद्रा करइ ॥
घणी वार जागी धण कंत, निद्रा भरि पउढ्या निश्चंत ।
तिणि भुइँ फिरतउ आयो नाग, आयो ढोला-तणइ अभागि ॥

दूहा

[इसके आगे मूल के ६००, ६०१, ६०२, ६०३, ६०५, ६०६, ६०७, ६०८ और ६१० नंबर के दूहे हैं ।]

चउपई

वोळावे मन विलषा किया, देवसूत्र एहवा थया ।
वार ढोलउ करइ वेषास, वळि-वळि जोयइ मारू-सास ॥
सहि साथी समझावइ घणुं, वीनती एक अम्हारी सुणउ ।
पिंगलरायनी राजकुमारि, चंपावती मारू अणुहारि ॥

मारू त्रिहुँ वरसाँ आँतरउ, आवो ज्यउँ कीजइ नातरउ।
आपाँ सगपण उभउ रहइ, वळतउ ढोलउ ताँह प्रति कहइ॥
इण भवि मारवणी मुझ नारि, सहइथि दीधी सिरजनहार।
साइ जो परमेसर संग्रही, मुझ मरणउ इण साथइ सही॥
पनरह वरस विछोहइउ हूओ, घणइ कष्टि मेळावउ थयउ।
वळे विछोही जउ करतारि, तउ इण भवि मुझ एह ज नारि॥
वउळाओ प्रति ढोलउ कहइ, ए दुष जांवेनइ कुण सहइ।
एह्व र वरत्यउ जोडउ हाथि, पइसिसि पावक मारू साथि॥
वउळावू सगळा विलविलइ, ढोलउ किउही पाछउ वळइ।
साथी मारू दागण भणीं, घणु' कहइ पणि न रहइ धणो॥
षरी षरी सहि फीका थया, वउळाउ सहि पूगळनइ वळ्या।
ढोलउ मारू दीवाधरी, रहिया छे थळ माथइ करी॥
साँझ थई आथमणी वार, ऊतास्था मारू सिणगार।
करहउ आणे वइसारियउ, सगळे ग्रहणे सिणगारियउ॥
हारडोर पूठइ बंधिया, सबळ भाग सीवे संधिया।
करहा, मुझ वात ज तूँ सुणे, नळवर गढि जाए घर-भणी॥
सजे समूझे साल्हकुमार, वइठा विह माहे तिण वार।
अगनि जगाडी दीवाधरी, करहा-तणी डोरि साँभरी॥
मत करहउँ कंटाळइ झाडि, चरतौ विलगो रहिस्ये डाळि।
ते देषी करहउ आरडइ, रंन्नि जाणि दुषियो नर रडइ॥
उणि वेळा कोई जोगींद्र, आयउ तिहाँ करतउ आणंद।
मंत्र जंत्र जाणइ अति घणा, ओषद नागा पीणा-तणा॥
तिणि साथइँ सुंदरि जोगिणी, संजोगिणी मारवणी-तणी।
ते रमता आव्या तिणि थानि, ढोलउ ओळषियो सहिनाणि॥
जोगी ढोला प्रति इम कहइ, काँइ रे काइर फोकट मरइ।
स्त्री पूठइँ अस्त्री परजळइ, पणि नारी पूठि पुरष नवि बळइ॥
आ ते माँडी अउँली रीति, बात न वेइसइ ढोला चीति।
ढोलउ कहइ, आयस, सुणि बात, कोजइ नहीं पराई ताति॥
जोगिणि जोगी प्रति इम कहइ, आपाँ प्रीति जु अविहड रहे।
जे तूँ जीवाडइ ए नारि, वालँभ ए वीनती अवधारि॥
जउ ए स्त्री जीवाडिसि नही, तउ हुं प्राण तजेस्युं सही।
पासइ ओषध पीणा-तणा, मंत्र जंत्र तुझ पासइ घणा॥

जोगणि हठइ मनावी वात, ओषध-गोळी वाटी सात ।
पाणी सरिस वलेपन किया, पाणी विण ऊतरि नवि गया ॥
पाणी पायउ गुणनइ मंत्र, वळी अनेरा कीया तंत्र ।
मारवणी तिहाँ साजी थई, जोगिणि मनि हरषी गहगही ॥
ढोलउ आणंदियउ अपार, जोगिणि दीधउ नवसर हार ।
जोगीनइँ सोवन- साँकळा, पहिराया अति ऊतावळा ॥
जोगिणि जोगी वहता वाट, ढोला-तणउ भागउ उचाट ।
मारू मनि विमणो उछरंग, साचइ छइ मइ प्रियस्युं रंग ॥
ढोलइ तेडी दीवाधरी, वात आ ज पूगळ विस्तरी ।
सगलाँनइ मनि छइ बहु सोग, ढोला-मारू-तणउ वियोग ॥
तूँ हिव पूगळ-भणी पधारि, मारू जीवी मंत्र अधारि ।
ते आव्या दीठो विरतंत, मारवणी धण ढोला कंत ॥
तिणिसुं मुंकी दीवाधरी, आवी पूगळि आणँद करी ।
पिंगळ राय वयण अवधारि, जीवी मारू राजकुमारि ॥
तेडाया ते बंभण राय, ते बोलइ सुणि पिंगळ-राय ।
मारवणी प्री ढोलउ नाह, म्हे दीठा अति घणइ उच्छाहि ॥
नगर माँहि वाजइ नीसाण, घणा महोछव घणा मँडाण ।
तळिया तोरण वंदरमाळ, गावइ गीइ मधुर-सुर बाळ ॥
लोक सहू मनि हरषित थया, दुख दोहग दुरइ टळि गया ।
पूगळ माहि वधावा घणा, हिव ऊमर करइ सा परि सुणउ ॥
हेरू पूगळ ऊमर-तणा, नित छाना रहता अति घणा ।
ढोलउ जिणि दिनि हालणहार, साथइ दीठा सो असवार ॥
हेरू जाइ ऊमरनइ कहइ, ढोलउ एकणि ऊठइ वहइ ।
जावइ छइ लीधइ अउझणइ, प्राण नहीं......आपणौ ॥
मारू तणउ मरण साँभळी, वउळाऊ आव्या सहि वळी ।
हेरू जाइनै ऊमर कहै, पुणि मारवणी कुण दुष सहइ ॥
त्रीजा हेरू आव्या राति, मारवणी जीवी ए वात ।
ढोलउ लियै जाइ एकलो, हिव धाडउ कीजइ तउ भलउ ॥
मनि हरष्यउ ऊमर सूमरउ, मारू पँति मन कीयो षरउ ।
सुभट सहु नै साथइ करी, ऊमर चढियो आणँद धरी ॥
तिणि थळि रातइ ढोलउ रह्यउ, ऊमर तिणि थळि पूठइ वह्या ।
आगळि जाइ विषमा घाट, ऊमर घेलि सिरि बंधी वाट ॥

ढोलउ मारगि करहउ चढ्यो, आडो एक विषम थळ अड्यौ ।
कोई एक थल आडौ फिरइ, मारू देषी इम ऊचरइ ॥

दूहा

[इसके आगे मूल का ६२७ नंबर का दूहा है ।]

चउपई

मारगि वहताँ साँझी वार, ऊतरिया दीठा असवार ।
ऊमर ढोलउ जाणइ नहीं, ढोलउ आवि मराणउ सही ॥
ऊँमर मन मद्दे हरषियो, जिम ढोलो नयणे निरषियउ ।
अणबोला रहियो सहु कोइ, जिम ढोलउ वेसासै होइ ॥
सगळे मनइ विमासी बात, वारू आइ जुड़ी छइ घात ।
ढोलउ तितरउ आडो वहइ, ऊमर ऊठीनइ इम कहइ ॥
काँइ, ठकुराळा, आडउ वहइ, आवउ इहा जु वइसी रहइ ।
म्हे पणि जास्याँ आपणि काजि, जायो तुम्हे तुम्हारइ ठामि ॥
ऊमर मनि मारवणी-मोह, ढोला उपरि माँड्यउ द्रोह ।
कूडइ मनि आदर द्यइ घणुं, करह उपंषी ढोला-तणउ ॥
आदर देई आडा फिरया, करहउ देषीनइ ऊतर्या ।
मुहरी झार्ली मारू हाथि, कूद्यो करह पटोळी साथि ॥
सहु को वइठा एकणि पंति, आगइ डूंब बजावइ तंति ।
गावइ गायण मधुरइ सादि, मारुवणी लीणी तिणि नादि ॥
साथइ झाझा मद अयराक, मने द्रोहनइ पाई छाक ।
ढोलउ अति परिघळ मद पीयइ, वीजा आछी छाका वहइ ॥
ऊमर छाक्यउ मुइडइ कहइ, ते डूमणी सहू परि लहइ ।
ढोला नइ मारुवणी-तणी, पीहररी साथइ डूँमणी ॥
छाक्या सगळा वहकल करइँ, मारूँवणी लेषा मनि धरइ ।
तिणि वेळाँ गावताँ डूँमणी, करी साँमि मारुवणी-भणी ॥

दूहा

[इसके आगे मूल के ६३०, ६३१ और ६३२ नंबर के दूहे हैं ।]

चउपई

दूहउ मारवणी साँभळ्यौ, पइठी, झोक चित्त झळपळ्यौ ।
आकुळ व्याकुळ चीता करइ, डूमणी वळी ऊचरइ ॥

दूहा

[इसके आगे मूल का ६३३ नंबर का दूहा है।]

चउपई

मारवणी मनि चिंता घणी, करहा-भणी काँब तिणि हणी।
करहउ त्रा(?ना)ठउ अळगउ जाइ, ते झालण वीजउ ऊ जाइ॥
जउ आपण पहुचे घर धणी, इणि करहा झालेवा-भणी।
तउ करहउ आणेस्यइ सही, को वीजउ झालेस्यइ नहीं॥
सहि ठकुराळा ऊभा रहउ, ढोलानइ ऊमर इम कहइ।
करहउ झाली आणउ उरहउ, रषे अळगउ जायेस्यइ परहउ॥
ढोले जाई झाल्यउ हाथ, मारवणी पुणि आई साथि।
करहउ झेकी ऊभउ रह(इ), मारवणी ढोलानइ कहइ॥
कंता, ए ऊमर-सूमरउ, तुझ मारिवा मन कीयउ षरउ।
गीत माँहि कहियउ डूँमणी, मद पावे तो मारण-भणी॥
स्वामी, संभळि माहरी बात, पहुर एक वउळी छइ राति।
त्रालँभ, हिव तूँ म करि विलंब, करहइ चड्यउ त्र जोडउ कंत्र॥
ढोला-तणइ वात मनि वसी, करहउ पलाण्यउ कसणउ कसी।
चड्यउ ढोलउ पागडा समारि, पूठइ चडी मारुई नारि॥
छोडी नहीं कूँटि वीसरी, करह चडूक्यउ काँबे करी।
ए वन वेगि पंषो जिम वहइ, ऊमर देषीनइ इम कहइ॥

दूहा

[इसके आगे मूल के ६३९ और ६४० नंबर के दूहे हैं।]

चउपई

ऊमर अति ऊतावळि करे, पवँग पयँग सूधा पाषरइ।
आपण चढियो ढोला केडि, वहताँ पडिया ऊजड़ वेडि॥
ढोलानइ आपडइ जि कोइ, अधराजियो हमारो होईं।
के मारइ, कइ आडउ फिरइ, ते वेटी माहरइ वरइ॥
ऊमर अति आरहडा षडइ, तउ ढोलउ किम ही नापडइ।
पंषीनी परि ऊड्यउ जाइ, करहउ मिळियो वाउवाइ॥
आरहडा त्रिहुँ दीहाँ लगइँ, षडिया तोइ न आपडि सकइ।
तउ ही तुरी पुळाई जाइ, अळगा पंथी देषी थाइ॥

ढोलइ कूँख्यइ करहइ चडिउ, ऊमर तोही नवि आपड्यउ ।
मारवणी मनि चिंता करइ, माहरा पग रखे प्रिय मरइ ।।
ढोलउ पूछइ, काँइ धण रुई, किणि कारणि मनि विलषी थई ।
स्वामी, हयवर ऊमर-तणा, ताजी तरळ तुरकी घणा ।।
करहउ मति पंथइ थाकिस्यइ, तउ कळंक मुझनइ लागिस्यइ ।
कहिस्यइ मारवणीकइ काजि, ऊमरि साल्ह विणास्यउ आज ।।
वळतउ ढोलउ धणनइ कहइ, करह निरति मूँध नवि लहइ ।
मारगि पूगळि आधोफरे, एकणि पुहरे पुहकर परइ ।।
मिळियो मुझ इक व्यवहारियो, मइँ तेहनो एक कारज सारियो ।
जोयण वीस ऊठि चाडियो, लिषियो कागळ ऊतारियो ।।
कागळ लिषताँ जोई वार, जोयण वीस लँघ्या तिणि वार ।
चिंता म करि मूध मन माहि, एक दिवस मुझ पहुचण आहि ।।
इणइ अवसरइ विहाणी राति, उग्यउ सूर हूवउ परभात ।
चारण इक आयो तिण वार, साम्हउ जोई कियो जुहार ।।
संभळि राउत, चारण कहइ, करहउ कूँटियउ दोहरउ वहइ ।
केहो अवगुण करहय कियो, ऊपरि भार पाउ कूटियउ ।।
एह वात ढोले सांभळी, विलषउ थयो विमासइ बळी ।
मुझ वरांसउ मोटउ पड्यउ, कुहँट न छांडी ऊपरि चढ्यउ ।।
कट्टारीहूँ काढी करी, वारहट्ट ने दीधी छुरी ।
कडिहूँ वाढि पटोळी-भणी, तेह ज दीधी चारण-भणी ।।
ढोलउ चारण प्रति इम कहइ, आवे कटक पंथ इणि वहइ ।
मांझी छइ ऊमर-सूमरउ, परे पयाणे पेडइ षरउ ।।
तेहनइ छुरी-तणउ अहिनाण, पट्टोळी कापी सहिनाण ।
एह दिषाडीनइ इम कहे, हिवइ रखे ऊतावलि वहइ ।।
दूहउ एक कहे माहरउ, अरडइ मिलइ ऊमर-सूमरउ ।
ढोलइ भुइ लंघी अति घणी, कही बात छइ उमर-भणी ।।

दूहा

गहिरावत बोवला, तुरी न मारि न भारि ।
जे न मुया घर अंगणइ, ते क्यों मरिस्यइ वारि ।।
कुहँटे करहे लंघिया, जे थळ हुता दूंग ।

*ऊमर आगइ इम कहे, मा मारियो तुरंग ॥
पंथी, एक सँदेसडउ ऊमर कहे सुलंभ ।
करहा से थल लंघिया, जे थळ हुता दुलंभ ॥

[इसके आगे मूल का ६४८ नंबर का दूहा है]

चउपई

तिहाँ ढोलउ आघौ संचरइ, भागउ मनि आणंद धरइ ।
चारण तेणइ मारगि पुळइ, त्रीजइ दिनि ऊमर ते मिळइ ॥
ऊँमर षडइ ऊतावळा, करइ ति हलहल अति आकुळा ।
पूछइ वाताँ मारग-तणी, गढवी कहोउ निरति अम्ह-भणी ॥
अम्ह आगळि ऊठी इक वहइ, अम्ह उणि विचि भुइ केती रहइ ।
चारण कहि सुणि ऊमर राय, फोकट हयवर मारउ काँइ ॥
ऊठी तुम्हि विहुँ दिनि आँतरउ, लेलै करह जाइ साँभरौ ।
कुँहटे करहे थळ लंघिया, छुरी पटोळी मुझनइ दीया ॥
ते पहुता नळवरगढ-भणी, तिणि साथइ नारी पदमिनी ।
हूँ अ(?ओ)लषूँ न मरम नवि लहूँ, दुहो एक संदेसउ कहूँ ॥
ऊमर मुहडउ विलषउ थयो, ते सहिनाण नयण निरषीयो ।
मारगि मूँक्या वीस व्रहास, चारण वयणे थयो निरास ॥
तिणिहिज मारगि पाछउ वळइ, षीजे चित्ति, हीयउ कळकळइ ।
वळिनइ आव्यो आपणि गामि, देस विदेस गमाडी माम ॥
ऊमर आयो पाछउ वळी, वात सहू पूगळि साँभळी ।
कुसल षेम मारवणी नारि, पहुता नळवरि साल्हकुमार ॥
तीजइ दिनि नळवर गढि गया, वाडी माँहि ऊतारा कीया ।
राजा, सुत आव्यउ, साँभळी, साम्हउ आव्यउ नळवर गळी भणी ।
पइसारउ समूहरति करइ, जय जयकार भट्ट ऊचरइ ।
सिणगार्या मइगळ मदमत्त, ढोलउ मारवणी-संजुत्त ॥
मारवणीसुं वाध्यउ नेह, प्रमदा प्रीतम अधिक सनेह ।
पंच सबद वाजइ वाजित्र, ढाळइ चामर सिरिवर छत्र ॥
धवळ मँगळ सूहव धुनि करइ, वारू विप्र वेद ऊचरइ ।
मोटउ घणुं करी मंडाण, पइसारउ चढियो परमाण ॥
सात भूमि मंदिर उत्तुंगि, मारवणी वासी मन रंगि ।

* मूल का ६४७ नंबर का दूहा मिलाओ ।

दासी तास पंचसइ पासि, मारू मनि अति पूगी आस ॥
पगि ससुरानइ कियो प्रणाम, तिहाँ दींया मोटा सउ ग्राम ।
सासू प्रणमी कियो जुहार, दीया सहि सोवन सिणगार ॥
हिव पूगळहूँती ऊझणउ, भाउ भाट ले आव्यउ घणउ ।
साथइ घणा करह केकाण, सेज सुषासण नइ मंडाण ॥
पिंगळ राजा साथ थई, सीम लगइ वउळाव्या सही ।
सउ असवार साथइ तिणि दीया, कुशल-षेम नळवरि आविया ॥
तिहँ सगळउ माँवियउ अउझणउ, संतोषियउ परियण आपणउ ।
लाग हुता सहि त्रिवणा दिया, इम सोभाग मारवणी लिया ॥
ढोलइ-राइ मारूसउँ प्रीति, चतुरपणइ लागउ प्रिय चित्ति ।
दिनि-दिनि अधिका करइ पसाउ, विसतरियउ मारू जस-वाय ॥
मारवणी माळवणी बिन्हइ, वेवइ वइठी ढोला कन्हइ ।
मन मोहइ अधिकेरो माण, पीहर-तणाँ करइ वषाण ॥
मोटउ महियळि माळव देस, सुंदर रमणी, सुंदर वेस ।
बाणू सहस अठारह लाष, राता गाम भली अति साष ॥
पगि-पगि नदियाँ नीर निवाण, घणा गरथ नइ लोक सुजाण ।
सगळे वरसे होइ सुगाळ, सुपनंतरि नवि हुवइ दुकाळ ॥
अधिका केता कहूँ वषाण, देसाँ माँहि मुकुट समान ।
माळवणी नइ ढोलउ कहइ, तूँ देसाँ-तणी निरति नवि लहइ ॥
ढोलइ जिमि कहिया एतळा, बीजा देस अउर सहि भला ।
मारवाडी धरती अति बुरी, माँसस…छ बेउँ मुँह परी ॥

दूहा

[इसके आगे मूल के ६५३, ६५८, ६५७, ६५६, ६६१ और ६६२ नंबर के दूहे हैं ।]

चउपई

अति अवगुण मारू-भुइ-तणा, माळवणी कहिया अति घणा ।
ढोलउ वात सुणी गहगहइ, हसिनइ मारवणी प्रति इम कहइ ॥
कहि मारवणी ताहरउ देस, केहवा माणस केहवा वेस ।
वळती मारवणी इम कहइ, प्रीय आपे सगळी परि लहइ ॥
मारवणीसुं मनरी प्रीति, ढोलउ दाषे देसाँ रीति ।
सगळा देस भला छइ सही, पणि को मारू उत्तम नहीं ॥

दूहा

[इसके आगे मूल के ६६६, ६६७, ६६८, ६७० और ६७१ नंबर के दूहे हैं ।]

चउपई

मोटा महल अनइ माळीया, छोइ पंक फाचे ढाळिया ।
गउष अपूरव चंदण-तणा, रतन-जडित मोती झूमणा ॥
पँचय करण पउढ्या पल्यंक, मनि गमता सुष सेज मयंक ।
सोकि बिन्हे महलि आपणे, कृष्णागर वासित धूपणे ॥
साँझ समय सोळह सिंगार, बेवइ रमणी करइ अपार ।
राति दिवस प्रिय साथइ रमइ, सुप्रभाति सासूनइ नमइ ॥
मारवणीनइ वारा दोइ, वारउ एक माळवणी होइ ।
करइ वेस दिन प्रति नवनवा, इंद्रलोकि अपछर जेहवा ॥
सुंदरि अति माळवणी नारि, तोइ नही मारू अणुहारि ।
रूप देषि भाषइ सहु कोइ, परतषि मारू अपछर होइ ॥
एक कहइ तूठउ करतार, पूजी गोरि घणे परकारि ।
तो मारवणी ढोलइ मिली, विहूँ सरीषी जोडी जुडी ॥
मालवणीसुं प्रेम अपार, बालपणइ संतोष अपार ।
तोही मारवणीसुं घणउँ, लागो छइ मन ढोला-तणउ ॥
विहुँ-तणइ पुत्र संतान, दिन-दिन कंत अधिक बहु मान ।
मनवंछित ते पाम्यउ भोग, सुष संगति सज्जन संजोग ॥

गाह सातसइ एह प्रमाण, दोहा नइ चउपई वषाण ।
जादव रावळ श्रीहरिराज, जोडी तासु कतूहळ काजि ॥
जेणइँ परइँ हुंती साँभळी, तिणि परि मइ जोड़ी मन रळी ।
दूहा घणा पुराणा अछइ, चउपई-बंध कियो मइँ पछइ ॥
अधिकउ ओछउ जोड्यउ बहू, सुकवी ते सा सहियउ सहू ।
पडियउ वळी जिहाँ पाँतरउ, तेह विचारि करियो षरउ ॥
संवत सोळह सत्तोत्तरइ, आषा त्रीजि दिवसि मनि षरइ ।
जोडी जेसळमेरि मझारि, वंछया सुष पामइ संसारि ॥
संभळि सगुण चतुर गहगहइ, वाचक कुसळलाभ इम कहइ ।
रिद्धि वृद्धि सुष संपति सदा, साँभळतां पामइ संपदा ॥

इति श्री ढोला-मारवणरी चउपई संपूर्ण ।

(क)

[यह प्रति बीकानेर-राज्य-पुस्तकालय में है। यह संवत् १७२२ के लगभग की लिखी हुई है। इसका पाठ अत्यंत शुद्ध है। इसका बीच का एक पत्र, जिसमें दोहा नं० २३५ से २५६ एवं २५७ का कुछ अंश लिखा हुआ था, नष्ट हो गया है।]

ढोला-मारवणी दूहा

श्रीगणेशाय नमः

दूहा

सकळ सुरासुर - सांमिनी, सुणि, माता सरसत्ति।
विनय करीनै वीनवुं, मुझ द्यौ अविरळ मत्ति ॥ १ ॥
जोतां नवरस एणि जुगि, सविहुं धुरि सिणगार।
रागें सुर - नर रंजीयै, अबळा तसु आधार ॥ २ ॥
वचन-विलास, विनोद-रस, हाव-भाव रति हास।
प्रेम - प्रीति, संभोग - सुख, ए सिणगार आवास ॥ ३ ॥
गाहा गूढा गीत गुण, उकति कथा उल्लोल।
चतुर - तणा चित रंजवण, कहीयै कवि कल्लोल ॥ ४ ॥

गाहा

मणहर नवरस मज्झे सुंदर नारीण सरस संबंधा।
निरुवम कविहि निबद्धा सुणंतु सयणा जणा सगुणा ॥ ५ ॥
नळवर नयर नरिंदो नळराय, सूऊय साल्हकुमार वरो।
पिंग(ळ)राय सुद्दूया वनिता मारवणी सु वर्णविसु ॥ ६ ॥

कवित्त

पाणी पंख पवंग, पंग चंगौ पुरसांणी।
वीजा निर्मळ वस्त्र निम्मळ गंगानौ पांणी ॥
पट्टकूळ पट्टणी देस भोगीधर दक्षण।
कुंजर कदळी-षंड विप्र तेरोतरी विचक्षण ॥

तिम चंद-वदन चंपक-वरण, दंत झबकै दामिनी ।
सारंग-नयण संसार इणि मनोहर मारू कॉमिनी ॥ ७ ॥
मुरधर देस मझारि सबळ धण-धन्न समिद्धौ ।
नामैं पूगळ नयर पुहवि सगळै परसिद्धौ ॥
राज करै ृरिमराइ प्रगट पिंगळ प्रिथवीपति ।
प्रतपै जग परताप दॉन जळहर जिम दीपति ॥
देवडी नाम ऊमा घरणि, मारुवणी तसु धू कुमरि ।
चौसठि कळा सुंदरि चतुर, कथा तासु कहिसुं सुपरि ॥८॥

दूहा

गिर अढार आबू धणी गढ जाळौर दुरंग ।
तिहॉं सामॅंतसी देवड़ौ अमली माण अभंग ॥ ९ ॥
चंद-वदनि चंपक-वरणि अहर अलता रंग ।
पंजर-नयणी षीण-कटि चंदन परिमळ चंग ॥ १० ॥
अति अद्भुत संसार इण नारी रूप रतन्न ।
आछै ऊमा देवड़ी कुमरी कंचनवर्ण्ण ॥ ११ ॥
जौ तुझ सारीखौ जुड़ै भामिण तिणि भरतार ।
तौ राही नैं कान्ह ज्युं कर मिळै करतार ॥ १२ ॥
जेसळने पिंगळ कहै, करि आणॉ परियॉंण ।
दिन एकणमें देवड़ी जिम आवै इण ठॉंण ॥ १३ ॥
साचौ छोरू तूँ सही, तूँ सेवक हूँ सॉंमि ।
आगे तैं परणावोयौ करि बळि एतौ काम ॥ १४ ॥
सोवनगिरिहूँ चिहूँ दिसै रूधा मारग घाट ।
पंथी को पूगळ-तणौ वही न सक्कै बाट ॥ १५ ॥
कटकी जौ आपै करॉं तौ मन रूसै राइ ।
सामॅंतसी रूठै थकै बंध न बैसै काइ ॥ १६ ॥
वचन सुणी राजा-तणौ जेसळ किद्ध प्रणाम ।
तौ हूँ छोरू ताहरौ जौ सारूँ ए काम ॥ १७ ॥
सुणी बात रिणधवळ सहु काळौ थयौ कुमार ।
पाटण पहुतौ आपणै आरति करै अपार ॥ १८ ॥
पाछै सामॅंतसी सुपरि मोटै करि मंडाण ।
ऊमादेरौ ओझणौ इण परि चढ्यौ प्रमाण ॥ १९ ॥

पटराणी पिंगळ-तणी अपछरनै अणुहारि ।
आछै ऊमा देवड़ी सुंदरि इण संसारि ॥ २० ॥
सुंदरि सोळ सिंगार सझि सेज पधारी संझि ।
प्राणनाथ प्रीतम मिल्यौ फिर सरि बैठो हंझि ॥ २१ ॥

बड़ा दूहा

अद्भुत रूप असंभ, जग जोवै, इण परि जपै ।
कहौ उपम केही कहाँ, राणी परतषि रंभ ॥ २० ॥
प्रियसुं अधिकौ प्रेम, रयणा दिवस रंगै रमैं ।
कुसुम जाणि केतकि-तणौ, मोह्यो मधुकर जेम ॥ २३ ॥
माथौ धोए मेटि ऊभी सूरिज साँमुही ।
मोहण वेली मारुई, ताह उपन्नी पेटि ॥ २४ ॥

दूहा

भूपति (भाऊ) भाटनैं कीधौ कोडि पसाउ ।
चाल्यौ नळवर गढ-भणी प्रणमी पिंगळराउ ॥ २५ ॥
वरस दौढ वोळ्या जिसै, तिसै देव न बुठौ देस ।
षड पावै सब लोक षडि, वसिवा गया विदेस ॥ २६ ॥
मारुआडिकै देस महि, एक न जाअै रड्ड ।
कबही होइ अवरसणा, कै फाका कै तिड्ड ॥ २७ ॥
पिंगल परीयण पूंछियौ, कीजै त्रेवडि काइ ।
काई ठाम सु अटकळौ, जेथि वसीजै जाइ ॥२८॥
जळ खड कारण सोझिया देसे दुंद दुवाइ ।
पुहकर खड पाँणीं प्रथळ, संभळि पिंगळराउ ॥२९॥

[इसके आगे मूल के १, २, ३ नंबर के दूहे हैं ।]

इण अवसरि घण ऊँनम्यौ, प्रगट्यौ पावस मास ।
पासै पिंगळराइनै, कीया उतारे वास ॥३३॥
ऊनमियौ उत्तर दिसा, गयण गरजै घोर ।
दह दिसि चमकै दामिनी, मंडै तंडव मोर ॥३४॥
च्यारि मास निश्चळ रह्या, सरवर-तणै प्रसंग ।
पिंगळ नैं नळ भूपती, मिळिया मन नैं रंग ॥३५॥
सौंपा बागा सावटू, कोडीधज केकाँण ।
आम्हो-साँमा आवी (?पि) या, प्रीति चढ़ी परमाण ॥३६॥

[इसके आगे मूल के ४, ५, ६; ७, ८, ९, १०, ११, १२, १३, १४, १५, १७, १८, १९, २०, २३, २१, २४, २५, २६, २७, ३४, ३०, ३६, ३१, २६, २८, ५१, ५२, ५३, ५४, ५५, ५६ और ५७ नंबर के दूहे हैं ।]

कूँझड़ियाँ कळह कियो टोळइ-टोळइ वीस ।
मारू पउडै एकली उर संचापे ईस ॥ ७१ ॥*

[इसके आगे मूल के ६१, ६२, ६५, ७८, ७७, ८२, ८३, ८४, ८६, ८८, ९०, ९१, ९२, ९३, ९४, ९५, ९६, ९७, ९९, ९८, १००, १०१, १०२, १०३, १०५, १०६, १०७, १०८, ११०, १११, ११२, ११३, ११५, ११६, ११८, ११९, १२३, १२४, १२६, १२५, १२२, १२९, १३०, १३३, १२८, १३१, १२७, १३२, १३७, १३५, १८२, १४०, १४४, १८४, (?), (?), १८९, १९१, १४९, १४५, १४७, १५५, १४६, १५७, १५८, १६०, १६१, २०७, १७०, २१४, १७१, १७२, १७३, १७४, १७५, १८३, १८५, १८६, १८७, १८८, १९२, १९४, १९५, १९६, १९७, २०८, २०९, २०२, २०१, २१०, २११, २१२, २१५, २१८, २१९, २२१, २२२, २२४, २२५, २२६, २२७, २२८, २२९, २३४, २३५, २३६, २३८, २३९, २४०, २४१, २४२, २४३, २४४, २४६, २४७, २४९, २५३, २५५, २५६, २५८, २६७, २५९, २६०, २६८, २६१, २७०, २७३, २७४, २७६, २७७, २७८, २८०, २८१, २८२, २८७, २८८, २८९, २९०, २९१, २९२, ३०१, २९७, २९३, २९६, २८९, (दुबारा), २९५, २९८, २९९; ३०४, ३०५, ३०६, ३०८, ३०९, ३१०, ३१२, ३१४, ३१५, ३४३, ३१७, ३१८, ३२०, ३२१, ३२२, ३२३, ३२४,

[यहाँ एक पत्र नष्ट हो गया है ।]

३५२, ३५१, ३५७, ३८०, ३९७, ३९८, ४००, ४०१, ४०२, ४०३, ४०४, ४०५, ४०८, ४०९, ४१०, ४१२, ४१३, ४१७, ४१४, ४१६, ४१५, ४२२, ४२०, ४२३, ४२४, ४२६, ४९१, ४९२, ४९९, ५००, ४९६, ४३३, ४२८, ४९४, ४३६, ४३७, ४३८, ४४२, ४४५, ४३९, ४४४, ४४७, ४४८, ४५०, ४४९, ४५१, ४५२, ४५३, ४५४, ४५५,

* (क) प्रति में ७१ नंबर के दो दूहे हैं ।

४५६, ४५७, ४५८, ४८५, ४५९, ४६०, ४६१, ४६२, ४६३, ४८२, ४६५, ६६६; ४६६, ४६७, ४६८, ४६९, ४८६, ४८७, ४८८, ४८६, और ४६० नंबर के दूहे हैं ।]

वीसू महुर पधारीयौ, कहण सँदेसा काज ।
अमल सुरंगा साल्ह कीये, आयौ चढे जिहाज ॥३२८॥

[इसके आगे मूल के ५०१, ५०२, ५०३, ५०४, ५०६, ५०५, ५०८, ५१४, ५१५, ५१६, ५१७; ५१८, ५१६, ५२६, ५२७, ५३५, ५२८, ५२६, ५३०, ५३१, ५३२, ५३३, ५३४, ५३६, ५३७ और ५.२ नंबर के दूहे हैं ।]

मारू अति घँण पतळी, पाँन फड़कै खाइ ।
नाह घड़कै भीड़ताँ, मति मूज कड़कै जाइ ॥ ३५५ ॥
भिड भिड, नाह, निसंक भिड, अँगसूँ अग लगाइ ।
कळी जु काची केतकी, भमर न भगी जाइ ॥ ३५६ ॥

[इसके आगे मूल के ५४४, ५४५, ५६६, ५६१, ५५१, ५४१, ५५२, ५५४, ५५५, ५५६, ५५६, ५५३, ५६०, ५६२, ५६३, ५६४ ५६५, ५६७, ५६८, ५६९, ५७०, ५७१, ५७२, ५७३, ५७४, ५७५ ५७६, ५७७, ५७८, ५७९, ५८०, ५४६, ५४७, ५४८, ५४६, ५५०, ५८१, ५६३, ५६४, ५९५, ५६७, ५६६, ५९८, ५९९, ६००, ६०१, ६०२, ६०५, ६०६, ६०७, ६०८, ६१०, ६१३, ६१४, ६१५, ६१६, ५१७; ६१८, ६१६, ६२०, ६२१, ६२२, ६२३, ६२४, ६२५, ६२६, ६२७, ६२८, ६२६, ६३०, ६३१, ६३२, ६३३, ६३४, ६३५, ६३६, ६३७, ६४१, ६४२, ६४३, ६४४, ६४५, ६४६, ६४७, ६४९, ६५०, ६५१, और ६५२ नंबर के दूहे हैं ।]

[कुल दूहा-संख्या ४३४ है]

॥ इति श्री ढोला-मारुवणी दूहा ॥

(ख)

[यह प्रति बीकानेर-राज्य-पुस्तकालय में वर्त्तमान है । यह संवत् १७५० के लगभग की लिखी हुई है । लिपि सुन्दर है एवं पाठ शुद्ध है ।]

ढोला-मारूरा दूहा

[पहले मूल के १, २ और ३ नंबर के दूहे हैं ।]

सुणि पिंगळ नरवर कहै, बडा वडेरी रीति ।
न आढोणौ नातरौ, ना लाषीणी प्रीति ।। ४ ।।

[इसके आगे मूल के ४, ५, ६, ७, ८, ६, १०, ११, १२, १३, १४, १६, १७, १८, १९, २०, २३; २१, २४; २५, २६, २७, ३४, ३०, ३६, ३१, २६, २८, ५१, ५२, ५३, ५४, ५५, ५७, ६१, ६२, ६५, ७८, ७७, ८२, ×, ८३; ६४, ८६, ८४, ८६, ८८, ९०, ६१, ६२, ६३, ९४, ६५, ६६, ९७, ६६, ६८, १००, १०१, १०२, १०३, १०५, १०६, १०७, १०८, ११०, १११, ११२, ११५, और ११६ नंबर के दूहे हैं ।]

ढाढी जै प्रीतम मिलै, इउँ दाषवीया जाय ।
मारू पके अंब (? ब) ज्युं, फिरे अळगे भाय ।।७२।।

[इसके आगे मूल के ११८, ११९, १८२; १४०, १४४, १३५, १४५, १४७, १५५, १५७, १५८, १६०, १६१, २०७, १७०, २१४, १७१, १७२, १७३, १७४, १४६, १७५, १८३, १८५, १८६, १८७, १८६, १६२, ×, १९४, १६५, १६६, १६७, २०८, २०६, १६८, २००, २०२, २०१, २१०, २११, २१२, २१५, २१६, २१८, २१६, २२१, २२२, २२४, २२५, २२६, २२७, २२८, २२६, २३४, २३५, २३६, २३८, २३६, २४०, २४१, २४२, २४३, २४४, २४६, ४४७, २४६, २५०, २५१, २५२, २५३, २५५, २५६, २५८, २५६, २६०, २६१, २७०, २७३, २७४, २७६, ×, २७७, २७८,

× ऐसे चिह्न जहां हैं उन संख्याओं के दूहे प्रतियों में नहीं है ।

२८०, २८१, २८२, २८६, ×, २८७, २८८, २८९, २९०, २९१, २९२, ३०१, २९३, १६७, २९५, ३०४, ३०५; ३०६, ०९, ३१०, ३१२, ३१४, ३१५, ३४३, ३१७, ३१८, ३२०, ३२१, ३२२, ३२३, ३२४, ३२५, ३२९, ३३०, ३३१, ३३२, ३३३, ३३४, ३३६, ३४१, ३४४, ३४२, ३४६, ३४८, ३४७, ३६१, ३५०, ३६६, ३६७, ३६२, ३७०, ३७१, ३७२, ३७३, ३५७, ३८०, ३९७, ३९८, ४००, ४०१, ४०२, ४०३, ४०४, ४०५, ४०८, ४०९, ४११, ४१०, ४१२, ४१३, ४१४, ४१७, ४१६, ४१५; ४२०, ४२२, ४२३, ४२४, ४२६, ४९१, ४९२, ४९९, ५००, ४९६, ४३३, ४२८, ४४१, ४४२, ४४४, ४४५, ४४७, ४४८, ४४९, ४५०, ४५१, ४५२, ४५३, ४५४, ४५५, ४५६, ४५७, ४५८, ४८५, ४५९, ४६०, ४६१, ४६२, ४६३, ४८२, ४६५, ६६९, ४६६, ४६७, ४६८, ४६९, ४८६, ४८७, ४८८, ४८९ और ४९० नंबर के दूहे हैं।]

वीसू मुहर पधारियौ, कहण सँदेसा काज।
अमल सुरंगाँ साल्ह कीय, आयौ षडे जिहाज ॥२७३॥

इसके आगे मूल के ५०१, ५०२, ५०३, ५०४, ५०६, ५०५, ५०८, ५१४, ५१५, ५१६, ५१७, ५१८, ५१९, ५२६, ५२७, ५३५, ५२८, ५२९, ५३०, ५३१, ५३२, ५३३, ५३४, ५३६, ५४२, ५४४, ५४५, ५६६, ५६१, ५५१, ५४१, ५५२, ५५४, ५५५; ५५६, ५५९, ५५३, ५६०, ५६२, ५६३, ५६४, ५६५, ५६७, ५६८, ५६९, ५७०, ५७१, ५७२, ५७३, ५७४, ५७५, ५७६, ५७७, ५७८, ५७९, ५८०, ५४६, ५४७, ५४८, ५४९, ५५०, ५८१, ५९३, ५९४, ५९५, ५९७, ५९६, ५९८, ५९९, ६००, ६०१, ६०२, ६०५; ६०६, ६०७, ६०८, ६१३, ६१४, ६१५, ६१६, ६१७, ६१८, ६१९, ३२०, ६२१, ६२२, ६२३, ६२४, ६२५, ६२६, ६२७, ६२८, ६२९, ६३०, ६३१, ६३२, ६३३, ६३४, ६३५, ६३६, ६३७, ६४१, ६४२, ६४३, ६४४, ६४५, ६४६, ६४७, ६४९, ६५०, ६५१, ६५२, ६५३, ६५४, ६५५, ६५६, ५५८, ६५९, ६६०, ६६३, ६६४, ६६५, ६७२, ६७३ और ६७४ नंबर के दूहे हैं।]

॥ इति श्री ढोला-मारूरा दूहा ॥

[यह प्रति बीकानेर-राज्य-पुस्तकालय में वर्त्तमान है। यह संवत् १७५२ में लिखी गई थी। इसका क्रम जोधपुरीय कथानक से मिलता है, यद्यपि उसकी भाँति इसमें प्रस्तावना नहीं है।]

ढोलै-मारूरा दूहा

श्री गणेशाय नमः

[पहले मूल के १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८ और ९ नंबर के दूहे हैं।]

मा ऊमादे देवड़ी, नानौ सामँतसीह।
पिंगळराय पमाररी, कुमरी मारवणीह ॥१०॥

[इसके आगे मूल के १०, ११, १२, १३, १४, १६, १७, १८, १९, २०, २१, ७७, २३, २७, २९, २८, ३०, ३१, ३२, ३३ और ३४ नंबर के दूहे हैं।]

बाबहिया रत-पंखीया, मगर ज लाली रेष।
सूती राजिंद संभरयौ, वात ज सजन देष ॥३२॥

[इसके आगे मूल के ३५, ५२, ६०, ६२, ६५, ६४, ५३, ५४, ×, ५७, ६७ और ६८ नंबर के दूहे हैं।]

सहि प्रीतम संदेसड़ा, मारवणी कहियाँह।
माता मन महि जाँणियौ, विरह वियाप थयाह ॥४५॥

[इसके आगे मूल के ८१, ८०, ८३ और ८५ नंबर के दूहे हैं।]

इक दिन सोदागर तिहाँ, आप तणै उतार।
बैठा हसै तिण अवसरै, नयणे निरषी नार ॥५०॥

[इसके आगे मूल के ८७, ८९, ९०, ९१, ९३, ९४, ९५, ९६, × और ८२ नंबर के दूहे हैं।]

पिंगळ मन चिंता हुई, करै मालवणीं घात।
प्रोहित भीम राजा-तणौ, मान महुत सुभ जात ॥६१॥

पिंगळ कहै प्रोहित सुनौ, जावौ ढोलै देस ।
ढोलौ ल्यावो इह किणै, कहै एम नरेस ॥६२॥

वळती मारवणी कहै, बात न भली एह ।
ऊमादेसूँ वीनती, भाखै युं ससनेह ॥६३॥

वाप ए बात न थे कहौ, वैण विचार कहेस ।
अणविचार नवि कीजिऐ, विचार नेइ कहेस ॥६४॥

[इसके आगे मूल के १०३, १०५, १०६, १०६, १०७, १०८, ११२, ११६, १३६, ११६, ११८, १३५, १८२, १४५, १५५, १५४, १४७, १४६, १६१, २०७, १७२, १७३, १८३, १८५, १८६, १८७, १८८, १६२ और २०८ नंबर के दूहे हैं ।]

वागरवाळ तेडाविया, साल्हकुमर तिण वार ।
रात्यो गाया निसह भर, पूछण तास विचार ॥६४॥

[इसके आगे मूल का १६५ नंबर का दूहा है ।]

भाटे मारवणी-तणै, वपु वर्णवी वषाण ।
मारवणी निरखी नहीं, जनम तियाँ अप्रमाँण ॥९६॥

[इसके आगे मूल का १६७ नंबर का दूहा है ।]

ए माणस तिण पाठव्या, साल्हकुमर, तो काच ।
मालवणीहूँ वीहतै, मै मेळाया आज ॥९८॥

जो म्हे मोड़ा जाइस्याँ, तुझ पाषै संदेस ।
तो मारवणी माँननी, प्री(?पा)वक करै प्रवेस ॥६६॥

वागरवाळाँ इस कहै, साल्हकुमर-नरेस ।
जो मारू मिळवा करो, तौ पधारौ उन देस ॥१००॥

[इसके आगे मूल के १९८, २०३, २०१ और २०६ नंबर के दूहे हैं ।]

सुण ढाढी ढोलौ कहै, सीख करै सुन राज ।
फदीया सहस पचास दे, दीया व्रहास सुसाज ॥ १०५ ॥

मनमे चित ढोलौ कहै, मुह विलषाँणौ राउ ।
मन आळोचै आपणौ, तब राँणी चि···(?) लाउ ॥ १०६ ॥

[इसके आगे मूल का ३१५ नंबर का दूहा है ।]

ढौलौ पूछे मारवणि (? माळवणि), संभळ वात सुजाँण ।
आज ज षरा दयामणा, वात सुणौ प्रमाँण ॥१०८॥

[इसके आगे मूल के २१९, २२१, २२२, २२४, २२५, २२६, २२७, २२८, २२९, २३४, २३६, २३५, २३८, २३९, २४०, २४१, २४२, २४३, २४४, २४६, २४७, २४९, २५०, २५१, २५२, २५३, २५५, २५६, २५८, २६७, २५९, २६०, २६८, २६१, २७०, २७२, २७४, २७६, २७७, २७८, २८०, २८१, २८२, २८६, २६१, २७०, २७३, २७४, २७६, २७७, २७८, २८०, २८१, २८२, २८६, २८७, २९२, ३०१, २९७, २९३, २९५, ३०४, ३०५, ३०६, ३०८, ३०९, ३१०, ३१२, ३१४, ३१५, ३४३, ३१७, ३१८, ३२०, ३२१, ३२२, ३२३, ३२४, ३२५, ३२९, ३३०, ३३१, ३३२, ३३३, ३३४, ३३६, ३४१, ३४४, ३४२, ३४६, ३४८, ३४७, ३६१, ३५०, ३६६, ३६७, ३६२, ३७०, ३७१, ३७३, ३५७, ३८१, ३९७, ३९८, ४००, ४०१, ४०२, ४०३, ४०४, ४०५, ४०७, ४०९, ४१०, ४१२, ४१३, ४१७, ४१४, ४१६, ४२०, ४१५, ४२२, ४२३, ४२४, ४२६, ४९१, ४९२, ४१९, ५००, ५१६, ४३३, ४२८, ४४१, ४४२, ४४४, ४४५, ४४७, ४४८, ४५०, ४४९, ४५१, ४५२, ४५३, ४५४, ४५५, ४५६, ४५७, ४८५, ४५९, ४६०, ४६१, ४५८, ४६२; ४६३, ४८२, ४६५, ६६१, ४६६, ४६७, ४६८, ४८३, ४६९, ४८६, ४८७, ४८८, ४८९ और ४९० नंबर के दूहे हैं ।]

वीसू मुहुर पधारीयौ, कहन सँदेसा काज ।
अमल सुरंगा साल्ह कीय, आयौ चढे जिहाज ॥

[इसके आगे मूल के ५०१, ५०२, ५०३, ५०४, ५०६, ५०५, ५०८, ५१४, ५१५, ५१३, ५२०, ५१६, ५१७, ५१८, ५१९, ५२६, ५२७, ५३५, ५२८, ५२९, ५३०, ५३१, ५३२, ५३३, ५३४, ५३६, ५४२, ५४४, ५४५, ५६६, ५५१, ५४१, ५५२, ५५४, ५५५, ५५६, ५५९, ५५३, ५६२, ५६३, ५६४, ५६५, ५६७, ५६८, ५६९, ५७०, ५७१, ५७२, ५७३, ५७५, ५७६, ५७७, ५७८, ५७९, ५८०, ५४६, ५४७, ५४८, ५४९, ५५०, ५८१, ५९३, ५९४, ५९५, ५९७, ५९६,

५९८, ५९९, ६००, ६०१, ६०२, ६०५, ६०६, ६०७, ६०८, ६१० ६१३, ६१४, ६१५, ६१६, ६१७, ६१८, ६१९, ६२०, ६२१, ६२२, ६२३, ६२४, ६२५, ६२७, ६२६, ६२८, ६२९, ६३०, ६३१, ६३२, ६३३, ६३४, ६३५, ६३६, ६३७, ६४१, ६४२, ६४३, ६४४, ६४५, ६४६, ६४७, ६४९, ६५०, ६५१, ६५२, ६५३, ६५४, ६५५, ६५६, ६५८, ६५९, ६६०, ६६३, ६६५, ६६६, ६६७, ६६८, ६७०, ६७१, ६७२, ६७३ और ६७४ नंबर के दूहे हैं।]

[कुल दूहा-संख्या ३९५ है।]

॥ इति श्री ढोलै-मारूरा दूहा संपूर्णम् ॥

संवत् १७५२ वर्षे कार्त्तिकमासे शुक्लपक्षे नवम्यां तिथौ
पंडित केसौदास लिषतं मुकाम श्री सगर मध्ये।

[यह प्रति बीकानेर-राज्य-पुस्तकालय में वर्त्तमान है। यह संवत् ११८८ में लिखी गई थी। इसका पाठ अशुद्ध है।]

ढोला-मारवणी रा दूहा

[इस प्रति में दूहों का क्रम इस प्रकार है—]

[पहले मूल के १, २ (पंक्तियों का क्रम विपरीत है), ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०, ११, १२, १३, १४, १६, १७, १८, १९, २०, २३, २१, २४, २५, २६; २७, ३४, ३०, ३६, ३१, २९, २८, ५१, ५२, ५३, ५६, ५४, ५५, ५७, ६१, ६२, ६५, ७८, ७७, ८२, ८३, ८४, ८६, ८८, ९०, ९१, ९२, ९३, ९४, ९५, ९६, ९७, ९९, ९८, ×, १००, १०१, १०२, १०३, १०५, १०६, १०७ और १०८ नंबर के दूहे हैं।]

[इसके आगे नीचे लिखी गद्य-पंक्ति तथा दूहा है।]

मारू आसीस दीवी

दूहा

अचरावर अंमर हूवौ, वेगौ आवे वीर।
संदेसा सयणाँ-तणाँ; पहुचावौ पर तार (तीर ?) ॥

[इसके आगे मूल के ११०/२ (केवल दूसरी पंक्ति), १११, ११२, ११३, ११५, ११६, ११८, ११९, १८२, १४०, १४४, १३५, १४५, १४७, १५५, १५७, १५८, १६०, १६१, २०७, १७०, २१४, १७१, १७२, १७३, १७४, १४९, १७५, १८३, १८४, १८५, १८६, १८७, १८८, १९२, १९४, १९५, १९६, १९७, २०८, २०९, १९८, २००, २०२; २०१; २१०, २११, २१२, २१५, २१८, २१९, २२१, २२२, २२४, २२५, २२६, २२७, २२८, २२९, २३४, २३१, २३६, २३८,

२३६, २४०, २४१, २४२, २४३, २४४, २४६, २४७, २४६, २५०, २५१, २५२, २५३, २५५, २५६, २५८, २६७, २५९, २६०, २६८, २६१; २७०, २७३, २७४, २७६, २७७, २७८, २८०, २८१, २८२, २८६, २८७, २८९, २८८, २६०, २६१, २६२, ३०१, २६७, २९३, २९५, २९४, ३०४, ३०५-३०४ (पूर्वार्ध ३०५ की प्रथम पंक्ति और उत्तरार्ध ३०४ की द्वितीय पंक्ति), ३०५, ३०६, ३०८, ३०६, ३१०, ३१२, ३१३, ३१४, ३१५, ३४३, ३१७, ३१८, ३२०, ३२१, ३२२, ३२३, ३२४, ३२५, ३२९, ३३०, ३३१, ३३२, ३३३, ३३४, ३३६, ३४१, ३४४, ३४२; ३४६, ३४८, ३४७, ३६१, ३५०, ३६६, ३६७, ३६२, ३७०, ३७१, ३७३, ३५२, ३५१, ३५७, ३८०, ३९७, ३६८, ४००, ४०१, ४०२, ४०३, ४०४; ४०५, ४०८, ४०६, ४१०, ४१२, ४१३, ४१७, ४१४, ४१६, ४१५, ४२०, ४२२, ४२३, ४२४, ४२६, ४६१, ४६२, ४६६, ५००, ४६६, ४३३, ४२८, ४४१, ४४२, ४४४, ४४५, ४४७, ४४८, ४५०, ४४६, ४५१, ४५२; ४५३, ४५४, ४५५, ४५६, ४५७, ४५८, ४८५, ४५६, ४६०, ४६१, ४६२, ४६३, ४८२, ४६५, ६६६, ४६६, ४६७, ४६८, ४८३, ४६६, ४८६, ४८७, ४८८, ४८९ और ४६० नंबर के दूहे हैं ।]

वीस मुहर पधारीयौ, कहण सँदेसा काज ।
अमल सुरंगाँ साल्ह कीयौ, आयौ चढे जिहाज ॥२८२॥

[इसके आगे मूल के ५०१, ५०२, ५०३, ५०४, ५०६, ५०५, ५०८, ५१४, ५१५, ५१३, ५२०, ५१६, ५१७, ५१८, ५१६, ५२६, ५२७, ५३५, ५२९, ५२८ नंबर के दूहे हैं ।]

सजण आया हे सखी जाँह की हुती चाहि ।
हियौ हेम भर भीयौ बूझी वलंती भाइ ॥

[इसके आगे मूल के ५३०, ५३१, ५३२, ५३३, ५३४, ५३६, ५४२, ५४४, ५४५, ५६६, ५६१, ५५१, ५४१, ५५२, ५५४, ५५५, ५५६, ५५६, ५५३, ५६०, ५६२, ५६३, ५६४, ५६५, ५६७, ५६८, ५६६, × , ५७१, ५७२, ५७३, ५७४, ५७५, ५७६, ५७७, ५७८, ५७६, ५८०, ५४६, ५४७, ५४८, ५४६, ५५०, ५८१, ५६३, ५६४,

५९५, ५९७, ५९६, ५९८, ५९९, ६००, ६०१, ६०२, ६०५, ६०६, ६०७, ६०९, ६१०, ६१३, ६१४, ६१५, ६१६, ६१७, ६१८, ६१९, ६२०, ६२१, ६२२, ६२३, ६२४, ६२५, ६२६, ६२७, ६२८, ६२९, ६३०, ६३१, ६३२, ६३३, ६३४, ६३५, ६३६, ६३७, ६४१, ६४२, ६४३, ६४४, ६४५, ६४६, ६४७, ६४९, ६५०, ६५१, ६५२ और ६७४, नंबर के दूहे हैं।]

[कुल दूहा-संख्या ३९९ है।]

[अंत में नीचे लिखी पुष्पिका है।]

इति श्री ढोला-मारवणीरा दूहा संपूर्णम्।

संव(त्) १८१८ वर्ष मिती फागुण वदि ३ गुरुवारे

श्रीरस्तु।

[यह प्रति बीकानेर-राज्य-पुस्तकालय में है। इसमें बीच-बीच में गद्य है और नए दोहे भी बहुत-से हैं। इसका पाठ (ज) प्रति से अधिकतर मिलता है। इसके आरंभ के कई पृष्ठ नष्ट हो गए हैं। यह प्रति पुरानी नहीं जान पड़ती।]

ढोला-मारूरी बात।

....

......(ढा) लोजी पुगळरै नजीक आया।

दूहा

करहो पवनां रूप कीय, पंथी छंडि इक पाय।
एकण आंष फरूकडै, पुगळ पोहोतो आय ॥५६॥
करहो षेडे मन समो, आयो ढोलो एह।
एती धरा उलंघतां, पगां न लागी षेह ॥५७॥

मीमा भाटण वायक

मारवणी ढोलो आवीयो, करहो कहंकै एह।
सही तें तुठा सांइयां, दूधै वूठा मेह ॥५८॥

वारता

इम करतां गुदहळक वेळा हुई। तारै कोहर उपर पधारीया। पछे करहानें पांणी पावण लागा। तद करहो पांणी पीवै नहीं। तारै ढोलोजी कहै।

दूहा

करहा चरे करेळीयां, पांन चितार म रोय।
सरवर लाभ सरिजीयौ, षाहेडीयां मुह षोय ॥५९॥

वारता

मारवणी सहेलीयां समेत ढौलैजीरो रूप जोवण लागी। तिणसमें मारवणी वोलीया।

दूहा

ढीचां पांणी ढंबर, सरवर सुहथणांह।
मानस चीती मारुई, वहते गइ वनाह ॥६०॥

ढोला वायक

[इसके आगे मूल का ५२४ नंबर का दूहा है ।]

सहेली वायक

[इसके आगे मूल का ५२५ नंबर का दूहा है ।]

वारता

तिण समै सहेली करहानें काँब वाही । तारै करहो चमकनें पैळी डाफनें पैली कांनी जाय ऊभो रह्यौ । तारै ढोलो कहै ।

दूहा

थळ गुळ एक पटतरै, एकण अंग म मार ।
कांब चटका जे सहै, दूजा करहा गिमार ॥६३॥

मिमां भाटण वायक

ज्यां कारण थळ लंघीया, त्यांरे चित न काय ।
साजन बैठा कोप सिर, करहो तिसायो जाय ॥६४॥

मारवणी वायक

रहि रहि मिमां माठ करि, करहो कांब म मार ।
कोइ वटाउ पंथ-सिर, ढोलारै उणिहार ॥६५॥

मीमां वायक

[इसके आगे मूल का ५२३ नंबर का दूहा है ।]

करहा वायक

ढोला मारू-मारू थे करो, मारू ढेढणीयांह ।
पाँणी पीतो करहलो, मारयौ कांबडीयांह ॥६७॥

मारवणी वायक

करहा, पांणी खंच पीय, जो ढोलारो होय ।
भोळै वाही कांबड़ी, वळे न वाहै कोय ॥६८॥
झेकी करहो बैसीयौ, जो तु ढोलो होय ।
जे म्हे जांणत वलहा तौ करहौ न मारत कोय ॥६९॥

वारता

मारवणी जांणीयौ ओ तो और पंथी छै । मीमां मोसुं रांमत करै छै । नें बीजी सहेलीयां जांणीयो सही ढोलोजी छै । ढोलैजी पिण जांणीयो ए तो मारवणी नें सहेलीयां छैः । युं जांणनें ढोलोजी कहै ।

दूहा

सबे लोवळवाळीयां, न जाणु भण काय ।
ऊजळदंती मारवण, पदम जडावै पाय ॥७०॥
सबे लोवड़वाळीयां, सबहीके गळि हार ।
एकण मारू बाहिरी, बीजी सगळीनें जुंहार ॥७१॥
खंजन नेत्र विसाल गति, नासिका दीपक लोय ।
ढोलो रळियायत हुवौ, जे धण दीठो जोय ॥७२॥

वारता

इतरी वात हुई नें मारवणी जांणियो अै तो सही ढोलोजी छः । तिवारै लाज करनें सटकेंसुं सहेलीयांमें आई । पिण आष्याढ चंद्रमा शोभै तिम सषीयां मैं सोभै छै । इम औलै होयनें रथमें बैसनें घरे पधारीया । पछै। ढोलोजी पिण कोहरसूं असवार हुवा । सो रावळै वागमें जाय डेरा कीया । नें करहानें वनमाळी कनासुं बंधायो । पछै ढोलोजी भांत-भांतरा अमल करण लागा । पांन कपूर मुखवास अरोगीया तितरै पुगळ मांहै पिण राजलोक षवर हुई । जो ढोलोजी पधारीया । मगर ढाढी कहै ।

दूहा

राजाजी ढाढी कहै, वात सुणो नरपत ।
ढोलोकुंमर पधारीया, भगत करो बहु भत ॥७३॥

वारता

राजाजी इतरो सांभळनें कुंवरांरो साथ ढोलाजी साम्हां मेलीया सो गया । जद ढोलाजी सर्व साथनें राजी होयनें मिलीया । घणी मनवारां करी नें अमल कपूर पांन बीड़ा आरोगीया । सुंधा अतर लगाया । पछै कुमरांरौ साथ सहित ढोलोजी सहिरमें पधारीया । तारै राजाजी पिण ढोलैजीसुं मिलिया । साम्हा आया । राजाजी कह्यो ढोलाजीरा साथनें डेरो दिरावो । तद राजा कहै ।

दूहा

नळवर हुंता पोह समा, करहो षडे तछेक ।
हलकारां कर आवीया, कुंवरजी एकाएक ॥७४॥

वारता

तारै राजाजी कह्यौ ढोलाजी एकाएक भलांई पधारीया । इतरो कहिनें राजाजी दरीषानें जाय बैठा । पछै ढोलैजी राजलोक मांहै जुहार कहाड़ी ।

तांहरै राणीयां पिण आसीस कहायनें नाळेर पांन बीडा मेल्हीया। पछै सहेलीयां गीत-ग्यान करिनें मोतीयांरै आषै बंदाया। पछै ढोलोजी महिलां पधारीया। पछै माल (१र)वणीजी पिंण सिनान मंजन तिलक वणाव करिनें भांत-भांतरा आभूषण पैहरीया छै। जितरै मारवणीजीनें वेळा लागी जांणी। तारै मीमां भाटणीनुं कह्यौ। जावो बाली बाईनें लेनें ढोलैजीसुं रांमत करावो। तारां सहेलीयां मेळी होयनें ढोलैजी कनै रमावणनें ले गया। पाछै ढोलौजी कहै।

दूहा

वाल्हां कावे दंतड़ा, हीरां हारां बृत्र।
जो थे मारू परण घर, तो थे आभो पत्र ॥७५॥

वारता

वितरां मांहे मारवणीजी विलंब करता पांन बीड़ा आरोगता सहेलीयां संघातै आवण लागी।

दूहा

[इसके आगे मूल के ५३७ और ५४० नंबर के दूहे हैं।]

वारता

मारवणीजी ढोलाजी कनें आयनें मुजरो कीयो। तारै ढोलैजी पिण आदर सनमान दे मेलीया। मारवणींजी षुस्य(ा)ल होयनें कह्यौ।

दूहा

[इसके आगे मूल के ५३१ और ५४२ नंबर के दूहे हैं।]

आज भलां दिन उगीयो, ग्रहपति गयो मुझ गेह।
सुपने मिलती साल पिव, सो दीठा नयणेह ॥८०॥

[इसके आगे मूल का ५२६ नंबर का दूहा है।]

सजन मिलीया हे सषी, दीहाड वळीयाह।
संजोगी जस सजनां विजोगी टळियाह ॥८२॥

[इसके आगे मूल के ५०४ और ५४१ नंबर के दूहे हैं।]

सजन मिलीया हे सषी, कासुं भगत करेस।
अहिरां कहिरां पयोहरां, रमतां आड न देस ॥८५॥
धन आजूणो दीहड़ो, धन आजूणी रात।
कुंवर रिव ज्युं सुरकळा, अविचळ राजै अति ॥८६॥
ढोलो रूप अनंगमें, मारू रित अवतार।
मिलीया बेहुं रंग-महल, कुंमरी राजकुमार ॥८७॥

वारता

तद सहेलीयां मारवणीमें रमावणनुं आई हुती। त्यां कह्यो राजबाईरो मुष जोवाड़ो। तारै ढोलोजी घुंघटो ऊंचो करनें कह्यो देषो ओ मुख छै। पछे ढोलोजी पिण देषण लागा तद मारवणी मुळक्या। पिण ढोलेजीसुं भर निजर साम्हो जोवणी न आयो। तद ढोलोजी कहै।

दूहा

[इसके आगे मूल के ५४६ और ५४८ नंबर के दूहे हैं।]

वातां दुहां विलंबीया, आछौ विरहो न षमाय।
कुसळ पछै ही पुछजो, टुक एक प्रेम चषाय ॥६०॥

[इसके आगे मूल का ५५१ नंबर का दूहा है।]

[नोट—यहाँ इस प्रति का १३४ वाँ पत्र नष्ट हो गया है।]

वारता

तारै ढोलोजी बोलीया, म्हांने तो भो कोई नहीं। नें करहो पिण इसो छै तिको पोहचवा देवै नहीं। तारै पिंगळ राजा कह्यो। भलां एक मजल तो म्हांरो साथ ले जावो। तारै ढोलैजी कह्यो, प्रमांण। तद पिंगळ राजा मुकळावारी साथरी तयारी करण लागो। घणा हाथी घणा घोडा रथ पालषी दीधा। ढोलाजीनें पिण कड़ा मोती जनेऊ किलंगी अमोलष वसतां दीधी। मारवणींनें तात बीसी सहेलीयां, एक-एकसुं चढती रूप-कळामें इसड़ी ही, सो दीधी। कुंमरांरो साथ पोहोचावणने विदा कीयो। मारवणींजी रथ मांहे बैठा छै, सहेलीयां पिंण साथ छै इण तरैसूं ढोलोजी सीष करने असवार हुवा। पछै एक मजल तो साथ समेत पड़ाव जाय कीयो। पछै कुंमरांनु (सीष) दीधी। कुंमरां पिण ढोलैजीसूं मुजरौ करनें सीष कीधी। पछै आप आघा षडीया सो पुगळथी कोस बीस ऊपरै आया। पछै एक थळ माथै पांणी देखनें उतरीया। तंबू डेरा षड़ा कीया। पाषती सिरदारांरो साथ उतरीयो छै। पछै ढोलोजी ने मारवणी ढोलीयै पोढीया छै। तिण समें मारवणीजीरे वासाना कस्तूरी सरीषी वास रही छै। बिहुं जणा सुषमें पोढीया छै।

दूहा

[इसके आगे मूल के ६०८ और ६०० नंबर के दूहे हैं।]

वारता

तितरै परभात हुवो नें ढोलोजी जागीया नें मारवणनें बतळाया। तारां बोली नहीं। जद मरण जांणनें ढोलोजी चमकीया नें कहै।

सोरठा

[इसके आगे मूल का ६०४ नंबर का दूहा है ।]

वारता

पछै सहेलीयां नें ढोलैजी साद कीधो । सषीयां दोड़न तुरत आई । देषै तो मारवणीजी मुवा निजर आया । सहेलीयां कहै छै ।

[इसके आगे मूल का ६०९ नंबर का दूहा है ।]

ढोला वायक

[इसके आगे मूल का ६१० नंबर का दूहा है ।]

घण धूण वातां करी, वार विचारै सद।
तिण वेळा तिण छोकरी, सरळो कीधो सद ॥ १६ ॥

[इसके आगे मूल का ६११ नंबर का दूहा है]

वारता

तारै ढोलैजी कह्यो, थे तो गरे पधारो । म्हे तो मारवणी लारे जीवत काठ लेसां । तद ढोलैजी काठ भेळो करनें आरोगी चिणाई । पछै लांपो दैणरो हुकम कियो । तिण समें श्री महादेवजी पारबतीजी आय नींकळ्या । तारै श्रीमहादेवजी कह्यौ, अै तो ढोलो मारवणी दिसै छै । पिण मारवणी मुई छै । तारै ढोलोकुंवर सत करै छै । तारै पारबती बोली । महाराज आप तो तें पधारीया छो । तां मारवणी मरण न पावै । इतरी अरज पारबतीजी महादेव-जीसुं कीधी । तारै महादेवजी ढोलैनूं कहण लागा । जो तु उलटी रीत मतां कर । अस्त्री लारै पुरुष कदेई बळै नहीं । आरोगी मांहेसुं परो उठ । तारै ढोलोजी महादेवजीनें कहै ।

दूहा

ते हुंता ढोलो तवै, कुडी गल्ल म कथ ।
हुवै तो जिवणो एकठो मरणो मारू सथ ॥

वारता

पछै महादेवजी इमृतरो छांटो नांषीयो । सचेत कीवी । पछै महादेव पारबतीजी अलोप हूवा । पछै मारवणी सचेत होय नें बैठा छै । पछै सीर-दारांनें सहेलीयांनें ढोलैजी सीष दीधी । ढोलोजी नें मारवणी करहै चढनें हालीया । पछै उमर-सुमरांरो साथ आडावळारो घाट रोकनें बैठा छै । ढोलोजी पिण उणहीज मारग षडै छै । पिण मारवणीजी बोलीया । कुंवरजी राज, अै तो मारग माहा झुठा निजर आवै छै जिणसूं बीजो मारग लो तो

भलो छै । पछै ऊमर-सूमरांरै साथ ढोलैजीने आवता दीठा । पछै उमर-सूमरां बिछायत कराई । मुंहडा आगै डुंबड़ा गावै छै । तारै ढोलोजी साथ बैठो देषनें गारगसुं टळीया । तारै उमर पांच से असवारांसुं आडो आयने फिरीयो, ने कह्यो, कुमरजी, अळगा कांय नीसरो । आवो घड़ी एक तो अमल पांणी करनें भेळा बैसां । पछै थांरे मारग जाजो नें म्हें म्हारै मारग जासां, यु कहिनें ऊंमर ढोलोजीरो करहो बागडोर झालनें जैकीयो । ऊंठरी म्होरी मारवणीनूं झलाई । ढोलौजी उमररि पाषती जाजम ऊपरै जाय बैठा । तारै उमर जांणीयो, ढोलोजी हिवै मांहरै सारू छै । पछै उमर आपरा सिरदारांनें सेंन करनें समझावण लागा । जे ढोलैजीने अमल-पाणीसूं छिकायनें मारो । उमर कह्यौ, ढोलाजी, दारू पीवीजै । ढोलैजीरै नाकारो करणरी आषड़ी छै । पछै ढोलोजी दारू अमल पीवण लागा । तद मोसर देखने मांगणहार कहै ।

दूहा

पीहर हंदी डुंबणी, राग अलापै तेण ।
ढोलो मारू ऊगरै, कहि समझावै वेण ॥१६॥

[इसके आगे मूल का ६३१ नंबर का दूहा है ।]

वारता

बीजो तो साथ सगळोई छीकोयो । ढोलोजी पिण छिकड़ लागा । मांगणहारदी वउ मांगणहार लारै गावती थकी कहण लागी ।

दूहा

[इसके आगे मूल का ६३२ नंबर का दूहा है ।]

वारता

साथ सारो ही छिकीयो हुतो तिणसूं कोई समज्यो नहीं नें मारवणी चिंता करण लागी । वळे मांगणहारी बोली ।

दूहा

[इसके आगे मूल का ६३५ नंबर का दूहा है ।]

करहौ कस्तूरी लदीयो, ऊपर झीणी लोय ।
साथ सदीतां सुमरां, जो निरवाहु होय ॥

वारता

पछै मारवणीजी करहानें कांब वाही नें करहो चमकनें भागो । तारै उमर जांणीयो, करहो जांण पावै नहीं । पछै रजपूतांरो साथ करहौ झालणनें उठीयो । ठाकुरे करहो थांरे हाथ न आवै । औ तो कंवरजीरो

ई ज वेसास करै छै। तद उमर बोलीयो, ढोलाजी करहो झालो। तद ढोलाजी उठनें करहानें पकड़न लागा। तद उमर बोलीयो। ऊंठारै नेडा रहिजो। तिण समें मारवणीजी पिण ढोलाजीरै लाहरै ई ज हुवा। ढोलैजी जायनें करहो झालीयो। तारै मारवणीजी जांणीयो नें कह्यौ, भोळा सिरदार दुसमणांरा चिंत्या क्युं करो छो, अठासुं चढ़ने षडो तो भला छै, नहीं तारा ज माथै चूक छै। तारै ढोलैजी नें मारवणी करहानें पकड़नें असवार हुवा।

दूहा

मारू चढंती मारीया, दोय नैणांकै बांण।
साथ ईति राय सुंमरो, पडीयो जांण पठांण ॥२४॥

[इसके आगे मूल का ६३६ का दूहा है।]

वारता

तारै लारांसु उमर-सुमरे 'जाय जाय' करनै लारै हुवा। कह्यौ, जो ढोलो जावण पावै नहीं।

दूहा

करहौ कंथ कुबेरीयां, सुगणी मारू संग।
वांसै उमर - सुमरौ, ताता षडै तुरंग ॥

वारता

तारै उमर बोलीयौ। ठाकुरे जिकोई ढोलैनैं पकडै जिणनुं आधों राजपाट देऊँ। नें बेटी परणाऊं। तीतरै ढोलैजीरै नें उमर-सूमरैरै कोस चाळी-सरो आंतरो पड़ गयो। तितरै मारग मांहै ढोलैजीने चारण मिलीयो। कह्यो जे ठाकुरां, उंठ षोडांवै नें बेऊं जणा ऊपर चढीया। सो इसो करहामें कासूं षून छै। तारै ढोलैजी छुरी कमर मांहा काढ़नें दीनी। तारै चारण उंठरै पग मांहा वाडलो काटीयो। उंठ ब्यारूँ पगां हूवो। उ वाडलो चारणनें दीयो। जो थांने उंमर मिलै तो वाडलो देषाळजो। ढोलैजी चारणनें पचास मोहर दीनी। कह्यो।

दूहा

ढोला जे थळ लंघीया, दोहरा नें दुरंग।
कहजे उंबर सुंबरनुं, मत मारजे तुरंग ॥

वारता

चारणनें सीष देनें आघा षड़ीया। चारणनुं उंमर बीजै दीन मिलीयो। तारै चारण वाडलौ देषाळीयो। सगळा ही सहिनांण बताया।

चारण वायक

[इसके आगे मूल के ६४८ और ६५० नंबर के दूहे हैं ।]

वारता

उमर तो चारणरै कहे पाछा वळीया । मुँहडो भुंडो करनें आपरै ठिकांणै गया । तितरै सांझ हुई, ढोलोजी घरे आया । राजाजीरै पाए लागा । राजाजी मारगरा समाचार पुछीया तारै ढोलैजी सारा ही कह्या । तितरां मांहै रात पोहोर गई । तारै कह्यौ, ढोलाजी थे थांरै म्हेल जाय पोहढो । तितरै ढोलाजीनें मांहै वधारनें लीधां, नें कुळदेवीरी पूजा कीधी । मातारै पाए लागी (? गा) मारवणी पिण सासूरै पांवां लागी । सारां ही साथसुं पांवा लागा । घणा उछाह हरष हुवण लागा । मारगरा समाचार पुछूया । कहो । जावो सोय रहो, रात घणी गई छै । तारै ढोळोजी मांहि पधारीया, सहेलीयां हथियार षोलाया । फुलेल कुमकुमांरा पांणीसूं मंजण सिनांन कराया । माळवणीनें मारवणी हजूर तेड़ीया । तारै मांहिलो राजलोक झाषवा लागो । मांहिलो राजलोक समाचार सुणै छै । माळवणी समाचार पुछै छै । ढोलोजी कहै । एक वांणीयो मिलीयो । एक एवाळ मिलीयो । फेर लुंणगाळ में डु (म) मिलीयां । पीवणे साप षाधी । तारै महादेव पारवती मारवणीनुं जीवाड़ी । तिके समाचार सारा ही कहीया । माळवणी सांभळीया । राजलोक सारां सी सांभळीया । तितरा मांहै मालवणी मारवाडनें निंदण लागी ।

दूहा

ढोला, मारू देशमें, पांणी नीठ कढाय ।
भलो अमीणो देसड़ो, सेवज, जळ पीवाय ॥ १ ॥

[इसके आगे मूल के ६५६, ६५५, ६५९, ६६१ और ६६२ नंबर के दूहे हैं ।]

वारता

अीतरी बात माळवणी कही । हमै ढोलोजी उतर देवै छः ।

[इसके आगे मूल का ६६६ नंबर का दूहा है]

दूहा

माळवणी ढोलो कहै, सुज मन दाषां सच ।
मारू मिलीयां भ्रित हुई, उर सगळा जग साच ॥

मारवाणी वायक

दूहा

बाबा म देई माळवै, जिहां छे पुरुष कुरूप।
ऊघड़-पेट घण-षऊ रोगीला कुमीठ॥
बाबा म देई माळवै, जिणरा पुरुष मजुर।
घर बैठी हुकम करै, माँणस नहीं ते मूढ॥
बाबा म देई माळवै, जिण देसे कुरुंष।
अव मकीरो षावणो, मांणस नहीं ते मूढ॥

ढोला वायक

[इसके आगे मूल के ६७०, ६७१, और ५५४ नंबर के दूहे हैं।]

इति श्री ढोला-मारूरी बात संपूर्ण।

श्रीरस्तु। श्रेयं सुषकारी लक्ष्मीकारी पुत्रपौत्रकारी वाचै सुणै सो कलपवृक्ष जों फळै। श्री।

यह प्रति जोधपुर की सुमेर-पब्लिक-लाइब्रेरी में वर्त्तमान है। इसका लिपिकाल संवत् १६६६ है। इसका पाठ अत्यंत शुद्ध है। इसमें बीच का एक पत्र नहीं है जिससे कुछ दोहे नष्ट हो गए हैं। इसमें कुशललाभ की चौपाइयाँ भी हैं। आगे जहाँ पर × × × ऐसा चिह्न है वहाँ इस प्रति में कुशललाभ की चौपाइयाँ हैं जिनका पाठ (थ) 'प्रति से बहुत-कुछ मिलता है। टिप्पणी में (झ), (ज) तथा कहीं-कहीं (छ) प्रति के पाठांतर दिए गए हैं।]

ढोला-मारुई चउपई।

श्रीसारदाई नमः

सकळ सुरासुर-साँमिनी, सुणि माता सरसत्ति।
विनय करीनइ वीनवुँ, मुझ दिउ अविरळ मत्ति ॥ १ ॥
जोताँ नवरस एणि युगि, सविहुँ धुरि सिणगार।
रागइ सुरनर रंजीयइ, अबळा तसु आधार ॥ २ ॥
वचन विलास विनोदरस, हावभाव रुति हास।
प्रेम प्रीति संभोग रस, ए सिणगार अवास ॥ ३ ॥
गाहा गूढा गीत गुण, कवित कथा किल्लोल।
चतुर-तणा चित रंजवण, कहइ कवि किल्लोल ॥ ४ ॥

१—सरसत मात पसाव कर, दे मो अविरळ मत्ति।
भोगी भमर भुवाळ जे, गुण गाऊँ तसु भत्ति ॥ (झ)

२—नरवर इण जुगइ (झ) = नवरस...युगि। सब (झ)। धुर (झ) रागै (झ) रंजीयै (झ)।

३—रति (झ) = रुति। कै (झ) = ए। आवास (झ)।

४—रस (झ) = गुण। कल्लोल (झ)। मन रींझवै (झ) = चित रंजवण। कहीया (झ) कल्लोल (झ)।

गाहा

मणहर नवरस मझे, सुंदरि नारीण सरस संबधा ।
निरुवम कविह ति (?नि)वद्धा, सुण तु' सयणा जणा सुगुणा ॥५॥
नळवर नयर निरिंदो, नळराय सुउ सल्लकुमर वरो ।
पिंगळराय सुधूया, वनिता मा (र) वणि वर्णविसु ॥ ६ ॥

कवित्र

षाणी पंथउ पवँग, खग्ग चंगउ खुरसाणी ।
विज्ञानगरी वस्त्र, एक विण सुर सिरखाणी ॥
पट्टकूळ पट्टणी, देस भोगी धर दक्षण ।
कुंजर कदळी-खंडि, विप्र तिरुहती विचक्षण ॥
तिम चंद्रवदन चंपकवरण, दंत झबकइ दामिनी ।
सारंगनयण संसार इणि, मणहर मारू कामिनी ॥ ७ ॥
मुरधर देस मझारि, सयळ धण-धन्न-समिद्धउ ।
नामइ पूगळ नयर, पुहवि सगळइ परसिद्धउ ॥
राज करइ रमिराह प्रगट पिंगळ पृथवीपति ।
प्रतपइ जसु परताप दाँन जळहर जिमि दीपति ॥
देवडी नामि उमा घरणि, मारुवणी तसु धू कुमरि ।
चउसठि कळा सुंदरि चतुर, कथा तास कहिसु' सुपरि ॥ ८ ॥

× × × ×

दूहा

गिरि अढार आबू धणी, गढ जाळोर दुरंग ।
तिहाँ सामँतसी देवडउ, अमली माण अभंग ॥
× × × ×
चंदवदणि चंपकवरणि, अहर उळचा रंगि ।
खिंजरनयणी खीणकटि, चंदन परमळि अंगि ॥३१॥

५—निरुपम कहं निबंधा (भ्र)=निरुवम...वद्धा । सुणंत ।

७—पंथ तुरंग (भ्र)=पंथउ पवँग । खग (भ्र) । बीजानगर सहुसत निरमळ गंगानो पाणी (भ्र)=विज्ञानगरी......खाणी । धुर दक्षिण (भ्र) । विपरीति नीति (भ्र)=विप्र तिरुहती ।

८—धान (भ्र) । रिणिराह (भ्र) । तपंतौ (भ्र)=पृथवीपति । दीपंतौ (भ्र)= जिमि दीपति । मरुवणि (भ्र)

३१—प्रीण (भ्र)=खीण । कोमल नेत्र कुरंग (भ्र)=चंदन...अंगि ।

अति अद्भुत संसार यण, नारी रूप रतन्न।
अछइ ऊमा देवडी, कुमरी कंचन-वन्न ॥ ३२ ॥
जउ तुझ सारीखउ जुडइ, भामणि तुझ भरतार।
तउ जोडी जुडि कान्ह ज्युं, जउ मेळइ करतार ॥३३॥

जेसळनइ पिंगळ कहइ, करि आपण परियाँण।
एकणि दिन माहि देवडी, जिम आवइ इण वाणि ॥१०३॥
साचउ छोरू तउ सही, तुँ सेवक, हूँ स्वामि।
आगइ ते परणावियउ, करि हिव एतउ काँम ॥१०४॥
सोवनगिरिहूँ चिहुँ दिसइ, रूधा मारग घाट।
पंथी कोइ पूगळ-तणउ, वहे न सकइ वाट ॥१०५॥
कटकी जउ आपे कराँ, सउ रीसावइ राय।
साँमतसी रूठइ थकइ, बंधि न बइसइ बाय ॥१०६॥
वचन सुणी राजा-तणउ, जेसळउ कीयउ प्रणाँम।
तउ हूँ छोरू तापरउ, जउ ए सारूँ काँम ॥१०७॥

× × × ×

सुणी वात रिणधवळ सहि, काळउ थयउ कुमार।
पाटिण पहुतउ आँपणइ, आरति करइ अपार ॥१२०॥
पाछइ साँमतसी सुपरि, मोटउ करि मंडाण।
उमादेरउ ऊझणउ, इण परि चढ्यउ प्रमाँणि ॥१२१॥

३३—सारखी (भ)। जोडी राही (भ) = तउ जोडी जुडि।

१०४—तइ (भ) = ते। बळि (भ) = हिव।

१०५—हेरा कीया (भ) = हूँ...दिसइ। रूंध्या (भ)। को (भ) = कोइ। बही (भ)।

१०६—आपाँ (भ)। तउ मति रूसइ (भ) = सउ रीसावइ। चाचकदे (भ) = साँमतसी। काय (भ) = बाय।

१०७—जेसळि कीथ (भ)। हुं (भ)। जइ (भ)। सारउ (भ)।

१२१—पाछिइ। चाचिगदे = साँमँतसी। मोटइ। मंडाणि। इणि। चढिउ। प्रमाण। (भ)।

पटराणी पिंगळ तणी, अपछरनइ अणुहारि।
अछइ उमा देवडी, सुंदर इणि संसारि ॥१२२॥
सुंदरि सोळ सिँगार सजि, सेज पधारी साँझि।
प्राणनाथ प्रीतम मिलउ, उ सरि बइठउ हंस ॥१२३॥
अद्‌भुत रूप असंम, जगि जोगी इणि परि कहइ।
राणी पति······भा, कहीयउ एम कवी सरइ ॥१२४॥

सोरठा

प्रीयसुँ अधिकउ प्रेम, रयणि-दिवस रंगय रमइ।
मोह्य(उ) मधूकर जेम, कुसम जाणि कतक-तणय ॥१२५॥
माथउ धोइ मेटि, उभू सूरिज साँमुही।
तउ ऊपनी पेटि, मोहणवेळी मारुई ॥१२६॥

दूहा

भूपति भाऊ भाटनइ, कीधउ कोडि पसाउ।
चाल्यउ नळवरगढ-भणी, प्रणमी पिंगळराय ॥१२७॥

× × × ×

वरस दउढ बउळ्या जिसइ, तिसइ देवन बुठउ देसि।
खड पालइ सवि लोक खडि, वसिवा गया विदेसि ॥१३१॥
मारू-कोइ देस माहिं, एक न जाइ रिड्ड।
कदही होइ अवरसणउ, कइ फाकउ कइ तिड्ड ॥१३२॥
पिंगळ परियण पूछीयउ, कीजइ त्रेवड काय।
काई सु ठाम ज अटकळउ, जेथि वसीजइ जाइ ॥१३३॥

१२२—ऊमा (भ.)।

१२३—सेजि। संझि। मिल्यउ। उरसरि। वयठउ। (भ.)।

१२४—अदभुत। जोई=जोगी। जपइ=कहइ। परतषि=पति...। कहियौ ए अदभुत कथन। (भ.)।

१२५—प्रय। रयणी। रसि=दिवस। रंगइ। (भ.)।

१२६—धोयउ। तिहाँ=तउ। चंपावरणी=मोहण वेळी। (भ.)।

१२७—कीया=कीधउ। राउ=राय। (भ.)।

१३१—घउढ वउळा पछे=दउढ...जिसइ। (भ.)।

१३२—मारिवाडिकै देसमैं=मारू...माहि। पीड=रिड्ड। कबही मेह वरसै नहीं का फाका कै तीड। (भ.)।

१३३—कीजै। तेवड=त्रेवड। जु ठाम। अटकळी। (भ.)।

जळखड कारणि खोजीया; देसे दोऊ दरवाँन ।
पहुकर खड पाणी प्रबळ, पिंगळ सुणि राजाँन ॥१३४॥

× × × ×

इणि अवसर घण उन्हयउ, प्रगट पावस मास ।
पासइ पिंगळरायनइ, कीयउ उतारे तास ॥१५४॥
उनमीयउ उतर दिसइ, गयण गरजइ घोर ।
दह दसि चमकइ दामिनी, मंडइ तांडव मोर ॥१५५॥
च्यारि मास निश्चळ रह्या, सरवर-तणइ प्रसंगि ।
पिंगळनइ नळ भूपती, मिळीयउ मानइ रंगि ॥१५६॥

× × × ×

जदिकी जाई मारुवणि, तबका बोल्या बोल ।
पिंगलरायरी मारुई, नळराजारउ ढोल ॥२०४॥
आषइ उमा देवडी, बालँभ, हीयइ विचारि ।
मनह सिकोडी मारुवणि, दीन्ही समुदाँ पारि ॥२०५॥
कंता, अणदीठइ कुँवरि, कीयउ नातरउ काँ ।
पटराँणीनइ पिउ कहइ, जीहाँ सिरिज्यो तिहँ जाइ ॥२०६॥

× × × ×

माळवदेस महीपती, भीमसेन धूपाल ।
मालवणी धूअ तजु-अणी, सुंदरि अति सुकमाळ ॥२८९॥
परधाने नळवर-तणे, मागी घणइ मँडाणि ।
जोताँ जोडाव्यउ जड्यउ प्रीति चडी परिमाँण ॥२९०॥

१३४—सोझीया । देस प्रदेसे जाय = देसे...दरवाँन । साँभळ पिंगळराय = सुणि. राजाँन । (झ) ।

१५४—ऊमह्यौ । प्रगट्यौ । कीयो राय तिहाँ वास । (झ) ।

१५५—मंडै तंडव गिर मोर । (झ)

१५६—नळराइ = नइ नळ । मिळीया मन मैं रँग । (झ) ।

२०५—वात समंदा पार (झ) = दीन्ही०)

२०६—पाउ पटराणीनु कहइ (झ) ।

भीमसेन परणावीया (?), नळराजा परधान
नळ नंदनसुं नातरउ, मिलीयउ मनि बहु माँनि ॥२६१॥

× × × ×

साँझ समइ सउदागिरी, आप-तणइ उतारि।
बइठी गउखइ तिणि समइ, नयणे निरखी नारि ॥३०१॥

[इसके आगे मूल के ८७, ८६, ६० और ६१ नंबर के दूहे हैं।]

× × × ×

[इसके आगे मूल के ६६, १८९ और १६० नंबर के दूहे हैं।]

× × × ×

[इसके आगे मूल के १८, ३४, ४६, ४५, ६०, ६२, ६४, ६५, ६६, ६६, ७०, ७१, ७२, ५३ और ६७ नंबर के दूहे हैं।]

कउआ म चुणि कठंजरइ, उडे नरवरि जाउ।
लेउ हमारी पाँसुळी, लोभी देख च (?त) खाउ ॥३३२॥

[इसके आगे मूल के ७५ और १६७ नंबर के दूहे हैं।]

नाही नयण समारीया, उरि आरी सु लेइ।
द्रठि लगेसी मारुई, क्युं क्युं जितन करेइ ॥३३५॥
नाहे धोए नख रँगे, नयण करे निज बाँण।
जिणि दिणि सज्जण प्राहुणा, तिणि दिनि तें परियाँण ॥३३६॥

[इसके आगे मूल के ७३, ७४ और ६८ नंबर के दूहे हैं।]

× × × ×

[इसके आगे मूल के ५१, ५५, ५६ और ५४ नंबर के दूहे हैं।]

कुंझडीयाँ कळिअळ कीयउ, सुणी उपंखइ वाइ।
ज्याँकी जोडी वीछुडी, त्याँ निसि नींद न आइ ॥३५९॥

[इसके आगे मूल का ५६ नंबर का दूहा है।]

सहु प्रीतम संदेसड़ा, मारुवणी कहियाँह।
माता मन महि जाणीयउ, विरह वियापि थियाँह ॥३६१॥

[इसके आगे मूल के ७६, ८०, ८१, ८२ और ६६ नंबर के दूहे हैं।]

× × × ×

३३६—(छ) पाठांतर—नब रंगे।
३६१—(ज ३४८) मारवणी। विलाप।

[इसके आगे मूल के १०३ और १०४ नंबर के दूहे हैं ।]

तीयाँनइ वागा विंतजइ, वारू दीजइ ग्रास ।
सीख लेई पिंगळ कन्हा, आव्यउ मारू पासि ॥३८३॥

[इसके आगे मूल के १०९, ११३, ११४, १९८, २०२, २०३, २०४, २०५ और १६ नंबर के दूहे हैं ।]

नाभि सुकोंमळ कमळ मुख, डील सु सीतळ गत्त ।
तिणि कादमि खुत्त (द?) विरही, मन मयगळ मयमत्त ॥३९२॥

[इसके आगे मूल के १३५, ४२२, १५५, १४८, १४७, १४९, ५०, १५१, १५३, १५४, १४५, १५६, ११६, ११५, १२०, ११७, १३५ (दुबारा) ११८, १२१, १२२, १७७, १३६, २०६, १४६, १३८, १३६, १४२, १४१ और १५७, नंबर के दूहे हैं ।]

ढोला तो मारू विज्जळी, खाजौ काळु साप ।
योवन थासु रूठि चल्या, ढोला रह्या चित लाइ ॥४२१॥

[इसके आगे मूल का १४४ नंबर का दूहा है]

संदेसउ जन पठवइ, याँही त्याँही साथि ।
एकरसउ मिलि जाइ नइँ, कपडीयाँरइ साथि ॥४२३॥

[इसके आगे मूल के १४३, १११, १६६, ४८६ और १८२ नंबर के दूहे हैं ।]

पंख पसारण जग भमण, कह्या सँदेसा भट्ट ।
तीयाँ संदेसाँ तीयाँ माणसाँ, कदि हुँ जोवुँ वट्ट ॥४२६॥
ढोलउ चलुं करइ, पलाणीया केकाँण ।
कइ जाणइ कुण चालिसी, पहिला प्रीयु कि प्राँण ॥४३०॥

[इसके आगे मूल का १०८ नंबर का दूहा है ।]

× × ×

ए मांणस तिणि पाठव्या, साल्हकुमर तुझ काजि ।
मालवणीथी बीहता, मइँ मेळवीया आज ॥४४७॥
मारुवणी सइमुखि कह्या, दूहा मिसि संदेसि ।
जउ मारू मिळिवा करइ, तउ पधार उणि देसि ॥४४८॥

३८३—(ज २७०) तियां । वेंतिजै । दीया ग्रहास ।
४२६—(ज २९८) भाट । संदेसां तिण मांणसां=तीयाँ...। बाट ।
४४७—(ज) (३१५) तिण । काज । सुं=थी । बीहतां ।
४४८—(ज ३१६) सँमुख । मिस । संदेस । करो । उण ।

बइमुषि ढोलइ पूछीयउ, मारू-तणउ वृतंत ।
ढोलउ त (?न) इ भाऊ बिन्हइ, बइसारी एकांति ॥४४९॥
भाटै मारुवणी-तणे, वारू कह्या वषाँण ।
मारू जिण निरखी नहीं, जनम तीय अप्रमाँण ॥४५०॥
भाऊ ढोलानइ कहइ, कीजइ सीख पसाउ ।
इयाँरी वाट उतावळी, जोवइ पिंगळ राउ ॥४५१॥
जउ ए मोड़ा जाइस्यइ, तुझ पाखइ संदेसि ।
तउ मारुवणी कुँअरी, पावक करइ प्रवेसि ॥४५२॥

× × × ×

संदेसा सहि सविगता, कहीया तिहाँ सँभाळि ।
मालवणीहूँ संकतउ, सीख दीयइ ततकाळ ॥४५८॥
भाऊ भाट संदेसड़ेउ, दिंसि सयणा कहीयाँह ।
ढोलउ मारू अळजयउ, साई दे मिळियाँह ॥४५९॥
विरासीयाँ विरूओ कीयउ, रखे एम म करेज ।
ढोला-तणा सँदेसड़ा, अळगा थका कहेज ॥४६०॥
अहजउ भाँजउ एम, ढाल धण ऊमाहीयउ ।
पंछ-विहूणउ प्रेम, मन सीचाणउ झडपसी ॥४६१॥

[इसके आगे मूल के २१३, २१४ और २०१ नंबर के दूहे हैं ।]

× × × ×

४४९—(ज ३१७) सेंमुखि । पूछीया । तणा । वृतांत । नें=तइ । बेसारया ।

४५०—(ज ३१८) भाटैं । मारवणी । तणा । वयु वर्णव्या=वारू कह्या । तिहां=तीय ।

४५१—(ज ३१९) पसाव । राव ।

४५२—(ज ३२०) जाइसी । संदेस । सही मारू माननी=मारुवणी कुँवरी । करिस्यै । प्रवेस ।

४५८—(ज ३२६) सुं=हूँ । संकतै । दीधी ।

४५९—(ज ३२७) दिस । उळज्यो=अळजयउ ।

४६०—(ज ३२८) वीरास्यां । विरो । राखे । एम=एम म । तणो । संदेसडो । अळगां थकां ।

४६१—(ज ३२९) अलजउ । भाजै । ढोलो । भरि करि मूठि उडाय=पंछ...प्रेम । सीचाणा । जेम तूं=झडपसी ।

[इसके आगे मूल के २१६, २१७, २२१, २२३, २२६ (पंक्तियों का क्रम उलटा है), २२७, २२४, २२५, २३०, २३१, २२८, २२६, २३२, २३३, २३६, २३८, २३९, २४०, २३७, २४१, २४२, २४३, २४४, २५१, २५०, २५६, २७०, २६१, २६२, २५७, २६३, २५२, ४७, ४८, २५३, २७३, २७५ और २७७ नंबर के दूहे हैं।]

× × × ×

[इसके आगे मूल के २७६, २८१, ३७०, २८०, २८३, ३०४, ३०५ और ३०७ नंबर के दूहे हैं।]

प्यारा प्रीतम पहिलकी, सकइ तउ मन माँहि आणि।
आधी रातइ रे पिसुण, किसी पलाणि पल्लाणि ॥५२७॥

[इसके आगे मूल के ३०८, ३११, ३१२, ३१३, ३४३, ३१६, ३२२, ३२३, ३१७, ३१८, ३२०, और ३२१ नंबर के दूहे हैं।]

करहा मालवणी कहइ, संभळि बोल्य सच्च।
तातउ लोहउ ताहरइ, वयण न लागो जच्च ॥५४०॥

× × × ×

[इसके आगे मूल के ३३३, ३३५, और ३३६ नंबर के दूहे हैं।]

× × × ×

[इसके आगे मूल के ३४५, ३४८, ३४६, ३५३, ३६३, ३६८, ३६९, ३७८, ३७९, ३६२, ३८४, ३८५, ३८१ और ३८६ नंबर के दूहे हैं।]

ऊ सरवर हू पदमिनी, हू जउ करहउ जाइ।
पूगळ जाइ प्रगटीयउ, करइ मारवणी दाइ ॥५६३॥

[इसके आगे मूल के ३८७, ३८८, ३८६, ३६०, ३६१, ३६२, ३६३, ३७५, ३७७, ३९७ और ३६६ नंबर के दूहे हैं।]

× × × ×

[इसके आगे मूल के ४०२, ४०५, ४०६ और ४०७ नंबर के दूहे हैं।]

[इसके आगे मूल के ४२६, ४२७, ४२८, ४३२, ४३०, ४३३, ४३४ और ४३१ नंबर के दूहे हैं।]

५२७—(ज ३८२) प्रीत=प्रीतम। पिसुँण।

५४०—(ज ४०७) सांभळ बोलां। लोह। तणावसी=ताहरइ। बपि लागै तो वच्च। (छ) बोले। लोहड़। सच्च=वच्च।

जे ही चीना करहला, नीळी लूंब लहक्क ।
ते पणि जो लंघन करइ, मरइ न चरही अक ॥६०१॥

[इसके आगे मूल का ४२४ नंबर का दूहा है ।]

पिंगळ राजा रूसिवित, चारण काई चाड ।
साल्हकुअर वव उलष्यउ, तब बोलायउ माडि ॥ ६०३ ॥

[इसके आगे मूल के ४४२, ४४४ और ४४५ नंबर के दूहे हैं ।]

इक संघाती पंथ सिरि, जोअइ करहा बाट ।
ढोला चलवउ देषि करि, तिणि मनि थयउ उचाट ॥६०६॥

× × × ×

[इसके आगे मूल का ४५० नंबर का दूहा है ।]

× × × ×

[इसके आगे मूल का ४४९ नंबर का दूहा है ।]

जो थे देषी मारुइ, तउ अहिनाण उगट्टि ।
चंदा जेहइ मुखकमळि, केहरि जेहइ कट्टि ॥६१६॥
मारू आवी चउहट्टइ, गंधी-केरइ हट्टि ।
हट्ट लूसायउ वाणीयइ, बळद गमाया जट्टि ॥६१६॥

[इसके आगे मूल के ४६४, ४७३, ४५९ और ४५७ नंबर के दूहे हैं ।]

सदा उळंकी नाक सळ, झीणी लंक म जाइ ।
दंडी सुता सप ज्युं, खंजी कटे सहाइ ॥६२१॥
दंडी सूता सप्प ज्युं, षंजी षधइ साह ।
तिणि धण अंदोहउ कीयउ, वीष न वळणे पाइ ॥६२२॥

६०१—(ज ४७२) चीनी । लुंब लहिक । जो घण = ते पणि । लंघण । अंत चरेबो = मरइ न चरही ।

६०३—(ज० ४७५) रीसयो । कोई एक = काइ चाड । नैं = वव ओलष्यो । बोलीयो । वीवेक = माडि ।

६०६—(छ) एकरसों तो पंथसिर । वव्लतउ = चलवउ ।

६२१— (ज ४९२) उळकी । लंब मजीह । कढे । सीह ।

६२२—(ज ४९४) सूत्ता दंडी । खधै खंजी । साहि । हिंदो । उं कीयो । वीष चल्यो जाहि ।

[इसके आगे मूल का ४७४ नंबर का दूहा है ।]

इट्टम पट्टम वाणीयउ, ऊथि न जंप्यउ जाइ ।
मारू सदा सुवास छइ, अंगह-तणइ सुभाइ ॥६२४॥

[इसके आगे मूल के ४८४, ४८५, ४७५, ४६०, ४६० (पाठांतर) ४७०, ४८२, ४६५, ४७१ और ४८७ नंबर के दूहे हैं ।]

× × × ×

[इसके आगे मूल के ४६१, ४६२, ४६३, ४६४, ४९५, ४९७, ४६८ और ५०० नंबर के दूहे हैं ।]

एगरउ कढेक्करउ, ढीली मेल्हे वग्ग ।
दीवा-वेळा संचरु, तउ वाढे चारे पग्ग ॥६४६॥

[इसके आगे मूल के ५२१ और ५२२ नंबर के दूहे हैं ।]

× × × ×

[इसके आगे मूल का ५०६ नंबर का दूहा है ।]

सारत संदारेह, भोगो मास उ पत्राखीयउ ।
अडीयउ अचारेह, जाणु ढोलउ आईयउ ॥६५१॥

[इसके आगे मूल के ५०५, ५१२ और ५१३ नंबर के दूहे हैं ।]

[इसके पश्चात् कुछ पृष्ठ नष्ट हो गए हैं ।]

× × +

..................................न्न ।

मारू ढोलउ ऊगरइ, कहि समझीवा बन्न ॥७६७॥

(इसके आगे मूल के ६३१ और ६३२ नंबर के दूहे हैं ।]

× × × ×

[इसके आगे मूल का ६३३ नंबर का दूहा है ।]

× × × ×

[इसके आगे मूल के ६३९ और ६४० नंबर के दूहे हैं ।]

× × × ×

[इसके आगे मूल का ६४८ नंबर का दूहा है ।]

× × × ×

६२४—(ज ४६६) ओथि न । चंपो । जाय । सुभाय ।
६४६—(छ) पाठांतर—पगरौ काढे कक्करौ । न तो = तउ ।
६५१—(ज ५२०) सारस । भूगो । पत्रीखियो ।

इसके आगे मूल के ६५३, ६५८, ६५५, ६५६, ६६१ और ६६२ नंबर के दूहे हैं।]

× × × ×

[इसके आगे मूल के ६६६, ६६७, ६६८, ६७० और ६७१ नंबर के दूहे हैं।]

चौपाई

यादव रावल श्री हरिराज, जोड़ी तास कतूहल काज।

दूहा घण पूराणा अछइ, चोपाई बंध कीयउ मइ पछइ।
.... ॥
संवत सोळह सत्तोतरइ, आषा त्रीज दिवस मन खरइ।
जोड़ी जेसळनयर मझारि, वाच्या सुष पामइ संसारि॥
संभळिसगुण चतुर गहगहइ, वाचक कुशळलाभ इम कहइ॥

....

इति श्री ढोला-मारुई चउपई संपूर्ण

१६६६ वर्षे काती सुदि ८ हि (? दि) न नागउर मध्ये श्रीउपकेस-गच्छे भट्टारक श्रीसिद्धसूर स्वराणे शष्य (सूरिणः शिष्य) मेहा लिषतं बाचनार्थं।

कल्यांणमस्तु। शुभं भवतु। श्रीरस्तु। श्री।

[यह प्रति जोधपुर के श्री सरदार-म्यूजियम में वर्त्तमान है। इसमें वाचक कुशललाभ की चौपाइयाँ भी हैं। इसका पाठ बहुत अशुद्ध और विकृत है। इसलिये मूल में इसके पाठांतर, और परिशिष्ट में इसका मूल देना उचित नहीं समझा गया।]

[इसका आरंभ इस प्रकार होता है—]

श्री हरिः

अथ वारता ढोला नैं मारवणीरी लिख्यते

प्रथम दोहा

सकळ सुरासुर सामिणी, सुण माता सरसत्त।
विनय करेनै वीनवूं, मूझ दौ अवरळ मत्त ॥ १ ॥

[अंत इस प्रकार है—]

गाहा सात सयँ ए परिमाँण, दोहानैं चौपई वखाँण।
जादव रावळ श्रीहरराज, जोड़ी तास कुतूहळ काज ॥
जेथण पर कवि-मुख साँभळी, तिण पर में जोड़ी मन रळी।
दोहा घण पुराणा अछै, चौपाई बंध कियौ में पछै।

संवत सोळसे सत्तोत्तरै (१६०७), अखातीज दिवस मन पखरै ॥
जोड़ी जेसळनयर मझार, वाचै सुख पाँ (?पाँ)में संसार।
संभळ सगुण चुतर गहगहै, वाचक कुशळलाभ इम कहै।
ऋद्धि वृद्धि सुख संपति सदा, संभळतां पामें संपदा ॥

इति

आ परत जिणमें वात कुशळचंद जतीरी वणायोड़ी छै। पैहला ढोला-मारवणरी वात छै तिणमें वारता नें दोहा छै। इण कवी जती संवत १६०७ में जेसळमेर रावळजी हरराजजारै विनोदार्थ दोहा और वारता तिके चौपाई बंध आपरी उक्तीसूं कीया है। तिणरौ स्पष्ट लिख दियौ है कै म्हें रावळजी साहबांरै विनोदार्थ पुराणा दोहा वे चौपाई बंध किया है। पहली ढोला-मारवणीरी पुराणी वातरौ उलथौ कुशळचंद कियौ छै।

(ज)

[यह प्रति पुस्तक-प्रकाश लाइब्रेरी, जोधपुर, में वर्त्तमान है। यह (च) प्रति का अनुसरण करती है, पर इसमें नए दोहे भी अनेक हैं। इसके प्रथम ६ पृष्ठ नष्ट हो गए हैं। इसका लिपिकाल संवत् १७८१ है।]

ढोला-मारू-चउपई

दूहा

[आरंभ के १६८ दूहे-चौपाई नष्ट हो गए हैं।]

सांझ समें सौदागरें, आप-तणइ उतारि
बैठा हसै तिण अवसरै, नयणे निरखै नारि ॥१६६॥

[इसके आगे मूल के ८७, ८६, ६० और ९१ नंबर के दूहे हैं।]

× × × ×

दूहा

[इसके आगे मूल के ९९ और १८६ नंबर के दूहे हैं।]

बाँहडीयाँ रतनाळियाँ, सहीयर ढोलनीयाँह।
वासी चंदन महमहै, मारू लोवडीयाँह ॥२१२॥

× × × ×

दूहा

[इसके आगे मूल के २७, ३६, ३१, ३० (दूहा), २९, २८ और ३४ नंबर के दूहे हैं।]

बावहिया बाली भणें, डुंगर कड्खे म रोय।
घाँ (?) श्रावण मुज सासरै, कोड न द्य (?) जो कोय ॥$\frac{२२०}{२}$

[इसके आगे मूल के १८, ६०, ६२ और ६३ नंबर के दूहे हैं।]

[यहाँ पृष्ठ ११ नष्ट हो गया है।]

नोट—जहाँ × चिह्न है वहाँ चौपाइयाँ हैं।

[इसके आगे (च) का ३६१ नंबर का तथा मूल के ७६, ८०, ८२ और ६६ नंबर के दूहे हैं।]

× × × ×

दूहा

[इसके आगे मूल के १०३, १०४, (३८३ च)*, १०९, ११३, ११४, १६८, २०३, २०४, १६, १८१, १३७, १३५, ४२२, १५५, १४८, १४७, १४६, १५१, १५४, १४५, १५६, ११६, ११५, १३६, १४६, १५७, १५८, २१४, १७२, (४२६ च) और १०८ नंबर के दूहे हैं।]

× × × ×

[इसके आगे (च) प्रति के ४४७, ४४८, ४४९, ४५०, ४५१ और ४५२ नंबर के दूहे हैं।]

× × × ×

[इसके आगे (च) प्रति के ४५८, ४५९, ४६०, ४६१ और के २०१ नंबर के दूहे हैं।]

× × × ×

[इसके आगे मूल के २१९, २१७, २२१, २२३, २२६ (पंक्तियों का क्रम उलटा है), २२७, २२४, २२५, २३०, २३१, २२८, २२६, २३२, २३३, २३६, २३८, २३९, २४०, २४१, २४२, २४३, २४४, २५१, २५०, २५६, २७०, २६१, २६२, २५७, २६७, २६०, २६८, २६१, २५२, २५३, २७३ और २७५ नंबर के दूहे हैं।]

कागळ लिखि कुंकुं अषर, पाठवीया सेणेह।
उभी रइने वाचीयो टपकंटे नयणेह ॥ ३७५

[इसके आगे मूल का २७७ नंबर का दूहा है।]

× × × ×

[इसके आगे मूल के २७६, २८१, ३७०, २८३, २८४, २८५, ३००, ३०४, ३०५, ३०७ (५२७ च), ३४४, ३०८, ३११, ३१२,

---

* जहाँ कोष्ठक में नंबर देकर (च) लिखा गया है वहाँ समझना चाहिए कि वह दूहा (च) प्रति का है और मूल में नहीं लिया गया है। उस दूहे को परिशिष्ट में (च) प्रति में-में देखिए।

३१३, ३४३, ३१६, ३२२, ३२३, ३१७, ३२६, ३२८ और ३१८ नंबर के दूहे हैं।]

टुंटो हुंतो डांभिजुं, बाधो भूख मरूँह।
जावुं ढोलाजीरै सासरै, तो नागरवेलि चरांह ॥४०४॥

[इसके आगे मूल के ३२०, ३२१ और (५४० च) नंबर के दूहे हैं।]

× × × ×

[इसके आगे मूल के ३३३, ३३५, ३३६, ३४५ और ३४७ नंबर के दूहे हैं।]

सोरठा

रण करहो नें रात बंदो पुंन्य आगलो।
खडीए एकण राति ढोलो धण उमाहियो ॥

[इसके आगे मूल के ३६४ और ३६५ नं० के दूहे हैं।]

दूहा

चिंता डायण मनि बसी, घण जिम तूटे खाय।
कबहेक तो कटारियां, कबहेक जीव ले जाय ॥

× × × ×

मार सरीखो वलहो, पहिली रचण काज।
विरतै पछै वलहो, त्रितथी हाली आज ॥

[इसके आगे मूल का ३८२ नंबर का दूहा है।]

× × × ×

[इसके आगे मूल के ३४८, ३४६, ३६३, ३६८, ३६६, ३५७, ३८०, ३८१, ३७९, ३६२, ३८६, ३८७, और ३८८, नंबर के दूहे हैं।]

× × × ×

सारस के मिस पांतरी, जाणु करहो थाय।
देखे थल उपर चढी, जांण पंखेरू जाय ॥४३०/२

[इसके आगे मूल के ३८६, ३६०, ३६१, ३६२, ४१४, ४१५, ४१६, ३५५, ३९३, ३७५, ३७७, ३९७, ३६८, ४०१, ४०३, ४०४, ४०५, ४०६, ४११, ४१२, ४१३, ४१७, ४१८, ४२३, ३६६, ×, ×, ४०२, ४०६, ४०७, ×, ×, ×, ४२६, ४२७, ४३२, ४२८, ४३०, ४३३, (६०१ च) ४२४, (६०३ च) ४४२, ४४४ और ४४५ नंबर के दूहे हैं।]

एक रैबारण पंथ सिरि, जोवै करहां वग्ग।
ढोलो फिरतो देखनें, तिण ढोलो कियो अडिग्ग ॥४७८॥

× × × ×

[इसके आगे मूल का ४५० नंबर का दूहा है।]

× × × ×

[इसके आगे मूल के ४४६, ४६३, ४७३, ४५६, ४५७, (६२१ च), × , × , (६२२ च), ४७४, (६२४ च), ४८४, ४८५, ४७५, ४६०, ४६० पाठांतर, ४७०, ४८२, ४६५, ४७१, और ४८७ नंबर के दूहे हैं।]

मारू हंदा नयण दोउ, जेहा अर्जन-बांण।
जहि दिस देखे निजर भर, त्यां दिस पडै चंगाण ॥५०६॥

[इसके आगे मूल के ४८६, ४६१, ४९२, ४९३, ४६४, ४६५, ४६७, ४६८, ५००, ५२१, ५२२, ५१८, ५०६, (६५१ च), ५०५, ५१२ और ५१३ नंबर के दूहे हैं।]

करहा कांइ कहुकियो, झाझी मांहि वणांह।
ढोलो तौ ए कंबाईयो, उमाहियो घणांह ॥५२९॥

× × × ×

जिण कंबै खरह कियो, तिंण तू करह म मारि।
कंब चटका ले सहे, अवर लहै गिमार ॥५३४॥

[इसके आगे मूल का ५२३ नंबर का दूहा है।]

ढोवै पांणी झाडि घरि, संबळ सूरह थणेहि।
साइ सकोडी मारुई, ऊचळि गई वणेह ॥
कांमण हंदै कारणें नळवर छंड्यो राज।
सयण मुंहा बेहुं कहां, मो धंण मिलस्यै आज ॥

[इसके आगे मूल के ५२४ और ५२५ नंबर के दूहे हैं।]

जिण कारण थळ लंघीया, तियां चिंतन काइ।
ते साजन बैठा खुह सिर, करहो त्रिसीयो जाइ ॥५४०॥
करहा पांणी ढूक पीव, जे ढोलाको होय।
ज्यां घरि ए जुग मोहियो, रागि न छीतो कोय ॥५४१॥
भोलै वाहा कोखडी, फेर ण वाहै कोय।
वैसै कीस कीकर छांहडी, जेतू ढोलोको होय ॥
जो म्हे जांणत वालहो, तौ करह न मारत कोय ॥५४२॥

× × × ×

सब्बे लोवडवाळियां, न जांणु धण काइ।
उजळदंती मारूई, लसण जोडावै पाय ॥५४४॥
सबे लोवड वाळियां, सब्बांई गळि हार।
एकणि मारू बाहिरी, बीजां सहू जुहार ॥५४५॥

× × × ×

[इसके आगे मूल के ५३५ और ५४१ नंबर के दूहे हैं।]

तन श्रृंगार्यो मारूवी, सिंणगार्यो सहू साथ।
अंगै चंदन महमहै, बीडौ सोहै हाथ ॥५५५॥

[इसके आगे मूल का ५४२ नंबर का दूहा है]

उजळ दंत कपूर करि, मारू मुंहडै दंत।
कैरै इणा हर लोडिया, कै लीया हाट विकंत ॥५५७॥
ना र यणा यर लोडीया, ना लिया हाट विकंत।
वेह दिया सांई, लिख्या, मारू मुंहडै दंत ॥५५८॥

× × × ×

[इसके आगे के मूल के १२४, ५४६, ५४७, ५४८, ५४६, ५५२, ५५७, ५५९, ५५१, ५५३ और ५२८ नंबर के दूहे हैं।]

जिम अरहट आरमें, जळ सूकी गरि धांह।
सापरि आहै सजनां, असां अरि सयणांह ॥५८७॥

[इसके आगे मूल के ५५५, ५६३, ५५४, ५८२, ५८३, ५८४, ५८५, ५८६, ५८७, ५८८ और ५८६ नंबर के दूहे हैं।]

करि सा कति सेझें चढी, भिडैक भाजै नाह।

[इसके आगे मूल के ५६०, ५६१ और ५६२ नंबर के दूहे हैं।]

× × × ×

[इसके आगे मूल के ६०० और ६०१ नंबर के दूहे हैं।]

मारवणी मुख सास में, कस्तूरी महिकाय।
पीधी पनग पीयणे, सास - तणे सभाय ॥६२१॥

[इसके आगे मूल के ६०२, ६०३, ६०४, ६०५, ६०६, ६०६ और ६१० नंबर के दूहे हैं।]

धुंण धंधूणी वितांगरी, वार बेचार सबद।
तिण वेळा तिण छोकरी, सरळा कीधा सद ॥६२६॥

[इसके आगे मूल के ६११, ६०७ और ६०८ नंबर के दूहे हैं ।]

जिण धरा मझि पीवणां, भणावै भीव भवंग ।
....||६३३||

× × × ×

पीहर हंदी डुंबणी, घाले नवले धत्त ।
मारू ढोलो उगरै, कहि समझावां वत्त ||६८२||
पीहर हंदी डुंबणी, कीधी नवली घेन ।
मारू ढोलो उगरै, कहि सगझावा वैण ||६८३||

[इसके आगे मूल के ६३१ और ६३२ नंबर के दूहे हैं ।]

× × × ×

[इसके आगे मूल का ६३३ नंबर का दूहा है ।]

करहा कस्तूरी कस्तुरी, उपरि झी (?) णी लोय ।
साथ सुरंगो छाकियो, जौ निरवाहु होय ||६८८||

× × × ×

मारू चढती मारीया, दोय नेणांके बाण ।
साथ सहै ते सुंमरो, पडीयो जांण पछा (ठा?)ण ||६९९||

[इसके आगे मूल के ६३९ और ६४० नंबर के दूहे हैं ।]

× × × ×

करहो कंत कंवेरियो, सुगणी मारू संस ।
वो सै उमर सुंमरो, ताता खडै तुरंग ||७०३||

× × × ×

[इसके आगे मूल का ६४८ नंबर का दूहा है ।]

ऊंचा पंथ विषम थल, करहै लंघा एह ।
सो पिंण त्रिणं पांवां, थलां मति घोडा मारेह ||

× × × ×

ढोला मारू देस में, पाणी नीठ कढाइ ।
भलो अम्हीणों देसडो, सेंवज जल पीवाइ ||

[इसके आगे मूल के ६५७, ६५६, ६५५, ६५६, ६६१, ६६२ और ६५८ नंबर के दूहे हैं ।]

× × × ×

[इसके आगे मूल के ६६६, ६६७, ६६६ और ६६८ नंबर के दूहे हैं ।]

मालवणी ढोलो कहै, सुजमणि देखां सांच ।
मारू मिलियां धृत हुई, उर सकळ जग कांच ॥

[इसके आगे मूल का ६७० नंबर का दूहा है ।]

झगडो भागो नारियां, ढोलइ पूरी साख ।
मारू खंड अमोल प्रिय, बीजी गल्ह म दाख ॥७६१॥

[इसके आगे मूल के ६७१ और ५५४ नंबर के दूहे हैं ।]

ढोलो मारू परणीयां, जदिका ए सहिनांण ।
धण भटियांणी मारवणि, प्रीव ढोलो चहुवांण ॥७६४॥

× × × ×

यादव रावळ श्री हरिराज । जोडी तासु कुतूहळ काज ।

....

दूहा घणा पुराणा अछै । चौपई बंध मैं कीधो पछै ।
इधिको ओछो जे जोड्यो बहु । सो कवियण सांसहि ज्यो सूर ।
पडियो छै जिहां वळी पांतरो । तेह विचारी करिज्यो खरो ।
संवत सोळह सतरौतरै । आखात्रीज दिवस मनि खरै ।
जौडी जैसळमेर मझारि । वांच्यां सुख पामै संसार ।
सांभळ सैंण चतुरि गह गहे । वाचक कुसळलाभ इम कहै ।

....

इति श्री ढोला मारू चउपई समाप्ता ।

सं० १७८१ रा पोषमासे शुक्ल पक्षे पंचम्यां तिथौ बुधवासरे
लि० पं० श्री किसनदासेन ग्राम शिवपुरी मध्यै ।

———

[यह प्रति बीकानेर-निवासी बाबू जयपालसिंह द्वारा प्राप्त हुई थी एवं उन्हीं के पिता के निजी पुस्तकालय में है। इसमें पूरी प्रस्तावना दूहों में है जो किसी अन्य प्रति में नहीं पाई जाती पर वहाँ का एक पृष्ठ नष्ट हो जाने से कई दोहे अप्राप्य हो गए हैं। इसका क्रम बीकानेरीय कथानक के अनुसार है। इसमें जो दोहे मूल से अधिक हैं वे ही नीचे दिए गए हैं। इसका पाठ शुद्ध है।]

६० ॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीरामजी ॥

मारवणीरी उतपति हूई। ढोलैजीरी कथा

दूहा

* सरसत मात पसाव कर दे मो अविरळ मत्ति।
भोगी भमर भुवाळ जे गुण गाऊँ तसु झत्ति॥ १ ॥
* जोताँ नरवर इणि जुगै सबहुं धुर सिणगार।
रागै सुरनर रंजीयै अबळा तसु आधार॥ २ ॥
* बचन बिलास बिनोद रस हाव भाव रति हास।
प्रेम प्रीति संभोग रस कै सिणगार आवास॥ ३ ॥
* गाहा गूढ़ा गीत रस कवित कथा कल्लौल।
चतुर-तणा मन रीँझवै कहिया कवि कल्लोल॥ ४ ॥

गाहा

* मणहर नवरस मझे सुंदरि नारीण सरस संबंधा।
निरुपम कहे निबंधा सुणंत सैणा जाण सुगणा॥ ५ ॥

दूहा

देसाँ माँहे दीपतो परगट पूगळ देस।
तिहाँ नरनारी नीपजै निरुपम नीकै बेस॥ ६ ॥

* इस चिन्ह से अंकित पद्यों के अतिरिक्त कोई पद्य किसी अन्य प्रति में नहीं मिलता

कवित्त

* मुरधर देस मझार सयळ धण-धान-समिद्धौ ।
नामै पूगळ नयर पुहुवि सगळै परसिद्धौ ।।
राज करै रिणिराह प्रगट पिंगळ तपंतो ।
प्रतपै जगत प्रताप दान जळहर दीपंतो ।।
देवडी नाम ऊमा घरिणि, मारवणी तस धू कुँवर ।
चौसठि कळा सुंदर चतुर, कथा तास कहिसुं सपरि ।। ७ ।।

दूहा

ऊँचा मंदिर चौषणा ऊन्चा घणुँ आवास ।
अजब झरोखाँ जाळीयाँ सीस्वाँ सूँधावास ।। ८ ।।
राज करै राजा तिहाँ पू(पिं)गळ जाण प्रवीण ।
सींभळियाँ भीमो रहै निसि त्रिं(? दि)न नेहै लीण ।। ६ ।।
अताराँ अमल करै सबळ सुहड़ अति रंग ।
कोटड़ीयाँ कळहळ हुवे राग छतीसे रंग ।। १० ।।
भला सुहड़ व्रहास भल भली राजरी रीत ।
राज लोक राणी सहू पाळ अहिनिसि प्रीत ।। ११ ।।
मन सुधि जेसळ मानिजै षरो जाणि षवास ।
इक दिन चढी रामतै सुहड़ सुहले पास ।। १२ ।।
चढीयो मनरी चूँपसूँ खडीयो साथ खवास ।
राजा म्रिग देखी करी बासै दीयौ व्रहास ।। १३ ।।
राजा तिहाँ किणि आवीयो पड़ीयो अटवी माहि ।
त्रिषा वहुत लागी तरै व्रिष नीचै वहि जाहि ।। १४ ।।
व्रिष नीचै बैठो तिहाँ माणस छागळ साथ ।
व्रहम-आउ दीधौ तिणै भाट ऊँचो करि हाथ ।। १५ ।।
अति शीतल अम्रित जिसो पायो परघळ नीर ।
राजानुं आणँद भयो सुख पामीयो सरीर ।। १६ ।।
तिणनुं राजा पूछीयो, कुण तुं, जाइस केथ ।
भाट कह्यौ राजा-भणी, माँगण आयौ एथ ।। १७ ।।
राजा तूठा तिणि-भणी, कीयो पँचाँग-पसाव ।
बेऊँ बैठा एकठा, पूछै तिणनु राव ।। १८ ।।

अहो भाट, दीठी किती धरती रामति काय ?
कहौ काई नवली बारता, जिण मो अचरिज थाय ॥ १६ ॥
कहौ (? है) भाट, राजा सुणो, दीठा वोहळा देस ।
रामत ख्याल विनोद रस नारी निरुपम बेस ॥ २० ॥
काई अनोपम कामिनी दीठी किणही ठाई ।
जिण दीठै मन रीँझियै, मोनूँ साच बताय ॥ २१ ॥

कवित्त

* पाणीपंथ तुरंग, थंग चंगो पुरसाणी ।
बीजा नगर सहु सत, निरमळ गंगानो पाणी ॥
पटकूळ पट्टणी, देस भोगी धुर दक्षिण ।
कुंजर कदळी खंड, विपरीति नीति विचक्षिण ॥
तिम चंदवदन चंपकवरण दंत झबकै दामिनी ।
सारंगनैण संसार इण मनहर मारू कामिनी ॥२२–२४॥

दूहा

* गिरि अढार आबू धणी गढ जाळोर दुरंग ।
तिहाँ सामँतसी देवड़ो अमळी माण अभंग ॥ २५ ॥
सवळ सेन तेहनै घणी मोटो जस सुभाव ।
दुसमण डर मानै घणो देखी तिणरो दाव ॥ २६ ॥
पटराणी अपछर जिसी रंभाकै अणुहार ।
तसु धी ऊमा देवड़ी अवर नही संसार ॥ २७ ॥
* चंदवदन चंपक - वरण अहर अलता रंग ।
थंजरनैणी प्री(? खी)ण कटि कोमळ नेत्र कुरंग ॥ २८ ॥
* अति अद्भुत संसार इणि नारी रूप रतन ।
आछै ऊमा देवड़ी कुमरी कंचन - व्रन ॥ २६ ॥
जो तुझ सारीषी जुड़ै भामिणि तिण भरतार ।
जोड़ी राही-कान्ह ज्युं जो मेळै करतार ॥ ३० ॥
राजा साभळ रींझीयो जाग्यौ अधिक सनेह ।
प्रापति हुवै तो पामीयै सैणा मिळण सनेह ॥ ३१ ॥
साथ सवे आयो वही राजा ऊठ्यौ जाम ।
भाट-भणी साथे लीयो आण्यो पूगळ ठाम ॥ ३२ ॥

ऊतारौ तिणनै दीयो कीयो पँचाँग - पसाव ।
वळि पूछै तिणि भाटनै, कहि कोई दाव - ऊपाव ॥३३॥
राजा मन खटकै घणूँ ऊमा अहनिसि जेह ।
भूप गई तिस बीसरी नवि दीठाँरौ नेह ॥३४॥

इक अणदीठाँ मिट्ठडा इक दीठाँ ही मिट्ठ ।
इक अळगाँ हो मिट्ठडाँ ते मै बिरळा दिट्ठ ॥३५॥
राजा परधाना - भणी कह्यौ ज लेइ नाम ।
वळि पड्खण बेळा नही कीयो जाणज्यौ काम ॥३६॥

तेहि ज भाट परूचीयौ जेसळ साथ बवास ।
साथै सबळौ साथ ले आयो जाळोरै पास ॥३७॥
बंस छतीसाँमै वडौ सामतसी महाराय ।
आए मिळीयो चूपसूँ आणँद अंग न माय ॥३८॥
आदर मान दीयो घणो, कीधी भगति तएण ।
आया भुँइ अळगी घणी, कहो स, कारण केण ॥३९॥
सुगण माँणस कहै तिके, कारज एहो जाँण ।
पिंगळराजा कुवरी माँगी घणै मँडाण ॥४०॥
तब सामँतसी बोलीयौ, आया ते परिमाण ।
कुँवरी-हंदो नातरो पहिली कीधो, जाण ॥४१॥
सातसै गुज्जर-धणी उदैचंद तसू राइ ।
कुवरी रिणधवळँ-भणी पहिली दीधी जाइ ॥४२॥
वळतो जेसळ बोलीयो, कीजै तो हिव सीख ।
जिम म्हे जावाँ आपणै देस ऊतर दीख ॥४३॥
जितरै झालीं साभळयो, पूगळरा परधान ।
आया ऊमा मागवा जावै पाछौ जाण ॥४४॥
राजानै राणी कहै बात बिमासी जोइ ।
कुमरी पिंगळ दीजीयै तो जोड़ी सम होइ ॥४५॥
गाँडा लोक गुजर-तणा रोगे देही पूर ।
ऊँहाँ किम ऊमा दीजीयै देस भूमि अति दूर ॥४६॥
वात नवीनी पाइकै लगन ज नैडौ थाप ।
तिणनुं माणस मूँकस्याँ आइ न सकसी आप ॥४७॥

लगन दिनै पूगळ-धणी जो इहाँ किणि आवाइ ।
तो कुमरी परणाविस्याँ एहवो कियो उपाई ॥४८॥
जेसळ मिळांयौ राइनै पिंगलनै कहि वात ।
आपै गढ पूगळ-धणी जाइ करेस्याँ जान ॥४९॥
जान सहू सझि करी सुभट घणा ले साथ ।
चाल्यो राजा चूँपसूँ अनरगळ लेई आथ ॥५०॥
गोधूळक वेळा हूई जोवंता नाई जान ।
पिंगळ आयो जाणनै दीजै आदर मान ॥५१॥
राजा राणी परि सहू निरखै पिंगळराइ ।
... ... ॥५२॥

[५२ से ७६ तक के दूहे, पन्ना खो जाने से, अप्राप्य हो गए हैं ।]

मवड़ आधी मारवी आई अवतरी पेट ।
पूरे मासे पदमणी जनमी रतन ज पेट ॥७७॥
उछव कीया अति घणा, हरख्यो साजण लोक ।
राणी मन हरिखित हुई, जिम रवि दरसण कोक ॥७८॥
* सुंदर रूप सुहामणो, अपछरारै अणुहार ।
पदमिण एह सहू कहै भ्रमर करै गुंजार ॥७९॥
* वरस पाँच वोलया पछी, तिसड़ै मेह न वुठ ।
खड़ पाखै सहू एकठा, हुआ माणस मन मठ ॥८०॥
* पिंगळ ऊचाळो कीयो, आयो पुहकर तीर ।
खड पाणी परघरळ तिहाँ, सुख पामीयो सरीर ॥८३॥

इतरी तौ मारवणीरी उतपति कही । हिव ढोलारी उतपति कहै छै ।

हिव किम ढोलो नीपजै, देव-तणै परमाण ।
लेख मिलै अणजाणीया, भावै जाण म जाण ॥८४॥
नळ राजा नरवर रहै, आछै रिद्ध अपार ।
भली अनोपम भामिणी, सुख माणै संसार ॥८५॥
इक चिंता मनमैं घणूँ, नहीं ज पुत्र रतन ।
तिण पाखै लागै इसो, जाण आलूणो अन ॥८६॥
डाहा माणस पूछीयो, तिण कह्यौ एह उपाय ।
पुत्रा सही थास्यै भलौ, पुहकर देव मनाय ॥८७॥
जात्रा बोली राइ तिण, हूवो पुत्र रतन ।
उछव कीया अति घणा, सह को कहै धन धन ॥८८॥

राजा मनमै चिंतवै, जाए करिवी जात ।
राजि सूँपि परधाननै, राय चढीयो परभात ॥ ८६ ॥
साथे रिधि लेइ घणी, आयो पुहकर तीर ।
जत्र करे मन हरखीयो, निरमळ सरोवर नीर ॥ ९० ॥
तिहाँ किण पूगळ आवीयो, नेड़ी वसती दिट्ठ ।
जाइ मिळीयो राजा तिहाँ, मन कहेजै मिट्ठ ॥ ९१ ॥
* इणि अवसर घण ऊमस्यो, प्रगस्यो पावस मास ।
पासइ पिंगळराइनै, कीयो राय तिहाँ वास ॥ ६२ ॥
* ऊनमीयो उतर दिसा, गैण गरज्यो घोर ।
चिहुं दिसि चमकी त्रिजली, मंडै तंडव गिर मोर ॥ ९३ ॥
* च्यार मास निश्चळ रह्या, सरवर-तणै प्रसंगि ।
पिंगळ नळराइ भूपती, मिळिया मनमै रंग ॥ ६४ ॥
इक दिन नळ राजा तिहाँ चढ्यो सिकार प्रभात ।
रमताँ सिसळो नोसर्‍यौ दीयो घोड़ो दे लात ॥ ९५ ॥
जातो पिंगळराइनै गयो अंतैउर माँहि ।
सूती ऊमा देवड़ी कडि नीचै वहि जाय ॥ ६६ ॥
देखी ऊमा देवड़ी राजा थंभी वाग ।
जे माणै इणि नारिसुं तिणरो मोटो भाग ॥ ६७ ॥
तुरत राय पाछो वळ्यो आयो सगळो साथ ।
पिंगळ आडो आवीयो मिळीयो भरनै बाथ ॥ ६८ ॥
राजा ऊतर्‍यौ करि मया पीयो पछाडी पैण ।
कह्यो अंतर क्युं राषीयै जे ससनेही सैण ॥ ९९ ॥
साथ सहू तिहाँ ऊतर्‍यो नळ राजा ससनेह ।
कीधी भगति भली परै पिंगळ राजा तेह ॥१००॥
आए बैठा एकठा करण कुतूहळ केळ ।
सारी पासा सोकठा राजारै मन मेळ ॥१०१॥
* सुंप्या वागा सावटु कोड़ीधज केकाण ।
आम्हो साम्हो आपीया प्रीत चढै परिमाण ॥१०२॥
कुमर अनोपम माहरो दीजै देव कुमार ।
तिणनै मारू दीजीयै सम जोड़ी संसार ॥१०३॥
तब राजा पिंगळ कहै बात एह प्रमाण ।
सही करेस्यां नातरो पूछीनै परमाण ॥१०४॥

राजा ऊठी आपणै डेरे आयो जाम।
पिंगळ राणीनुं कहै कुमरी देवाँ आम ॥१०५॥
आखइ उमा देवडी बालँभ हीयइ विचार।
मन संकोडी मारवी वात समंदा पार ॥१०६॥
कंता अणदीठो कुमर कीयो नातरो कांइ।
पीउ पटरार्णीनु' कहइ जिहां सिरजी तिहाँ जाइ ॥१०७॥
अति मोटे आडंबरै कीयो वीवाह तएण।
अरथ गरथ बहु खरीचिया नरवर राय जिएण ॥१०८॥

इति धुर-संबंध छै।

[मारू-रूप-वर्णन]

मारू कुच युग कठिन अति कंचण-कळश श्रृंगार।
रूणावळि बिचमै वणी षिसन दैत आधार॥

गाहा

विरळा जंणंति गुणा विरळा जाणंति निरधणा मेहा (? नेहा)।
विरळा परकज्ज करा पर दुषे दुषोया (? दुषीया) विरळा॥

[मारवणी का संदेश)

जह सरै सुरह वछो, वसंत मासं च कोइला सरए।
विंझ सरै गइंदो, तह अम्ह मणं तुमं सरई॥ ९०॥
सहरै सीयरायो सू पणि कन्हौ इन लोइद वदंती।
गोरी सरै ति नयणो तह अम्ह भणं तुम्हं सरई॥ ९१॥
पंडीर जेम भरीयं मह हीयं सजणा ण गुणवाए।
अवगुण एक न पुज्जै पढ़मं चिय न थितं ठाणं॥ ९२॥
जेण विणा नहयाय घडिय घडिया अ अद्ध अद्धं च।
तेण विणा गय काळं हा हीया बज्ज घडिओ सि॥ ९३॥
तुम्ह नाम उयर धरीयं तुह गुण गुणेण गुंथिया माळा।
तुम नाम कयं मंतं जपंतो वासरं गमई॥ ९४॥
चित्तं तुह सथ तुह गुण तुह गुणेण श्रवण संतोसो।
जीहा नाम गहणे एग्ग दिट्ठी तडफडए॥ ९५॥
मा जांणसि मित्र तुम्हं निसिवासर वीसरेण।
'खिणमंतं जह व कंवयाण सूरं चंदं जहा चकोरेण॥ ९६॥

नेहो कहै वि न कजै अह किजै किल रंग सारिखो ।
जेतळाइ मझि दिनो तहं तिन रंगं व(? न) छंडंति ॥ ९७ ॥
नेहो कहि वि न किजै अह किजै रत्न कंत्र सारिखो ।
सजण गुणाण संगो नहु विडै जाव जीवंति ॥ ९८ ॥
सजन वसंति दूरे चिंति नेहेण हुंति आसंगो ।
गजंति गयण मेहा मोरा नाचंति भूवळए ॥ ९९ ॥
मम आणिस वीसरीयं तुम्हं मुह कंमळ विदेस गमणसि ।
सूनो भमै करंको जथ तुम्ह जीवीयं तं तथं ॥१००॥

दूहा

सजण हम तुम एक हैं अवर मिल्या ए लेख ।
मुझ तुझ हीयड़ौ एक है भावै काढी देख ॥
प्रीतम प्राण अधार तूँ मनमोहन भरतार ।
प्रातम संभळि प्रेम भरि संदेसा सुविचार ॥

गाहा

मुंडे मुंडे मतिर्भिन्ना कुंडे कुंडे नवं पयः ।
देशे देशे नवाचाराः नवा वाणी मुखे मुखे ॥

दूहा

हंसानु ं सरवर घणा कुसुम घणा भमराँह ।
सुगुणां सज्जन घणां देस विदेस गयांह ॥

[ढोला-मारवणी-मिलन]

मारवणीका विषै सुख ढोळौ विलसे जेह ।
ते सुख जाणे ईसवर कै वळ जाणै तेह ॥
मनमोहन इक कामनी वळे सुरंगा मेह ।
रंग लुबध राचा रह्या जिम मइण नै मेह ॥

(कुल दूहा-संख्या ४६२)

इति श्री ढोला-मारूरा दूहा संपूर्ण ॥

[यह प्रति जोधपुर राज्य की पुस्तक-प्रकाश लाइब्रेरी में वर्त्तमान है। पाठ अशुद्ध है। नए दोहे बहुत से हैं। लिपि-काल संवत् १८१२ है। परिशिष्ट में केवल नए दोहे दिए गए हैं।]

श्री ढोला-मारूजीरो वार्त्ता

× × × ×

खड जळ कारणि सोझीया देसे दंध दुकाळ।
नरवर देस सोहामणो नरवर देस सोकाळ॥

× × × ×

धन वड कुळ आप वड जे वड चोरू होय।
तिहुं परकारे सरतां कंथ करीजे जोय॥

× × × ×

सोरठा

माझी अवली मांण पुंगळरे घरे पधारीया।
सबही मिली सुजाण वरणो ढोलारि कीउ॥

× × × ×

दूहा

मारू सिर महेलीयां, ढोलो सिर कुंअरां।
कडुआ बोल न बोलही, मीठा बोलहीयां॥

× × × ×

गळि (?) नेत्रे मढही, तोरण रंभा मोल।
गांम वघेरे परणीया, मारवणी ने ढोल॥

× × × ×

सोरठा

राजा भीम नरंद, तणरी धु माळवणी।
सुंदर सिर मकरंद, ढोलो मारू परणिया॥

× × × ×

दूहा

× × × × अण गळ दीन अहथ ।
ढोलो अत सुख भोगवे मालवणीरे सथ ॥
× × × ×

सौदागर वाक्य

सो जोजने मेळीया ढोलो कुंअर तंमेह ।
कहुं गुण केही परहरी वध दाषवुं अमेह ॥
देस घणाई जोवीया रूडो पाटण पीठ ।
नरवर ढोलो रंजीयो मारू पुंगळ दीठ ॥

सखी

सजण अण सजण हुआ ओह अळथा भार ।
विरह महासिर उलटे कंत न कीधी सार ॥
× × × ×
सखी सहिजां मांगसा सपनंतर मिळियाह ।
फट रे नयण पापीया जागे निगमीयांह ॥
× × × ×

चंद्रायणा

सुती थी सुख सेज सुपनां पाईया ।
जब जागुं झटकाय कबु नही पाईया ॥
विधना लखत जंजाळ कि धंधा लाईया ।
....॥
× × × ×
सांझे सुपना पाईयां धण जोवण मिमंत ।
जांणु ढोलो जागवी केसर भीने कंत ॥
सो पीउं छंदि हथडे सरस पत्रीभत ।
जांणुं ढोलो जागवी गळती मझम रत ॥
× × × ×
आडा डुंगर व्रखवन ढोलो हिअडा माहि ।
स अमलं जां बीछडे × × × सुणाइ ॥
कागळ गळीया मिस ढुळी सरकन आहुवद दध ।
ढोले मन वीसारिया केवाटं आया वग ॥

ढोलो ढाली हट मझ दीठा घणे जणेह ।
लाल सुरंगे कपडे सावर धन अंणेह ॥
वरह मारी जो करे सकि न ऊभी होय ।
दई वह मारी जीवकुं हाहा करे न कोय ॥
× × × ×
आधा होअे न पीउ...न पख वाउ लहंत ।
दीठा विण ढोलो कुंअर मारू किम जीवंत ॥
× × × ×
मांगण माहिल संदेसड़ा पुहचाया प्री लग ।
काजळ तिलक निलाट को मो उभा ही भग ॥
कागळ गळीया आंसुए तिलक किसी गुण तंग ।
पड पड पणग पहोवरि अु छटि छटि लग ।
× × × ×
उतर खंड उमंडीयो प्रालुवंन सहंति ।
सुंदर हेवि म्हां सीखदे मनवे रूळीया अति ॥
× × × ×
छरति बारे मास गणि फिर आवीयो वसंत ।
सो रित मुझ वताइदे त्रीय न सुआवे कंत ॥
× × × ×
ढोला—
ढोलो कहे म सांहणी वाली अुंतळ ग्रास ।
सांझे पुंगळ पुजवे कोइ एहडो वरहास ।
मसांहणी कहे—
ढोलो हेकण दीहाडे तुरी न पुंहचे कोय ।
एतो पुजे करहलो मन उमाहो होय ॥
× × × ×
सूअै आंण सुंणावीया ढोला कहीया जेह ।
थइ मरछागति माळवणी सखीयां चांपे देह ॥
× × × ×

ढोलोजी चालतां थकां ततरा मांहे वघेरारे तळाव आयां नीसरीया ढोलेजी तोरण थंभो दीठो हेकण माणसने पूंछीयो, ए थंभ तोरण छै सो कुंण परणीया छै, तद उणि आदमी दूहो कहीयो ।

ऐ थे ज चोक पूरावीया परणी पढे पुरांण ।
धन भटीयांणी मारवणी ढोलो कूरम रांण ॥
पुगळ वाजा वाजीया नरवर हुआ उछाह ।
ढोलो मारू परणीया वधेरे बीवाह ॥
पोहकर पींगळ आवीया तोरण थंभा तेथ ।
नव अखर लखीया खरा ढोलो परणीया जेथ ॥

× × × ×

अेत न चंदण बावनो नागर वेल न थाय ।
भुरंट थळ मझि फोक बह करहो कासुं खाय ॥
करहा को पंजर बडो ओछी बुध सरीर ।
चाखत लोही नीसरे मुख घातीयो करीर ॥
करहा पींपळ पान चर आंगे मरषि भूख ।
जासां उणहीज देसडे वे फळ वहीज रूख ॥

× × × ×

ढोलोजी ऐवाळने मारग पूछण लागा । ऐवाळे कहीयो पूगळ थांहरे कासु काम छै, ढोलैजी कहीयो म्हारे सासरो छै ।

× × × ×

जण गांम ऐवाळ रँहतो हुतो अण गांम ऐक लुगाईरो नाम मांरूणी हुंती । ऐवाळजाणीयो वा मारू । ऐवाळ कहण लागो मारू तो माहरा साथ मांह छै । काले म्हारी छाळ चारती हुंती ।

× × × ×

ढोला

थळ माथे जळ बाहिरी कोयल रूप करूर ।
मीठां बोलां घण सहां वे सजण रहीया दूर ॥

× × × ×

ऊमर सूंमर सारंग भाट मेलीयो—..........

× × × ×

ढोला

पूगळ हूँ पाछो गयो ऐतो गढ दसाय ।
मारग हेक पंथी मले ढोलो पूछे ताय ॥

पिंगळरायरी पदमणी तो मारूणी दीठ।
उभो रहे वात करी सा करहंती मीठ॥

× × × ×

हेक रेबारण पंथ सर जोवे करहा वाट।
ढोलो वळतो देखकर मन (?) तण थयो उचाट॥

रेबारण

दुरजण केरा बोलडा मत पंतरज्यो कोय।
अण हुंती हुंती कहे सगळो साच न होय॥

× × × ×

थे ढोला तीन बरसरा धन बारे छ मास।
मारू किम बुढी भई जो थे लील वलास॥

रेबारण इयुं कहे तरे आघा खडीया। जाता थकां करहानें कंब वाही। करहो क्रहुंकीयो। वात। च्यार सहेली रमवा नीकळी थी। तणे दूहो कतके। सहेली बरस बारमै छै। के पण बरस बारमै छै। तके सहेली करहारो करहुंको सांभळीने दूहो कहै छै।

केथ झीणुं क्रहुंकीयो (दूजी कहे) मझ थळांह।
(त्रीजी कहे) नदी टे कंबोटीयो (चोथी कहे) उमाहियो घरांह॥

× × × ×

......चारण......ढोलोजी ने सामो मिळयो......

ढोला

पंथ मलंता सांमहो गढवी दीठी जात।
हसते ढोलो पूछीयो कहो कांइ मारू वात॥

× × × ×

वाणी अवरळ सुध वचण गुणसागर वडगात।
ढोलो पुगळ आवता पंथ मळे कवि पात॥
गढवी ढोलाने कहे तु माणे नरपति।
म्हांसूं सांचो अखजे मारू केही गत॥

गढवी चारण

ढोला दीठी मारुई खरी लुद्राडे हट।
हाट लुटाई वाणिये बळद गमाया जट॥

अरक दं (? चं) दण निस केवडो कसतुरी कडि कटि ।
ढोला दीठी मारुई खरी लद्राडे हट ॥

× × ×

अहर पयोहर नख नयण मोरू ? एह ? मुखत्र ।
ढोला दीठी मारुई आर थोक चरख ॥

× × ×

नख जेहा चंगा-कुळी, नयण छतीसेइ बाण ।
मारू मीर बवा जम ताणे हणे जयाण ॥

× × ×

संध कळाई नयण सर गुण पापेणि ताणेह ।
मारू मीर च बाव ज्युं, नह चुके बाणेह ॥
वदन तसु ससिहर धुंह (? भुंह) भमर उरि गम र गेहज ।
मारू पारे अहर जम, आँखी राता मझ ॥
ओढण आसी अंबरी, हाथे कंकण कछ ।
मे घर दीठी मारुई, हीम वरणो बछ ॥

× × ×

मारू पुगळ उपनी, हीरा दंत सुसेत ।
गंगा जेही गोरडी, खंजन जेहा नेत ॥
उर झीणी कटि पतळी भ्रुहं वंक त्रवंक ।
चाढे मेली कबाण कळ मारिसुं धन संक ॥
मारू हंदा दोय नयण, जाणे मार कबांण ।
जन दिस देखे नयण भरि तिण दिस पडे भगांण ॥

× × ×

म्हेतो मारू नथीये, म्हे मारू की दास ।
जो जाडी तोही पतळी, दुध न पूजे बास ॥
खंजन नेत्र मुणाल गति, नासां दीपक लोय ।
ढोलो रूळीयायत हुयो, जब धन दीठी जोय ॥

× × ×

महादेव पारवती आया—

तो हुंता ढोलो कहे, कूडी गल मा कथ ।
हवे तो जीवण एकठा, मरतो मारू सथ ॥

× × ×

तांत झणके प्रिव पिवे, करह उगाळे वेल ।
ढोलो चकीयो डारयो, मारू करहो मेल ॥
सयण पल मझ मंडीया, एहा रंग सुरंग ।
धण लीजे प्री मारजे, छाड विडोणो संग ॥

× × ×

करहो कांबे झेरीयो, सुगणी मारू संग ।
वांसे उमर सुमरो, ताता खडे तुरंग ॥

× × ×

मे (? उमर) दीठी मारुई, चीता जेही लंक ।
वांनर आंबा डाळ ज्युं, त्रापे चडे डरक ॥
प्रीयु ढोलो त्रीय मारुई, करहो कुंकुं व्रन ।
उमर दीठा एकठा, वडा ज तीन रतन ॥

इति श्री ढोलो-मारुणीरी वात लंष्येते ॥ सं० १८१२ वर्षे शाक १६७७ प्रवर्त्तमाने श्री ५ श्री पदमाजी मनराजी भाँणजी लंषत जेधीजी पर्षनाथ मगर पोष वदं २ दने श्री ५ श्री जोरावरसंवजी सत्त से जी ॥

(ठ)

[यह प्रति जोधपुर राज्य की पुस्तक-प्रकाश लाइब्रेरी में वर्त्तमान है। पन्ने आपस में चिपक गए हैं जिससे पढ़ने में नहीं आती। इसके कुछ नए दोहे नीचे दिए जाते हैं।]

॥ दूहा ढोला-मारू छै ॥

कान कडी पग नेउरा हाथे कंकण कछ ।
म्हे घर दीठो मारुआँ हेम वर नु वछ ॥
कंथा अणदीठी कुँअरि करि न सनमंध कोइ ।
अज विषि ग्यां दीकरि हासुं करसी लोइ ॥
धन वड कुळ वड आप वड जे वड चोरू होय ।
तिहुँ परकारे सरताँ कंथ करीजै कोइ ॥
नळवर-राजा-तणे ढोलो कुँअर अनूप ।
राणी पिंगळ रावरी रीझी देषे रूप ॥
मारू सिर महेलीयाँ ढोलो सिर कुअराँ ।
कडूआ बोल न बोलही मीठा बोलहीयाँ ॥
कूझडीयाँ कळीयर कीयौ टोलें टोलें वीस ।
मारू पउढे एकली उर सुं चंपे इंस ॥

———

[यह प्रति बीकानेर के राज्य-पुस्तकालय में वर्त्तमान है। इसका पाठ प्राचीन नहीं है पर शुद्ध है।]

अथ ढोले-मारूरी वात।

[इसके आगे मूल के १, २ (पंक्तियों का क्रम विपरीत है), ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०, ११, १२, १३, १४, १५, १७; १८, १९, २०, २३, २१, २४, २५, २६, २७, ३४, ३०, ३६, ३१, २९, २८, ५१, ५२, ५३, ५६, ५४, ५५, ५७, ६१, ६२, ६५, ७८, ७७, ८२, ८३, ८४, ८६, ८८, ९०, ९१, ९२, ९३, ९४, ९५, ९६, ९७, ९९, ९८, १००, १०१, १०२, १०३, १०५, १०६, १०८, ११०, १११, ११२, ११३, ११५, ११६, ११८, ११९, १८२, १४०, १४४, १३५, १४५, १४७, १५५, १५७, १५८, १६०, १६१, २०७, २१४, १७१, १७२, १७३, १७४, १७५, १८३, १८५, १८६, १८७, १८८, १९२, १९४, १९५, १९६, १९७, २०८, २०९, १९८, २००, २०२, २०१, २१०, २११, २१२, २१५, २१८, २१९, २२१, २२२, २२४, २२५, २२६, २२७, २२८, २२९, २३४, २३५, २३६, २३८, २३९, २४०, २४१, २४२, २४३, २४४, २४६, २४७, ३४९, २५०, २५१, २५२, २५३, २५५, २५६, २५८, २६७, २५९, २६०, २६८, २६१, २७०, २७३, २७४, २७६, २७७, २७८, २८०, २८१, २८२, २८६, २८७, २८८, २८९, २९०, २९१, २९२, ३०१, २९७, २९३, ३०४; ३०५, ३०६, ३०८, ३०९, ३१०, ३१२, ३१३, ३१४, ३१५, ३४३, ३१७, ३१८, ३१९, ३२०, ३२१, ३२२, ३२३, ३२४, ३२५, ३२९, ३३०, ३३१, ३३२, ३३३, ३३४, ३३६, ३४१, ३४४, ३४२, ३४६, ३४८, ३४७, ३६१, ३५०, ३६६, ३६७, ३६२, ३७०, ३७१, ३७३, ३५२, ३५१, ३५७, ३८०, ३९७, ३९८, ४००, ४०१, ४०२, ४०३, ४०४, ४०५, ४०८, ४०९, ४१०, ४१२, ४१३, ४१७, ४१४, ४१६, ४१५, ४२०, ४२२, ४२३, ४२४, ४२६, ४९१, ४९२,

४९९, ५००, ४९६, ४३३, ४२८, ४४१, ४४२, ४४४, ४४५, ४४७, ४४८, ४५०, ४४९, ४५१, ४५२, ४५३, ४५४, ४५५, ४५६, ४५७, ४५८, ४८५, ४५९, ४६०, ४६१, ४६२, ४६३, ४६४, ६६६, ४६७, ४६८, ४८३, ४६६, ४८६, ४८७, ४८८, ४८९, और ४९० नंबर के दूहे हैं।]

वीसू मोहर पधारीयो कहण सँदेसा कांज।
अमल सुरंगा साल्ह कर, आयो चढे जिहाज ॥

[इसके आगे मूल के ५०१, ५०२, ५०३, ५०४, ५०६, ५०५, ५०८, ५१४, ५१५, ५१३, ५२०, ५१६, ५१७, ५१९, ५२६, ५२७, ५३५, ५२८, ५२९, ५३०, ५३१, ५३२, ५३३, ५३६, ५४२, ५४४, ५४५, ५६६, ५६१, ५५१, ५४१, ५५२, ५५४, ५५५, ५५६, ५५९, ५५३, ५६२, ५६३, ५६४, ५६५, ५६७, ५६८, ५६९, ५७०, ५७१, ५७२, ५७३, ५७४, ५७५, ५७६, ५७७, ५७८, ५७९, ५८०, ५४६, ५४७, ५४८, ५४९, ५५०, ५८१, ५९३, ५९४, ५९५, ५९७, ५९६, ५९८, ५९९, ६००, ६०१, ६०२, ६०५, ६०६, ६०७, ६०८, ६१०, ६१३, ६१४, ६१५, ६१६, ६१७, ६१८, ६१९, ६२०, ६२१, ६२२, ६२३, ६२४, ६२५, ६२६, ६२७, ६२८, ६२९, ६३०, ६३१, ६३२, ६३३, ६३४, ६३५, ६३६, ६३७, ६४१, ६४२, ६४३, ६४४, ६४५, ६४६, ६४७, ६४९, ६५०, ६५१, और ६५२ नंबर के दूहे हैं।]

[कुल दूहा-संख्या ३९१]

इति श्री ढोले-मारूरी वात संपूर्ण।

[यह प्रति बीकानेर के राँगड़ी-जैन-उपाश्रय के अभयसिंह-भंडार में है। यह प्राचीन नहीं है।.नये दूहे बहुत से हैं। इसमें चौपाइयाँ भी हैं। यहाँ केवल नए दोहे लिए गए हैं।]

श्री सारदाय नमः।

ढोला-मारूरी चोपई लष्यते।

× × ×

दोअ पचासै बांधियो, कोन को कोठार।
बाथा भर भर काढतां, कुणही न पायो पार ॥३॥

× × ×

दूहा

दांने जग कीरत होअै।·वेरी पण वस थाय।
वीधै नव निध संपजै। दीधें माने राय ॥३९॥

× × ×

वर परणेवा संचरयो, कीधा सोळ सणगार।
मसतक मुकट सोहांमणी, उर ओकावळ हार ॥६५॥
पहरी वस्त्र विसेषथी, पट्टकूळ नव रंग।
पग लाखीणी मोजडी, चढीया दुळ चतुरंग ॥६६॥
कांने कुंडळ रयण-मै, बाजुबंध अमुल।
रतन जडित वर मुंदडी, वीरवळी बहु मुल ॥६७॥

× × ×

लाडे कोडे लाडणो, लाडी परण्यो जेह।
विसमय पांम्यो अति घणो, देखी कुंमरी तेह ॥७४॥

× × ×

वण दीपक मंदिर कसो, वण पूतां परिवार।
कसी महेली कंत विण, घृत वण अळप अहार ॥१५५॥

सींगाळो अर खेलणो, जस कुळ एक न थाय ।
तास पुरांणी वाड ज्युं, दिन दिन माथे पाय ॥ १५६ ॥

× × ×

चौपई

मायताय मन पुगी हांम, साळ कुमर तस दीधो नांम ।
मरतवंछा माता पै होय, ढोलोनांम कहै सहु कोय ॥ १६१ ॥

× × ×

दूहा

खाणा पीछा खरचणा, जग रेसी गलांह ।
सा पुरसा का जीवणा, थोडा ही भलाह ॥ १६३ ॥

× × ×

जब नळ जातै अटकळयो, परतख जात पुआर ।
लंक वळै दोइ तीसरो, ससलो पुछ्र समार ॥ १७७ ॥

× × ×

माळवदेस महीपती, भीमसेन भूपाळ ।
कनका कुमरी तस तणै, सुंदर अति सुकमाळ ॥ २१२ ॥
परधंने नळ रायने, मांगी वडे मंडाण ॥
जोतां जोडावो मिल्यो, प्रीत वधी परमांण ॥ २१३ ॥
भीमसेन भगताविया, नळराजा वरधांन ।
नलनंदनसुं नातरो, मेल्यो बहु मांन ॥ २१४ ॥

× × ×

कर मोचन दे कुमरिनै, मणी मांणकनी कोड ।
हय गय रथ पायक दिया, कनक कुंडळना कोड ॥२१८॥
वागा वेस सोहांमणां, भुखण मोती माळ ।
कनक कचोळा जडावरा, सुंदर सोवन थाळ ॥ २१९ ॥
पंचरंग दीधा ढोलिया, पुतळी पागे जांण ।
सेझ सुंहाळी अति भली, रेसम वणीयो वांण ॥ २२० ॥
सोवन चोकी सोवटा, पासावळि नवि रंग ।
दीवा झारी गाल मसुरी, उभउ सीसा अति चंग ॥२२१॥

× × ×

चौपई

कनकावती तसु कुंमरी नांम, अति सरूप अरछर अभिराम ॥ २२३ ॥

× × ×

दूहा

मिसरी मीठी सहु कहै, तिणथी मीठो दुध ।
मीठी वात सयणां-तणी, आवि कहै कुल सुध ॥ २४० ॥

× × ×

वीजळीयां झलमलै, आभै आभै दोय ।
कदी मिलूं उण साहिबा, कस कंचुकी खोय ॥ २४९ ॥
वीजळीयां झलमलै, आभै, आभै तीन ।
कदी मिलूं उण साहिबा, सावण पहली तीज ॥ २५० ॥
बीजळीयां झलमलै, आभै आभै च्यार ।
कदी मिलूं उण साहिबा, लांबी बांह पसार ॥ २५१ ॥
वीजळीयां झलमलै, आभै आभै पंच ।
जण दिन वाला लागसी, सोडउ सीसै मंच ॥ २५२ ॥
वीजळीयाँ चहला, वहल, आभै आभै षट ।
कदी मिलूं उण साहिबा, करी उघाड़ा गत्त ॥ २५३ ॥
बीजळीयां चहला वहल, आभै आभै सात ।
कदी मिलूं उण साहिबा, करी उघाड़ा गात ॥ २५४ ॥

× × ×

वीजळियां गळ वालला, मेहा माथे छत्र ।
कदी मिलूँ उण सजणा, करी उघाड़ा गत्र ॥ २५८ ॥

× × ×

करझडि हाथ संदेसडा, नवि दीजे अजांण ।
पंख गळै नै मसि गळै, पडी संदेसै हांण ॥ २६१ ॥
सायर उंडा जळ घणा, पर घर पेट नरांह ।
मांगी तांगी पंखड़ी, केती वार लहांह ॥ २६२ ॥

× × ×

कुरझडि जाजे माळवे, कहे अमीणा कंत ।
ढोला आगळ यूं कहै, तो विण किसो वरतंत ॥ २६४ ॥

× × ×

बाबा कुरझड़ा मरावहो, के सरवरियो फोड़ाव ।
जब म्हे सूता नींद भर, तब बोली मंझम रात ॥ २६९ ॥

× × ×

संदेसा ही वीज पडो, नै कागद आवी तोट ।
सही सलु'णा सजना, का मनमांही खोट ॥ २६८ ॥

× × ×

सेउ सब जग मीत कर, बेर न कर इक ठांम ।
घर घर मीत न करि सकै,(तो)एक मीत एक गांम ॥ ३०६ ॥

× × ×

जब जागै तब सॉंभळै, तंत-तणो झुणकार ।
जीवो धनको वालहो, म मरो मांगणहार ॥ ३१६ ॥
नाभि सकोमळ मुख कमळ, डील सु सीतळ गात ।
तिण का दव खुध्या रहै, मन मयगळ मयमंत ॥ ३१७ ॥

× × ×

सोरठा

फिट कांकादवराह, अण पाणी अळगा थया ।
फट काजल काळाह, सजन विण साजो रहै ॥ ३२६ ॥

दूहा

चितारियां चीपट पडै, विसारिआं चित झाळ ।
तो ढोळो किम वीसरै, दीधो छाती साल ॥ ३३० ॥
ऊभी थी घर आंगणे, सजन सांभरीयाह ।
चारे पोहरे चुंनडी, रोइ रोइ भीजवियांह ॥ ३३१ ॥

× × ×

वडतो साखा पसरियो, थण कंचुओ न माय ।
ढाढी हाथ संदेसडो, लग ढोला पोहचाय ॥ ३३४ ॥
वाडी फूली बहुत है, मे चाहुं सो नाह ।
बलहारी उस फूलकी, वास रही मन मांह ॥ ३३५ ॥

× × ×

जोवन पाको अंब जु', सुवटो रह्यो लुभाय ।
पंख पसारै उडणकु', रसभर रह्यो न जाय ॥ ३४२ ॥

× × ×

दब उड्या सारे डुंगरे, वळैं मुझ घराँह ।
विण अवगुण धण परहरी, मोटी खोड नँराँह ॥ ३४४ ॥

× × ×

ढोला वेगा आवजो, मन मुको वेसास ।
दही विलोयो घी लियो, पाछै रही त छास ॥ ३५० ॥

× × ×

कागद फाटो मसि ढळी, लेखण पडो दुकाळ ।
वीज पडो उण संदेसडे, रही निहाळ निहाळ ॥३५६॥

× × ×

दूहा कहिया मारवण, पिउजी तेडन काज ।
ढाढी हाथ संदेसडो, (थे) वीनवज्यों म्हाँ काज ॥३६३॥

× × ×

कुच काठै कर कुंभळै, अधर लाल थअे ।
मारू घड तेरे पुरष, केते जतन कीअे ॥३८७॥

× × ×

सो कोसे सजन वसै, जो होयै हीयडा मांह ।
जांण क मिळीया उठकर, देस घणा सुभाय ॥४०२॥
मन उहां पंजर इहां, किमकरि मिलणो थाय ।
दैव न दीधी पांखड़ी, ते सजन मीलाय ॥४०३॥

× × ×

सोरठा

पहली प्रीत करेह, उंडो पैसि आळोच्यो नहीं ।
भिखडीआ भवेह, मीठा बोलां माणसां ॥४०५॥
अेक दुकडा जेवे गळा, ज्यो चिंत उछाह ।
ज्यो वसंता चिहु आंगळां, लायण कनन दीठ ॥४०६॥

काव्यं

गिरो कलापी गगने च मेघा
लक्षांतरे भानु जले च पद्मम् ।
द्विलक्ष सोमो कुमदीवनानां
जो जस्य चित्ते न कदापि दूरे ॥४०७॥

× × ×

दूहा

भीग पटोळी जळ थळी, घुंदत आया गार ।
ओळंगणहारा सेल जुं उभा भीगा बार ॥४५४॥

× × ×

उतर आज स उजमी, सकै तो पडसी सीय ।
कै विस्वानर सेवीयै, कै सासूरी धीय ॥४७३॥

× × ×

उतर आज स उजमो, पाळी पडे विहांण ।
भाजै गात्र कुमारीआं, देखे मुगल पठांण ? ॥४७५॥

× × ×

थे सिधावो सिध करो, वेगेरा वळज्योह ।
पंगळ देसरी मारवण, लेने घर वळज्योह ॥५११॥
थे सिधावो सिध करो, जातांथी मळ ज्योह ।
रमज्यो सेझे रंगसुं, मनवंछित फळज्योह ॥५१२॥
साळा सळखु इम कहे, वैरा मले वजोग ।
तो नै कुअर जाँणे रावळो, मालण भाँणै भोग ॥५१३॥

× × ×

सोरठा

जातां समो न जोय, जोइ सी तोही जायसी ।
भर भर नयण म रोय, कर कायर काठो हियो ॥५१६॥

दूहा

अध तिलांरो अध तिल, तिण अधांरो अध ।
अवगुणी ओ सजन तणो, म्हे एतोही न लध ॥५१७॥
सजन दीठां सुख होवै, प्रगटै प्रेम अपार ।
जिण दिन सजन घर नहीं, सुनो जांणि संसार ॥५१८॥

सोरठा

अगर तणै अणुहार, पीडातां परमळ करै ।
ते सजन संसार, जोया पण जुडिया नहीं ॥५१९॥

दूहा

विछुड मिलतां बहुत गुण, जो सन उणी भाव ।
प्रेम पळटै हे सखी, विछडे मिलत कहाव ॥५२०॥

× × ×

सजन चाल्या हे सखी, करह पलाणी जाय ।
अे कामण ओळुं घणी, अेकां (अयो) आव्यउ दाय ॥५२४॥

× × ×

ढोलो ढीले हठ (? र) डे, दीठो घणे जणेह ।
लाल सुरंगे कपडे, सावरते नयणेह ॥५२७॥

× × ×

पली वधावो हे सखी, मोत्यां थाळ भरेह ।
जोवन पूर अथग जळ, उतरीया कुसळेह ॥५७९॥

× × ×

रैबारण

साहसियां सतवादियां, धीरां एक मनांह ।
दैव करेसी चंतडी, अरड फवेसी तांह ॥५६८॥
दंडी सुत्ता सापजुं, खडा खंधो सीउ ।
तिण धण अणदोडीयो, त्रखा न चाले पीउ ॥५६९॥

× × ×

मारू ऊभी गोख तळ, सर मोकळाण केस ।
जांणक राजा छत्रपति, मारण चढियो देस ॥६०२॥

× × ×

घण सूडानै सुपीयो, नैनन वांके बांण ।
मारू कुरझ बचाह जुं, तांण हणै कबांण ॥६१०॥

× × ×

च्यार चउपद च्यार थं (पं)ष, पोहप च्यार फळ च्यार ।
पुरवंदत जो पाइयै, अेहवी मारू नार ॥६१४॥
मांनु सु साज विप कमळ, मारग लोचण उणहार ।
गत गयवर कट सीहकी, अे चउपद लक्षण च्यार ॥६१५॥

× × ×

भुं भुहरा सुर कोकला, कंठ कपोत ठार ।
षंजन चपळा इसह पर, अे पंषी लक्षण च्यार ॥६१७॥
दाडम दंत सुपक फळ, कुच नारंग उणहार ।
सर श्रीफळ कुष सुपात्रां नीपजै, अे फळ कहिअै च्यार ॥६१८॥

× × ×

सुपनामै सजन मिल्या, मैं भर घाली बाथ ।
जागु तब देखुं नहीं, हथ हय रह गया हाथ ॥६४०॥
हियडा डोल म बायजुं, ते सजन वेहीज ।
जो करतार मआ करै, तो तै दरसण दीज ॥६४१॥

× × ×

ढींचे पांणी झाड घर, संवळ सुहब थणेह ।
सही संकोडी मारवण, उचळ गई वणेह ॥६५५॥
देस परायो परमंडळ, किण ही न कीजै आळ ।
किणहीकी दोय लाकडी, किणहीकी दस गाल ॥६५६॥
पाजै (?) पांणी न थांहरै, थरहर कंपै देह ।
हाथ सुंहाळी मारवण, विरहण पाडे वेह ॥६५७॥

× × ×

सुना केरा तुंबडा, सरही केरी तंत ।
कुंभारीरी कड वसै, तिण जोवारी खंत ॥ ६५६ ॥
भटकै भांजो तुंबड़ा, तटकै तोड़ुं तंत ।
कुंभारीरी कड वसै, तिण कीसा जोवारी षंत ॥ ६६० ॥
मेतो जोगी सारखा, जोगी मांरे लाग ।
कोइक जोगण परणस्यां, अमां सरीखी आज ॥ ६६१ ॥
मारवणी तुझ कारणै, तजीया देस विदेस ।
पहेला हुंता कापडी, हवै जोगीरेवेस ॥ ६६२ ॥

× × ×

करहा पांणी खंच पी, जो ढोलारो होय ।
आंखड़ियां जग मोहियो, राग न भीनो कोय ॥ ६६७ ॥

× × ×

उजळ दंती मारवण, ते कव साया दंत ।
हे वस म्हांरो बिहांगडो उड्यो केळ करंत ॥ ६७१ ॥

× × ×

वळी विसेखे तेहनै, पंगळ ते राजान ।
आपै उलट मन धरी, सोवन रस नादांन ॥ ६७५ ॥

वाजा वाज्या हरषनां, गुंज्या गुहिर निसांण ।
जामाता आगम सुणीं, मांड्यां बहु मंडाण ॥ ६७६ ॥
रोम राम तनुं उलस्या, नवा विरह विजोग ।
नयण कमळ विगस्या घणु, मिल्या सयळ संयोग ॥ ६७७ ॥

× × ×

जाचकनै संतोखीआ, आपी अविचळ दांन ।
सजन जननै तिम वळी, दै आदर सनमांन ॥ ६८१ ॥
नगर लोग आणंदिया, बांध्या तोरण बार ।
घर घर गुडी ऊछळी, जंपै जय-जयकार ॥ ६८२ ॥
इम ओछव अधिको करी, आव्या निज आवास।
पुगी सजनी मन रळी, सफळ फळी मन आस ॥ ६८३ ॥

× × ×

तेज प्रतापै दीपतो, कांत कळा सु प्रकास ।
देखी अविरज उपनो, साचो सुख विलास ॥ ६८८ ॥
माठा दिन मिटिया हवै, सेवक थयां सनाथ ।
सफळी सेवा चाकरी, आज थई अम नाथ ॥ ६८६ ॥

× × ×

सीह संजोग सापुरस कअण केळ फळै अेक वार ।
सती पहोवर विप्र धन, चढसी हाथ मुआंह ॥ ७०५ ॥

× × ×

असत्री पीहर नर सासरै, संजमीयां सहवास ।
अेता होअै अलखामणा, जो मांडै घर वास ॥ ७२६ ॥
ते माटे उतावळा, राज पधारो अेथ ।
निजर दोलत निज सांमनी, पांमीजै कहो केथ ॥ ७२७ ॥
राज्य भोज्य सज्या वळी, अस्त्री वाहण नै पान ।
सुना मेल्या नहिं भला, मन धरज्यो अे ध्यांन ॥ ७२८ ॥
अेहवो चीत मांहैं चीतवी, पंगळराय पासैजाय ।
अनुमति मागी चालवा, ढोलैजी चित लाय ॥ ७२९ ॥
दै अनुमति अवसर लही, आपै बहुळा आथ ।
हाथी घोडा अति घणा, सुंप्या बेटी साथ ॥ ७३० ॥

× × ×

सुसरो सासु सवि मिळी, ढोलानै बहु.प्रेम ।
निज पुत्रीनी अति घणी, दे भलामण अेम ॥ ७४० ॥

तुंकारो दीधो नथी, बाळपणा थी सार ।
किसी भलांमण दांतनै, जीभतणी सुविचार ॥ ७४१ ॥

इम मारवणी कुमरी प्रतै, समझावी सुभ वांण ।
हीली मीली हित हेजसुं, कीधी सुख सुंजांण ॥७४२॥

मया करीनै मुकज्यो, कुसळ-षेमना लेख ।
लीला पति लखजो वळी, स्माचार सु विसेख ॥७४३॥

अंतर को राखो रखे, अे छै तुमचो ठांम ।
देज्यो देव मया करी, सेवक सरीखो कांम ॥७४४॥

कारज समय संभारज्यो, चतुर तमे निज चित्त ।
मनथी मत विसारज्यो, थे मोटा महिपत्त ॥७४५॥

मात पिता बंधव सहु, सयण सकळ परिवार ।
बोळावी पाछा वळ्या, जुगतै करी जुहार ॥७४६॥

साथै सैन्य सबळ कटक, सुभट-तणा वळि थाट ।
बंदीजन बिरुदावळी, बोलै भोजग भाट ॥७४७॥

× × ×

थे ठाकुर थे छत्रपति, थानै तिहां बहु थोक ।
पाणी नखमै पातळी, छास कहै सहु लोक ॥७४९॥

रांणी इम रूडी परै, धरती अवीहड प्रीत ।
आलै सीख भली परै, राखी रूड़ी रात ॥७५०॥

राज सिधाओ सिध करो, वळिवहला मिलज्योह ।
डुंगरजीवी जीवज्यो, डंबर ज्युं फळज्योह ॥७५१॥

— — —

मेहा मोटी खोड, मांणसनैं मरवातणी ।
बीजी छै लख कोड, अे समांणी अेको नहीं ॥७५६॥

— — —

मारवणी मन मोहियो, मनह न मेलो न जाय ।
जिम जिम हियडै सांभरै, तिम तिम नयण झुराय ॥७६३॥

मारवणी मन वालही, मनकी पुरी आस ।
जबथी विसहर डंकियो, हुंती लील विलास ॥७६४॥

× × ×

(ध)

[यह प्रति बीकानेर के रांगड़ी-जैन-उपाश्रय के अभयसिंह-भंडार में है। यह भी प्राचीन नहीं है। यहाँ केवल नये दूहे लिये गये हैं।]

दूहा

वरस ढोढ वोळयो जिसइ अद्भुत सूंदर वेस।
षड पाषइ सहु देसना, छोडो गया विदेस ॥१३०॥

× × ×

पींगळ-रायनी मारुई, नळ-राजानो ढोल।
जबथै वेहु जनमीआ, तबथी बोल्या बोल ॥१६६॥

× × ×

मारू ढोळो जनमीआ, तिहांरा ए सहनाण।
धन भटिआंणी मारुई प्रीय ढोलो चहुआंण ॥१६८॥

× × ×

तन तुरंग असवार मन, नयन पयादे सथ।
सुंदर चली सिकारकुं, विरह बाज करि हथ ॥२०७॥
मारू ऊभी सांमुही, जिम तुरकां हाथ कबांण।
जिण दिस नाषे भालड़ा, तिण दिस पडे भगांण ॥२०८॥

× × ×

विजळी आंगले वाउला, मोरां माथे छत्र।
कदहि मिलुंगी सजनां, करी उघाड़ा गात्र ॥२२७॥

× × ×

सजन सोंपीनइ आवज्यो, मो गळ घली सोय।
नरपति नयण न षोलिओ, जांणें विछोही होय ॥४५१॥

× × ×

उनहीओ वरसे नही, करे बपीहा संतोस।
ते सजन अणदीठा भला, मिळतें लेत न सोस ॥२८३॥

वासर सुख नां रयणी सुख, घरे सुख नांवंत ।
वालिम बीछडिआ-तणो, मरम स लागो मन ॥२८४॥

× × ×

उचे चित्रगाळी माळिआ, या हुं चतुरा नार ।
साहिब चतुर सुजांण रस, नित विलसो भरतार ॥२८८॥

× × ×

परम सनेही परम प्रीय, अवधारो अरदास ।
महलें आवो मोहनां, साहिब पूरण आस ॥२६२॥
सुगुण सनेही नाहला, वाला वेग पधार ।
अलबेला अलजो घणो, देखण पीय दीदार ॥२६३॥
जुं मंछी जळ विन मरे, जळ मन जाणे नांह ।
तु ं पिउको जिय अति कठिण, हुं चाहुं पीय छांह ॥२६४॥
प्रीतम परम सुजांण छो, जांणत हो सब रीत ।
समयो एहि विचारीइ, जुं ए न घटे प्रीत ॥२६५॥
में तो अविहड आदरो, जिहां लगें जीवन देह ।
मन तनुं वयणे जीवसुं, पीउसुं कीनो नेह ॥२६६॥

× × ×

सोरठा

वृषां ? टपटपीआंह, विण वादळे विछुटीआं ।
आंखे आभ थयांह, नेह तुम्हारे साहिबा ॥२९९॥
साहिब नवलो नेह, जिण तिणसूं कीजे नहीं ।
वळे सुरंमी देह, धिपे न धुंओ उठसी ॥३००॥

× × ×

आज धराऊ उंनह्यो, आयो घट घण पूर ।
हुं सबहीकुं वलही, मो वलहो सो दूर ॥३०३॥

× × ×

चितार्‍यां चीवट पड़े, संभार्‍या न समाय ।
सजन तुरी पटाट जुं, हिइ विळगा जाय ॥३०७॥

× × ×

सोरठा

पहली प्रीत करेह, उंडो आळोच्यो नही ।
भुलाळिओ भवेह, मीठाबोले माणसे ॥३११॥

दूहा

पहली प्रीत लगाय कर, पछे चौरायो चित्त ।
राही-केरा रूप जु' त्यों माँहें घोड़ा चित्त ॥३१२॥

× × ×

सोरठा

कटका कादव नाह, नीर विजोगे जे हुआ ।
फिट काळजा काळा, सजन विन साजा रह्या ॥३१४॥

दूहा

साहिब संख समुद्रको, में सुणीओ वाजंत ।
नीर मितके कारणें, घर घर धाह दियंत ॥३१४॥
नयण तपत तुम दरिसकुं, स्रवण तपे तुम वेंण ।
कर माळा प्रभु नाम की, गये जपत दिन रेंण ॥३१६॥
मन चाहतु हे मित्तकुं, जाणु' मिलिइ ईस ।
पिण ओतो अळगो घणो, कहा करूँ जगदीस ॥३१७॥

× × ×

ढोला ढिली घर कीआ, दिठो घणे जणेह ।
लाल सुरंगी पघडी,.........रते नयणेह ॥३२१॥
इक उपरइकुं आवटे, इक नाँणे मन मांह ।
वाली इताकी प्रीतडी, देषत उठे दाह ॥३२२॥
आरति अभूय(ष)ओ(न),तामरो सोस्या लोहा गांस।
वाला तुझ विण जु' हुई; पाको पान पलास ॥३२३॥
कहिओ लागे कारसुं, लिषिइ केहो लाह ।
अंतरगत जो पीड छे, ते जाणे जगनाह ॥३२४॥

× × ×

फागुण मास वसंत रित, नव तरुणी नव नेह ।
कहो सखी केसें सहुं, च्यार अगन इक देह ॥३२८॥

× × ×

आवि विदेसी वालहा, नवि वीसारूँ हीयांह ।
नयणा दाडिम फूल ज्यूं, रोइ रोइ लाल कीयांह ॥३३०॥
भावे सजन इहां रहो, भावे रहो विदेस ।
प्रीत पुरांणी होइ नहि, जे बंधी लघु वेस ॥३३१॥
लागो होइ तो छोडीइं, हाथ हाथसुं लाय ।
मनको कहा छोडाइये, जाके हाथ न पाव ॥३३२॥
मन वारंतो नवि रहे, सो धण ढोलण सथ ।
मो मन चकरी डोर जुं, गह्यो डोरो तव हथ ॥३३३॥
जो हुं एसी जांणती, प्रीत कयां दुख होय ।
देस दुहाइ फेरंती, प्रीत करो मत कोय ॥३३४॥

× × ×

के कांई कांमण करयुं, रे रढिआळा मित्त ।
तिणकी सुध भूली गई, चोरी लीधो चित्त ॥३३५॥
निस दिन मो मन पिय वसे, पिय विन पल न सुहाय ।
पिय विनदीठइ सुख नहीं, घड़ी जमारो थाय ॥३३८॥
जाणुं जई ऊडी मिलुं, सुअड़ा आपि न पंख ।
दरिसण मिठा साहिबा, जेहवि आंबा सख ॥३३९॥
हुं रति अनेकसुं, पंथी पीउ कहेस ।
रही न सकुं तास बिन, ए अपराध खमेस ॥३४०॥

× × ×

मांगण चाल्या नळवरइं, करी बाईरी सीख ।
जो जीवां तो फिर मिला, वेग आवां लेई सीख ॥३४३॥

× × ×

मारू रते लोयणे, उर तीखे विच खीण ।
मारू बोले माळिइ (जाणे), पड़दे वाजी वीण ॥३६५॥
उर लंकी सासा कमळ, नीळ निभ छळ पेट ।
एक ज दीठी मारूई, आंबा पाको जेठ ॥३६६॥
उजळ दंति कपूर कर, मारू लख गुणेह ।
एकज अवगुण हे सखी, बाली घणे जणेह ॥३६७॥
हेमवरण सीतल ललित, गति गवरीरी जोय ।
मुख परिमळनो पदमणी, मारू सरीखि न कोय ॥३६८॥

पन्न सु पतळ कुच कठिण, झिणी लंक मृग चख ।
सो सुंदर किम वीसरइं, ढोला एक जीभ गुण लख ॥३६६॥
कुच कठिही अर कर कमळ, अहर अलत्ता रंग ।
मारू किरतारे घड़ी, दोते किए जतन्न ॥३७०॥

× × ×

खंजन नेत्र विसाल गति, चहिओ न लग्यो चष ।
एको मारू वारणो, माळवणीको लख ॥३७२॥
मारू उभी गोंख तळ, हाथें लाल कबांण ।
भर भर वाहे भालड़ा, तिण दिस पड़े भगांण ॥३७३॥
मारू केरा दोय नयण, मोती महले लाल ।
अणजांण्यांको पेखणो, सुजांणांने साल ॥३७४॥
भाउ ढोलाने वीनवे कीजे सीख पसाय ।
उहाँ वाट उतावळी जोए पिंगळ राय ॥३७५॥
वहो बघेरा देव गांम तोरण मंड्या अवंग ।
ढोला मारू परणीया चित्ता जेहा लंक ॥३७६॥
वही बघेरा परणीयो, अहनिस वजो वज ।
चिंता करी रे ढोलणां, इण हथलेवा कज ॥३७७॥
जो म्हे मोडा जायसा विण पाखइ संदेस ।
तो मारवणी कांमणी पावक करे प्रवेस ॥३७८॥

× × ×

दूहा

संदेसा सविगता कहियां तसु संभाळ ।
माळवणी थी बीहता सीख दीधी ततकाळ ॥३८४॥
भाउ भाट संदेसड़ा दिसि सजन कहिआंह ।
माता मन मांहे जाणयो वीरहें पीड थयांह ॥३८५॥

× × ×

जिण दिठे मन ऊलसे, वीछड़ीया वेराग ।
ते सजन किम राखीइ, जिभ वांभण गलत्राग ॥३८६॥
जब सुध आवत मित्तकी, विरह उठत तन जाग ।
ज्युं चूनेकी कंकरी, जब छिरकुं तब आग ॥३६०॥

चाहत पण देखत नहीं, वत न मीठे तार ।
दोउ लजाळु मांणसां, मेले दे किरतार ॥३९१॥

सोरठा

मारू ताहरी आँख, हिइ माहरे वसाही ।
तांणी तीर म नांख, जो मीली न सके मुझनें ॥३६२॥

× × ×

सलोक

चिंतातुराणां न सुखं न निद्रा कामातुराणां न भयं न लज्जा ।
अरथातुराणां न भयं न वंध्या क्षुधातराणां न भयं न तेजाः ॥३६७॥

× × ×

माळवणी वायक

सजन दुरजनके कहइ लागी प्रीत म तोड ।
जु रंग लगो चोळिआँ त्युं चीत लगो तोह ॥४२७॥
मांका आगळ नींकळ्यो भरि गयो लाँबी भीख ।
सही विरतो वलहो सुणी पराई सीख ॥४२८॥
ढोलो हुंतो ते नहीं उतरी ओतो लेय ।
साकर हुंतो विस थयो दुरजणरे वयणेह ॥४२६॥

× × ×

तुम मत जांणो प्रीत गई दूर वसेथें वास ।
नयन विछोहाँ पर गयो प्रांण तुम्हारे पास ॥४४७॥
इक वेगळा ते ढूकड़ा पासें वसें ते रांन ।
च्यार अंगुळनें आंतरे नयण न देखे कॉन ॥४४८॥

× × ×

आठ दिसा नव सिसा दिन पनरहको झड ।
चोमासा पाखें दिसा मुंध निहाळे वट ॥४६०॥

× × ×

वाकी छो राती खुरा चिरमी राती माय ।
ओलाळी पवने मिल्यो घडिया जोयण जाय ॥४६१॥

× × ×

रहो अली मठ करि करहो नीगमीआंह ।
काची दाख न चारीओ, गुणे न रीझवीआंह ॥४८६॥

× × ×

ढोला थे जाई आवजो, आसा सहु फळजो ।
मांको कहीऊ जो करो, तो मारवणी मरजो ॥४९९॥

× × ×

ढोलो चाल्यो हे सखी, वडरी डाहल मोड ।
हिउ फळेजो काळजो, तिनुं ले गयो तोड ॥५००॥
ढोलो चाल्यो हे सखी, डूंगर पहली पाज ।
नगरीथीं नव ते रही, ऊजड होइ गइ आज ॥५०१॥
ढोलो चाल्यो हे सखी, आंबा-केरी झोल ।
हिउ हेम जळ होइ रह्यो, नयणे मंडी कोल ॥५०२॥
ढोलो वोळाव्यो हे सखी, जिहाँरी थी हुं दास ।
दही विलोया घी लिया, मोनें करि गयो छास ॥५०३॥
ढोलो वोळाव्यो हे सखी, पाळे चढियो दिठ ।
लागो झटको काळिजे, घरे ले गई नीठ ॥५०४॥

× × ×

ढोलो वोलाव्यो हे सखी, ऊपर वडि जोय ।
चुले छाणो घालकर, धुआड़ा मिस रोय ॥५०७॥
ढोलो गयो तो दुख दे, धुरि चहोडी लड ।
ऊभी मेली पंथ-सिर, जुं धुर तुटी गड ॥५०८॥

सोरठा

तु' जांणे कीरतार, वालिम, जो मुझ वीसरइ ।
दिहडा मांहें दस वार, सासा पहली सांभरइ ॥५०९॥

दूहा

मेरे अचग लघु अटळ, संसि खडो निकळंक ।
सायर खारो रवि तपे, कुंण विण तोलुं कंत ॥५१०॥
माछि तु' मत तडफडइ, वनसी लागो दंत ।
वीछडियां मेळो नहीं, तो सरवर मां कंत ॥५११॥

× × ×

मेर सरीखो वलहो, पहली पाछण काळ ।
विरता पाछे वलहो, चितथी मेली टाळ ॥५१३॥
जाण्यो थे वड वृष्य थो, सेविस काळो काळ ।
फूल झड्यो फळ नीगंम्यो, नीबंढि गयो पलास ॥५१४॥

जांण्यो थो वड वृष्य थो, एको विषो विनांण ।
छापर-हंदी लीहड़ी, इळां तुटी नांण ॥५१५॥
जाण्यो थो वड समुद्र थों, पडि गयो नगर तळाव ।
काठे कुंते विटोळिउ, हंस न देवे पांव ॥५१६॥

× × ×

संदेसे जे गम करे, गम करि घर समरंत ।
ते बंधा केकांण ज्युं छट्टे मास मरंत ॥५२०॥
सजन किमही न वीसरे जासुं घणो सनेह ।
अह निस मन मांहे संभरइ, जिम बापेयो मेह ॥५२१॥
तिण सयणांरा धिग जनम, जिणमें ठिक न ठोर ।
चिंत ओरां हित ओरसुं, मुख भाखे कछु ओर ॥५२२॥

× × ×

नयणे डुंगर अंतरइ, मन अंतरो न कोय ।
अम्हहि तुंम मिलावड़ो, जो दैव करे तो होय ॥५२४॥

× × ×

सजन चाल्या हे सखी, करहो पलाण्यो जाय ।
एकां मन ओळूं घणी, एकां आवइ दाय ॥५२८॥

× × ×

ढोला हुं तुझ वाहरी, झीलण गई तळाव ।
पंखड़ियां पंचो सही विरह पहुंतो आय ॥५३५॥

× × ×

ढोलो कहे संदेसड़ा सो सूअडा कहेस ।
मुरछाणी हुई माळवण बेटी हाथ घसेस ॥५५३॥
आस करंती तास कर निगुणी नेह निवार ।
सालकुमरने करहलो वळे न थारे बार ॥५५४॥
हाकळहिओ हे सखी खोटो अथिर सनेह ।
एक पखो कर नेहलो काप जळावे देह ॥५५५॥

× × ×

दूहा

एक बारहट्ट उंमर-तणो जोवे बाट ज ढोल ।
तिण देखी कुडो चव्यो तिण ही कह्यो कुबोल ॥५७७॥

× × ×

उजळपणो सबही भलो एक न भलो केस ।
आहेडी हरणां रमे तो तरुण तन वेस ॥५७६॥

× × ×

बारहट्ट वाक्य

ओर गईविन्नो पग पदम दांमिनी दंत सुस्वेत ।
कुच बीजोरी रंग जु ं षंजन जेहा नेत ॥५६३॥

× × ×

कडि सुपत्तल कडि धनष लंबी वेण लहक ।
मारू मारे पंथ जु ं कटिथी काढी भल ॥६००॥

× × ×

हेम वरण सीतल ललित गति गवरीरी जोय ।
परिमळ पुहप पग पदम मारू समहि न कोय ॥६०८॥

× × ×

सज सुपनें आवीओ अम गळ घली बथ ।
जागी अनुरागी भई हो हो रही गई हथ ॥६२५॥

× × ×

सके हे तो ढोलो आवीयो तिको तेहको तोड़ ।
अंगे आळस रळि गयो मारूरे मन कोड ॥६२७॥
मारू निस भर निस सुई वेगें थाय विहाण ।
सके हे तो ढोलो आवीओ चिषल चहु चढिआंह ॥६२८॥

× × ×

करहा कांय कहुकियो झाझा मांह थळांह ।
ढोलो मारू उमाहियो आयो घणां दिनांह ॥६३४॥
आंष फरके कड लवे पुले त पटडिआंह ।
मो सगुणीको वलहो सके तो वटडीआंह ॥६३५॥

× × ×

डाबो पाणी जळ धरो सबळो सुह थणेह ।
मन संकोडी मारुई उजळ गई वणेह ॥६४४॥

× × ×

करहा पांणी हूक पीय जो ढोलाको होय।
आंखड़ीया जग मोहीओ राग न भेल्यो कोय ॥६४८॥
देस पीआरो परमंडळ करहा न कीजे आळ।
किणहीरी दोय लकड़ी किणहीरी दस गाळ ॥६४६॥

× × ×

मारू वाक्य सखी प्रति

मीठो कंठ महेलियां तुरियां मीठो राव।
मेलो मीठो सजनां आगम मीठो ब्याव ॥६६५॥

× × ×

अगर चंदनरो ढोलिओ सूकड़ीओ आवास।
धण जीव्यो ढोला-तणो मारूसुं घरवास ॥६६७॥

× × ×

सोरठा

कहतां नावे काय, सजन मिल्यां जे सुख होवइ।
ज्वाळा-सी बुझि जाय, सीच्यो अमृत सजनां ॥६९०॥

× × ×

दूहा

जिम अरहट आरणमें, सजन सोहणां माह।
सापुरिस-हंदा सजनां, आसा मुझ फळियांह ॥७०१॥

× × ×

करहो कसतुरी लदिओ ऊपर झीणी लोय।
साथड़लो सुरंगड़ो जो (ढोला) निरवाहु होय ॥७१८॥
प्रथम मेंलांणें आविया ढोलो मारू सोय।
डेरा बहु तंबु दिया पोढ्या छै सहु कोय ॥७१६॥

× × ×

सोरठा

सालकुंयररो साद, किओ नहीं सो कुणकुणे।
सो जागी घणें साद, दासी तास दीवाधरी ॥७२६॥

× × ×

दूहा

इहां छे गुणवेलड़ी, उहां छे रसवेल।
जम रौंणा साटो करां, वांनेंई लेओ मेल ॥७३०॥

× × ×

दूहा घणा पुराणा अछै, चोपई बंध कीओ में पछै।
संवत सोळह सतरोतरे आखात्रीज दिवस मन खरे ॥

× × × ×

[यह प्रति नागौर-मारवाड़ के श्वेतांबर-जैन-उपाश्रय में वर्त्तमान है। इसका लिपिकाल सं० १७७१ है। पाठ प्राचीन ज्ञात नहीं होता।]

ढोला-मारवणीरा दूहा

सरसति मात पसाव करी, दे मो अविरळ मत्ति।
भोगी चतुर भुवाळ जे, गुण गावुं तस झत्ति॥
देसाँ माहे दीपतो, परगळ पूंगळ देस।
जिहाँ नर नारी नीपजै, निरूपम नीकै वेस॥
उंचा मंदिर चौषणा, ऊँचा घणुं आवास।
अजब झरोखा जाळीयाँ, सीस्याँ सुधावास॥
राज करै राजा तिहाँ, पिंगळ जाण प्रवीण।
भामनीयाँ भीनो रहै, निस दिन नेहै लीण॥
अताराँ अहनिस करै, अमल सुहड अति रंग।
कोटडीयाँ कळियळ हुवै, राग छतीसे रंग॥
भला सुहड ब्राह्मण भला, भली राजरी रीत।
राज लोक राँणी भली, पाळै अहनिस प्रीत॥
गिर अढार आबू धणी, गढ जाळोर दुरंग।
तिहाँ सामंतसी देवड़ो, अमली माण अभंग॥
तस धी ऊमा देवडी, अवर नहीं संसार।
छट्ठी-हंदे अषरे, परणी राइ ति वार॥
पटराँणी पिंगळ तणी, अपछरकै अणुहार।
अछै ऊमा देवडी सुंदर इण संसार॥
सुंदर सोळ श्रृंगार सझि, सेझ पधारि साँझ।
प्राँणनाथ आए मिळी, सर सिर बइठौ हंझ॥
रानि दिवस रंगइ रमैं, प्रीउसुं इधको प्रेम।
कुसम जाँण केतक वनैं, मोह्यौ मधुकर जेम॥

मवड बधी मारवी, आइ अवतरी पेट ।
पूरे मासे पदमणी, जनमी रतन ज नेट ॥
सुंदर रूप सुहामणी, अपछरकै अनुहार ।
सहु को आषै पदमणी, भमर करइ गुंजार ॥
वरस पाँच वउळ्या जिसै, इसै देव न वुट्ठ ।
षड पाषै सहु एकठा, मांणस हुवा मनमट्ठ ॥
मारवाड़कै देसमै, एक न जावै पीड ।
कबही हुवै अवरसणो, कबही फाका तीड ॥
पीगळ परीयण पूछियो, कीजै त्रेवड काइ ।
कोई गाम ज अटकळी, जेथ वसीजै जाइ ॥
जळ षड़ कारण षोजीया, देसे दुं दुं षाव ।
पुहकर षड पाँणी प्रघळ, साँभळ पुंगळ राव ॥
पिंगळ ऊचालो कीयो, आयो पुहकर तीर ।
षड पांणी प्रघळ तिहाँ, हुवो सुख सरीर ॥
हिवै किम ढोलौ नीपजै, देव-तणो परिमांण ।
लेख मिलै अणचींतव्यौ, भावै जांण म जांण ॥
नळ राजा नळवर रहै, आछै रिद्ध अपार ।
भली अनोपम भामणी, सुख माणै संसार ॥
एक चिंता मनमै घणी, नही पुत्र रतन्न ।
तिण पाखै लागै इसो, जांणी अलूणा अन्न ॥
डाहा मांणस पूछीया, तिण कह्यो एह उपाय ।
पुत्र सही थाइं भलो, पुहकर देव मनाय ॥
जात्रा बोली राइ विण, हुवौ पुत्र रतन्न ।
उछव हुआ अति घणा, लोक कहै धन धन ॥
राजा मनमै चींतवै, जाए करवी जात ।
राज भळायो आंपणो, परधानां परभात ॥
साथे रिद्ध लेई घणी, आयो पुहकर तीर ।
जात्र करी मन हरषीयो निरमळ सरवर नीर ॥
इण अवसर घन ऊमह्यो, प्रगट्यो पावस मास ।
पिंगळ राजा पिण तिहाँ, मिळीया मन उलास ॥
ऊनमीयो उत्तर दिसा, गयणे गरज्यो घोर ।
चिहुँ दिस चमकी वीजली, मंडे तंडव मोर ॥

च्यार मास निह्चळ रह्या, सरवर (त) णै प्रसंग ।
रांमति ख्याल विनोद रस, रहै मन उछरंग ॥
एक दिन नरवर राजवी, चढ्यौ सिकार प्रभात ।
सिसलो दीठी नासतो, दीयो घोडो दे ळात ॥
जाँतो पिंगळ रायनै गयो ज गाडां माँहि ।
सूती ऊमा देवडी, कडि नीचै वहि जाहि ॥
दीठी राजा देवडी रांणी दीठो राय ।
मन माहे अचरिज भयो, अई यो रूप अथाह ॥
देषी ऊमा देवडी, राजा थंभी वाग ।
जो माणै इण नारिनै, तिणका मोटा भाग ॥
तुरत राय पाछो वळ्यो, आयौ सगळौ साथ ।
पिंगळ आडो आवीयो, मीळीया भरनै बथ ॥
राज ऊतरो करि मया, पीयो पछारी पैण ।
कहि अंतर किम राखीयै, जे ससनेहा सयण ॥
साथ सहु तिहाँ ऊतरयौ, नळ राजा ससनेह ।
कीधी भगति भळि परै, पिंगळ राजा तेह ॥
आए बैठा एकठा, करण कतूहळ केळ ।
सारी पासा सोगटा, राजा यै मन मैळ ॥
सूंपी वागा सावद्व, कोडी धज केकांण ।
अाम्हो साम्हा आपीया, प्रीत चढी परमांण ॥
सगपण हुवै तो सौगुणी, वधइ प्रीत असमान ।
नरवर राजा पिंगळै, वकीया एहवी वांण ॥
तिसडै मारू नीसरै, जाणे बीय मयंक ।
ऊ झाँखो आ निरसली, कोई नहीं कळंक ॥
कुँवर अनोपम माहरै, दीसै देव कुमार ।
तिणहुँ मारू दीजियै, समजोड़ी संसार ॥
तब ते राजा पिंगळ कहै, वात एह परवांण ।
सहि करेस्यां नातरो, पूछीनै परीयाण ॥
राजा ऊठी आपणै, डेरै आयो जांम ।
पिंगळ पूछै देवडी कहो त कराँ ए कांम ॥
आषै ऊमा देवडी वालँभ हीयै विचार ।
मनह सकोडी मारवी, दीध समुद्रां पार ॥

के (?कं)ताअण दीठै कुँमर, नातरो कीयो स कोय
प्रीऊ पटराँणीनु कहै, जिहाँ सिरजी तिहां जाय ॥
अति मोटै आडंवरै, कीयो विवाह तिएण ।
अरथ गरथ बहु षरचीया, पिंगळ नरवर जेएण॥

[इसके आगे मूल का ११ नंबर का दूहा है ।]

नळ राजा हिवै अांपणै आयो नरवर देस ।
ठाँम ठाँमरा ळोक सहु, ते ळ आया पेस ॥
साल्हकुमर आयौ हिवै, यौवनमै भरपूर ।
तब राजा मंन जांणीयो, पुंगळ हूई ज दूर ॥
मत कोई जणाइजो, मारवणो विरतांत ।
भुंइ अळगीमै भुंच नर, भवनइ भुरट अनंत ॥
माळव देस सुहामणो, जिहाँ सुषीया सहु लोक ।
परणावीजै साळनुं, देसी सगळा थोक ॥
माळव देस सुहांमणो, भीमसेन भूपाळ ।
माळवणी धी तसु तणी, सुंदर नै सुकमाळ ॥
साल्हकुमरनो ना तरो, कीयो मन आणंद ।
सोहै जान्यांमैं कुमर, जिम तारामैं चंद ॥
षरच्या अरथ गरथ सहू, परण्या अधिकी प्रीत ।
सारीषी दा (?) विना चिहटै नहीं ज चीत ॥
हाथ मुंकावण हाथीया, दोन्हा तीन सै पंच ।
नगर पचास दीपावळी, अइराकी सै पंच ॥
चतुरपणें लागी हिवै, ढोला-सेती प्रीत ।
लागो रं (ग) मजीठ ज्युं, चतुरपणै बहु चीत ॥
आया नरवर गढ हिवै, पैसारो संघात ।
आया मन अति रंगसुं, सुष माहे दिन जात ॥
ढोलौ मालवणी हिवै, करै कतूहळ केळ ।
ढोलै मन मांनि घणुं, मालवणी मन मेळ ॥
सोळां वरसां माळवी, कंतो बरसां वीस ।
इसडी जोड़ी जौ मिलै, जो तूसै जगदीस ॥
हसै विहसै माळवी, अरु गळि लग्गी कंत ।
अति घणु, दाडिम जेहा दंत ॥

माळवणी जाणै षणु, मारू मत्थें साल ।
पिता ढोलो जांणै नहीं, वीछडीयां वय बाळ ॥
बयण न लोपै माळवी, नयण न षडै जेह ।
प्रीत वधारण सुख करण, वळि मीठे वयणेह ॥
नित नवली मोज करै, नित नित नवली सेझ ।
ढोलो माळवणि एकठा, अधिकै अधिकै हेज ॥
ढोलो मोह्यो माळवी, जिम मधुकर व...ह ।
बिहु मन लागो इसुं, एक जीव दोय देह ॥
ढोलो मोह्यो माळवी, राति दिवस मन रंग ।
नेह नवल नै नवल धण, सही न छोडै संग ॥

[इसके आगे मूल का १२ नंबर का दूहा है ।]

बाळापण तो वहि गयो, जिहां मन लाव न साव ।
आयो जोवन उमंगसुं, सहु सुख मांणण राव ॥

[इसके आगे मूल के १३, १४ और ७६ नंबर के दूहे हैं ।]

सुपनंतर सज्जन मिल्या, मै भर घाती बत्थ ।
नींद गई प्रीउ वीछुडे, जागत पटकत हाथ ॥
सुपनै सज्जन पाईया, हुं सूती गळ लाय ।
मारुं न षोलुं अंषडी मत स्यज्जन फिर जाय ॥

[इसके आगे मूळ का २६ नंबर का दूहा है ।]

मारवणी सहीयां कहै, मो परणाई केथ ।
प्रीउ कठे जाणु नही, हुं एकलडी एथ ॥

[इसके आगे मूल के २४ और २५ नंबर के दूहे हैं ।]

सूती सेझै मारवी, विरहण करै विलाप ।
कुरझां सुणे करूकडा, लागी विरहा ताप ॥

[इसके आगे मूल के ५३ और ५५ नंबर के दूहे हैं ।]

कुरझडीयाँ कळियळ कीयो टोलै टोलै वीस ।
मारू ढोलो सांभरै, उरसुं भागी ईस ॥

[इसके आगे मूल का ५६ नंबर का दूहा है ।]

कुरुझडीयाँ कळयळ कीयउ सारी माझिम राति ।
मारू पंजरमै वूही, करवत आवत जात ॥
कुरुझां कांई करुकीयां, थांकुं केहो दूख ।
कूंग मारू विरहै दधीयां, ऊपर लायो लूण ।

कुरुझां-तणा करूकडा, सांभळ सोवै सोय।
सेझ अंगीठी तन दहै, कहिवा लागी जोय।

[इसके आगे मूल के ६२ और ६५ नंबर के दूहे हैं।]

रांणी ऊभी सांभळ्या, मारू-तणा ज वैण।
ऊमां मनमै जांणीयो, मारू मेळो सयण ॥

[इसके आगे मूल के ७७, १०१, १०३, १०४, १०७, ११०, ११५, १२६, ११६, ११३, १२२, १२३, १३०, १३३, १२७, १३१, और १३५, नंबर के दूहे हैं।]

केता संदेसा कहुं, केता वयण कहेस।
ढाढी प्रीतम आंणियो, तो उपगार वहेस ॥

[इसके आगे मूल का १८४ नंबर का दूहा है।]

तिहाँ मालवणी राखीया, पीहर पहराइत।
पंथी कौ पूंगळ तणौ, सो मारै वो नित ॥

[इसके आगे मूल का १८२ नंबर का दूहा है।]

कूड कपट मन केळवी, आया नरवर देस।
नरवर राजा भेटीयो, मनमै चींत अजेस ॥
राजा घणो आदर दीयो, पूछी कुसला पेम।
नरवर मन पिंगळ तणो, प्रगट्यौ इधको प्रेम ॥

[इसके आगे मूल का १८७ नंबर का दूहा है।]

आज जाइनै ऊळगो, साल्ह कुमर सुजांण।
ढाढी मन हरषित हुओ, बदी राइ ए वांण ॥

[इसके आगे मूल के १८८, १८९ और १९१ नंबर के दूहे हैं।]

संध परा सो जोयणां, बीजां षिवै विदेस।
धण पुंगळमैं एकली, नाह तो नरवर देस ॥

[इसके आगे मूल का ४७ नंबर का दूहा है।]

वीजळियां झबूकीयां जब देषीजै नयण।
बांह पकड्या बालपिण जाइ मिलीजै सयण ॥

[इसके आगे मूल के १४७, १४९, १४५ और १९२ नंबर के दूहे हैं।]

प्रह फाटी रवि ऊगीयो, आयो पूछण वत्त।
कहो ज तिणकी वारता, जिणकी गाई रत्त ॥

तेही दाषवज्यो तुम्हे, जेही आया जोय ।
पर मन रंजन कारणै, भरम म दाषवि कोय ॥
एकण जीह किम कहां, मारू रूप अपार ।
कै हरि तूठै पाइयें, कै तुठै करतार ॥
ढाढी ले कागळ दीयो, लिषीयो मारू जेह ।
ढोलै लेई भीडीयो, सयणां-तणै सनेह ॥
कागळ अषर गहि लीयां, कामस घणो जयांण ।
कै भीना पंथ आवतै, कै लिषणहार अजांण ॥

[इसके आगे मूल के १८२, १९८, २०३ ओर २०४ नंबर के दूहे हैं ।]

सूता सूपनंतर मिलै, इक सासै सो वार ।
मन राष्यो ही नवि रहइ, कर मेलो किरतार ॥

[इसके आगे मूल का १५७ नंबर का दूहा है ।]

प्रीतम जो आयो नही, थोडां दिनां ज मांहि ।
तो थे आया लाभस्यौ, मारू मंगळ मांहि ॥
प्रीतम जो आयो नही, मांणस इयां मिळियां ।
आयां धण आतुर हसी, पाछां इयां पहियां ॥
कै कहीयै कै अषियै, सयणांसुं वयणांह ।
वयर विलूधो वल्लहा, नींद अनै नयणां ॥
जोवत आंष्यां थकीयां, सोवत नांहीं सुष ।
प्रीतम अणमिलीयां इसो, दाझै देही दुष ॥
ढोलै कागळ वांचीयो, जाग्यो नवल सनेह ।
मिळवा हीयडो ऊलस्यौ, जिम बाबहीयै मेह ॥
कागळ मूँकै नै कहै, थे भलै मिळीया आज ।
सयणां-तणां सदेसडा, मांणस - हंदा साज ॥
सीष समपी ढाढीयां, देई लाषपसाव ।
ढोलो मन घणुं हरषीयो, हरख्यो नरवर राव ॥
श्रवण सँदेसा सांभळी, प्रीतम-तणा ज वयण ।
मारू ढोलो मोहीयो, सहु भूलेगा सयण ॥
मन्ह चमक्की माळवी, सुणि ढाढी-हंदा वयण ।
कोडि गुणां अवगुण हुवै, जो हुवै दूजो सयण ॥

तां लगि प्रीत अषंडीया, जां लगि एको मित्त ।
जव मन राषै अवरसुं, चतुर विरच्चै चित्त ॥
पिण मुंहडैरी प्रीतड़ी, अरु अगळि नयणां ।
आंहचै इम किम छांडही, ससनेहा सयणां ॥
मन चिंता मिळवो सयण, मंडाणो आळोच ।
माळवणी मन जांणियो, सही ज कोई सोच ॥

[इसके आगे मूल के २१८ और २२१ नंबर के दूहे हैं ।]

जिके ज ब्रांभण वांणिया, तिको दिसावर जाय ।
राजकुंवर राजा-तणा, तोइ दिसावर कांय ॥

[इसके आगे मूल के २२३, २२६, २२७, २२८ और २२९ नंबर के दूहे हैं ।]

चंपावरणी कांमणी, सोहै तुझ सरीर ।
हरणांषी हसनै कहै, तो आँणां दष्यणी चीर ॥

[इसके आगे मूल के २३३, २२४, २२५, २३० और २३१ नंबर के दूहे है ।]

सुंणि सुंदर ढोलो कहै, काई चाकरी करांह ।
कांई माई बेटका, घर बैठा रहांह ॥
कंत म जाए चाकरी, किण ही कुठाकुर साथ ।
दत्त थोड़ो सेवा घणी, पहरो देणो राति ॥
सुणि सुंदर ढोलो कहै, रीतां राजवीयांह ।
घर बैठा टांमक हवै, बाहिर सोह समांह ॥
ऊचळ चित्ता ऊभांषरा, पग न मैलै ठाय ।
सज्जन उनहारै इसा, तिण नो मन डोलाय ॥

[इसके आगे मूल के २३६, २३८ और २३९ नंबर के दूहे हैं ।]

वल्लभ सज्जण वीछडण, वळी सवकां साल ।
कर जोडी कामिण कहै, सुणि कंता सुकमाळ ॥

[इसके आगे मूल का २४१ नंबर का दूहा है ।]

नेह बंधन बंधीयो, वळि रहिया दुइ मास ।
ससनेही क्युं वीसरै, मन मारवणी पास ॥
चहुं दिस चमकी वीजळी, थाडी वादळ छांह ।
पावस आयो पदमणी, कहो व पुंणळ जांह ॥

[इसके आगे मूल के २४६, २४८, २५१, २४४, २५३, २४९, २५०, २७३ और २४५ नंबर के दूहे हैं।]

जिण रित सी आगम करै, टापुर तुरी सुहाय।
तिण दिन कांमिण मुंकिनै, कवण दिसावर जाय ॥
जिण रितिमै कोरड कुडै, हिरणी गाभ धराय।
तिण दिहांरी गोरडी, दिन दिन लाष लहाय ॥

[इसके आगे मूल के २८२, ३०१ और २९४ नंबर के दूहे हैं।

उत्तर आजस उत्तरो, सही पडेसी सीह।
कढीयौ दूध कटोरीयां पावै, सासू हुंदी धी ॥

[इसके आगे मूल के २८७, २६०, २८६, २६५ और २६८ नंबर के दूहे हैं।]

उत्तर पाळो पवन घण, कहो किम कीजै।
हरिणाखी जै तूं कहै, तौ सांम्हो सी लीजै ॥

[इसके आगे मूल के ४१२ और ३०५ नंबर के दूहे हैं।]

रैबारी ढोलो कहै, करहो सोइ दिखाय।
पलांणीयां पवने मिलै, घडीयै जोजन जाय ॥
टोळा माहे टाळिमो, विगताळो वीषइ।
रूडो रैबारी आंणीयो, ढोलो सो निरषइ ॥

[इसके आगे मूल के ३०९ (पंक्तियों का क्रम उलटा है), ३१२ और ३१३ नंबर के दूहे हैं।]

झाटि झूटिक करहलो, आंणे बाँध्यो बार।
विरह दावानळ बीहती, कहै मालवणी नार ॥

[इसके आगे मूल के ३१७, ३१८, ३२० और ३२१ नंबर के दूहे हैं।]

कहियो कीयौ करहलौ, षोडो हुवौ ति बार।
दीजण लागा डांभडा, कहै माळवणी नारि ॥

[इसके आगे मूल का ३३३ नंबर का दूहा है।]

करहा सुणि ढोलो कहै, रहीयो षोडो होइ।
मुझ मिळावै मारविण, इसो सयण न कोइ ॥

[इसके आगे मूल के ३०४, ३६३, ३६७ और ३५८ नंबर के दूहे हैं।]

बीछड़तां ही सज्जनां, नीसासा ज मूक।
के भरीया के वाळीया, के दाधा के सूक ॥

[इसके आगे मूल के ३४६, ३६६, ३७९, ४१६, और ३८१ नंबर के दूहे हैं ।]

षडीयो ढोलौ करहलो, मिळीयो वावोवाय ।
वांसै मूकै माळविण, सूवेनुं समझाय ॥

[इसके आगे मूल के ४००, ४०१ और ४०४ नंबर के दूहे हैं]

ससनेहां को विछड्यौ, मूंओ न सुणीयो कोइ ।
तंबोळी-कैरा पांन ज्युं, झूरि झूरि पंजर होइ ॥
सूआ एक संदेसडो, माळवणी बाळेह ।
सो मण सूकड नै मण अगर, म्हाको हुंती देह ॥
सूओ पाछौ आवीयौ, ढोलो गयौ अलज्ज ।
कहीयां ही वळीयो नहीं, तोसुं केहो कज्ज ॥
ढोलै-तणा संदेसडा, सूवै कहीया आइ ।
मुरछागति हुई माळवी, ऊभी हाथ मळाइ ॥

[इसके आगे मूल के ४२५ और ४२६ नंबर के दूहे हैं ।]

चढीयां ढोलो करहलै, मिळीयो, वावोवाय ।
ढोलो मन ऊमाहीयो, घडीयै जोजन जाय ॥
जंगळ देस अजंग थळ, कोहरे ऊँडा नीर ।
ढोलो षडै उतावळो, सयणां-तणै सहीर ॥

[इसके आगे मूल का ५२३ नंबर का दूहा है ।]

आगळि जातां एकलो, ऊभो जड गिवार ।
वहतो देषी वाटळै, लागो कहण ति वार ॥

[इसके आगे मूल के ४३६ और ४३७ नंबर के दूहे हैं ।]

उवा मारू पिंगल-तणी, छाळीयाँ छागां सत्थ ।
रमतां बाथळ कुंडीयै, बहुली घाती बत्थ ॥

[इसके आगे मूल के ४३८ और ४४५, नंबर के दूहे हैं ।]

पग आधा पाछा पडै, मन पाछौ मे जाइ ।
सयणां वयणां सांभल्यां, वधइ प्रीत घट जाइ ॥
इतरै आघा चालतां, मिळीयो मांगणहार ।
सांम्है हुइ सुभराज कीयो, ढोलै कीध जुहार ॥
पूछयो तिण मांगण-भणी, कठा आवीयो कहेह ।
पूंगळ राजा ओळगे लाष पसाव लहेह ॥

तिणनुं ढोलै पूछीयौ, मारवणी विरतंत ।
बोलै बारट सै-मुखै, केता गुण कहंत ॥
जे तैं दीठी मारवी को सहिनांण प्रगट्ट ।
चंदा जेहौ मुखकमळ, कडि कसतूरी वट्ट ॥

[इसके आगे मूल के ४७२, ४५१ (पंक्तियों का क्रम उलटा है), ४६३, ४५९, ४६०, ४६२, १३, ४८६, ४५५ और ४८७ नंबर के दूहे हैं ।]

तिण ढोलैसुं सीष की, कीधी ढोलै सीख ।
करहा चालि उतावळो, हल वहिली भर वीष ॥

[इसके आगे मूल का ४६६ नंबर का दूहा है ।]

ढोलो वाहै कंबडी, दोइ दोइ एकण पूर ।
जिण गाँमै सज्जन वसै, सो तो अजेस दूर ॥
पींडी बँधै पाघडी, ढीली मेले वग्ग ।
दीवै वेळा न संचरूं, तो वाढै ज्यारूं पग्ग ॥

[इसके आगे मूल का ४९७ नंबर का दूहा है ।]

करहै करंकौ सांभळी, धण जागी उद्रक्कि ।
माझिम रातै मारवी, जोयो गवष झबक्कि ॥

[इसके आगे मूल का ५४३ नंबर का दूहा है ।]

ढोलो घरे पधारीयो, हरष्यो सगळो गांम ।
पूंगळ राजा आवीयो, हरषै कीयौ प्रणांम ॥
कीजै ऊगट मांजणी, कीजै सगत सहेज ।
सेझ पधारी मारवी, सुंदर सुगण सहेज ॥

[इसके आगे मूल का ५४१ नंबर का दूहा है ।]

तन सिणगार्‍यौ मारवी, सिणगार्‍यौ सह हत्थ ।
अंगै चंदन महमहै, सोहै बीडो हत्थ ।
मारू हसी मुळकनै, वीजळी षिवैइ क दंत ।
ज्यारे दिस सुवस वसी, हस गळ लग्गी कंत ॥
ढोलै दीठी मारवी, अदभुत रूप अचंभ ।
हसकरि पूछै बत्तडी, कहि तूं केण अचंभ ।

[इसके आगे मूल के ५४६, ५४८ और ५४९ नंबर के दूहे हैं ।]

आपां मेळो हिवै हूऔ, गया वरस सोळेह ।
हुं तुझ पूछू मारवी, पहिली माँणी केण ॥

अधर तबोलै माँणीया, कै दीष्यणी चीरेण ।
थणहर कंचू माँणीया, नयण न जाणुं केण ॥

[इसके आगे मूल के ५५७, ५५१, ५५३, और ५२८, नंबर के दूहे हैं ।]

मूंई हूंती रे वल्हहा, तूं भलै मिळीयो आय ।
कुसल पछे ही पूछस्यां, पहिली प्रेम चषाय ॥

[इसके आगे मूल के ५५५, ५६३, ५६१ और ५५४ नंबर के दूहे हैं]

ढोलो निरखे जोईयो, अपछरकै अनुहार ।
हूई न होस्ये एण युग, मारू सरषी नार ॥
वालंभ जे विरचै नही, जे दूहवीया होय ।
अधर अमृत-रस घूंटतां,कबही त्रिपति न होय ॥
घणां दिनाहुँ प्रीउ मिळ्यो, मनमानीतो कंत ।
अंगो अंग भीडै घणुं, मिळे हसंत हसंत ॥
पुंगळ ढोलो प्रांहुणो, रहीयो सासरवाडि ।
पनर दिहाडा पदमणी, मांणी मनहरु हाडि ॥
सगळो साथ संतोषीयो, पूजी सगळी आस ।
मारू जो तिणहीज गुणेह, दीन्हा लाख पचास ॥
ऊमर राजा सांभळयौ, जे रांवांचो राय ।
मारू चाली सासरै, ढोलो लीयै जाय ॥
पंच सहस पवंगे मिल्या, रहीया वनह मझारि ।
मांटी तो मारू लीयां, मारग ढोलो मारि ॥
ढोलै मरम न जांणियो, चढीयो करह पलांण ।
साथे सो असवार हूआ, इक पहिलडै पयांण ॥
पिंगळ राजा मारवी, पहुचाई हरषेण ।
मनह सकोडी मारवी, सुषवंत सोहागेण ॥
पुंगळ-हुंती मारवी, चाली ढोलै सत्थ ।
चंपावरणो वल्हहो, घणुं सकोमळ हत्थ ॥
पहिलो वासो थळ रह्या, माहे करणुं माग ।
निस भर सूती मारवी, पीधी पैणे नाग ॥
प्रह फाटी सहु जागीया, मारू सूती कांय ।
ढोलो कहै हिव तागरी, मारवणी जगाय ॥

जीवो मारू कोडि युग, तूं कां पडी निसास ।
ढोलै करहो पिलांणीयो, वंजे नरवर वास ॥
धूणि धधूणिवि तागरी, वार बि च्यार सुब्रद् ।
तिण वेला तिण छोकरी, सरळा कीधा सद् ॥
देव ज घणुं विणासीयो, कीयो ज पाप आपार ।
मारू तन विणासीयो, कंत रह्यो निरधार ॥

[इसके आगे मूल का ६०८ नंब्र का दूहा है ।]

त्रिहुं नयणे आंसू झरै, वळि वळि करै विलाप ।
हा हा देवं किसुं कीयो, मारू षाधी साप ॥
षिण रोवै षिण विलवलै, मारू पास बयट्ठ ।
वरधण दीसौ नाह विण, धण विण नाह म दिट्ठ ॥
वळतो ढोलो इम कहै, कळि अषीयात करेह ।
मारवणी पैणे डसी, हुं जव हर साथि बळेह ॥
विळविळीया विलषा हुआ, गया ज पिंगळ पास ।
मारवणी पंइणै डसी, ढोलो साथे जास ॥
पिंगळ राय कहावीयौ, ढोला पाछो आव ।
मारू लहुडी बहिनडी, तोहिं-भणी परणाव ॥
वळतो ढोलो इम कहै, एहवा वचन म भाष ।
मारूसुं तन कळपीयो, ब्रह्मा विसन सबि साष ॥
वन मोडे कठ आंणीयो, सगळ कियो जुहार ।
मारूसुं ढोलो बळै, हुवौ ज हाहाकार ॥
मारवणी ढोलो ग्रहै, ढोलो बैठो माहिं ।
दीवाधरी रै करहलो, इधकी करै अपाहि ॥
करहानै बंत्रीसनै, पहिराया सिणगार ।
नरवर जाए नै कहै, ढोला-तणा जुहार ॥
आरड भीरड करहलो, मिळीया तर मझार ।
ईसर तेथ पधारीया, साथे उमया नारि ॥
उमया बोलै ईसरा, किसो अचंभो एह ।
धण केडै कंतो बळै, आवौ देषां एह ॥
संकरनै गवरी कहै, प्रीतम ली किण पाडि ।
जौ सामी कहीयो करो, तौ मारू जीवाडि ॥

संकर गवरीनु' कहै, आपां फिरां विदेस ।
मूंआ अनंता देषस्थां, कहि केता जीवाडेह ॥
गवरी थळ पाछै छिपी, संकर बहुत विललाय ।
इम जांणे पारबती, आगळि ऊभी आय ॥
देखी दीन दयामणा, दया करै मन मांहि ।
अमृत आंणी छांटीयो, संकर सै हथ साहि ॥
विस विसहर पासै गयो, ततषिण हूई सचेत ।
ढोलो मनमां हरषीयो, कै सा पुर संकेत ॥
ईसर ले उपावीयो, का कीजै अरगाध ।
गवरी इन पुत्रिका, तेइ न दीधो आध ॥
मारू पूछै कंत सुणि, किण कारण चिह ठांण ।
तुझ मरंतां मारवी, मइ कळपीया प्रांण ॥
हिरणां ही फूटै हीया, टोळासुं टळियांह ।
कहि कैडै रहिवौ किसुं, सयणां बीछडीयांह ॥
ढोलो मारु एकठा, हस वैठा वन मांहि ।
तिहां तेडी दीवाधरी, कीधो लाष पसाव ॥
पुंगळ जा दीवाधरी, सहु वातां करि आज ।
धन जीवी प्रीऊ हरषायो, सरीया सगळा काज ॥
पिंगळ राव पधारीयो, कीधो लाख पसाव ।
घरि घरि हूआ वधांमणा, घरि घरि अधिक उछाह ॥
ढोलो चाल्यो करहै चढि, मारवणी संयुत्त ।
ऊमर मारग रोकीयो, ततपिण आइ पहुत्त ॥

[इसके आगे मूल का ६२७ नंबर का दूहा है ।]

ऊमर दीठो करहलो, दीठा मारू ढोल ।
आदर दे मद पावीयो, बोले मीठा बोल ॥

[इसके आगे मूल का ६३८ नंबर का दूहा है और पंक्तियों का क्रम उलटा है ।]

गीत गावंती डूंमणी, षेली नवली घात ।
एकरस्युं ढोलो ऊबरै, कहि समझावै तांत ॥

[इसके आगे मूल के ६३१, ६३३ और ६३२ नंबर के दूहे हैं ।]

कंब चटक्कै करहलो, गयो दुरंत ऊठ ।
मारवणी जे मारीयो, ढोलै झाली मूंठ ॥

ततखिण मारवणी कहै, सांभळ कंत सुजांण ।
आ पांचूको ऊमरो, किम राखि स अपांण ॥
झबकै करहो झेकीयो, कूंट न वोडी मूळ ।
धण ढोलो मारग वहै, ऊमर भागी सूळ ॥
मारू चढती मारियो, बिहुं नयणांचे वांण ।
साथ म हितसुं ऊँमरो, पडीयो तिणयै ठांण ॥
हलो हलो ऊमर कहै, पवंगे पडै पलांण ।
जो झालै तसु लाष धुं करहैनुं केकांण ॥
ऊमर आरहडा षडै, पहुच न सक्कै कोइ ।
उवै कीम पहुचै बप्पडा, करहो पंथी सोय ॥
भाऊ भाट पधारीयो, ढोलै सांम्हो जोय ।
षोडो करहो किम खडो, हसि करि पूछै सोय ॥
मांहरै वांसै ऊँमरो, चढीयो आवै राय ।
तिण कारण ऊतावळा, मारवणी ले जाय ॥
ढोलै भाउनुं छुरी, दीधी वाढै कुंट ।
पंथ विषम सही लंघीया, त्रिहुं चलणांभैऊट ॥
पंथी ऊंमरनुं कहै, म मारिजे तुरंग ।
षोडै करहै लंघीया, जे थळ हुंता अजंग ॥
भाऊ ऊमरनै मिल्यौ, जब जन बोल्या सात ।
ऊंबर तब पाछो वळयो, सांभळ ढोला वात ॥
ढोलो घरे पधारीयो, पूगी सगळी आस ।
मनवंछित सुख भोगवै, मारवणी आवास ॥

[इसके आगे मूल के ६५३, ६५४, ६५५, ६५६, ६५८, ६६१, ६६५, ६७२, ६७३ और ६७४ नंबर के दूहे हैं ।]

इति श्री ढोला-मारूरा दूहा संपूर्णम् ।

संवत् १७७१ वर्षे मति श्रावणमासे शुक्लपक्षे तृतीया-
तिथौ सोमवारे लिषतं आणंदविजए गुंद वच
नगरे । श्रीश्रीशुभं भवतु कल्याणम् ।

(म)

[आनंद-काव्य-महोदधि, मौक्तिक ७, मुं में प्रकाशित । सं० १८०१ आसु सुदि १० वार शुक्र को लिखित । इसमें कुशललाभ की चौपाइयाँ तथा गद्य वार्त्ता भी सम्मिलित है । यहाँ केवल वही दूहे लिए गए हैं जो मूल में या अन्य किसी प्रति में नहीं आए हैं ।]

ढोला-मारवणीरी चौपई वात

मठ माहे तापस वसै, बिचै दीजै जीकार ।
हम तुम ऐसा रंग है, जांणत है करतार ।।
गोहुं पैहला नीपजै, सिर षोतर वर तास ।
पहिलै चोथी मातरा, हमचो है तुम्ह पास ।।

पीउ कारण पीली हुई, लोक जांणै पिंड रोग ।
छांना लांघण म्हे करां, बालम-तणै विजोग ।।
फौज घटा घट दांमनी, धनुष बुंद सिर लेह ।
अेक तोही ज विण साहिबा,(मुज)मारण लागो मेह ।।

धण सूती मेले गयो, कंत गळती राति ।
वळीयै दिन वळीयो नहीं, वुठै तो वरसात ।।
केता भीड सभीड करि, कडि पतळी म देषि ।
काठी लाल कंबांण ज्युं, वळती करो विसेष ।।

सब ही लोवडआळीयां, न जांणूँ धण काय ।
नीले चरणे मारवी, पदम जडावै पाय ।
मारू लंक नै अगली, पांन ज पतल बाय ।
नाह न भीडै डरपतो, मुंध कड़के जाय ।।

करहै जे थळ लंघीया, दोहरा नै दुरंग ।
तु' उंमर-सुंमरनै कहै, म मारजे तुरंग ।।

सोरठा

ढोला मारू वात, सांभळतां सुख उपजै ।
कैहजो सखरा पात, भांत-भांतसुं वर्णवै ॥
चतूराइ कवि चोज, जे जिणमै जैसी होयै ।
मरदां देज्यो मोज, लाहो धन जोबन लीयौ ॥

इति श्री ढोला-मारवणीरी चौपई वात संपूर्णः ।

सकल-पंडित-शिरोमणि पंडित श्री ५ श्री दर्शनविजय-गणि-शिष्यः पं० दीपविजयगणि-लिखितं संवत् १८०१ वर्षे आसु सुदि १० वार शुक्रे लिपिकृतं श्री कवला-ग्रामे । सिंघल राज श्री कल्याणसिंघजीराज्ये चतुर्मासिक कृता । श्री शुभं भवतुः श्री ॥

शब्द-कोष

शब्द-कोष

अ

अंखि = आँख ५१

अंखी = आँख ४७४

अंगणइ = आँगन में ४३, ५४०

अंगणि = आँगन में २००

अंगळ = अंगुल, नाप विशेष ४३३

अंगारेह = अंगारे में-०से २०६

अंगुलाँ = अंगुलों (का), अंगुल एक नाप है ४६१

अंतर-०रि-०रे = अंदर, भीतर, हृदय में २३, २१८, २३६ दूरी, फासला, ६१ । बीच में ४९४

अंधारी=अँधेरी ६२२

अंब-०बा = आम ८, ४७१, ४७२

अँवळउ = व्यथित, टेढ़ा ३५१ ।

अइ = ये, ऐसे ३, ४३०

अइहइ = ऐसे ४६६

अउ (पुं) = यह ६, १०

अउझकइ = अचानक ८६

अउथि=वहाँ २२४

अउळगउँ = यात्रा या प्रवास करूँ २२४

अउळगण = यात्रा या प्रवास करने को २२५

अकयथ्थ = अकारथ, व्यर्थ १६६

अक = आक २८३

अगलूँणी = पहिलेवाली, पूर्व ५०१

अगास-०सि = आकाश, ०में २०१, २६०, ५२२

अग्गणि = आँगन में ३९९

अग्गर = आगार, महल ३१४

अग्गाळि = अकाल में, असमय में ३६१

अग्गि = अग्नि १८१, ५१२

अचंती = अचिंत्य, आकस्मिक ६२७

अच्छ = स्वच्छ, अच्छा, सुंदर ४५२

अच्छियउ=स्वच्छ, अच्छा ४७१

अछइ = है ११४, ५७२

अजइ = अभी, अभी तक १५३,३२२

अजाँण=बिना जाने हुए, छिपे हुए १८५ । अनजान,अज्ञान, भोला भाला ३३२, ४३६

अजे = अभी, अभी तक, आज तक ११, ४१०

अज्ज = आज १०७, २१६, ३१२ ३६३, ५००, ५२०

अणंद = आनंद १०१

अण = अन, अ (उपसर्ग) २०, २३, ४४६, ५३४

अण = इस ४७८

अणदिट्ठा = नहीं देखे हुए २०, २३

अणपीयइ = नहीं पीए हुए, पिए बिना ५३४

अणहुंती = अनहोनी, असम्भव ४४६

अणावाँ = मँगवाते हैं ६३५
अणुराव = अनुरव, शब्द का अनुकरण ५२
अदिठा-०दीठा = नहीं देखे हुए १, ५२३
अध्ध = अर्ध, आधा ५७७
अन = अन्न २६४, ६२४
अनइ = और ४५६
अपछर = अप्सरा १६७, ५६५
अपस = कुत्सित या दीन पशु ३३६
अपूटा = वापिस, पीछे ४०४
अप्पाणं = आत्मानं, अपने आप को २३३
अभितरेण=अभ्यंतरेण, अंदर से, बीच में से ५७५
अभोखण = आभूषण, गहना ४७१, ४७२
अम्भ = अभ्र, आकाश ४८७
अमल = अफीम, जलपान व विश्राम ६२८
अमले = अधिकार अमल १२
अम्हाँ = हमारे २०
अम्हीणइ = हमारे ४०१
अम्हीणी = हमारी १३५, ५५६
अर = और १६८
अलत्ता = अलक्तक, महावर ८७
अलापी = बजाई ५६९
अळगा = दूर, अलग ४२०, ६२८
अळग्ग = दूर ३०७
अवरसणउ = अवर्षा, पानी न बरसना ६६०
अवराँह = औरों को, अब ८
अवसि = अवश्य, परवशता के कारण २००
अवाड़ू = विपरीत ७१
अविंध = अविद्ध बिना बिंधा हुआ २३०
असन्न = आसीन, बैठा हुआ, ३३६ आसन्न, पास में ४४१
असाधि = असाध्य २६८
अस्स = अश्व ५६६
असप्पति = अश्वपति, राजा ५६६
अहंचो = अचंभा (क ६३४)
अहर = अधर ८७, ४७०, ४७२, ५१६, ५१७, ५१८, ५६६, ५७२
अहलउ=व्यर्थ, योंही ६१८
अहिनाँण = अभिज्ञान, चिह्न ५१९

आ

आँख्याँ-०खियाँ = आँखें ११६, ५१६, ५३१
आँगळड़ी = अंगुली १४४
आँण = लाकर ५१५
आँणि-०णै = ला ३४ लाकर ३३६, ३४४, ५८८
आँणी=लाई गई ५४४
आँण्या=लाया ५७३
आँबउ = आम ११७
आँमली = विमल ३३०
आँसुआँ = आँसुओं से १३७

आ = यह (स्त्री०) ६, ८, १०, १७८, ४४०

आइ = आकर १७, ११२, ११६, १२१, १२३, १२५, १३२, ३७१, ४००, ४२७, ४४७
५०४, ५०६, ५५८, ६४३ । आता है ५८ । आ ११५, १६७

आइस=आदेश, आज्ञा ९

आई=आ गई २१५, ५६५, ६३६ । आकर ५६१

आए = आना १५५ । आकर १८५

आएस्याँ = आवैंगे ४९०

आके=आक में ६६१

आखइ=कहता है १६, २०, २४, १११, ४४० कहे १११

आखय = कहता है ८०

आखर = अक्षर (आंतरिक प्रेरणा) ६७

आखे=कहना १२४, ३१४ । वर्णन करो ४६७

आगम=पहले से, आगे से ५१६

आगली = आगेवाली, बढ़कर २३७

आगळि = आगे १४२, १८३, २४०

आघी = दूर, अलग (थ ६०)

आघेरि=दूर ६३

आछउ = अच्छा ३०६

आजूणउँ = आजका ५३०, ५३१

आजूणी = आज की ५६७

आजे = आज ही ५५६

आठम = आठवाँ ५८६

आडउ=आड़ा, बीच में ११३

आडवळा-ळे = पहाड़ विशेष राजपूताने का अरावली पहाड़ ४२४, ४३६, ६४०

आडा = बीच में ६१, ६९, ७०, ७२, १६४, २१२, २१३, ४१६

आणंदियउ = आनंदित हुआ ५५०

आणउँ, आणूँ, = लाऊँ २२६, २३०

आणाँ=लावें २३२

आणावेसि = मँगावेंगे २३३

आणिसि = लावेगा २२८

आणेसूँ = लाऊँगा ६३५

आण्यउ=लाया ३२६

आतम=आत्मा ११४

आथमणउ = अस्त होने की दिशा ५४६

आदित्ता=सूर्य ४६४

आदिरस=आदर्श, शीशा ५७९

आदीता = आदित्य, सूर्य ४६३

आधोफरइ = आकाश और पृथ्वी के बीच में, बहुत ऊँचे पर, ढालू जमीन पर, अधित्यका पर, छज्जे पर ४३६

आपणाँ = पकड़ें, पहुँचें ३८४

आपण = स्वयं, अपने आप १५२, ३०७, ६६२

आपणइ=अपने के ५१, अपने ५२५

आपणउ = अपना ७५

आपणा = अपने ६२३

आपणी = अपनी ४१

आपाँ=अपन, हम ६२४

आभइ=आकाश में ४३, ४४

आभय=आकाश में ४६
आमण-दूमणउ = उदास, उद्विग्न २१८, २३७
आय = आकर १२४ । आ १३४
आया = आए १०६; ५२८, ६४४
आरखइ=अवस्था, दशा १४
आरति=लालसा २०८
आळिंग=अलग, प्रवास में ५२२
आळिंगण=आलिंगन ५४४
आवंतइ = आगामी ३९५
आवि = आ, आओ १७७, २६८, ४१८ । आकर २०७, ५५०
आविज्यउ = आना ३६८
आवियउ = आया ११, ३०, ३२, १५१, २५७, ४०१, ४०६, ४२२, ४४७, ५०१, ५२६, ५७३, ५७६, ६५१
आविया = आए, आ गए १०४, १७९, १६५, १६६, ५२९, ५३२, ५३३, ५४१
आविस्यइ = आवेगा २२७, ५१६
आविसि=आता है ५१७
आविस्याँ=आवेंगे १०८
आवी=आई २७४, ३०३, ३१६, ५९२ । आकर ६०
आवेस=आना, आवेगा १४४ ।
आव्यउ = आया हुआ ४४४, आया, ६१६
आसंगे=अंगीकार करना ३१४
आसालूध=आशालुब्ध ५५२
आस्याँ=आवेंगे ३४७
आही=यही २७०, २७५, ३८२
आहुड़इ=जुट रहे हों ५६६

इ

इँणि=इस ३७७
इ=ही २५३
इण=इस २४६, ४३०, ४५३, ४८८, ५०८, ६२३
इणहि=इसी ६२०
इणि=इसमें ५१, २५३ । इस ७६, ७६, १८३, ४२३, ६१४, ६४६ । इस (के) ६१४
इंद्राँ=इंद्र का ५८०
उणिहार=अनुहार, समान ५८०, ६१३
इवड़उ = ऐसा २१८
इसइ = ऐसे १४

ई

ई=यह १९३ । भी-ही ७१, २००, ३६६
ईडर = देश विशेष २२४, २२५

उ

उवाँ = उन (से) ७४
उक्कंबी=उत्कंधा, गरदन ऊपर उठाए हुए १६
उगहंताँह=उदय होते हुए ४९८
उघट=उछल २३१
उचाट=उद्विग्नता ६१६
उचळ-चित्ता=चंचल चित्तवाले ४८७
उजळी=उज्ज्वल, गौरवर्ण ४६४
उठ्यउ=उठा ६३४
उडंदउ=उड़ता हुआ ३८०
उडियर=उड़कर ४०६

उण=उस ४४, १४१, ४५०, ६४५
उणि=उस १०८, ६०५
उणिहि, उडहिज=उसी ६५०
उणिहार=अनुहार, समान ५८०, ६१३
उतांमळउ=जल्दी से ६३४
उतांमळा=तेजी से ३३८, ६४२
उतार=उतारा ५७६, ५८० । उतार-कर ६२३
उत्तर=उत्तर, उत्तरी पवन २८६, २९६, ३०१
उत्तरइ=उतरता है, चलता है १६८, २९६ । उतरकर २३०
उत्तरउ=उतरा, उतर आया २८६, २८७, २८९-२९५
उत्तिम=उत्तम १०३, १८७
उथापियो=हटा दिया (ज ४४८)
उदधियाँ=समुद्रों ४१५
उदियइ=उदय होने पर (भाग्य) ४८८
उपड़इ=उमड़ता है २९९
उपराठउ=पीठ किए हुए, विमुख ३५०, ३६३
उपराठियाँ=पीठ की ओर किए हुए ६४
उपन्नियाँ=उत्पन्न हुए हुए, उत्पन्न हुई हुई ४५७, ४८४; ६६६, ६६७
उपाड़ियउ = उठाया, उच्चाट किया ११८, ३२४
उपाड़ी=उठाई
उभाँखरा=भ्रमणशील ६६२
उमाहउ=उमंग, उल्लास ५१८
उमाहियउ=उमंग-युक्त हुआ ३०२
उरळउ=हलका ३८६
उलहियउ=उमड़ा ५३८
उलाथियउ=उतरा ५३१
उलाळनो=उलटा करना, नाश करना २०६
उल्हवण=उल्लसित करनेवाला १६१
उल्हास=उल्लास ४०७
उवाँ=वहाँ ३६२
उवा=वह २७१, ४०८ । उस ४११
उवै=वह ५१ । वे ५२
उसारिस्याँ=निकालेंगे, खींचेंगे ५२५
उहाँ=वहाँ २, १३

ऊ

ऊँचइरी=ऊँची २८, २९
ऊँट-कटाळउ= (ए० व०)=ऊँट-कटारा नामक घास ३०९, ४२७
ऊँडा = गहरे ५२३, ५२४
ऊँमर, ऊँमर-सूँमरउ = ऊमर सूमरा, एक राजा का नाम ६२६, ६२९, ६३०, ६३५, ६३६, ६३८-६४३, ६४५-६४७, ६४९, ६५०
ऊ = वह ७४, ३९३
ऊकटियइ = निकलता है २९७
ऊकटिया = सुखा दिया २९५
ऊकरड़ी = घूरा ३३६
ऊगंतइ = उगते, उगते हुए १९४, ६४६
ऊगइ = उग, उदय हो-०होना १२९, १३० । उगने पर ५४९
ऊगउ = उगा, उदय हुआ १५८
ऊगट = उबटन ५३५

ऊगरइ = गिरता है, उगलता है २७२

ऊगसी = उगेगा, उदय होगा ३६५

ऊगाळेह = जुगाली करता है ६३१

ऊचाळउ = प्रयाण या कूच, देश त्यागकर परदेश-गमन २, ६६०

ऊची = ऊँची १६

ऊचेड़ंती = उखेलती हुई १६१, ५२१

ऊजासड़उ = उजाड़, जंगल ६३२

ऊठ = उठ ४१९

ऊडइ = उड़ता है ३६०

ऊडावेसि = उड़ावेगा १५७

ऊडी = उड़ी ६७

ऊतरइ = उतरता है ३५८

ऊतावळि = जल्दी, शीघ्रता ३४०

ऊनमि-०निमि = उमड़कर ४१ २५७

ऊनम्यउ = उमड़ा २७१, २७२

ऊनयउ = उमड़ा,-०हुआ २४३

ऊन्हाळउ = ग्रीष्म ऋतु २४२, २७६, २७७

ऊपड़िया = उमड़े, चले २९६

ऊपन्नउ = उत्पन्न हुआ २५

ऊपरइ = ऊपर ५२, ५३०

ऊभउ = खड़ा हुआ ४४७

ऊभी = खड़ी हुई २३७, ३५५, ३७३, ४४७

ऊमग्यउ = उमंग युक्त हुआ ५६४

ऊमटइ = उमड़ता है १४८

उमट्यउ = उमड़ा १५

ऊमह्यउ = उमंग-युक्त हुआ २८१, ३२५, ४४२

ऊमह्या = उमंग-युक्त हुए उमड़े ३१७

ऊमा = ऊमादे, मारवणी की माता का नाम ७९, ८०

ऊमाहियउ = उमँगा हुआ, उमंग-युक्त हुआ ४२४

ऊलहइ=उमड़ता है ३००

ऊलाळीजइ=उड़ा दिया जाय, उड़ाइए २१२

ऊलंबे=अवलंबित करके-०किये हुए १५

ऊसनउ=खिन्न हुआ ४९७

ऊसारंता=निकालते हुए, ऊपर खींचते हुए ५२४

ए

ए=यह १६, १८७, २०८, ३१७, ३८३, ४४५ । हे २३ ये ५२, ७३

एकंत=एकांत (में) ५४२

एकइ=एक ने ४४८

एकण=एक (ने) ४५८, ६२८

एकणि=एक (में) ६०, ६५३ । एक (से) ४८८ । एक ४९४

एकलड़ी=अकेली २६३

एकलाँ=अकेलों को २९५

एकोतरे=एक सौ एक २३०

एण = इस ५२६

एता = इतने ४५५

एथि = यहाँ २२८

एम = यों, इस प्रकार २०, ७२ १७३, ४४८, ६२४

एराकी=इराक देश का प्रख्यात घोड़ा ४५८, ६४१
एवड़=भेड़ों का झुंड ४३६
एवाळ=गड़रिया ४३५, ४४०
एवाळाँह=गडरियों (को) ६५८
एह=यह, इसमें, इसके २४, १००, ३०६, ३११, ४४१, ६३७
एहवा=ऐसे ३३६
एहवी=ऐसी ४८३
एही=ऐसी, जैसी ४५६, ४६०, ४६५, ४७०, ४७३, ६२६, ६२७

ओ

ओ=यह ९
ओखंभिया=छोड़े ६४१
ओछइ=ओछे, छिलछिले, कम १९२
ओछउ=ओछा, कम १६२
ओछाँ=ओछे, क्षुद्रहृदय ३३८
ओढण=ओढ़ने ६६२
ओलइ=ओट में, आड़ में ५६
ओले=ओट में २८७
ओळंबा=उपालंभ, उलहने २७१
ओळखिया=पहचाना ६१७
ओलग=अलग, दूर ११४
ओळग्या=चले, प्रवास किया १८५
ओहि = वह, होता है १६२

क

कंचवउ, कंचुवौ, कंचूकी, कंचूवा = कंचुकी, कंचुली ४६, ३५७, ५५१, ५५२, ५८५
कंटाळउ = ऊँट-कटारा, एक घास विशेष ४२८, ६६१
कंठळि=कंठुला, कंठा (एक आभरण, कंठुले के आकार के मेघ ४३, २६७, ५२१, ५२२,
कंठा=कंठ से, गले में २१४, ५१३
कंठाग्रहण=आलिंगन २१४
कँणयर=कनेर, कर्णिकार १३५
कंध=गर्दन २०४
कंधि=कंधे पर ६५८
कंब=छड़ी, डाली १३५, ४७३, ६३४
कंबड़ी=छड़ी ४६२, ४६४
कंबळा=कम्मल ६६२
कंबाइयउ=छड़ी से मारा ५२२
कँमळाणी=कुम्हलाई १२६, १३०
कँवारियाँ=कुमारियाँ, अविवाहित कन्याएँ २८९
क=या, अथवा १४०, १४१, ५४२, ६६०। पादपूरक अव्यय २८१, ४०१, ४६५, ४८३, ५६१, ५६५, ५६६
कइ=की, के, कर, करके ७१, १४५, १८६, २०१, २०२, २७३, ३३३, ३७१, ३७२, ४१७, ४४१, ५२३। या, अथवा, या तो १४१, २९४, ३६१, ४७७, ६६०। क्या, या २००, २१७, ३९१
कइकाण = घोड़े ६२७
कइराँ=करीलों का ४३०, ४३१
कई=क्या, या १४६
कउ=का ३६, ८०, २३८, २६१, ३२३, ३३३, ५३१। कौन

१७७, २६४, । कोई २८, ९६, ३३२, ३४८
कचोळउ=कटोरा ६५६
कछ्छ=कच्छ देश २२६
कजळ=काजल ५८९
कज्ज=लिये, कार्य १०७, २१६, ३६३
कज्जळ=कदली ५३८
कज्जा=कार्य ५२८
कजि=कार्य ६१५
कटाइाँ=कटारी, छुरी ६४५।
कटवाई ६४९
कटाविसूँ=कटाऊँगा ३०
कटोर=कटोरा ३७२
कड़=कमर, कटि ३५५
कड़ि=कली ४७६
कड़ियाँ=कड़ी पर (ऊँट बाँधने की) ३७५
कणमणइ=कुनमुनाती है, हिलती-डोलती है ६०५
कणयर=कनेर, कर्णिकार ४७३
कथ्थ=कह ४०१, ४११ । कथा, बात ६७, ६१४, ६३०
कद=कब ४५, ४६
कदलीह=केला १३
कदी=कब, कभी ४४, १०६
कदे=कब, कभी १६१, ४१६, ६६७
कन्न=कान ४३३
कन्हइ=पास, आगे ६५, १००, १०५, ३१७, ६२६
कन्हाँ=पास १०६
कन्हे=पास १०६
कप्पड़=वस्त्र, कपड़े १३६, २४८ ४६३
कबाँड़=कमान, धनुष ३५५
कमदणी=कुमुदिनी १२६
कमेड़ि=पंडुखी, पक्षी विशेष २६७
कयर=कैर, करील ६६१
करंकउ=(ऊँट के बोलने का) शब्द ३४६
करंकड़इ=अस्थि पंजर पर १५७
करकँवळाँ=कर-कमलों (से) ५७३
करळ = कराग्र-परिमाण, मुष्टिग्राह्य ४५६
करळव = कलरव ५४, ५५
करवत=आरी ५५
करसण = कर्षण १२१ । कृषि २६४
करह=ऊँट २२८, ३४६, ३८७, ४३५ ५२२; ५३५, ६३५, ६३७, ६४४ । करता है ३२३ । हाथों से ६४६
करहइ=ऊँट ने, ऊँट पर ३१७, ३४५, ४२६, ६२४, ६२५, ६३४, ६४८
करहलउ = ऊँट २५६, ३०६, ३०९, ३१०, ३११, ३१२, ३२१, ३४३, ४२५, ४३१, ६३१, ६३३, ६३४, ६३५, ६३६, ६३८, ६४७,
करहला = ऊँट ३२०, ४६१, ६२७
करहा = ऊँट ३०७, ३१४, ३१६, ३२२, ४२६, ४२८, ४२६, ४३०, ४३२, ४३३, ४३४, ४४४, ४४५, ४६३, ४६६, ४९९

करही = ऊँटनी ३२३
करौं = करें ४४५
करौंह = हाथों का ४१५ । करें ६२८
कराड़िआ = लंबी गर्दनवाला, बलबालेनेवाला ४३३
करायइ = किए हुए (?) ५५४
करि = कर, करो, करके, करता है ३४, ६८, १५८, १७४, २५४, २७८, ३१७, ४३०, ४८६, ४६७, ५३६, ५५१, ५७४, ६१६ हाथ में ३४६, ४७३ । का ६२७ । से ३३५, ५६८
करिजउ = करियो, करना १७६
करिया = करना १८३
करिस्यइ = करेगा ६३६
करी = करके ३३७
करीजइ = करना चाहिए ६२४
करीरां = करीलों के झाड़ ४३२
करूर = दुष्ट, क्रूर ६४१
करे = करके, करे ८४, १०६, ३५७, ४०५
करेस = करे, करेगा २६४, ४४३
करेसि = करूँ ५१३
करेह = करे, करके, करना, करता है, करो २७६, ३१७, ४४४, ५९०, ६५०
करेहि=करता है ३८४
कळहळिया=शब्द किया ६२७
कळाप=विलाप ३२३
कळाइयाँ=विलाप किया ६११
कळि=कलियुग ६७४
कळिअळ=कलरव ५८, ५६
कळिजइ=पहचानता है २३४
कळियळ=कलरव, करुण रव २८३
कळियेह=कलियों से ५९१
कळी=कली १२०, दाने, बीज ४८०
कळेजउ=कलेजा ७५
कवड़ी=कौड़ी ३७०
कवण=कौन १९५, ३१२, ५७१, ५७५, ५७७
कस=बंधन, ४६
कसणा=कसने, बंधन, जीन को बाँधने की रस्सियाँ ३४६
कसबी=कसबी, सजी हुई ३४३
कह=कहता है ६७
कहण=कहने को ३८१
कहबा भणा=कहने को ७६
कहय=कहता है ३६७
कहूँ=कहें ६७०
कहिए=कहने से २४२
कहिजइ=कहा जाता है ४०३, ६२६
कहिज्यउ=कहियो, कहना १३६, ६४५
कहियउ=कहा हुआ, कहा है १००, २४१, ३२३, ४४८
कहिया=कहना ६४, ११०, ११२ । कहे, कहा ४८६
कहिलाइ=कहलाया जाता है ६६
कहिस्याँ=कहेंगे ४४५
कही=किसी (ने) ३४४
कहीजइ=कहा जाय ३४०

कह्याँ=कहने से ३५
काँइ=क्या, क्यों, कैसे १६, १०७, १२२, १७७, २१७, ३३४, ३८९, ३६०, ४१४, ४१५, ४१६, ६०३। कोई, कुछ ५१। या ६२७
काँब=छड़ी ४१०
काँबड़ी=छड़ी ४१४
काँबे=छड़ी से ६३३
काँमण=कामिनी ४८५
काँमिण=कामिनी २२२, २३५, २९७, ३२२, ६५२
काँहीं=कहीं ३५१। किसी ६१५
का=या ३४, १०७, २३५, २७८, २६४, ५६७, ६२०, ६२७। का, के; की १४३, १५६, १७२, १८५, २६२, ६६५। कोई २१७। क्या २३६
काइ=क्यों ११८, ३८९। कोई २७७, ३२१, ४०३, ४५१। या, या तो ३४। किसी ६१५
काइक=कोई एक ३५
कागळ=कागज १४०, १४१
काछी=कच्छ देश का (ऊँट) २२८, ४९६, ४६६
काजळिया=कजरी त्यौहार १५०
काझा=फँसे हुए ४१५
काठी=कसकर, मजबूती से (?) ४१६
काढिस्यइ=निकालेगा ५२४
कादिम=कादा, कीचड़ २५६
काने=कानों में ४८०
काप=काट, कटाव १८०
कामड़उ=काम ६३३
कामणगारियाँ=जादू करनेवाली २४८
काय=या तो २२६
कारणइ, ०णि=कारण से, के वास्ते, लिए ६१, १६०, ३४४, ४३६, ४६७, ५२३, ६५६
कालर=कीचड़ ४६५
काल्ह=कल २१६, ४३४
काळउ=काला ३७१
काळा=काला ३६३, ६०८
काळिया=काला (ऊँट) ४६६, ४६६
काळी=काले रंग की, श्याम, काली (ऊँटनी) ३१, ४३, २६७, २७१, ४६१, ५२१
काळेजा=कलेजा १८०
कासी=खूब (?) ४१६
कासूँ=कैसे, किस कारण, क्या १७८, ४४५
काहळियाँह=कातर २८७
किंगाइ=बोलता है (थ ३८८)
किँगार=करार (जलाशय का) ४६
किउँ=क्यों, कैसे, क्योंकर २०, ३२, ७१, ४५०, ५५६, ६२८
कि=क्या ४३६
किअइ=किए हुए, करते हुए १२
किण=किस ९२, ३६५, ६४४
किणसूँ=किसी से १५९
किणहिं=किसी को ६३
किणहि=किसी ने २२०
किणहीं=किसी २। कौन से ५७
किणि=किस (के) ३१२

किनाँ=क्या, या ४०१
किथइ=करके ४३७। किया ६४३
कियउ=किया १, ५४, ५५, ५८, ५६ ३४३, ४४७, ५८१
किया, ० याह=किया, किए हुए १३८ १५४, १८४, २३५, ३४५, ३३६, ५१६, ५६८, ६०७, ६७२
किर=मानो ६४८
किरणाँह=किरणें ४९६
किव=किस ५१८
किसइ=कौन से १३८, १४०
किसउ=कौन सा २१८, २२२, २२३, २५२
किसा=कैसे, कौन से १७७, ४८८
किह=कहाँ ८६
किहि=किसी ३५०
किहीं=कुछ ४०१। किन्हीं को ६२५
कीजइ=किया जाय, कीजिए ६
कीध=किया ६, १८५, १८७, ५५४
कीधउ=किया ३८
कीधा=का ५२, ५६४
कीन्हीं=की १६७
कीयाह=कर दिए ५३०
कीयो=किया ३५७
कुँअरी=कुमारी ६०
कुँअळ=कमल ४७३
कुंझड़िया=कुंज पक्षी, कुरझ ५८
कुँझड़ियाँह=कुरझों का २४५
कुंझड़ी=कुरझ ६७
कुंझाँ=हे कुरझों ६२
कुण=कौन १६५
कुँमळाइ=कुम्हला जाती है ४७१
कुँमलाणी=कुम्हलाई ७७, १६३
कुँवेण=कुए में ६५०
कु=पादपूरक अव्यय ५६५
कुआरउ=अविवाहित, कुमार, कुँआरा ३२२
कुइला=कोयला ११२
कुड़ियाँ=कटने पर १४६
कुण=कौन ८६, २३७, २८४
कुमकुमइं=गुलाबजल से २४०
कुरंगउ=हरिण ३६४
कुरझड़ियाँह=पक्षी विशेष, कुंझ, कौंच २८३
कुरझाँ=कुरझें, हे कुरझा ६३, ६४
कुरझी=कुरझ पक्षी २०२
कुरळइ=कलरव करती है ३८६
कुरळाइ=कलरव करती है २६१
कुरळाइयाँ=कलरव किया ५६
कुरळिया=कलरव किया ५३
कुरळी=बोली, कलरव किया ५१, ५७
कुळ सुद्ध=शुद्ध कुलवाली १७४
कुहकड़ा=पुकारने के शब्द ६५५
कुहड़ि=कुहड़ (कुँए की) ३६७
कुहाड़उ=कुल्हाड़ा ६५८
कूं=को ६७, ५३६
कूँआरि=कुमारी ६५६
कूँकूँ=कुंकुम ४६६, ६३८, ६५७
कूँझ, कूँझाँ, कूँझड़ियाँ, कूँझड़ियाँह, कूँझड़ी=कुंज पक्षी ५४, ५५, ५६, ५७, ५६, ६५, १६८, ४५७

कूँट=जानवर के पैर का बंधन ६३७
कूँटियउ=बाँध दिया ६२६
कूँपळ=कोंपल ४३१
कूँपळै=कौंपला, डिबिया की तरह एक पात्र ५६२
कूकड़=मुर्गा ५८५
कूट=६४४, ६४५
कूट्यइ=बँधा हुआ ६४८
कूटि=६४८
कूटियउ=बँधा हुआ ६४७
कूड़इ=झूठे ही ३२०, ३३५
कूण=कौन ३३
कें=कौन १४८। के १६६। कुछ, कई, किन्हीं को ६१५, ६२५
केक=कुछ ३३०
केकाण=घोड़ा २६७, ३०९, ३७५
केकाँड़ाँ=घोड़ों ने ३२४
केण=किस कारण ५१८, ५७३। किसी ने ६३५
केता=कितने १४८, ६७०
केती=कितनी ७०, ४९२, ६४१
केती हेक=कितनी एक ६४६
केथि=कहाँ ४२६
केरइ=के ६५६
केरा=का, के ५८, ३३८, ४४५, ४४
केरी=की ३६७, ३८३, ३९६, ४००
केरे=के, की ४०३, ५२८ ५४५, ५९२
केळा, ०ळि=केले का पेड़ ४७६, ५६३। केलि, क्रीड़ा ५५५, ५६२
केळि-ग्रभ=कदली-गर्भ, केले के अंदर का भाग ४५४
केळिनि=कदली १३२
केवड़ो=केवड़ा ७६
केहइ=कैसे ६३२
केही=क्या, कैसी, कौन सी ५२१, ६१६
केहे=कौन से ५४६
कै=के ५८२, ५८३
को=का ३५। कौन, कोई ८२, २४७, २८१, ३४८, ६१४
कोइ=कोई ६६, १११, २१३, २४६, २६२, ३८६, ४१२, ४६७, ५१५
कोइक=कोई एक ६७, ३५६
कोड़=करोड़ों, कोटि ४६, २३५
कोडी=प्रसन्न ४१६
कोय=कोई ४४६
कोहरइ=कुआँ में, ५२३
कोहरे=कुएँ में ५२४
कौ=का ५८३
क्यउँ=क्यों, कैसे, क्योंकर २५४, २५९, २६१, ४८७
क्यांही=कुछ भी ३८१
क्या=कैसे ५२०
क्यूँ=क्यों, कैसे ६१८
क्रम=चल ४४०
क्रुंझाहि = कुरझ के २०५
क्रुंझि, क्रुंझी =कुरझ पक्षी ६०, २०४

ख

खंच=खींचकर, छककर, तृप्त होकर ४२६

खंचियां=खींच लिया, रोक लिया ४६६

खंजर=खंजन, पक्षी विशेष १३, ४५७ ४५८, ६६६

खंडियउ=खंडित किया ३६५

खंडी=खंडित किया ३६५

खंति=अभिलाषा २३८

खग=खड्ग २५५

खड़ंति=हाँक रहा है ४२३

खड़इ=चलाता है ५१६, ६४२

खड़हड़=धड़ाम से २३६

खड़हड़िया=झटके ३८०

खड़ाँ=हाँकें, चल दें ६२४

खड़ाह=चलें ६२८

खड़ि=चलाकर ४९०

खड़िस्याँ=हाँक देंगे (सवारी को), चल देंगे २७८

खध्ध=खाया ३८१

खमणी=क्षमाशीला ४५२, ४५६

खयँग=तलवार ६४०

खरउ=पूरा पूरा, निश्चय ही ३०२

खळकइ=शब्द करता हुआ बहता है २६५

खवास=नाई, राजमहल का एक भृत्य (जो प्रायः नाई जाति का होता है) ८०

खाँण=खानेवाला ३०६

खाअउ=खाओ, खाते हो ११७

खाइ=खाता है १४, ८२, २०१, २१९, २५४, ३७१, ३९३, ४२७, ५८८

खाहि=खाता है १६० । सह रहा है ४३६

खिँवी=चमकी ५४२

खिजमति=सेवा ५३५

खिरा=गिरे २६४

खिल्लोखिल्ल = गड्डमड्ड (सिल गए) ५३

खिवंताँ=चमकते हुए १५०

खिवइ = चमकती है १६१, २६०, ५२१

खिवियाँ = चमकीं १८९, १९०

खिवी = चमकी ८६

खिस = खिसकर ३४६

खिसइ = क्षीण होता है, उतरता है १७७

खिस्या = शिथिल हो गए ४४२

खीझ = खीझकर, झुँझलाकर १४६

खील्यौरी = गड़रिया ४३८

खुणसउ = खुनस ५४६

खुरसाँण = तलवार ३८०

खुरसाणी = खुरासानी ६४०

खूँटइ = खूँटे पर ३७४

खूदइ = खोदता है २३७

खेत्रि = खेत १४६

खेलाड़इ = खेलाता है ३३४

खेह = खेह, धूल ३६०

खोजे = खोजता है, ढूँढता है ३६१

खोटइ=खोटे ६२९

खोटाँ = भाग्यहीन, अभागे २३६

खोड़उ = लँगड़ा ३१७, ३१८, ३१९, ३२८, ३३३, ३३५

खोड़ी = धीमी ६०९

खोरड़ी = वृद्धा ४४३

ग

गइ = चली गई, बीत गई ४४३, ४९६

गइय = गई ३६३

गउख = गोखा, गवाक्ष २८

गउखे = झरोखे में २४१, ३६२, ३७३

गजि = गरजकर ५०

गड़बड़यउ = उन्मत्त हो गया है (थ ११५)

गड्डिया = गड़ गए ५५३

गमति = बिताता है ५६८

गमाया = गँवाए, बिताए १६५

गय = गति, चाल ४१०, ४५८, ४६०, ४७४। गज २३१, ५६५। गया ५७७

गयाँह = जाने से १६२। गए हुए १५२

गरथ = द्रव्य १६६

गरभ = भीतरी भाग ४७६

गळंती = व्यतीत होती हुई ३८०

गळाँह = गले से ५५२

गळि गयाँ = गल गई १४४

गळियाँह = गलने से (तपस्या करते हुए) ४७७ गलियों में १८६

गळियाह = गल गए ५६०

गळिहार = गले का हार १७६

गह = गृह, घर ४८६

गहक्किया = उल्लसित हुए ३६

गहगहइ = प्रसन्न होता है २५१

गहियं = ग्रहण किया हुआ ५७५

गहिलउ = पागल ५८६

गहिलाइ = बह जावे ६६

गाँमड़इ = गाँवड़े में ४२९

गाडर = भेड़ ६६२

गादह = गधा ३३३, ३३५

गाभ = गर्भ २८२

गार-ारि = कीचड़ २६९, २७०

गाळि = त्याग १६९

गाहा = गाथा, एक छंद का नाम ५६७, ५६८

गिँभार = गँवार ६३३

गिणंत = गिनता है २०८

गिरह = पर्वत का ४७

गिलंतइ = ग्रास करते हुए ४६६

गोरी = गौरवर्ण ४५२

गुंजाहळ = गुंजाफल ५७२, ५७४

गुंजि रहे = गूँज उठे ५३

गुज्जर = गुजरात देश २३२

गुण = सद्गुण १६४, ३७४, ४८७ बात २८। डोरी, रस्सी १५५। प्रत्यंचा २४६। गुणोक्ति ५६७। कारण से ५६६। बल, बूता ६४४

गुणिय = गुणी ४०

गुणे = गुणों में ३७३, ४६८

गुणेह = गुण से ४८२

गुणेहि = गुण से, बूते से ४९१

गुप्फागुध्ध = दृढ़ आलिंगन पूर्वक ५८३

गुहिर = गहरा, गहन १८
गुहिरइ = गंभीर १८८
गूँथूँ=गूँथती हूँ ३६६
गूढा = गूढ़ार्थ ५६७
गोठ = गोष्ठी ५५९
गोठणी = साथिन ४३८
गोरंगियाँ=गौर अंगवाली ४५७, ६६६
गोरड़ी=गौरी, सुंदरी स्त्री २२३, २८० २८२
गोरियाँ = सुंदरियाँ ६६५, ६७१
ग्या = गए ६२६
ग्रह = पकड़कर ५४४
ग्रहवास = घर में निवास करना ४०६
ग्रहि = पकड़कर ३४६

घ

घटा=घनघटा २५५। घाटियाँ (पर्वत की) ३८१
घट्ट=शरीर (में), शरीर २६०, ६०२। घाटी ४२४
घड़=परत पर परत, घटा २७१
घड़ाऊँ=बनवाऊँ २२४
घड़िए, घड़ियउ=घड़ी में २२८, ३०८
घण, घणउ, घणा, घणे=बहुत १७, २७, ४८, ६६, ८३, ९५, १३६, २१२, २६०, २६८, ३६५, ३९०, ४२३, ४२६, ५१८, ६०८
घणांह=बादलों, १५४। बहुत २६६
घणीं-०णीह=बहुत ७२, ६४, ६४३
घरांह=घर के ५१६
घरेह=घर के २७२
घाँघळ=कष्ट, बखेड़े १७
घाउ=घाव २६७
घाघरइ=घाघरे से ५३७
घाट=गठन (शरीर का) ४६६। बनावट, ढंग ४६६। मार्ग, रास्ते ६१६
घाढा=निकाला (?) ६५७
घातउ=डालो १२४
घाति=डालकर ३४३
घातूं=डालूँ (ख ३१२)
घालउ=डालो ३१३
घाली=डाली ३४५
घालूँ=डालूँ, बाँधूँ ३१२
घूघरा=घुँघरू ३१२, ३४३, ५३६
घोट=युवक २९६
घोटड़ा=हे युवक ४३६

च

चंग = पतंग ४६५
चंगा = अच्छे २८६
चंगी=अच्छी, सुंदरी २८८
चंदउ = चंद्रमा २०१, ४३७, ५३८
चंदेरी = एक स्थान का नाम ४००
चंपउ = चंपक, चंपा ४६८
चंपेल = चमेली का तेल ३२०
च (सं० प्रा०) = और २३४
चइ = के २
चउ = का १०
चउकी = चौकी, पहरा ५६६
चक्ख = (चक्षु), नजर ४५८
चटकउ = शीघ्रता ५८१

चटक्कड़ा = मार से, शीघ्र ४१०
चड़ेहि = चढ़कर ३७६
चड्या = चढ़े, चढ़ने पर १६६
चढंत = चढ़ता है ५३४
चढंती = चढ़ती १२
चढीजइ = चढ़ा जाता है ५२३
चढ्यउ = चढ़ा ११५, ६२५
चढ्या = चढ़े ६४४
चमंकउ = चमकना, चमक ५०८
चमक=चौंककर १५०
चमकियउ = चौंका ५४२
चरंती=विचरती हुई ६०, ६७
चरइ = चरता है ३१०, ३११ । चरे ४२८
चर-०रि = चर, खा ४२६, ४३४
चरीयं = चरित्र २३४
चरूँ ०रूँह = खाऊँ ३१९, ४३१
चलंतइ = चलते हुए (ने) ३६६
चलंतउ=चलता हुआ ३६२, ४२९
चलंताँ=चलते हुए ४१५
चलण = गति, चाल १३
चलणे=पथ पर, चरण ४६७
चलपत = चलपत्र, पीपल ४४७
चल्ल = चल ३६६
चहळा वहळि=चहलपहल (युक्त) ४४, ४५, ४६
चवाँ = (हम) कहें, कहते हैं ६५, २३८
चहड्डियाँ = चढ़ीं, चढ़ी हुई १५२
चाँपउ = चंपा १३०
चाइ = चाह ५२९
चाचरि = चर्चरी, नृत्य विशेष १४५
चाढी = चढ़ाई ६२५
चातृंगि = चातक, पपीहा १६
चारण = एक जाति विशेष ४४१, ४४४, ६४३-६४५, ६५०
चाल = चल ३५९
चालइ = चलता है २४६
चालउ=चलो ६१३
चालण = चलना २७७, ३४३
चालणहार=चलनेवाला २७५
चालियउ = चला ३४८, ३५०
चालिया = चले ३४१
चालिस्यउ = चलोगे १०७
चालिस्याँ = (हम) चलेंगे १०८ २७८, ३०६
चाली = चली ५३७-५३९, ५६६
चाल्यउ = चला ३४६, ३५३
चाल्या = चले ३५१, ६१०
चासू = चुस्त (?) ४८१
चाहंती = सोचमग्ना १६ । देखती हुई २०४ । चाहती हुई ५४८
चाहंदी = प्रेम की, प्रेममग्ना १५ । चाहती हुई ५३२
चाही = देखी हुई, देखी जाने पर ४५८
चितवइ=चिंतन करता है ५७८
चिँतारियाँ=स्मरण किए से ६१२
चितारइ=याद करता है २०२
चित्तारेह=याद करता है २०२
चित्राँम=चित्र, तसवीर १६

चियारि=चार ६५
चिहुँ=चारों २१४, ३६९, ४९७, ५८१
चींत्यउ=सोचा हुआ (१६८ थ)
ची=की १०
चींकणी=चिकनी, कीचड़वाला २७७
चींतारंती=याद करती हुई २०३, २०५
चींतारेह=याद करता है १६८
चीति=चित्त में २३७
चुगइ=चरता है, चुगता है २०२, ३३६
चुगतियाँ=चरती या चुगती हुईं २०३
चुगि=चुगकर, चुनकर २०२
चुज्जेण=चोज से ५७७
चुट्टइ=चुनता है, तोड़ता है १२०
चुड़=चूड़ा ४८१
चुणइ=चुगता है ३८६
चुणवा=चुने हुए (थ)
चूँन=चूर्ण ३७७
चूके=चूकना ४४०
चूड़इ=चूड़ा ४७५
चूड़ी=चूड़ी, वलय ३४६
चूरि=चूरि कर ४९२
चेत=सावधान हो ६३३
चेत्रि=चैत मास में १४६
चोपड़िसूँ=चुपड़ूँगी, मलूँगी ३२०
चोल, चोली=मजीठ १३९, ४०३
चोवड़ा=चौगुने (देह में) ३०६
चोवा=अरगजा का लेपन ५६२
च्यार-०रि=चार ४२, १८८, ३३१, ५४३
च्यारइ-०रे=चारों २१०, ५२८, ५९९

छ

छंछाळ=फव्वारा ५३६, ५४०
छंडइ=छोड़कर, छोड़ता है १६६, ४८६, ६५६
छंडियइ=छोड़िए १६६। छोड़ा-जाय २८६
छंडिया=छोड़े १८६
छइ=है ६४, ११२, २३७, ३३३, ४०८, ६३७
छट्ठै=छठे ५८७
छवडउ=वृक्ष की छाल ४३६
छाँ=हैं ६५
छाँटी=छींटे दिए २४०
छाँडि=छोड़ ३६, ६३२
छाइयउ=छा गया, छाया २४५, ३६०
छाक=नशा ५३४
छाजइ=छज्जे पर ५०६
छाडियइ=छोड़ा जाय, छोड़ा जाता है २८५
छानी=छिपी ६७
छाला=छाले १५६
छाळी=बकरी ६६२
छीलरियउ=छीलर गढ़ैया- छिछला ताल ४२६
छुटे=खुले हुए ५४०
छुटो=छूटा है, चला है ५३६
छेक=छेद ५१४

छेतरी=ठग लिया ५११
छेतरियाह=ठग लिया ४१७, ४१८
छेती=फासला ६४३
छेह=किनारा ३३७। अंत ३३८
छोकरी=दासी ५६६
छोहरी=दासी ३३४
छोलइ=छोलती है ५८८

ज

जँघ, जंघ=जंघा १३, ४५४, ४७३
जंजाळेइ=स्वप्न से २०६
जंति=जाता १९३
ज=अवधारणसूचक व पादपूरक अव्यय ३०, ३१, ५१, १०८, ११६ १३१, १३३, १५३, १५६, १७५, २००, २०६, २१८, २६७, २७३, ४२४, ४३२, ४३५, ४४२, ४४९, ४७२, ४६५, ५०४, ५०५, ५०८, ५४८, ५८७, ५६०, ६१६, ६२०, ६३८, ६५०
जईँ=जहाँ ६५७
जइ=जो, यदि २३, ७३, ११०, १११, ११८, ११६, १२४, १४२, १४५, १४६, १७०, १७१, २११, २१८, २२४, ३३३, ३४८, ३९६, ४३७
जइसइ=जावेगा ६४१
जउ=जो, यदि ३, १०८, १११, १३५, १४७, १४६, १५१, १५४, १७१, १९३, २१४, २२८, २४१, २५०, २७५, ३२८, ४२२, ४२८, ४७५, ४६३, ५०६, ६३३
जऊ=जो, यदि २०३
जकाह=जो, जौन सी ४४५
जण=जन, मनुष्य ४०, ६६, ४८२, ५१४
जणेह=जन से १३६
जद=जब ५११, ५१४
जमराँणाँ=यमराज (ने) ६१० (ज० ध० थ०)
जय=जो, यदि
जळंत=जलता है ६१८
जळइ=जले, जलता है ६१८
जळह=जल के, ०से १६३
जळहर=जलधर, मेघ ५०। सरोवर ३६४
जळि=जल में ६६
जाँ=जहाँ २८६। जब ४२०
जांण=मानो २२, ३८१, ५३७। जान १७५, ५१६। जानकर ३३६। मानकर ३२६। ज्योंही ५७६
जाँणइ=जानता है ३३२
जाँणि=मानो ८६, २६७, ३७७, ४५६, ४६२, ४६३, ४६५, ४७३, ५३६, ५६१, ५६५, ५६६, ६२२। जान १८६। जानकर ३४२
जाँणे=मानो ५३८, ५५५, ५६५, ५६६, ६१६, ६३८
जाँण्यउ=जाना ३०, ३२, ५४, ५७२
जाँह=जिन, जिनका २२३, ५२६, ५४१। जावें २२३, २२४, २४४, २४५, २६६, ४६८, ४९६

जा = जा (आज्ञा) ४०९ । जिस २६२

जाइ = जाकर ६८, १०१, ११२, १८३, २११, ३६८ । जाता है, जावे १२, ७६, ८२, २२८, २३१, २४६, २६१, ३८७, ५४६, ५५८, ५८८ । जा १२०-१२२, २६६, ४५६ । उत्पन्न होता है, जनमता है ४६८

जाइयइ = जाइए २२९, ३००

जाइसि = जावेगा २२३

जाउँ = जाऊँ ३१६

जाए = जावे, जाता है २८३ । जाकर ३०७, ४४३

जागंती = जागती हुई ४१८, ४१६

जागइ = जगती है, जग रही है ३५

जागती = जगती हुई ३४२

जागवइ = जगाता है ७६

जागवी = जगाई ५०५, ५०७

जागियउ = जगा १२३

जागी=जगकर ३७८ । जगी ३४५

जागूँ = जगूँ, जगती हूँ ७६, ५११, ५१४

जाण = जाने २२५

जाणइ = जानता है १७, २२१, ४१३ जाने का ६१, जाने १११ । मानो ३८८

जाणइला = जानेंगे २१३

जाणउ = जानो, समझो ९

जाणही = जानता है ४८४

जाणिजइ=जाना जाता है २३४

जाणी=जानी ७६

जाणूँ=मानो, मुझे ऐसा भान होता है ५०५, ५०७, ५१६

जाणी=जानी ७६

जाणे = मानो १६२, १६६, २३६, ४७०, ६७०

जात=जाता है ३७३ । जाओ तो ४९०

जातउँ=जाता हुआ ४४१

जाताँ=जाते हुओं की ३७८

जामोपत्ति=संतान का जन्म ५७

जाय=जाता है ४७६

जाइय=जाता है १३४

जाया=उत्पन्न हुआ ४९१

जार्‍ी=जलाकर १८१

जाळ=जाल, वृक्ष विशेष, कदंब (?) ३९१, ४१०

जाळि=जाल, वृक्ष विशेष ४३२

जाळि=जलाकर २८६

जाळउ = जाला, जाल, समूह १५१

जावइ=जाता है २६, ७८

जावउ=जाओ १०५, ११०, ५२५

जावता = जाते हुए ६४१

जास = जिसका, ०को १६५

जास्याँ = जावेंगे ६२८

जाह = जाता है २८४ । जाओ ३४०, ४९८ । जाकर ४४५

जाहि = जाता है २८१, ४३६, ५३८ । जावे १८१

जि=जो ९६, पादपूरक व अवधारण सूचक अव्यय ४५६

जिउ=जीव, प्राण ३१, ३५
जिउँ = ज्यों १६, ५६, १४३, १६३, २०५, २१४, ३९३
जिए = जिसके १६६
जिका=जो, जिनके (?) ३०३।
जिण=जिस, जिन ५३, १०३, २४६, २४७, २५९, २६१, २६२, २६५, २६६, ४४२, ५०१, ५४६, ५५८, ६६१
जिणि=जिस, जिन, जिसने, जिसमें, जिससे ७४, २८०, २८३, ६०८
जिन=मत १४३
जिन्हाँ=जिन २१
जिसउ=जैसा ९३
जिसा=जैसे ४८०, ६४५
जिसी=जैसी ४७६
जिहाँ=जहाँ ३०१, ३८६, ६५५
जिहाज=जहाज, ऊँट ६४३
जीण=जीन २४८, ३७५
जीमणवार=भोज, रसोई ५८७
जीवण=जीवन २१
जीवसे=जिएगी ४२
जीवाँ=(हम) जिएँ १३८
जीवाड़उ=जिलाओ ६२०
जीवीजइ=जिया जाय २५५
जीवुँ, जीवूँ=जियूँ १४०, २६३
जीव्या=जिए, जीवित रहे १०८
जीहा = जिह्वा, जीभ ३४०
जु=जो, अवधारणसूचक व पादपूरक अव्यय १६, ५३, १३२, १८४, २५८, २६२, २६६, ३४१, ३४४, ३८५, ४५२, ५८८
जुवाँण=युवा, जवान ५९९
जुवाँने=युवाओं ने, जवानों ने ५६६
जुहार=प्रणाम ३४७
जेंण=जहाँ, जिसने, जिससे (?) ३५९, ६५७
जे=जो (बहुवचन) २१, १०४, २०८, २२०, २५४, ४२१, ५५७। जो, यदि ११३, ११५, ११६, १७९, ३२७, ४४६, ४५६, ४८८, ४६४। जो (ए० व०) ४३२, ४३४। जिस (के) ४३६
जेण=जिससे ३४०, ३७६। जिसने ५७३
जेता=जितने ४८७
जेती=जितनी १७१
जेम=ज्यों, जैसे १७३ इ०
जेहवी=जैसी ४६९
जेहा=जैसे २१६, ३१४, ३३६, ४५७, ४६०, ४७०, ५६३, ६६६
जेही=जैसी ४६७, ५६३, ६३६
जैसइ=जायगा ६४१
जो=देख ४४५
जोअणे=योजन पर १९०, १६१
जोइ=देखकर ३१४, ५०७। देख ३०६
जोइणि—०न=योजन २२८, ३०८, ५२०
जोइयउ=देखा ३०७, ६०३
जोई=देखकर ३७६। देखी ६०४

जोएह=देख, देखना ४०६
जोती=देखती ५४१
जोबन-०ण=यौवन ३८, ११५, ११७
११९, १२०, १२२, १२४, १३४
जोयइ=देखकर ३७८
जोयण=योजन ५१२, ५१५
जोयणाँ=योजनों पर १८६
जोवइ=देखता है ६०६
जोवण-०न=यौवन १३१, १७७, ४५०
जौहारि = जुहार, प्रणाम ५८६ ज्यउँ=
ज्यों, जैसे ७३, १३५, १६२, १६३,
१९८, २०४, २९७, ३६८, ३८७,
४१८, ४८४, ४६५, ६५५, ६६७
ज्यउ=ज्यों, त्यों १११
ज्यउ = जो २०१
ज्यऊँ = ज्यों, जैसे
ज्याँ = जिन ४२, ५८, २१६, ४११
ज्याँह = जिनको, जिनका ७१
ज्याँही = जिस, जिसी २०१
ज्यूँ = ज्यों ६, ७३, १११, ३६४,
३६७, ३८०, ३८२, ४१२, ४५२,
४७२, ४७४, ४९८, ५१३, ५२८,
५३४, ५४५, ५५३, ५६४, ५७८,
६१२

झ

झँखइ=झलकता है ४६३
झंखरा=झंखाड़ ४६८
झंपावेसि=कूद पड़ूँगी १४५
झंम=दीपकों की झमझमाहट ४६८
झटक = तुरंत ३३८
झबकइ = झलकता है ५४६
झबझब=झबक-झबककर ३०४
झबुकड़ा=चमक, जगमगाहट १५२
झबूकड़इ=चमक से १४१
झबूकड़ा = चमक, जगमगाहट,
चमचमाहट २६८
झरइ=झरता है, झड़ी लगाकर गिरता
है, टपकता है २४७, २६१, २६२,
२६६, ४७२
झळनो=लौ का जलना; झलना ११३
झळ रहियाह=झल रहे हैं ११३
झाँखउ=झाँकी, झलक ४६४
झाँझर=पैरों का एक गहना ४८१
झाझी=गहरी, अत्यंत २५६
झाड़ि=झाड़ी ४३२
झाबकि=सहसा ६०३, ६०४
झाबूकइ=झबककर, चमककर, चमक
के साथ ३६८
झालइ=पकड़ता है, थामता है २८२
झालियउ=पकड़ा ६३५, ६३६
झालिया=पकड़े, थामे, लिए ५७३
झाली=पकड़ी ६२९। झाला नामक
राजपूत वंश की स्त्री (थ)
झाळि=ज्वाला ६०३, ६०४
झिँगोरया=कूके, बोले २५३
झीणा=झीने, महीन, क्षीण, ४६३
झीणी=झीनी, सुकुमार ३६०, ४७३,
४७७
झीणे=झीने, आधे बुझे २०६। हलके
५३७
झीलण=स्नान करने ३९३
झीलोलण=झकोरना (द)

झुरइ=झूरता है, रोता है, विकल होता है २७६
झुळकते=झलमलाते ५०७
झूँपड़ा=झोंपड़े ३१४
झूँबइ=झूमता है ३०४
झूँबणहार=जानेवाला ५६७
झूँबणा = झुमके, कर्णफूल (थ)
झूँबिया = झूमा ५६१, ५६२
झूठ = असत्य ४४०
झूर = दुःखी हो, रो ४३४
झूल = झूला १४३
झूलरउ=झुंड ६६४
झेकि=बिठाकर ६३७
झेक्यउ = बिठाया ३४५

ट

टँकावळ=बहुमूल्य ४८०
टबक = शब्द, रव ४८
टबूकइ = टपक रहा है ३६७
टहूकड़ा = शब्द ३४५
टापर = टापर, तप्पड़, घोड़ों को शीत से बचाने के लिये उढ़ाने का मोटा वस्त्र २७६, २८० । जीन के नीचे का मोटा कपड़ा ३४५
टाळिमा = चुने हुए २२७

ठ

ठरंत = शीतल होता है ५३४
ठल्लउ = खाली (हाथ) ४५६
ठवइ = रखकर १४२
ठव्वे=सजाता है ५८९
ठाँण = ऊँट इत्यादि पशुओं को बाँधने का स्थान ३७५, ३८२
ठांम = स्थान ६०
ठाइ=स्थान ६००
ठाकुर = स्वामी २६५, १७७ । सरदार ६२८
ठेलि = बिता ४३०
ठोवड़ियाँह = ठौरें, स्थान १९०

ड

डंबर = लाल १६५
डंबरे=संध्या समय के रंग-बिरंगे बादल ४६१
डँभायउ=दाग दिलाया ३३६
डबडब = डबडबाकर ३०४
डर डंबरे = अंबर डंबर छा गए ४६१
डरपाहि=डर कर ३०१ । डरता है ।
डसण=दशन, दंत ४५४
डहक = बिलखाई हुई ३७२ । डहडहाता है ४७६, ६३६
डाँभ = दाग ३२०, ३२१, ३२२
डाँभण = दाग देने ३२७
डाँभिज्यउँ = दागा जाऊँ ३१८, ३१६
डाके = ऊँट पर ६३६
डोंभू = बर्र ४६०, ६३६
डूँगर=पहाड़, पहाड़ी ३६, ६१, ६६, ७०, ७२, ७३, १६४, २१२, ३३८ ३६१, ३८६, ६४८
डूँगरिया = पहाड़ २५२
डूँगरे = पहाड़ी पर २६

डूँमणी = ढोलिन, गाने-बजानेवाली एक जाति की स्त्री ६३०
डूल = झूलता है ५८२
डेडरिया = मेंढक ५४८
डेरउ, डेरा=डेरा, निवासस्थान १८७, ५६८
डोका = डंठल (घास आदि के) ३३६
डोहीजइ = पार किया जाय २११

ढ

ढंकियउ=ढका हुआ ४७२
ढँढोळियउ = टटोला, झकझोरा ६०२
ढँढोळिसि = ढूँढेगा ११२
ढळइ = गिरता है ३७७
ढळि=मुरझाकर ४१५
ढाँढा=पशुओं (थ ३३६)
ढाढी = याचक-जाति-विशेष १०५ ११२, ११३, ११५, ११६, १२२ १७३, १८२, १८४, १८८, १६२
ढाण=ऊँट की एक चाल ४४०
ढाळ=ढालू जमीन ४४०
ढूकउ=ठहरा, जमा, लगा ५७२
ढूकड़ा=पास १८७
ढूकिसि=ठहरता, पास पहुँचने की इच्छा करता है ४२६
ढोल=ढोला २४३, ३६०, ६७४ । ढोल बाजा ३५३
ढोलइ = ढोले, ० को, ० का, ० से, ० ने, ० के, ढोला ९०, ९४, ९५, ९६, १०५, ११०, १२०-२२, १२५-३४, २०८, २०६, २१०, ३०६ ३६१, ४२५, ४३५, ४३६, ४४४, ५०७, ५२२, ५४३, ६२२, ६२४, ६३५, ६३६, ६४३, ६४४, ६७१, ६७३
ढोलउ=काव्य का नायक, ढोला ४, १०, ४१, ७६, १०२, १२३, १८१, १६५, २४३, २७६, २८१, ३०४, ३०८, ३४३, ३५३, ४१०, ४२३, ४४१, ४४७, ४४८, ४८६, ५०१, ५४२, ५४४, ५५०, ५६२, ५६६, ५६६, ६१५, ६१७, ६१९, ६२६, ६३८, ६४६, ६५१, ६५३
ढोलणा = ढोला ४२७
ढोला=हे ढोला ४३, ६४, ८१, ११७, १३८, १३६, १४६, १५०, १५१, १५४, १५७, २३७, २७३, ३१९, ४३१, ४३८, ४४० ४४३, ४५६, ४६०, ४६५, ४७०, ४७३, ४७७, ४८३, ४९४, ५६०
ढोळी=उँडेल दी ५६२
ढोलूँ=ढोला ५०५
ढोलो = ढोला ५१२, ५९०

ण

ण=न, नहीं २२५, ६०५

त

तंत=तंत्री, बाजा ६३०, ६३१
तंती=तंत्री, वाद्य २२३
तंबोळ=तांबूल २२३, ३५३ त=तो,

पाद-पूरक अव्यय ६५, १०८, २११, २४४, २४५, २५७, ३८६, ४८५, ४८८, ५५७
तइँ=तू, तुझसे, तूने २०, ३२, ३६४। ४४६, ६०९। से १९५। तेरे ४३६
तइ = उस ४३७, ५१२
तउ = तो, पादपूरक अव्यय १०८, १२४, १४२, १४६, १६७, १७०, २०३, २१९, २२५, २६०, २७७, ३१८, ३१६, ३४८, ३६६, ४५६, ६६३, ६६८
तजेसी=छोड़ देगी ४०२
तज्या=छोड़े ३५३
तणइँ=के, का १४६, १५७, २१०, २४२, २७५, ४३६, ४८६, ५८०, ५६३। से ६००
तणउ = का ४, २३१, ३१५, ३३२, ४४१
तणकइ = तनतन तनतन शब्द करता है ६३१
तणा-णाँ=के, का २१, ६६, ८२, १०४, १६४, ३४४, ५१६, ६७४
तणी=की ४, ६३, १७१, २३८, २७८ ४१३
तणे=के ५५०
ततखण = उसी समय ६५४
तत्ता=गर्म, संतप्त २४१
तथ्थ=तथ्य, रहस्य ६७
तद=तब २६४, ५११, ५१४, ६०५
तनह=तन का, ० से २६, ७८
तनि=तन में १२६
तनै=तन से ५६६
तप्यउ=तपा २३६
तरंत=जोरों का, तीखा २६३
तर=गहरा ३२
तरणापउ=यौवन १२
तरतर=तैरते तैरते ३७६
तलीण=लीन हुआ
तळाइ=ताल में ३६३
तळि = नीचे ३९२
तस = उसका ५८०
तसु=उसका ८७; ६०
ताँ = तब ४२०
ताँह = उससे २१२, २८२
ताँह का = उनका ४५७
ता=उसके ३०१
ता कहूँ = उसको १४८
ताकि=रुख करके ३०१
ताढउ, ताढो=ठंढा २६६, ५५६
ताढा=ठंढा २६४
तात=चिंता, दुख २७८, ५२५, ६१६, वेगवती, तेज ३६४
ताता = गर्म १६०
ताति = चिंता, कमी ६५६
तार=ऊँचा १२
ताळ = समय १०५
ताव = ताप ५५६
तास = उसका, उसके १९, १६४, १६६, २२२, २२३, ४३७, ५४५, ६४५
तासु=उसके ५८०
ताह = उस २५२

तीनइ=तीन ही २५३
तीने=तीनों ३५३
तुँ =तो, पादपूरक अव्यय २०४
तुँ ही=तू ही १७५
तु = तो, अवधारण पा० पू० अव्यय २२४
तुखार = घोड़ा २८६
तुझ = तेरे ११४, १५५, ३६३
तुझ्झ=तेरा, तेरे, तुझे, तुमसे २४, ७५, २३२, २३६, २७६, ३२७, ३६८, ४१३
तुम्ह = तुम १२५
तुम्हारउ=तुम्हारा १६५
तुरि, तुरी = घोड़ा २२३, २७३
तुरियाँह=घोड़ों पर २८०
तुहारइ=तुम्हारे २३७
तूँ, तू=तू ३० ३०, तुमको ४०१
तेंण = उसमें ३५९, उससे
ते=वे ४२, २२०, ४३४। उनसे ९९ उस (के)
तिके=वे २४६
तिड्डु = टिड्डी ६६०
तिण, तिणि = उस ३७ इत्यादि। इसी लिये ५००, ५७०
तिणका=उनका ५३
तिणहि=उसी ६१३
तिणही , तिणही=उसी १०५
तिणां=उन्हें १०३
तिणि=तैसे, वैसे, त्यों १२, ६८, ५१३ ६०३
तियउ=वह ६६
तियाँ=उनसे ७२। उन्हें १०६। उन २८०
तिल=तिल जितना स्थान, रोम ७९
तिलकस्यइ=फिसलेगा २५६
तिलांह = तिलों (तिल की फलियों) का २८३
तिल्ली=तिल (की फली) २८२
तिसाइयउ=प्यासा ४२५
तिहाँ = वहाँ ८६, २२९, ६६६
ती=से १६०, २३७
तेड़णो=बुलाना ८१, ८४, १००, १०१, १०४, १०६, १०७, ३३१
तेण=उससे २३४। उसमें ३७६ इसलिये ५७२
तेणि=उसको ११
तेता=उतने १७१, ४८७
तेह=वह ३३६, ५४६। उसने ५७४
तेहा, तेही = वैसे २१६, ४६७
तेहातेह = तह पर तह, खूब गहरे ५८४
तो = तेरा, तेरे १६६, १७३, ४६३। तुमको, तुझे ३२५, ५१२। तो ६८ ३६५, ४२१
तोइ = तो भी २३, ५१५, ६०५। तेरी १३५
तोड़सइ = तोड़ेगा १२४
तोड़स्यइ = तोड़ेगा १३३
तोनूँ = तुमको ६१६
तोरइ = तेरे १६०
तोहि = तुम्हारी ३४१। तुमसे ३७३। तुझे, तुम्हें ५१४, ६३५

त्याँ = उनको ५८, ० से २१६
त्याँह = उनको, उनका ७१, २२३; ० में, ० से ४२२
त्याँही = उसी २०१
त्यूँ = त्यों, वैसे ६, ७३
त्रासा = प्यास ४२६
त्रिड़इ = फटती है २८२, २८३
त्रिया = स्त्री ३१३
त्रिसूळउ = त्रिशूल, बल २१६
त्रिहुँ = तीन ६१, ४५०, ६१३
त्रीजइ = तीसरे ४२४
त्रीजें = तीसरे ५८४
त्रीयाँ = तीनों ४७५
त्रूटि=टूटकर १४३

थ

थई = हुई २०४, ५२२, ६७२
थकइ = रहते हुए ३३६, ४९०
थकाँ = से २०२, २१४
थकी = थकगई ३०६ । से ४०८
थकियाँ = थकीं, थक गईं १६७
थके = थक गए ३८५
थट्ट = ठाठ, अधिकता २९० । समूह ६०२
थयउ = हुआ ११, १६२, ३३० ४४७
थयाह=हुए ४२२
थयाह=हो गया ५५३
थळ = स्थल, भूमि ४६, २४१, २४८, २६४, २८९, ३९०, ३९१, ४६८, ६४८ । ऊँचा स्थान ३८८ । मरु-स्थली ६३२
थळाँह = स्थल ४१४, ६६८ । मरु-स्थलों के ६५८
थळे=कँकरीले ऊँचे स्थानों पर ५२३
थाँ = तुम, आपके, आपसे, आपने ५२, ११३, २३५, ३०६
थाँकइ = आपके, तुम्हारे १९६, ६६०
थाँकउ = तुम्हारा ६२
थाँकी=तुम्हारी ४०७, ४०८, ४५६
थाँके=तुम्हारे ३२८
थाँभा=खंभे ५४१
था=थे २१६, ५३३, ५६०
थाइ=होता है १४१, १७१, २१६, ४०३, ५४६, ६३४
थाकउ = थक गया है ४१७
थाकिस्यइ=थक जाओगे ५२४
था (? छा) जइ=छज्जे पर, जो थे २७२
थाढा=ठंढे २८५
थाय=होगा ३८८
थारा=तेरे ४२८
थारी=तेरी ३०
थाह=गहराई १५, १७
थाहरइ=ठहरता है, तेरे ६६
थियाह=हो गए, ४९५
थियुँ=हुआ २
थी=थी २३६, ५१२, ६१० । १३६, ४६२ । से ।
थे=आप, तुम, तुमने ६, १०७, ३४०, ३४१, ५११, ६१६, ६३२, ६४४

थोड़ो=थोड़ा-सा ४७८
थोब्रड़=बड़ा मुँह ४२८

द

दंती=दाँत, हाथीदाँत ४७५; दाँतों-वाली ६११
दइ=देकर ३३ । दी ४०९
दइव=दैव, विधाता ४७, ४८
दई=दैव, विधाता २०८, २७३, ५६३, ६३१
दईय=दैव के १
दउढ=डेढ़ ६१, ४५०
दखणी=दक्षिण का २३२
दखिण=दक्षिण ४८५
दखिणाध=दक्षिण दिशा ३०१
दख्ख=दाख, द्राक्षा ४७०
दख्खिण=दक्षिण (का पवन) १३६
दग्ग=दाग ३३०, ३३३
दणयर=दिनकर, सूर्य ४७८
दध्ध=जली ६०९
दमाँज=ढोल ३५०
दयामणउ=दयनीय, दयनीय दशा को प्राप्त ५४१
दरक=दरकता है, फटता है २८६
दळ=नशा, मद १६९ । सेना ६४०
दळिद=दरिद्र, दारिद्र्य २०३
दस=दिशा २७१, २७२
दसराहा=दशहरा २७३, २७४
दसिए=दस, दसदस ४९४
दह=दस १९३
दहइ=जलता है, जलाता है ६६
दहण=दाहक, जलानेवाला ३६
दहियउ=जलावे ५१२
दहिसी=जलेगा, जलावेगा २८८-२८९, २६२
दहेसइ=जलेगा, जलावेगा २६६
दाँतण=दाँतुन ४००
दाँवणि=दामन, ऊँट की लगाम ३४८
दा=का ४३८
दाइ=उपाय, औचित्य ८० । प्रसन्नता, पसंद आनेवाली बात ३८७
दाखउँ=कहूँ ४८७
दागे=जलाना ४०५
दाझइ=जलाता है २८४
दाझण=जलना १६०
दाझोला=जलोगे २४१
दाधा=जला, जलाया १५४
दाधि=जलाता है २६८
दाधी=जली ३८८
दाध्यउ=जलाया ३३५
दाय=पसंद ४०८
दाहवी=जलाई, जलाई गई ५१२
दिउर्ली=दूर्गा ७५
दिऊँ=दूँ ७५
दिखणि=दक्षिण देश में ६६८
दिखाई=दिखलाई, देखकर ५७६
दिट्ठं=देखा ५७५
दिट्ठ=देखा, दृष्टि १९०, ४२०, ४५५, ५२३, ५३१, ५७६
दिट्ठियाँ=देखीं ६०
दिणियर=दिनकर, सूर्य ७२
दियइ=देना (आज्ञा) १२७ । दे (विधि) ४८५, ४८८

दियउ=दिया ३, ८५। देना, दो ३३१, ४०७

दियण = देने १०७, २३१

दियाँ=दो, देना ६६६

दियै=देता है ५८६

दिराऊँ=दिलाऊँ ५१४

दिरावइ = दिलावे, दिलाता है ३२१

दिवला = दीपक ५८२, ५६०

दिसाउर-ौरि, दिसावर=देशांतर, प्रवास २२१, २२२, २२३, २३१, २४६

दिसी=दिशा में, ओर ६१५

दिहाँ = दिनों २८०, २८२

दी = दी २०९, २१०। की १५, २६९

दीकरी=पुत्री ७

दीखती=दिखाई देती ५५७

दीजइ=दीजिए, दिया जाय १६६, २३०, २३३

दीठ=देखा ३६२

दीठउ = देखा १३६, २४३

दीठा=देखे ६३८, ६४१

दीठी=देखी ८६, ४४६, ४६७, ६०४ ६०६, ६३६, ६४२

दीध=दिया ६

दीधा=दिए १८३, ४४१

दीन्हा=दिए ३४४, ३६१, ४१६

दीपक्को=दीपक, दिया ५७५

दीपिता=देदीप्यमान, दीप्त, प्रसिद्ध २२२

दीपसिका=दीप-शिखा, दिये की लौ ४७६

दीपाँ=द्वीपों ४६२

दीयइ=दिए, देने से १०६। दे ६६८

दीवउ = दीपक ५०६

दीवळउ=दिवला, दीपक ५७८

दीवाधरी=दीपकधारिणी, दासीविशेष ६०५, ६०६

दीसइ=दीखता है ८८, २३८, ५२४, ६६५

दीसंता=दीखते (थे) ४२१

दीह=दिन २८६, ३६४, ४६१, ५६८ ५८६

दीहड़उ=दिन ५३१

दीहड़ा=दिन २००, ३८३, ६३१

दीहे=दिन में २६१, २६५, २६६, २७९, २८०, २८२

दीहे दीह=दिन दिन, दिनभर

दुकाळ=अकाल २

दुख सहणा=जिसमें दुख सहना पड़े २३१

दुज्जण=दुर्जन १६८, १६९, २३४

दुहुवाँ=दोनों २७

दूख=दुःख १५८

दूधे = दूध से ५५९

दूभर = दुःसह्य ४६

दूमणी=उन्मनस्का, उदास ३१६

दूरा हुंता=दूर से २०३

दूरिट्ठा=दूरस्थित, दूर दूर रहनेवाले १

दूरिथकाँ = दूर से, दूरस्थित २१४

दूहड़ा=दोहे ४८६
दूहवियाइ=नाराज किया, ० हुए २३५
दे=दे, देना, दो १६७, २७८, ४१६ । देकर २०९, ३७१, ३७७, ५४४, ६११, ६४५
देइ=दे, देना, ६५८
देइस = देना ६५६
देख = देखकर १५० । देखता है १५२
देखइ=देखता है ४४५, ६४५
देखण = देखने (को, से) ३००, ३०२
देखतीं=देखती (थी) ५५८
देखि=देखकर २१५, ४४१, ५६६, ५९८ । देख २७३
देखी = देखकर ६३, ८९ । देखी ४७८
देखूँ = देखूँ ५१०
देखे = देखा ४३५ । देखकर ४
देख्याँ=देखे, देखने से ३८२
देज्यो=दीजिएगा, देना ४०६
देवड़ी=देवड़ा वंश की स्त्री ७८, ८०
देसंतर = देशांतर, अन्य देश ४२१
देस, ० सि=देगा ६२, ६३, १४४, २२५
देसड़इ=देश में ६६०
देसड़उ = देस ३८५, ६५०, ६५५, ६५६, ६६०, ६६४, ६६५
देसी = देगी २७१
देसे = देश में ११, ७४, १८४, ६०८
देस्यइ = देगा ४०२
देह=दे ३१, ३०४, ३०५, ४६० । देवे, देगी ३५, ६३१ । देता है १४७, १८२, ३०४ । शरीर १६१, ४९२
दोड़ेह = दौड़ता है ३५५
दोनूँ = दोनों ६३७
दोवड़ = दुगुना, दूना (मोटा) ३०६
दोहग=दुर्भाग्य ५५३
दोहागिण=दुहागिन, पति से त्यक्त स्त्री २९०, २९१
द्यउ=दो (देना) ८, ९२,
द्याँ = दें ७
द्रंग=दुर्ग २२९, ३००, ३५१
द्रंगि = दुर्ग में, ० पर ५५
द्रव = तरल वस्तु प्रवाह ६१२
द्रह=ह्रद, हौज ५४
द्राख = दाख, द्राक्षा ४२६, ५८८

ध

धँण=धन्या, प्रेयसी १२६, १३०
धंधाळू=धंधेवाली १७८
धंधूणी=हिलाया, डुलाया ६०३
धड़ि = धरा ने १४८
धण=नायिका, प्रेयसी, प्रिया, प्रियतमा, पत्नी ८, ३६; ११२, १३५, १३७ इत्यादि
धणि = धन्या, प्रेयसी १११
धणियाँ=स्वामियों को, पतियों को ३९
धन = प्रिया ५८४ । धन्य है ५३१
धन्न = धन्य ५
धनि=धन्य है ५६७

धरइ=धारण करता है २६५, ६३४
धरण = पृथ्वी २५८
धाइ धाइ=दौड़ी दौड़ी ३८८
धापंत = तृप्त होता ४८६
धार = धारा ५८७
धारइ=धारा (रूप) में २१
धाह = क्रंदन ६०६
धाहड़ी=धाड़, क्रन्दन ३८६
धीरवइ=धैर्य्य धरते हैं २१९
धुकंती=धुखती हुई, सुलगती हुई १६३
धू=दुहिता, कन्या ६४, १६६, १६७
धूआ=धुँवा १८१
धूड़ि=धूल से ३६१
धूणइ=धुनता है ५७६
धूणए=धुनता है ५७५

न

नइँ=कर १४३, ४१८ । के ३६८ । और ३६४, ५५४
नइ=और २७, २२६, २४३, ४२८, ८७४, ५५४, ५६२, ६५३, ६७३ । न ६२ । को ६४, ११४, ३२६, ५१२ । करके २२१, २३१, कर २२६, के २६६, ३८२
नइण=नयन ४१
नकफूली = आभूषण विशेष, नाक में पहनने का जेवर ५७१
नग्गर = नगर ३५४
नड़ = पर्वतीय झरने ४८३
नदी-निवासउ = समुद्र २३०
नमणा=नमनशील ५६३
नमणी = विनयशीला ४५२, ४५६
नयरे = नगर में १
नरवर=प्रान्त विशेष, नलवाड़ा, ढोला का देश २, ४, १०, ६०, १०५, ११०, १८६, २२२, ३३२, ४४५, ६२४, ६४१, ६५१, ६७४
नरवरइ=नरवर को ६२८
नरवरे=नरवर में १
नराँ=मनुष्यों को २१६ । ० से २६९
नळ=राजा नल, ढोला का पिता १, २, ३, ४
नव=नवीन, नया ३०२, ४६५, ५९३, ५६४ । नौ की संख्या ३५४, ३६६
नवला=नये ८१, १५८, ५५९
नवली=नई २१७, ५६७
नवि = नहीं ३८, १५७, ४६१
नवी=नवीन ४७६
नस = निशा २४५
नाँखी नाँख = गिरा-गिराकर ३३७
नाँखिया=डाले, गिराए ३६६
नाँख्यउ=डाला २०६
नाँख्या = डाल दिया ५७३, ५७४
नागरबेलड़ी, नागरवेलि=नागरबेल ३०६, ३११, ४२८, ४३०, ५५५
नातरउ = विवाह, संबंध ६
नाळा=नाले २५६
नावंत=नहीं आता ६१२
नावियउ = नहीं आया १४७, १४८, १५०, १५१, १५४

नाविया=(न + आविया) नहीं आए १४०
नि=नहीं २७३
निकसो=निकली १२५
निकस्यउ=निकला ३७३
निकस्यू = निकला ३७३
निघट्टियाँ=निकले, निकलने से १७२
निचंत=निश्चित १८६, ३४२, ६५०
निचंती, निचिंती = निश्चित ३०६; ६०८
निचोइ=निचोड़कर, निचोड़ते हुए १५६
निचोवण=निचोड़ने ३५७
निजरि=दृष्टि (से) ५७६
निजळ=निर्जल, जलहीन ६६६
निट्ठ=कठिनता से ५२३
निपाइ=बनाकर १०६
निमाँणी=फड़कती हुई ५२०
निरति = खबर ९६
निरध्धणाँ=पत्नीरहित, विरही २८८
निरेस = चरने को डालूँगा ३२६
निल=नीला ३१
निळज्ज=निर्लज ३७३, ५२०
निलाट=ललाट ४६६, ४६९
निवाज=बनाकर, प्रसन्न होकर १८८
निवाँणि = जलाशय ४६०
निवाँणू = नीची (उपजाऊ) भूमि-वाला ६६८
निवारि=रोको, बंद रखो २७०
निसद्द = शब्द १७४
निसह = रात्रि, ०में १०८, १५६, १८८, १९२, ५०४
निसांण=नगारे ३४६, ३५२
निसासउ=निःश्वास १४
निहल्ल = अत्यंत, बहुत १६१, ५२१
निहाळइ=खोजता है १५, १७। देखता है १६
नी=की
नीगमतांह=जाते हुए ११४
नीगमियांह=गई १५३
नीगुळ=गुल-रहित ५०६
नीझरण=झरने २५६
नीझरणेहि=झरने (से) ४६१
नीठ=कठिनता से १५३, ३६२
नीद्र=निद्रा ५०६
नीमांणी = बोलती रह, चुप रह ४११
नीपजइ = उत्पन्न होता है, निपजता है २८१
नीरती=चरने को देती ४२६
नीरूँ=चरने को दूँ ३२९, ३२०, ४२८
नीलाणियाँ=हरी हुई (न २५०)
नीली=हरी ३९१, २५१
नीले=नीलायमान हुए ४९१
नीळजियाँ=निर्लज्जाएँ ५०
नीसरइ=निकलता है २८४
नीसरियाँह=निकल पड़ी ४८३
नीसाँसाँ=निःश्वास १६६
नीहाळंती=देखती हुई २०५
नूँ=को ७, ६, १६, २४, २५, ८४, ८८, १०१, १०२, ११०, ५२६, ५६६, ६१४, ६२३, ६३०, ६३५, ६४४, ६५२
नेड़ी=पास, निकट ६८

नेड़ेह=निकट ६४६
नेत=नेत्र ४५७, ४५८, ६६६
नेत्रि=नेत्रवाली ८७
नेहवी=प्रेममयी ४३६
नेहाळंदी=देखती हुई, प्रतीक्षा करती हुई २०४
नेही=स्नेह करनेवाली ४६५
नृमळ=निर्मल ५७४

प

पंखइ=पंख की (?) ५८
पंखड़ियाँह=पांखों (पर) ६५
पंखड़ी=पाँख, पक्ष ६२, ६६, ७१
पंखि=पक्षी, पँखेरू ५१
पंखिया=पाँखोंवाले ३१-३४
पंखी=पक्षी ५२, ३६७
पंखुड़ी=पाँख, पक्ष ७०
पँचमै=पाँचवें ५८६
पंचाइण=पंचानन, सिंह ५५४
पंछी=पक्षी ४०६
पंजर=पिंजरा, अस्थि पंजर (अतः शरीर) ११३, १९१, २१३, ३८२
पंजरे=पंजर में, शरीर में ५२६
पंडर=श्वेत, पांडुर वर्ण ४४२
पंडुरियाँह=पंडुख, पक्षी-विशेष (?) ४९५
पंथ कर=मार्ग पकड़ो, चलो ४४०
पइ=पै, पास ८३
पइठी=बैठी, उठी ६०३, ६०४
पइट्ठ=पैठा, प्रवेश किया ४२०
पइलइ=परले, उस ओर के ५६
पइसि=पैठ कर, प्रवेश कर १५८
पउढिया=पौढ़े, सोए ५६६
पखालण = धोनेवाला ४७
पगइ = पैर में—० से २६९, २७०
पगि पगि = पगपग पर २४४
पग्ग = पैर २०५, ३३०
पग्गे = पैर में-० से ३८८
पछइ = पीछे ६१, १९७, ४०३, ५६८, ६७०
पज्ज = पाज, पाल (?) ३५४
पटे = पट्टे, केशपाश ५४०
पट्टन = शहर ४६८ (च, ज, थ)
पट्टोला=पट्टकूल, रेशमी वस्त्र २३०
पड़ंती = पड़ती ५६८
पड़=पड़ता है २८०
पड़इ = पड़ता है, गिरता है, पड़े २७७, २७६, २८०, २८३, ४३१, ४७८
पड़गन = भाईचारा, प्रतिज्ञा ३६७
पड़तउ = गिरता हुआ २८२
पड़ताळिया = चलाया ३६१
पड़साद = प्रतिशब्द ६०५
पड़सी=पड़ेगा, गिरेगा २८७
पड़हउ = पटह, दुंदुभी ३५१
पड़िनइँ = पड़कर १४३
पड़ियाँह = पड़े, पड़ने पर ५३
पड़ियउ = पड़ा, गिरा ४३७
पड़िया = पड़े, गिरे,-० हुए
पड़ी = गिर पड़ी, पड़ी हुई २३६, ३४६, ३७८
पड़ेसी = पड़ेगा २८६, २८८
पड़्यउ=पड़ा ६१

पणिहारी=पनिहारी ६६४
पति=पत, विश्वास, प्रतीति ४१३
पत्तीजूँ=पतियाऊँ, भरोसा करूँ १७२
पधारउ=पधारते हो, चलते हो २६३
पधारियाँ=पधारे हुए ५४८
पध्धरियाँह=सीधे ४८३, ४८४, ६६७
पध्धारियउ=पधारा, आया ५२७
पनरह=पंद्रह (१५) ३४२, ४६४
पन्न=पर्ण, पत्ता ४३३
पयट्ठ=प्रविष्ट हुआ, पैठा ५३१, ५७६
परइ=परे, उस पार २२, १८९, १९०, १९१
परख्ख=परीक्षा ६७१
परचइ=समझता है ६१५
परचव्यउ=समझाया ६२१
परजळती=उजाला होने पर ३८०
परजा=प्रजा ४०
परठवो=भेजो (न ६५)
परठव्यउ=लिखा ५७८
परठिया=बने, बनाए ३६६
परणिया=विवाहित हुए १०
परणी=विवाहित हुई ९०, १९७
परण्याँ=विवाहित हुए, ब्याहे जाने (के) ९१
परतख=प्रत्यक्ष ५१३
परदेसाँ=परदेशों (में, से, को) १७२, २८४, ५७३
परदेसी=प्रवासी ३४
परदेह=परदेश ४३
परभौ=पराभव, दुख, कष्ट ७० (थ)
परहर=छोड़ १८०
परहरियाह=छोड़ दिया ४१७, ४१८
परहरे=छोड़कर ३६५
पराया=पराए, दूसरे के २५४
परायौ=पराया, दूसरा, दूसरे का ५१८
परि=भाँति, समान ७६, ७९, ३७७, ४५३। पर, ऊपर ५६५
परिघळ=बहुत, वस्त्र (?) २३३
परिठव्यउ=बनाया, बना ३९९
परिठिउ=पहना ४६५
परिणाविस्याँ=विवाहेंगे ६१३
परियाँण=प्रमाण, अनुसार ३४३
परिवाँण=प्रमाण, सच्चा १७५
परिहरइ=छोड़ता है २९५
परि हाँ=पर हाँ, निरर्थक अव्यय ५६५, ५६६
परीयच्चय=आँचल (?) ५७५
परेरउ=पराया, दूसरों का २२९
पलटेहि, पलट्टइ=बदलता है १८२
पलाँण=जीन (ऊँट का) ३२९, ३४३
पलाँणि, पलाँणि='जीन कसो, जीन कसो' का शब्द, चलने की तैयारी ३४४
पलाँणिया=जीन कस करके चलाए ३६३
पलाणियउ=जीन कस करके चलाया हुआ ३०८

पल्लाणियाँ=जीन कसी, चलाए ६४० । बजते हुए, चलते समय बजनेवाले ३५०

पल्लाणेह = प्रयाण करना ३०५

पल्हवइ = पल्लवित होता है १५८

पळइ=गलते हैं २०३

पळास = राक्षस, दुष्ट १६४

पळाह = पलायन ६०६

पवंग=प्लवंग, घोड़ा ६४०

पवन्न = हवा २८५

पसरंति=प्रसरित होता-०होता है २१४

पसरइ=प्रसरित होता है २१४

पसरियउ=प्रसरित हुआ, व्यापा २३६

पसाउ=प्रसाद, 'पसाव' (एक प्रकार का दान) ४८६

पसारइ = फैलाता है १६९

पसारि=फैलाकर ४५

पसाव=प्रसाद, दानविशेष ७४

पह=पौ ६४६

पहरिउ=पहना ४६४

पहलइ=पहले, प्रथम १४७

पहियड़ा=पथिक ४७५

पहियाह=हे पथिक ११०, २४१

पहिरइ=पहने, पहनता है ४७५

पहिरण=पहनने को ६६२

पहिरणइ=पहनने से ४६३

पहिरी=पहनी ३६४, ४१२

पहिनूँ=पहनूँ ३६६

पहिरेसि=पहनूँगा २३३

पहिलइ=पहले ५८२

पहिली=पहली १४९ । पहले, प्रथम ५४६, ४१७

पही=पथिक १२४, १३५

पहुत्त = पहुँचा ७९, १७९

पहुर = प्रहर ५४७

पाँखड़ियाँ=पाँखें, पंख ७१

पाँखड़ी=पाँखें, पंख ३६६

पाँखाँ=पाँखें, पंख ३६४

पाँखें=पंख पर ६६

पाँगुरियाँह=हरे हुए, अंकुरित हुए २४८

पाणि=पानी, जल ४२५

पाँणी=पानी, जल २४०, २४४, ३१० ६१४, ६२१, ६५५, ६५७, ६६४

पाँतरउ=पागलपन करो, पागल बनो ८

पाँतरज्यउ=धोखा खाओ, पागल बनो ४४६

पाँमियइ=पाइए, पाई जाय ४८८

पाँमी=पाई ६७१

पाँसळियाँह=पँसुलियाँ ४७७

पाइ=पाँव, पैर २४६, २५७

पाइयउ=पिलाया ४२५, ६२१

पाकउ=पक गया १२१

पाखर = कवच, बख्तर ४१२

पाखर करइ=लगाता है ५८६

पाखरयउ=कवच-युक्त भक्ष्य को खाया हुआ (?), सवार (?) ५५४, ५८३

पागड़इ=रिकाब पर, रिकाब से ३०४, ४११

पाछइ=पीछे १०४, ४१७
पाछउ=पीछा, वापिस ३६७, ४०९, ४४४, ६०५, ६०६
पाछिले=पिछले, पीछे, की ओर के ५४, ५५,
पाछी=पीछी, वापिस १५३, २७४
पाछे=पीछे ३५४
पाज=तालाब की पार २९
पाठवइ=भेजता है, भिजवाता है ८१, ९६, ११८ । भेजना १४३
पाठविसु=भेजेगी ६५
पाडा=मुहल्ले ३५४
पाणी=पानी, जल ६६, १७३, २३१, ३११, ४२६, ५२३, ५२४, ५५३, ६५६
पान=पत्ता, तांबूल ५८६
पानही=पागरखी, जूती १७६
पामियउ=पावा ५१३
पामेसि=पाऊँ, पाऊँगी, पावेगी ५१३
पाम्या=पाए ४२७
पाय=पैर २५८
पाय=पाए ३८०
पारणउ=कलेवा ४३०
पारेवा=कबूतर १४३
पारेवाह=कबूतर ४७४
पारोकियाँ=परकीयाएँ १५३
पाळंखी=पालखी ३५२
पाल्हविया=पल्लवित हुए ५३३, ५६०
पाल्हव्या=पल्लवित हुए ५३३, ५६०
पाळ=सरोवर की पार, पाज १६६, ३८३, ३६४, ५३६, । पायल, पैरों का एक गहना ५४०
पाळउ=पाला, सरदी, ठंड २७९, २८०, २८३, २६१, २६६
पाळि=पाल, निभा ३६७
पाळी=पैदल ५८३
पाळीजइ=पालिए, पालना चाहिए १६८
पाळेह=पालता है, पालना २०२
पासइ=ओर, पास में ७७, ११४, २६०, ६००,
पिंगळ=पिंगल, पूगल देश के राजा का नाम १, २, ४, ५, ११, ७९, ८०, ८१, ८४, ८५, ६०, १०६, १६६, १९७, ५२६, ५६५-५६७
पिवइ=पीता है ६२१
पीउ=प्रिय, प्रियतम, पति ३७, ४३, २५५, २६०, ५७५, ६३१ । पी ('पीना' का आज्ञा) ४२६
पिउपिउ=पी पी, पपीहे का शब्द २५२
पिछताइ=पछताता है १५६
पिण=भी ६२०, ६२८
पिय=पी करके ४१८
पियइ=पीता है ६३१,
पिया=पिए हुए ५६५
पिसुणाँ=पिशुनों, दुर्जनों १६८ (थ)
पीउ=प्रिय ३७
पीणइ=पीने साँप ने ६१०
पीध=पिया ५५४
पीधी=पी ली, डस ली ६०१

पीयणा=पीने, पीनेवाले साँप, साँपों का प्रकार विशेष ६६१
पीळी=पीली, पीतवर्णा ३५४, ४०३
पीवइ=पीता है ३१०, ३११
पीवणउ=पीना साँप ६००
पीवी=पी ली, काट खाई ६१०
पुंडरी=श्वेतवर्ण हुई २५१, ६०२
पुकारियउ=पुकारा ३६
पुणग=लौ (दीपक की) ५०६
पुणिंद=फणींद्र, साँप ४५५
पुणो=पुनः, फिर ५७५
पुरिसे=पुरुष पर (पुरुष एक नाप है) ६६२
पुळइ=चलता है १७१
पुळि=चलकर ३८५
पुळिया=चले ६१५
पुह=पथ, मार्ग १८५
पुह करइ=चलता है १८५
पुहकर=पुष्कर, तीर्थ विशेष ६०, ४२५
पुहरा=पहरा, चौकी २३१
पुहरि=प्रहर में ४२४
पुहवीए=पृथ्वी पर २३४
पुहुँचाँ=पहुँचे ६२४
पूगळ=एक देश और उसकी राजधानी का नाम २, १०, ११, ८३, ६६ इत्यादि
पूगळइ=पूगळ में ८२
पूगळि=पूगळ में १
पूछंत=पूछता है ४८६
पूछण=पूछने को १६४
पूछी करी=पूछकर ३१६
पूजउ=पूरी हो ४०७, ४०८
पूजियाँ=पूजने से ४७१
पूठ=पृष्ठ, पीठ, पीछे, पीठ पीछे, पीठ पर ३६१, ४१६
पूनिम=पूर्णिमा ३६५, ५२८, ५४५, ६२२
पूर=धारापात, धारा-प्रवाह १४७, २५६
पूरइ=पूर्ण करता है ३६५
पूरउ=पूरा ३६५
पूरि=भरकर, साथ ४९४ । पूरा कर, तय कर ४९७
पूरी=भरी ६७१
पूहतउ=पहुँचा ४००
पेट=उदर, गर्भ ३१५
पेम=प्रेम २०, ४१२, ५००, ५५४, ५६५
पैहचाइ=पहुँचा (आज्ञा) १२३, १२५-१२६, १२९
पैहच्याइ=पहुँचा (आ०) १२७, १२८, १३०-१३३
पैहच्याय=पहुँचा (आ०) १३४
पोइणिए=पद्मिनियों ने, कमलिनियों ने,—०से २४५
पोयणी=पद्मिनी, कमलिनी
पोहरे=प्रहर में ५८२, ५८३
प्रगट्टियउँ=प्रकट हुआ २५८
प्रगट्यउ=प्रकटा, प्रकट हुआ २४२, २४४, ६२२

प्रगड़उ=प्रभात ३८७
प्रयाँण=प्रस्थान १८४, १८५
प्रवाँण=सच्चा, सार्थक, वास्तविक ६७०
प्रवाळी=प्रवाल, मूँगा ३७७
प्रह=पौ ६०२
प्रांण=प्राण जीव २११, ४०२, ६२७
प्राँणियउ=प्राणी, जीव, आत्मा ११३
प्राहुणउ=पाहुना, अतिथि ११३, १३४, २७३, २८३, ५८०
प्रिउ=प्रिय, प्यारा, पति, प्रेमी १८, ३३-३६, ६५, १६२, ५८८, ५९१, ६३६, ६३८
प्रियाव=(प्रिय+आव), हे प्रिय, आ २७
प्रियु=प्रिय, पति २१७
प्रिव=प्रिय, प्यारा, पति २१७, ३६५, ४१५, ५५८, ५८२, ५६०, ६०४
प्री=प्रिय, प्यारा, प्रेमी, पति २६, ३०, ६२, १२४, १५२ इ०
प्रीउ=प्रिय, प्यारा, प्रेमी, पति ३३, ३५
प्रीतम=प्रियतम, प्यारा, प्रेमी, पति ७५, ११२, ११८, १४४ इत्यादि
प्रीतमा=हे प्रियतम २३३
प्रीति=प्रेम ४१३
प्रीय=प्रिय, प्रेमी, पति ५०४, ६७१
प्रेमइ=प्रेम से, प्रेम में २५, २७५
प्रोहित=पुरोहित १०१, १०३, १०४

फ

फट्ट=फटी १२१
फर गया=लौट गया, फिर गया ५१०
फरूकइ=फड़कता है ५१६
फळाँ=फलों (के) १७२
फळियाँह=फलने पर ३६८। प्रफुल्लित हुई ५२८
फळियाह=फल गए ५३३, ५६०
फाकउ=टिड्डियों के बच्चे ६६०
फाग=फाग, होली का खेल ३०२
फागण=फागुन ३०२
फाटइ=फटता है १८०
फाटही=फटेगा ३३०
फाड़ताँ=चीरते हुए ४००
फिरइ=फिरता है ५६६
फीकरिया=नीरस, फीके ६६५
फुरंत=फड़कता है ५१७
फुर=फड़ककर ५१७
फुरइ=फड़कता है ५१७
फुरकइ=फड़कता है ५१७, ५१८
फूटणहार=फूटनेवाला ६११
फूटि=फूटकर, फटकर १४३
फूटी=फूटकर, फटकर १६३। फटी ६०२
फूलड़ा=पुष्प ६३९
फूलाँ=पुष्पों ५८९ फूलों के १७२
फोग=मरुस्थल की एक पत्रविहीन झाड़ी ४२८
फोगे=फोग में ६६१

ब

बंके=बाँके ४८२
बंग=घाटी ६४७

बंधउ = बाँधते हो १२२
बँधाँडा=बँधावें ६८
बंध्यउ=बँधा हुआ २२० २७५
बइठा=बैठे हुए ९६, २२५, २२७, २३३, २४१, २४३
बइठी=बैठी ३७१
बइसउ=बैठो, बैठते ११८
बइसासणइ=विश्वास से १३३
बइसि=बैठकर ५६
बगड़=दुष्ट, निर्जन जंगल ८२
बगसइ = दान करता है ९३
बचाँ, बचाँह, बचाह, बचाहि = बच्चों १९८, २०४, २०५, ४५७
बची=बच्चे ६६६
बजियउ = बजा, चला २८८
बज्या = बजे ३५३
बटाऊ = पथिक ३८४
बड़ = बड़ा, ज्येष्ठ ५१८, ६४७
बड़इ=बड़े १४१
बड़री = बड़ पेड़ की ३२०
बड़ी = बड़े ५०९, ६१३
बतळावसूं = पुकारूँगी, बुलाऊँगी ३२६
बतीसे = सौंदर्य के बत्तीस लक्षण (से) ४६९
बत्त = बात १३५, ५४४
बद्दळ = बादल १८१
बद्दळी=बदली ४१
बधाँमणाँ = बधाइयाँ, उत्सव ३५१
बध्ध=बाँधा, दमन किया २२०
बप्पड़ा = बेचारे २५७, ३२२
बरन्ने = वर्ण के १३९
बरसंतइ=बरसते हुए २४८
बरसइ=बरसता है २७, ४१
बरसउ = बरसो, बरसाओ ११६, १३२
बरसे=बरस ६१३
बल्लहा=प्यारे २४६
बळि=बालकर, जलाकर, जलकर ११२, २८९
बहइ = बहता है ९८। दौड़ता है ३६४
बहताँ=चलते हुए ५९८
बहरखा = बाहुओं का एक आभूषण ४८१
बहळ = बहुतेरा २६४
बहि=व्यतीत हो गया, चला गया ४५०
बहि गयउ=गया था ३९२
बहुत्त = बहुत १७९
बहुगुणी = अनेक गुणोंवाली ४५२, ४५६
बहोड़या = लौटे, लौटाए ३६२
बाँणि = वाणी, बोली ३४
बाँधइ = बाँधे, धारे २६५
बाँधउँ = बाँधूँगा ३२०
बाँधियउ = बाँधा ३१९
बाँधिस्याँ = बाँधेंगे, जीन कसेंगे १४६

बाँधे=बाँध लो ५००
बाँध्यउ = बँधा हुआ ३१८
बाँवळि=बबूल का वृक्ष ४१४
बाँहड़ियाँ=भुजाएँ, बाँहें १६७, ४८२
बाजरियाँ=बाजरी के २५०
बाजारण = बाजारू, नीच ३३४
बाट=मार्ग, पथ ५४१
बाड़ी = वाटिका, बाग ३११
बाढ़त = काटता है, काटते, घाव लगाता है ३३, ४१४
बाधइ=बढ़ता है १६१
बादळियाँह=बदलियाँ २४८
बाबहियउ = पपीहा २६, २७, २४७, २५२
बाबहिया = पपीहे २८-३६
बाबा = हे बाबा, हे पिता ३८६, ६५५ ६५६, ६५८, ६५६, ६६४, ६६५
बाबीहउ=पपीहा २६१
बायड़ा=बेचारे २५८
बालम = वल्लभ, प्यारे २८५
बाळ=बालिका ११। मुग्धा, बाला ६०३, ६०४
बाळउँ=जला दूँ ६५६
बाळपणइ = बचपन में ६१, १६७
बाळा = बाला नायिका ५७७, ५७८
बाळापण = बालपन ४४३
बाळि=बाल ५८५
बाळियउ = जलाया १२६
बाळूँ = जला दूँ ३८५, ६५७, ६६४, ६६५
बावड़ी = बावली, वापी ३८३
बाहि = चला, प्रहार कर ४९२, ४६४
बाहिरी=बाहर, बिना, अलग ३७०, ३६०। बाहिर ३६१, ३९३
बाहुड़इ = लौटे, लौटता है, चले २० २६, ४१०, ५६६
बाहुड़े = लौटे १५३
बाहे = बाहुओं में ४८१
बिकाइ = बिकते हैं १४१
बिचाहू=बीच में ही ८२
बिची = ,, ,, ४००
बिछोहउ=वियोग ५०२
बिज्जुळियाँ=बिजलियाँ ५०
बिणजारा=बनजारा १६३
बिथूंभिया = दो थुई वाले (ऊँट) २२८
बिन्हे = दोनों ६४४
बिन्नाह = दो दो ४५९
बिलबिलइ=विलाप करते हैं ६०७
बिवणउ=दूना १६२
बिहुँ=दोनों ३१८, ४९२
बिहु = दो ३६६
बिहूँ = दोनों
बींझ=विंध्य, घना २१३
बीछड़ताँ=बिछुड़ते हुए ३८१
बीज=बिजली १५०, १५२
बीजइ=दूसरे ५९८, ६४६
बीजउ=दूसरा १४२
बीजळड़ी = बिजली ४८
बीजळ=बिजली १४६
बीजा=दूसरे १६९, ५३०, ६६३
बीजी=दूसरी ४४०

बीजुळियाँ = बिजलियाँ १५३
बुझाई=बुझ जाय ५७८
बुझावइ=बुझावे १८१
बुझावउ=बुझाओ १२३
बुझ्झ=समझ, ख्याल २४
बुहारि=बुहारी ५८६
बूँदी=नगर विशेष ४००
बूठइ = बरसता है ५४८
बूठउ = बरसा १८, २५०, ३६१, ३९२
बूठाँ = बरसने पर २६४
बूठैतौ = बरसते ही ३९, ४०
बूढी=विगतयौवना, वृद्धा स्त्री २७९, ४४८
बूर = एक प्रकार का घास ३६०
वे=दो, दोनों १६७, ४३३
बेलड़्याँ=बेलें, लताएँ २६६
बेलाँ=बेलों में २५०
बेलाँ बेलाँ=दो दो को, जोड़ी को, युग्म को, दंपति को २९५
बेळ=दो, युग्म ५११
बेसासड़उ=विश्वास ४६३
बैठा=बैठे ५६५
बैरणि=वैरिन ५८१
बोलंत=बोलता है २४७
बोल=वचन-वार्त्ता, कथन, बोली २४३ ४८४, ६७४
बोलइ=बोलता है ३४, ६०३
बोलड़इ=बोल, वचन (से) ३५६
बोलड़ा = ,, ,, ४४६
बोलण=बोलना ३८
बोलणियाँह=बोलनेवाली ४८४, ६६७
बोलही=बोलता है ४८२, ६६७
बोल्यउ=बोला ४९१
बोला=बोलनेवाला ३९०
बोलाविया=बुलवाए १०५
बोल्या=बोले ५२
बोलि=बोल ४०४
बोलिया=बोले २१८
बोळावा=भेजने के, पहुँचाने को ५९७

भ

भंत=भाँति १८६
भइ=भय ३०१
भक्ख=कह ११४
भख=भक्षण ५८०
भगताँ=खातिरें, भक्तियाँ ५६४
भगताविया=कहे, भुगताए १०६
भड़=भट, योद्धा ५८३
भड़ाँ=भटों ६३
भड़िक=एकाएक १९६
भणकेह=मँडराता है ५५०
भणकी=झनक उठी ४६२
भणी=को, से, लिये ७६, ६०
भत्ति=भाँति ६१
भमंतउ=घूमता हुआ १३५
भमंता=भ्रमण करते हुए १२४
भमर=भ्रमर ७३, ११६, ४५५, ४७४ ५५०, ५६१
भमुहाँ=भौहों ४६५
भरइ=भरता है, (संदेशा) कहता है १८२

भरखमा=सहनशील ५६३
भरण=भरनेवाला ४७
भरम=भ्रमपूर्ण बात ४६७
भरिस्याँ=भरेंगे ५२२
भरेइ=भरता है १३७, ३३७, ५९०
भरेसी=भरेगा ३६१
भर्यउ=भरा हुआ २००
भल = भलेही ६३१
भलमाणस=भलामानस ११४
भला=भले, अच्छे २५७, २५८, ५८३, ६६३
भली=ठीक ६२७
भलेरउ=भला, भले (ऊँट) का (जाया) ३१२
भळहळइ=झिलमिलाता है ४८०
भळाया=सौंपा ६२५
भाँजइ=टूटे, दूर हो २३८। मिटती है ६६१
भाँजण=दूर करने, तोड़ने ६१६
भाँणी=भावती ७७
भागइ = भाँज दिया, खिन्न कर दिया ४३६
भागउ=खीझ गया ४४१। मिटा ६७१
भाजइ=दूर होता है ६६०
भाद्रवउ=भादवा २५०
भाय=भाई, भाव १२४। भाड़, भट्ठी १६३
भारथ=लड़ाई ६३६
भावइँ=चाहे १७१
भी = फिर १८२, २०२, ५६५
भीगा=भीगता हूँ २७२
भीजइ=भीगता है ४३, २४४
भीजूँ=भीगती हूँ ४३
भीति=भीत २३७
भीनी=भीगी हुई १६०
भीभळ=विह्वल २२६
भीसुर=दीप्तिमान् ४७१
भुँइ, भुइँ=भूमि, फासला ४८५, ४६६ ४६७ इ०।
भुयंग=भुजंग ५०४, ६०८
भुयंगि=भुजंग (ने) २३९
भुयंगो=सर्प ५७७
भुयगिग=भुजंग ६०१
भूरा=भूरे रंग का ४६८
भूलउ=भूला हुआ २२६
भेजिया=भेजा ६१६
भेदंती=भेदती हुई १९१, ५२१
भेदक=भेद जाननेवाला १०४
भेळा=एकत्र ३३७, ६०७
भेळिया = धावा किया ५६६
भोग=भोग ५६३। भाग १२१
भोगवूँ=भोगता हूँ १७०
भोळे=भ्रम ४७८
भ्रति=भ्रांति २३६

म

मं = मत ६४८
मंगता=याचक १०३
मंगळ=मंगल गीत ६५१
मँगावियउ=मँगवाया ३२६

मंझ=मध्य, में ५६, ८६, ४१४, ४२०, ४७४, ६५८

मंझि=मध्य में, में ५७, ५९८

मंडळे=मंडल में, राज्य में ४२२

मंडव=मंडप, नृत्य २६३

मंडियउ=बना १८८

मंत्रे = मंत्रित करके ६२१

मंद = मद्य, मदिरा २६४

मंस=मांस, मांसल ४६१

म = मत, नहीं, न ४७, ४८, १५६, १७५, २६६, २७८, ३०५, ४३४, ४४०, ४५६, ४६७, ४८२, ४९२, ४६४, ५६१, ६१६, ६४७-६४६, ६५८, ६५६

मइँ=मैंने १६, ३०, ३२, ६४, ३६२, ४५५, ५१०, । मैं ३३ । मुझसे २६१ । में १९, ७८, १६५, २२७, ५४४, ५५६, ५६९, ६१६, ६२०, ६३०

मइँगळ=मदकल, हाथी ५५४

मइ=में ५४८

मउर = मौर, मंजरी २७१

मउरियउ=मुकुलित या मंजरीयुक्त हुआ १२०

मख्ख=मधु, शहद ४७०

मगरि=पीठ पर ३१

मग्ग=मार्ग २०५, ३८४

मज्ञीठाँ=मजीठों, मंजिष्ठा ५६३

मझे=मध्ये, में ५७७

मण=मन, चालीस सेर ४४५

मतवाळा=मद्यप, शराबी ४१८

मति=बुद्धि, विचार १८७, ४५१ । मत, नहीं ३१, ५०२, ५०३ । कहीं न ३१

मथ्थइ=ऊपर ३९०, ३६१, ६३१

मधुरइ=धीमे ५०

मनइ=मन से

मनगमता=मनोवांछित, मन को अच्छा लगनेवाला ४२७

मनगरवी=बड़े मनवाली ४५२

मनह=मनसे १३८ । मन के २१३ । मनमें २१७, २३२, ६२४, ६३७

मनाँ=मनों को, मन में ६८ । मनों से, मन से १६८

मनावण=मनाने के लिये ३६६

मनि=मन में ६०, ६७, १७१, २०१, २०८, ३१६, ३२२, ५४७, ५५१, ६२२

मनुहरि=मनोहर ४८१

मनुहारि=आग्रह करके ६२६

मने=मुझे ५११

मन्न=मन ८२, ४३६, ४४१, ५७२

मयंद=मृगेंद्र, सिंह ४५५

मयण=मदन, काम ३००

मयमंद=मदमत्त ५६६

मरंत=मरता है ६१८

मरजीवउ=पनडुब्बा २३१

मराळि=हंस, हंसिनी ४६०

मराविसूँ=मराऊँगी ५१४

मरि जाइ=मर जावे, मर जायगा ३२१

मरिस्यउँ=मरूँगी १४३

मरेस=मरूँगा १५१

मरेसि=मरूँगा ६५६
मरेसी=मरेगा १४६, १५०
मरेहि=मरता है १८४
मल्हपंत=जाता है चलता है ६७
मल्हपंति=चलती है ५३६
मल्हपइ=चलता है ४६१
मल्हाया=गाया १६५
मल्हार=मलार राग १८८
मळेहि=मलता है ३७८, ३७६
मस=मसी, स्याही १४०
मसकत=महकता हुआ उड़ता है ४७६
मसांण=श्माशन ३५२
मसि = मसी, स्याही, कोयला, १४१ १८०, ५७२
महकाइ=महकता है ६००
महकी=सुगंधित हो उठी ४६८
महक = महक ४०६
महकियाँ = महके १६०
महमहइ = महकता है ६०० (ज)
महल=महिला, स्त्री ४४०
महलाँ = महलों
महाघण=प्रलयकालीन मेघ १५
महाजनि=गुरुजन (ने) १५६
महारस=नशा ३००
महिराँण=समुद्र २११
महिलाँ=महिलाओं ४५१
महीँ=में ८८
माँ=में ४१६, ६७४
माँइ=में, भीतर ४१३
माँगण=माँगनेवाले, याचक १८६
माँगणगारा=याचक १०२
माँगणहार=याचक, जाति विशेष १०२ १०४, १८६, १६४
माँगणहाराँ=याचकों (को) २०९, २१०
माँगणाँ=याचकों (को) ९३
माँगळोर=स्थान विशेष ३११
माँगीताँगी=माँगी हुई ७०
माँजिणउ=मज्जन, स्नान ५३५
माँझ=मध्य, में २७२, ४६१
माँझिम=मध्य ५७, २७८, ५०५, ५२५
माँडि=बनाकर, सजाकर ३२६
माँण ने=उपभोग करो न ४४७
माँनसर = मानस सरोवर ६७३ (झ)
माँनसरांह=मानस सरोवर में ५५२
मा=मत ८
माइ=समाता है २६, २६६, ५०६, ५२६
माई=हे माँ २६३
मागरवाळ=याचक १८४
मागि = मार्ग १६
माठ = मष्ट, चुप ३२१, ४११
माठि = मष्ट, चुप ३४
माणस=मनुष्य ६५, २२०, २८१
माणसाँ = मनुष्यों १८५, ४०७, ४४५ ६५५
मात=माता ३३४

माथउ=माथा, सिर २८३, ५११
माथि=माथे या सिर में २१६
माय = माई, हे माँ ३८८
मार = (तू) मार ६३३
मारइ=मारता है ६६ । मारण करता है ४७५
मारवण = मारवणी, काव्य की नायिका का नाम ३००
मारवणी=मारवणी, काव्य की नायिका का नाम १२, ६०, ६७, २४३, ४४८, ४६३, ५२३, ५३६, ५६७, ६१७, ६३३, ६५२, ६५३, ६६३, ६७०, ६७२
मारवी=मारवणी ४७, ४८, ४४६, ४६८, ५५१, ६२२, ६४७
मारि = मार ६४७
मारिजइ=मारा जाता है ६३२
मारिया = मारे ५९१
मारुई=मारवणी ८०, ४५१, ४५९, ४७०, ४७३, ४६२, ५५४, ६०१, ६३८, ६३९
मारुवणी = मारवणी ५, १८, ६०, ९६, १०६, १९७, २१०, ४६४, ५६१
मारुवाँ=मारू या मारवाड़ देश के निवासियों (को) ६५८, ६५६
मारुवी = मारवणी १४, ९१, १९५, ४५८, ४६५, ४६७, ४६६, ५४४, ५६२, ६२०
मारू = मॉड़ नामक रागिनी १०६
मारू = मारवणी १०, ११, १७, १६, २४, ३७, ७६-७६, ८२-८६, १०१ १०६, १०७, ११०, १५७, २०६, २०८, २१०, २३८, ३०७, ३१७, ४११, ४१४, ४३७, ४४०, ४४२, ४५४, ४५५, ४६१, ४६६, ४७१, ४७२, ४७४, ४७५, ४७६, ४७८, ४८२, ४८६-४८६, ४६३, ५०१, ५२७, ५३५, ५३७-५३६, ५४३, ५४५, ५५०, ५६७, ५६६, ६११-६१४, ६१७, ६२३, ६२६, ६३४, ६३६, ६४२, ६४६, ६५४, ६६०, ६६३, ६७१, ६७२
मारू = मारवाड़, मरुस्थल देश २५०, २५१, ४५७, ४८३, ४८५, ६६६-६६८, ६७०
मारेह = मारता है, पीड़ा करता है २६५
मारेह = मार ६४९
मारेहि=मार ६४८
माल = संपत्ति, धन २५४
माळव = मालवा ८४, ६६३, ६७२
माळवणि=मालवणी, काव्य की उप-नायिका २१७, २६२
माळवणी=मालवणी, काव्यकी उप-नायिका ६६, ९७, १८५, २१४, २२१, २२६, २३६, २४२, २७४-२७६, २७८, २१६, ३१७, ४२३, ६५२, ६५४

माळवणीह=मालवणी ६४
माळविण=मालवणी २६६
माळवी = मालवणी २३२, २४०
माल्हवणी = मालवणी २२४
मावइ समाता है ३५८
माह=माघ महीना ३६०
मित्त=मित्र ६६, १७१
मिलउँली=मिलूँगी ४५
मिलण=मिलने के लिये ५३५। मिलना ५९४
मिलावइ = मिलावे, मिलवाता है ३१२, ५१५
मिलियत = मिलता है ५८३
मिलियाँ = मिले ६७०
मिलिया = मिले ५३२, ५३४, ५५३, ५५७, ५८४
मिलिसि = (तू) मिलता है, मिलेगा १५७, २७३
मिलूंली=मिलूँगी ४६
मिलेस=मिलना (आज्ञा) २०७
मिलेसी=मिलेगा १६१
मिल्यउ, ०ळ्यउ = मिला १४, २४, ८४, ८५, ६४६
मिल्याँ=मिलीं, मिली हुई १५१
मिल्या=मिले १८५, ५०२, ५०३, ५३०, ५६०, ५८१
मिळइ=मिले, मिलता है, मिलेगा ११३, ११५, ११६, ११८, ११६, १२४, १३५
मिळई=मिलेगा ४९३
मिळउँ=मिलूँ ६२
मिळस्याँ=हम मिलेंगे ३४७
मिळि=मिलकर ६२
मिळियाँ=मिले, मिलने पर १७२
मिळियाँह=मिले, मिलने पर-० से ३६८
मिळिवा=मिलने के लिये २३८
मिळीजइ=मिला जाय, मिलिए ७२, २११, २१२
मिळेवउ = मिलन ४२२
मिस=बहाना १४५
मिसि=बहाने (से) १८३, ५४
मिहर=मेहर, कृपा ३२५
मीठउ=मीठा ३५६
मीठा=मीठे ३९०, ४७०, ४८४, ६६७
मीठाबोला=मीठे बोलनेवाले ४८५, ६६८
मुंध=मुग्धा, प्रिया ४३६
मुँधा=मुग्धा २७२
मुइय=मरी २०६
मुई=मरी, मरी हुई, मर गई ३६८, ४०३, ६०६
मुकळाइ=गौना करवाकर ५६५
मुक्कइ=छोड़ता है, रखता है २५७, २६२
मुझ=मेरा ४९, १३६, १८१, ५४७, ६४७, ६४८। मुझे ५०३, ५०३
मुझसूँ=मुझसे २१८
मुज्झ=मुझे, मेरा ७५, २३६ ३२८, ३६८

मुग्ध=मुग्धा १५-१७, १७४, ५३३
मुया=मर गए १०८
मुलताणी=मुलतान की २२६
मुळकत=मुसकुराते ५४२
मुळक्यउ=मुसकुराया ३९४
मुवाँह=मरने पर ६५५
मुहंगा=महँगे २२५
मुहर=मोहर, सिक्काविशेष ४८३
मुहरी=ऊँट की बाग ६२६
मुहा=मुँहवाले २२७
मूँ=मेरा ४३२
मूँकती = छोड़ती १६६
मूँक्या=छोड़े ३६, १३८
मूँछाँ=मूँछों ५८५
मूँठ = मुट्ठी २१२
मूँदही=बंद करता है ५५८
मूँध=मुग्धा १४६, २८७, ३१२, ३१५, ५००
मूई = मर गई ४०४
मूकउँ = छोड़ूँ, मारूँ ३८६
मूक्यउ=छोड़ा ६०
मूक्या = छोड़े ३६०
मूठड़ियाँह = मुट्ठियाँ ३६६
मूठि=मुट्ठी ३६१, ४१६
मूरखाँ=मूर्खों ३३२
मूरिख=मूर्ख ५६८
मृगरथ=चंद्रमा का मृगों का रथ ५७०
मृगपति = चंद्रमा ४६६
मृगमद=कस्तूरी ४६६
मृगरिपु = सिंह ४६६
मृगलोयणी = मृगलोचनी ४७६
मेड़ी = अटारी ४२
मेरा=मेरे ३३
मेलउ = मिलो, मिलन ४०७
मेलाँह=भेजें २२४
मेलि=छोड़कर ६१०
मेली=छोड़ी ३२३
मेल्हूँ = मिलाऊँ ३१५
मेल्ह=छोड़, भेज १६३
मेल्हंत=छोड़ता है २४७
मेल्हइ = छोड़ता है, रखता है २४६, २५८, २६७, ६०६ । भेजता है ३३१
मेल्हउ=भेजो १०२
मेल्हणी = छोड़ी ५६१
मेल्हियउ=भेजा ४०१
मेल्हि = छोड़कर २०२ । भेजकर १०६
मेल्हियइ=रखिए, छोड़िए, भेजिए, भूलिए ७२
मेल्ही = रखी, दी ५६६, ५७०, ५८५
मेल्हे=छोड़कर, छोड़ता है, छोड़ा, छोड़, रखकर २०३, २६६, ३४१, ४३४, ५००
मेल्या=भेजे १६६, ६२५
मेळइ=मिलावे ७५
मेळउँ = मिलाऊँ ५००
मेळउ=मिलन ७१
मेळि=मिला (आज्ञा) ५६३

मेळिया=मिलाया ५६६
मेळी=लगी, बंद की ५१
मोइ=मुझे ३१४, ४६७, ५०८, मेरा ५३२
मोकळउ=भेजो १४४
मोकळा=खूब, बहुत ३६५
मोकळि=भेज १०३
मोकळे=भेजना (आज्ञा) १४२
मोजड़ी=जूती ३७५
मोजां=जूतियाँ ? ३९९
मोड़ेह=मोड़ता है ३५५
मोड़ो=देर से ४४३
मोतियाँ=मोती ४७५
मोतीहरि = मुक्ताफल, मोती, मुक्तासरि २३०
मोराँ=मोर २६३
मोलइ=मोल पर १४१
मोहण = मोहन, मुग्धकर ५५४, ६०१
मोहि=मुझे ३७३ । स्वयं ६३५
म्हाँ=हमने ९, २३५ । हमको २७६, २७८
म्हाँकउ=हमारा २४१, ३४८, ४०५
म्हाँका=हमारे ३३२
म्हाँकी=हमारी ६१४
म्हाँजी=हमारी ४३८
म्हाँनूँ=इमें ५९२
म्हाँने=हमें ५९१
म्हाँरी=हमारी ५२५
म्हाकउ=हमारा ३२५
म्हेंने=हमें ५९१, ५९२
म्हे=हम ६३, ६५, १०८, १४६, २७८, २०६, ४०९, ६२८

य

य=पादपूरक अव्यय
यतन्न=यत्न, चेष्टा ३३५
यहु=यह १८१
याई=आकर ५१०
यूँ=यों, ऐसे ११३, ११५, ११६, ११८, ११९, ४३०
यूँही=योंही ३३०
ये=जो १
यो=यह ४१

र

रंग, रँग=प्रेम, क्रीड़ा ८४, ५६५, ५७२, ६५३ । रंग ढंग ६३२ । लाली ४७२ । रंगवाली ४६५ । सुरंग (विशेषण) ३५६
रंगइ = रंग में, आनंद में ५९३
रंगि=प्रेम में, प्रेममग्न ६० । रंगवाली ८७
रंजन=प्रसन्न करनेवाला, प्रसन्नता १६१, ४६७
रइ=के १९७, २९०, ३१९, ६१३
रइणि = रात्रि ५७८
रइबारी=ऊँटों का रखवाला, एक जाति जिसका काम ऊँट चराना होता है ३०६, ३०८, ३३१
रउ=का ४२४, ४५०
रख्ख=रख ११४
रखियउ=रचा ४३७
रचणाँ = रंग रचानेवाले ५६३

रच्यउ=रचा, सजाया ५३५
रड़ी=रोई ३७६
रणेहि=रोती है ३७८
रत=लाल ३४, रात्रि ५७, ऋतु ३०३
रतन्न=रत्न ३६९, ६३८। नेत्र ३६६
रत्तउ=लाल ५७२
रत्तड़ा= ,, ४५६
रत्ता= ,, रक्तवर्ण ४७४, ५७४
रमंतां=रमण करते हुए ५६१
रयबारी=ऊँटों का रखवाला ३१०
रळि मिल्यउ=हिल मिल जाओ ३१८
रळी=आनंद, मौज ३५१, ५४६
रवंद=तेज, जोरों का २८४
रसवेलि=रस की लता ६१०
रहंत=रहती ४१५
रहंति=रहती ७३
रहइ=रहता है ७०, १७३, २५४। रुकता है २७५
रहउँ=रहूँ २६३
रहउ=रहो, रहते हो, रहें २३५, २५४
रहतउ=रहता ९५
रहाँ=हम रुक जाती हैं ६३
रहाइ=रहे, रहा जाय २७९
रहि=रह ४११
रहियउ=रहा ६५, २४३, ३५६, ५६४। रुक गया, रह गया २७५
रहिया=रहे, रह गए, रुक गए, थक गए, हार गए २७६, ६१५, ६७४
रहियाह=रहे ११३, २४१
रहिसि=रहता है २७३
रहु रहु=रहो रहो, बस बस ३११
रहेस=रह जा ३२७
रहेसि=रहूँ, रह जाऊँ ६५६
रहेह=रह जा ३१७
रह्यउ=रहा २७४, ३७३
रह्यां=रहने से २५२
रह्या=रहे १६५
रांगां=रानों से ४६२
रांणी=रानी ४, ६, ७, ९, ७७, ७८, १००, १०२, ५२७
रा=का, के ४२, १०३, ३३६, ४४२, ५८५
राइ=राजा ८०
राउ=" ४
राऊ=" १
राखइ=रखता है ५४७। रखे, रोके ३४८
राखउ=बचाओ ३३२
राखण=रखना, रोकना ८०, ३२७
राखती=रखती ४१६
राखिजइ=रखी जानी चाहिए २८७, ४५३। रोक लीजिए १०३
राखियउ=रखा, रोका १०४, ३३१
राखिया=रोके हुए २३५
राखी=रखी ११
राखीयउ=रखा ३३६
राखे=रखता है ३३०
रागां=मोह, रानों में ६२७
राज=आप ८, ११८, ६४४। राज्य १७६
राजदुआरि=राजद्वार में ३४५

राजदुवारइ=राजद्वार में ८४
राजदुवारि = राजमहल में ९५
राजवियाँ=राजाओं, राजवंशियों में ३
राजाँन=राजा लोग ८५
राजिंद=स्वामी, राजा, पति ३५०
राजि=आप ४०४
राज्यँद=राजन्, प्रियतम ११५, २५४
रात=रात्रि ३६४, ४६०, ५०१, ५२५
रातइ=रात को ३७७
राता = रक्त वर्ण, लाल ३६६
रात्यूँ = रातोंरात १८६
रायंगण = राजांगण, राजमहल का आँगन ८६
राय = राजा ६०, १००
रायजादी=राजकुमारी ५४०
राळि = बाँग ५८५
राव = राजा ५२
रावळा=राजमहल के अन्तःपुर ३
राह = राहु ४९६
रिउ=का ४५०
रिठ=शीत २५७
रिडु = दुख, कष्ट ६६०
रिति = ऋतु में २५३, २६६, २७६, २८१
रितु=ऋतु ४१
रिमझिम = छमाछम आवाज ५८६
री = की ६१, १३५, १५०, २७४, २८०, २९१, ३३४, ४१८, ४५०, ५३९
रीझवइ = रिझाता है १०२
रीझी=प्रसन्न हुई ४
रीठ=कड़ा, अत्यंत तीक्ष्ण २६१
रीस = रोष, क्रोध २१८, ५९२
रुत=ऋतु १४५
रुति=ऋतु २४६, २४७, २४९, २५२, २५६, २६०, २७४, ५६५
रुत्ति = ऋतु २७७
रुळियाइत = आनंदित ६७१
रूँआळियाँ=रूपमयी ४८२
रूँख = पेड़ १५८, ४३७, ६६१
रूँन-०नी=रोई १५६, ३७७
रूअड़उ = अच्छा ३२२
रूखड़उ = वृक्ष ५५५
रूड़ा=भले ११४
रूनी = रोई ३७६
रूपकउ=चाँदी (का गहना) ४६४
रे = अरे ४६, ३३२, ३३४
रेस = लिये २६४
रेह=रेखा ३१, ५७४
रै=के ५८६, ५६१
रोइ = रोकर ५०२, ५१०
रोकियउ=रुक गया=३८१
रोवहियाँह = रोते हैं, रोए २०३
रोही=उजाड़, जंगल ५६८, ६३२ (क, ख)
रौ=का ५८२

ल

लंक=लचकीली, बाँकी ४५४। कमर ४६०, ४६१
लंकी = कटिवाली ८७
लंकि = कमर ६३६

लंघण=लंघन, उपवास ४३१
लंघियउ=लाँघ गया, लाँघा ६४७
लंघिया=लाँघ दिया ६४८
लंघी = उलाँघकर ६२
लंछण=दोष, लांछन ४०२
लंबउ=लंबा ३८४
लंबावइ=द्रुत करता है (?) ४१०
लइ=लेकर ३६, ११५, ४३७। ले ८८, १२०, १२१, १२२
लकड़ियेह=छड़ी से ५६१
लक्ख=लाख ४५८
लख=देख, समझ १११
लखण = लक्षण ४६९
लग=तक १२३, १२५-१३४, २७३, २७४, ४२०, ५९४
लगइ=लगता है २५५। लगातार, निरंतर ३६४। तक ४२०
लगाइ=लगाता है ६३४
लगाई=लगाकर ५६६
लगाड़ियाँ=लगाया ३६६
लगि=तक १२०, १२१, १२२
लगे=लगकर ७४
लग्गइ=लगता है ६८। लगते ही ४७१
लग्गसी=लगेगा, छुएगा ७४
लग्गा=लगा २०। लगे २००
लग्गि=लगकर ५१२
लग्गी=लगी ३२१
लग्गे=लगते ही ४७२
लगाइ = लगाकर ७३
लजावण=लज्जित करने ३७३
लज्ज = लगाम (नकेल) ३१२, ५००
लज्जि = लज्जित हो ५०
लड़ंग=घोड़ा २२७
लडाइ=लाड़ प्यार करके ४१७
लब्ध=ली, पाया १६, ३८१, ६०९
लबथबती=डगमगाकर ५०४
लबूकी=डहडही ३६०
लल्लउ = 'ल'कार, 'ल'वर्ण १४२
लवइ=बोलता है ५२०
लवंतउ=बोलता हुआ ३४
लहंत=लेता है ८३
लह=ले २५
लहइ=लेता है, ले १११। पावेगा ४२८
लहकी=लहलहाई ३६० (ज. थ.)
लहक = झपटकर ३७२
लहर = तरंग, लहर २९८, ६१२
लहरी=लहरें ५५६
लहाँ = हम पावें ३२३
लहाँइ = पाता है, लेता है २८०। पाती, लेती ३७०
लहि = लेकर, देखकर ५०१
लहिरी = लहरें ३
लहिस=पावोगे ६२६
लहुड़ी = छोटी ६१३ (न)
लहेस=दूँगा ७०। पावेगा १७८
लहेसि=पाओगे ४२६
लँबा=लंबे २०५
लँबी=लंबी ४५, २७१, ३८४, ४१०
लाइ=लगाती है ५०४। लाकर ५८१

लाख पसाव=दान-विशेष जिसमें लाख का दान किया जाता है ७४ (देखो-टिप्पणी)

लाखाँ=लाखो ९३

लाखीणा=बहुमूल्य ४३३

लाखे=लाखों २२७, २३३, ३७०

लागंत=लगता है २६७, २६८

लागइ=लगती है ४१२, ४५८

लागउ=लगा (झगड़ा) २९७। लगा हुआ ६४२

लागा=लगा ३८। लगे हैं ६४८

लागि=लगी ४१५

लागी=लगकर १५२। लगी ३७४, ५४१। लग गई ५०२, ५०३

लागे=लगता है २४५, ३९६

लागो=लगा ३००, ३५९

लाज=लज्जा ३२५, ३८४। लगाम ३४६, ३४८, ४४७

लाड = लाड़ प्यार ४१७

लापसी=लपसी ५८७

लाभे=प्राप्त हो सकती है ४७७

लाय = लाता है ४७२

लिखताँ = लिखते हुए १४१

लिखि दे=लिख दे ६५

लियंति=बिताता है ५३८

लियइ=लिये, कारण २४६। लेकर, लेती है २६८

लियउ=लो १२१

लियाँ=लिये हुए

लिहइ = लिखती है ५७७

लीजइ=छीन ली जाती है ६३२

लीध = लिया १८७

लीधी = ली ५७१

लीय=लेता है १५२

लीया=ले लिया ५७१

लीहटी=रेखा १३७

लुडंदउ=लुटता हुआ, शीघ्र ३८७ (च)

लुब्ध, लुब्धी=लुब्ध १५, १७, २०६

लुबधा=प्रेम-लुब्ध ५६२

लुभाइ = लुभाकर २५४

लूँगे=लवंग की ५९१

लेखणहार=लिखनेवाला १४०

लेखि=लेख २७३

लेटियउ = लेटा ५००

लेसि=लेता है, ग्रहण करता है १५७। लेगा, पावेगा १७७। लूँगा २२५

लेस्याँ=लेंगे हम २२७

लैकार=लयपूर्ण ध्वनि ६६४

लोइ=लोग, लोक ७, १५६, २१३, ४०२, ४८५, ६६८

लोद्र=देश-विशेष, जैसलमेर १९०

लोपाँ=हम उल्लंघन करें ३२३

लोर=टेर, शब्द ३०, ३१, ३२

ल्याव=ला १०१

ल्यावइ=लावें १०२

व

वखाँण=वर्णन ६७२

वंन्न = वर्ण ४६४

वइठी = बैठी ५४५

वइराग=वैराग्य, विरक्ति, विकलता १७१

वइरी=वैरी २८५

वइसइ=बैठता, बैठे ११६

वउळाइ=भेज ३७१

वउळावी=भेजकर, पहुँचा कर ५४२

वउळावो=बिताओ ६३१

वउळिया=पार किया, लाँघा ३८५

वग्ग=बाग, लगाम ३२४। शाला, वर्ग, झुंड, टोला ३०७, ३३३

वचन्न=वचन ३३५

वचार=विचार ४८१

वचाळइ=बीच में ४३५

वज्जउ=चलो, बहो ७४

वज्जियउ=चला, बहने लगा २६७

वट्ट=मार्ग ४२४, ४४६

वडमन्न=विशाल हृदयवाला, महामना २८५

वण = वन २६५

वणइ=बनता है ६१

वणराइ=वनराजि, वनखंड ४६८

वणी=शोभित हुई ४६६

वणे=वन में २५३

वणेहि = ,, ५४

वतक = मद्य की सुराही ४१८

वत्त=बात, हाल ७६, २१७

वदन्नियाँ = वदनवाली, मुखवाली ६६८

वदेस=विदेश १७८

वधाइयाँ=बधाइयाँ ७५

वधाँमणाँ = बधावे ५३२, ५५७, ५५६

वध्यो = बड़ा ५४३

वनखँड=वनराजि, जंगल का भाग २८४, ४१६

वनि=वन में १२८

वयट्ठउ=बैठा ५६१

वयणु=वचन २५, १६८, ४११, ४१२

वयणाँ=वचनों ६२१

वयणे=कहने से २७५

वयरी=वैरी २६१

वर=पति २४। सुन्दर ४६१। भले ही ६५६

वरख = बरस कर ५६५

वरखा=वर्षा २७४, २७६, ५६५

वरग=(ऊँटों की) शाला ३१६

वरणउ=वर्ण ५६४

वरणा=वर्णवाले ६५७

वरदळ=धूमधाम से, श्रेष्ठ कुल १०

वरन्न = वर्ण रंग ४७५

वरस = वर्ष ९१, ४५०

वरसउ=बरसा १२५

वरसाँ=वर्षों ६१, ४५०

वरसाळइ=वर्षा ऋतु में २७७

वरसि=बरसकर १८१, २६७

वर्ण = रंग ८७

वलण=चलना २६४

वलावण=बिताने ६३१

वल्लणहार = चलनेवाले ३७४

वल्लहा=प्रियतम, प्यारे, प्राणवल्लभ २३, १५५, २४७, २५५, २५६, २६१, २६२, ३७८, ३७६, ४१८

वल्ले = चले गए ३७४

वळंतइ=जलते समय, बलते समय ४६८, ४६६
वळइ=लौट चले (विधि) ४४४
वळउ=आओ ६१४
वळती=लौटते, उत्तर में ६६३
वळाव्यउ=भेज दिया, चला दिया ३६०
वळि=फिर १५३, २३६, ३६७, ४८६ ५१०, ५५६, ६४२ । बलिहार होना ५३०
वळियाँह=लौट आई १५३
वळिहारी=बलिहार होना १७६
वळी=लौटी २७४
वळे=फिर ३४७, ४२२
वळ्यउ=लौटा ६५०
ववळाइ=भेजकर ३७२
वसइ=रहता है, बसता है ७४, १२७, १२८, १७५, २०१, ५१२, ५१५, ५२०
वसत्त=वस्तु ५०६
वसाळ=भेड़ ४३५
वसेस=बसते हैं ३६५
वहइ=बहता है, जाता है, चलता है ६०, ३३८, ४२४
वहउ=चलते हो ६२८
वहताँ=बहते हुए, चलते हुए ३३८
वहाँ=चलें, बढ़ें ४४९
वहि=चलकर ४९८
वहिलउ=शीघ्र, जल्दी १४२, १५५
वहिस्याँ=हम चलेंगे १०७
वहेसि=बनाऊँगी ६२, चलेंगी ६३
वहेसी=बहेगा, चलेगा १४७, ३२४
वांकड़मुहाँ=वक्रमुख, बाँके मुखवाले २२७
वाँचण=बाँचने को, पढ़ने को १४४
वाँण=बाण ४१२
वाँणि=वाणी ४६०
वाँध्यउ=बाँधा ३६२
वाँसइ=पास ३६८ । पीछे ६२५
वाइ=हवा, वायु ५८, २४०, २५७ । बजती है, चलती है २७७
वाइस=कौवा १५७
वाउ=वायु ७४, २६७
वाग=बागडोर, लगाम ३४५, ४११
वागरवाळ=ढाढी, याचक १०५, १८७
वाजंती=बजती हुई ५४०
वाजइ=बजता है २६६, २९८, ३५६ । बज, चल १२६
वाज्यउ=बजा ३५१
वाजा=बाजे ३५६
वाज्या=बजे ३४६, ३५२
वाटइ=मार्ग पर ६०, ३५६
वाटड़ी=बाट, मार्ग ३५६
वाटली=पात्र ५०५
वाटि=बत्ती ६०६
वाड़ियाँ=वाटिकाओं में ५८८
वाड़ी=बाड़ी, वाटिका ७३ । घर ३८३, ५३२
वाधाऊ=बधाई देनेवाले ५१९
वानी=वर्ण के ३४३
वाय=वायु २६६, ४७२

वार=बार, समय, दफा ३७, ७०, ८४ इत्यादि। कार्य ३६८
वाराँ=बार, दफे ३६६
वारियउ=रोका हुआ २७३
वालँभ=प्रियतम, वल्लभ १६७, १७१, २१५, २८६, ५७६, ६०१
वालरे=चले गए ३८४
वालहउ=प्रियतम, वल्लभ १६८
वालहा=हे वल्लभ १६८
वालिभ=वल्लभ, प्रिय १६६
वाळूँ = जलाऊँ १५५
वाव = वायु ३८५, ५५६
वावू=वास ३६१
वासउ=ठहराव, रहना, ठहरना ४६३ ६५८
वासा = गाँव, वास ३६५
वासँदर = वैश्वानर, अग्नि २४४
वाहउ = बाँधो ३१३
वाहळा=नाले १४७, ३३८
वाहळियाँह = नालों में, नदियों में २८७
वाही=वही ६१०
वाहुड़इ = लौटता है, फिरता है ३९१
वाहुड़उ=लौटो ४०४
वाहूँ=बाँधूँ ३१२
विँण=बिना ६०४
वि = दो २४२, ५७५
विखइ=आपत्ति-काल में ७
विखउ=कष्ट १७
विखोड़िया=अप्रशंसा की ६७२
विगतइ = ब्योरेवार ८९
विचइ = बीच में १४७
विचि=बीच में ३१८। बीच के अंग (कटि) में ४६२
विजउरा = बिजौरा ४२६
विजोरियाँ=एक फल-विशेष ५८८
विड़ँग=घोड़ा ? २२७
विडाँड़उ=पराया ६३२
विडाणा=पराए १६५
विण=बिना १५५, १६३, १६८, १७३, २०८, २५५, २६७, ४१७, ६०६
विणट्ठा=विनष्ट हुआ २१६
विणसारया=बिना पूर्ण किए हुए, या विनष्ट ४६३
विणु=बिना ५६६
विद्रम= विद्रुम, मूँगा ४५४
विनउ=वेश, रूप ६२
विन्हें=दोनों २७६
विमणउ=उदास ५४६
विमासि=सोचकर ३१६
विमासियउ=विचारा, सोचा १००, ३०७, ६२४, ६३७। समझाया ४३५
वियापा=व्याप्त ८०, ५६६
विरंग=विरंगा, नीरस ६५४, ६६३
विरंगउ = ,, ,, ४२७
विरतंत=वृत्तांत २०८, ५४७
विरोळियउ=छान डाला, पार किया, खोजा ४३४
विलंबी = आश्रित, लगी, हुई, लिपटी हुई २६६, ३७६

विलखउ=उदास ६१०
विलक्खा=उदास, व्याकुल १७३
विलग्गि=लगकर ६०१
विलगी, विलग्गी=लिपट गई २३८, ५५१, ५५५
विलंबइ=लिपटता है, लगता है २७०
विललंती=विलाप करती हुई १३७, १८२
विललाइ = विलाप करता है २४०
विलसइ=विलास करता है, भोगता है ५६३, ६००
विळकुळियउ = सरसराया, निकला ६००
विलूधउ=विलुब्ध ४५९
विवह=विविध २३४
विस=विष १२७
विसहर=विषधर साँप ३५२, ६०८
विसाइ=खरीदकर २२८
विसारि = भूलकर १३८
विसाल=विशाल ४५८
विह = दोनों ४२२
विहसइ=विकसित होता है ५४६
विहाँगड़े=पक्षी, आकाश (?) ४६५
विहाँण = प्रातःकाल १९२
विहाइ=बीतती है, बिताती है, ७६, ५८१, ५७८
विहाणइ=प्रभात में १०७
विहाय = बीते २५८, २५६
विहावउ = रहो, दिन बिताओ ४२२
विहूँ = दोनों ५८३
विहूणी = विरहित, रहित १६३
वींट=पक्षियों की विष्ठा (?) ५७
वीख=कदम, डग ३८४, ४६४
वीखड़ियाँह=पदचिह्न ३६६, ३६७
वीछड़ी=बिछुड़ गई ५८
वीछुड़ताँ ।। विछुड़ते ३६६, ४०७
वीछुड़ियाँ=बिछुड़ते हुए १७१, ४०३, ५५६
वीज=बिजली, विद्युत् ३१८, ५०८
वीजळ=,, ,, ५४२
वीजळि = बिजली २६०, २६८
वीजळियाँह=बिजलियाँ १६०
वीजळी=बिजली ५४३
वीजी वीजी = दूसरी दूसरी, नए नए ५११
वीजुळियाँ=बिजलियाँ ४४, ४५, ४६, १५७
वीजुळियाँह = बिजलियाँ १६६
वीजुळी = विद्युत् ५२१
वीझण = पंखा २३९
वीझया=हवा की २४०
वीटळी=पगड़ी (वेष्टन) ५००
वीनवइ=विनती करती है २३५, २६३ ३४१, ५४७, ५६७
वीमाँह=विवाह ६
वीर = भाई ५१८
वीसरिसि=भूलता है १५७
वीसारउ=भुलाओ ४०८
वीसारण=भुलानेवाला १६३
वीसारिया=विसार दिया ४२१ । भुलाने से १८०, ६१२
वीसारेह = भूलता है, भूलना १६८

वीसू=एक चारण का नाम ४४७, ४४८, ४८६, ४९०, ५२६
वीहंगड़उ=पक्षी, आकाश (?) ४६४
वीहतउ=डरता हुआ ४०४
वूठउ=बरसे हुए ५५६
वूठा=बरसा ५५६
वूहा=बरसा ५६
वूही = बही; चली ५५
वेऊँ = दोनों, दंपति ५६५
वेगइरउ = शीघ्र १३४
वेगउ=शीघ्र २०७
वेध्याँ=संयुक्त ३२२
वेलड़ी=वल्लरी, वेल ४३३
वेल्हा=वेला, समय ५६०
वेल=सागर-वेला ५६२। समय ६२३
वेळत=तड़पते हुए १६२
वेळाँ=समय ३८१
वेळा= ,, १७६, ५२२, ६०७
वेस=वेश, वस्त्र १०८, ३०२, ४४३
वेहा=वेधा है ५४६
वै = वह ३८३
वैण = वाणी, वचन ४३८
वोलाविया=बुलाया १६४
व्रच्छ = वृक्ष २६९
व्रन=वर्ण ८८, ४६३, ५७२, ६३८
व्हाला = प्यारे, प्रियजन ६०४

स

संकाणी=शंकित हुई ५४७
संकोची = संकुचित हुई २१५
संकोड़ा=संकुचित होनेवाली २३२
संग्रही = पकड़ा ५७१
संजोगणी = पतिसंयुक्ता, संयोगिनी २६८
संजोगे = संयोग से १
संझ = संध्या ४६६
संझा = संध्या ५८९
संत=रहती, होती (?) ४१६
संदउ = के, का ६१, ५५६
संदावेस = संदेशा कहूँगा ४४२
संदियाँ = की ५५६
संदी=की ६३०, ६५६
संदेसउ = संदेशा ६५, १३८, १४३
संदेसड़इ = संदेश (कहना) १७९, १२७-३०, १३२, १३७। समाचारों से ४८६
संदेसड़उ = संदेश ६४, ११२, ११४, ११७, १२०-२३, १२५, १२६, १३१, १३३, १३४, १३६, ३४८
संदेसड़ा = संदेशे ६६, ८२, ६९, ११०, १४१, १८२, ३४४
संदेसाँ=संदेशों (से) १०६, ११९
संदेसा = संदेशे १०७, १४०, १४४, १८३, १८४
संदेसे = संदेश से २००
संधाँण=शरीर की संधियाँ ३४६
संधियउ=संधान किया ६७
संपजइ=मिल जाय ४५६
संपजे=संचित होती है १७८
संपहुता=आ पहुँचे ५३०
संबळ=भोजन १३३
संभरइ=स्मरण करता है, याद आता है २३, ६७, ३८२। सुनता है १९८

संभरयउ=स्मरण किया १८
संभरया = याद किया ५४, ५५
संभळि=सुन ८०, ५४७
संभळी = सुनी ६४२
संभार=सम्हालकर, सम्हाल ६७, १४८
संभारिया=स्मृत, याद किये हुए १८०
संभारयउ=याद किया २४३
संभाळ, संभाळ=याद कर करके ३८३
सँभाळूँ = सम्हालूँगा ३२०
संभाळेह=सम्हाला ६३७
संभाळै = सम्हालती है ५८५
संमुहा = सामने, सम्मुख ७३
स=वह, सो ३३, १४७, २८६, २८७। अवधारणसूचक व पादपूरक अव्यय ११, १९, १४४, १७४, ३४१,४२६ ४३०, ४८१
सउ = सो, वह २४, २०१। सौ संख्या १८६, १९१, २३०, ५१५, ५२०
सउसहसे=सौ सहस्त्र, एक लाख २३०
सकइ=सके, सकता है १६७
सकती=कसकर, सख्ती से ५००
सकूँ = सकता हूँ ४०४
सखराँह = शिखरों पर २७१
सखिए = सखियाँ, सखियों २३, २६, ५३२, ५३५। हे सखी ५२६
सखियाँ = सखियों ५०१
सख्ख=साख ६७१
सगळँ=सबके ४०
सगळा = सब ६५४, ६६३
सगळाइ=सभी ४७१
सगळी=सब, समस्त ४४६
सगाइ=संबंध, विवाह-संबंध १
सगुण = गुणवान् ३८६, ४०५, ६७२
सगुणाँ = गुणवानों (के) ५६८
सगुणी = गुणवती ३४४, ४५६
सघण=सघन ५०८
सघळी=सारी १७८
सचेती = सचेत, सावधान २४०, ६२१, ६२२
सचउ=सचा २३८
सज = सज्जित ३४३
सजण=सज्जन, प्रियतम ५६०
सजळ=स्वास्थ्यप्रद ४८५। जलता हुआ, उज्ज्वल ५०६। स्वस्थ, ताजा ६६८
सजि=सजाकर ३४६, ३६४
सज्जण=(सज्जन) प्रियतम २३, २५ ५६, ५६, ६१, ६८, ७०, ७३, ७४, १५८, १७५, ५५ १७६, १७६, १६६, २१६, २३४, ३१८, ४२०, ४२१, ५०६, ५३०, ५३२, ५३३, ५३४, ५४१, ५५३, ५६३, ५८१
सज्जणाँ=प्रियतम, ०से, ०की, ०का ०को, ०ने २०, १६२, १७६, २०४, २०५, ४१७, ४२२, ५१६। प्रेमी, ०से ४८७, ५३४। प्रेमियों, ०के १९१, ५२१। प्रियतमा ४०६
सज्जणा=प्रियतम १५४, १७२। ०की २०४
सज्जणिया=प्रियतम १४८, ३७१, ३७२

सज्जणे=प्रिय ने ३९१, ३६२
सज्जन=प्रियतम १५३, १७६, २०६, ५१३
सज्जना = प्रियतम ४५, ४६, ३७६
सझि=सजाकर २१४
सझिया = सजाए ५७६
सड़सड़ = बेंत से आघात करने का सड़सड़ शब्द ४९२
सत = सौ १८६, ३४०
सत्तम=सातवें ५८८
सथ्थ=साथ ५०१, ६१४, ६२०, ६३० ६३३
सदा=नित्य ६५२
सद्दड़इ=शब्द ३८८
सनमांन = सम्मान ८५
सनेह=प्रेमी, स्नेही ४२ । प्रेम २७६, ५४३
सनेहड़इ=स्नेह से ४१३
सफळा=फलियोंवाले, फलियों सहित ३१६
सबळ = गहरी ३४२
सम्भ = सब ४८७
समंदां=समुद्रों २२, ५७, २८१
समईयइ = समय में ५०८, ५२६
समकि = चौंककर १५१
समझाइ = समझाकर ११७, ३२६, ६१५
समझावइ=समझाता है ६३०
समझावियउ = समझाया ५१५
समथ्थ=समर्थ ६२०
समदाँ=समुद्रों २२
समनेहाँ = समान प्रेमवालों २६१
समर समर=याद कर करके ३८२
समाँणी = समवयस्काएँ ६८
समी=समाई, बसी हुई २२१
समुद्द=समुद्र ३७६
समुंद्र=समुद्र १३१
समै = समय में ५८३
सयण = प्रियतम, (सज्जन) ३८४
सयणाँ = सज्जनों, प्यारों, प्रियतम के, ०को ६६, ३६४, ४११, ५०६, ६७४
सयणे=प्रियतम ने ३८५ । प्रेमियों में ५४३
सयळ=सकल २२०
सयाणे=हे सजनो ५७५ ।
सर = तालाब ४७, ५२, ३८३, ४९५ ५१० । बाण ६७, २५५, ४८४, ६६७ । स्वर ४६० । लड़ियाँ ३६६
सरग्गि=स्वर्ग में १८१
सरजणहार=विधाता ६०७
सरजित्त=संजीवित ५४८
सरढी = ऊँटनी, साँढ़नी ३१५, ५००
सरण=शरण ५७६
सरपणी=सर्पिणी १२५
सरसती=सरस्वती ४५१
सरहर=सरीखी ४५१
सराप=शाप ३२३
सरि=तालाब में ५१ । शर ४८३
सरियाँह = सफल हुए ५२८
सरीखउ=सदृश = ४३२
सरेसी = पार पड़ेगा ३९८

सलूणी = लावण्यवती, सलोनी ३६३
सळ = वल २१६ । शलाका ४६२
सळसळइ = हिलती-डोलती ६०३
सल्ल=शल्य १६१, ३६९, ५२१
सल्लिया सालते रहे ५९
सल्हियाँ = सालीं, व्यथित किया ५६
सव = सौ ५१२ । वही ३०३
सवळी=सब ३२५
सवाद=स्वाद, रस २५२
सवारि=सजाकर ५६५
सवि=सब ३
ससदळ = चंद्रमा ४७६
ससनेही=सच्चे प्रेमी २२, ५८१, ६७४
ससहर=शशधर, चंद्र ३२
ससिहर = शशधर ५७०
सहकार=आम्रवृक्ष ६७३
सहणउ=सहा २६१
सहराँह=शिखरों के १५२
सहस=सहस्र २३०
सहसे=हजारों २३३
सहा=सहनेवाला ३६०
सहाइ=रक्षा, सहायता २७९
सहाव=स्वभाव २७
सहावो=स्वभाव २३४
सहि=सभी ३६८, ५६०
सहिए = सखियों, ० ने ५१५, ५१६
सहित=समेत, साथ ४५५
सहिनांण=चिह्न ३८२, ४४९
सही=सखी ६८ । अवश्य ही २८६ । सभी ५५७
सहीज=निश्चय ही ५१६
सहु = सब ८२, १६९, ४६८, ५१७, ५२८, ६०७, ६१४
सहू=सभी, सब २२१
सहेसि=सहूँगा १५१, ३१८, ४२६
साँझइ=साँझको ५१७
साँझी=संध्या २११, ५२२
सँधाण=उपचार ३३२
साँभरइ=याद आता, स्मरण होता ३७६
साँभळइ = सुनता है ३३७
साँभळि=सुनकर १८४, २०८ । सुनो ६२०, ६५४
साँभळिया=सुना, सुने ६६, ६०५
साँमि = स्वामी, मालिक ३१५, ३२३
साँमुहउ=सामने, सन्मुख, २६१, ३५० ६४३
साँमुही=सामने २४१
साँम्हो=सामने २६६
साँवणि = सावन में २५१
साँवळि=श्यामल बदली ४१५
सा = वह (स्त्री) ११२, २०४, २३६, ३४०, ३५८, ४५३, ५७८, ६१३
साइ=वह ३३७
साइधण = प्रेयसी, प्रियतमा ४८३
साई = बाँग, धाड़, रुदन ३७७, ४०६
साख=फसल ११७ । साक्षी ५७०
साचइ=सत्य ५०६
साचेई = सत्य ही, सचमुच ही २०५

साजण=प्रियतम ५४, ५५, १६४, १६५, ४६४, ५१२, ५५६
साजनिया=प्रियतम ३७५
साजणां=प्रियतम से ५११
साजि=साज-सामान ८१
साटइ=बदले में, सट्टे में ४५८
साटवि्सु = बदले में, खरीदकर ? २३३
साठे=साठ संख्या ६६२
साढिया=साँढनी सवार ८१
साथइ=साथ में ६१७
साथे = साथ में ५६६
साद=शब्द, आवाज २४५, २५२, ३८४, ३८५, ६०५
सामहळि = सामने ५२२
सामुहउ = सन्मुख ३६२
साम्हउ=सामने ४४७
साम्हाँ = सामने, ओर ४०६, ५१६
साय = वह ३५५
सायधण=प्रेयसी ४७७, ५८६
सायर=सागर ६२, ५५६, ६१२
साराँग=मयूर १७४
सार = सुधि, सुरति १६७
सारउ=वश ३२४
सारड़ी=सुधि ६०६
सारस = पक्षी-विशेष ५१, ३८८
सारसड़ी = सारस, पक्षी-विशेष ३८९
सारहली = सार ५६
सारीखी = अनुरूप, सदृश ६, ५६३
सारेह=शिरीष, वृक्ष-विशेष २६५
साल=शल्य, शूल ३०५ । ढोला, साल्हकुमार ४१०
सालई=सालता है ३७५
सालण=सालने, सताने ३९
सालूराँ=दादुर, मेंढक १६८, ५६४
सालूरा=मेंढक १७३
सालूराह = दर्दुर, मेंढक ८
साले=शल्य (के) ? २९९
साल्ह=साल्ह कुमार, ढोला ७७, ७८, १००, १०२, १८४, १८७, १६२, २३१, २४२, ५०८, ५६४, ६१६, ६२५, ६२९, ६५०, ६५२
साल्ह कुँवर=ढोला का नाम १४, २४ ६२, ६३, ५२७, ६१८
साल्ह कुमार = ढोला का दूसरा नाम २७५, ४८९, ५२६
साव=स्वाद १३३
सावण=श्रावण १३३, १४८, १४९, १५१, २६९, ३६८
सास=श्वास ३५८, ६०४, ६०६
सासरइ=ससुराल में ११, ३१९, ५६४
सासरउ=ससुराल ८६
सासरवाड़ि = ससुराल ४३२
सासू = सास ३३५
साहँत=पकड़ते ४१६
साहई = सम्हालता है ४४७
साहिब=स्वामी २८, २६, ११६, ११९, १४९, १७३, २१८, २२६, २३५, ३१७, ३२४, ५१५, ५१६, ५२०, ५२८, ५२६, ५३१, ५३२, ५६२
साहिबा = प्रिय से ४४ । हे प्रियतम ३८, २६६

सिंगार = श्रृंगार २०८, ३६४, ५६५
सिंघी = सिंहनी ३८१
सिंधु=समुद्र १८६, १६०, १६१
सिखाइ=सिखा १०६, १८३
सिणगार=श्रृंगार २१४, ३०३, ३४७, ४८०, ५३६, ५६५, ५७१, ५७६, ५८०, ५८६, ६२३
सिध=सिद्धि ३४०, ४०७
सिध्ध=सिद्ध, योगी २२०
सिध्धावउ=सिधाओ, प्रयाण करो ३४०, ४०७
सियाइ=सुहावनी ४५६
सिर = शिर ३५७ । ऊपर, पर ५४५, ६१६
सिरजियाँ=बनाया ४१४, ४१५
सिरजिया = सिरजा, बनाया ४१६
सिरि = शिर पर ६३६, ६५८, ६५६ । ऊपर, पर, में २८, २४४, ३९७, ४२३ । लड़ी, सुमेर २३०
सिसहर = शशधर, चंद्र १३, १२६
सिहराँ=शिखरों के २६८
सींगण=नरसिंहा ४१६
सींचंती=पानी निकालती ६५६
सींचाण=बाज, पक्षी-विशेष २९७
सीचाणउ=बाज २११, २१२
सींची=सींची गई २६१, ३९२
सी=शीत, सर्दी २७७, २६६, ४३६ । जैसी ४७८
सीख = बिदा १०६, २१०, २७६, २७८, ४०६
सीधा=सरल ५५७
सीय=शीत २८८, २६०
सीयाळइ = शीतकाल २७७
सीळ=शील ४५१
सीह=शीत २८६ । सिंह ४५६
सुं = से ६७, २५२ । उसको ६५७
सुँणे = सुन ४३८
सुंदर = सुंदर ३६४, ४६६, ६०२ । हे सुंदरी ५४६
सुंदरि = सुंदरी २४, ८७, २३८, ३२१; ३६७, ४८१, ५७१, ५७७, ६१७, ६७०, ६७२
सु=पाद-पूरक अव्यय ७९, १०४, २१३, २३३, ४६८, ५६३ । वह, सो ५१६, ५३३ । अच्छा १६७, २२६
सुकच्छ=सुंदर कक्षवाली ४५२
सुकमाळ = सुकुमार ४७६
सुकोमळी=सुकोमल ४५२
सुख्ख=सुख ५४६
सुगंधउ=सुगंधित २२३
सुगंधी=महक ४६८ । सुगंधित ५०५, ५०७
सुगात=सुंदर शरीरवाली ६५२
सुगाळ=सुकाल ११
सुगुण = सुगुणी ६५२
सुगुणी = सद्गुणोंवाली ४५३
सुचंग=अत्यंत सुंदर, बहुत अच्छा ३१०, ४५३, ४६२
सुचीत = मनोहर, सुंदर २७४

सुजाँण=चतुर १४२, १५५, १८४, १६२, ५६५, ५६६, ५६६, ६७२
सुणउ=सुनो ९७
सुणावे=सुनावे ३६८
सुणि=सुन ३१, २३८, ३१४, ३४६, ३६७, ४३१, ४४८, ४९०, ६१९, ६४७, ६४६, ६७०
सुणियउ=सुना १६२
सुणिवा=सुनने को ६६
सुणी=सुनी ५८, १५६, २१७
सुणेसि = सुनूँगी १४५
सुणेसी=सुनोगी ५४४
सुणेह=सुनकर ४४४, ६५०
सुदुर=सुदूर ? ३८५
सुधू=सुकन्या ८४
सुण्या=सुने २५
सुपत्तळ=पतली ४७३
सुपनंतर=स्वप्न में ५१३, ५५७
सुपनंतरि=स्वप्न में १७०
सुपनइँ=स्वप्न में १४
सुपनइ=स्वप्न में ५०२, ५०३
सुपनउ=स्वप्न ५०३, ५५८
सुपना=स्वप्न
सुपनें=स्वप्न में ५५८
सुभराज = शुभराज, आशीर्वचन ४४७ ६४३
सुभाइ=स्वभाव ४५१
सुमर=याद करके १५६
सुया=सुग्गा ३६६
सुरंग=सुंदर, सुहावना, सुरंगा, रसिक ३११, ३५६, ६५४, ६६३
सुरंगइ=सुरंगे २५२
सुरंगउ=सुरंगा ६६६
सुरंगा = सुरंगे, हरे-भरे ५४६
दुरंगी=रँगीली ५३६
सुर=स्वर १८८
सुरत्त = याद, स्मृति १३५
सुरपति=इंद्र ९३
सुरह=सुरभि, सुगंधित द्रव्य ५०५, ५०७
सुरहउ=सुरभि, सुगंध १९०
सुरहि=सुरभित २२३
सुवइ=सोता है ६०८
सुसेत=सुश्वेत, उज्ज्वल ४५७, ६६६
सुहंगा=सस्ते २२६
सुहांमणउ = सुहावना ११०, २४५, २५१, ३०२, ४३२
सुहाँमणा=सुहावने ६५४
सुहावउ=सुहावना ४८५
सुहावा = सुहावने २६८, ५३५
सुहावौ=सुहावना ५८४
सुहिणइ=स्वप्न को ५१५
सुहिणउ=स्वप्न २४, ५०१
सुहिणा=स्वप्न ५१२, ५१४
सूँ=से ६, ५७, ७७, ९२, १३७, १५६, १७३, २१८, २४८, ३४२, ३६२, ५०१, ५४७, ५६४, ६१७, ६२०, ६२६, ६३३। साथ, से ६१८
सूँनउ = सूना ३५४
सूँमर = ऊमर सूमरा ५९७

सू = सो ५३३, ५६०
सूकइ = सूखता है १५८
सूकण = सूखने ३७४
सूका = शुष्क ५३३, ५६०
सूकिया = सूखी २४८
सूकी = सूखी १३५
सूड़उ = सुग्गा ४०२
सूड़ा = हे सुग्गे ३६७, ४०५
सूधी = सीधी-सादी, १०३ (छ)
सूताँ=सोते हुए ३०५, ३०६
सूती = सोई, सोती, सोई थी, सोती हुई १४, ४७, ४८, ५४, ५५, ३४१, ३४२, ३७८, ५०४, ५०५, ५०७, ५१२, ६०१, ६१०
सूधा = सीधे-सादे, सरल ६४०, ६५८
सूना = सूने, शून्य ३५८
सूनी = खाली ५०
सूर=सूर्य ४८६, ५५१, ६४६
सूरिज=सूर्य १३०, ३०१
सूवउ=सुग्गा ४०६
सूवा=हे सुग्गे ३६८, ४०१
सूळी = सूली १६६
से=वह ६७, १६५, २००, ३८०
सेकंताँ=सेकते हुए ३२१
सेकइ=सेकता है २०६
सेजइँ=सेज में ४७, ४८
सेझड़ी=सेज, शय्या १६६
सेरियाँ=गलियों (में) १०९
सेलार=घोड़ों की जाति २२६
सेवंत=सेता, पाता ४१४
सेवार=शैवाल ६६४
सेवियइ=सेवन करना चाहिए २६४
सेहर=शिखर १२८
सैं = हम ४३८
सै=जैसे, से ४६९
सैण = मित्र ४३८
सो=वह १६४, ३०८, ३०९, ३६६, ४२६, ४७२ । सा (परिमाण सूचक) । सौ ५६७
सोइ=वह, वही, उसे, उसी, २३, १११, १७०, ४२६, ४६४, ५१०, ५३२, ५४१
सोऊँ = सोती हूँ ७६, ५११, ५१४
सोग = शोक, दुःख ३५७, ६६५
सोने = सोना ५३९
सोरंभियउ=सुरभित ५५०
सोळ=सोलह संख्या ३६४
सोवँन=सोने का ५९४
सोवन=सुनहला, सोनेके, सोना ८७, २०९, ३४३ । सुहावने ४७१
सोवंन्न = सुवर्ण, सुवर्णमय आभूषण ४६४, ४७५
सोवन्न=सुवर्ण ४६३
सोहड़=सुभट ५६७, ५६६, ६०७
सोहण=स्वप्न ५१०
सोहणा=सपना ५११
सोहणो=सपना ५०६
सोहली=एक आभूषण-विशेष ४६५
सोहागण=सौभाग्यवती ५१०
सोहागिण=सौभाग्यवती, पतिसंयुक्ता २६०, २६१, ६७२
सोहामणइ=सुहावनी २९८

स्यउँ=से ३३२
स्वात=स्वाति नक्षत्र (का जल) १२५, १३२
स्वाति=स्वाति नक्षत्र (का जल) ११६
स्वास=श्वास ५३

ह

हंझ = हंस ४६०, ४७४
हंडिज्जइ=घूमा जाता है, घूमना चाहिए २३४
हंदइ=के ६३०
हंदा = के ५०६
हंसइ=हँसता है ५४१
हंसड़ा=हंस ५५२
हँसताँ=हँसते हुए ५४७
हंसागमणि=हंस की सी गतिवाली २०७
हँस्यउ = हँसा ३९४
ह = पादपूरक अव्यय १३८
हइ=हे, अरे, ४७, ४८, ३७३। है ७१। होकर २६७
हउँ=होऊँ ३१९
हउ हउ=अरे, अरे ३२६
हट्टन-पट्टन=हाट बाजार ४६८ (च, ज. थ)
हणहणिया=हिनहिनाए ६०२
हत्त=हाथ ५०९
हथड़ा = हाथ ४१६
हथियार=शस्त्रास्त्र २४६
हथ्थ=हाथ १६६, ४११
हथ्थड़ा=हाथ १५, १६, २०६, ३६१ ६५७
हमथी=हमसे २३७
हय हय=हे हे ६०७
हर=महादेव, शिवजी ४७७, ६३९। प्रेम, हर्ष आनंद १३८, १३६, हरियाली २६५
हरख्यउ = हर्षित हुआ ५२७, ६५१
हरखियउ=हर्षित हुआ ६७३
हरखिया = हर्षित हुए ५२७, ५६५
हरखी=हर्षित हुई ५२७
हरण=हरनेवाला १६३
हरणाखियाँ=मृगाक्षियाँ २२२
हरणाखी=हरिणाक्षी, मृगनयनी २२८, २६६
हरहार=शिव का हार सर्प ५७८
हरिया=हरे २५२
हरियाळियाँ=हरी हो गईं २५०
हरियाळी=हरियाली की २६०
हलहल=हलचल ६४१
हल्लउँ हल्लउँ=चलता हूँ ३०५
हल्लण=चलना, चलने की बात ३३७
हल्लस्यउ=चलोगे ३०५
हल्लाणउ = चलना, प्रस्थान ३०४
हल्लिवा=चलने ३०४
हळफळ=व्यग्रता, हड़बड़ी ३२१
हळिवइ = धीरे १६६
हवाँ=हों ६५
हवाल=हाल ५३
हसउ=हँसते हो २१८
हसनइ=हँसकर ६११
हसि = हँसकर २२८, ५७०, ५७४,
हसि करि=हँसकर २७८, ५७३

हसि नइ = हँसकर २२१, २२६
हसिसी = हँसेगा ७,
हस्ती = हाथी ११५
हाँण=हानि ६२७
हाँसउ=हँसी ७
हाथ करंत=हाथ में लेते ४१६
हाथाळी = हथेली १५६
हाथि=हाथ में ५०५, ६५६
हाथे = हाथों में ३४६
हारियउ=हारा ५६०
हारिस्यइ = हार जायँगे ४२२
हालंती=चलती है ४७४
हाल्यउ = चला ३७५
हिंडोलण हारि=झकझोरनेवाला ४७
हि=ही, पादपूरक अव्यय ७२, १०८, २०६, ५०२
हित=प्रेम ४१७
हियइ=हृदय में ३६६, ५१४
हियउ = हृदय ६१
हियड़इ=हृदय में १५८, १७५, ३०५ ३६७
हियड़उ=हृदय १९३, ३६०, ३६२ ५२६
हियड़ा=हृदय १६०, ४१६
हियाँह = हृदय से २०३
हिया=हृदय २२, ३०३, ४२२
हियाह=हृदय ५३३
हिये = हृदय में ३५८
हिरणाखी=मृगनयनी २२१, २२६
हिरणी=हरिणी २८२
हिलोर=लहर १६७
हिळूसइ=लालायित होता है ६१
हिव=अब २७६, ३२५, ३४१, ४४०, ४९०, ५९७, ६४६
हिवइ=अब ८
हिवड़उ = हृदय ६११
हिवड़े = हृदय में ६१२
ही=भी, ही २१, ५०, ७४, १११, १४०-१४४, १७५, २००, २०१, २१४, २२५, २२७, २३३, २५७, २५८, २७६, ४०७, ४३०, ६२६
हीजरियाँह=झुरने लगी ३६७
हीण=क्षीण ४६२
हीणउ=हीन, बिना, रहित ५७६
हीयइ=हृदय में ६३३
हीयउ = हृदय ३८६
हीयड़े=हृदय पर ५०६
हीया=हृदय १४३
हीयाह=हृदय में ५३०
हीर=हीरा ४५४
हुं=मैं २३५ । होऊँ ३१८
हुंकारणउ=उत्तर, हुंकार ६११
हुंता=से २०३ । थे ५०६
हुंति=होता, होते ७३, १६३
हुंती=से ४३७ । संभाव्य बात, होनी ४४६
हुँदउ=का ३०७
हुअउ = हुआ ४०, १२१, ४८६
हुई=होवे, होगा, हो रहा है हो जाय १३१, ३४०, ५८४, ५८६, ६२७
हुइ जाइ = हो जाय ५०३
हुइ रह्यउ=हो रहा ४६

हुइस=होगा २७३
हुइ=होगा १४२ । हुई, हो गई १६५ २०८, २४०, ३७२, ४०४, ४३७, ४४४, ४४५, ४४८, ५१६, ५८२, ५८६, ६२२
हुउ=होओ ६१९
हुता=थे ५३३
हुय = हुआ ५५८
हुयउ = हुआ ६५०
हुया=हुए, हुए हुए १४८, २५३, ३४९, ४२७, ५१९
हुवइ=होवे, हो, होता है ६८, २११, ३३३, ५४६, ५४८, ५७१, ५६७
हुवउ=हुआ १०, १०१, ३५७, ४६३, ५४५, ५४८, ५५१, ६५१
हुवा=हुए ५३२ । चले गए ४२१ । हो गए ४४२
हूँ=मैं ४३, ५१, ७२, १५१, १६३, १७६, २०६, २२५, २६३, २६३, ३१३, ३१८, ३४१, ३६२, ४६७, ५०२, ५०३, ५१२, ६२०, ६३५ । से १८७, ३४२, ४२०, ४६३, ४६४
हुंछाँ=भुरट घास के बीजों से ६६१
हूँताँ, हूँता = से १४६, १८५, १६४ । थे ५३०
हूँती=से ३७० थी ५२६
हूआ=हुए ३८५
हूई=हो गई ३७८
हूया=हुए २०५
हूवउ=हुआ ५८०
हेवर=हयवर, श्रेष्ठ घोड़े ५९५
हेक=एक १३४, ४०४, ४७५, ५१४
हेकली=अकेली ३२३
हेड़ि=झुंड २२६
हेमाँगिर=हिमालय ५२६
हेमाळे=हिमालय में ४७७
हेरा=दूतों द्वारा खबर ५६७, ६२६
हेरा हुवइ=खबर होती है ५६७
हेलउ=पुकार ३७१
हेळ=खेल, क्रीड़ा ५११
है=है ३८५
होअइ=होवे ५०६
होइ=हो, हो जाय, हो जाता है, हो सकता है, होकर ६६, १८१, २६२, ३०६ ३१७, ३८६, ४८५, ५०२, ५०८, ६६८
होई=हो गई है ४४२
होय=हो, होकर, होता १६५, ३२८, ४४६, ५४६
होळी=होलिका १४५
होसइ=होगा ५३९

प्रतीकानुक्रमणिका

प्रतीकानुक्रमणिका

अ

अकथ कहाणी प्रेम की १५६

अंगि अभोखण अच्छियउ ४७१

अति आणंद उमाहियउ ४२४

अति घण ऊनमि आवियउ २५७

अंब तजइ नहि कोइलाँ ८

अबही मेली हेकली ३२३

अम्हाँ मन अचरिज भयउ २०

अवसर जे न (हि) आविया १७६

अहर अभोखण ढंकियउ ४७२

अहर पयोहर दुइ नयण ४७०

अहर फुरक्कइ तन फुरइ ५१७

अहर रंग रत्तउ हुवइ ५७२

आ

आँखड़ियाँ डंबर हुई १६५

आँख निमाणी क्या करइ ५२०

आखय उमा देवड़ी ८०

आज उमाहउ मो घणउ ५१८

आज ज सूती निसह भरि ५०४

आज धरा दस ऊनम्यउ, काळी २७१

आज धरा दस ऊनम्यउ, महलाँ २७२

आज निसह म्हे चालिस्याँ १०८

आज फरूकइ आँखियाँ ५१६

आजूणउ धन दीहड़उ ५३१

आजे रळी बधाँमणाँ ५५६

आठम प्रहर संझा समै ५८६

आडवळे आघोफरइ ४३६

आडा डूँगर दूरि घर ६१

आडा डूँगर भुइँ घणी, तियाँ ७२

आडा डूँगर भुइँ घणो, सज्जण ७०

आडा डूँगर वन घणा, आडा १६४

आडा डूँगर वन घणा, खरा ६६

आडा डूँगर वन घणा, ताँह २१२

आडा वनखँड दे गया ४१६

आणँद अति ऊछाह अति ६७४

आदीताँ हूँ ऊजळी ४६३

आवि विदेसी वल्लहा ४१८

आवी सब रत आँमळी ३०३

आसा लुध्धी हूँ न मुइय २०६

आसा लूँध उतारियउ ५५२

इ

इंद्राँ वाहण नासिका ५८०

इक जोगी आणंद मँइ ६१६

इणि परि ऊमा देवड़ी ७६

इणि भवि मारू काँमिणी ६१४

इसइ आरखइ मारुवी १४

इहाँ सु पंजर मन उहाँ २१३

ई

ईडर की धर अउळगउँ २२४

ईडर की धर अउळगण २२५

उ

उक्कंबी सिर हत्थड़ा १६

उज्जळदंता घोटड़ा ४३६

उत्तर आज न जाइयइ १०१
उत्तर आज स उत्तरइ २९८
उत्तर आजस उत्तरउ,
ऊकटिया २९५
उत्तर आजस उत्तरउ,
ऊपड़िया २९६
उत्तर आजस उत्तरउ,
सीय पड़ेसी २९०
उत्तर आजस उत्तरउ,
पल्लाँणियाँ २८६
उत्तर आजस उत्तरउ, पालउ २९१
उत्तर आजस उत्तरउ,
पाळउ पड़इ २९२
उत्तर आजस उत्तरउ,
पाळउ पड़इ तरंत २९३
उत्तर आजस उत्तरउ,
पाळउ पड़इ रवंद २९४
उत्तर आजस उत्तरउ, सही २८६
उत्तर आजस उत्तरउ,
पड़सी २८७
उत्तर आजस वज्जियउ,
ऊकटियइ २९७
उत्तर आजस वज्जियउ,
सीय २८८
उत्तर दिसि उपराठियाँ ६४
उत्तर दी भुइँ जु उपड़इ २९९
उर मेहाँ पवनाँह ज्यउँ ३८७
उरि गयवर नइ पग भमर ४७४

ऊ

ऊँचा डूँगर विखम थळ ६४८
ऊँचउ मंदिर अति घणउ २९८
ऊँडा पाँणी कोहरइ, थळे ५२३
ऊँडा पाँणी कोहरइ, दीसइ ५२४
ऊँमर ऊतावळि करइ, ६४०
ऊँमर ढोलइ नूँ कहइ ६३५
ऊँमर दीठा जावता ६४१
ऊँमर दीठा मारुई ६३६
ऊँमर विचि छेती घणी ६४३
ऊँमर मन विलखउ हुयउ ६५०
ऊँमर साल्ह उतारियउ ६२६
ऊँमर सुणि मुझ वीनती ६४७
ऊनमि आई बद्दळी ४१
ऊनमियउ उत्तर दिसइँ, काळी ४३
ऊनमियउ उत्तर दिसइँ गाज्यउ १८
ऊनमियउ उत्तर दिसइँ, मेड़ी ४२
ऊलंबे सिर हत्थड़ा १५

ए

एकणि जीभ किसा कहूँ ४८८
एक दिवस पूगळ सहर ८३
एण समईयइ आवियउ ५२६
ए वाड़ी ए बावड़ी ३८३
ए सारस कहिजइ पसू ५२
एही भलो न करहला ६२७

क

कंठ विलग्गी मारवी ५५१
कउआ दिऊँ वधाइयाँ ७५
कप्पड़ जीड़ कमाण गुण २४९
कर रत्ता मोती नूमळ ५७४
करहा इणि कुळि गाँमड़इ ४३०
करहा कहि कासूँ कराँ ४४५
करहा काछी काळिया, चाली ४६६
करहा काछी काळिया ४६६

करहा चरि चरि म चरि चरि ४३४
करहा तूँ मनि रूअड़उ ३२२
करहा तो बेसासड़उ ४६३
करहा देस सुहामणउ ४३२
करहा नीरूँ जउ चरइ ४२८
करहा नीरूँ सोइ चर ४२९
करहा नूँ समझाइ कइ ३२६
करहा पाँणी खंच पिउ ४२६
करहा माळवणी कहइ ३२७
करहा लंब कराड़िआ ४३३
करहा लंबी वीख भरि ४१८
करहा वामन रूप करि ४६७
करहा सुणि सुंदरि कहइ ३२५
करहउ पाँणि तिसाइयउ ४२५
करहउ कूड़इ मनि थकइ ३३६
करहउ मन कूड़इ थयउ ३३०
कवण देस तईं आविया १९५
कसतूरी कड़ि केवड़ो ४७६
कहिए माळवणी तणइ २४२
कहि सूवा किम आवियउ ४०१
कागळ नहीं क मस नहीं, नहीं १४०
कागळ नहीं क मसि
नहीं लिखताँ १४१
काछी करह विथूंभिया २२८
काळी कंठळि बादळी २६७
काळी कंठळि बीजुळी ५२१
काया झबकइ कनक जिम ५४६
किउँ ठाकुर अळगा बहउ ६२८
किणि गळि घालूँ घूघरा ३१२
कुँअरी पिंगळरायनी ६०
कुसळ विहावउ सज्जणाँ ४२२
कूँझड़ियाँ करळव कियउ,
घरि पाछिले द्रंगि ५५
कूँझड़ियाँ करळव कियउ,
घरि पाछिले वणेहि ५४
कूँझड़ियाँ कळिअळ कियउ, सरवर ५६
कूँझड़ियाँ कळिअळ कियउ, सुणी ५८
कूँझड़ियाँ कुरळाइयाँ ५६
कूँझाँ द्यउ नइ पंखड़ी ६२
कूट कटाड़ी दे छुरी ६४५
कूटि कटाड़ी इण करह ६४९
के मेल्ह्या पूगळ दिसइ ६२५
क्रम क्रम ढोला पंथ कर ४४०

ख

खंजर नेत विसाल गय ४५८
खूँटइ जीण न मोजड़ी ३७५
खोड़उ हउँ तउ डाँभिज्यउँ ३१९
खोड़उ हुँ तउ डाभिज्यउँ ३१८

ग

गउखे बइठा एकठा २४३
गढ नरवर अति दीपता २२२
गति गंगा मति सरसती ४५१
गति गयंद जँघ केळिग्रभ ४५४
गयगमणी गूजर धरा २३२
गया गळंती राति ३८०
गह छंडइ गहिलउ हुअउ ४८६
गादह दाध्यउ दग्ग करि ३३५
गाहा गीत विनोद रस ५६८
गिरवर मोर गहक्किया ३६
गिरह पखालण सर भरण ४७

घ

घम्म घमंतइ घाघरइ ५३७

घम्म घमंतइ घूघरइ ५३६
घर नीगुळ दीवउ सजळ ५०६
घरि बइठा ही आविस्यइ २२७
घाली टापर वाग मुखि ३४५

च

चंदण देह कपूररस १६१
चंदमुखी हंसा गमण २०७
चंदवदण मृगलोयणी ४७९
चंदा तो किण खंडियउ ३६५
चंदेरी बूँदी बिची ४००
चंपा केरी पाँखड़ी ३६६
चंपावरनी नाक सळ ४६२
चहुँ दिस दामिनि सघन घन ३७
चारण एक ऊँमर तणउ ४४१
चारण ढोलइ नूँ कहइ ६४४
चाल सखी तिण मंदिरइँ ३५९
चिंता डाइणि ज्याँ नराँ २१६
चिंता बांध्यउ सयळ जग २२०
चीतारंती चुगतियाँ २०३
चीतारंती सज्जणाँ २०५
चुगइ चितारइ भी चुगइ २०२
चोर मन आळस करि रहइ २५४
चौथै प्रहरै रैंणकै ५८५
च्यारइ पासइ घण घणउ २६०

छ

छट्ठै प्रहरैं दिवस कै ५८७
छाँटी पाँणी कुम कुमइँ २४०
छोटी वीख न आपणाँ ३८४

ज

जइ तूँ ढोला नावियउ १५०
जइ रूँखाँ मारू हुई ४३७
जउ तूँ ढोला नावियउ, कइ १४६
जउ तूँ ढोला नावियउ, मेहाँ १५४
जउ तूँ साहिब नावियउ, सावण १४६
जउ साहिब तूँ नावियउ, मेहाँ १४७
जंप सुपच्चळ करि कुँभळ ४७३
जद जागूँ तद एकली ५११
जब सोऊँ तब जागवइ ७६
जळ थळ, थळ जळ हुइ रह्यउ ४६
जळ माँहि वसइ कमोदनी २०१
जिउँ मन पसरइ चिहुँ दिसइ २१४
जिण दिन ढोलउ आवियउ ५०१
जिण दीहे पावस झरइ, बाजइ २६६
जिण दीहे पावस झरइ, बाबीहउ २६१
जिण दीहे पावस झरइ,
समनेहाँ २६२
जिण दीहे वण हर धरइ २६५
जिण धण कारण ऊमह्यउ ४४२
जिणनूँ सुपनें देखती ५५८
जिण भुइ पन्नग पीयणा ६६१
जिण मुखि नागरबेलड़ी ३११
जिण रित नाग न नीसरइ २८४
जिण रुति बग पावस लियइ २४६
जिण रुति बहु पावस झरइ २४७
जिण रुति बहु बादळ झरइ २५९
जिणि दीहे तिल्ली त्रिडइ २८२
जिणि दीहे पाळउ पड़इ,
टापर तुरी २७६
जिणि दीहे पालउ पड़इ,
टापर पड़ २८०
जिणि दीहे पाळउ

पड़इ, माथउ २८३
जिणि देसे विसहर घणा ६०८
जिणि देसे सज्जण वसइ ७४
जिणि रिति मोती नीपजइ २८१
जिम जिम मन अमलै किअइ १२
जिम जिम सज्जण संभरइ ६८
जिम मधुकर नइ कमलणी ५६२
जिम मधुकर नइ केतकी ६७३
जिम सालूराँ सरवराँ १६८
जिम सुपनंतर पामियउ ५१३
जे जीवन जिन्हाँ तणाँ २१
जे तइँ दीठी मारवी ४४६
जेती जउ मन माँहि १७१
जेहा सज्जण काल्ह था २१६
जोगिण जोगी परचव्यउ ६२१
जोगिण जोगीनूँ कहइ ६२०
जोगी सुणि ढोलउ कहइ ६१६
ज्यउँ ए डूँगर संमुहा ७३
ज्यूँ थे जाणउ त्यूँ करउ ९
ज्यूँ सालूराँ सरवराँ ५६४

झ

झगड़उ भागउ गोरियाँ ६७१
झाबकि पइठी झालि सुंदरि काँइ ६०३
झाबकि पइठी झालि, सुंदरि दीठी ६०४

ड

डींभू लंक मराळि गय ४६०
डूँगर केरा वाहळा ३३८
डूँगरिया हरिया हुया २५३

ढ

ढाढी एक सँदेसड़उ, कहि ढोला ११७
ढाढी एक सँदेसड़उ, ढोलइ लगि लइ० १२०
ढाढी एक सँदेसड़उ, ढोलइ लगि लइ० कण १२१
ढाढी एक सँदेसड़उ, ढोलइ लगि लइ० जोवण १२२
ढाढी एक सँदेसड़उ, ढोलइ लगि लइ० प्रीतम ११२
ढाढी गाया निसह भरि, राग १८८
ढाढी गाया निसह भरि सुणियउ १६२
ढाढी गुणी बोलाविया १०५
ढाढी जइ प्रीतम मिलइ ११८
ढाढी जइ साहिब मिलइ ११९
ढाढी जे प्रीतम मिलइ ११३
ढाढी जे राज्यँद मिलइ ११५
ढाढी जे साहिब मिलइ ११६
ढाढी रात्यूँ ओळग्या १८६
ढालइ करहउ झालियउ ६३६
ढोलइ करह चलावियउ ३४७
ढोलइ करह पलाणिया ३६३
ढोलइ करह विमासियउ ४३५
ढोलइ चलताँ परठव्यउ ३९६
ढोलइ चित्त विमासियउ ३०७
ढोलइ जाँण्यउ बीजळी ५४३
ढोलइ मन चिंता हुई ४४४
ढोलइ मनह विमासियउ ६३७
ढोलइ मनह विमासियउ एक ६२४

ढोलइ मारू आपणा ६२३
ढोलइ मनि आरति हुई २०८
ढोलइ सूवउ सीख दइ ४०९
ढोलउ करहउ सज कियउ ३४३
ढोलउ किम परचइ नहीं ६१५
ढोलउ चाल्यउ हे सखी, बाज्या ३५३
ढोलउ चाल्यउ हे सखी बाज्या ३४६
ढोलउ नरवर आवियउ ६५१
ढोलउ मन आणंदियउ ५५०
ढोलउ मन चलपत थयउ ४४७
ढोलउ मारू एकठा ५५५
ढोलउ मारू पउढिया ५६६
ढोलउ मारू परणिया १०
ढोलउ मिलियउ मारुई ५४४
ढोलउ हल्लाणउ करइ ३०४
ढोल वळाव्यउ हे सखी ३६०
ढोला आमण-दूमणउ २३७
ढोला खील्यौरी कहइ ४३८
ढाला जाइ वळि आविज्यउ ३६८
ढोला ढीली हर किया १३८
ढोला ढीली हर मुझ १३६
ढोला बाहि म कंवड़ी ४६४
ढोला मारवणी मुई ६०६
ढोल' मिलिसि न वीसरसि १५७
ढोला मोड़ो आवियउ ४४३
ढोला रहिसि न वारियउ २७३
ढोला सायधण माँणने ४७७
ढोला हूँ तुझ बाहिरी ३६३
ढोलै चढ़ि पड़ताळिया ३६१

त

तंत तणक्कइ रिउ पियइ ६३१
तंती नाद तँबोळरस २१३
ततखण माळवणी कहइ ६५४
तब बोली चंपावती ३३४
तरुणी पुणोविगहियं ५७५
तालि चरंती कुंझड़ी ६७
तीखा लोयण कटि करल ४५६
तुम्ह जावउ घर आपणइ ५२५
तुहीं ज सज्जण मित्त तूँ १७५
तेता मारू माँहि गुण ४८७
ते देखी तिणि पूछियउ ८६
त्रीजैं प्रहरै रैंण कै ५८४

थ

थळ तत्ता लू साँमुहीं २४१
थळ भूरा वन झंखरा ४६८
थळ मथ्थइ ऊजासड़उ ६३२
थळ मथ्थइ जळ बाहिरीं, कांइ ३६०
थळ मथ्थइ जळ बाहिरी, तूँ ३९१
थाँ सूताँ म्हे चालिस्याँ ३०६
थाइ निहाळइ दिन गिणइ १७
थे सिध्धावउ सिध करउ,
पूजउ......बीछुड़तां ४०७
थे सिध्धावउ सिध करउ,
पूजउ......मत ४०८
थे सिध्धावउ सिध करउ,
बहु गुण ३४०

द

दउढ वरसरी मारुवी...उणरउ ४५०
दउढ वासरी मारुवी,...
बालपणइ ९१
दंत जिसा दाड़म कुळी ४८०
दसराहा लग भी रह्यउ २७४

दादुर मोर टबक्क घण ४८
दिन छोटा मोटी रयण २८५
दिसि चाहंती सज्जणा २०४
दीसइ विवहचरीयं २३४
दीह गयउ डर डंबरे ४९१
दुख वीसारण मनहरण १९३
दुज्जण वयण न संभरइ १६८
दुरजण केरा बोलड़ा ४४६
दूजा दोवड़ चोवड़ा ३०९
दूजै प्रहरे रयण कै ५८३
दूहा संदेसा मिसइँ १८३
देस निवाणूँ सजळ जळ ६६८
देस बिरंगउ ढोलणा ४२७
देस सुरंगउ भुइँ निजळ ६६६
देस सुहावउ जळ सजळ ४८५
दोउ मयमंत सुजाँण ५६६

ध

धरती जेहा भरखमा ५६३
धर नीळी धण पुंडरी २५१
धावउ धावउ हे सखी ३४८

न

न को आवइ पूगळइ ८२
नदियाँ नाळा नीझरण २५६
नमणी खमणी बहुगुणी, सगुणी ४५६
नमणी खमणी वहुगुणी सुकोमळी ४५२
नर नारी सूँ क्यूँ जळइ ६१८
नरवर देस सुहाँमणउ ११०
नरवर नळ राजा तणउ ४
नळ राजा आदर दियउ ३
नागरबेली नित चरइ ३१०
ना हूँ सींची सज्जणे ३६२
नितु नितु नवला साँढिया ८१
निसि भरि सूती सुंदरी ६०१

प

पँचमैं प्रहरै दीह रै ५८६
पंचाइण नइँ पाखरयउ ५५४
पंथी एक सँदेसड़उ, कविज्यउ १३६
पंथी एक सँदेसड़उ, भल माणसनइ ११४
पंथी एक सँदेसड़उ, लग ढोलइ पैहचाइ, तनमन १२६
पंथी एक सँदेसड़इ, लग ढोलइ पैहचाइ, धँण १२६
पंथी एक सँदेसड़उ, लग ढोलइ पैहचाइ, निकसी १२५
पंथी एक सँदेसड़उ, लग ढोलइ पैहचाइ, विरह १२३
पंथी एक सँदेसड़उ, लग ढोलइ पैहच्याइ, जंघा १३२
पंथी एक सँदेसड़उ, लग ढोलइ पैहच्याइ, जोवन १३१
पंथी एक सँदेसड़इ, लग ढोलइ पैहच्याइ, धँण १३०
पंथी एक सँदेसड़इ, लग ढोलइ पैहच्याइ, विरह महाविस १२७
पंथी एक सँदेसड़इ, लग ढोलइ पैहच्याइ, विरह-वाघ १२८
पंथी एक सँदेसड़उ, लग ढोलइ पैहच्याइ, सावज १३३
पंथी हाथ संदेसड़इ १३७
पंथी हेक संदेसड़उ १३४
पगि पगि पाँणी पंथ सिर २४४

पनरह दिन लग सासरइ ५६४
पनरह दिन हूँ जागती ३४२
परदेसाँ प्री आवियउ ५७३
परमन रंजण कारणइ ४३७
पल्लाणियउ पवने मिलइ ३०८
पहिरण ओढण कंबळा ६६२
पहिलइ पोहरे रैण कै ५८२
पहिली होय दयामणउ ५४६
पही भमतउ, जइ मिलइ, तउ १२४
पही भमंतउ जउ मिलइ, कहे १३५
पहुर हुवउ ज पधारियाँ ५४८
पाँ खड़ियाँ ई किउँ नहीं ७१
पाँखे पाँणी थाहरइ ६६
पाछइ प्रोहित राखियउ १०४
पावस आयउ साहिबा ३८
पावस मास प्रगट्टियउं, जगि २५८
पावस मास प्रगट्टियउ, पगइ २७०
पावस मास विदेस प्रिय १७४
पिंगळ पुत्री पदमिणी ५
पिंगळ पूगळ आवियउ ११
पिंगळ राजा नूँ मिल्यउ ८४
पिय खोटाँ रा एहवा ३३९
पीहर संदी डूँमणी ६३०
पूगळ देस दुकाळ थियुँ २
पूगळ हुंता आविया १६६
पूगळ हुंता पुहकरइ १८५
पूगळि पिंगळ राऊ १
प्यारा पाखर पेमकी ४१२
प्रह फूटी दिसि पुंडरी ६०२
प्रहरै प्रहर ज ऊतरयूँ ५६०
प्रिउ ढोळउ त्री मारुई ६३८
प्रिव माळवणी परहरे ३६५
प्रीतम काँमणगारियाँ २४८
प्रीतम तोरइ कारणइ १६०
प्रीतम बाछुड़ियाँ पछइ ४०३
प्रीतम हूती बाहिरी ३७०

फ

फागण मास सुहामणउ ३०२
फागुण मासि वसंत रुत १४५
फूलाँ फलाँ निघट्टियाँ १७२
फौज घटा खग दाँमणी २५५

ब

बहताँ दिन बीजइ पछइ ५६८
बहु दिवसे प्री आवियउ ५७६
बहु धंधाळू आव घरि १७८
बाँधउँ बड़री छाँहड़ी ३२०
बाँवळि काँइ न सिरजियाँ ४१४
बाँहड़ियाँ रूँआळियाँ ४८२
बाँहे सुंदरि बहरखा ४८१
बाजरियाँ हरियाळियाँ २५०
बाबहियउ नइ विरहिणी २७
बाबहियउ पिउ पिउ करइ २५२
बाबहिया चढ़ि गउख सिरि २८
बाबहिया चढ़ि डूँगरे २९
बाबहिया डूँगर दहण ३६
बाबहिया तर पंखिया ३२
बाबहिया तूँ चोर ३०
बाबहिया निलपंखिया, बाढत ३३
बाबहिया निलपंखिया, मगरि ३१
बाबहिया प्रिउ प्रिउ न कहि ३५
बाबहिया रतपंखिया ३४
बाबा बाळूँ देसड़उ ३८६

बाबा म देसइ मारुव, सूधाँ ६५८
बाबा म देइ मारुवाँ, वर ६५९
बाळउँ बाबा देसड़उ ६५६
बाळूँ ढोला देसड़उ ६५७
बाळूँ बाबा देसड़उ, जहाँ पाँणी ६६४
बाळूँ बाबा देसड़उ, जहाँ फीकरिया ६६५
बाळूँ बाबा देसड़उ, पाँणी जिहाँ ६५५
बिज्जुळियाँ नीळजियाँ ५०
बीछड़ताँ ही सज्जणा, क्याँही ३८१
बीछुड़ताँ ही सज्जणा, राता ३६६
बीजइ दिन ऊँमर मिल्यउ ६४३
बीज न देख चहड्डियाँ १५२
बीजुळियाँ चहळावहळि, आभइ आभइ एक ४४
बीजुळियाँ चहळावहळि, आभइ आभइ कोडि ४६
बीजुळियाँ चहळावहळि, आभइ आभइ, च्यारि ४५
बीजुळियाँ जाळउ मिल्याँ १५१
बीजुळियाँ परोकियाँ १५३
बेऊँ चतुर सुजाँण ५६५
बोलि न सक्कूँ बीहतउ ४०४
बोली वीणा हंस गत ५४०

भ

भमुहाँ ऊपरि सोहली ४६५
भरइ पलट्टइ भी भरइ १८२
भाई कहि बतळावसूँ ३२६
भूली सारस सद्दड़इ ३८८

म

मइँ घोड़ा बेच्या घणा ६५
मंझि समंदाँ वीँट घर ५७
मंदिर हूँताँ ऊतर्यउ १६४
मत जाणे प्रिउ नेह गयउ १६२
मन मिळिया तन गड्डिया ५५३
मन सींचाणउँ जइ हुवइ २११
मनह सँकाणी माळवणि २१७
मनि संकाणी मारुवी ५४७
मरजीवउ पाँणी तणउ २३१
महि मोराँ मंडव करइ २६३
माँगणहाराँ सीख दी, आयउ २१०
माँगणहाराँ सीख दी, ढोलइ २०६
माणस हवाँ त मुख चवाँ ६५
मारवणी इम वीनवै ५६७
मारवणी तूँ अति चतुर ६३३
मारवणी नइँ माळविण ६५३
मारवणी मुख ससि तणइ ६००
मारवणी मनि रंगि ६०
मारवणी सिणगार करि ५३६
मारुवणी पिंगळ सुधू १९७
मारुवणी भगताविया १०६
मारुवणी मुँह वन्न ४६४
मारू घूँघटि दिट्ठ मइँ ४५५
मारू चाली मंदिरां ५३८
मारू तोइ ण कणमणइ ६०५
मारू त्रिहुँ बरसे वड़ी ६१३
मारू थाँकइ देसड़इ ६६०
मारू देस उपन्निया, ताँह ४५७
मारू देस उपन्निया, तिहाँ ६६६
मारू देस उपन्निया, नइ ४८३
मारू देस उपन्निया,...जाणही ४८४
मारू देस उपन्नियाँ...बोलही ६६७

मारूनूँ आखइ सखी १९
मारूनूँ आखइ सखी, एह २४
मारू बइठी सेज सिर ५४५
मारू मन चिंता धरइ ६३४
मारू मारइ पहियड़ा ४७५
मारू-मारू कळाँइयाँ ६११
मारू लँक दुइ अंगुळाँ ४६१
मारू सनमुख तेड़िया १०७
मारू सी देखी नहीं ४७८
मारू स्रवणे संभळी ६४२
माळव गढ राजा सुधू ९४
माळवणी इण विधि घणउ ४२३
माळवणी-कउ तन तप्यउ २३९
माळवणी ढोलउ कहइ २७६
माळवणी तूँ मन समी २२१
माळवणी मनि दूमणी ३१६
माळवणी म्हे चालिस्याँ २७८
माळवणी सिणगार सझि २१५
माळव देस विखोड़िया ६७२
माह महारस मयण सब ३००
मुख जोवइ दीवा धरी ६०६
मुख नीसाँसाँ मूँकती १६६
मुळताणी धर मन वसी २२६
मेहाँ बूठाँ अन बहळ २६४
मो गळि घालउ घूघरा ३१३
मोती जड़ी ज हाथि ५०५
मृगनयणी मृगपति मुखी ४६६
म्हे कुरझाँ सरवर तणी ६३
म्हेँ नेँ ढोलो झूँबिया म्हाँनूँ ५६२
म्हेँ नें ढोलो झूँबिया, लूँगे ५९१

य

यहु तन जारी मसि करूँ १८१

र

रइबारी तेड़ावियउ ३३१
रह रह सुंदरि माठ करि ३२१
रहि नीमाँणी माठ करि ४११
राँणी राजा नूँ कहइ १८२
राखउ करहउ डाँभस्यउँ ३३२
राजा कउ जण पाठवइ ९६
राजा परजा गुणिय जण ४०
राजा प्रोहित तेड़ियउ १०१
राजा प्रोहित राखिजइ १०३
राजा राँणी नूँ कहइ ७
राजा राँणी हरखिया ५२७
राति ज बादळ सघण घण ५०८
राति ज रूँनी निसह भरि १५६
राति जु सारस कुरळिया ५३
राति दिवस रंगइँ रमइ ५९३
राति सखी इणि ताल मइँ ५१
रूँनी रड़ी चड़ेहि ३७९
रूप अनूपम मारुवी ४५३

ल

लखण बतीसे मारुवी ४६९
लहरी सायर संदियाँ ५५६
लाँबी काँब चटकड़ा ४१०
लागे साद सुहाँमणउ २४५
लोभी ठाकुर आवि घरि १७७

व

वनिता पति विदेस गय ५७७
वयणे माळवणी तणइ २७५
वळती मारवणी कहइ ६६३

वळि माळवणी वीनवइ २३६
वहिलउ आए वल्लहा १५५
वागरवाळ विचारियउ १८७
वायस बीजउ नाँम १४२
वालँभ एक हिलोर दे १६७
वालँभ दीपक पवन भय ५७६
वालिभ गरथ वसीकरण १६९
वासर चित्त न वीसरइ १७०
वाही थी गुण वेलड़ी ६१०
विरह वियापी रयण भरि ५६९
विहाँगड़े ज उदधियाँ ४९५
वीण अलापी देख ससि ५७०
वीसारियाँ न वीसरइ ६१२
वीसू कहिया दूहड़ा ४८९
वीसू सुणि ढोलउ कहइ ४६०
वीसू सुणि ढोलउ कहइ,
एकइ ४४८

स

सउदागर खवास नूँ ८८
सउदागर पिंगळ मिळ्यउ ८५
सउदागर राजा कन्हइ कहि १००
सउदागर राजा कन्हे अरज ९२
सउदागर राजा तिहाँ ८६
सउदागर राजासुँ कह ९७
सउदागर संदेसड़ा ६६
सउ सहसे एकोतरे २३०
संदेसउ जिन पाठवइ १४३
संदेसा मति मोकळउ १४४
संदेसा ही लख लहइ १११
संदेसे ही घर भरयउ २००
संपहुता सज्जण मिल्या ५३०
संभारिया संताप १८०
सकती बाँधे वीटुळी ५००
सखिए ऊगटि माँजिणउ ५३५
सखिए सज्जण वल्लहा २३
सखिए साहिब आविया,
जाँह की ५२९
सखिए साहिब आविया मन ५३२
सखि वउळावी फिरि गई ५४२
सखियाँ राँणीसूँ कहइ,
तनह ७८
सखियाँ राँणीसूँ कहइ, मारू ७७
सखि हे राजिंद चालियउ ३५०
सखी० नयण सुंदरि सुण्या २५
सखी सु सज्जण आविया ५३३
सगुणी-तणा संदेसड़ा ३४४
सजण मिल्या मन ऊमग्यउ ५६०
सजि कसणा करि लाज ग्रहि ३४६
सज्जण अळगा ताँ लगइ ४२०
सज्जण गुणे समुद्द तूँ ३७६
सज्जण चाल्या हे सखी, दिस ३५५
सज्जण चाल्या हे सखी,
नयणे ३५७
सज्जण चाल्या हे सखी,
पड़हउ ३५१
सज्जण चाल्या हे सखी, पाछे ३५४
सज्जण चाल्या हे सखी,
बाजइ ३५६
सज्जण चाल्या हे सखी,
वाज्या ३५२
सज्जण चाल्या हे सखी,
सूना ३५८

सज्जण ज्यूँ-ज्यूँ संभरइ ३८२
सज्जण दुज्जण के कहे १६६
सज्जण देसंतर हुवा ४२१
सज्जण मिलिया सज्जणाँ ५३४
सज्जण वल्ले गुण रहे ३७४
सज्जणिया वउळाइ कइ, मंदिर ३७१
सज्जणिया ववळाइ कइ, गउखे ३७२
सज्जणिया सावण हुया १४८
सड़सड़ ताहि म कंबड़ी ४६२
सत्तम प्रहरैं दिवस कै ५८८
सयणाँ पाँखाँ प्रेम की ३६४
ससनेही सज्जण मिल्या ५८१
ससनेही समदाँ परइ २२
सहसे लाखे साटविसु २३३
सहिए फिरि समझावियउ ५१५
सहिए साहिब आविस्यइ ५१६
सही समाँणी साथिकरि ९८
साइधण हल्लण साँभळइ ३३७
साईं दे दे सज्जना ३७७
साँझी बेळा सामहळि ५२२
साँवळि काँइ न सिरजियाँ ४१५
साथइ सुंदरि जोगिणी ६१७
साथे दीन्ही छोकरी ५६६
साद करे किम सुदुर है ३८५
सा वाळा प्री चिंतवइ ५७८
सारसड़ी मोती चुणइ ३८९
सारीखा जोड़ी जुड़ी ६
साल्हूरा पाँणी विना १७३
साल्हकुँअर सूड़उ कहइ ४०२
साल्हकुमर विलसइ सदा ६५२
साल्हकुँवर सुरपति जिसउ ६३
साल्ह चलंतइ परठिया···कूवा ३६७
साल्ह चलंतइ परठिया··· सो मइँ ३६६
साल्ह चलंतउ हे सखी; गउखे ३६२
सावण आयउ साहिबा २६६
साहिब आया हे सखी ५२८
साहिब कछूछ न जाइयइ २२६
साहिब तुज्झ सनेहड़इ ४१३
साहिब म्हाँका बापकइ ३३३
साहिब रहउ न राखिया २३५
साहिब हसउ न बोलिया २१८
सिंधु परइ सउ जो अणे १९१
सिंधु परइ सउ जोयणाँ १८६
सिंधु परइ सत जो अणे १६०
सींगण काँइ न सिरजिया ४१६
सीख करे पिंगळ कन्हाँ १०६
सीयाळइ तउ सी पड़इ २७७
सुंदर थाँके ही कहइ ३२८
सुंदर सोळ सिंगार सजि ३६४
सुंदरि चोरे संग्रही ५७१
सुंदरि मो सारउ नहीं ३२४
सुंदरि सोवन बर्ण तसु ८७
सुणि करहा ढोलउ कहइ ३१४
सुणि ढोला करहउ कहइ, मो ४३१
सुणि ढोला करहउ कहइ, सामि ३१५
सुणि सुंदरि केता कहाँ ६७०
सुणि सुंदरि सच्चउ चवाँ २३८
सुणि सूड़ा सुंदरि कहय ३६७

सुपनइ प्रीतम मुझ मिळया
हूँ गळि ५०३
सुपनइ प्रीतम मुझ मिल्या
हूँ लागी ५०२
सुरह सुगंधी वास ५०७
सुहिणा तोहि मराविसूँ ५१४
सुहिणा हूँ तइ दाहवी ५१२
सूड़ा सगुणज पंखिया ४०५
सूड़ा सुगुणज पंखिया ४०६
सूती पड़ी रणेहिं ३७८
सूवा एक संदेसड़उ, वार ३६८
सेज रमंतॉं मारुवी ५६१
सोई सज्जण आविया, जाँह की ५४१
सोवँन जड़ित सिंगार बहु ५६५
सोहड़ सहु भेळा किया ६०७
सोहण याई फर गया ५१०
स्रवण सँदेसा साँभळे १८४

ह

हंस चलण कदळीह जँघ १३
हइ रे जीव निलज्ज तूँ ३७३
हल्लउँ हल्लउँ मति करउ ३०५
हित विण प्यारा सज्जणां ४१७
हियड़इ भीतर पइसि करि १५८
हियमाँ करइ वधाँमणाँ ५५७
हिव माळवणी वीनवइ ३४१
हिव-सूंमर हेरा हुवइ ५६७
हुंता सज्जण हीयड़े ५०६
हुई सचेती मारवी ६२२
हूँ कुँमलाणी कंत विण १६३
हूँ बळिहारी सज्जणा १७६
हेरा ग्या ऊँमर कन्हइ ६२६
हे सखि ए परदेस प्री २६

लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी, पुस्तकालय
L.B.S. National Academy of Administration, Library
मसूरी
MUSSOORIE
यह पुस्तक निम्नांकित तारीख तक वापिस करनी है ।
This book is to be returned on the date last stamped

दिनांक Date	उधारकर्त्ता की संख्या Borrower's No.	दिनांक Date	उधारकर्त्ता की संख्या Borrower's No.

GL H 891.47
DHO
124596
LBSNAA

H
891.47
ढोला

अवाप्ति सं०
ACC. No. ~~14820~~

वर्ग सं.
Class No. ....

पुस्तक सं.
Book No. ....

लेखक
Author ....

शीर्षक
Title ढोला-मारूरा दूहा :

H
891.47
ढोला

LIBRARY ~~14820~~
LAL BAHADUR SHASTRI
National Academy of Administration
MUSSOORIE

Accession No. 124596

1. Books are issued for 15 days only but may have to be recalled earlier if urgently required.
2. An over-due charge of 25 Paise per day per volume will be charged.
3. Books may be renewed on request, at the discretion of the Librarian.
4. Periodicals, Rare and Reference books may not be issued and may be consulted only in the Library.
5. Books lost, defaced or injured in any way shall have to be replaced or its double price shall be paid by the borrower.

Help to keep this book fresh, clean & moving